॥ ओ३म् ॥

# यजुर्वेद-संहिता

## भाषा-भाष्य

( द्वितीय खण्ड )


भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेवजी शर्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.



प्रकाशक—

आर्य्यसाहित्यमण्डल, लिमिटेड, अजमेर.

प्रथमावृत्ति २०००

सं० १९८८ वि०

मूल्य ४) रुपये

मुद्रकः—
ओंकार प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

# यजुर्वेद द्वितीय खण्ड की

# भूमिका

यजुर्वेद आलोक भाष्य के प्रथम खण्ड की भूमिका में हमने कुछ आव-
... विषयों पर प्रकाश डाला था, जिन से यजुर्वेद का बाह्य परिचय
... प्रकार विदित हो सकता है। शाखा भेद के विस्तार को
... खण्ड की भूमिका में दर्शा दिया था। यजुर्वेद के प्रतिपाद्य
... को आलोचना पूर्वक दर्शाने के लिये भूमिका के पृष्ठों में विशेष
... न करके हम पाठकों से सविनय निवेदन करेंगे कि वे विषयसूची
... तिपाद्य विषय को जानने का यत्न करें। अथर्ववेद के समान यजु-
... प्रत्येक सूक्त या अध्याय के विषयों को शीर्षकों द्वारा नहीं दर्शाया
... है, प्रत्युत विषय सूची में अध्यायों के साथ ही कण्डिका या मन्त्र का ...
... हुए मन्त्र का विषय संक्षेप में दर्शा दिया गया है, इससे उत्तम और
... उपाय यजुर्वेद के प्रतिपाद्य विषय को विशुद्ध रीति से दिखाने का
... हमारी मति में नहीं आया।

भाष्य के पाठकों में से बहुत से पाठक इस बात के लिये उत्सुक हैं कि
...र्वेद के मन्त्रों से किये जाने वाले यज्ञों और महायज्ञों के प्रकरणों को
भूमिका में खोल कर स्पष्ट किया जावे। ऐसे महोदयों का विचार बहुत
ही महत्व का है, परन्तु यह कार्य बड़े श्रम और काल की अपेक्षा करता है।
इसके अतिरिक्त ऐसे विषय को विस्तृत और स्पष्ट रूप से दर्शाने के लिये
ब्राह्मण ग्रन्थों ने जितना प्रयास किया है उस सबको प्रथम प्रकट करने
और फिर उन पर आलोचना और उन कर्म काण्डों के रहस्यों का विवे-
चन करना भूमिका के इनेगिने पृष्ठों में कभी सीमित नहीं हो सकता। इस
लिये उनका विवरण भविष्य के किसी विस्तृत ग्रन्थ के लिये रख कर यहां उनके

सम्बन्ध में मौन ही रहना ठीक है। दूसरे वेद संहिताओं के आलोक भाष्य के प्रकाशन के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों के भाषा भाष्य और आलोचनों को भी प्रकाशित करने का विचार है। "यदि आर्य साहित्य मण्डल" की स्थिति और हमारा मनोरथ दोनों की संगति दृढ़ रही तो यह भी कार्य सुचारु रूप से होकर यजुर्वेद के कर्मकाण्ड और यज्ञों का विवेचन जनता को अच्छी प्रकार जान लेने का सुअवसर प्राप्त होगा।

क्योंकि प्रस्तुत भाष्य में कर्मकाण्डपरक अर्थों को सर्वथा नहीं किया गया इस लिये भूमिका में यजुर्वेद के उवट, महीधर आदि के कर्मकाण्ड परक अर्थों को रख कर उनकी आलोचना या खण्डन मण्डन करना सर्वथा अनुपयुक्त है। जो भी कर्मकाण्ड ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है, जिसको आधार लेकर ब्राह्मणकारों की विचारमय व्याख्या प्रकट हुई है उसमें भी नाना प्रकार के भेद हैं, उन कर्म काण्डों की व्याख्याओं में भी भेद हैं, एक ही कर्मकाण्ड को लेकर मन्त्र के भाष्यकारों में भेद है, उन सब पर इस भूमिका में विचार करना असंगत प्रतीत होता है। जिस शैली को भाष्य में रखा गया है उसका दिग्दर्शन प्रथम खण्ड की भूमिका में पर्याप्त रूप में करा दिया गया है। उसको पाठक वहां ही देखने का श्रम करें।

परमेश्वर के पूर्ण अनुग्रह से यजुर्वेद का हिन्दी भाषा भाष्य पूर्ण हो गया। इसके पूर्व सामवेद और अथर्ववेद इन दोनों के भी भाष्य प्रकाशित हो चुके हैं। इस प्रयत्न को पार पहुंचाने में "आर्य साहित्य मण्डल" के संञ्चालकों को धन्यवाद है और साथ ही आर्य जनता को भी धन्यवाद है, जिसकी गुणग्राहिता ने इस प्रयत्न को सफल किया है। इसके अनन्तर केवल ऋग्वेद का ही भाष्य सम्पूर्ण करना शेष है। जगदीश्वर के अनुग्रह से उसकी पूर्त्ति हो जाना भी कठिन नहीं है।

सहृदय पाठकों से निवेदन है कि वे भाष्य की त्रुटियों को बताने की महानुभावता अवश्य मित्रभाव से करते रहें। शुद्धाशुद्धि पत्र में, दृष्टि दोष

तथा प्रेस के जगत्प्रसिद्ध भूतों की स्वाभाविक लीला से जो २ जिस २ तरह की त्रुटियां रह गई हैं, उनका यथा शक्ति संशोधन कर दिया गया है। पाठक अपनी २ पुस्तकों को उसके अनुसार अवश्य संशोधन कर लें, जिससे पढ़ने के समय वे त्रुटियां सत्यार्थ समझने में बाधक न हों। इसके अतिरिक्त त्रुटि करना मानुष धर्म है और त्रुटियां दूर करने का मार्ग दर्शाना देवधर्म है, वाचकों से इसी देव धर्म की आशा है।

अजमेर
वैशाख, कृष्ण ८,
१९८८ वि०

विद्वानों का अनुचर
जयदेव शर्मा
मीमांसातीर्थ, विद्यालंकार

---

# शुद्धाशुद्ध पत्र



| पृ० | पं० | अशुद्ध पाठ | शुद्ध पाठ |
|---|---|---|---|
| ५ | १७ | ( संवत् ) | ( संवित् ) |
| २१ | ४ | ज्येष्ठ जिस | ज्येष्ठमास जिस |
| ३१ | २२ | द्वारा और सेवित है | द्वारा सेवित और उनका आश्रय है। |
| ५५ | २० | ( मुज्यः सखा ) | ( युज्यः सखा ) |
| ६० | ५ | लक्ष्मण | लक्षण्य |
| ६० | २३ | अन्न प्रज्ञा | अन्तः प्रज्ञा |
| ११० | १२ | संघ कृत्वा | संघं कृत्वा |
| ११५ | २५ | वेरी आदि | वेरी आदि । |
| १३५ | १३ | 'अपो प्रधा० | 'अपो अद्या० |
| १४४ | ९ | प्रताप के । | प्रताप को |
| १७६ | १७ | श्लेषा विशेष | ( श्लिष्ट विशेषणों |
| १९१ | २४ | ह्येगूं | गेहूं |
| २०४ | २० | जुषताᳪ | जुषेताᳪ |
| ३२७ | १९,२०,२१ | सुषीलिका | सुपिलीका |
| ३५४ | ६ | मनुष्यों में जीवन | मनुष्यों में पूर्ण जीवन |
| ३२७ | २५ | यज्ञन् | यज्ञेन् |

| पृ० | पं० | अशुद्ध पाठ | शुद्ध पाठ |
|---|---|---|---|
| ३६५ | १९ | चटख का २ | चटख २ कर |
| ३६७ | १६ | सुचा | स्रुचा |
| | १९ | करूं कश | करूं । कश |
| ३७१ | ८ | भक्ता | भोक्ता |
| ३७४ | ७ | पदाथ से ) | पदार्थ से ( |
| ३७८ | ५ से २० तक १६ पंक्तियें | | ३७५ पृष्ठ में ५ वीं पंक्ति से आगे पढ़नी चाहियें । |
| ३७८ | १० | राजा से स्त्री का | राजा से और स्त्री का |
| ४०० | २३ | (सहस्त्रिणीभिः) अज़ारों | ( सहस्त्रिणीभिः ) हज़ारों |
| ४८१,८३,८५ | माथे पर | अष्टाविंशोऽध्यायः | एकोनत्रिंशोऽध्यायः |
| ५१६ | ९ | ( ऋत्वा ) | ( स्पृत्वा ) |
| ५६० | १४ | ( इध्म ) | ( इध्मः ) |
| ५६८ | ८ | रूप प्रकट | रूप को प्रकट |
| ५७९ | २४ | ( द्युत यामा ) | ( द्युतद्यामा ) |

टिप्पणी—इन अशुद्धियों के अतिरिक्त भी अशुद्धियां रह जानी सम्भव हैं जो संशोधक की आंख से रह गयी हों, वाचकजन इनको देखकर अपनी पुस्तकों को शुद्ध करके पढ़ें । प्रायः प्रेस की छपाई में इकार, उकार, एकार और रेफ़ की मात्रायें टूट जाती हैं या नहीं उभरतीं, या छपते २ टाइप निकल जाता है, वह ठीक न बैठाया जाय, गलत बैठा दिया जाय इत्यादि नाना कारणों से प्रायः त्रुटियां हो जाती हैं । ग्रन्थकार ।

---

# विषय सूची



## अष्टादशोऽध्यायः ( पृ० १–५१ )

यज्ञ से अग्नि आदि दिव्य तत्त्व और उनके ज्ञाता विद्वानों की प्राप्ति, यज्ञ से न्यायाधीश आदि पदाधिकारियों की प्राप्ति। यज्ञ से पृथिवी, अन्तरिक्ष सूर्य, नक्षत्र, काल आदि पदार्थों के ज्ञान और उनके ज्ञाताओं की प्राप्ति ( १९ ) यज्ञ से सूर्य के समान तेजस्वी नाना पदाधिकारियों की प्राप्ति। उसमें अंशु, उपांशु, अदाभ्य, अधिपति, ऐन्द्रवायव आदि का विवरण। ( २० ) आग्रयण आदि राज्यांगों की प्राप्ति, ( २१ ) यज्ञ से स्रुक् चमसादि यज्ञ साधन के पात्रों की प्राप्ति और उनकी राष्ट्र और देह में व्याख्या (२२ ) यज्ञ से अग्नि, घर्म, अर्क, प्राण, अश्वमेध आदि की प्राप्ति। उनकी व्याख्या। ( २३ ) यज्ञ से व्रत, ऋतु, तप, सवंत्सर आदि की प्राप्ति। ( २४ ) एक, तीन, पांच आदि एकान्तर क्रम से सेना व्यूह और संख्या वृद्धि का नियम। ( २५ ) यज्ञ से ४। ८। १२। क्रम से ४८ तक के व्यूह। ( २३ ) यज्ञ से भिन्न २ अवस्था और बल वाले पशुओं की प्राप्ति ( २६ ) यज्ञ सेना और नाना पशुओं की प्राप्ति। ( २८ ) संग्राम, उत्तम सन्तान, ज्ञान, कर्म, ऐश्वर्य इनकी उत्तम रीति से शिक्षा और प्राप्ति। तेजस्वी पुरुषों के आदर, मुग्धों अज्ञानियों, को उत्तम ज्ञानोपदेश, प्रजापालक पुरुषों का आदर और उत्तम शिक्षा का आदेश। सूर्य के १२ नामों के अनुसार राजा के १२ नाम। ( २९ ) यज्ञ से, आयु, प्राण, चक्षुः, श्रोत्र, वाणी, मन, आत्मा, ब्रह्मा, स्वः, पृष्ठ, स्तोम, यजु, ऋक्, साम, बृहत्, रथन्तर आदि की प्राप्ति। इनकी व्याख्या। ( ३१ ) राष्ट्र में विद्वान् तेजस्वी पुरुषों का होना और उनका राष्ट्र को समृद्ध करना, ( ३२ ) ऐश्वर्य का विस्तार और राष्ट्र की रक्षा। ( ३३ ) ऐश्वर्य के साथ दानशीलता, पराक्रम और बल की वृद्धि। ( ३४–३६ ) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये राजा से प्रार्थना। ( ३७ ) सम्राज्य से राजा का अभिषेक ( ३८–३९ ) अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, यज्ञ, मन इनकी तुलना से प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य। उसके भिन्न २ गुणों से ६ नाम। 'गन्धर्व' नाम का रहस्य। (४४) सब वर्गों का आश्रय राजा; ( ४५ ) राजा के समुद्र, मारुत और अवस्यू नामों का रहस्य। पक्षान्तर

में परमेश्वर की तुलना। ( ४६–४८ ) राजा और विद्वान् शासक के कर्त्तव्य। राष्ट्र के तेज और स्नेह की वृद्धि। ( ४९ ) राजा और पक्षान्तर में परमेश्वर से ज्ञान और जीवन रक्षा की याचना। ( ५० ) राजा के सूर्य के समान कर्त्तव्य। पक्षान्तर में भौतिक पदार्थों के सदुपयोग का आदेश। ( ५१ ) उन्नति के लिये अग्रणी नायक की नियुक्ति। पक्षान्तर में परमेश्वरोपासना। और भौतिकाग्नि का उपयोग। ( ५२ ) नायक के अधीन सेना के दो पक्ष। सभापति के आगे तत्व निर्णय में पक्ष प्रतिपक्ष, और अध्यात्म में आत्मा, परमात्मा का वर्णन। (५३) राजा की चन्द्र और वाज, से तुलना। पक्षान्तर में परमेश्वर का स्वरूप। हिरण्यपक्ष श्येन का रहस्य। ( ५४ ) राजा के कर्त्तव्य और जिम्मेवारी के पद। ( ५५ ) प्रजापालक राजा के मेघ के समान कर्त्तव्य। (५६) सर्वाशापूरक राजा और ऐश्वर्य की आकांक्षा। (५७) अग्रणी नायक का प्रजापालन का कर्त्तव्य और उसका आदर ( ५८ ) विद्वानों को उत्तम, पूर्व पुरुषों के उपार्जित पद प्राप्त करने का उपदेश। ( ५९ ) विद्वानों के समक्ष राजा को राष्ट्र के कोष का समर्पण। अध्यात्म रहस्य। ( ६० ) सर्वोच्च सम्राट और उसके ऊपर विद्वानों का शासन। पक्षान्तर में ईश्वरोपासना। ( ६३ ) अग्रणी नायक को सुख प्राप्ति के मार्ग पर ले चलने के साधनों का उपदेश। ( ६४ ) लेन देन, तथा प्रजा के उपकारक बड़े २ कामों पर राजा का नियन्त्रण। ( ६५ ) अश्व, राज्य, बल और पराक्रम की वृद्धि, राज्य का विद्वानों के बल पर संचालन। ( ६६ ) सम्राट् कैसा हो। ( ६७ ) उसके श्रेष्ठ कर्त्तव्य। ( ६८ ) अग्रणी नायक के दो मुख्य कर्त्तव्य। ( ६९–७० ) दुष्टों को दण्ड देने का विधान। ( ७१ ) शत्रुओं का प्रबल सैन्य से ताड़न। ( ७२–७३ ) वैश्वानर अग्नि का वर्णन, राजा सभापति के कर्त्तव्य। ( ७४ ) राजा की रक्षा में प्रजा का ऐश्वर्य सुख भोग। प्रजा का राजा के प्रति आदर। ( ७६ ) विद्वान् नायकों का राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य। ( ७५–७७ ) राजा का प्रजा और उनकी संतानों की रक्षा का कर्त्तव्य।

## एकोनविंशोऽध्यायः ( पृ० ५२–१२१ )

सौत्रामणी । (१) ओषधियों के सदृश समान स्वभाव के शास्य शासक, तथा स्त्री पुरुषों की संगति करके बल की वृद्धि का उपदेश । स्त्री पुरुषों का परिपक्व वीर्य होकर गृहस्थ करने की आज्ञा । सौत्रामणी यज्ञ का रहस्य, सोम और सुराकी व्याख्या । ( २ ) सोम सवन । अभिषेक योग्य पुरुष का लक्षण । ( ३ ) राजा का सैन्य बल से सहायवान् होकर शत्रु पर आक्रमण । ( ४ ) ज्ञानवान् पुरुष के मनोरथों को पूर्ण करने वाली श्रद्धा, सूर्य दुहिता का रहस्य । ( ५–६ ) अभिषिक्त के कर्तव्य । ( ७ ) राजा प्रजा के पृथक् अधिकार, सोम सुरा का रहस्य । ( ८ ) अभिषिक्त पुरुष का स्वरूप और बल । उसके अभिषेक के प्रयोजन । ( ९ ) तेज, वीर्य, बल, ओज मन्यु और सहः, राजा के ये ६ रूप । पक्षान्तर में परमेश्वर से इन छः हों पदार्थों की प्रार्थना । राजा की व्याघ्र, श्येन, सिंह आदि से तुलना और उसकी 'विषूचिका' नाम संस्था का वर्णन । अध्यात्म में अन्तःप्रज्ञा का वर्णन । ( ११ ) पुत्र का माता पिता के प्रति कर्त्तव्य । पितृ ऋण से मुक्ति, राजा का पृथ्वी के प्रति कर्त्तव्य । ( १२–२१ ) राजा का बल सम्पादन । राष्ट्र यज्ञ का विस्तार । ( १३ ) यज्ञ से राज्य की तुलना । शष्प, तोक्म, लाजा और मधु आदि यज्ञ गत पदार्थों के नामों का श्लेष पूर्ण अर्थ । सौत्रामणी का स्वाध्याययज्ञ रूप से दिग् दर्शन । ( ३२ ) अभिषिक्त पुरुष का इन्द्रपद । उसकी वृद्धि । ( ३२ ) 'सरस्वती' और 'अश्विनौ' की वृद्धि का रहस्य । ( ३४ ) देह में शुक्र के समान राजा के ऐश्वर्यवान् पद का सार्वजनिक उपभोग । ( ३५ ) सैन्य बल की वृद्धि और उसका उपभोग । ( ३६ ) स्वधायी पिता, पितामह, प्रपितामहों का आदर, उन की तृप्ति, और उनका शुद्धि करने का कर्तव्य । पितरों का रहस्य । (३७) पितरों का शुद्धि करने का कर्तव्य । ( ३८ ) विद्वान् और राजा का दुःख संकट बाधन का कर्तव्य । ( ३९–४४ ) सब विद्वानों का पवित्र करने का

कर्त्तव्य । (४५) यम राज्य में पितरों की स्वधा का रहस्य । (४६) समान और एक चित्त वाले जीवों की लक्ष्मी को अपने में प्राप्त करने की इच्छा (४६) मर्त्यों और देवों के दो मार्ग । छान्दोग्य प्रोक्त तीन मार्गों का विवेचन । ( ४८ ) देह में सन्तानोत्पादक दश प्राण युक्त वीर्य की प्रार्थना । अग्नि स्वरूप पति । राष्ट्र पक्ष में दशवीर नायकों से युक्त सैन्य और नायक का वर्णन । ( ४९ ) अवर, पर और मध्यम पितरों का वर्णन । ( ५० ) आंङ्गिरस, नवग्व, अथर्व, और सोम्य, पितरों अर्थात् पालकों का वर्णन, उनका रहस्य । ( ५१ ) वसिष्ठ पितरों का वर्णन और उनका रहस्य । ( ५२–५४ ) उनके मुख्य नायक सोम, राजा । ( ५५–५६ ) बर्हिषद् पितरों और सुविदत्र पितरों का वर्णन और उनका रहस्य । पितृ जनों को आदर से बुलाना और उनसे रक्षा की प्रार्थना । (५८) अग्निष्वात्त पितरों का वर्णन। उनके देवयान मार्ग और उनकी स्वधा से तृप्ति का रहस्य । (५९) उनके सर्ववीर रयि का रहस्य । ( ६० ) उनकी असुनीति तनु की कल्पना का रहस्य । अग्निष्वात्त, ऋतुमान् सोमपायी विप्रों का वर्णन । ( ६२ ) उक्त पालक जनों का सभ्यता पूर्वक आसनों पर विराजना । ( ६३ ) पालक जनों का ऐश्वर्य दान । उसका विविध रहस्य । ( ६५ ) उसका पितृ जनों से सम्बन्ध । ( ६६ ) उसका पितृ जनों का उत्तम पुष्टि कारक अन्नों का दान । (६७) विद्वानों और ऐश्वर्यवान् का पालक पुरुषों के प्रति कर्त्तव्य । ( ६८ ) पूर्व और पर, तथा पृथिवी लोक और प्रजाओं पर अधिष्ठित पालक जनों का वर्णन । ( ६९ ) ज्ञानोपदेष्टा, ज्ञानवेत्ता पितरों का वर्णन, ( ७० ) कामनावान् पितरों का वर्णन । ( ७० ) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से राजा का शत्रु के प्रति कर्त्तव्य । ( ७१ ) अपां फेन से नमुचि के शिर के काटने का रहस्य । ( ७२ ) अभिषिक्त राजा का कोप, बल द्वारा विपद्-विजय सम्पत् प्राप्ति । अध्यात्मिक मृत्युंजय और मधु अमृत पान का रहस्य । (७३) हंस के दृष्टान्त से अध्यात्म में ज्ञानी के परमानन्द रस का पान और राजा के ऐश्वर्य के उपभोग का वर्णन । ( ७४ ) हंस के दृष्टान्त

से शुचिषत् आत्मा और धर्मात्मा राजा का प्राणों और प्रजाओं से रस और ऐश्वर्य प्राप्ति का वर्णन। ( ७५ ) अन्न से पौष्टिक रस के समान राजा का सार भूत ऐश्वर्य और अध्यात्म में आनन्द रस की प्राप्ति। ( ७६ ) मूत्र, वीर्य तथा गर्भ जरायु के दृष्टान्त से दान और उत्सर्ग के महत्व का वर्णन। ( ७७ ) सत्य के बल पर प्रजापालक की सत्य में श्रद्धा और असत्य में अश्रद्धा का उपदेश। ( ७८ ) वेद द्वारा सद् असत् के विवेक का उपदेश। ( ७९ ) अत्तार के दृष्टान्त से शुद्ध उपाय से अर्थोपार्जन का उपदेश। ( ८० ) सीसे से शत्रु नाश करने और सूत्र से कपड़ा बुनने के दृष्टान्त से निर्बल राष्ट्र की वृद्धि का उपदेश। ( ८१ ) दो अश्वी और सरस्वती तीनों का राष्ट्र रक्षा और पोषण के साधनों का उत्पादन। ( ८२ ) उक्त तीनों का अन्नों से शरीर को वैद्यों के समान वेतनबद्ध भृत्यों द्वारा सुदृढ़ करना। (८३) बुद्धिमती स्त्री के समान राजसभा का राष्ट्र में ऐश्वर्य और शोभा बढ़ाते रहना। ( ८४ ) वीर्य द्वारा सन्ततिजनन के समान राजा की उत्पत्ति। शरीर से मल के समान दुष्ट पुरुषों का राष्ट्र से निर्वासन। ( ८५ ) अन्न से बल प्राप्त करने के समान सुरक्षक राजा की बल वृद्धि, उदर के भीतरी अंगों से शासकों की तुलना। ( ८६–८७ ) प्लीहा आदि भीतरी अंगों की तुलना। ( ८८ ) मुख से राज्य व्यवस्था की तुलना। ( ८९ ) राष्ट्र की चक्षु से तुलना। ( ९० ) समृद्ध राष्ट्र की नासिका से तुलना। ( ९१ ) राजा और आत्मा की बैल से तथा राष्ट्र की मुख से तुलना। ( ९२ ) पूर्ण राष्ट्र की शरीर से तुलना। ( ९३ ) योग द्वारा शरीर शोधन और चिकित्सा के समान ही राष्ट्र का शोधन और चिकित्सा। अंगों की सभाङ्गों से तुलना। पक्षान्तर में गृहस्थ का वर्णन। ( ९४ ) स्त्री के गर्भ में बालक के धारण के समान प्रजा के बीच राजा का धारण। (९५) दूध और मधु के समान अभिषेक द्वारा राजा का दोहन।

## विंशोऽध्यायः ( १२२–१७२ )

( १ ) राजा, सभापति का स्वरूप और उसका प्रजा के प्रति कर्तव्य।

( २ ) सर्व श्रेष्ठ पुरुष का सिंहासन पर विराजना और उसको प्रजा पालन के कर्तव्योपदेश। ( ३ ) राजा का अभिषेक। और उसके ९ प्रयोजन। ( ४ ) सम्राट् का नामकरण और उपाधिवितरण। सम्राट का तेजस्वी रूप सम्राट् और विराट् का आंख कान का सा सम्बन्ध। (६–८) पदाधिकारों और अध्यात्म शक्तियों की तुलना। ( १० ) अंगों में आत्मा के समान राष्ट्र के अंगों में राजा की प्रतिष्ठा। ( ११ ) तेतींस विद्वान् देवों की प्रतिष्ठा। ( १२ ) उनके परस्पर सहयोग से वृद्धि। ( १३ ) राजा के शरीर के अंगों की राजा की शक्तियों या अधिकारों से तुलना। ( १४–१८ ) विद्वानों का प्रजाजनों को असत्कर्मों और बन्धनों से छुड़ाना। ( १९ ) आप्त पुरुषों का ओषधिवत् रक्षक और शत्रुनाश होने की प्रार्थना। ( २० ) आप्त पुरुषों का पापों से छुड़ाने का कर्त्तव्य। ( २१ ) राजा का सर्वोत्तम पद। (२२) अभिषिक्त राजा का उपसर्पण और ऐश्वर्य धारण। (२३) सम्राट् की वैश्वानर ज्योति सूर्य के समान स्थिति। ( २४ ) प्रजापति के अधीन व्रतोपायन और दीक्षा ग्रहण। गुरु शिष्य सम्बन्ध का विवरण। ( २५–२६ ) ब्रह्म क्षत्र युक्त पुण्य लोक का वर्णन। ( २७ ) सम्राट् को आशीर्वाद। ( २८ ) दान शील उदार राजा का वर्णन। ( २९ ) समृद्ध राजा का आश्रय करना। ( ३० ) विद्वानों का राजा को उपदेश करने का धर्म। ( ३१ ) राजा का अभ्युक्षण, दीक्षा। ( ३२–३३ ) राजा का सरस्वती ( राजसभा ) इन्द्र, और सुत्रामा पद पर स्थापन भूताधिपति का पद। ( ३४ ) राष्ट्र शरीर के प्रधान शक्तियों के रक्षण कर्त्ता के पद पर नियुक्ति। ( ३६ ) शत्रु विजय का आदेश। ( ३७ ) नराशंस, तनूनपात् पद, उसके कर्त्तव्य। ( ३८ ) गोत्रभित्, वज्रबाहु राजा का स्वरूप। ( ३९ ) सूर्य के समान हरिवान् इन्द्र राजा का स्वरूप। ( ४० ) पति को स्त्रियों के समान प्रजाओं और सेनाओं का अपना नायक वरण। ( ४१ ) उषा, नक्त नाम दो संस्थाओं का नायकस्वीकरण। ( ४२ ) अग्नि और वायु नाम दो मुख्याधिकारियों का राजा को स्वीकार। ( ४३ ) सरस्वती, इडा, भारती

तीनों देवियों का राजा को वरण। ( ४४ ) तेजस्वी पुरुष को सैनापत्य पद। ( ४५ ) वट आदि के समान वनस्पति पद। ( ४६ ) इन्द्र, सेनापति पद के योग्य पुरुष का लक्षण। (४७) इन्द्र सुत्रमा के कर्तव्य। (५५) अग्नि के समान तेजस्वी पद पर अभिषिक्त नायक के लक्षण। (५६–६०) सरस्वती और अश्वियों के कर्तव्य। ( ६१–७७ ) उषा, नक्त, अश्वि, तीन देवियें, सविता, वरुण, इन सबका इन्द्र पद को पुष्ट करना। (७८) अग्रणी नायक का स्वरूप। ( ७९ ) उसके कर्तव्य। ( ८० ) राजा की बल वीर्य पुष्टि। ( ८१ ) अश्वियों के कर्तव्य। ( ८२ ) मेघ के समान राजा के कर्तव्य। ( ८३ ) अधिकारियों के कर्तव्य। ( ८४–८६ ) विद्वत्सभा के कर्तव्य। ( ८७–९० ) इन्द्र सुत्रामा का आदर।

## एकविंशोऽध्यायः ( १७३–२२७ )

( १ ) प्रजा की प्रार्थना सुनने का राजा का कर्तव्य, पक्षान्तर में परमेश्वर का स्मरण। ( २ ) प्रजा की शरण याचना, राजा का अभय दान। ( ३ ) प्रजा के परस्पर कलहों का दूर करना राजा का कर्तव्य। (४) उत्तम नायक को प्राप्त करने की प्रार्थना। ( ५–७ ) राजसभा और राज्य व्यवस्था की नौका के साथ तुलना, कर्तव्य दृष्टि से उसका उत्तम स्वरूप। ( ८–९ ) मित्र और वरुण पदों के कर्तव्य। ( १०–११ ) अश्वों, अश्वारोहियों और ज्ञानवान् पुरुषों के लक्षण। ( १२–२२ ) आप्री देवों का वर्णन। अग्नि, तनूनपात्, सोम, बर्हिः, द्वार उषासानक्ता, दैव्य होता, इड़ा आदि तीन देवियें, त्वष्टा, वनस्पति, वरुण। इन पदाधिकारों के के कर्तव्य, बल और आवश्यक सदाचार। तपःसामर्थ्य का वर्णन। ( २३–२८ ) संवत्सर के ६ ऋतु भेद से यज्ञ प्रजापति और प्रजापालक राजा के ६ स्वरूपों का वर्णन। ( २९–४१ ) अधिकार प्रदान। और नाना दृष्टान्तों से उनके और उनके सहायकों के कर्तव्यों का वर्णन। अग्नि, तनूनपात्, नराशंस, बर्हि, द्वार, सरस्वती, उषा, नक्त, दैव्य होता

तीन देवी, त्वष्टा, वनस्पति, अश्विद्वय, इन पदाधिकारियों को अधिकार प्रदान। (४२-४७) अधिकार दान, उनके सहायकों के कर्तव्य। महीधर आदि के किये बकरे की बलिपरक अर्थ का सप्रमाण खण्डन। सरस्वती नाम विद्वत्सभा को अधिकार, उसके सहायकों के कर्तव्य। छाग, मेष, ऋषभ और उनके हवि, मद, तथा उनके पार्श्व, कटि, प्रजनन, आदि अंगों के अवदान करने का रहस्य। ( ४७-५८ ) स्विष्टकृत् अग्नि का विवरण। ( ४८-५८ ) उक्त अधिकारियों के स्थान, मान, पद और उनका ऐश्वर्य वृद्धि का कर्तव्य। ( ५९ ) होता नाम अग्रणी नायक का वरण। ( ६० ) वनस्पति अधिकारी का वरण। ( ६१ ) वृत विद्वानों के कर्तव्य।

## द्वाविंशोऽध्यायः ( पृ० २२८२५५ )

( १ ) राजा का राष्ट्र में स्थान और उसका कर्तव्य। ( २ ) परमेश्वर की व्यापक शक्ति के समान राजा की राज्य-व्यवस्था का वर्णन। ( ३ ) परमेश्वर के गुणों का वर्णन, पक्षान्तर में राजा के गुणों का वर्णन। (४) राजा को और नायक विद्वानों को अधिकार प्रदान, (५) अधिकारपदों के लिये प्रोक्षण अभिषेक और आदर योग्य पुरुषों का वर्णन। (६) आदरणीय नायक पुरुष का नाना अवस्थाओं में भी उसका ४९ दशाओं में आदर सत्कार और रक्षा करने का उपदेश। ( ९ ) गायत्री। (१०-१२) हिरण्यपाणि सविता। आज्ञापक का स्वरूप। ( १५-१६ ) अग्नि अर्थात् विद्वान् दूत का वर्णन, अध्यात्म में ज्ञानी उपासक का वर्णन। ( १८ ) तेजस्वी पुरुष की उत्पत्ति, और उसका पृथ्वी के पालन का कर्तव्य। (१९) अश्व के दृष्टान्त से नायक भोक्ता आत्मा और परमेश्वर के १३ नाम, उनसे सूचित गुण, कर्तव्य और उन गुणों के कारण उसका अभिषेक। ( २० ) प्रभु के 'क' आदि नाना गुण, कर्मसूचक नाम और उनका आदर। (२१) नायक सखा। ( २२ ) आदर्श राष्ट्र की समृद्धि की कामना। ( २३ ) प्राण आदि शारीरिक शक्तियों की साधना। ( २४ ) प्राची आदि ६

दिशाओं और १२ उपदिशाओं से राष्ट्र की रक्षा। ( २५ ) नाना प्रकार के जलों के दृष्टान्त से, गुण भेद से नाना गुणों वाली सेनाओं और प्रजाओं का वर्णन। ( २६ ) वात, धूम, अभ्र आदि नाना मेघ की दशाओं की तुलना के साथ २ नायक के नाना कर्मों का वर्णन। ( २७ ) अग्नि आदि पदार्थों की साधना। ( २८–३१ ) नक्षत्र आदि के सुखकारी होने की भावना। ( ३२–३३ ) यज्ञ से अन्न, ज्ञान, वल आदि की उत्पत्ति।

## त्रयोविंशोऽध्यायः ( पृ० २५६–३०१ )

( १ ) हिरण्यगर्भ परमेश्वर का वर्णन, पक्षान्तर में राजा का वर्णन। ( २ ) व्यवस्था में बद्ध राजा की सूर्य और वायु और अन्तरिक्ष से तुलना। राजा का प्रजापति पद। ( ३ ) ईश्वर और राजा के महान् ऐश्वर्य का वर्णन। ( ४ ) व्यवस्थाबद्ध राजा का चन्द्र, अग्नि, नक्षत्रों से तुलित महान् सामर्थ्यों का वर्णन। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। ( ५ ) दोषरहित तेजस्वी राजा की नियुक्ति, पक्षान्तर में परमेश्वर की योग द्वारा उपासना। पक्षान्तर में सूर्य का वर्णन। ( ६ ) रथ में जुते अश्वों के समान दो नायकों की नियुक्ति। ( ७ ) राजा को सन्मार्ग पर लेजाने के लिये उसके स्तोतृ नायक विद्वान् की नियुक्ति। ( ८ ) गायत्र, त्रैष्टुभ, और जागत तीन छन्दों से वसु, रुद्र और आदित्यों द्वारा स्तवन। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन द्वारा राजा की कीर्त्ति। तेजस्वी, शक्तिमान् राजा को राष्ट्रैश्वर्य भोग की आज्ञा। ( ९–१२ ) ब्रह्मोद्य। ब्रह्म और प्रभु राजा की शक्ति विषयक प्रश्नोत्तर। सूर्य, अग्नि, भूमि, द्यौः, अश्व, अवि और रात्रि विषयक प्रश्नोत्तर। ( १३ ) राजा की शक्ति को पुष्ट करने के लिये सेनापति आदि पदाधिकारियों का उत्तम उद्योग। ( १४ ) रथ अश्व के दृष्टान्त से ब्रह्मा नाम विद्वान् के कर्तव्य और स्थिति का वर्णन। पक्षान्तर में अध्यात्म विवेचन। ( १५–१६ ) ऐश्वर्यवान् स्वामी और अध्यात्म में आत्मा का वर्णन। ( १७ ) अग्नि, वायु, सूर्य के दृष्टान्त से विजयाभिलाषी राजा के कर्तव्यों का उपदेश।

अग्नि, वायु, सूर्य तीनों के पशु कहाने का रहस्य। (१८) प्राण आदि शक्तियों का उपयोग, राज्यलक्ष्मी और वसुधा का वीरभोग्य होना। काम्पीलवासिनी सुभद्रिका और सोने वाले अश्वक का रहस्य। पक्षान्तर में पतिंवरा कन्या तथा अध्यात्म में स्पष्ट विवरण (१९) गणपति, परमेश्वर, विद्वान्, राजा और गृहपति का वर्णन, गर्भध परमेश्वर और गर्भध प्रकृति का रहस्य। (२०) राजा प्रजा की चतुर्वर्ग-साधना। गृहस्थ का चतुष्पाद् स्वरूप। महीधर के अर्थों की असंगति। दुष्टों के प्रति राजा का व्यवहार। गृहस्थ पक्ष में चरकादि वैद्यक शास्त्रोक्त प्रजोत्पत्ति विद्या का मूल निदर्शन। (२२) समृद्ध, शक्तिमती प्रजा के ऊपर बलवान् राजा की स्थापना। दम्पति पक्ष में दोनों स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्य। (२३) शक्तिशाली राजा का स्वरूप और उसका मुख्य व्रत वाणी पर वश करना। दम्पति पक्ष में शक्तिमान् पुरुष का स्त्री के हृदय का आकर्षक और एक स्त्री व्रत होने का उपदेश। (२४) माता पिता का प्रधान पद और स्नेह से रक्षार्थ ही राष्ट्र की समृद्धि के आधार पर राजा का सैन्य बल का होता है। मन्त्रोक्त मुष्टि, गभ, वृक्ष आदि शब्दों का रहस्य विवेक। गृहस्थ पक्ष में माता पिता का उच्च पद, और ऐश्वर्य या स्त्री के आधार पर पारिवारिक स्नेह की व्यवस्था। (२५) राष्ट्र प्रजाजन की माता राजसभा और पिता राजा दोनों का विस्तृत राज्य पर सुखी रहना और धुरन्धर वेदवित् ब्रह्मा की जिम्मेवारी और वाणी पर वश। (२६–२७) पर्वत पर बोझा ढोने वाले के समान राष्ट्र भार के उठानेवाले की जिम्मेवारी। और वायु वेग से छाज द्वारा अन्न शोधन करने वाले के समान राष्ट्र का कण्टकशोधन। दम्पति पक्ष में गृहस्थ पुरुष के उत्तम कर्तव्य। (२८) गाय के खुरों की उपमा से ब्राह्म और क्षात्र बलों का पृथ्वी पालन में उपयोग। इसी प्रकार गृहपति के कर्तव्य। (२९) न्यायशील पुरुषों को सभा में सत्य निर्णय करने का उपदेश। मन्त्रोक्त 'नारी' पद का रहस्य। (३०) हरिण और खेत तथा स्वामी और दासी के दृष्टान्त से प्रबल राजा की धन

लालसा से प्रजा की समृद्धि के नाश हो जाने की चेतावनी। ( ३१ ) हरिण और यव तथा भृत्य और रानी के भोग के दृष्टान्त से दुष्ट राजा के द्वारा उत्तम प्रजा के नाश हो जाने की चेतावनी। ( ३२ ) विजयशील राजा की स्थापना। ( ३३ ) गायत्री आदि छन्दों के नामों से नाना प्रकार की उत्तम वाणियों से राजा के हृदय की शान्ति। ( ३४-३५ ) द्विपदा आदि और महानाम्नी आदि वेदवाणियों से स्वामी का शान्तिकरण। इसी प्रकार गायत्री, द्विपदा महानाम्नी आदि भिन्न २ प्रजाओं का वर्णन। ( ३७ ) सेनाओं के शस्त्रों द्वारा विजयी पुरुषों की पालक शक्तियों का शान्ति प्रयोग। इसी प्रकार उत्तम स्त्रियों द्वारा उत्तम पतियों की हृदय सुख शान्ति। ( ३७ ) उत्तम स्त्रियों के गुण, एवं उत्तम प्रजाओं के अपने स्वामी को प्रसन्न रखने और शान्त रखने का कर्तव्य। (३८) राजा का प्रजा के भोजनादि सुख का प्रबन्ध करना। ( ३९ ) प्रजाओं में शान्ति विधायक शासक का लक्षण। ( ४० ) विद्वान् सदस्यों का शान्ति विधान का कर्तव्य। ( ४१ ) सवंत्सर के अंग भूत दिन रात्रि के समान नाना राज्याङ्गों और उनके अध्यक्षों के कर्तव्य। ( ४२ ) राष्ट्र के पालक पुरुषों का कार्य, राष्ट्र का शासन और उनका शान्तिकारिणी व्यवस्थाएं बनाना। ( ४३ ) सूर्य, वायु, आकाश और नक्षत्रों के समान तेजस्वी, बलवान्, और उदार और दृढ़ स्थिर लोगों से राष्ट्र की न्यूनताएं दूर करना। ( ४४ ) सर्वाङ्ग शान्ति। ( ४५-४८ ) पुनः ब्रह्मोद्य। सूर्य चन्द्र अग्नि, भूमि, ब्रह्म, द्यौ, इन्द्र, वाणी के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर। (४९-५०) व्यापक परमेश्वर के तीन चरणों में विश्व की स्थिति, (५१-५२) पुरुष अर्थात् जीव के आश्रय तत्व। ( ५३-५४ ) अ० २३। ११। १२। के समान प्रश्न। पिशंगिला, कुरु पिशंगिला, शश, और अहि के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर और उनका रहस्य विवेचन। ( ५७-५८ ) जगत् रूप यज्ञ के आश्रय, तथा कारण पदार्थ, संचालक शक्तियों के सम्बन्ध में प्रश्न-उत्तर। ( ५९-६० ) सर्वज्ञ विषयक प्रश्न। ( ६१-६२ ) पृथिवी के पर अन्त, भुवन की

नाभि, अश्व के रेतस् और वाक् के परम व्योम सम्बन्धी प्रश्न और उनके उत्तर और रहस्य का स्पष्टी करण। ( ६३ ) प्रजापति की उत्पत्ति, पक्षान्तर में राजा और परमेश्वर के प्रजापति नाम होने का कारण। ( ६४ ) होता द्वारा प्रजा पालक राजा के अधीन ऐश्वर्य युक्त राज्य का समर्पण। ( ६५ ) प्रजापति का अद्वितीय सामर्थ्य और उससे ऐश्वर्य की प्रार्थना।

## चतुर्विंशोऽध्यायः ( पृ० ३०२३३१ )

( १-२ ) राजा के अधीन राष्ट्र के १६ पर्यङ्गों का वर्णन। (३-१९) अन्यान्य प्रत्यंगों तथा अधीन रहने वाले नाना विभागों के भृत्यों और उनके विशेष पोशाकों और चिन्हों का विवरण। ( २४ ) ऋतु के अनुसार पक्षियों का वर्णन और उनसे राष्ट्र के हिताहित ज्ञान करने का उपदेश। ( २१ ) समुद्र, मेघ, जल, आदि से सम्बद्ध जीवों के ज्ञान का उपदेश। ( २१—२९ ) भिन्न २ गुणों और विशेष हुनरों के लिये भिन्न २ प्रकार के नाना पक्षियों और जानवरों के चरित्रों का अध्ययन और संग्रह।

## पञ्चविंशोऽध्यायः ( ३३२-३७२ )

( १ ) नाना प्रकार के शिल्पों तथा गुणों और रहस्यमय पदार्थों के ज्ञान के लिये शरीर गत अंगों का दृष्टान्त रूप से उल्लेख। ( २-३ ) वाह्य जगत् की शक्तियों की देहगत शक्तियों से तुलना। ( ४-५ ) शरीर गत पसुलियों से राष्ट्र के अधिकारियों की तुलना। ( ६ ) देह के पीठ के मोहरों से राज्याधिकारियों की तुलना और उनके कर्त्तव्य विवेचन। उदर में स्थित अंगों से राष्ट्र के अन्य पदार्थों की तुलना। अथवा उनकी शक्तियों से उनके उपयोगों की आलोचना। ( ८ ) शरीर के अंगों से अन्य पदार्थों की तुलना और उनके गुणों का विश्लेषण। ( ९ ) शरीर की और जगत् की प्रबल शक्तियों की तुलना। अपान और राजा की तुलना। (१०-१३) प्रजापति का वर्णन। परमेश्वर की उपासना ( १४-१५ ) विद्वानों से

प्रार्थना। ( १६ ) उनका आदर सत्कार। ( १७ ) सुखकारी ओषधि, माता पिता, भूमि, सूर्य, विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष और यज्ञ साधनों से सबसे उत्तम सुख की कामना। ( १८–१९ ) ईश्वरोपासना। वायुओं के समान मातृ भूमि के भक्त वीरों का वर्णन। उनके लक्षण और कर्तव्य। ( २१ ) उत्तम वचन का सुनना, उत्तम दर्शन, स्थिर अंगों से सुख पूर्वक जीवन भोग की प्रार्थना। ( २२ ) शत वर्ष के पूर्ण जीवन की कामना। ( २३ ) अदिति के ९ प्रकार। ( २४ ) ऐश्वर्यवान् बलवान् विद्वान् पुरुष के सामर्थ्यों का वर्णन। ( २५ ) राजा की दी वृत्ति को मुख्य रूप से मानना। अधीन वृत्तिग्राहियों के कर्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर और विद्वान दोनों की स्तुति। ( २६–२७ ) प्रधान वीर पुरुषों के कर्तव्य। पूषा के विश्वदेव्य भाग, छाग और उसका अश्व के साथ आगे चलने का रहस्य। (२८) यज्ञ के होतादि कार्य कर्त्ताओं के समान राष्ट्र के प्रधान कार्य कर्त्ताओं का कर्तव्य। ( २९ ) राज्य के राज्ञ सहायकों के सहोद्योग की आंकाक्षा। ( ३० ) उत्तम कार्यकर्त्ताओं की कार्य में नियुक्ति। ( ३१ ) उनकी प्रधान शक्ति और अधिकार योग्य वेतन पर नियुक्ति। अश्व की रशना, और रज्जु का रहस्य। ( ३२ ) राष्ट्र के सब कार्यों को विद्वानों के हाथ में रखने का उपदेश। अश्व के मांस को मक्षिका के खाने, उसके स्वरु स्वधिति में लगने, शमिता के नखों और हाथों में लगने का रहस्य। ( ३३ ) दुष्टों का दमन। ( ३४ ) राष्ट्र की उपज का सदुपयोग और संग्रह। पक्षान्तर में ब्रह्मचर्य की रक्षा का उपदेश। ( ३५ ) वैश्यों, क्षत्रियों और विद्वान् परिव्राजकों के सहोद्योग की आकांक्षा। पक्षान्तार में ब्रह्मचारियों के व्रत की विवेचना। उनका भिक्षा व्रत। परिपक्व वाजी का रहस्य। ( ३६ ) उत्तम राष्ट्र के शोभा जनक भूषण, अध्यात्म में देह में स्थित आत्मा के विशेष गुण और शक्तियों का वर्णन। ( ३७ ) संकटों से रक्षा की चेतावनी और उनके उद्योग। ( ३८–३९ ) राजा के सब खान पान विहार आदि पर विद्वानों का निरीक्षण ( ४० ) वेद ज्ञान द्वारा

राष्ट्र की बाधाओं को दूर करना। ( ४१ ) राष्ट्र के २४ अंगों को दोष रहित करना। ( ४२ ) राष्ट्र के कार्यों का विभाग और उनपर योग्य विद्वान् अध्यक्ष की नियुक्ति। ( ४३ ) सेना आदि द्वारा राष्ट्र प्रजा को व्यर्थ न सताने का उपदेश। उत्तम मार्गों, और उत्तम व्यवस्थाओं से राष्ट्र, राज्य और राजा की दीर्घायु। उत्तम पदों पर रथ में अश्व के समान उत्तम पुरुषों की नियुक्ति। ( ४५ ) उत्तम क्षात्र बल की प्राप्ति। ( ४६ ) राष्ट्र को दृढ़ बनाने का उद्योग। ( ४७–४८ ) राजा को प्रजाप्रिय और तेजस्वी होने का उपदेश।

## षड्विंशोऽध्यायः ( ३७३–३८६ )

( १ ) अग्नि पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, आपः, वरुण, इनके समान परस्पर राजा प्रजा का प्रेम से उपकारी होकर रहना। सात संसत्, और आठवीं भूतसाधनी संस्था का वर्णन। उत्तम ज्ञान प्राप्ति का उपदेश। ( २ ) सबके लिये कल्याणी वाणी का उपदेश। वृत्ति दाता और विद्वानों का प्रिय और पूर्णकाम हो। ( ३ ) बृहस्पति पद पर योग्य पुरुष का रूप। पक्षान्तर में परमेश्वर का वरण। ( ४–५ ) सभापति पद पर वाग्मी विद्वान् का वरण, उसके साथ विद्वानों का साहाय्य। ( ६–७–८ ) वैश्वानर पद पर योग्य पुरुष का वरण। उसका लक्षण। ( ९ ) अग्नि पद पर योग्य पुरुष की स्थापना। ( १० ) महेन्द्र पद पर योग्य विद्वान् की स्थापना। ( ११–२६ ) उत्तम विद्वानों, नायकों और शासकों से भिन्न २ कार्यों की कामना।

## सप्तविंशोऽध्यायः ( पृ० ३८७–४१० )

( १–७ ) अग्नि नाम विद्वान् नायक के कर्तव्य और लक्षण, (८–९) बृहस्पति पद पर स्थित विद्वान् का वर्णन ( १०–२२ ) अग्नि और वाग्मी नाम विद्वानों का वर्णन। ( २३–२४ ) वायु नाम सेनापति का वर्णन। ( २५–२६ ) 'क' प्रजापति का वर्णन। ( २७–३३ ) नियुत्वान् वायु,

सेनापति का वर्णन। ( ३५–४२ ) इन्द्र नायक का वर्णन। ( ४३–४४ ) अग्नि रूप से नायक राजा का वर्णन उससे रक्षा की प्रार्थना। ( ४५ ) संवत्सर के पांच रूप और तदनुसार प्रजा पालन के ५ रूप।

## अष्टाविंशोऽध्यायः ( ४११–४४४ )

( १–३४ ) होता द्वारा भिन्न २ अधिकारियों की नियुक्ति और उनके विशेष आवश्यक लक्षण, और अधिकार और शक्तियों का वर्णन। ( ३५–४५ ) उनका इन्द्र सेना नायक और उसके ऐश्वर्य को बढ़ाने का कर्तव्य। ( ४६ ) अग्नि होता का वरण।

## एकोनत्रिंशोऽध्यायः ( ४४५–४८५ )

( १ ) घृत से तीव्र अग्नि या जाठराग्नि के दृष्टान्त से विवेकी विद्वान् का वर्णन। ( २ ) संग्राम आदि के अवसरों पर संघ बना कर काम करने का उपदेश। ( ३ ) स्तुति योग्य, वन्दन करने योग्य, प्रसन्नमुख योग्य पुरुष की उत्तम पद पर नियुक्ति। ( ४ ) राष्ट्र प्रजा का विस्तृत करना और उसको व्यवस्थित रखना। पक्षान्तरमें विद्युत् का वर्णन। ( ५ ) गृह के द्वारों से देवियों की तुलना। दोनों पक्षों में श्लिष्ट विशेषण। पक्षान्तर में शास्त्र विजयी सेनाओं का वर्णन। ( ६ ) देह में प्राण और उदान के समान मित्र और वरुण का वर्णन। पक्षान्तर में दिन रात्रि और स्त्री पुरुषों के कर्तव्यों का वर्णन। ( ७ ) उपदेशक और अध्यापक और पक्षान्तर में स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्यों का वर्णन। ( ८ ) इडा, भारती, सरस्वती आदि संस्थाओं का कर्तव्य। ( ९ ) गृहस्थ में, राष्ट्र में और उपासना में क्रम से योग्य पुरुष, शिल्पी, और उपासकों की नियुक्ति। ( १० ) तेजस्वी सूर्य और आश्रय वृक्ष के दृष्टान्त से, नायक, मुख्य पुरुष का भृत्यों के प्रति कर्तव्य। ( ११ ) अग्रणी का कर्तव्य। ( १२ ) उदय होते सूर्य, वाज, और वेगवान् हरिण के समान सेनानायक, का स्तुत्य रूप। ( १३ ) राष्ट्र

के अनुयोक्ता त्रिवेदज्ञ पुरुष का होना, उसका आज्ञापक होना। पक्षान्तर में अध्यात्म देह व्यवस्था का वर्णन। ( १४ ) नायक और आत्मा के यम, आदित्य, और अर्वा तीन नाम। उसके तीन बन्धन। ( १५ ) उसके तीन स्थानों पर तीन २ बन्धन। ( १६ ) उसका सर्वोत्कृष्ट रूप। ( १७ ) व्यवस्थाबद्ध नायक की अश्व से तुलना। उत्तम मार्गों से मुख्य व्यक्ति को जाने का आदेश। अध्यात्म में उन्नति मार्ग का अनुसरण। ( १८ ) विजिगीषु का उत्तम रूप, ओषधियों के ग्रास का रहस्य। अध्यात्म में ओषधिमय जीवनप्रद भोजन का उपदेश। ( १९ ) नायक के प्रति सबको सख्य भाव से रहने की आज्ञा। ( २० ) मुख्य अध्यक्ष का महान् सामर्थ्य, उसके हिरण्यशृंग और अयःपाद होने का रहस्य। ( २१ ) वीरबाहु चुस्त शूर वीरों को दल बद्ध दस्ते बना कर युद्ध करने का आदेश। अध्यात्म में योगियों का वर्णन। ( २२ ) बलवान् शरीर और मन होने और जंगलों में सेना दलों की स्थापना। ( २३ ) शत्रु उच्छेदक नायक का वर्णन। 'अज' का रहस्य। उत्तम पद पर स्थित पुरुष को माता पिता के आदर का उपदेश। अध्यात्म में मोक्ष प्राप्त पुरुष को प्रकृति परमेश्वर का दर्शन। ( २५ ) नायक को विद्वानों को संगठन करने का आदेश। दूत का कर्तव्य। ( २६ ) तनूनपात् नामक विद्वान् के कर्तव्य। ज्ञान और उपास्य और ग्राह्य ज्ञानों को उत्तम भाषा में प्रकट करने का उपदेश। ( २७ ) उत्तम प्रशंसनीय नायक, का महान् सामर्थ्य कि उसके आश्रय में अन्य विद्वान् रहें। (२८) दानशील संगठन के केन्द्रस्थ व्यक्ति के कर्तव्य। (२९) प्रथम संस्थापक का कर्तव्य। आसन के समान विस्तृत होकर अन्यों का आश्रय होना। ( ३० ) द्वारों के दृष्टान्त से गृह देवियों के कर्तव्यों का वर्णन। पक्षान्तर में सेनाओं के कर्तव्य। 'अयन' शब्द का समुचित अर्थ। (३१) दिन रात्रि के समान स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। ( ३२ ) मुख्य विद्वानों या स्त्री पुरुषों का कर्तव्य। ज्ञानोपदेश। (३३) भारती आदि तीन संस्थाओं के कर्तव्य। ( ३४ ) आकाश या सूर्य और पृथिवी के समान राजप्रजा

वर्गों को नाना ऐश्वर्यों से सुशोभित करने का कर्तव्य । (२५) ऋत्वनुसार भोजनों की व्यवस्था । ( २६ ) यज्ञाग्नि की ज्वाला से हव्य के विस्तार के समान राजा के सत्य, न्यायवाणी पर समस्त प्रजाओं का सुख भोग । ( २७ ) तेजस्वी सूर्य के समान प्रकाशक विद्वानों को तेजस्वी ज्ञान दाता होने का आदेश । ( २८ ) कवच, शस्त्रधर की मेघ से तुलना । ( २९ ) धनुर्बल से विजय का उपदेश । ( ४० ) प्रिय पत्नी के समान धनुष की डोरी की शक्ति । ( ४१ ) उसका शत्रुनाशकारी कार्य । ( ४२ ) पुत्र पिता की तूणीर से तुलना । ( ४३ ) घोड़ों की बागों का वर्णन । अध्यात्म रहस्य विवेक । (४४) वीरों का वर्णन । ( ४५ ) रथ का वर्णन । ( ४६ ) शक्तिमान् पालक वीर पुरुषों का वर्णन । ( ४७ ) विद्वान् ब्राह्मणों के लक्षण । ( ४८ ) तीव्र वाणों से सुख की आशा । उनका वर्णन । ( ४९ ) शरीर के कठोर होने का उपदेश । ( ५० ) कशा का वर्णन । ( ५१ ) हाथबन्द कवच. और कुशल वीरका श्लेष से वर्णन । ( ५२ ) वनस्पति, धनुर्दण्ड और नायक का वर्णन । ( ५३ ) नाना दृष्टान्तों से सार भाग प्राप्त करने का उपदेश । ( ५४–५७ ) दुन्दुभि और वीर पुरुष का श्लिष्ट वर्णन । ( ५८–५९ ) भिन्न २ अधिकारियों के अधीन नियुक्त भिन्न २ भृत्यों के विभेदक चिन्ह और लक्षण । भिन्न २ उपसमितियों का कपाल भेद से भेद वर्णन । ८, ११, आदि 'कपालों' का रहस्य ।

## त्रिंशोऽध्यायः ( ४८५–५१५ )

( १ ) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये यज्ञ पति की स्थापना । वाणी के मधुर होने की प्रार्थना । सर्व प्रेरक सर्वोत्पादक प्रभु के तेज का ध्यान धारण और स्थापन । गायत्री । (३) उत्तमों के ग्रहण बुरों के त्याग का उपदेश । ( ४ ) अद्भुत ऐश्वर्य के विभाजक, परमेश्वर और सर्वशासक राजा की स्तुति । (५–२१) ब्रह्म ज्ञानि, क्षात्र बल, मरुद् (वैश्य) विज्ञान आदि नाना

ग्राह्य शिल्प पदार्थों की वृद्धि और उनके लिये ब्राह्मण, क्षत्रियादि उन २ पदार्थों के योग्यपुरुषों की राष्ट्र रक्षा के लिये नियुक्ति। त्याज्य कार्यों के लिये उनके कर्त्ताओं को दण्ड का विधान। ( २२ ) अति विचित्र, विकृत पुरुषों की विशेष व्यवस्था।

## एकत्रिंशोऽध्यायः ( ५१६–५३३ )

पुरुष सूक्तम्। ( १ ) सहस्रशिर, सहस्र आंखों और सहस्र पाओं वाले पुरुष का वर्णन। इसका रहस्य। उसका भूमि को व्याप कर दश अंगुल ऊपर विराजने का रहस्य। ( २ ) पुरुष, भूत, भव्य, अमृत के ईशान और अन्नातिरोही। ( ३ ) उसकी महिमा और चार पाद। त्रिपात् पुरुष का उत्क्रमण और मापन। ( ४ ) विराट् की उत्पत्ति। ( ६ ) यज्ञ प्रजापति से आज्यसम्भरण, पशुओं की उत्पत्ति। ( ७ ) यज्ञ परमेश्वर से समस्त वेदों की उत्पत्ति। उससे अश्वों और गवादि पशुओं की उत्पत्ति। ( ९ ) उस पुरुष का सर्वोपरि अभिषेक और विद्वानों द्वारा पूजा। ( १०–११ ) पुरुष प्रजापति की विविध अंग कल्पना और वर्ण विषयक प्रश्न और उत्तर। ( १२ ) चन्द्र सूर्य वायु अग्नि की कल्पना। ( १३ ) अन्तरिक्ष, द्यौ, भूमि दिशा और लोकों की कल्पनायें। ( १४ ) संवत्सर यज्ञ का स्वरूप। ( १४ ) उसकी तीन परिधियें और सात समिधाएं। यज्ञपुरुष के बन्धन का रहस्य। ( १६ ) यज्ञपुरुष से यज्ञकाण्ड का यजन। साध्य विद्वानों की परम सुख प्राप्ति। (१७) मानुष जीव सर्ग। (१८) आदित्य वर्ण पुरुष का वर्णन। ( १९ ) समस्त भुवनों का आश्रय प्रजापति। ( २० ) ब्राह्मी रुक्। ( २१ ) देवों का वश कर्त्ता विद्वान् ब्राह्मण। ( २२ ) प्रजापति की दो पत्नी लक्ष्मी, और श्री। इनका रहस्य। समस्त अध्याय की राजपक्ष में योजना।

## द्वात्रिंशोऽध्यायः ( ५३४–५४६ )

( १ ) परमेश्वर के अग्नि आदित्य, वायु चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः;

प्रजापति आदि नाना नाम। ( २ ) उससे समस्त संसार की उत्पत्ति। ( ३ ) उसका कोई परिमाण नहीं। ( ४ ) उसका सर्वतोमुख वर्णन। उसका त्रिज्योति पोडषी स्वरूप। ( ६ ) सबका धारक प्रभु। ( ७ ) वह सबका संचालक और सूर्यादि का प्रकाशक। ( ८ ) वह सर्वाश्रय, सर्व व्यापक, सर्वत्र ओत प्रोत है। ( ९ ) उस परम प्रभु का ज्ञाता सबके पिता का पिता है। ( १० ) वह सबका बन्धु, विधाता, सर्वज्ञ सर्व सुख प्रद अमृत है। ( ११ ) वह व्यापक ही प्रकृति में भी व्यापक है। ( १२ ) तन्मय जगत्। ( १३ ) अद्भुत सदसस्पति। ( १४–१५ ) उससे मेधा बुद्धि की प्रार्थना। ( १६ ) ब्रह्म, क्षत्र दोनों के लिये ऐश्वर्य की प्रार्थना। समस्त मन्त्रों की राजपक्ष में योजना।

## त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ( ५४७–६०९ )

( १–२ ) प्रजापालक विद्वान् अग्नियों का वर्णन। ( ३—४ ) विद्वान् मित्रों और श्रेष्ठों का आदर करने का उपदेश। सूर्य चन्द्र या अग्नि सूर्य के समान दो शक्तियों का संसारपालन। ( ६ ) विद्वान् की शिशु से तुलना। (७) ३३३९ देवों का रहस्य। (८) मूर्धन्य अग्रणी और परमेश्वर का वर्णन। ( ९ ) अग्रणी नायक का दुष्ट संहार करने का कर्तव्य। ( १० ) वायु सहित सूर्य के जलपान के दृष्टान्त से राजा की ऐश्वर्य प्राप्ति। ( ११ ) वीर्य सेचन से पुत्रोत्पत्ति के समान जल सेचन से अन्नादि और राज सामर्थ्य से बल की उत्पत्ति का वर्णन। ( १२ ) सौभाग्य वृद्धि के लिये उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त करने, दम्पति सम्बन्ध को सुदृढ़ करने और शत्रुओं के तेजों को जीतने का आदेश। (१३) तेजस्वी पुरुष का सूर्य और विद्युत् के समान वरण। ( १४ ) पशुनाशकों के दण्डकर्त्ता जितेन्द्रियों के आदर करने का उपदेश। ( १५ ) बहुश्रुत पुरुष को प्रजा के व्यवहारों को सुनने का आदेश। (१६) अग्रणी नायक सबको सुखकर और दयाशील हो। ( १७ ) मुख्य पुरुष के उत्तम शासन में प्रजा निरपराध रहें और

वह प्रजा का अच्छा रक्षक रहे। ( १८ ) जीवन वर्धक जलों के समान विद्वान जन प्रमुख पुरुष की वृद्धि करें। ( १९ ) गौओं, रश्मियों, सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से स्त्री पुरुषों और राजा प्रजा के कर्तव्य। पक्षान्तर में उत्तम वचनों और आभूषणों से सजाने का उपदेश। (२१) मेध के समान उदार पुरुष को मुख्य पद पर स्थापन करने का उपदेश। ( २२ ) शासक का आदर्श सूर्य। ( २३ ) सर्वोपास्य परमेश्वर की उपासना। ( २३ ) सूर्यवत् उत्साही नायक। ( २४ ) नायक सेनापति को शत्रु नाश के नाना प्रकार के उपदेश। ( २५–२७ ) सहसी पुरुष के कर्तव्य। ( २८ ) राजा की स्तुति प्रजाओं को समृद्ध बनाने में है। पक्षान्तर में आचार्य का वर्णन। ( २६ ) बलवान् का सहयोग। ( ३०–३२ ) मुख्य पदाधिकारियों का राष्ट्र को समृद्धिमान् बनाना। ( ३४ ) सभा, संग्रामों में उत्तम उपदेष्टा और आदेष्टा। ( ३५ ) संघ के वशकर्त्ता का सूर्यवत् उदय। (३५) उसका स्वरूप, उसका महान् सामर्थ्य। ( ३८ ) सूर्य के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन। उसके शुक्ल, कृष्ण दोनों प्रकार के रूपों का रहस्य। (३९–४० ) महान् परमेश्वर। ( ४१ ) परमेश्वर के आश्रय पर कमाये धन के समान कर्म फल का भोग। ( ०२ ) विद्वानों का कार्य निन्दनीय कार्यों से बचना। पक्षान्तर में भौतिक तत्वों से उत्तम देह रचना। ( ४३ ) विजिगीषु नायक के कर्तव्य। ( ४४ ) वायु और सूर्य के दृष्टान्त से भागधुक् नाम अध्यक्ष के कार्य। ( ४५ ) विद्युत् आदि तत्वों का सदुपयोग। पक्षान्तर में राष्ट्र के अध्यक्षों के कर्तव्य। ( ४६ ) वरुण और मित्र दोनों के कर्तव्य। ( ४७ ) व्यापक अधिकारवान् पुरुष की अध्यक्षता। ( ४८ ) सब अध्यक्षों का राष्ट्र को प्रेम करना। ( ४६ ) रक्षा के लिये सबका आह्वान। ( ५० ) उनका रक्षण कर्तव्य। ( ५०–५१ ) प्रजा का विद्वानों की शरण आना और रक्षा की याचना करना। ( ५२ ) विद्वानों को उत्तम आसन। ( ५२ ) परमेश्वर का विद्वानों के प्रति अपना स्वरूप प्रकाश। राजा का विद्वानों को ऐश्वर्य दान। ( ५५–५९ ) वायु, इन्द्र, वायु, अश्वी

आदि के कर्त्तव्य । (६०—६८) विजयी पुरुषों के लक्षण । इन्द्र का स्वरूप । ( ६९ ) बड़े राजा और परमेश्वर की स्तुति । अन्य अधिकारियों के कर्तव्य ।

## चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

( १–६ ) शिव संकल्पसूक्त । ( ७ ) पालक अन्न । ( ८—६ ) अनुमति नाम पुरुष और संस्था । ( १० ) सिनीवाली का रहस्य । (११) पञ्चनदी और सरस्वती का रहस्य । ( ११ ) अंगिरा ऋषि, राजा । (१३) अग्रणी से रक्षा की प्रार्थना । ( १४ ) राजा पृथ्वी और पतिपत्नी के कर्तव्य । ( १५ ) पृथ्वी के केन्द्र में राजा की स्थिति । ( १६ ) उत्तम विद्वान् और परमेश्वर का वर्णन । ( १७–३१ ) विद्वानों और नायक राजा के कर्तव्य । ( ३२–३३ ) रात्रि, उषा, राजशक्ति और स्त्री । (३४–३९) प्रातः उपासना । ( ४० ) उषा के समान स्त्रियों का वर्णन । (४१, ४२) पूषा राजा और परमेश्वर । ( ४३—४४ ) विष्णु राजा, और परमेश्वर । (४५) वरुण, परमेश्वर और राजा । ( ४६ ) अधिराट् का निर्माण । (४७) उसके अधीन अश्वियों के कर्तव्य । ( ४८—४९ ) विद्वानों के कर्तव्य । ( ५०—५१ ) सुवर्ण और उत्तम सैन्य बल का वर्णन । पक्षान्तर में ब्रह्मचर्य का वर्णन । ( ५४ ) विद्वान् अध्यक्ष । ( ५५ ) सप्त प्राण, सप्त अधिकारी । ( ५६—५८ ) ब्रह्मणस्पति, राजा, वेदवित् ।

## पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

( १, २ ) राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर की व्यवस्था । किरणों द्वारा जीवों की लोकलोकान्तर में गति । (३) वायु का पवित्रकारक गुण । ( ४ ) प्रजाओं को आदेश । ( ५ ) उत्पादक पिता और सविता के कर्म । ( ६ ) प्रजापति के कर्म । ( ७ ) प्रजाओं की रक्षा । ( ८, ९ ) शान्ति की प्रार्थना । ( १०, ११ ) पाप नाश । ( १२ ) उत्तम आप्त जन । ( १३ ) अग्रणी धुरन्धर । ( १४–१८ ) अग्रणी रक्षक के कर्तव्य । ( १९ ) क्रव्यात् अग्नि का रहस्य ।

## षट्त्रिंशोऽध्यायः

( १—१७ ) शान्ति करण । (१८) मित्रदृष्टि । (१९) दीर्घ जीवन । ( २२ ) अभय । ( २३ ) शतवर्ष आयु की प्रार्थना ।

## सप्तत्रिंशोऽध्यायः

महावीर सम्भरण । ( १—८ ) मुख्य शिरोमणि नायक की उत्पत्ति । ( ९ ) अश्व, शकृत् से धूपन का रहस्य । ( १२ ) पृथ्वी निवासिनी प्रजा के कर्तव्य । ( १४, १८ ) तेजस्वी रक्षक पुरुष का स्वरूप । ( १९ ) वरण का प्रकार।

## अष्टात्रिंशोऽध्यायः

( १—५ ) पृथ्वी स्त्री का समान वर्णन । ( ६ ) सार पदार्थ ग्रहण करने का उपदेश । ( २७ ) विद्वान् के उद्देश्य और कर्तव्य ।

## एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ( पृ० ७०८-७१८ )

( १ ) प्राण, पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, सूर्य आकाश इनको आहुति की प्राप्ति । ( २ ) दिशा, चन्द्र आदि के समान व्यक्तियों का उत्तम आदर हो । ( ३ ) वाणी प्राण आदि का उत्तम उपयोग । ( ४ ) मन वाणी की शक्ति का उपयोग करने और समृद्धि की प्रार्थना । (५—७) प्रजापति प्रभु और परमेश्वर के नाना गुण कर्म स्वभावानुसार नाना नाम। ( ८-६ ) देवमय राजा । लोम त्वचादि देह धातुओं को स्वच्छ रोग रहित रखने का उपदेश । ( ११ ) आयास आदि देह और आत्मा के धर्मों के लिये उत्तम आहार व्यवहार । ( १२ ) तप धर्मादि के लिये उत्तम यत्न करने का उपदेश । ( १३ ) नियन्ता आदर परमेश्वर की उपासना ।

## चत्वारिंशोऽध्यायः ( पृ० ७१९-७२८ )

ईशोपनिषत् । ( १ ) परमेश्वर व्यापक । उसके दिये के भोग करने और लोभ त्यागने का उपदेश । ( २ ) जीवन भर निसंग होकर कर्म करने की आज्ञा । ( ३ ) आत्मा के नाशकों के दुर्गति । ( ४-५ ) आत्मा का स्वरूप । ( ६-७ ) सर्वत्र आत्म दर्शन । ( ८ ) आत्मा का स्वरूप । (९-११) सम्भूति और विनाशक दोनों का ज्ञान । उन दोनों की उपासना का फल मृत्यु मरण, और अमृत भोग । ( १२—१४ ) विद्या अविद्या का ज्ञान । उन दोनों की उपासना फल । मृत्यु और वरण । ( १५ ) देह और भौतिक जीवन की वास्तविकता । अन्त समय में 'ओ३म्' प्रभु का स्मरण । (१६)उत्तम मार्ग से चलने की भगवान् से प्रार्थना । सत्य तत्व पर हिरण्यमय आवरण । परम आत्म दर्शन । ब्रह्म में लय । मोक्ष प्राप्ति ।

**ग्रन्थ समाप्त**



# यजुर्वेद संहिता



## ॥ अष्टादशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ वाजश्च मे प्रसुवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

१—२७ देवा ऋषयः ॥ अग्निर्देवता । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—( यज्ञेन ) यज्ञ, प्रजापालनरूप सत्कर्म से ( मे ) मुझ राजा को, या परमेश्वर के अनुग्रह से और प्रजा के पालक प्रभु से मुझ प्रजा को ( वाजः च ) अन्न, वीर्य और ( प्रसवः च ) ऐश्वर्य ( प्रयतिः ) प्रयत्न और ( प्रसितिः ) उत्कृष्ट राज्यप्रबन्ध और प्रेम, ( धीतिः च ) उत्तम ध्यान या चिन्तन ( क्रतुः च ) उत्तम कर्म और प्रज्ञान, ( स्वरः च मे ) उत्तम स्वर, उत्तम कण्ठध्वनि और ( श्लोकः च मे ) उत्तम वाणी, ( श्रवः च ) उत्तम 'श्रव' अर्थात् गुरुपदेश या वेदमन्त्र, ( श्रुतिः च ) उत्तम, श्रवणयोग्य वेदमन्त्र ( ज्योतिः ) विद्या का प्रकाश और ( स्वः च ) उत्तम सुख ये सब ( मे ) मेरे ( यज्ञेन ) यज्ञ के द्वारा, उत्तम राज्य प्रबन्ध, व्यवस्था और राजा प्रजा के सम्मिलित यत्न द्वारा मुझे ( कल्पन्ताम् ) प्राप्त हों । ( १—२१ ) शत० ९।३।३।१—१०॥

---

१—अथातोवसोर्धारामन्त्राः १-२७ ॥ 'आवश्च'० इति काण्व० ॥

अध्यात्म में—अन्न, ऐश्वर्य, प्रयत्न, प्रेम, ध्यान, ज्ञान अथवा अध्ययन और कर्म, स्वर और श्लोक, गुरुपदेश और वेदोपदेश, ज्ञानप्रकाश और सुख ये सब पदार्थ ( मे ) मुझे ( यज्ञेन ) आत्मा और परमात्मा या उपासना द्वारा ( कल्पन्ताम् ) सिद्ध हों, मुझे प्राप्त हों।

**प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च म ऽआधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥**

अतिजगती । निषादः ॥

भा०—( मे ) मुझे ( प्राणः च ) प्राण, हृदयगत वायु जो शरीर में नाभि से ऊपर गति करता है, ( अपानः च ) अपान, जो नाभि से नीचे के भाग में विचरता है, ( व्यानः च ) व्यान, सर्वशरीर में व्यापक और मुख्य तथा नाभि देश में स्थित है, ( असुः च ) असु, नाग आदि नाम वाला वायु जो वमन आदि वेग के कार्य करता, रोग-परमाणुओं को बल से बाहर फेंकता एवं बल के अन्य कार्यों में सहायक होता है, ( चित्तं च ) चित्त, स्मरण करने वाली शक्ति, (आधीतं च) बाह्य विषयों का ज्ञान और सब प्रकार से स्थिर, निश्चयकारिणी बुद्धि, ( वाक् च ) वाणी इन्द्रिय (मनः च) मन, संकल्प विकल्प करने या ऊहापोह करने वाली भीतरी शक्ति, ( चक्षुः च ) चक्षु, देखने वाली इन्द्रिय, ( श्रोत्रं च ) श्रोत्र, कर्णेन्द्रिय (दक्षः च ज्ञान, इन्द्रिय का बल और कौशल, (बलं च) कर्म-इन्द्रियों का कौशल, बल, पराक्रम, ( च च० ) उदान, समान, धनंजय आदि अन्य वायुएं, धारण, श्रवण, अहंकार, प्रत्यक्ष प्रमाण, सामयिक मान आदि पदार्थ भी (यज्ञेन) यज्ञ, आत्मसामर्थ्य, ज्ञानाभ्यास, सत्संग और उपासना से ( कल्पन्ताम् ) समर्थ होकर मुझे प्राप्त हों।

२—मे सुच० इति काण्व० ॥

ओजश्च मे सहश्च म ऽआत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूंषि च मे शरीराणि च म ऽआयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

स्वराड् अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—( ओजः च ) मुझे ओज, शरीर में स्थित तेज, ( सहः च ) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ शारीरिक बल ( आत्मा च ) आत्मा, परमात्मा या अपना स्वरूप और अपना सामर्थ्य ( तनूः च ) उत्तम दृढ शरीर और अपने सम्बन्धियों के शरीर ( शर्म च ) गृह और गृहोचित सुखसामग्री, ( वर्म च ) शरीररक्षक कवच, और शस्त्रास्त्र, ( अङ्गानि च ) देह के अंग और उपाङ्ग ( अस्थीनि च ) छोटी बड़ी समस्त अस्थियें, ( परूंषि च मे ) अंगुली आदि पोरू और शरीर के पालक मर्मस्थान, (शरीराणि च) शरीर के अन्य अवयव अथवा मेरे अन्य सम्बन्धियों के शरीर और सूक्ष्म देह के अवयव, (आयुः च मे) पूर्णायु और जीवनोपयोगी साधन, ( जरा च ) और वृद्धावस्था और यौवन आदि भी ( यज्ञेन ) सत् कर्मानुष्ठान और परमेश्वर की कृपा से ( मे कल्पन्ताम् ) मुझे प्राप्त हों ।

ज्यैष्ठ्यं च म ऽआधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्

निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(मे) मुझे (ज्यैष्ठ्यं च) ज्येष्ठता, बड़ाई, (आधिपत्यं च) अधिपति का पद, (मन्युः च) मन्यु, मानस कोप, ज्ञान और आत्मसन्मान (भामः च) क्रोध, शत्रुओं और दुष्टों पर असहनशीलता, ( अमः च ) न्यायोचित गृह आदि पदार्थ अथवा अपरिमित पदार्थ, ( अम्भः च ) जल, के

समान शीतलता और समुद्र के समान गम्भीरता ( जेमा च ) विजय-शीलता, ( महिमा च ) महत्व, ( वरिमा च ) श्रेष्ठता, अधिक सम्पत्ति-शालिता, ( प्रथिमा च ) विस्तृत गृह, क्षेत्र और राज्य आदि, ( वर्षिमा च ) ज्ञान, अनुभव, आयु, और पद की वृद्धि, ( द्राघिमा च ) दीर्घता, अर्थसंततिपरम्परा, ( वृद्धं च ) बढ़ा हुआ बल और धन, ( वृद्धि च ) विद्या आदि गुणों की उन्नति, बढ़ोतरी, ये समस्त पदार्थ मेरे ( यज्ञेन कल्पताम् ) परमेश्वर की कृपा और सत्कर्माचरण रूप यज्ञ से बढ़ें और मुझे प्राप्त हों।

सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—( सत्यं, च ) यथार्थ सत्य भाषण, ( श्रद्धा च ) सत्य धारण, ( जगत् च ) जगत्, जंगम सम्पत्ति, ( धनं च ) सुवर्णादि धन, ( विश्वं च ) समस्त स्थावर पदार्थ, ( क्रीडा च ) क्रीड़ा, विनोद के साधन, विहार, ( मोदः च ) आनन्द विनोद से प्राप्त हर्ष, ( जातं च ) उत्तम पुत्र पौत्रादि, अथवा उत्पन्न कृषि सस्यादि ( जनिष्यमाणं च मे ) आगे होने वाले समस्त ऐश्वर्य, ( सूक्तं च ) वेद मन्त्रगण, या उत्तम सुभाषित, ( सुकृतं च ) पुण्याचरण, ये और इनके साथ की अन्यान्य सम्पदाएं भी ( मे ) मुझे ( यज्ञेन कल्पन्ताम् ) यज्ञ, धर्मानुष्ठान और ईश्वर की कृपा से और प्रजा पालन व्यवहार या राज्यवस्था द्वारा प्राप्त हों।

ऋतं च मेऽमृतं च मे ऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

भा०— (ऋतं च) ऋत, यज्ञ और यथार्थ सत्य ज्ञान, ( अमृतं च ) अमृत, मोक्ष और यज्ञशेष, (अयक्ष्मं च) यक्ष्म तपेदिक आदि रोगों से रहित, शरीर की स्वस्थता, ( अनामयत् च ) पीड़ाकारी रोगों का अभाव ( जीवातुः च ) जीवनप्रद, अन्न और ओषधि आदि, ( दीर्घायुत्वं च ) दीर्घ आयु, ( अनमित्रं च ) शत्रु का न होना, ( अभयं च ) अभय, निर्भयता, ( सुखं च ) सुख, ( शयनं च ) सुखपूर्वक निद्रा, ( सूषा च ) उत्तम उषा-काल, ( सुदिनं च ) उत्तम दिन, ये सब ( मे ) मेरे ( यज्ञेन कल्पन्ताम् ) यज्ञ, राष्ट्र पालन, सुकृत, धर्माचरण और ईश्वरोपासन से प्राप्त हों।

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०— (यन्ता च) नियमकर्त्ता, या अश्वादि का नियन्ता, या राष्ट्र को नियम में रखने वाला, और ( धर्त्ता च ) धारण पोषण करने वाला पुरुष ( क्षेमः च ) विद्यमान राष्ट्र आदि सम्पदा का संरक्षण, ( धृतिः च ) धैर्य, आपत्तियों में भी चित्त की स्थिरता, (विश्वं च) समस्त अनुकूल पदार्थ, (महः च) यश, आदर, (संवत् च) उत्तम दृढ़ प्रतिज्ञा, या वेदशास्त्रादि का उत्तम ज्ञान, ( ज्ञात्रम् ) ज्ञान साधन और उनसे उत्पन्न उत्कृष्ट विज्ञानसामर्थ्य, ( सूः च ) पुत्र और भृत्यादि को आज्ञा करने का सामर्थ्य और ( प्रसूः पुत्र आदि उत्पन्न करने का सामर्थ्य, ( सीरं च ) कृषि के साधन हल आदि और उनसे अन्न आदि की प्राप्ति, ( लयः च ) कृषि आदि की बाधाओं का विनाश ये सब ( मे ) मुझे ( यज्ञेन ) यज्ञ, धर्मानुष्ठान और प्रजापालन, राष्ट्र व्यवस्था से प्राप्त हों और बढ़ें।

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च

मे सर्गश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—( शं च ) कल्याण और ( मयः च ) सुख, ऐहिक और पारमार्थिक, (प्रियं च) प्रीति के पैदा करने वाला प्रिय पदार्थ और (अनुकामः च) धर्मानुकूल कामना, (कामः च उत्तम स्त्री, पुत्र, धन आदि काम्य एवं ग्राह्य विषयों की अभिलाषा, (सौमनसः च) उत्तम मन की स्थिति, शुभचित्तता, ( भगः च ) अष्टविध ऐश्वर्य, ( द्रविणं च ) सुवर्णादि द्रव्य, ( भद्रं च ) सुखदायी पदार्थ, ( श्रेयः ) कल्याणकारी मुक्ति का सुख, ( वसीयः च ) अति अधिक उत्तम धन धान्य समृद्धि, ( यशः च ) और यश, कीर्त्ति ये समस्त पदार्थ ( मे ) मुझे ( यज्ञेन कल्पन्ताम् ) राजा प्रजा के परस्पर संग तथा धर्मानुष्ठान और प्रजापालन आदि सत्कर्म से प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त हों ।

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मे ऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—( ऊर्क् च ) परम रसवाला अन्न, ( सूनृता च ) उत्तम सत्य ज्ञान वाली वाणी, ( पयः च ) पुष्टिकारक दूध, (रसः च) सारवान् रस, ( घृतं च ) घी, ( मधु च ) मधु, आदि मधुर पदार्थ, ( सग्धिः च ) समान रूप से एक जैसा देह के अनुकूल, अथवा बन्धु बान्धवों के साथ मिलकर भोजन करना, ( सपीतिः च ) सब के साथ मिलकर दुग्धादि का पान करना, ( कृषिः च ) कृषि, खेती बाड़ी, ( वृष्टिः च ) और कृषि के बढ़ानेवाली वृष्टि, ( जैत्रं च ) विजय करने का स्वभाव और सामर्थ्य,

( औद्भिदं च ) पृथिवी को फोड़ कर उत्पन्न होने वाले तरु, लता गुल्म आदि पदार्थों की सम्पत्ति, ये सब पदार्थ ( मे ) मुझे ( यज्ञेन ) यज्ञ, प्रजापालन व्यवहार, परमेश्वर की उपासना, आत्मसाधना आदि से ( कल्पन्ताम् ) प्राप्त हों और बढ़ें ।

**र॒यिश्च॑ मे॒ राय॑श्च मे पु॒ष्टं च॑ मे॒ पुष्टि॑श्च मे वि॒भु च॑ मे प्र॒भु च॑ मे पू॒र्णं च॑ मे पू॒र्णत॑रं च मे॒ कुय॑वं च मेऽक्षि॑तं च मेऽन्नं॑ च मेऽक्षु॑च्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १० ॥**

निचृत् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—( रयिः च ) विद्या और लक्ष्मी, ( रायः च ) उत्तम ऐश्वर्य, लौकिक मणि, मुक्ता आदि पदार्थ, ( पुष्टं च ) शरीर का हृष्ट पुष्ट होना और ऐश्वर्य की वृद्धि, ( पुष्टिः च ) पुष्टि होना, ( विभु च ) विविध पदार्थों की प्राप्ति, ( प्रभु च ) सब पर प्रभुता, ( पूर्णं च ) पूर्णता, धन पुत्र आदि सब से अधिक भरे पूरे रहना, ( पूर्णतरं च ) और भी अधिक ऐश्वर्य का बढ़ना, ( कुयवं च ) कुत्सित यव आदि धान्य, क्षुद्र जाति का धान्य, (अक्षितं च) क्षयरहित अन्न, शालि आदि धान्य, (अन्नं च) गेहूं आदि अन्न, ( क्षुत् च ) भूख का अच्छा लगना और (अक्षुत् च) भोजन द्वारा भूख का न रहना, उसका अन्न द्वारा मिट जाना, ये सब पदार्थ (मे) मुझे ( यज्ञेन ) यज्ञ, परमेश्वरोपासना, आत्मसाधना और राजा प्रजा के परस्पर संग से प्राप्त हों ।

**वि॒त्तं च॑ मे॒ वेद्यं॑ च मे भू॒तं च॑ मे भवि॒ष्यच्च॑ मे सु॒गं च॑ मे सुप॒थ्यं॑ च म ऋ॒द्धं च॑ म ऋद्धि॑श्च मे क्लृ॒प्तं च॑ मे॒ क्लृप्ति॑श्च मे म॒तिश्च॑ मे सुम॒तिश्च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥**

भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—( वित्तं च ) वित्त, पूर्वप्राप्त धन, या सुविचारित तत्त्व,

( वेद्यं च ) भविष्य में प्राप्त करने योग्य द्रव्य, अथवा विचार करने योग्य ब्रह्म तत्त्व आदि. ( भूतम् च ) भूतकाल और ( भविष्यत् च ) भविष्यत् काल, ( सुगं च ) उत्तम जाने योग्य मार्ग, और सुन्दर प्रदेश, (सुपथ्यं च) उत्तम मार्गों का होना, ( ऋद्धं च ) समृद्ध होना, ( ऋद्धिः ) सम्पत्ति, ( क्लृप्तं च ) कार्य करने में समर्थ होना, ( क्लृप्तिः च ) सामर्थ्य, ( मतिः च ) मनन और ( सुमतिः च ) शोभन उत्तम मति, मननशक्ति ये सब ( यज्ञेन ) पूर्वोक्त यज्ञ और आत्मसाधना से ( मे ) मुझे प्राप्त हों और ये सब भी शक्तिशाली हों ।

**व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥**

भुरिगति शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—( व्रीहयः च ) धान्य, ( यवाः च ) जौ, ( माषाः च ) उड़द, माष, ( तिलाः च ) तिल, ( मुद्गाः च ) मूंग, ( खल्वाः च ) चने, ( प्रियंगवः च ) प्रियंगु नामक क्षुद्र धान, ( अणवः च ) छोटा चावल, ( श्यामाकाः च ) सांवा चावल, ( नीवाराः च ) नीवार नाम का विना खेती से उपजने वाला धान, (गोधूमाः च) गोहूं और (मसूराः च) मसूर, ये समस्त अन्न की जातियें ( मे ) मुझे ( यज्ञेन कल्पन्ताम् ) पूर्वोक्त यज्ञ, राष्ट्रपालन और कृषि से प्राप्त हों ।

**अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥**

भुरिगतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

०'त्रपु च मे श्यामं च मे लोहं च मे यज्ञेन०' इति काण्व० ।

भा०—( अश्मा च ) सब प्रकार के पाषाण, ( मृत्तिका च ) सब प्रकार की मिट्टियें, ( गिरयः च ) समस्त पर्वत, ( सिकताः च ) समस्त बालुकामय देश, ( वनस्पतयः च ) समस्त वनस्पतियां, बड़े २ वृक्षों से घिरे जंगल, (हिरण्यं च) समस्त सुवर्ण, ( अयः च ) लोहा, ( श्यामं च ) श्यामलोह, ( लोहं च ) लाल लोह, ( सीसं च ) सीसा, और ( त्रपु च ) त्रपु, टीन आदि ये सब धातुएं भी ( यज्ञेन कल्पन्ताम् ) राष्ट्र पालन के अधिकार से मुझे प्राप्त हों, मेरे अधिकार में हों ।

अग्निश्च म ऽआपश्च मे वीरुधश्च म ऽओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे भूतञ्च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

भा०—( अग्निः च ) अग्नि, सब प्रकार की अग्नियें, ( आपः च ) समस्त जल, जलाशय, नदी आदि, ( विरुधः ) लता गुल्म आदि, ( ओषधयः च ) ओषधियें, ( कृष्टपच्याः च ) वे अनाज जो खेती से प्राप्त होते हैं और ( अकृष्टपच्याः च ) और वे अन्नादि पदार्थ जो विना हल जोते ही भूमि से प्राप्त होते हैं, ( ग्राम्याः पशवः ) गांव में रहने वाले गौ आदि पशु और ( आरण्याः च पशवः ) जंगल में रहने वाले हरिण आदि पशु गण और ( वित्तम् च ) इससे प्राप्त समस्त धन धान्य और ( वित्तिः च ) और आगे होने वाली प्राप्ति, ( भूतिः च ) समस्त ऐश्वर्य, ( भूतं च ) भूत, नानाविध प्राणिसमूह, ये समस्त पदार्थ ( मे ) मुझे ( यज्ञेन ) प्रजापालनरूप कर्त्तव्य अर्थात् राज्य पदाधिकार द्वारा (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों और बढ़ें ।

वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

१५—'०अर्थश्चमेधामश्चमे' इति काण्व० ।

भा०—( वसु च ) समस्त वास योग्य धन या गृहादि, ( वसतिः च ) वासस्थान, ग्राम आदि (कर्म च) समस्त कर्म, यज्ञ, कूप तड़ाग खोदना, व्यापार आदि, ( शक्तिः च ) कर्म करने की शक्ति, अधिकार ( अर्थः च ) समस्त पदार्थ, संग्रह धन और योग्य अधिकार, ( एमः च ) प्राप्तव्य पदार्थ या यत्न, ( इत्या च ) इष्ट पदार्थ प्राप्त करने का साधन, ( गतिः च ) गमन सामर्थ्य और क्रिया इत्यादि समस्त पदार्थ ( मे ) मुझे ( यज्ञेन कल्पन्ताम् ) राज्यलाभ के साथ ही प्राप्त हों और उनकी वृद्धि हो ।

अ॒ग्निश्च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ सोम॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे सवि॒ता च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ सर॑स्वती च म॒ इन्द्र॑श्च मे पू॒षा च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ बृह॒स्पति॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

मि॒त्रश्च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ वरु॑णश्च म॒ इन्द्र॑श्च मे धा॒ता च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ त्वष्टा॑ च म॒ इन्द्र॑श्च मे म॒रुत॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ विश्वे॑ च मे दे॒वा इन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

पृ॒थि॒वी च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ऽन्तरि॑क्षं च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ द्यौश्च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ समा॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ नक्ष॑त्राणि च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ दिश॑श्च म इन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—( अग्निः च ) सूर्य और आग्नेय तत्व ( इन्द्रः च ) उनका ज्ञाता इन्द्र, (सोमः च इन्द्रः च) सोम, जल तत्व और इन्द्र, उसकी विद्या के रहस्यों का जानने वाला; ( सविता च इन्द्रः च ) सविता सूर्य या ऐश्वर्यवान् और इन्द्र, सूर्य तत्व का विज्ञाता ( सरस्वती च ) सरस्वती, वेदवाणी और (इन्द्रः च) उसका ज्ञाता; आचार्य, विद्वान् (पूषा च) सबका पोषण करने वाला अन्न और पशु तथा ( इन्द्रः च ) उनका ज्ञाता विद्वान् और अधिपति इन्द्र है । ( बृहस्पतिः च ) बृहस्पति, बृहती

वेद वाणी का पालक विद्वान् ब्राह्मण और ( इन्द्रः च ) उसके ऐश्वर्यों का भी स्वामी, इन्द्र, ये सब ( यज्ञेन ) यज्ञ, परस्पर संगति, प्रजा पालन और आत्म-साधना से मेरे ( कल्पन्ताम् ) राज्य व्यवहार में समर्थ एवं शक्तिशाली हों।

( मित्रः च ) मित्र, न्यायाधीश और ( इन्द्रः च ) उसके ऊपर अधिष्ठित राजा, सभापति, (वरुणः च) दुष्टों का वारण करने वाला अधिकारी, 'वरुण', ( इन्द्रः च ) उसपर भी अधिष्ठित शत्रुनाशक इन्द्र, ( धाता च ) राष्ट्र का पोषक 'धाता' और ( इन्द्रः च ) उसपर भी शासक ऐश्वर्यवान् अन्नपति, इन्द्र, ( त्वष्टा च, ) शिल्पों का कर्त्ता पुरुष 'त्वष्टा' और ( इन्द्रः च ) उसका अधिपति व्यवहार कुशल 'इन्द्र', (मरुतः च) वायु के समान वेगवान् योद्धा लोग 'मरुत्-गण' और उनपर अधिपति ( इन्द्रः च) इन्द्र सेनापति ( विश्वे च देवाः ) और समस्त विद्वान् पुरुष और ( इन्द्रः च ) उनका स्वामी इन्द्र ये सब भी अधिकारीगण और उनका शासक अधिपति (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरे राष्ट्र में परस्पर सुसंगत, सुव्यवस्थित राज्य प्रबन्ध से अधिक पुष्ट और समर्थ हों।

( पृथिवी च इन्द्रः च ) पृथिवी और उसका अधिपति अग्नि के समान तेजस्वी इन्द्र, ( अन्तरिक्षं च इन्द्र च ) अन्तरिक्ष और उसका अधिपति वायु के समान बलशाली इन्द्र, ( द्यौः च इन्द्रः च ) द्यौ, आकाश, उस विस्तृत राजसभा में सूर्य के समान तेजस्वी अधिकारी इन्द्र। ( समाः च इन्द्रः च ) वर्ष और उनका शासक सूर्य के समान तेजस्वी 'इन्द्र', ( नक्षत्राणि च ) नक्षत्र और उनके बीच में ( इन्द्रः च ) चन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र', ( दिशः च इन्द्रः च ) दिशाएं और उनके बीच में विराजने वाले आकाश के समान व्यापक बलवान् राजा 'इन्द्र', ये सब ( मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ) मेरे यज्ञ, उत्तम राज्यप्रबन्ध से अधिक समर्थ हों।

अग्नि, सोम, सविता, सरस्वती, पूषा, बृहस्पति, मित्र, वरुण, धाता,

त्वष्टा, मरुत्, विश्वेदेव ये राष्ट्र के भिन्न २ विभागों के पदाधिकारी हैं। ये विभाग स्वतन्त्र होकर भी इनमें से प्रत्येक के साथ मुख्य अधिकारी या राजा का समान रूप से शासन है। इसलिये प्रत्येक के साथ 'इन्द्र' का सम्बन्ध रखा है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, समा, नक्षत्र और दिशा, ये भी गुणवाद से राजा के ही भिन्न २ अधिकार क्षेत्र हैं। तदनुसार ये भी अधिकार हैं, उनको भी 'इन्द्र' नाम मुख्य राजा के आधीन रहकर संगठित होना चाहिये। तभी ये अधिक दृढ़ होते हैं।

अध्यात्म में—अग्नि जाठराग्नि, सोम वीर्य, सविता चक्षु, सरस्वती वाणी, पूषा उदर और बृहस्पति मन है। मित्र प्राण, वरुण उदान, धाता मन, त्वष्टा आत्मा, मरुद्गण धनञ्जय आदि या इन्द्रियगण हैं, पृथ्वी चरण, अन्तरिक्ष मध्यभाग, द्यौः शिर, समाः पूर्ण आयु के वर्ष, नक्षत्र लोम, दिशाएं श्रोत्र, ये सब इन्द्र नाम मुख्य आत्मा के साथ सम्बद्ध हैं। इन सब में इन्द्र की शक्ति है यह यज्ञ से और भी दृढ़ और समर्थ हों।

**अ॒ꣳशुश्च॑ मे र॒श्मिश्च॒ मेऽदा॑भ्यश्च॒ मेऽधि॑पतिश्च ऽम उपा॒ꣳशुश्च॑ मेऽन्तर्या॒मश्च॑ म ऽऐन्द्रवाय॒वश्च॑ मे मैत्रावरु॒णश्च॑ म आश्वि॒नश्च॑ मे प्रतिप्रस्थान॑श्च मे शु॒क्रश्च॑ मे म॒न्थी च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१६॥**

निचृदत्यष्टिः। गान्धारः ॥

भा०— ( अंशुः च ) अंशु, सूर्य और उसके समान तेजस्वी अधिकारी पुरुष, (रश्मिः च) रश्मि, सूर्य की किरण के समान उपभोग्य पदार्थों का संग्रहकारी पुरुष, ( अदाभ्यः च ) विनाशरहित 'अदाभ्य' नामक राज्य विभाग, ( अधिपतिः ) अधिपति, अधिष्ठाता, पूर्वोक्त 'निग्राह्य' नामक राज्य विभाग, ( उपांशुः च ) उपांशु नामक राज्यांग, (अन्तर्यामः च) अन्तर्याम, ( ऐन्द्रवायवः च ) इन्द्र और वायु का सम्मिलित पद ( मैत्रावरुणः च ) मित्र और सम्मिलित पदाधिकारी, (आश्विनः च) आश्विन नामक अधिकारी, ( प्रतिप्रस्थानः च ) शत्रु के प्रति चढ़ाई करने वाला अधिकारी, ( शुक्रः च

मन्थी च ) शुक्र और मन्थी सब राज्याधिकारी और राज्यांग ( मे ) मेरे ( यज्ञेन ) यज्ञ, राष्ट्रव्यवस्था के द्वारा ( कल्पन्ताम् ) अधिक समर्थ हों 'अंशु' का वर्णन देखो अ० ७ । १ ॥ अ० ७ । २ । २ ॥

अन्तर्याम—अ० ७ । ४ ॥ ऐन्द्रवायवः । अ० ७ । ८ ॥ मैत्रावरुण । अ० ७ । ६ ॥ ७ । २३ ॥ आश्विन । अ० ७ । ११ ॥ शुक्र । अ० ७।१२॥ मन्थी अ० ७ । १६ ॥

**आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥**

भा०—( आग्रयणः च ) आग्रयण, (वैश्वदेवः च) वैश्वदेव, (ध्रुवः च) ध्रुव, (वैश्वानरः च) वैश्वानर और (इन्द्राग्नः च) इन्द्र-अग्नि का पद, ( महा वैश्वदेवः च ) महावैश्वदेव, ( मरुत्वतीयाः च ) मरुत्वतीय, (निष्कैवल्यः च) निष्कैवल्य, मोक्षोपदेश ( सावित्रः च ) सावित्र ( सारस्वतः च ) सारस्वत, ( पात्नीवतः च ) पात्नीवत और ( हारियोजनः च ) हारियोजन ये समस्त राज्यांग और अधिकार (मे) मेरे ( यज्ञेन कल्पन्ताम् ) परस्पर की संगठित व्यवस्था से अधिक बलवान् हों ।

आग्रयण, अ० ७ । १६-२० ॥ वैश्वदेव, अ० ७ । २१-२२ ॥ ध्रुव, अ० ७ । २४-२५ ॥ वैश्वानर, अ० ७ । ३३-३४ ॥ ऐन्द्राग्न, अ०७।३२ ॥ मारुत्वतीय, अ० ७ । ३५-३८ ॥ महावैश्वदेव, अ० ७ । ३६-४० ॥ सावित्र, अ० ८ । ७ ॥ पात्नीवत, अ० ८ । ६-१० ॥ हारियोजन, अ० ८।११,

**स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म ऽआधवनीयश्च मे**

वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

भा०—( स्रुचः च ) स्रुच् स्रुव, जुहू आदि, ( चमसाः च ) चमस आदि यज्ञ पात्र, ( वायव्यानि च ) वायव्य आदि पात्र, ( द्रोणकलशः च ) द्रोणकलश, सोमधारण के लिये कलश । (ग्रावाणः च) शिला, शिल बट्टा आदि सोम या अन्न कूटने के पाषाण, (अधिषवणे च) कुटे हुए सोम या अन्न रखने के फलक, (पूतभृत् च आधवनीयः च) पूतभृत् और आधवनीय नामक सोम या अन्न रखने के दो पात्र ( वेदिः च ) वेदि, ( बर्हिः च ) बर्हि, आसन, या दर्भ, ( अवभृथः च) यज्ञान्त स्नान, ( स्वगाकारः ) स्वयं गान करने योग्य शंयुवाक नामक स्वस्तिवाचनकर्त्ता, ये सब ( मे ) मेरे ( यज्ञेन कल्पन्ताम् ) यज्ञ द्वारा सिद्ध एवं उत्तम फल देने में समर्थ हों ।

राष्ट्रपक्ष में—( १ ) 'स्रुचः' गौर्वै स्रुक् । श० ६ । ३ । १ । ८ ॥ इमे वै लोकाः स्रुचः । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ बाहू वै स्रुचौ । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥ योषा वै स्रुक् वृषा स्रुचः । श० १ । ३ । १ ॥ गवादि पशु, समस्त लोक, बाहुएं, वीर पुरुष, स्त्रियां और पुरुषगण ये सब, 'स्रुच्' कहाते हैं ।

( २ ) 'चमसाः'—१३ पात्र, 'राज्याङ्ग' नाना विभाग । देखो अ० ७ ॥ ३ ॥ 'वायव्यानि'—कति पात्राणि यज्ञं वहन्ति इति त्रयोदशेति ब्रूयात् । प्रजापतिः प्राणापानाभ्यामेवोपांश्वन्तर्यामौ निरमिमीत । व्यानादुपांशुसवनम् । वाचः एन्द्रवायवं, दक्षक्रतुभ्यां मैत्रावरुणं श्रोत्रादाश्विनम् । चक्षुषः शुक्रामन्थिनौ, आत्मनः आग्रयणम् । अङ्गेभ्यः उक्थ्यं । आयुषो ध्रुवम् । प्रतिष्ठाया ऋतुपात्रं । अथवा यजु० अ० ७ । २७, २८ ॥

अर्थात् यज्ञ में आग्रयण आदि ग्रह । राज्य में आग्रयण आदि राज्याङ्ग,

२१—०'स्वगाकारश्चमेऽवभृथश्चमे०' इति काण्व०' ।

और देह में प्राण, त्वक्, दक्ष क्रतु, श्रोत्र, चक्षु, आत्मा, अन्य अङ्ग, आयु और प्रतिष्ठा ये 'चमस' कहाते हैं। संवत्सररूप प्रजापति के १३ मास चमस हैं।

यज्ञपात्रों में—'द्वन्द्वं पात्राण्युदाहरति शूर्पंचाग्निहोत्रहवणी च। स्फ्यं च कपालानि च। शम्यां च कृष्णाजिनं च। उलूखलमुसले। दृषदुपले। तत् दश।' शूर्प आदि दश पात्र हैं। शरीर में दश प्राण के समान हैं।

( ३ ) 'वायव्यानि'—शरीर में प्राणादि के समान राष्ट्र में अन्यान्य विभाग, यजु अ० ७। २७, २८॥ अथवा सोम के छानने के पात्र और दशा पवित्र आदि। 'सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः' इत्यादि, यजु० ८।२९॥

( ४ ) 'द्रोणकलश'—यज्ञ में सोमकलश। और राजा के पक्ष में राष्ट्र या स्वयं राजा। देवपात्रं द्रोणकलशः। तां० ६। ५। ७॥ प्रजापतिर्वै द्रोणकलशः। श० ४। ३। ७। ६॥ यज्ञो वै द्रोणकलशः। श० ४। ५। ८। ५॥ राष्ट्रं द्रोणकलशः। तां० ६। ६। १॥ प्राणो वै द्रोणकलशः। तां० ९। ९। २२॥

(५) 'ग्रावाणः'—प्राणा वै ग्रावाणः। श० १४। २। २। ३३॥ पशवो वै ग्रावाणः। तां० ९। ९। १३॥ विड् वै ग्रावाणः। श० ३। ९। ३। ३॥ विद्वांसो वै ग्रावाणः। श० ३। ९। ३। १४॥ शरीर में प्राणगण, राज्य में पशु, प्रजागण और विद्वान् लोग 'ग्रावा' है।

( ६ ) 'अधिषवणे'—सोम को उत्पादक शिलाफलकों के समान परस्पर मिलकर राज्य के उत्पादक राजा और प्रजा। पुत्र के उत्पादक माता और पिता।

( ७ ) 'पूतभृत्' वैश्वदेवो वै पूतभृत्। श०। ७। ४। १। १२॥

( ८ ) वेदिः पृथ्वी।

( ९ ) अवभृथः—वरुणस्य पुत्रो वा भ्राता वा। श० १२।९।२।४॥

समुद्रो वा अवभृथः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥ राष्ट्र का उत्तम पालन-कर्त्ता अवभृथ है । देखो यजु० अ० ७ । ४६ ॥ समुद्र के समान पृथ्वी को घेर कर उसका पालक पोषक । 'सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः ।'

(१०) 'स्वगाकारः'—संवत्सरः स्वगाकारः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥ राष्ट्र के समस्त ऐश्वर्य को सूर्य के समान दौरा लगाकर अपनानेवाला राजा।

**अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥**

भा०—( अग्निः च ) अग्नि अग्रणी और ज्ञानी नेता पुरुष और अग्निष्टोम यज्ञ, ( घर्मः च ) तेज, प्रताप घर्म नामक प्रवर्ग्य इष्टि, (अर्कः च) अर्चना योग्य सामग्री, अर्चनीय पुरुष और याग, (सूर्यः च) प्राण, (अश्वमेधः च) अश्वमेध यज्ञ और राष्ट्र (पृथिवी च) पृथिवी, ( अदितिः च ) अखण्ड राजनीति ( दितिः च ) विभक्त भूमि अथवा शत्रु को खण्ड २ करनेवाली शक्ति, ( द्यौः च ) द्यौः, धर्म की प्रकाशक राजसभा, ( अङ्गुलयः ) अङ्गुलियों के समान पर-राष्ट्र को पकड़ने और वश करने वाली अग्रगामिनी सेनाएं, अथवा राष्ट्र के अङ्ग, ( शक्वरयः ) शक्तिशाली सेनाएं, (दिशः च) दिशाएं, और उनमें रहने वाली प्रजाएं, ये सब ( मे ) मेरी ( यज्ञेन ) परस्पर मेल और यज्ञ, राष्ट्रपालन द्वारा ( कल्पन्ताम् ) और अधिक उन्नत और समर्थ हों । शत० ६ । ३ । ३ । १ ॥

**व्रतञ्च म ऽऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऽऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥**

पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—( व्रतं च ) सत्य, अहिंसा आदि यम नियम का पालन,

२३—०'संवत्सरश्च मे तपश्च मे' इति काण्व० ॥

( ऋतवः च ) वसन्त आदि ऋतु, ( तपः च ) ब्रह्मचर्य, प्राणायाम, स्वाध्याय आदि तपस्या, (संवत्सरः च) १२ मासों से परिमित वर्ष, (अहोरात्रे च) दिन और रात, ( उरु-अष्ठीवे च ) जंघाएं और गो तथा उनके समान प्रबल वैश्य वर्ग, ( बृहत्-रथन्तरे च ) बृहत् साम तथा विशाल क्षात्रबल और रथन्तर साम अर्थात् ब्राह्मण-गण ये सब ( मे ) मेरे ( यज्ञेन ) यज्ञ, परस्पर मेल, एवं राष्ट्र पालन द्वारा (कल्पन्ताम्) अधिक समर्थ हों।

[1] एका॑ च मे ति॒स्रश्च॑ मे ति॒स्रश्च॑ मे॒ पञ्च॑ च मे॒ पञ्च॑ च मे स॒प्त च॑ मे स॒प्त च॑ मे॒ नव॑ च मे॒ नव॑ च म॒ ऽएका॑दश च म॒ ऽएका॑दश च मे॒ त्रयो॑दश च मे॒ त्रयो॑दश च मे॒ पञ्च॑दश च मे॒ पञ्च॑दश च मे॒ स॒प्तद॑श च मे॒ स॒प्तद॑श च मे॒ नव॑दश च मे॒ नव॑दश च म॒ ऽ[2]एक॑विꣳशतिश्च म॒ ऽएक॑विꣳशतिश्च मे॒ त्रयो॑विꣳशतिश्च मे॒ त्रयो॑विꣳशतिश्च मे॒ पञ्च॑विꣳशतिश्च मे॒ पञ्च॑विꣳशतिश्च मे स॒प्तवि॑ꣳशतिश्च मे॒ स॒प्तवि॑ꣳशतिश्च मे॒ नव॑विꣳशतिश्च मे॒ नव॑विꣳशतिश्च म॒ ऽएक॑त्रिꣳशच्च म॒ ऽएक॑त्रिꣳशच्च मे॒ त्रय॑स्त्रिꣳशच्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

( १ ) संकृतिः । ( २ ) विराट् संकृतिः । गान्धारः ॥

भा०—( एका च ) एक, ( तिस्रः च तिस्रः च ) तीन और तीन, ( पञ्च च पञ्च च ) पांच और पांच, ( सप्त च सप्त च ) सात और सात, ( नव च नव च ) नौ और नौ, ( एकादश च एकादश च ) ग्यारह और ग्यारह, ( त्रयोदश च त्रयोदश च ) तेरह और तेरह, ( पञ्चदश च पञ्चदश च ) पन्द्रह और पन्द्रह, ( सप्तदश च सप्तदश च ) सत्रह, और सत्रह ( नवदश च नवदश च ) उन्नीस और उन्नीस, ( एकविंशतिः च एकविंशतिः च ) इक्कीस और इक्कीस, ( त्रयोविंशतिः च त्रयोविंशतिः च ) तेईस और तेईस, (पञ्चविंशतिः च पञ्चविंशतिः च) पच्चीस और पच्चीस, (सप्तविंशतिः

च सप्तविंशतिः च) सत्ताईस और सत्ताईस, (नवविंशतिः च नवविंशतिः च) उनतीस और उनतीस, ( एकत्रिंशत् च एकत्रिंशत् च ) इकतीस और इकतीस और ( त्रयः त्रिंशत् च ) तेतीस इस क्रम से ( मे ) मेरी सेनाएं व्यूह बना कर ( यज्ञेन ) परस्पर के मेल द्वारा ( कल्पन्ताम् ) अधिक समर्थ हों ।

१, ३, ५, ७, ६, ११, १३, १५, १७, १६, २१, २३, २५, २७, २६, ३१, ३३ ये अयुग्म स्तोम या अयुग्म राशियें कहाती हैं। इन इन संख्या में सेनाओं और सैनिक संघों को चला कर उत्तम राष्ट्र रूप स्वर्ग को विद्वान् लोग प्राप्त होते हैं। व्यूह में ओर छोर के छोड़ने से दो २ की क्रमशः वृद्धि और न्यूनता होनी सम्भव है।

| | | |
|---|---|---|
| १ | | १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० ११ |
| १ २ ३ | | १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ |
| १ २ ३ ४ ५ | अथवा | १ २ ३ ४ ५ ६ ७ |
| १ २ ३ ४ ५ ६ ७ | | १ २ ३ ४ ५ |
| १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ | | १ २ ३ |
| १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० ११ | | १ |

इसी प्रकार दो दो के जोड़ने से संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि और दो २ के घटाने से संख्या की न्यूनता करनी चाहिये। व्यूहों में भी एक २, तीन तीन, पांच पांच सात सात की पंक्ति बना कर चलने का भी उपदेश है।

अथवा यजुर्वेद अ० १४ म० २८ से ३१ तक १, ३, ५, ७ आदि क्रम से बढ़ती राज्य-शक्तियों का वर्णन है वे सब राज्य की भिन्न २ शक्तियां मेरी परस्पर संग-लाभ द्वारा अधिक बलवान् बनें। उनका विवरण देखो यजुर्वेद अ० २४ । म० २८-३१-तक ।

**चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विꣳशतिश्च मे विꣳशतिश्च मे चतु-**

विंꣳशतिश्च मे चतुर्विंꣳशतिश्च मेऽष्टाविंꣳशतिश्च मेऽष्टाविंꣳशतिश्च मे द्वात्रिंꣳशच्च मे द्वात्रिंꣳशच्च मे षट्त्रिंꣳशच्च मे षट्त्रिंꣳशच्च मे चत्वारिंꣳशच्च मे चत्वारिंꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिंꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिंꣳशच्च मेऽष्टाचत्वारिंꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

भा०—( चतस्रः च ) चार, ( अष्टौ च अष्टौ च ) आठ और आठ, (द्वादश च द्वादश च) बारह और बारह, (षोडश च शोडश च) सोलह और सोलह, ( विंशतिः च विंशतिः च ) बीस और बीस, (चतुर्विंशतिः च चतुर्विंशतिः च ) चौबीस और चौबीस, ( अष्टाविंशतिः च अष्टाविंशतिः च ) अट्ठाईस और अट्ठाईस, (द्वात्रिंशत् च द्वात्रिंशत् च) बत्तीस और बत्तीस, (षट्त्रिंशत् च षट्त्रिंशत् च ) छत्तीस और छत्तीस, (चत्वारिंशत् च चत्वारिंशत् च ) चालीस और चालीस, ( चतुश्चत्वारिंशत् च चतुश्चत्वारिंशत च ) चवालीस और चवालीस, ( अष्टाचत्वारिंशत् च अष्टाचत्वारिंशत् च ) अड़तालीस और अड़तालीस के सेनाओं के व्यूह ( मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ) मेरे यज्ञ परस्पर मेल, संयोग द्वारा अधिक बलवान् हों।

१ + १=२, १ + २=३, ३ + २=५, ५ + २=७ इत्यादि। ३ + ५=८, ५ + ७=१२, ७ + ९=१६, ९ + ११=२०, ११ + १३=२४

इस प्रकार अयुग्म संख्याओं के योग से युग्म संख्याओं की निष्पत्ति होती है।

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मे उक्षा च म वशा च म ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

( २६ ) ब्राह्मी बृहती । मध्यमः । ( २७ ) भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—( त्र्यविः च त्र्यविः च ) तीन छमाही वाले बैल और गाय, ( दित्यवाट् च दित्यौही च ) दो वर्ष के बैल और गाय, ( पञ्चाविः च पञ्चावी च ) पांच छमाही अढ़ाई वर्ष के बैल और गाय, ( त्रिवत्सः च त्रिवत्सा च ) तीन वर्ष के बैल और गाय, (तुर्यवाट् च तुर्यौही च) चार वर्ष के बैल और गाय ( मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ) उक्त यज्ञ, प्रजापालन द्वारा मुझे प्राप्त हों और वे हृष्ट पुष्ट हों।

( पष्ठवाट् च पष्ठौही च ) पीठ से बोझा उठाने वाले बैल, हाथी, गधा, घोड़ा आदि नर और मादा जन्तु, (उक्षा च वशा च) वीर्य सेचन में समर्थ बैल और वीर्य धारण में समर्थ गौएं। इसी प्रकार 'वशा' वन्ध्या गौ, और बांझ किये हुए बैल, ( ऋषभः च ) बलवान् बैल, ( वेहत् च ) गर्भ-घातिनी गौ, ( अनड्वान् च ) शकट में लगनेवाला बैल और ( धेनुः च ) दुधार गौ, ये सब प्रकार के पशु ( मे ) मुझे ( यज्ञेन ) यज्ञ या राष्ट्र पालन द्वारा ( कल्पन्ताम् ) खूब संख्या में प्राप्त हों।

[1] वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑पि॒जाय॒ स्वाहा॒ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ वस॑वे॒ स्वाहा॑ऽहर्प॒तये॒ स्वाहाह्ने॑ मु॒ग्धाय॒ स्वाहा॑ मु॒ग्धाय॑ वैन॒ꣳशि॒नाय॒ स्वाहा॑ विन॒ꣳशिन॑ऽआन्त्याय॒नाय॒ स्वाहान्त्या॑य भौव॒नाय॒ स्वाहा॒ भुव॑नस्य॒ पत॑ये॒ स्वाहाधि॑पतये॒ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑।[2] इ॒यं ते॒ राण्मि॒त्राय॑ य॒न्तासि॒ यम॑न ऊ॒र्जे त्वा॒ वृष्ट्यै॑ त्वा प्र॒जानां॒ त्वाधि॑पत्याय ॥ २८ ॥

( १ ) निचृदति शक्वरी। पंचमः। ( २ ) आर्ची बृहती। ऋषभः॥

भा०—( वाजाय स्वाहा ) वाज अर्थात् संग्राम की उत्तम शिक्षा हो। अन्न प्राप्ति कराने वाले चैत्र के समान प्रजा में अन्न की प्राप्ति वृद्धि, कराने वाले शासक की उत्तम कीर्त्ति हो। ( प्रसवाय ) ऐश्वर्य और प्रजोत्पादन के लिये स्वाहा उत्तम पुरुषार्थ, सत् शिक्षा हो। प्रसव अर्थात् वैशाख

के समान प्रचण्ड सूर्य से युक्त मास के समान अधिक तेजस्वी पुरुष को ( स्वाहा ) उत्तम यश और मानपद प्राप्त हो। ( अपिजाय ) उत्तम बुद्धि और ज्ञान में प्रसिद्ध होने के लिये ( स्वाहा ) उत्तम शिक्षा हो। ( अपिजाय ) ज्येष्ठ जिस प्रकार जल की अभिलाषा अधिक उत्पन्न करता है उसी प्रकार ज्ञान में लोगों की प्रवृत्ति कराने वाले पुरुष का उत्तम यश हो। (क्रतवे स्वाहा) उत्तम विज्ञान और कर्म की उत्तम शिक्षा और अभ्यास हो। योगादि से युक्त आषाढ़ मास के समान उत्तम कर्म और ज्ञान में प्रवृत्त कराने वाले पुरुष को उत्तम आदर और यश हो। (वसवे स्वाहा) वसु, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये उत्तम धन प्राप्त करने की शिक्षा हो। वसु अर्थात् श्रावण के समान प्राणियों को अन्न धन देकर बसाने वाले पुरुष या राजा का उत्तम आदर और यश हो। ( अहर्पतये स्वाहा ) दिनों के पालक, कालवित् पुरुष बनने की उत्तम शिक्षा हो। अथवा 'अहः पति' दिन के स्वामी सूर्य के समान तापकारी भाद्रपद के समान शत्रुओं को संताप देने वाले पुरुष अथवा दिन के पति सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का उत्तम आदर और यश हो। ( अन्हे मुग्धाय स्वाहा ) मेघ या कुहरे से आवृत दिन के समान अज्ञान मोह से घिरे ज्ञानी पुरुष को भी ( स्वाहा ) उत्तम वैराग्य की शिक्षा हो। मेघ से आवृत दिन के समान, मेघावृत आश्विन मास के समान रजोविलास में अचेत हुए पुरुष के लिये ( सु-आहा ) उत्तम शिक्षा हो। ( मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा) मोह में प्राप्त होकर विनष्ट होने वाले पुरुष को भी उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। कार्त्तिक मास के समान शीघ्र नाशवान् पदार्थों वा आचरणों में लिप्त पुरुष को उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। ( विनंशिने आन्त्यायनाय स्वाहा ) विविध प्रकार से विनाश को प्राप्त होने वाले या राष्ट्र को विनाश करने पर तुले हुए 'आन्त्यायन' अर्थात् अन्तिम, चरम, नीचतम कोटि तक पहुंचे हुए राजा को भी ( स्वाहा ) उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। मार्गशीर्ष मास के समान शीत हिम द्वारा सबके विनाशक और सबके अन्त में स्वयं शेष रहजाने वाले

सर्वसंहारक पुरुष का उत्तम यश हो। ( आन्त्याय भौवनाय स्वाहा ) सबसे अन्त में होने वाले, सर्वोच्च, परम भुवनों में व्यापक लोकपति को सब भुवनों के पालन के ज्ञान का उपदेश हो। भौवन अर्थात् जाठराग्नि को दीपन करके पुष्टिकारी प्राणियों के पोषक पौष के समान प्रजाओं को पुष्ट करने वाले पुरुष का उत्तम यश हो। ( भुवनस्य पतये स्वाहा ) भुवन समस्त प्राणियों के पालक को उत्तम शिक्षा हो। माघ के समान सबके पालक पुरुष का उत्तम आदर हो। ( अधिपतये स्वाहा ) सब के अधिपति को भी उसके पद के योग्य शिक्षा हो। इसी प्रकार फाल्गुन मास के समान अन्नादि द्वारा सुख कर पुरुष को उत्तम आदर मान प्राप्त हो। ( प्रजापतये स्वाहा ) प्रजा के पालक पुरुष को राज धर्म की उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। द्वादश मासों के ऊपर संवत्सर रूप से विराजमान संवत्सर के समान समस्त प्रजाओं को अपने उक्त बारहों रूपों में प्रजा के पालक राजा को उत्तम मान, यश प्राप्त हो।

इन शब्दों पर विशेष विवरण देखो यजुर्वेद अ० ६। मं० २०॥ सूर्य के जिस प्रकार १२ मास हैं और वे सूर्य के १२ रूप हैं उसी प्रकार संवत्सर तेजस्वी राजा के १२ रूप, तदनुसार उसके १२ नाम हैं।

( अमुग्धाय वैनंशिने ) और ( अविनंशिने आन्त्यायनाय ) ये दो महीधरसम्मत पदच्छेद हैं जो अ० ६। २० में आये पदों के ऊपर उसके अपने ही किये व्याख्यान से विरुद्ध हैं इसलिये असंगत हैं।

( इयं ते राट् ) हे राजन्! यह तेरी राजशक्ति या राज्य है। तू (मित्राय) अपने मित्र राजाओं को भी ( यन्ता असि ) अपने वश में करने वाला है, इससे तू ( यमनः ) 'यमन', सर्वनियामक है। ( ऊर्जे त्वा ) परम अन्नादि पोषक पदार्थों की रक्षा के लिये ( वृष्ट्यै त्वा ) प्रजा पर सुखों की वर्षा के लिये और ( प्रजानां आधिपत्याय ) प्रजाओं पर आधिपत्य या राज्य करने के लिये ( त्वा ) तुझे स्थापित करता हूं।

[1] आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता-
ꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पता-
मात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ
स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ।
[2] स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरञ्च । स्वर्देवा
ऽअगन्मामृताऽअभूम प्रजापतेः प्रजाऽअभूम वेट् स्वाहा ॥२९॥

( १ ) स्वराड् विकृतिः । पंचमः । ( २ ) ब्राह्मी उष्णिक् ऋषभः ॥

भा०—( आयुः ) आयु, दीर्घ जीवन, ( चक्षुः ) आंख, दर्शनशक्ति ( श्रोत्रं ) कान, श्रवणशक्ति, ( वाग् ) वाणी, भाषणशक्ति, ( मनः ) मन, मननशक्ति, ( आत्मा ) आत्मा, देह में व्यापक धारणशक्ति, (ब्रह्मा) चारों वेदों का विद्वान् अथवा देह में अन्तःकरण चतुष्टय, ( ज्योतिः ) प्रकाश, स्वयंप्रकाश परमात्मा और विद्याप्रकाश, ( स्वः ) परम सुख, आनन्दमय मोक्ष, ( पृष्ठं ) ज्ञान करने की इच्छा, पालनशक्ति, सर्वाश्रयता अथवा सर्वोपरि मोक्ष, ( यज्ञः ) उपास्य देव और उपासनादि धर्माचरण, ( स्तोमः च ) स्तुति के मन्त्र अथर्ववेद ( यजुः च ) यजुर्वेद ( ऋक् च ) ऋग्वेद, ( साम च ) सामवेद ( बृहत् च रथन्तरं च ) बृहत् और रथन्तर नामक साम विशेष ये समस्त ज्ञान ( यज्ञेन ) योग-साधन, सत्संग, धर्मानुष्ठान, देवोपासना आदि से ( कल्पताम् ) सिद्ध और फलप्रद हों । हम (देवाः) देव, विजयी, ज्ञानवान् होकर (स्वः) परम मोक्ष एवं सुखमय राज्य को (अगन्म) प्राप्त हों । हम (अमृताः) अमृत, मोक्ष सुख को प्राप्त एवं दीर्घायु ( अभूम ) हों ( प्रजापतेः प्रजाः अभूम ) प्रजा के पालक परमेश्वर और उत्तम राजा की प्रजा बन कर रहें । (वेट्) उत्तम सत्कर्मानुष्ठान द्वारा

२९—०मात्मायज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां ब्रह्म यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेन कल्पताम् । इति काण्व० ॥

(स्वाहा) उत्तम यश और मान आदर को प्राप्त करें। विशेष विवरण देखो यजुर्वेद अ० ६। २१। २२॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म्म साविषत् ॥ ३० ॥

व्याख्या देखो अ० ६। म० ५॥

विश्वे ऽअद्य मरुतो विश्व ऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवा ऽअवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो ऽअस्मे ३१

लुशो धानाक ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०— ( अद्य ) आज ( विश्वे मरुतः ) समस्त विद्वानगण, प्रजाजन और सैनिक पुरुष ( आ गमन्तु ) इस राष्ट्र में मुझे प्राप्त हों, मेरे समीप आवें। ( विश्वे ) और सभी जन (ऊती) अपनी रक्षा और सामर्थ्य सहित आवें। ( विश्वे अग्नयः ) समस्त ज्ञानी, शत्रुसंतापक एवं अग्रणी नेता पुरुष ( समिद्धाः ) अग्नियों के समान प्रदीप्त, तेजस्वी होकर ( भवन्तु ) रहें। (विश्वे देवाः) समस्त दानशील और ज्ञानद्रष्टा और विजयेच्छु पुरुष (अवसा) अपने ज्ञान और पालन सामर्थ्य से (आगमन्तु) प्राप्त हों। और ( विश्वम् ) समस्त ( द्रविणम् ) ऐश्वर्य और ( वाजः ) अन्न ( अस्मे ) हमारे उपभोग के लिये ( अस्तु ) हो।

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः।
वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ॥ ३२ ॥

वाजो, अन्नं देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—( नः ) हमारा ( वाजः ) अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य और पराक्रम ( सप्त ) सातों ( प्रदिशः ) प्रदेशों अर्थात् लोकों और ( परावतः ) दूर दूर

२३—'०धनसाता इहावतु' इति काण्व०।

२४—'सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम्' इति काण्व०।

तक फैली (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओं को प्राप्त हो (नः वाजः) हमारा ऐश्वर्य और पराक्रम (धनसातौ) धन, ऐश्वर्य के विभाग और प्राप्त करने में (इह) इस राष्ट्र में भी (विश्वैः देवैः सह) समस्त विद्वानों, शासकों, और दानशील या विजयी पुरुषों द्वारा (अवतु) हमारी रक्षा करे।

**वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ२ऽऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वाऽआशा वाजपतिर्जयेयम्॥३३॥**

वाजपतिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

**भा०**—(वाजः) अन्नादि ऐश्वर्य और पराक्रम ही (नः) हमारी (अद्य) अब (दानं) दानशक्ति को (प्रसुवाति) उत्पन्न करे और बढ़ावे। (वाजः) वह अन्नादि ऐश्वर्य और पराक्रम ही (देवान्) देव, विद्वान् और विजयी पुरुषों को (ऋतुभिः) ऋतुओं के अनुसार (कल्पयाति) हृष्ट पुष्ट और कार्य करने में अधिक समर्थ बनावे। (वाजः) अन्नादि ऐश्वर्य ही (मा) मुझ को (सर्ववीरं) समस्त वीर पुरुषों से युक्त, समस्त वीर्यवान् पुत्रों और समर्थ प्राणों से युक्त (जजान) करे है। मैं (वाजपतिः) उस अन्न और बल का पालक, स्वामी होकर ही (विश्वा आशाः जयेयम्) समस्त कामनाओं और दिशाओं का विजय करूं।

**वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वाऽआशा वाजपतिर्भवेयम्॥३४॥**

वाजपतिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

**भा०**—(वाजः) ऐश्वर्य और पराक्रम (नः) हमारे (पुरस्तात्) आगे, (उत मध्यतः) और बीच में भी रहे। (वाजः) वह ऐश्वर्य और पराक्रम ही (देवान्) देव, विद्वानों और विजयी पुरुषों और दानशील

३४—'विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्' इति काण्व०॥

पुरुषों को ( हविषा ) अन्नादि समृद्धि से ( वर्धयाति ) बढ़ाता है। ( वाजः हि ) वह ऐश्वर्य ही ( मा सर्ववीरं चकार ) मुझे सब वीर सैनिकों, पुत्रों और प्राणों से युक्त करता है। मैं ( वाजपतिः ) उस ऐश्वर्य का स्वामी होकर ( सर्वाः आशाः ) सब अभिलाषाओं और दिशाओं पर ( भवेयम् ) प्रभु हो जाऊं।

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः।
सोऽहं वाजꣳ सनेयमग्ने ॥ ३५ ॥

अग्निर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! अग्रणी ! विद्वन् ! राजन् ! मैं (मा) अपने को ( पृथिव्याः पयसा ) पृथिवी के पुष्टिकारक रस से (सं सृजामि) युक्त करूं। और ( मा ) अपने को ( ओषधीभिः ) ओषधियों द्वारा भी ( संसृजामि ) युक्त करूं। ( सः अहं ) वह मैं ( वाजं ) नानाविध अन्न ऐश्वर्य का इस प्रकार ( सनेयम् ) उत्तम रीति से सेवन करूं।

पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ ३६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ।

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने ! सूर्य ! तेजस्विन् ! परमेश्वर ! विद्वन् ! तू (पृथिव्याम्) पृथिवी में ( ओषधीषु ) ओषधियों में (दिवि) द्यौलोक, आकाश या सूर्य प्रकाश में और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष वायु या जल में (पयः) पुष्टिकारक रस को (धाः) स्थापित कर। (प्रदिशः) समस्त दिशाएं ( मह्यम् ) मेरे लिये ( पयस्वतीः ) पुष्टिकारक रस से पूर्ण ( सन्तु ) हों।

विद्वान् लोग भी पृथिवी, ओषधिगण, सूर्य और वायु सब में से पुष्टिकारक रस या सार पदार्थ को ग्रहण करने का यत्न करें। इस प्रकार मैं राजा एवं प्रजाजन समस्त दिशाओं से अन्न आदि रस ग्रहण करें।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥ ३७ ॥

भा० – हे राजन् ! (सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक परमेश्वर के (प्रसवे) शासन और ऐश्वर्य में और (अश्विनोः बाहुभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा दोनों के प्रताप और शीतलता, प्रचण्डता और सौम्य और उग्र रूप ( बाहुभ्याम् ) शक्तियों से, (पूष्णः) पुष्टिकारक अन्न या पृथिवी के ( हस्ताभ्याम् ) वशीकरण और आकर्षण करने वाले सामर्थ्यों से ( सारस्वत्यै वाचः ) सरस्वती, ज्ञानरूप वाणी, या विद्वत्सभा के उपदेश या व्यवस्था बल से (यन्तुः) नियन्ता (अग्नेः) शत्रुसंताप सेनापति या राजा के ( यन्त्रेण ) नियामक बल से और (साम्राज्येन) साम्राज्य के अधिकार से तुझे (अभिषिंचामि ) अभिषिक्त करता हूं । तुझे सर्वविजयी सर्वप्रेरक पद का ऐश्वर्य देता हूं । ( अश्विनोः ) अर्थात् तुझे सूर्य के समान प्रचण्डता, चन्द्र के समान शीतलता अर्थात् निग्रह और अनुग्रह का सामर्थ्य देता हूं । पूषा अर्थात् अन्न या पृथिवी के समान दानशीलता सरस्वती, वेदवाणी या व्यवस्था सभा का आज्ञा देने का अधिकार और नियामक पुरुष का नियामक बल तुझे सौंपता हूं और साम्राज्य पदपर अभिषिक्त करता हूं ।

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३८॥

भा०—( ऋताषाट् ) ऋत, सत्यव्यवहार का सहन करने वाला, असत्य को न सहनेवाला या ऋत, सत्य ज्ञान के बल पर समस्त पृथिवी का विजय करने वाला, ( ऋतधामा ) सत्य ज्ञान रूप अविनाशी तेज वाला, ( अग्निः ) सूर्य या अग्नि के समान जो तेजस्वी ( गन्धर्वः ) गौ, पृथिवी वाणी और इन्द्रियों को अपने वश में करने में समर्थ होता है वह 'अग्नि'

३८ —अथातो द्वादश राष्ट्रभृतः ॥

नाम से कहे जाने योग्य है। ( तस्य ) उस सूर्य या अग्नि के ( ओषधयः ) तेज को धारण करने वाली ओषधियें ( मुदः ) समस्त संसार को हर्ष, सुख प्रदान करने वाली ( अप्सरसः ) जल में उतराने वाली या जल से बढ़ने वाली होने से 'अप्सरस्' हैं और समस्त प्राणियों को हर्ष देने से 'मुद्' नाम वाली हैं। उसी प्रकार उस राजा के ( अप्सरसः ) ज्ञान और कर्म के मार्ग में आगे बढ़ने वाली प्रजाएं भी (मुदः नाम) सब प्रजाओं को और स्वयं भी मोद करने वाली होने से वे भी 'मुद्' नाम वाली हैं। (सः) वह अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नः) हमारे (इदम्) इस ( ब्रह्म ) ब्राह्मण कुलों और ( क्षत्र ) क्षत्रिय कुलों की ( पातु ) रक्षा करे। ( तस्मै ) उसे। वाट् ) राज्य-भार वहण करने वाला पद ( सु-आहा ) उत्तम रीति से प्रदान किया जाय। और ( ताभ्यः ) उसकी उन प्रजा और ज्ञान कर्म में विचरनेवाली विद्वान्, शक्तिशाली योग्य प्रजाओं को भी ( सु-आहा ) उत्तम आदर और यश हो।

**सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम स न इदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥**

सूर्यो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

**भा०**—( सूर्यः ) सूर्य जिस प्रकार ( संहितः ) समस्त पृथिवी, जल आदि भूतों में अपने किरणों से व्याप्त होकर उनको परस्पर मिलाने हारा और दिन और रात को सन्ध्या द्वारा मिलाने हारा, और ( विश्वसामा ) समस्त विश्व में व्यापक होता है और वह (गन्धर्वः) गौ, किरणों को धारण करता और पृथ्वी का भरण पोषण करता है। उसी प्रकार सूर्य के समान विद्वान् राजा भी ( संहितः ) समस्त विद्वान् योग्य पुरुषों और शासकों और राज्यांगों को परस्पर मिलाने वाला, ( विश्वसामा ) समस्त

राज्य में सब के प्रति समान भाव से न्यायानुकूल होकर विद्यमान रहता है, वह ( गन्धर्वः ) पृथिवी को धारण करने में समर्थ 'सूर्य' कहाने योग्य है ( तस्य ) उसकी ( अप्सरसः ) ज्ञान और कर्म में कुशल प्रजाएं जल के परमाणुओं में व्यापक ( मरीचयः ) सूर्य की किरणों के समान स्वयं ( मरीचयः ) अज्ञान या शत्रु-बल के नाश करनेवाली सेनाएं ( आयुवः नाम ) परस्पर संगत, सुव्यवस्थित होकर रहने और युद्ध में जाने से 'आयु' नाम से कहाती हैं। ( सः नः इदं० ) इत्यादि पूर्ववत्।

**सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥**

चन्द्रमा देवता। निचृदार्षी जगती। निषादः॥

भा०—( चन्द्रमाः ) चन्द्र जिस प्रकार ( सुषुम्णः ) उत्तम सुखप्रद, अथवा सुखस्वप्न या निद्रा का देने वाला और ( सूर्यरश्मिः ) सूर्य की रश्मियों से प्रदीप्त होने वाला और ( गन्धर्वः ) रश्मियों को धारण करने से 'गन्धर्व' है ( तस्य ) उसके ( नक्षत्राणि ) नक्षत्रगण ( अप्सरसः ) स्त्रियों के समान भोग्य, एवं ( भेकुरयः ) भा, दीप्ति करने से 'भेकुरि' कहाती हैं उसी प्रकार ( चन्द्रमाः ) आह्लादकारी राजा भी चन्द्र के समान है। वह ( सुषुम्णः ) प्रजाओं को उत्तम सुख देने वाला ( सूर्यरश्मिः ) सूर्य के समान तेजस्वी, ( गन्धर्वः ) पृथ्वी का रक्षक है। (तस्य) उसके ( अप्सरसः ) ज्ञान, कर्म और प्रजाओं में विचरण करने वाली उत्तम प्रजाएं ( नक्षत्राणि ) कभी परास्त न होने वाली होने से 'नक्षत्र' कहाती हैं। वे ज्ञान दीप्ति करने वाली होने से 'भेकुरि' नाम से कहाती हैं। ( सनः इदं० इत्यादि ) पूर्ववत्।

**इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽअप्सरसऽऊर्जो नाम। स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४१॥**

वातो देवता । ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—जिस प्रकार ( वातः ) वायु ( इषिरः ) तीव्र वेगवान्, ( विश्वव्यचाः ) और समस्त विश्व में व्यापक एवं ( गन्धर्वः ) गो नाम पृथिवी, मध्यम वाणी और विद्युत् को अन्तरिक्ष में धारण पोषण करता है, ( तस्य ) उसके आश्रय पर ( आपः ) जल ही ( अप्सरसः ) अन्तरिक्ष में गतिमान् होकर मेघ रूप में विचरते हैं । वे अन्न द्वारा विश्व के बलकारक होने से (ऊर्जः नाम) 'ऊर्ज' नाम से कहाते हैं । उसी प्रकार (वातः) वायु के समान प्रबल राजा ( इषिरः ) अति वेगवान्, सबका प्रेरक और सब के इच्छा योग्य, ( विश्वव्यचाः ) समस्त राष्ट्र में प्राण के समान व्यापक, सर्वप्रिय पुरुष ( गंधर्वः ) पृथ्वी को धारण पोषण करने में समर्थ है । ( तस्य ) उसके ( आपः ) आप्त जन ही ( अप्सरसः ) ज्ञान और कर्म में निष्ठ, ज्ञानी और प्रजा में व्यापक और ( ऊर्जः नाम ) राष्ट्र में बल उत्पन्न करने वाले होने से 'ऊर्ज्' नाम से कहे जाते हैं । (सः नः० इत्यादि पूर्ववत् ।

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा ऽअप्सरसः स्तावा नामं । स नं ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४२॥

यज्ञो देवता । आर्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—जिस प्रकार (यज्ञः) यज्ञ, प्रजापति (भुज्युः) सबका पालक सबको भोग्य फल का देने वाला, ( सुपर्णः ) उत्तम पालन सामर्थ्यों से युक्त, ( गन्धर्वः ) वेद वाणी को अपने भीतर धारण करने से 'गंधर्व' है । ( तस्य ) उसकी ( अप्सरसः ) प्रजाओं या कार्यकर्त्ताओं को प्राप्त होने वाली ( दक्षिणाः ) कार्य से दक्षता की उत्पादक दक्षिणायें, ( स्तावाः ) सुपात्र में दी जाकर यज्ञकर्त्ता और यज्ञ दोनों की स्तुति के कारण होने से 'स्तावा' नामक हैं उसी प्रकार ( यज्ञः ) राष्ट्र पालक, प्रजापति राजा भी

स्वतः ( भुज्युः ) प्रजा का पालक और राष्ट्र का भोक्ता, (सुपर्णः) आदित्य के समान उत्तम पालन सामर्थ्यों और उत्तम रथवाहनों से सम्पन्न, (यज्ञः) सबका संगतिकारक ( गंधर्वः ) पृथ्वी का धारण पोषक है। ( तस्य ) उसकी ( अप्सरसः ) ज्ञान और कर्म में व्याप्त ( दक्षिणाः ) राष्ट्र कार्य में बल उत्पन्न करनेवाली प्रजाएं ( स्तावाः नाम ) स्तुति योग्य होने से 'स्तावा' नाम से कहाती हैं। ( स० नः इदं० इत्यादि पूर्ववत् )

**प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य॑ऽऋक्सामान्य॑प्सरस॒ऽएष्ट॑यो नाम॑ । स न॑ऽइदं ब्रह्म॑ क्ष॒त्रं पा॑तु तस्मै॒ स्वाहा॒ वाट् ताभ्यः॒ स्वाहा॑ ॥ ४३ ॥**

विश्वकर्मा मनो देवता। विराडार्षी जगती। निषादः॥

भा०—( मनः ) ज्ञानवान् ( विश्वकर्मा ) समस्त विश्व का कर्त्ता, ( प्रजापतिः ) प्रजा का पालक राजा ( विश्वकर्मा ) सब राज्य के हितकर कर्मों को करनेहारा ( मनः ) शरीर में मन के समान सब का ज्ञाता, मननशील, ( गन्धर्वः ) पृथ्वी का पोषक है। ( तस्य ) उसके ( ऋक् सामानि अप्सरसः एष्टयः नाम ) ज्ञानानुकूल या स्तुत्य 'साम' शत्रुनाशक उपाय ही सब इष्ट कार्यों की साधक एवं प्रजा की प्रेरक आज्ञाएं 'एष्टिः' कहाती हैं। ( सः न० इत्यादि ) पूर्ववत्।

**स नो॑ भुवनस्य पते प्रजापते॒ यस्य॑ त॒ऽउ॒परि॑ गृ॒हा यस्य॑ वे॒ह । अ॒स्मै ब्रह्म॑णे॒ऽस्मै क्ष॒त्राय॒ महि॒ शर्म॑ यच्छ॒ स्वाहा॑ ॥ ४४ ॥**

प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे ( भुवनस्य पते ) समस्त भुवनों, उत्पन्न प्राणियों और लोकों के पालक! स्वामिन्! हे ( प्रजापते ) प्रजा के पालक! ( यस्य ) जिस ( ते ) तेरे ( उपरि ) ऊपर, तेरे आश्रय पर ( गृहाः ) गृह, गृहस्थ पुरुष ( वा ) और ( यस्य ) जिसके ऊपर ( इह ) इस राष्ट्र और लोक के

अन्य प्राणि भी आश्रित हैं वह तू ( अस्मै ) इस ( ब्रह्मणे ) ब्रह्म, वेद और ईश्वर के जानने वाले और ( अस्मै क्षत्राय ) राष्ट्र को क्षति से बचाने वाले इस क्षत्रियवर्ग को ( स्वाहा ) उत्तम रीति से ( महि शर्म ) बड़ा सुख और शान्ति ( यच्छ ) प्रदान कर ।

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥ ४५ ॥

प्रजापतिर्देवता । निचृदष्टिः मध्यमः ॥

भा०—हे (प्रजापते) प्रजा के पालक ! राजन् तू (समुद्रः असि) समुद्र के बड़ा गम्भीर, सब रत्नैश्वर्यों का आकर, सब ऐश्वर्यों का उत्पादक है । तू (नभस्वान्) आकाश में व्यापक वायु के समान सबका प्राणाधार और वायु के समान तीव्र वेगवान् है । तू ( आर्द्रदानु ) जलप्रद मेघ के समान आर्द्र भाव से प्रजा पर ऐश्वर्यों का त्याग करने हारा है । तू ( शंभूः ) जल के समान शान्तिदायक, ( मयो भूः ) तू परमेश्वर या आत्मा के समान परम-आनन्द जनक है । तू ( मा ) मुझ प्रजाजन को ( अभि वाहि ) साक्षात् रूप से प्राप्त हो । तू (मारुतः असिः) प्राणों में श्रेष्ठ आत्मा के समान मरुत् अर्थात् वायु के समान तीव्रगामी, शत्रुमारक सैनिकों सेनापतियों का भी स्वामी है । तू (मरुतां गणः) प्राणों के गण के समान स्वयं विद्वानों के समूह का आश्रय, उनके बीच में मुख्य रूप से गणना करने योग्य है । तू ( अवस्यूः ) अपनी और अपनी प्रजा का रक्षा करने का इच्छुक और (दुवस्वान्) उत्तम आचरण और सेवा या परिचरण करने योग्य है । तू (शंभूः) शान्ति का जनक ( मयोभूः ) सुखों का उत्पादक होकर ( मा अभि वाहि ) मुझे साक्षात् प्राप्त हो । (स्वाहा) हमारी यही उत्तम प्रार्थना स्वीकार हो । परमेश्वर के विषय में विशेषण स्पष्ट हैं ।

यास्ते॑ऽअग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिव॑मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑ ।
ताभि॑र्नो॒ऽअ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि ॥ ४६ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! (याः ते) जो तेरी (रुचः) अग्नि की दीप्तियों के समान प्रीतियां (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष में रहती हुई (रश्मिभिः) किरणों के समान नियमकारिणी व्यवस्थाओं से (दिवम्) आकाश के समान राजसभा को व्यापती हैं (ताभिः सर्वाभिः) उन सब प्रीतियों से (अद्य) आज के समान सदा ही ( नः ) हमें ( जनाय रुचे ) सर्वसाधारण प्रजाजन के प्रीति का पात्र ( कृधि ) कर अर्थात् परमेश्वर की जिस प्रकार दीप्तियें सूर्य में रह कर महान् आकाश के ग्रहादि को प्रकाशित करती हैं उसी प्रकार जो विद्वान् राजा के प्रति वेदज्ञ विद्वान् के प्रेम हैं उनसे हम अन्य विद्वज्जन राजगण भी सर्वसाधारण के लोकप्रिय हों । शत० ६ । ४ । २ । १४ ॥

या वो॑ दे॒वाः सूर्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ या रुचः॑ ।
इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभि॒ः सर्वा॑भी॒ रुचं॑ नो धत्त बृहस्पते ॥ ४७ ॥

भा०—हे ( देवाः ) विद्वान् एवं विजिगीषु पुरुषो ! ( वः ) तुम्हारी ( याः ) जो प्रीतियां ( सूर्येः ) सूर्य के समान तेजस्वी राजा में, ( गोषु ) गौ आदि पशुओं और ( अश्वेषु ) अश्वादि युद्धोपयोगी पशुओं में हैं, हे (इन्द्राग्नी बृहस्पते) इन्द्र ! अग्ने ! बृहस्पते ! सेनापते ! राजन् ! वेदज्ञ विद्वन् ! ( ताभिः सर्वाभिः ) उन सब प्रेमों से ( नः ) हम में ( रुचं धत्त ) प्रेम का स्थापन करो । अर्थात् गवादि पशुओं का पालन करें । हम भी उक्त राजा, सेनापति महामात्य आदि के प्रेमपात्र हों । व्याख्या देखो अ० १३।२२, २३॥

रुचं॑ नो धेहि ब्राह्म॒णेषु॒ रुच॒ꣳ राज॑सु नस्कृधि ।
रुचं॒ विश्ये॑षु शू॒द्रेषु॒ मयि॑ धेहि रु॒चा रुच॑म् ॥ ४८ ॥

शुनःशेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(नः ब्राह्मणेषु) हमारे ब्राह्मणों में ( रुचा ) अपने व्यापक प्रेम

द्वारा ( रुचं धेहि ) परस्पर प्रेम प्रदान कर। ( नः राजसु ) हमारे राजगणों में ( रुचं धेहि ) प्रेम प्रदान कर। (विश्येषु) प्रजाओं में विद्यमान वैश्यजनों में और ( शूद्रेषु ) शूद्रों में भी ( रुचं धेहि ) प्रेम प्रदान कर और ( मयि ) मेरे में भी तू (रुचा) अपने विशाल प्रेम द्वारा ( रुचं धेहि ) प्रेम प्रदान कर। अर्थात् राजा हम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब में प्रेम पैदा करे। आपस में घृणा और द्वेष के बीज बोकर न फोड़े रक्खे और (मयि) मेरे निमित्त और प्रजा जनों में प्रेम पैदा करे। अर्थात् प्रत्येक पुरुष के प्रति सबका प्रेम हो। हरएक समझे कि मैं समस्त देश वासियों का प्रिय हूं और समस्त देशवासी अपने देशवासी को अपना प्रिय जाने। उसी प्रकार परमेश्वर भी हम में प्रेम पैदा करे।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हुविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा नु ऽआयुः प्रमोषीः॥ ४६॥

शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य! सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! (ब्रह्मणा) ब्रह्म, वेद द्वारा (त्वा वन्दमानः) तेरी स्तुति करता हुआ मैं (त्वा यामि) तुझ से याचना करता हूं या तुझे प्राप्त होता हूं। ( यजमानः ) उपासना करने हारा ( हविर्भिः ) यज्ञ योग्य हवियों और स्तुतियों से भी ( तत् ) उसी परम प्रेम का ( आशास्ते ) कामना करता है कि, हे ( उरुशंस ) बहुतों से स्तुति किये जाने हारे या बहुतसों को ज्ञान द्वारा उपदेश देने हारे! तू ( अहेडमानः ) कभी अनादर न किया जाकर, स्वयं सौम्य भाव से (इह), यहां ( बोधि ) हमें अपना ज्ञान प्रदान कर। और ( नः आयुः ) हमारे जीवन ( मा प्र मोषीः ) मत अपहरण कर। शत० ६। ४। २। १७॥

राजा के पक्ष में—हे ( वरुण ) स्वयंवृत, श्रेष्ठ राजन्! हे ( उरुशंस ) बहुतों के शिक्षक! अति ज्ञानवन्! ( ब्रह्मणा ) अन्नादि सहित या महान् वाग्रूप ऐश्वर्य पुरस्कार सहित ( त्वा वन्दमानः ) तेरी वन्दना, अभिवादन

करता हुआ मैं प्रजाजन ( हविर्भिः यजमानः ), स्तुति-वचनों और उपादेय भेटों सहित तुझे प्राप्त होता हुआ ( तत् यामि, तत् आशास्ते ) उस परम प्रेम और रक्षा की याचना करता और चाहता हूं कि तू (अहेडमानः) प्रजा के प्रति अनादर और क्रोध न करता हुआ ( इह बोधि ) यहां अपना कर्त्तव्य समझ और ( नः ) हम प्रजाओं के ( आयुः ) जीवनों का ( मा प्र मोषीः ) अपहरण मत कर, व्यर्थ को प्रजा को दण्डित मत कर ॥

स्व॒र्ण घ॒र्मः स्वाहा॒ स्व॒र्णार्कः स्वाहा॒ स्व॒र्ण शु॒क्रः स्वाहा॒
स्व॒र्ण ज्योति॒ः स्वाहा॒ स्व॒र्ण सूर्यः॒ स्वाहा॑ ॥ ५० ॥

सूर्योऽग्निर्देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—( स्वः नः ) सूर्य के समान ( घर्मः ) तेजस्वी पुरुष शत्रुओं का तापदायक होकर ( स्वाहा ) उत्तम यश को प्राप्त हो । ( स्वः नः ) सूर्य के समान ( अर्कः ) अर्चनीय, स्तुत्य पुरुष ( स्वाहा ) उत्तम पद को प्राप्त हो । ( स्वः न ज्योतिः ) सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश से युक्त पुरुष ( स्वाहा ) उत्तम पद को प्राप्त हो ! ( स्वः न सूर्यः ) सुखमय सूर्य के समान सबका प्रेरक होकर राजा ( स्वाहा ) उच्च पद और उत्तम यश को प्राप्त हो । शत० ६ । ४ । २ । १६–२३ ॥

अग्निरर्कः असौ आदित्योऽश्वमेधः तौ सृष्टौ नाना इवास्तां तौ देवाः आहुतिभिः समतन्वन्त्समदधुः ॥ शत० ६।४।२।१८॥ असौ वा आदित्यो घर्मः । असुं तदादित्यं असौ प्रतिष्ठापयति । शत० ६ । ४ । ३ । १६ ॥

अर्थात् अग्रणी नेता में सूर्य के गुणों का प्रतिपादन किया है । उसको सूर्य के समान बतलाया है ॥

भौतिक पक्ष में—( घर्मः ) ताप ( अर्कः ) अग्नि ( शुक्रः ) वायु ( ज्योतिः ) विद्युत् ( सूर्यः ) सूर्य ये सब ( स्वाहा ) उत्तम विज्ञानपूर्वक क्रिया और प्रयोगों द्वारा ( स्वः ) सुखजनक हों । अथवा सूर्य के समान

शत्रुसंतापक, अग्नि के समान तेजस्वी, वायु के समान शुद्ध, विद्युत् के समान दीप्तिमान्, सूर्य के समान प्रवर्त्तक होकर राजा ( स्वः ) सबका सुखकारी हो। ( स्वाहा ) उत्तम यश प्राप्त करे।

**अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम्। तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम्**

अग्निर्देवता। स्वराडार्षी। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( घृतेन ) घृत द्वारा जिस प्रकार ( अग्निम् ) अग्नि को यज्ञ में आधान किया जाता है उसी प्रकार ( शवसा ) बल पराक्रम के द्वारा ( वयसा ) व्यापक सामर्थ्य और ज्ञान से ( बृहन्तम् ) महान् ( दिव्यम् ) शुद्ध गुणों में उत्कृष्ट, ( सुपर्णम् ) उत्तम पालन करने वाले साधनों से सम्पन्न, ( अग्निम् ) ज्ञानवान् एवं शत्रुओं के संतापक अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी पुरुष को ( युनज्मि ) राष्ट्र के उच्च पद पर नियुक्त करता हूं। ( तेन ) उसके द्वारा स्वयं हम लोग ( उत्तमम् ) उत्तम, सर्वोत्कृष्ट ( नाकम् ) दुःखों से रहित ( स्वः ) सुखों से समृद्ध राष्ट्र को ( अधिरुहाणाः ) बराबर प्राप्त होते हुए ( ब्रध्नस्य ) महान्, सर्वाश्रय राष्ट्र के ( विष्टपं ) भीतर प्रविष्ट लोकों के पालक या पीड़ा, ताप आदि दुःखों से रहित स्थान को ( गमेम ) प्राप्त होवें। शत० ६। ७। ४। ३॥

परमात्मा के पक्ष में—( दिव्यं, सुपर्णं ) दिव्य तेजोमय, उत्तम ज्ञानवान्, ( वयसा बृहन्तम् ) सामर्थ्य से महान्, ( अग्निम् ) ज्ञानमय आत्मा को ( घृतेन शवसा ) कान्तिमय बल द्वारा ( युनज्मि ) परमेश्वर के साथ योगाभ्यास द्वारा लगाता हूं। ( तेन ) हम ( नाकम् उत्तमं स्वः रुहाणाः ) सुखमय उत्तम स्वर्गमय लोक को प्राप्त होते हुए ( ब्रध्नस्य विष्टपं )

---

'तेन गमेम०' इति काण्व०।

आदित्य के समान तेजोमय परमब्रह्म के क्लेश-तापरहित स्वरूप को प्राप्त करें।

भौतिक पक्ष में—मैं शिल्पी ( घृतेन शवसा ) चिकने पदार्थ घी, तैल रूप बल से इस ( अग्निम् ) अग्नि विद्युत् को विमान आदि में जोड़ता हूं जो ( सुपर्णम् ) उत्तम गमन साधन चक्र और पक्षों से युक्त ( वयसा बृहन्तम् ) बल में बड़ा है। उससे हम महान् आकाश में गमन करें।

**इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्या॒ᳪं रक्षा॒ᳪंस्यपह॒ᳪंस्यग्ने। ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः**

अग्निर्देवता। विराड् आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी पुरुष ! ( इमौ ) ये दोनों ( अजरौ ) कभी नाश न होने वाले ( पतत्रिणौ ) पक्षी के पक्षों के समान युद्ध में आगे बढ़ने वाले सेना के दो पहलू हैं। ( याभ्याम् ) जिनसे तू ( रक्षांसि ) विघ्न बाधा करने वाले शत्रुओं को ( अपहंसि ) मार भगाता है ( ताभ्याम् ) उन दोनों के बल पर ( सुकृताम् ) उत्तम आचारवान् पुण्यात्मा पुरुषों के ( लोकम् ) लोक, स्थान को प्राप्त हों ( यत्र ) जहां (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न, ज्येष्ठ (ऋषयः) ऋषि, ज्ञानद्रष्टा लोग (जग्मुः) प्राप्त होते हैं। शत० ९।४।४।४॥

अथवा—सभा में वाद-विवाद करने वाले दो पक्ष हैं जिनसे (रक्षांसि) बाधक तर्कों का नाश किया जाता है उन द्वारा ही ( सुकृताम् ) उत्तम विद्वानों के उस ( लोकम् ) साक्षात् दृष्ट सिद्धान्त तक हम पहुंचें जिसपर ( प्रथमजाः ) पूर्व उत्पन्न ( पुराणाः ) पुरातन ( ऋषयः ) मन्त्रार्थ द्रष्टा लोग ( जग्मुः ) पहुंचे हैं।

अध्यात्म में—ये दो ( पक्षौ ) स्वीकार करने योग्य, कार्य कारणरूप या आत्मा परमात्मा रूप ( अजरौ ) अजर अविनाशी ( पतत्रिणौ ) उच्च

५२—०'पक्षा अजरौ'० इति काण्व०॥

लोक में ले जाने वाले हैं। जिनके बल पर हे ( अग्ने ) ज्ञानी पुरुष ! तू ( रक्षांसि ) बाधक पाप दोषों को नष्ट करता है। उन दोनों के बल पर हम भी ( सुकृताम् उ लोकं ) सत्पुरुषों के द्रष्टव्य आत्मस्वरूप परमानन्द को प्राप्त हों ( यत्र ) जहां ( ऋषयः ) वेदार्थ वेत्ता और विद्वान् जन ( प्रथमजाः ) सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म परमेश्वर में दीक्षित होकर पहुंचते हैं।

इन्दुर्दक्षः श्येन ऽऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः।
महान्त्सधस्थे ध्रुव ऽआ निषत्तो नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिꣳसीः॥५३

इन्दुर्देवता। आर्षी पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—( इन्दुः ) चन्द्र के समान शीतल स्वभाव, ऐश्वर्यवान्, ( श्येनः ) बाज के समान पराक्रमी, ( दक्षः ) बलवान्, प्रज्ञावान्, ( शकुनः ) शक्तिशाली, ( हिरण्यपक्षः ) सुवर्ण आदि हित और रमणीय पदार्थों को ग्रहण करने हारा, ( ऋतावा ) सत्य कर्म और आचरण वाला, धर्मशास्त्र का स्वामी ( भुरण्युः ) प्रजा का पालक राजा ( महान् ) महान् होकर ( सधस्थे ) अपने अनुयायियों सहित एकत्र राज्यासन या सभाभवन में ( ध्रुवः ) ध्रुव, स्थिर होकर ( आ निषत्तः ) आसन पर विराजता है। हे राजन् ! ( ते ) तुझे ( नमः अस्तु ) नमस्कार हो। ( मा ) मुझ प्रजाजन को ( मा हिंसीः ) मत मार। शत० ६। ४। ४। ५॥

परमेश्वर के पक्ष में—( इन्दुः ) चन्द्र के समान प्रेमार्द्र, ( श्येनः ) ज्ञानवान्, (ऋतावा) सत्य ज्ञानवान्, ( हिरण्यपक्षः ) तेजस्वी, ( शकुनः ) सर्वशक्तिमान् ( भुरण्युः ) पालक पोषक, महान् ( सधस्थे ) सदा साथ ( ध्रुवः ) नित्य अविनाशी होकर विराजमान है। तुझे नमस्कार है। तू मुझे पीड़ित मत कर।

दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्।
विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे॥ ५४ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन्! जिस प्रकार ( दिवः मूर्धा ) सूर्य आकाश का और तेजोमय पिण्डों या प्रकाश का ( मूर्धा ) उत्तमाङ्ग, शिर के समान सर्वोच्च है उसी प्रकार ( दिवः ) ज्ञानवान् पुरुषों की बनी राजसभा के ( मूर्धा ) मूर्धा शिरोमणि, प्रधान, सर्वोच्च पद पर विराजमान ( असि ) है । तू (पृथिव्या नाभिः) पृथिवी के नाभि के समान समस्त पृथ्वी के राज्य का प्रबन्ध करनेवाला राष्ट्र का मुख्य केन्द्र है । तू ( अपाम् ऊर्ग् ) जलों के उत्कृष्ट रस अन्न के समान ( अपाम् ) आप्त प्रजा जनों का (ऊर्क् ) सर्वोत्तम बलरूप, पराक्रमी, सार रूप है । (ओषधीनाम्) वीर्यवती ओषधियों के बीच में सोम के समान तेजस्विनी क्षात्र सेनाओं में सेनापति है । तू ( विश्वायुः ) वायु के समान समस्त प्रजाओं का जीवनप्रद, ( शर्म ) गृह के समान शरण और ( सप्रथाः ) समान रूप से सर्वत्र विख्यात, एवं सर्वत्र महान् है । ( पथे ) सब के मार्गस्वरूप, सबको उद्देश्य तक पहुंचाने वाले तुझे ( नमः ) नमस्कार हो । तुझे प्रजा के वश करने का बल अधिकार प्राप्त हो । परमेश्वर के पक्ष में स्पष्ट है । शत० ९ । ४ । ४ । १२ ॥

विश्वस्य मूर्द्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त । दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन्! सभापते! तू (विश्वस्य मूर्धन् अधि तिष्ठसि) सूर्य के समान समस्त राष्ट्र के शिरपर अधिष्ठाता रूप से विराजता है । तू (श्रितः) समस्त प्रजाओं द्वारा और आश्रय सेवित है । ( ते ) तेरा ( हृदयम् ) हृदय ( समुद्रे ) अन्तरिक्ष के समान व्यापक सर्वोपकारक परमेश्वर में मग्न हो । ( अप्सु आयुः ) प्रजाओं के उपकार के कार्यों में तेरा जीवन

व्यतीत हो। तू ( अपः दत्त ) ज्ञानों का और उत्तम कर्मों का उपदेश कर। अथवा ( अपः दत्त ) राष्ट्र में मेघ के समान कृषि आदि के निमित्त जलों का प्रदान कर और ( उदधिं भिन्त ) जिस प्रकार वायु जल धारण करनेवाले मेघ का भेदन करता है उसी प्रकार तू भी ( उदधिम् ) जल के धारण करने वाले सोतों और नदी-प्रवाहों को काट २ कर राष्ट्र में नहरों के रूप में बहा। ( दिवः ) सूर्य से या आकाश से ( पर्जन्यात् ) मेघ से ( अन्तरिक्षात् ) अन्तरिक्ष गत वायु से और ( पृथिव्याः ) पृथिवी से तथा ( ततः ) जहां कहीं भी जल हो वहां से प्रजा को जल प्राप्त करा और ( नः ) हमें ( वृष्ट्या ) मेघ के समान समस्त सुखों की वृष्टि से ( अव ) पालन कर। शत० १।४।४।१२॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः।
तस्य न ऽइष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः॥ ५६॥

गालव ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्षी उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—( यज्ञः इष्टः ) जो प्रजापालन रूप यज्ञ एवं प्रजापति, राजा स्वयं ( भृगुभिः ) परिपक्व विज्ञान वाले विद्वानों और शत्रुओं को भून देने वाले वीरों द्वारा ( इष्टः ) सम्पादित किया जाता है वह ( वसुभिः ) वसु नामक विद्वानों, एवं प्रजा को बसाने हारे ऐश्वर्यवान् राजाओं द्वारा (आशीर्दाः) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है। हे ( द्रविण ) ऐश्वर्य ! ( तस्य ) उस ( इष्टस्य ) सुसम्पादित ( प्रीतस्य ) सब के प्रिय इस यज्ञ के द्वारा तू ( नः ) हमें ( आगमेः ) आ, प्राप्त हो।

इष्टो ऽअग्निराहुतः पिपर्त्तु न ऽइष्टꣳ हविः।
स्वगेदं देवेभ्यो नमः॥ ५७॥

गालव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—( आहुतः ) आहुति द्वारा बढ़ाये गये ( अग्निः ) अग्नि के

समान तेजस्वी, सत्कार प्राप्त विद्वान्, अग्रणी राजा ( इष्टः ) आदर सत्कार प्राप्त करके ( नः ) हमें ( पिपर्त्तु ) पालन करे । और ( इष्टं ) हमें यथेष्ट ( हविः ) अन्नादि पदार्थों से ( पिपर्त्तु ) पूर्ण करे । ( देवेभ्यः ) विजिगीषु और ज्ञानप्रद, द्रष्टा विद्वान् पुरुषों के निमित्त ( इदम् ) यह ( नमः ) अन्न आदि सत्कार (स्वगा) अपने हितैषी पुरुषों को प्राप्त हों या वह अनायास, बिना मांगे आप से आप उन्हें प्राप्त हो ।

यदाकूतात्सुमसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा ।
तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥

५८—६५ विश्वकर्मा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! ( यत् ) जो कर्त्तव्यकर्म और ज्ञान ( आकूतात् ) मन की प्रवृत्ति के भी पूर्व आत्मा के भीतर विद्यमान सत्य उत्साह या तरंग विद्यमान होती है उससे ( हृदः ) हृदय से ( मनसः ) मनन करनेवाले अन्तःकरण से ( वा ) और ( चक्षुः ) आंख आदि बाह्य इन्द्रियों से ( संभृतम् ) सम्यक् प्रकार से प्राप्त हो और सञ्चित हो ( तत् ) उसके ( अनु ) अनुकूल ही ( सुकृताम् ) पुण्य आचारवान् सत् पुरुषों के (लोकम्) दर्शन योग्य परम उस सुखधाम स्थान और स्थिति को ( प्र इत ) प्राप्त करो ( यत्र ) जहां (प्रथमजाः) हम में उत्कृष्ट पद को प्राप्त, ( पुराणाः ) हम से पहले उत्पन्न बुजुर्ग (ऋषयः) वेदार्थ के ज्ञाता और द्रष्टा ( जग्मुः ) पहुंचे हैं । शत० ९ । ५ । १ । ४५ ॥

एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो ऽअत्र तꣳस्म जानीत परमे व्योमन् ॥५९॥

प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

५८—अतो अष्टौ वैश्वकर्मणानि ।

५९—'सधस्थं' इति उवटाभिमतः ।

भा०—हे ( सधस्थ ) एकत्र विद्वानों के बैठने के स्थान ! सभाभवन एवं सभाभवन में विराजमान विद्वान् राज्य-शासक जनो ! ( जातवेदाः ) ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाले समृद्ध पुरुष ( यम् ) जिस ( शेवधिम् ) धन कोश को ( आवहात् ) राष्ट्र से या व्यापारादि प्राप्त करके राजकोष में जमा कराते हैं ( एतम् ) उसका ( ते ) तेरे अधीन ( परिददामि ) प्रदान करता हूं । ( यज्ञपतिः ) यज्ञ रूप राष्ट्रव्यवस्था का पालन करने वाला राजा ( वः अनु आगन्ता ) आप लोगों के अनुकूल ही चलेगा । ( अत्र ) यहां, अब (तम्) उसको ही ( परमे व्योमन् ) परम, सर्वोत्कृष्ट विविध राष्ट्र कार्यों के रक्षक पद पर स्थित हुआ (जानीत स्म) जानो । शत० ६।५।१।४६॥

अध्यात्म में—हे जिज्ञासुओ ! ( यं शेवधि ) जिस ज्ञान के खज़ाने को ( जातवेदाः ) परमेश्वर या वेदार्थवित् विद्वान् धारण करता है वह मैं (ते परिददामि ) तुम जिज्ञासु जन को प्रदान करता हूं । ( यज्ञपतिः ) उपास्यदेव की उपासना का पालक, निष्ठ पुरुष ( वः ) तुमको ( परमे व्योमन् ) परमात्मा के विषय में ( अनु आगन्ता ) जिस अनुकूल उचित धर्मज्ञान का उपदेश करे ( तं जानीत स्म ) उसका ज्ञान करो ।

**एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य ।**
**यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्त्ते कृणवाथाविरस्मै ॥ ६० ॥**

प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( देवाः ) विद्वान् विजिगीषु, राजा लोगो ! आप लोग ( एतं ) इस अभिषिक्त सम्राट् को ही ( परमे व्योमन् ) परम सर्वोच्च रक्षक पद पर ( जानाथ ) जानो । हे ( सधस्थाः ) साथ ही एक सभा-भवन में विराजने वाले राजसभासद् पुरुषो ! ( अस्य ) इस ( रूपम् ) सबके प्रति प्रिय लगने वाले स्वरूप, अधिकार और कर्त्तव्य को ( विद )

६० — ०'कृणवथा०' इति काण्व० ।

जानो और उसको जनाओ। ( यद् ) जब भी ( देवयानैः ) विद्वानों और राजाओं द्वारा गमन करने योग्य ( पथिभिः ) मार्गों से ( आगच्छात् ) यह प्राप्त हो, तब ( इष्टापूर्त्ते ) अपने इष्ट, यज्ञ, दान आदि परोपकार के कार्य और 'आपूर्त' कूप तड़ाग आदि प्रजा के हितकारी कार्यों को (अस्मै) इसके निमित्त ( आविः कृणवाथ ) प्रकट करो। शत० १।५।१।४७॥

परमात्मा के पक्ष में—( एतं परमे व्योमन् जानाथ ) हे विद्वानो! इस परमेश्वर को परम स्थान में जानो। इसके रूप का साक्षात् करो। ( देवयानैः ) योगाभ्यास आदि देवयान मार्गों से वह तुम्हें साक्षात् हो, ( अस्मै ) परमेश्वर के प्रसन्न करने के लिये श्रद्धा से श्रौत स्मार्त कार्यों को प्रकट रूप से करो।

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स॒ꣳसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ६१
येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६२ ॥

भा०—६१,६२ दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अ० १५।५४,५५ ॥

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा।
ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६३ ॥

यज्ञो देवता। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—( प्रस्तरेण ) प्रस्तर, ( परिधिना ) परिधि, ( स्रुचा ) स्रुक्, ( वेद्या ) वेदि, ( बर्हिषा ) बर्हि, कुश ( ऋचा ) ऋग् मन्त्र, इन पदार्थों से जैसे यज्ञ का क्रियाकाण्ड सम्पादित किया जाता है उसी प्रकार (प्रस्तरेण) प्रस्तर, उत्तम रीति से राष्ट्र को विस्तार करने में कुशल, व्यवस्थापक क्षत्रिय, या क्षात्र बल, ( परिधिना ) परिधि अर्थात् राष्ट्र को सब ओर से धारण करने और रक्षा करने वाले वीर पुरुष, ( स्रुचा ) स्रुक् अर्थात् विद्वान्,

स्त्री-जन, गवादि पशु, वाणी अथवा प्रजाजन या तेजस्विनी सेना, (वेद्या) वेदि, पृथिवी ( ऋचा ) वाणी, ज्ञानमय व्यवस्था और धर्मशास्त्र, (वर्हिषा) और प्रजाजन इन पदार्थों से (इमं) इस ( नः ) हमारे ( यज्ञम् ) परस्पर सुसंगत यज्ञ को ( स्वः गन्तवे ) सुख प्राप्त करने के लिये ( देवेषु ) विद्वान् विजयी, भूपति लोगों के आश्रय पर (नय) चला। शत० ६।५।१।४८॥

( १ ) 'प्रस्तरः'—यजमानो वै प्रस्तरः। श० २।३।४।२।१६ ॥ क्षत्रं वै प्रस्तरः। श० १।३।४।२०॥

( २ ) परिधिः'—दिशः परिधयः। ऐ० ५।८। इमे लोकाः परिधयः। तै० ३।८।१८।४॥ गुप्त्यै वा अभितः परिधयो भवन्ति। श० १।३।४।२८॥

( ३ ) 'स्रुक्'—वाग् वै स्रुक्। श० ६।३।१।८॥ योषा हि स्रुक् श० १।४।४॥ बाहू वै स्रुचौ। श० ७।४।१।३६॥ इमे वै लोकाः स्रुचः। तै० ३।३।१।२॥

( ४ ) 'वेदिः'—पृथिवी वेदिः। ऐ० ५।२८॥

( ५ ) 'ऋक्'—वाग् इति ऋक्। तै० ३।४।२३।४॥

( ६ ) 'वर्हिः'—प्रजा वै 'बर्हिः। कौ० ५।५॥ क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हिः' श० १।३।४।१०॥

यद्दत्तं यत्प॑रा॒दानं॒ यत्पू॒र्त्तं याश्च॒ दक्षि॑णाः।
तद॒ग्निर्वै॑श्वकर्म॒णः स्व॑र्दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥ ६४ ॥

यज्ञो देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—( यत् ) जो ( दत्तम् ) दिया जाय. ( यत् ) जो ( परादानं ) दूसरों से लिया जाय (यत् पूर्त्तं) जो प्रजा के उपकार के लिये भी कूप, तड़ाग आदि बनवाये जावें, ( याः च ) और जो भी ( दक्षिणाः ) कर्म और परिश्रम के अनुरूप वेतन पुरस्कार आदि दिये जावें ( तत् ) उस सब को ( वैश्वकर्मणः ) विश्वकर्मा, राज्य के समस्त उत्तम कर्मों के प्रवर्त्तक राजा

पद पर विराजमान (अग्निः) विद्वान् नेता ही (देवेषु) विद्वान् द्रष्टा पुरुषों के आधार पर (नः) हम में (स्वः) सुख की वृद्धि के लिये (दधत्) स्थापित या नियत करे। शत० ६। ५। १। ४६॥

अर्थात् लेन देन का व्यवहार मकान, कूए बागीचे आदि और वेतन आदि सब राजकीय व्यवस्था में रहें उनका देना लेना, स्वामित्व आदि सरकारी कागज़ों और स्टाम्पों पर विद्वान् शासकों के अधीन स्थिर रूप से हो, जिससे प्रजा सुखी हों।

यत्र धारा ऽअनपेता मधोर्घृतस्य च याः।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत्॥ ६५॥

भा०—(यत्र) जिस राज्य में से (मधोः) मधु के समान मधुर अन्न और जल की (घृतस्य च) और घी, दूध की (याः) जो (धाराः) धाराएं होती हैं वे कभी भी (अनपेताः) जुदी न हों। इसी प्रकार (मधोः) शत्रु या दुष्ट पुरुषों के पीड़न, (घृतस्य च) घृत, तेज, पराक्रम की (धाराः) राज्य को धारण करनेवाली शक्तियां (यत्र) जिस राष्ट्र से कभी (अनपेताः) लुप्त न हों (तत्) ऐसे (स्वः) सुखकारी राज्य को। वैश्वकर्मणः अग्निः) राष्ट्र के सब उत्तम कर्मों के करनेवाला प्रजापति, अग्रणी, विद्वान् शासक (नः देवेषु) हमारे विद्वानों के आधार पर (दधत्) स्थापित करे। शत० ६। ५। १। ५०॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म ऽआसन्।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम॥ ६६॥

देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी। अग्निर्देवता।

भा०—मैं सम्राट् (जन्मना) जन्म अर्थात् स्वयं अपने प्रकट हुए स्वरूप से एवं स्वभाव से ही (अग्निः अस्मि) अग्नि के समान तीव्र, दुष्टों का संतापजनक और (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ पर अधिकारी रूप से विद्यमान, एवं ऐश्वर्यवान् और समस्त पदार्थों को जानने हारा

(अस्मि) होऊं। (घृतम्) जिस प्रकार अग्नि में घी पड़ते ही वह प्रकट होकर प्रदीप्त होता है उसी प्रकार (घृतम्) तेज ही (मे) मेरा (चक्षुः) चक्षु के समान स्वरूप को प्रकट रूप से दिखाने वाला हो। ( अमृतम् ) अन्न आदि हवि जिस प्रकार अग्नि के मुख में दिया जाता है उसी प्रकार ( मे आसन् ) मेरे मुख में, मेरे मुख्य पद के निमित्त ( अमृतम् ) अखण्ड अविनाशी, ऐश्वर्य या अमृत, अन्नादि भोग्य पदार्थ हो। मैं ( अर्कः ) सूर्य के समान तेजस्वी, ( त्रिधातुः ) प्रज्ञा, शक्ति, उत्साह तीनों से राष्ट्र को धारण करने में समर्थ, ( रजसः विमानः ) लोकों का विविध रूपों से परिमाण और आदर करने वाला, ( अजस्रः ) शत्रुओं से न पराजित होने वाला ( घर्मः ) सूर्य के समान अति तेजस्वी, ( हविः ) राष्ट्र को अपने वश में लेने में समर्थ ( नाम ) सबको नमानेवाला ( अस्मि ) होकर रहूं।

**ऋचो नामा॑स्मि यजूꣳषि॒ नामा॑स्मि॒ सामा॑नि॒ नामा॑स्मि।**
**ये ऽअ॒ग्नयः॒ पाञ्च॑जन्या ऽअ॒स्यां पृ॑थि॒व्यामधि॑।**
**तेषा॑मसि॒ त्वमु॑त्त॒मः प्र नो॑ जी॒वात॑वे सुव ॥ ६७ ॥**

पूर्वोक्ते ऋषिदेवते। आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—( ऋचः नाम अस्मि ) ऋचाएं मैं हूं। ( यजूंषि नाम अस्मि ) यजुर्गण मैं हूं। ( सामानि नाम अस्मि ) सामगण मैं हूं। अर्थात् राष्ट्र की समस्त आज्ञाएं मेरे अधीन हों, वे मेरी प्रतिनिधि हों। राष्ट्र के समस्त 'यजुः' परस्पर संगत राज्य-कर्म मेरे अधीन हों। 'साम' अर्थात् उनमें सौष्ठव, परस्पर समता और एकता के सब स्वरूप मेरे अधीन हों। शत० ६।५।३।२३॥

हे राजन्! ( ये ) जो ( अस्यां पृथिव्याम् अधि ) इस पृथिवी पर ( पाञ्चजन्याः ) पांचों प्रजा जनों के हितकारी ( अग्नयः ) ज्ञानवान् तेजस्वी नेता पुरुष हैं ( तेषाम् ) उन सब में ( त्वम् उत्तमः ) तू सब से श्रेष्ठ है। तू ( नः ) हमारे ( जीवातवे ) दीर्घ जीवन के लिये ( प्रसुव ) उत्तम रीति से राष्ट्र का संचालन कर।

( १ ) 'यजूंषि'—यज्ञो ह वै नाम तद् यद् यजुः। श० ४।६।७।१३॥ एष हि यन् एव इदं सर्वं जनयति। यन्तम् इदं अनु प्रजायते तस्माद् यजुः। एतमनुजवते तस्मात् यजुः। श० १०।३।५।२॥ मनो यजूंषि। श० ४।६।७।५॥ पितरो विशः···यजूंषि वेदः। श० १३।४।३।६॥ राष्ट्र स्वयं यजु है। उसके समस्त अंग 'यजु' हैं, राजा स्वयं नियमानुकूल राज्य बनाता है। उसके नियमपूर्वक चलते हुए उसके अनुसार यह राज्य बनता है। अतः वे शासक 'यजु' हैं। राष्ट्र के पालक 'पिता' हैं उनके कर्त्तव्यों का बोधक वेद 'यजु' है।

'सामानि'—तद् यत् संयन्तितस्मात् साम। जै० उं० ३।१।३३।६।७॥ साम्राज्यं वै साम। श० १२।८।३।२३। धर्म इन्द्रो राजा···देवा विशः···सामानि वेदः। श० ······॥

परमेश्वर पक्ष में—( अग्निरस्मि जातवेदाः ) वेदों का उत्पादक मैं स्वभाव से अग्नि, ज्ञानवान् हूं। ( घृतं मे चक्षुः ) तेजः, सूर्य मेरा चक्षु है। ( अमृतम् मे आसन् ) अमृत अविनाशी मोक्षानन्द मेरा मुख-मुख्य स्वरूप है। ( अर्कः ) मै अर्चनीय, ( त्रिधातु ) सत्व रजः तमः तीनों का धारक, ( रजसः विमानः ) लोकों का निर्माता, ( अजस्रः ) अविनाशी, ( घर्मः ) तेजस्वी, ( हविः नाम ) सर्वव्यापक अन्नरूप हूं। मैं ( ऋचः साम० ) ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद हूं। तीनों वेद मेरे ही रूप हैं। हे परमेश्वर ! ( मे पाञ्चजन्याः अग्नयः० ) जो पांचों उत्पन्न भूतों में प्रवर्त्तक बल इस विशाल प्रकृति में हैं उन सब में तू सब से श्रेष्ठ है तू हम जीवों के दीर्घ जीवन के लिये उत्तम उपाय कर।

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च।
इन्द्र त्वावर्तयामसि॥ ६८॥

६८-७४ इन्द्रो विश्वामित्रश्च ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्। गायत्री षड्जः॥

भा०—( वार्त्रहत्याय ) वर्त्तमान शत्रु का हनन करने में समर्थ और ( पृतनाषाह्याय ) सेनाओं के विजय करने वाले ( शवसे ) बल, सेनाबल के शासन करने के लिये हे (इन्द्र) इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुनाशक ! ( त्वा ) तुझे हम ( आवर्तयामसि ) नियुक्त करते हैं। अग्रणी नेता पद पर स्थापित करते हैं। शत० ९। ५। २। ४ ॥

सहदानुम्पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र संपिणक् कुणारुम्।
अभि वृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ६९ ॥

इन्द्रो विश्वामित्रश्च ऋषी। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुत प्रजाजनों से सत्कार को प्राप्त करने हारे ! हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! शत्रुओं विदारक सेनापते ! ( सहदानुम् ) अपने बल से प्रजाजनों का खण्डन या नाश करने वाले या अपने सहवासी का नाश करने वाले, ( क्षियन्तम् ) समीप बसे, ( कुणारुम् ) कुत्सित वचन बोलने वाले दुष्ट पुरुष को तू ( अहस्तम् ) बे-हाथ का, निहत्था; निःशस्त्र करके ( संपिणक् ) अच्छी प्रकार कुचल डाल। जिससे वह समीप के लोगों को हानि न पहुंचा सके। और ( वृत्रं ) घेरनेवाले, (पियारुम्) मद्यपी अथवा हिंसाकारी ( अभिवर्धमानम् ) सब ओर बढ़नेवाले दुष्ट पुरुष को ( अपादम् ) बे पांव का लंगड़ा करके ( तवसा ) अपने बल से ( जघन्थ ) विनष्ट कर। जिससे वह शक्ति में बढ़ कर प्रजाओं का नाश न करे।

वि न ऽइन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
यो ऽअस्माँ२ऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ ७० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ८। ४४ ॥ शत० ९। ५। २। ५ ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजगन्था परस्याः।
सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व

इन्द्रपुत्रः शासो भारद्वाज जयश्च ऋषी। इन्द्रो देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार ( कुचरः ) ऊंचे, नीचे, खाई, वन, पर्वत, आदि सभी स्थानों पर विचरने वाला ( भीमः मृगः न ) भयानक पशु, सिंह बड़े जन्तुओं का नाश करता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के विनाशक इन्द्र ! तू भी ( भीम: ) अति भयानक ( मृगः ) शत्रुओं को खोज लेने वाला, ( कुचरः ) गढ़, नगर, वन, पर्वत, आदि सर्वत्र विचरने में समर्थ ( गिरिष्ठाः ) पर्वतों में निवास करने हारा होकर भी ( परावतः ) दूर २ के देशों तक (आ जगन्थ) पहुंचता है और ( सृकम् ) शत्रु के शरीरों में घुस जाने वाले ( पविम् ) पाप के शोधक वज्र को ( संशाय ) खूब तीक्ष्ण करके ( तिग्मम् ) खूब तीक्ष्णता से ( परस्याः ) शत्रु सेना के बीच में विद्यमान ( शत्रून् ) शत्रुओं को ( वि ताढि ) विविध प्रकारों से विनाश कर और ( मृधः ) संग्रामकारी सेनाओं को ( वि नुदस्व ) पीछे भगा, तितर बितर कर । शत० ९ । ५ । २ । ५ ॥

वैश्वानरो न ऊतय आ प्रयातु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ ७२ ॥

इन्द्र ऋषिः । वैश्वानरोऽग्निर्देवता । आर्षी गायत्री । धैवतः ॥

भा०—( वैश्वानरः ) समस्त मनुष्यों में अधिक प्रतिष्ठित, ( अग्निः ) अग्नि या सूर्य के समान तेजस्वी ( परावतः ) दूर देश से भी ( नः ) हमारी ( ऊतये ) रक्षा के लिये ( आ प्र यातु ) आवे और ( नः ) हमारी ( सु-स्तुतीः ) उत्तम स्तुतियों को ( उप ) श्रवण करे । शत० ९।५।२।६॥

पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः पृथिव्यां पृष्ठो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्ठो अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥

इन्द्रकुत्सौ ऋषी । वैश्वानरो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( दिवि ) द्यौलोक, महान् आकाश में ( पृष्टः ) प्राण, बल सेचन करने में समर्थ, सूर्य के समान तेजस्वी और (पृथिव्यां पृष्टः) पृथिवी में मेघ रूप से जल सेचन करने में समर्थ, मेघ के समान और ( पृष्टः )

रस वीर्य सेचन करने में समर्थ ( विश्वाः ओषधीः ) समस्त ओषधियों में प्रविष्ट जल के समान जो ( अग्निः ) अग्रणी नेता ( दिवि ) राजविद्वत्सभा में, ( पृथिव्यां ) पृथिवीवासी प्रजा में और ( विश्वाः ओषधीः ) समस्त तेजस्विनी सेनाओं में (आ विवेश) राजा रूपसे विद्यमान है वह (वैश्वानरः) समस्त विश्व-राष्ट्र का नेता ( सहसा ) अपने शत्रु पराजय करने वाले बल से ( पृष्टः ) सर्वत्र ज्ञात, एवं बलवान्, सर्वोत्तम ( अग्निः ) अग्रणी पुरुष ( सः ) वह ( नः ) हमें ( दिवा ) दिन और (नक्तम्) रात को भी (रिषः) हिंसक लोगों से ( पातु ) बचावे । शत० ६ । ५ । २ । ६ ॥

'पृष्टः'–पृषु वृषु सेचने। भ्वादिः। पृष्टः वृष्टः वृषभ इति यावत्। कर्त्तरि क्तः।

**अश्याम॒ तं काम॑मग्ने॒ तवो॒ती अ॒श्याम॑ र॒यिꣳ र॑यिवः सु॒वीर॑म् ।**
**अश्याम॒ वाज॑म॒भि वा॒जय॑न्तो॒ऽश्याम॑ द्यु॒म्नम॑जरा॒जरं॑ ते ॥७४॥**

इन्द्रभरद्वाजावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी सेनापते ! ( तव ऊती ) तेरे रक्षण सामर्थ्य से हम ( तम् कामम् ) उस २ अभिलाषा का ( अश्याम ) यथेच्छ भोग करें । हे ( रयिवः ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! हम ( सुवीरम् ) उत्तम वीरों और वीर पुत्रों से युक्त ( रयिम् ) राष्ट्र समृद्धि का ( अश्याम ) भोग करें । ( अभि वाजयन्तः ) शत्रु के ऊपर संग्राम करते हुए ( वाजम् ) विजय से प्राप्त ऐश्वर्य का हम (अश्याम) भोग करें । ( अभि वाजयन्तः ) शत्रु के ऊपर संग्राम करते हुए ( वाजम् ) विजय से प्राप्त ऐश्वर्य का हम ( अश्याम ) उपभोग करें, हे ( अजर ) अविनाशिन् ! ( ते ) तेरे ( अजरं ) अविनाशी ( द्युम्नम् ) अक्षय ऐश्वर्य का हम ( अश्याम ) भोग करें । शत० ६ । ५ । २ । ७ ॥

**व॒यं ते॑ अ॒द्य र॑रि॒मा हि काम॑मुत्ता॒नह॑स्ता॒ नम॑सोप॒ सद्य॑ ।**
**यजि॑ष्ठेन॒ मन॑सा यक्षि दे॒वानस्रे॑धता॒ मन्म॑ना॒ विप्रो॑ अग्ने ॥ ७५ ॥**

उत्कील आत्कीलो वा ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने ! अग्रणी नेतः ! विद्वन् ! ( ते ) तेरे ( कामम् ) अभिलषित पदार्थ को ( अद्य ) आज ( वयम् ) हम ( उत्तान-हस्ताः ) उतान हाथों से ( नमसा ) नमस्कारपूर्वक ( उपसद्य ) तेरे समीप पहुंच कर ( रसिम ) प्रदान करते हैं। और ( देवान् ) विजिगीषु वीर राजगण को और ( अस्रेधता ) स्थिर, ( मन्मना ) मननशील ( यजिष्ठेन ) अति आदर, प्रेम से युक्त ( मनसा ) मनसे (विप्रः) मेधावी, ज्ञानवान् होकर तू ( यक्षि ) प्राप्त होता है। शत० ६ । ५ । २ । ९ ॥

धामच्छद्ग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥ ७६ ॥

भा०—( धामच्छत् ) सूर्य के समान तेज को धारण करनेवाला और समस्त स्थानों पर वश करने वाला, ( अग्निः ) अग्रणी नेता, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (देवः) विज्ञान द्रष्टा, ( ब्रह्मा ) वेदज्ञ विद्वान्, (बृहस्पतिः) बृहती वेद वाणी का पालक विद्वान् महामान्य और ( सचेतसः ) प्रज्ञा-वान् शुभ चित्त वाले, ( विश्वे देवाः ) समस्त दानशील, विद्वान् पुरुष सब लोग ( नः ) हमारे ( शुभे ) कल्याण के लिये ( न. ) हमारे ( यज्ञं प्रावन्तु ) यज्ञ, राष्ट्र और प्रजापालक की रक्षा करें। शत० १०।१।३।८॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ७७ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १३ । ५२ ॥ हे ( यविष्ठ ) सब से अधिक बलिष्ठ सभापते ! राजन् ! तू ( दाशुषः ) दानशील ( नॄन् ) प्रजाजनों को ( पाहि ) पालन कर। उनके ( गिरः ) वाणियों को ( शृणुधि ) श्रवण कर। ( उत ) और ( त्मना ) स्वयं ( तोकम् ) उनके पुत्रादि अपत्यों की ( रक्ष ) रक्षा कर। शत० १० । १ । ३ । ११ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥

# ॥ अथैकोनविंशोऽध्यायः ॥

अ० १९—२१ सौत्रामणी ॥ तस्याः प्रजापतिरश्विनौ सरस्वती च ऋषयः ॥

॥ ओ३म् ॥ स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन। मधुमतीं मधुमता सृजामि सꣳसोमेन। सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ १ ॥

सुरा सोमश्च देवते। निचृत् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—( स्वाद्वीं स्वादुना ) जिस प्रकार उत्तम स्वादयुक्त ओषधि को स्वादु उत्तम रस से मिलायाता है। और ( तीव्रां तीव्रेण ) तीव्र प्रभाव करनेवाली ओषधि को तीव्र रस से मिलाया जाता है और ( अमृताम् ) अमृत, दीर्घ जीवन देनेवाली ओषधि को (अमृतेन) अमृतमय, दीर्घ जीवन-प्रद रस से मिलाया जाता है। उसी प्रकार ( स्वाद्वीम् ) उत्तम मधुर रस देने वाली ( तीव्राम् ) तीक्ष्ण स्वभाव वाली, ( अमृताम् ) अमृत, सदा जीवनदायिनी और (मधुमतीम्) मधुर अन्नादि समृद्धि से युक्त (ताम्) उस राज्य सम्पत्ति, नारी और प्रजा को भी मैं विद्वान् महामात्र, राजकर्त्ता पुरुष ( स्वादुना ) मधुर स्वभाव के, ( तीव्रेण ) तीक्ष्ण स्वभाव के ( अमृतेन ) अमृत, शत्रु को प्रहार करके मारने और स्वयं न मरने वाले स्वयं चिरञ्जीवी, ( मधुमता ) और मधुर गुणों से युक्त ( सोमेन ) सोम, स्वामी, आज्ञापक पति और राजा के साथ ( सं सृजामि ) संयुक्त करता हूं। हे पुरुष ! अधिपते ! राजन् ! तू ( सोमः असि ) सोम, प्रेरक, ऐश्वर्यवान् अभिषेक करने योग्य है। ( अश्विभ्यां ) सूर्य जिस प्रकार दिन और रात्रि या द्यौ और पृथिवी के लिये तपता है और मुख्य औषध जिस प्रकार प्राण और अपान के हित के लिये पकाया जाता

है उसी प्रकार तू भी ( अश्विभ्यां ) माता पिता और राष्ट्र के नर नारी दोनों या प्रजा और राजा, राष्ट्र और राज-पद दोनों के लिये ( पच्यस्व ) परिपक्व हो। हे पुरुष ! तू दम्पति भाव के लिये ( पच्यस्व ) परिपक्व वीर्य वाला हो। या हे वीर्यवन् ! ( सरस्वत्यै पच्यस्व ) सरस्वती, वेदवाणी और शासनाज्ञा के लिये उसे शत्रु, मित्र, उदासीन, एवं राष्ट्र और सब पर अच्छी प्रकार चलाने के लिये ( पच्यस्व ) अपने को परिपक्व कर। गृहस्थ पक्ष में—हे पुरुष ! तू ( सरस्वत्यै ) प्रेमयुक्त स्त्री के हित के लिये (पच्यस्व) परिपक्व वीर्यवान् हो। (सुत्राम्णे) उत्तम रीति से प्रजा के पालन करनेवाले ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक ( इन्द्राय ) इन्द्र, राजा पद के लिये ( पच्यस्व ) अपने को परिपक्व कर, तैयार कर, अपने बल, वीर्य को दृढ़ कर। संगति देखो अथर्व० १६। २१। १४॥ शत० १२।७।३।४॥

( १ ) 'सौत्रामणी'—स यो भ्रातृव्यवान् स्यात् स सौत्रामण्या यजेत। पाप्मानमेव तद् द्विषन्तं भ्रातृव्यं हत्वा इन्द्रियं वीर्यमस्य वृङ्क्ते। तस्य शीर्षं छिन्ने लोहितमिश्रः सोमोऽतिष्ठत्। तस्माद्बीभत्सन्त। त एतदन्धसोर्विपानमपश्यन् सोमोराजा अमृतं सुत इति। तेन एनं स्वदयित्वा आत्मन् अधत्त। शत० १२। ७। ३। ४॥

जो शत्रु वाला राजा हो वह सौत्रामणी यज्ञ करता है। शत्रुरूप द्वेषी पाप को मार कर वह उसके ऐश्वर्य वीर्य को हर लेता है। उसके शिर कटने पर रुधिर से मिला 'सोम' अर्थात् राजपद, ऐश्वर्य रहता है। उसको देख लोग ग्लानि करते हैं। तब विद्वान् 'सोमपान' अर्थात् राष्ट्र के पालन के ज्ञान का दर्शन करते हैं कि सोम स्वयं राजा है। 'सुत' अभिषिक्त सोम राजा अमृत के समान है। उस राजपद से उस राजा को अधिक आनन्ददायक बना कर वह अपने में धारण करता है।

( २ ) सोमो वै पयः अन्नं सुरा। क्षत्रं वै पयो विट् सुरां पूत्वा पयः पुनाति। विश एव तत्क्षत्रं जनयति। विशो हि क्षत्रं जायते।

सोम दूध के समान है। अन्न और अन्न का विकार सुरा है। क्षत्र-बल दूध है। प्रजा सुरा है। सुरा को छान कर दूध छाना जाता है। अर्थात् प्रजा के बीच में से क्षत्र-बल पैदा किया जाता है। क्षत्र-बल प्रजा में से ही पैदा होता है।

( ३ ) प्रजापतेर्वा एतदन्धसी यत् सोमश्च सुरा च। श० ५। १।२।१०॥ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा। तै० १। ३। ३। ४॥ यशो हि सुरा। श० १२। ७। ३। १४॥ प्रजापालक प्रजापति के ही दो भोग्य ऐश्वर्य हैं सोम और सुरा। राजपद और प्रजागण। पुरुष सोम है। स्त्री सुरा है। यश, ऐश्वर्य सुरा है।

( ४ ) 'सोमः'—स्वा वै मे एषा इति तस्मात् सोमो नाम। श० ३। ६। ४। २२॥ राजा वै सोमः। श० १४। १। ३। १२॥ सोमो राजा राजपतिः।तै० २। ५। ७।३॥ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा। तै० १।२।३।४॥ यह मेरी अपनी ही सम्पत्ति है ऐसा समझनेवाला स्वामी 'सोम' है। राजा सोम है। सोम राजाओं का भी स्वामी है। पुरुष सोम है, स्त्री सुरा है।

परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

भरद्वाज ऋषिः सोमो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( यः ) जो ( सोमः ) ऐश्वर्यवान् ( उत्तमं हविः ) उत्तम आदान प्रतिदान योग्य अन्न, धन सम्पत्ति ज्ञान और बल को ( दधन्वान् ) धारण करता है और ( यः नर्यः ) जो पुरुषों का हितकारी होने से ( अप्सु अन्तरा ) आप्त जनों के बीच में ( सुषाव ) अभिषिक्त किया जाता है उस ( सुतम् सोमम् ) अभिषिक्त सोम, राजा को ( अद्रिभिः ) वज्रों, या शस्त्रास्त्र धारी पुरुषों द्वारा ( इतः ) अब से ( परि षिञ्चत ) सब प्रकार से सेचन करो, उसको आभूषित या सुशोभित करो, उसके बल की वृद्धि करो। परिषेको अलंक्रिया।

सोमरस के पक्ष में—जो उत्तम ( हविः ) अन्न के ग्राह्य अंश को धारण करता है ( नर्यः ) पुरुष देह को हितकारी है ( अप्सु अन्तरा ) जलों के बीच शीतल करके ( सुषाव ) जो आसव रूप से उत्पन्न किया जाता है उनको ( परिसिञ्चत ) सब प्रकार सेवन करो।

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।
वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमो अतिद्रुतः।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

आभूतिर्ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—( सोमः ) सोम, ऐश्वर्यवान् राजा ( प्रत्यङ् ) पीछे से (वायोः) वायु के समान तीव्र वेगवान् शत्रु रूप वृक्ष के शाखा प्रशाखाओं और मूल को भी तोड़ देने में समर्थ सेनापति के ( पवित्रेण ) कण्टक शोधन करने वाले सेना-बल से ( पूतः ) शुद्ध, पवित्र, शत्रु रहित होकर ( अतिद्रुतः ) अत्यन्त अधिक वेग से आक्रमणकारी हो जाता है वह राजा ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् सेनापति या राष्ट्र का भी ( युज्यः ) सदा साथ देने वाला ( सखा ) मित्र होता है। शत० १२। ७। ३। १० ॥

इसी प्रकार ( वायोः पवित्रेण पूतः ) प्रचण्ड वायु के समान बलवान् पुरुष के शत्रु रूप कण्टकों से शोधन करने वाले बल से ( पूतः ) पवित्र या अभिषिक्त या शत्रु रहित होकर ( सोमः ) अभिषिक्त राजा ( प्राङ् अतिद्रुतः ) आगे की तरफ वेग से बढ़ता है वह ( इन्द्रस्य युज्यः सखा ) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र वासी प्रजा जन का सदा का साथी और मित्र हो जाता है।

पुनाति ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्य्यस्य दुहिता।
वारेण शश्वता तना ॥ ४ ॥

प्राङ्सोमो० 'प्रत्यङ्सोमो०' इति काण्व०।

सोमो देवता । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

**भा०**—हे राष्ट्रवासी जन ! ( सूर्यस्य दुहिता ) सूर्य के समान तेजस्वी ज्ञानवान् पुरुष की ( दुहिता ) समस्त ज्ञानरस को दोहन करनेवाली, सर्व कार्यों को पूर्ण करने में समर्थ श्रद्धा, सत्य धारण ही ( ते ) तेरे ( परिस्रुतम् ) सब प्रकार से अभिषिक्त ( सोमं ) ऐश्वर्यवान् राजा को ( शश्वता ) अनादि नित्य के चले आये, ( तना ) विस्तृत, ( वारेण ) शत्रु के वारण करनेहारे मौल बल, या वरण करने योग्य ऐश्वर्य से ( पुनाति ) पवित्र, शुद्ध, या शत्रु रहित करती है । शत० १२।७।३।११ ॥

ओषधि पक्ष में—( सूर्यस्य दुहिता ) उषा अपने सदातन, वरणीय प्रकाश से सोम ओषधि को पवित्र करती है । सोम के पक्ष में—सूर्य की पुत्री श्रद्धा वालों के बने कम्बल से परिस्रुत नाम सोम को स्वच्छ करती है ।

**ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय । शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ५ ॥**

निचृज्जगती । निषादः ॥

**भा०**—( सुरया ) सुख पूर्वक रमण करने योग्य ऐश्वरीय, राज्यलक्ष्मी या उत्तम प्रजा द्वारा ( सुतः ) अभिषिक्त किया और ( मदाय ) सब की आनन्द प्रसन्नता के लिये ( आसुतः ) प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र अभिषिक्त हुआ (सोमः) सोम, ऐश्वर्यवान् पुरुष (ब्रह्म) ब्रह्म, ब्राह्मण वर्ग, (क्षत्रं) क्षत्रियगण को ( पवते ) पवित्र करता है और ( तेजः ) तेज, पराक्रम और ( इन्द्रियम् ) इन्द्रिय, राजोचित ऐश्वर्य को भी ( पवते ) उत्पन्न करता है । हे ( देव ) देव, दानशील राजन् ! तू ( शुक्रेण ) शुद्धि करनेवाले, अपने तेज से या सुवर्णादि द्रव्य से ( देवताः ) दानशील या विजिगीषु वीर पुरुषों और विद्वानों को ( पिपृग्धि ) पूर्ण कर, पालन कर । और ( रसेन ) रस, पुष्टि-

कारक अंश से युक्त ( अन्नं ) अन्न ( यजमानाय ) यजमान दानशील या अपने से संगत प्रजाजन के लिये (धेहि) सुरक्षित रख । शत०१२।७।३।१२॥

सोम-ओषधि पक्ष में—( सुरया सुतः आसुतः सोमः ) सवन क्रिया से उत्पादित और सेवित सोम, ओषधियों का रस ( तेजः इन्द्रियं ब्रह्म क्षत्रं च पवते ) तेज, इन्द्रियों के सामर्थ्य, ब्रह्मज्ञान और बल को उत्पन्न करता है । अतः हे विद्वन् ! देव ! (शुक्रेण) तेजो वृद्धि करनेवाले (रसेन) रस से ( देवताः ) प्राणों की शक्ति को बढ़ा । ( अन्नं यजमानाय धेहि ) यजमान, उपासक जन को उत्तम अन्न प्रदान कर ।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥ ६ ॥

भा०—( कुविदङ्ग०......०सुत्राम्णे ) इस मन्त्र की व्याख्या देखो । अ० १० । ३२ ॥

( एष ते योनिः ) हे राजन् ! तेरा यह योनि आश्रयस्थान या पद है । ( त्वा ) तुझको ( वीर्याय ) वीर्य सम्पादन, अधिकार प्राप्ति और ( बलाय ) बल वृद्धि के लिये नियुक्त करता हूं । शत० १२ । ७ । ३ । १३ ॥

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥ ७ ॥

भा०—हे सोम ! राजन् ! हे राज्यलक्ष्मि ! अथवा राष्ट्रप्रजे ! ( वां ) तुम दोनों के लिये ( देवहितम् ) विद्वानों द्वारा शास्त्र-

६—पयोग्रहाः ।

विहित ( नाना ) पृथक् २ ( सदः कृतम् ) स्थान बना दिया गया है। दोनों के अधिकार कर्त्तव्य पृथक् २ हैं। तुम दोनों ( मा संसृक्षाथाम् ) परस्पर संसर्ग मत करो। दोनों अपने २ विभागों को पृथक् २ रक्खो। हे प्रजे ! हे राज्यलक्ष्मि ! ( त्वम् शुष्मिणी ) तू बलशालिनी (सुरा) मदिरा के समान अति बलकारिणी, एवं 'सुरा' उत्तम ऐश्वर्य वाली या उत्तेजना देने वाली है और ( एषः सोमः ) यह 'सोम' सब राष्ट्र का प्रेरक है। तू ( स्वाम् योनिम् ) अपने आश्रयस्थान को ( आविशन्ती ) प्राप्त करती हुई ( मा ) मुझ राजा को (मा हिंसीः) मत मार। इसी प्रकार हे राजन् ! तू भी ( स्वां योनिम् आविशन् मा मा हिंसीः ) अपने आश्रय को प्राप्त करके मुझ प्रजाजन का नाश मत कर। शत० १२। ७। ३। १४॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्याश्वि॒नं तेजः॑ सारस्व॒तं वी॒र्य्य॒मैन्द्रं॒ बल॑म्।
ए॒ष ते॒ योनि॒र्मोदा॑य त्वान॒न्दाय॑ त्वा॒ मह॑से त्वा ॥ ८ ॥

पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे अधिकार पद योग्य पुरुष ! तू (उपयामगृहीतः असि) राष्ट्र के नियन्ता राजा के विशेष धर्मों द्वारा बद्ध है। ( आश्विनं तेजः ) सूर्य चन्द्र, दिन रात्रि, स्त्री पुरुष, इन युगलों के समान राजा और प्रजा दोनों का सम्मिलित वीर्य है। ( सारस्वतम् वीर्यम् ) हे पुरुष ! सरस्वती, वेदवाणी अर्थात् समस्त ज्ञानी विद्वानों का संयुक्त बल है। हे पुरुष ! तू ( इन्द्रं बलम् ) शत्रु नाश करनेवाले इन्द्र, सेनापति का बल, सेनाबल है। ( एषः ते योनिः ) तेरा यह आश्रय या अधिकारपद है। ( त्वा ) तुझ योग्य पुरुष को ( मोदाय ) राष्ट्र के हर्ष के लिये स्थापित करता हूं। ( त्वा आनन्दाय ) तुझको आनन्द प्राप्त करने के लिये नियुक्त करता हूं। ( त्वा महसे ) तुझको बड़े भारी ऐश्वर्य और मान, प्रतिष्ठा, आदर, सत्कार प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता हूं।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥

पयः सुरा च देवते । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—हे राजन्! तू ( तेजः असि ) तेज, तीक्ष्ण पराक्रम स्वरूप है। ( मयि तेजः धेहि ) मुझ प्रजाजन में भी तेज को धारण करा। तू ( वीर्यम् असि ) वीर्य, सब अंगों में स्फूर्ति, गति, चेष्टा उत्पन्न करनेवाला शरीर में वीर्य के समान सामर्थ्यवान् है। तू ( मयि ) मुझ में भी उस ( वीर्यम् ) वीर्य को ( धेहि ) धारण करा। ( बलम् असि ) तू बल अंगों में दृढ़ता उत्पन्न करनेवाला बलवान् है। (मयि) मुझ प्रजा जन में भी ( बलं धेहि ) उस बल, दृढ़ता को धारण करा। ( ओजः असि ) शरीर में जिस प्रकार ओज, अष्टम धातु, कान्ति उत्पन्न करनेवाला, मुख्य प्राण का उत्तम सामर्थ्य है उसी प्रकार के ( ओजः ) प्राण के उत्कृष्ट सामर्थ्य को ( मयि धेहि ) मुझ में धारण करा। ( मन्युः असि ) तू शत्रु या विपरीत बाधक पदार्थ को न सहन करनेवाला क्रोध रूप है उसी प्रकार के (मन्युं) शत्रुओं को स्तम्भन करने में समर्थ मन्यु को (मयि धेहि) मुझ में भी धारण करा। (सहः असिः) हे राजन्! तू शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ शक्ति है। तू ( सहः मयि धेहि ) मुझ में भी शत्रु पराभव करने की शक्ति प्रदान कर। इसकी संगति देखो अथर्व वेद का० १९। सू० ३१। म० ११॥

परमात्मा और शरीर में आत्मा भी तेजः स्वरूप, वीर्यस्वरूप, बलस्वरूप, ओजःस्वरूप, मन्युस्वरूप, और सहः स्वरूप हैं अतः हे परमेश्वर मुझ उपासक को तेज, वीर्य, बल, ओज, मन्यु और सहः का प्रदान करें।

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति ।
श्येनं पतत्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥ १० ॥

हेमवर्चिर्ऋषिः । आर्ष्युष्णिक् । धैवतः ॥ विषूचिका स्तुतिः ॥

भा०—( या ) जो ( विसूचिका ) विविध पदार्थों को सूचना देने वाली ( व्याघ्रम् ) व्याघ्र के समान शूरवीर, और ( वृकं च ) भेड़ियों के समान शत्रु पर साहस से जा पड़नेवाले अथवा व्याघ्र जिस प्रकार अपने आहार को सूंघ कर ही पता लगा लेता है उसी प्रकार सूक्ष्म २ लक्षण देखकर जो शत्रु का पता लगाले और वृक जिस प्रकार भेड़ आदि को बल पूर्वक हर लेता है उसी प्रकार जो शत्रु के राज्य को हर ले ( उभौ ) उन दोनों को जो ( विषूचिका ) विविध पदार्थों को सूचना करनेवाली संस्था ( रक्षति ) उनको शत्रु के पंजे में पड़ने से बचाती है इसी प्रकार जो विविध प्रकार की सूचना देनेवाली संस्था ( श्येनम् ) बाज के समान सहसा अपने शत्रु पर ( पतत्रिणम् ) सेना के दोनों पक्षों ( wings ) के साथ वेग से जा टूटने वाले विजयी को और ( सिंहम् ) सिंह के समान पराक्रमी शूरवीर पुरुष की ( पाति ) रक्षा करती है, उसको सब प्रकार से शत्रु की चालें बतलाकर उसको शत्रु के हाथों पड़ने से बचाती है ( सा ) वह ( इमं ) इस नये प्रतिष्ठित राजा को भी शत्रु की ओर से होने वाले ( अंहसः ) शत्रु वध आदि क्रूर कर्म से ( पातु ) बचावे । व्याघ्र, वृक, बाज़ पक्षी, और सिंह ये जीव दूर से ही अपने आहार आदि के विषय में जान लेते हैं उनकी जान लेने की प्राण शक्ति 'विषूचिका' है । इसी प्रकार सेनापति, राजा, पराक्रमी पुरुषों को भी अपने अधीन गुप्त, समाचार देनेवाली, जासूस संस्था को नियुक्त करना चाहिये जो शत्रु की सब चालों का पता दे । वही संस्था 'विसूचिका' कहाती है । इसका वर्णन अर्थ शास्त्र 'गुप्त प्रणिधिसंस्था' रूप में किया गया है । शत० १२ । ७ । ३ । २१ ॥

अध्यात्म में—विविध ज्ञानों को देनेवाले अन्न प्रज्ञा विविध पदार्थों के ज्ञाता 'व्याघ्र', कर्म फलों के आदाता 'वृक', तीक्ष्ण ज्ञानी श्येन, पतत्री

हंस आत्मा, दोषों के नाशक 'सिंह' रूप आत्मा की रक्षा करती है वही उसको पाप से बचावे।

**यदा॑ पि॒पेष॑ मा॒तरं॑ पु॒त्रः प्रमु॑दितो॒ धय॑न्। ए॒तत्तद॑ग्ने अनृ॒णो भ॑वा॒म्यह॑तौ पि॒तरौ॒ मया॑। सम्पृच॑ स्थ॒ सं मा॑ भ॒द्रेण॑ पृङ्क्त वि॒पृच॑ स्थ॒ वि मा॑ पा॒प्मना॑ पृङ्क्त ॥ ११ ॥**

अग्निर्देवता । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—( यत् ) जब ( पुत्रः ) पुत्र ( प्रमुदितः ) अत्यन्त हर्षित होकर ( धयन् ) स्तन्य पान करता हुआ ( मातरं ) अपनी माता को (आ पिपेष) गाढ़ आलिंगन करता या चिपटता है। ( तत् ) तब ( एतत् ) इस प्रकार से ही हे ( अग्ने ) अग्रणी, ज्ञानवान्, विद्वन्! मैं (अनृणः) माता पिताओं के ऋण से मुक्त ( भवामि ) हो जाता हूं और समझता हूं कि ( मया ) मुझ पुत्र ने गृहस्थ होकर जो माता पिता के ऋण को चुका दिया इससे ( मया ) मैंने ( पितरौ ) माता पिता को ( अहतौ ) पीड़ित न रखकर सुखी कर दिया। अर्थात् पुत्र रहित होना माता पिता को दुःखित रखना है। हे प्रेमी विद्वान् पुरुषो! आप लोग ( संपृचः स्थ ) मुझ से सत्संग करनेवाले हो, आप लोग ( मां ) मुझे ( भद्रेण ) सुखप्रद कल्याण कार्य से ( सं पृङ्क्त ) संयुक्त करो। हे विवेकी विद्वान् पुरुषो! आप लोग ( विपृचः स्थ ) विविध विषयों का ज्ञान करके और विवेक करनेवाले हो आप लोग ( मा ) मुझे ( पाप्मना ) पाप से ( वि पृङ्क्त ) विमुक्त रखो। शत० १२। ७। ३। २१–२२ ॥

राजा पक्ष में—( यद् ) जब ( पुत्रः ) पुरुषों को त्राण करने में समर्थ पुरुष, वीर राजा ( प्रमुदितः ) अति हर्षित होकर ( धयन् ) माता या गाय के बछड़े के समान पृथ्वी के पुत्र के समान ही उसका पुत्र होकर उसके अन्नादि का पान करता हुआ ( मातरं आपिपेष ) माता के तुल्य

सब प्राणियों के उत्पादक पृथ्वी को मैं पैरों आदि से या सेना बल से लताड़ता भी हूं तो भी हे ( अग्ने ) परमेश्वर या विद्वन् ! राजन् ! ( अहम् ) ( अनृणोऽभवामि ) मैं ऋण मुक्त ही होता हूं ( मया ) मेरे द्वारा ( पितरौ ) माता पिता के समान पालक पुरुष सदा ( अहतौ ) कभी पीड़ित न हों, कष्ट न पावें ! हे ( सम्पृचः ) हे संपर्क करनेवाले पुरुषो ! आप लोग सदा मुझे ( भद्रेण संपृंक्त ) कल्याण फल से युक्त करो और हे ( विपृचः ) पाप से पृथक् रखनेवाले पुरुषो ! तुम लोग ( मा पाप्मना विपृङ्क्त ) मुझे पाप मार्ग से पृथक् रखो ।

देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना ।
वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥ १२ ॥

१२–३२ सोम सम्पत् । अनुष्टुभः । गांधारः ॥

भा०—( भिषजा ) रोगों की चिकित्सा करने में कुशल ( अश्विनौ ) आयुर्वेद के विज्ञान में पारंगत औषधवित् और शल्य चिकित्सक दोनों और ( सरस्वती ) सरस्वती, वेदवाणी, या विद्वत्सभा जो ( वाचा ) वाणी के उपदेश द्वारा ( भिषक् ) अज्ञान दोषों को दूर करने में कुशल, और ( देवाः ) विद्वान् लोग ( इन्द्राय ) इन्द्र के निमित्त ( इन्द्रियाणि ) राजोचित ऐश्वर्यों और सामर्थ्यों को ( दधतः ) धारण कराते हुए ( भेषजम् ) रोग, निर्बलता को दूर करनेवाले ( यज्ञम् ) परस्पर संगति करनेवाले प्रजा पालन व्यवहार का यज्ञ के समान ही ( अतन्वत ) उपदेश करते हैं ।

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि ।
क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥ १३ ॥

१२—३२ देवायज्ञ मिति ब्राह्मणानुवाकः विंशतिरनुष्टुभः । सोम सम्पत् । इति सर्वानु० । अयंविंशतिकाण्डात्मको ब्राह्मणानुरूपोऽनुवाकः इति याज्ञिको ऽनन्तदेवः ॥

भा०—१. (शष्पाणि) शष्प-अर्थात् नये उगे धान्य, ( दीक्षायै रूपम् ) दीक्षा अर्थात् दीक्षणीयेष्टि के रूप हैं। यज्ञ में जिस प्रकार दीक्षणीयेष्टि है उसी प्रकार 'सौत्रामणी' में 'शष्प' नये हरे धान्य हैं। उत्तम रीति से पालन करनेवाले सुत्रामा नाम राजा प्रजापालनी वृत्ति में ( शष्पाणि ) शत्रुओं को हनन करने के साधन ही राष्ट्रपात की दीक्षा का रूप हैं।

'शष्पाणि'—शष्यते हन्यते इति तच्छष्पम्। बालतृणं कान्तिक्षयो वा इति दया० उणा० ॥ शष् हिंसार्थो भ्वादिः ॥ हिंसार्थस्य शसेर्वा स्तुत्यर्थस्य शंसेर्वा रूपम्।

२. ( तोक्मानि प्रायणीयस्य रूपम् ) तोक्म अर्थात् नये जौ यज्ञ में 'प्रायणीय' इष्टि के रूप हैं। राज्य पालन पक्ष में-( तोक्मानि ) शत्रु के हनन करने या प्रजा के प्रसन्न करने के कार्य ही 'प्रायणीय' अर्थात् उत्कृष्ट पद का प्राप्ति का स्वरूप हैं।

'तोक्मानि'—तोकं तुद्यतेः। निरु० १०। १। ७॥ तोक्म, तुजे स्तुचेः, तवतेः तुद्यतेर्वा मनिनि ककारोन्त देशः। तुज हिंसायाम्। भ्वादिः। च प्रसादे। भ्वादिः।

३. ( लाजाः सोमस्य क्रयस्य रूपम् ) लाजाएं सोम के क्रय के रूप हैं। अर्थात् ( लाजाः ) प्रफुल्लित व्रीहि या प्रसन्न प्रजाएं या समृद्ध विभूतियें ही सोम रूप राजा के राजपद के वेतन के स्वरूप हैं, 'लाजाः' दीप्त्यर्थस्य राजतेः। लत्वं छान्दसम्। आदित्यानां वा एतद्रूपं यल्लाजाः। तै० ३। ८।

४. ( मधु सोमांशवः ) मधु यज्ञ में सोम के अंशों के समान हैं। राजा के पक्ष में-( मधु ) दुष्टों के धमन, या पीड़न करनेवाला सैनिक बल या प्रजा के तृप्तिकारक या हर्षकर, बलकारी अन्न, सोम नाम राजा के अंशु अर्थात् राष्ट्र में व्यापक बल के समान है।

१४। ४॥ नक्षत्राणां वा एतद्रूपं यल्लाजाः। तै० १।३।२।१।४॥

एतद् वै प्रत्यक्षात् सोमरूपं यन्मधु। श० १२।८।२।१५॥
धर्मतेर्वा मधु। देवय०।

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता॥ १४॥

भा०—५. ( मासरम् आतिथ्यरूपं ) मासर अर्थात् धान और सांवा चावल के भातों का और पूर्व कहे शष्प, तोक्म, लाज आदि पदार्थों का मिश्रित पदार्थ 'मासर' कहाता है। वह आतिथ्य इष्टि का रूप है। इसी प्रकार राष्ट्र पक्ष में-( मासरं आतिथ्यरूपम् ) राष्ट्र के कार्यकर्त्ताओं को जो प्रतिमास वेतनादि रूप में दिया जाता है वह 'मासर' कहाता है। प्रतिमास का वेतन देना यज्ञ में 'आतिथ्य' इष्टि के समान है।

'मासर'–मासं मासं रीयते दीयते यत् तत् मासरम्।

६. ( नग्नहुः महावीरस्य ) नग्नहु, महावीर अर्थात् यज्ञ में घर्मेष्टि का रूप है। राष्ट्र पक्ष में–नग्न अर्थात् अकिंचन पुरुषों को अन्न वस्त्रादि प्रदान करना ही 'महावीर' बड़े वीर्यवान् त्यागी पुरुष का रूप है। यः नग्नान् जुहोत्यादत्ते इति नग्नहूः। इति दया०।

७. ( उपसदाम् ) उपसद् इष्टियों का ( एतत् रूपम् ) यह रूप है जो (तिस्रः रात्रीः) तीन रातों तक (सुरा=सुता) सुरा, अन्नरस, सवन किया जाता है। राष्ट्र पक्ष में-( एतत् ) यह ( उपसदाम् ) समीप विराजनेवाले अधिकारी पुरुषों और समस्त राष्ट्रगत अधिकारों का ही ( रूपम् ) उज्ज्वल स्वरूप है जो ( तिस्रः ) तीन ( रात्रीः ) रातों तक, तीन दिनों तक ( सुरा ) सुख से रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी का ( सुता ) राजा के निमित्त अभिषेक किया जाता है। अर्थात् इन तीन दिनों में ही समस्त राज्या धिकार राजा को सौंपे जाते हैं। अथवा ( तिस्रः रात्रीः ) तीन प्रकार की

राजपालक शक्तियों से ( सुरा सुता ) अभिषेक क्रिया का सम्पादन किया जाता है, यही उपसद अर्थात् समस्त अधिकारों का उत्तम स्वरूप है।

'उपसदः'—वज्रा वा उपसदः। श० १० । २ । ५ । २ ॥ जितयो वै नामैता यदुपसदः। ऐ० १ । २४ ॥ इषुं वा एते देवाः समस्कुर्वत यदुपसदस्तस्य अग्निरनीकमासीत्, सोमः शल्यः, विष्णुस्तेजनः वरुणः पर्णानि । ऐ० । १ । २५ ॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परिषिच्यते।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या ॥ १५ ॥

८. ( परिस्रुत् परिषिच्यते ) जो परिस्रुत् का परिषेक किया जाता है। वह ( क्रीतस्य सोमस्य रूपम् ) कीने हुए सोम का रूप है। अर्थात् राष्ट्रपक्ष में—( परिस्रुत् ) सब देशों से प्राप्त राज्यलक्ष्मी से जो अभिषेक किया जाता है वही राज्यलक्ष्मी द्वारा कीने गये, तदधीन हुए, या उससे प्राप्त सोम अर्थात् सर्वाज्ञापक राजा का उत्तम रूप है। देखो शोडषिग्रहप्रकरण शत० ५।१।२।१६॥

९. ( अश्विभ्याम् ) अश्वियों, स्त्री पुरुषों और ( सरस्वत्या ) सरस्वती, वेद के विद्वानों की बनी सभा द्वारा ( इन्द्राय ) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा के हित के लिये ( भेषजम् ) सब कष्टों का निवारण करनेवाला ( ऐन्द्रं ) इन्द्र का पद ( दुग्धम् ) सब प्रकार से पूर्ण किया जाता है।

आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी।
अन्तरऽउत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक् ॥ १६ ॥

१०. ( आसन्दी ) आसन्दी, यह पृथिवी ही ( राजासन्द्यै रूपम् ) राजा के बैठने के लिये आसन पीढ़ी का रूप है।

'आसन्दी'—इयं पृथिवी या आसन्दी अस्या हिं इदं सर्वमासन्नम्। श० ६ । ७ । १ । १२ ॥

११. ( सुराधानी कुम्भी वेद्यै रूपम् ) सुरा अर्थात् राज्यलक्ष्मी को धारण

करने वाली ( कुम्भी ) घट के समान गोलाकार पात्र ( वेद्यै ) वेदी, पृथ्वी का ही उत्तम रूप है ।

१२. ( अन्तरः उत्तरवेद्याः रूपम् ) अन्तर लोक अर्थात् अन्तरिक्ष उत्तर वेदी का रूप है ।

१३. (कारोतरः भिषक्) कारोतर अर्थात् 'छनना' के समान सार और असार पदार्थों का विवेचन करनेवाला विवेकी पुरुष ही अच्छा ( भिषक् ) रोग और पीड़ाओं को दूर करने में समर्थ है। अतः छनना भिषक का प्रतिनिधि है ।

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् ।
यूपेन यूपऽआप्यते प्रणीतोऽअग्निरग्निना ॥ १७ ॥

१४. ( वेद्या वेदिः समाप्यते ) यज्ञ के वेदी से ( वेदिः ) यह समस्त पदार्थ के प्राप्त करानेवाली भूमि (सम् आप्यते) समान रूप से ली जाती है।

१५. ( बर्हिषा ) यज्ञवेदी में बिछे कुश से ( बर्हिः इन्द्रियम् ) महान् इन्द्र, राजा का ऐश्वर्य ( समाप्यते ) तुलना किया जाता है ।

१६. ( यूपेन यूपः ) यज्ञ के 'यूप' नामक स्तम्भ से ( यूपः ) सूर्य, वज्र, खड्ग या स्वयं राजा ही ( आप्यते ) ग्रहण किया जाता है ।

१७. ( अग्निना अग्निः ) यज्ञ में प्रदीप्त अग्नि से ( अग्निः ) अग्रणी अग्नि के समान तेजस्वी राजा को तुलना किया जाता है ।

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती ।
इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥ १८ ॥

१८. राष्ट्र के ( अश्विनौ ) स्त्री पुरुष गण ( हविर्धानम् ) अन्नों के रखने वाले यज्ञ में ग्राह्य हविष्य पदार्थों के रखने वाले शकट के समान है ।

१९. ( यत् सरस्वती ) जो सरस्वती, विज्ञान का उपदेश करने का कार्य है वह यज्ञ में ( आग्नीध्रम् ) अग्नीधु नामक ऋत्विक् के स्थान या आसन के समान है ।

२०. ( इन्द्राय ) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राजा के लिये ( ऐन्द्रं ) जो इन्द्रोचिति ऐश्वर्य ( कृतम् ) किया जाता है वह यज्ञ में ( ऐन्द्रं सदः ) ऐन्द्र सदस् के समान है।

२१. इसी प्रकार—( ऐन्द्रं पत्नीशालम् ) पालन करने वाली राजा की राजसभा का भवन यज्ञ में पत्नीशाला के समान है।

२२. ( ऐन्द्रं गार्हपत्यः ) राजा का राज्य में गृहपति के समान रहना ही ( गार्हपत्यः ) यज्ञ में 'गार्हपत्य' अग्नि स्थापन के समान है।

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य ।
प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥ १९ ॥

२३. ( प्रैषेभिः ) उत्तम आज्ञा-कर्मों द्वारा ( प्रैषान् ) भृत्यों को ( आप्नोति ) प्राप्त करता है। अथवा ( यज्ञस्य प्रैषैः ) यज्ञ के 'प्रैष' कर्मों से ( प्रेषान् ) राष्ट्र के कार्यों में प्रेरित भृत्यों के प्रति की गयी आज्ञाओं की तुलना की जाती है।

२४. ( यज्ञस्य आप्रीभिः ) यज्ञ की 'आप्री' ऋचाओं से राष्ट्र की (आप्रीः) सब को प्रसन्न रखने वाली वेतनादान, पारितोषिक आदि क्रियाओं की तुलना की जाती है।

२५. ( प्रयाजेभिः [ प्रयाजान् ] ) यज्ञ के प्रयाजों द्वारा राष्ट्र के प्रयाज अर्थात् उत्तम २ अधिकार स्थानों से बड़े २ दानों की तुलना की जाती है।

२६. ( [ अनुयाजेभिः ] अनुयाजान् ) यज्ञ के 'अनुयाजों' द्वारा राष्ट्र के अनुयाज अर्थात् अनुकूल या तदधीन पुरुषों के प्रति अधिकार ऐश्वर्य प्रदान के कार्यों की तुलना की जाती है।

२७. ( वषट्कारेभिः [ वषट्कारान् ] ) यज्ञ के वषट्कार अर्थात् स्वाहाकारों से राष्ट्र के वषट्कारों अर्थात् योग्य पुरुषों को योग्य अधिकार दानों से तुलना की जाती है।

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीᳬंष्या ।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥ २० ॥

२८. ( पशुभिः पशून् आप्नोति ) यज्ञगत पशुओं द्वारा राष्ट्र के पशुओं की तुलना है।

२९. ( पुरोडाशैः हवींषि ) यज्ञ के पुरोडाशों से राष्ट्र के अन्न आदि भोग्य पदार्थों की तुलना है।

३०. ( छन्दोभिः [ छन्दांसि ] ) यज्ञ में मन्त्ररूप छन्दों से राष्ट्र में नाना अधिकार और व्यवहारों की तुलना है।

३१. ( [ सामिधेनीभिः ] सामिधेनीः ) यज्ञ में समिधा आधान की ऋचाओं द्वारा सामिधेनी अर्थात् राष्ट्र में सेना के विशेष अधिकार और सेनाबलों की तुलना है।

३२. ( याज्याभिः [ याज्याः ] ) यज्ञ की याज्या ऋचाओं से राष्ट्र की याज्या अर्थात् भूमि, अन्न और धन के दानों की तुलना है।

वज्रो वै सामिधेन्यः । कौ० ३ । २, ३ ॥

३३. ( [ वषट्कारैः ] वषट्कारान् ) यज्ञ के वषट्कारों से राष्ट्र में योग्य पुरुषों को योग्य अधिकार दानों की तुलना है।

'याज्याः'—इयं पृथिवी याज्या । श० १ । ७ । २ । ११ ॥ अन्नं वै याज्या । कौ० १४ । ३ ॥ प्रत्तिर्वै याज्या पुण्यैव लक्ष्मीः । ऐ० २ । ४० ॥

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि ।
सोमस्य रूपᳬं हविषऽआमिक्षा वाजिनम्मधु ॥ २१ ॥

भा०—यज्ञमें ( धानाः ) भुने धान, खीलें, ( करम्भः ) भात की लप्सी, ( सक्तवः ) सत्तु, ( परीवापः ) हविष्य, ( पयः ) दूध ( दधि ) दही, ( आमिक्षा ) गरम दूध में खट्टा डालने से फटे दूध के स्थूल भाग आमिक्षा और ( वाजिनम् ) जल भाग 'वाजिन' और ( मधु )

मधुर मधु, ये सब पदार्थ ( सोमस्य ) सोमरूप ( हविषः ) अन्न हवि का ( रूपम् ) रूप हैं। उसी प्रकार राष्ट्र में भी ( धानाः ) धारण पोषण करने वाली गौएं, ( करम्भः ) राज्य के कार्य करने वाले कर्मचारीगण, ( सक्तवः ) समूह या संघ में एकत्र प्रजागण, ( परीवापः ) पृथ्वी पर सर्वत्र अन्नादि बीजों का आवपन और शत्रुकानाशन, ( पयः ) पुष्टिकारी पदार्थों का संग्रह, ( दधि ) धारण पोषण के उपाय, ( आमिक्षा ) राजा और प्रजा के अधिकारियों का सम्मिलित गण, ( वाजिनम् ) पशु समृद्धि और ( मधु ) अन्न समृद्धि, ये सब ( हविषः ) ग्रहण करने योग्य ( सोमस्य ) राष्ट्र और राजा का ( रूपं ) उज्ज्वल रूप हैं।

धानानाᳬं रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः।
सक्तूनाᳬं रूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥ २२ ॥

**भा०**—( धानानां रूपं कुवलम् ) धाना, लाजाओं का रूप 'कुवल' अर्थात् कोमल 'बेर' का फल है। अर्थात् जिस प्रकार कोमल बेर को बकरी आदि पशु अनायास गुठली सहित खा जाते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के पोषणकारी गौ आदि पशु भी अनायास दूसरों के वश हो जाते हैं। ( गोधूमाः परीवापस्य रूपम् ) गोधूम, गेहूँ परिवाप का उत्तम रूप है। अर्थात् गेहूँ अन्न कृषि का उत्तम फल है।

( सक्तूनां रूपं बदरम् ) सक्तुओं का 'बदर' उत्तम रूप है। अर्थात् राष्ट्र में संघ बनाकर रहना शत्रु के लिये 'बेर' के समान होना है अर्थात् जैसे बेर कांटे खाकर प्राप्त होता है उसी प्रकार संघ में रहने से शत्रु को बड़ा कष्ट होता है।

( उपवाकाः करम्भस्य रूपम् ) करम्भ दही से मिले सत्तू का रूप उपवाक अर्थात् 'यव' है। करम्भ अर्थात् वीर्य से युक्त प्रजागण ( उप-

वाकाः=उपपाकाः ) शत्रु के समीप आने पर उसके दग्ध करने में समर्थ होते हैं ।

**पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि ।**
**सोमस्य रूपं वाजिनꣳ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥ २३ ॥**

भा०—( पयसः रूपं यद्यवाः ) जो पयस् अर्थात् दूध के रूप हैं । अर्थात् दूध जिस प्रकार शरीर को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार यव अन्न राष्ट्र की प्रजा को पुष्ट करता है । और जिस प्रकार ( पयः ) पुष्टिकारक वीर्य शरीर का पोषक है उसी प्रकार ( यवाः ) शत्रुओं को दूर करने में समर्थ सैनिक वीरजन राष्ट्र को पुष्ट करते हैं ।

( दध्नः रूपं कर्कन्धूनि ) दधि का रूप 'कर्कन्धू' अर्थात् पके बेरी के फल के समान है । दही जिस प्रकार वीर्य उत्पन्न करती है इसी प्रकार पके बेर भी बल उत्पन्न करते और स्वाद में खट्टे होते हैं । ( दध्नः ) राष्ट्र में धारण समर्थ बलका स्वरूप ( कर्कन्धूनि ) कांटेदार बेरी की झाड़ियों के समान हैं । वे जिस प्रकार बाड़ के रूप में रहकर पशुओं से कोमल विटपों को खाये जाने से बचाते हैं उसी प्रकार कांटों के समान पीड़ाकारी हिंसाजनक शस्त्रों को धारण करने वाले वीर सैनिकबल राज्य के ( दधि ) धारण-कारी बलका स्वरूप हैं ।

'कर्कन्धू'—कर्कं कण्टकं दधाति इति कर्कन्धूः । इति दया० उणा० । अथवा कर्कान् कण्टकरूपान् शत्रून् धुन्वते इति कर्कन्धूनि सेनाबलानि ।

( सोमस्य रूपं वाजिनम् ) सोम का रूप 'वाजिन' है । सोम का रूप 'वाजिन' के समान है । 'सोम' अर्थात् राजा का रूप 'वाजिन' वाज अर्थात् अन्न और बल और संग्राम बल का स्वामी होता है । (सोमस्य रूपम् आमिक्षा) सोम राजा के राजत्व का रूप 'आमिक्षा' है । 'आमिक्षा' अर्थात् प्रजा पर सब सुखों का वर्षण करना अथवा सब ओर से राज्य के मुख्य पद पर

अभिषेक क्रिया होना अथवा सब ओर से दुष्ट पुरुषों का नाश करना है।

'आमिक्षा'—समन्तात् मेषति हिनस्ति इत्यामिक्षा। दया० उणा०। मेहति सिञ्चति वा सा आमिक्षा।

आ श्रा॑वयेति॑ स्तो॒त्रियाः॑ प्रत्याश्रा॒वोऽअनु॑रूपः।
यजेति॑ धाय्यारू॒पं प्र॑गा॒था ये॑यजाम॒हाः॥ २४॥

भा०—( 'आश्रावय' इति स्तोत्रियाः ) 'आश्रावय' इस प्रकार कहना यज्ञ में स्तोत्रिय अर्थात् प्रथम तीन ऋचा के पाठ के समान हैं।

राष्ट्रपक्ष में—( स्तोत्रियाः ) विद्वान्, सत्यासत्य विद्याओं के योग्य विद्यार्थीगण ( आश्रावय ) सब प्रकार की विद्याओं को 'हे गुरो श्रवण कराओ' ( इति ) इस प्रकार विनय से प्रार्थना करें।

( प्रत्याश्रावो अनुरूपः ) यज्ञ में प्रत्याश्राव 'अस्तु श्रौषट्' इस प्रकार कहना अनुरूप अर्थात् अन्त की तीन ऋचाओं के पाठ करने के समान है।

राष्ट्रपक्ष में—( प्रत्याश्रावः ) विद्यार्थियों के प्रति विद्याओं का उपदेश करना ( अनुरूपः ) उनके योग्यता के अनुरूप होना चाहिये।

( यज इति धाय्यारूपम् ) 'यज' इस प्रकार कहना 'धाय्या' नाम ऋचा के पठन के समान है।

राष्ट्रपक्ष में—( यज इति ) 'प्रदान कर' इस प्रकार आदर से कहना ( धाय्या रूपम् ) धारण या ग्रहण करने योग्य पदार्थ का उत्तम रूप है। अर्थात् दानरूप में लेने के लिये दाता को ( यज ) प्रदान कर ( इति ) ऐसा कहे।

( प्रगाथाः ये यजामहाः ) 'ये यजामहे' इत्यादि शब्द प्रगाथा ऋचाओं का पाठ करने के समान हैं।

राष्ट्रपक्ष में—( ये ) जो हम लोग ( यजामहाः ) यज्ञ दान आदि

करते हैं, इस प्रकार श्रेष्ठाचारवान् हैं वे ( प्रगाथाः ) उत्तमरूप से स्तुति करने योग्य हैं।

अ॒र्ध॒ऽऋ॒चैरु॒क्थाना॑ᳬ रू॒पं प॒दैरा॑प्नोति नि॒विदः॑।
प्र॒ण॒वैः श॒स्त्राणा॑ᳬ रू॒पं पय॑सा॒ सोम॑ऽआप्यते ॥ २५ ॥

भा०—( अर्ध ऋचैः उक्थानां रूपं आप्नोति ) अर्ध ऋचाओं द्वारा उक्थ नाम स्तोत्रों का रूप प्राप्त करता है।

राष्ट्रपक्ष में—समृद्ध स्तुतिवचनों से ( उक्थानाम् ) विशेष स्तुतियों का स्वरूप प्राप्त होता है।

( पदैः निविदः आप्नोति ) पदों द्वारा 'निविद्' नाम ऋचाओं का ग्रहण करता है।

राष्ट्रपक्ष में—( पदैः ) अधिकारों या अधिकार सूचक पद के द्वारा ( निविदः ) निखिल पदार्थों को प्राप्त करनेवाले ज्ञानवान् पुरुषों को प्राप्त करता है।

( प्रणवैः शस्त्राणां रूपम् आप्नोति ) यज्ञ में प्रणव अर्थात् ओंकारों द्वारा शस्त्रों अर्थात् स्तुतियुक्त मन्त्रों का स्वरूप प्राप्त करता है।

राष्ट्रपक्ष में—( प्रणवैः ) उत्कृष्ट नवयुवकों द्वारा ( शस्त्राणां ) शस्त्र-धारी पुरुषों का उत्तम स्वरूप प्राप्त करता है।

( पयसा सोमः आप्यते ) 'पयस्' अर्थात् दूध से यज्ञ में सोम-लता के रस का रूप प्राप्त किया जाता है।

राष्ट्रपक्ष में—पुष्टिकारक अन्नादि पदार्थ से ही ( सोमः ) समस्त राज्य का सार या राजा का पद प्राप्त किया जाता है।

अ॒श्विभ्यां॑ प्रा॒तःस॒व॒नमिन्द्रे॑णै॒न्द्रं माध्य॑न्दिनम्।
वै॒श्व॒दे॒वᳬ सर॑स्वत्या तृ॒तीय॑मा॒प्तᳬ सव॑नम् ॥ २६ ॥

भा०—( अश्विभ्यां ) अश्वियों से ( प्रातःसवनम् आप्तम् ) प्रातः सवन की तुलना की जाती है।

( इन्द्रेण ) इन्द्र ग्रह से ( ऐन्द्रं माध्यंदिनम् ) इन्द्र देवताक माध्यंदि सवन की तुलना की है।

( सरस्वत्या ) सरस्वती द्वारा ( तृतीयम् ) तीसरे ( वैश्वदेवं सवनम् आप्तम् ) विश्वेदेव सम्बन्धी सवन की तुलना की गई है।

राष्ट्रपक्ष में—'अश्वि' नामक पदाधिकारियों का स्थापन राष्ट्र के प्रातः सवन प्रातःकालिक आह्निक कृत्य के समान है। इन्द्र पदाधिकारी का स्थापन माध्यंदिन सवन अर्थात् मध्याह्नकाल के कृत्य के समान है। सरस्वती, वेदवाणी का प्रसार ( वैश्वदेवं ) समस्त प्रजाओं के हितकारी सायंसवन के समान है। अर्थात् प्रातः समय जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र दोनों विद्यमान होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र के दो वीर रक्षक राजा और अमात्य हैं। मध्याह्न में जिस प्रकार प्रखर सूर्य है उसी प्रकार राष्ट्र के बीच प्रचण्ड सेनापति है। सायंकाल रात्रि के समय जिस प्रकार सब दीप्तिमान नक्षत्र हैं उसी प्रकार ज्ञान से उज्ज्वल समस्त विद्वान्‌गण हैं।

वा॒य॒व्यै॒र्वा॑य॒व्या॒न्या॒प्नोति॒ सते॑न द्रोणकल॒शम् ।
कु॒म्भीभ्या॑मम्भृ॒णौ सु॒ते स्था॒लीभि॒ स्था॒लीरा॑प्नोति ॥ २७ ॥

भा०—( वायव्यैः वायव्यानि आप्नोति ) सोम और सौत्रामणी दोनों यज्ञों में वायव्य नामक पात्रों से वायव्यों की तुलना करे।

( सतेन द्रोणकलशम् आप्नोति ) वेत के बने पात्र से सोमयाग के द्रोणकलश की तुलना होती है।

( सुते कुम्भीभ्यां अम्भृणौ ) सोम सवन होजाने पर दो कुम्भियों से अम्भृण नाम पात्रों की तुलना होती है।

( स्थालीभिः स्थालीः आप्नोति ) स्थाली पात्रों से स्थालीपात्रों की तुलना होती है।

राष्ट्रपक्ष में—वायु के समान तीव्र वेगवान् सैनिकों द्वारा उनके योग्य वेग के कार्यों को प्राप्त करता है।

( सतेन ) लम्भाग करने हारे व्यवहार से ( द्रोणकलशम् ) राष्ट्र को प्राप्त करता है।

( सुते ) राज्याभिषेक होजाने पर जलाधार और धान्याधार दोनों प्रकार के ( कुम्भीभ्याम् ) पात्रों से ( अम्भृणौ ) प्रजाका पालन पोषण करता है।

( स्थालीभिः ) स्थापन क्रियाओं से राष्ट्र के व्यवस्थापक शक्तियों को प्राप्त करता है।

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहै स्तोमाश्च विष्टुतीः।
छन्दोभिरुक्था शस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते ॥ २८ ॥

भा०—( यजुर्भिः [ यजूंषि ] आप्यन्ते ) यजुओं से यजुओं की तुलना की जाती है ( ग्रहा ग्रहैः ) ग्रहों से ग्रहों की, ( स्तोमाः [ स्तोमैः ] ) स्तोमों से स्तोमों की और ([ विष्टुतिभिः] च विष्टुतीः) विविध स्तुतियों से विविध स्तुतियों की, और (छन्दोभिः छन्दांसि) छन्दों से छन्दों की (उक्थशस्त्रैः उक्थशस्त्राणि) उक्थ शस्त्रों से उक्थ शस्त्रों की, ( साम्ना साम, अवभृथेन अवभृथः ) साम गायन से साम गान की और अवभृथ से अवभृथ स्नान की तुलना की जाती है।

राष्ट्रपक्ष में—जैसे यज्ञ में यजुर्वाक्य हैं उसी प्रकार राष्ट्र में (यजुः) व्यवस्थाकारक आज्ञाएं और नियम है। यज्ञ में जैसे 'ग्रह' होम हैं वैसे राष्ट्र में ( ग्रहाः ) अंग प्रत्यंग, अधिकार विभाग हैं। जैसे यज्ञ में 'स्तोम' हैं उसी प्रकार राष्ट्र में, स्तुति योग्य अधिकार पद हैं। जैसे यज्ञ में 'विष्टुति' खास ऋचाएं हैं उसी प्रकार राष्ट्र में आदर योग्य पुरुषों की विशेष स्तुतियां हैं।

जैसे यज्ञ में छन्द हैं वैसे राष्ट्र में यथाशक्ति अधिकार कार्य

विभाग हैं। जैसे यज्ञ में 'उक्थशस्त्र' है वैसे राष्ट्र में वीर्यानुसार शस्त्र धारण हैं। जैसे यज्ञ में 'साम' हैं राष्ट्र में सामादि उपाय हैं। जैसे यज्ञ में 'अवभृथस्थान' है वैसे राष्ट्र में अधीनों के भरण पोषण का कर्त्तव्य है।

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः।
शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सꣳस्थाम् ॥ २९ ॥

भा०—(इडाभिः इडाम्) इडाओं से इडाओं को (भक्षैः भक्षान् आप्नोति) भक्षों से भक्षों को, (सूक्तवाकेन सूक्तवाकम्) सूक्तवाक से सूक्तवाक को, (आशीर्भिः आशिषः) आशीर्वादों से आशीर्वादों को (शंयुना शंयुम्) शंयु से शंयु को, (पत्नीसंयाजान् पत्नीसंयाजैः) पत्न संयाजों से पत्नीसंयाजों को (समिष्टयजुषा समिष्टयजुः) समिष्ट यजु से समिष्ट यजु को और (संस्थया संस्थाम्) संस्था से संस्था को (आप्नोति) प्राप्त करता है। अर्थात् सोमयाग के इडादि विभागों से सौत्रामणी के इडादि विभागों की तुलना करता है।

राष्ट्र में—जैसे यज्ञ में 'इडा' है उसी प्रकार राष्ट्र में इडा, अन्न समृद्धियां और पृथिवियें हैं। यज्ञ में जैसे 'सोमभक्ष' हैं उसी प्रकार इधर नाना भोग्य फल हैं। यज्ञ में 'सूक्तवाक' है, राष्ट्र में उत्तम वचन प्रयोग हैं। यज्ञ में आशीर्वाद, राष्ट्र में, आशीर्वादों के समान हैं, यज्ञ में 'शंयु' अर्थात् शांति वाचन है, राष्ट्र कार्यों में भी शांतिकर्म हैं। यज्ञ में पत्नीसंयाज है, राष्ट्र में पालनशक्ति से समस्त प्रजाओं को सुखप्रदान रूप कर्म हैं। यज्ञ में 'समिष्ट यजु' है राष्ट्र में समस्त विद्वानों और शासकों को परस्पर सुसंगत कर उनको योग्य वेतन आदि देना 'समिष्टयजु' है। यज्ञ में 'संस्था' है। राष्ट्र में राजसभा आदि 'संस्था' या व्यवस्था है।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ३० ॥

भा०—( व्रतेन ) सत्यभाषण, ब्रह्मचर्यादि नियम पालन से ( दीक्षाम् आप्नोति ) पुरुष दीक्षा को प्राप्त करता है। ( दीक्षया ) दीक्षा से ( दक्षिणाम् आप्नोति ) दक्षिणा, प्रतिष्ठा और राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होता है। ( दक्षिणा ) प्रतिष्ठा से या शक्ति से ( श्रद्धाम् ) श्रद्धा, सत्य धारण करने की इच्छा को प्राप्त होता है। (श्रद्धया सत्यम् आप्यते) श्रद्धा, से सत्य ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा से सत्य प्राप्त किया जाता है।

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद् देवैर्ब्रह्मणा कृतम्।
तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥ ३१ ॥

भा०—( देवैः ) विद्वान् पुरुषों और ( ब्रह्मणा ) चारों वेदों ने ( यज्ञस्य ) यज्ञ कर्म का और राष्ट्र प्रजापालन रूप यज्ञ का और अध्ययनाध्यापन यज्ञ का भी ( एतावद् रूपम् ) इतना पूर्वोक्त क्रिया और इष्टियों सहित उज्ज्वल, एवं उत्तम स्वरूप ( यत् ) जो ( कृतम् ) वर्णन किया है (तत्) वह सब ( सौत्रामणी यज्ञे सुते ) सौत्रामणी नाम यज्ञ में अभिषवन करने पर भी ( तत् एतत् सर्वम् ) वह सब यज्ञ का स्वरूप ( आप्नोति ) प्राप्त होता है।

( सौत्रामणी यज्ञे सुते ) 'सुत्रामा' उत्तम रीति से त्राण, पालन करने वाले राजा के राष्ट्र पालन के निमित्त अभिषेक करने में भी यज्ञ का पूर्ण स्वरूप उपलब्ध होता है। इसी प्रकार स्वाध्याय यज्ञ में सौत्रामणी यज्ञ अर्थात् यज्ञोपवीत आदि सूत्र जिस क्रिया में मणि, ग्रन्थि आदि रूप से धारण किये जांय वह गुरु द्वारा किये शिष्योपनयन, वेदारम्भ, अध्ययन अध्यापन आदि कार्य भी सौत्रामणी यज्ञ हैं। उनमें शिष्य रूप सोम ज्ञान रूप अमृत या सुरा का पान करता है।

सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना ग्रन्थिना युक्तानि ध्रियन्ते यस्मिन् इति सौत्रामणी। इति दयानन्दः ॥

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

अश्विनौ सरस्वती इन्द्रश्च देवताः । त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—( महिषाः ) महान् पूजनीय पुरुष ( सुरावन्तं ) राज्यलक्ष्मी से युक्त ( बर्हिषदम् ) आकाश में सूर्य के समान वृद्धिकर, पूजनीय आसन और प्रजागण के ऊपर अधिष्ठाता रूप से विराजमान, ( सुवीरम् ) उत्तम प्राणों से युक्त, आत्मा के समान उत्तम वीर पुरुषों से युक्त ( यज्ञम् ) सब के पूजनीय, सबको सुव्यवस्थित, सुसंगत करने में कुशल, प्रजापति राजा को ( नमोभिः ) नमस्कार युक्त आदर वचनों और शत्रुओं को नमाने में समर्थ शस्त्र बलों, वीर्यों से ( हिन्वन्ति ) बढ़ाते हैं । और हम ( देवतासु ) विद्वान् पुरुषों के समूहों में, विद्वत्सभाओं में और (दिवि) राजसभा में ( सोमं ) सब के प्रेरक और ( इन्द्रं ) ऐश्वर्यवान् राजा को ( दिवि ) आकाश में सूर्य के समान सर्वप्रकाशक, सर्वोपरि मार्गदर्शक के रूप में ( दधानाः ) धारण करते हुए ( स्वर्काः ) उत्तम अर्चना योग्य ज्ञान और अन्नादि पदार्थों सहित ( यजमानाः ) उसकी सत्संगति लाभ कर और परस्पर सम्मिलित होकर हम ( मदेम ) स्वयं आनन्द लाभ करें । और उस राजा को भी (मदेम) तृप्त, प्रसन्न संतुष्ट करें । शत० १२।८।१।१॥

यस्ते रसः सम्भृतऽओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! ( सुरया सुतस्य ) उत्तम रूप से दान देने योग्य या उपभोग या रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी से अभिषिक्त हुए ( सोमस्य ) सब के प्रेरक ( ते ) तुझ राजा का ( यः ) जो ( रसः ) रस, बल,

३३—'०मश्विना इन्द्र' इति काण्व० ।

( ओषधिषु ) रोग निवारक ओषधियों, रसवती, स्वतः शत्रुदाहक वीर्य को धारण करने वाली सेनाओं और प्रजाओं में ( सम्भृतः ) एकत्र संगृहीत है ( तेन ) उस ( मदेन ) हर्षकारी बल से ( यजमानं ) दानशील प्रजाजन को, ( सरस्वतीम् ) ज्ञानवती विद्वत्सभा को और ( अश्विनौ ) राष्ट्र के स्त्री पुरुषों को दो मुख्य अधिकारी राजा रानी या और राजा मन्त्री दोनों को और ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक सेनापति और ( अग्निम् ) ज्ञानवान् आचार्य एवं अग्रणी पुरुष को ( जिन्व ) तृप्त कर। अर्थात् प्रजाओं के धन से राजा वैश्यों को, विद्वानों को, प्रजा के स्त्री पुरुषों और सेनापति आदि को पालन करे। शत० १२। ८। १ ४॥

**यम॒श्विना॒ नमु॑चेरासु॒राद॑धि॒ सर॑स्व॒त्यसु॑नोदिन्द्रि॒याय॑।**
**इ॒मं तꣳ शु॒क्रं मधु॑मन्त॒मिन्दु॒ꣳ सोम॒ꣳ राजा॑नमि॒ह भ॑क्षयामि॥३४॥**

अश्वादयो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( अश्विनौ ) राष्ट्र के स्त्री और पुरुष अथवा सूर्य और चन्द्र के समान तापकारी और सौम्यस्वभाव के सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष नाम दो अधिकारी और ( सरस्वती ) वेद वाणी के विज्ञ विद्वानों की सभा (नमुचेः) कर आदि न देने वाले या दुर्भिक्षकालिक मेघ के समान प्रजा के निमित्त कुछ भी सुख और राष्ट्र भोग को प्रदान न करने वाले ( आसुरात् ) असुर, दुष्ट स्वभाव के राजा से ( अधि ) अधिक बलवान् ( यम् ) जिस बलवान् पुरुष को ( असुनोत् ) अभिषिक्त करती है, राज्यपद पर बैठाती है ( तं ) उस ( इमम् ) इस प्रत्यक्ष ( शुक्रं ) बलवान् तेजस्वी, ( मधुमन्तम् ) अन्नादि ऐश्वर्य और शत्रुपीड़नकारी बल से युक्त, ( इन्दुम् ) ऐश्वर्यकारी या दुखी प्रजा के प्रति दयार्द्र ( सोमम् ) सबको सन्मार्ग में प्रेरणा करने में समर्थ पुरुष को, ( राजानम् ) राजा रूप से ( इह ) इस राष्ट्र में ( भक्षयामि ) ऐश्वर्य के भोग का अधिकार

प्रदान करता हूं। अथवा उस राजा के होने का सुख समस्त प्रजाजन को भोग कराता हूं, अथवा मैं प्रजाजन उस पुरुष को राजा ( भक्षयामि ) भोग करता हूं, उसको स्वीकार करता हूं। शत० १२। ८। १। २॥

यह राजा का भोग करना ऐसा ही समझना चाहिये जैसे ग्रहों का राशि भोग, अथवा किसी के 'स्वास्थ्य का पान' करना व्यवहार में प्रचलित है।

**यदत्रं रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रोऽअपिबुच्छचीभिः। अहंतदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३५ ॥**

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—( अत्र ) इस राष्ट्र में ( रसिनः ) बलवान् ( सुतस्य ) अभिषिक्त राजा के ( यत् ) जिस ( रिप्तम् ) क्रूर कर्म को ( इन्द्रः ) शत्रु-नाशक सेनापति ने ( शचीभिः ) अपनी शक्तिवाली सेनाओं द्वारा ( अपिबत् ) स्वयं ग्रहण किया है ( अहम् ) मैं प्रजाजन, एवं राष्ट्र के शासक वर्ग सब ( तत् ) उसको ( शिवेन मनसा ) कल्याणमय शुभ चित्त से ( अस्य ) इस राष्ट्र के ( राजानं सोमम् ) सर्वशासक, ऐश्वर्यवान् राज्य के रूप में ( भक्षयामि ) भोग करता हूं। अथवा—जो राष्ट्र का भाग प्रथम विजय के समय सेनापति के अधीन था जो पहले ऐश्वर्यांश सेना पर व्यय हो रहा था अब उसको विजय और अभिषेक के अनन्तर राजा को भोगने के लिये प्रदान करता हूं। शत० १२। ८। १। ५॥

**पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः। पितरः शुन्धध्वम् ॥ ३६ ॥**

पितरो देवताः। निचृदादि त्रिष्टुप्। मध्यमः।

भा०—( स्वधायिभ्यः ) स्वधा, अन्न, जल या शरीर के पोषण योग्य वेतन स्वीकार करनेवाले ( पितृभ्यः ) राष्ट्र और प्रजा के पालक पुरुषों का ( स्वधा नमः ) अन्न जल एवं योग्य वेतन द्वारा आदर सत्कार और अधिकार दान किया जाय। इसी प्रकार ( पितामहेभ्यः ) उक्त पालकों के भी पालकों को और ( प्रपितामहेभ्यः ) उनसे भी ऊँचे पद पर विराजमान उनके भी पालक, शासक उन पुरुषों का जो ( स्वधायिभ्यः ) अन्न, वेतनादि को ग्रहण करनेवाले हैं ( स्वधा नमः ) अन्नादि वेतनों द्वारा सत्कार किया जाय। राष्ट्र के शासकों में क्रम से तीन श्रेणियां हों। जो क्रम से एक दूसरे के ऊपर उत्तरोत्तर अपना अधिकार रक्खें।

( पितरः ) पालक पुरुष ( अक्षन् ) यह स्वीकार करें। ( पितरः अमीमदन्त ) पालक लोग तृप्त सन्तुष्ट होकर रहें। ( पितरः अतीतृपन्त ) पालक जन प्रसन्न होकर रहें। हे ( पितरः ) पालकपुरुषो ! ( शुन्धध्वम् ) हम प्रजाजन को शुद्ध आचरण वाला शत्रु रहित करें, एवं राजा का अभिषेक करें। शत० १२।८।७।८॥

**पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः। पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा। पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ३७ ॥**

३७–४५ पावमानं सूक्तम्। भुरिगष्टिः। मध्यमः॥

भा०—( सोम्यासः ) ऐश्वर्य, राज्य कार्य में स्थित सोम राजा के समान शान्त और तेजस्वी ( पितरः ) पालक गुरु, आचार्य, विद्वान् ऋत्विग् आदि पूज्य पुरुष ( मा पुनन्तु ) मुझे पवित्र करें। निन्दा योग्य, असत् आचार से छुड़ाकर सदाचार, शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करावें। ( पितामहाः मा पुनन्तु ) पिता के पिता के समान पालकों के भी पालक, गुरुओं के गुरु, शासकों के भी शासक पुरुष मुझे पवित्र आचार

व्यवहारवाला करें। ( पितामहाः पुनन्तु ) उनके पूज्य लोग भी तुझे पवित्राचारवान् बनावें। वे ( पवित्रेण ) पवित्र ( शतायुषा ) सौ वर्ष के पूर्ण दीर्घ जीवनवाले आहार आदि से मुझे पवित्र करें। ( पुनन्तु पिता०, पुनन्तु प्रपिता०, पवित्रेण शतायुषा ) इति पूर्ववत्। जिससे मैं ( विश्वम् ) समस्त, सम्पूर्ण ( आयुः ) जीवन का ( व्यश्नवै ) भोग करूं। ( ३७-४५ ) शत० १२। ८। ६-१८॥

पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद् ब्रह्मवर्चसम्॥ रघुवंशे० १। ६३॥

अग्नऽ आयूꣳषि पवस ऽआ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ ३८॥

प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् विद्वन्! राजन्! पितः! पितामह! प्रपितामह! तू ( नः आयूंषि ) दीर्घ जीवन और उसके प्रदान करनेवाले अन्न घृत आदि पदार्थ और प्राणायाम आदि साधनों को ( पवसे ) प्रदान कर ( ऊर्जम् ) परम उत्तम अन्नरस और पराक्रम ( इषम् ) इच्छानुरूप फल और अन्नादि ऐश्वर्य भी हमें ( आसुव ) प्रदान कर। और ( आरे ) समीप और दूर के ( दुच्छुनाम् ) दुष्ट, पगले कुत्तों के समान प्रजाओं को व्यर्थ काटने और डराने, धमकाने वाले शठ पुरुषों को ( बाधस्व ) पीड़ित कर,

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥ ३९॥

वैखानस ऋषिः। देवजना धियो भूतानि च देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—( मा ) मुझको ( देवजनाः ) विद्वान्, दानशील, ज्ञानद्रष्टा, प्रकाशमान्, गुरु, सूर्य आदि जन ( पुनन्तु ) पवित्र करें। ( मनसा धियः ) मन, विज्ञान से युक्त, सोच विचार कर किये गये कर्म भी मुझे पवित्र करें। ( विश्वा ) समस्त ( भूतानि ) प्राणीगण और पृथिवी, अप्, तेज, वायु

आकाशादि पदार्थ और हे ( जातवेदः ) विद्वान् और परमेश्वर ये ! सब ( मा पुनन्तु ) मुझ राजा और प्रजाजन को पवित्र करें ।

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँ१ऽ रनु ॥ ४० ॥

ब्रह्म अग्निर्वा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( देव ) देव ! परमेश्वर, आचार्य एवं विद्यादातः ! हे ( दीद्यत् ) दीप्यमान ! तेजस्विन् ! हे ( अग्ने ) अग्ने ! ज्ञानवान् ! ( मा ) मुझको ( शुक्रेण ) शुद्ध, दीप्तिमय, ( पवित्रेण ) अपने पवित्र ज्ञान स्वरूप और आचार के उपदेश से ( पुनीहि ) पवित्र कर । और ( क्रत्वा ) अपने ज्ञान और उत्तम कर्म से ( अनु ) तदनुसार किये ( क्रतून् ) हमारे कर्मों और ज्ञानों को भी पवित्र कर ।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ४१ ॥

अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा—हे ( अग्ने ) अग्ने ! ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! ( ते ) तेरे ( अर्चिषि ) पूजनीय शुद्ध तेज के ( अन्तरा ) बीच में ( पवित्रं ) पवित्र, शुद्ध ( ब्रह्म ) ब्रह्म, वेद ज्ञान ( विततम् ) विस्तृत है ( तेन मा पुनातु ) तू उससे मुझे पवित्र कर ।

विद्वान् के पक्ष में—हे अग्ने ज्ञानवन् ( ते अर्चिषि अन्तरा ) तेरे ज्वाला के समान तेजस्वी मुख या जिह्वा पर जो ( पवित्रं ब्रह्म विततम् ) पवित्र ब्रह्म या वेदमन्त्र व्याख्यासहित विद्यमान हैं उनके उपदेश द्वारा तू मुझे पवित्र कर ।

राजा के पक्ष में—तेरे शुद्ध, पापशोधक ज्वाला, या तेज में जो पवित्र, पावन ( ब्रह्म ) ब्राह्मणगण विद्यमान है वह मुझ प्रजाजन को ज्ञान, सदाचार, उपदेश द्वारा पवित्र करे ।

पवमानः सो ऽअद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

सोमो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( यः ) जो ( अद्य ) आज, नित्य ही, ( विचर्षणिः ) सब का सूर्य के समान द्रष्टा, ( पवमानः ) वायु और प्राण के समान सब का पवित्र कर्त्ता एवं व्यापक ( पोता ) अग्नि के समान शोधक परमेश्वर, विद्वान् एवं राजा है ( सः ) वह ( नः ) हमें ( पवित्रेण ) पवित्र ज्ञान और कर्म से ( मा ) मुझ राजा और प्रजा को पवित्र करे ।

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
मां पुनीहि विश्वतः ॥ ४३ ॥

सविता देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( देव ) प्रकाशस्वरूप ! हे ( सवितः ) सबके उत्पादक ! आप ( पवित्रेण ) पवित्र, शुद्ध ज्ञान कर्म और ( सवेन च ) ऐश्वर्य, एवं राज्याभिषेक ( उभाभ्यां ) दोनों से ( मां ) मुझ अभिषेक योग्य राजा और प्रजाजन को भी ( विश्वतः पुनीहि ) सब प्रकार से पवित्र कर ।

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमादेषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४४ ॥

विश्वेदेवा देवताः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( देवी ) समस्त उत्तम कार्यों का प्रकाश करने वाली, ( वैश्वदेवी ) समस्त शासकों और विद्वानों की महासभा ( पुनती ) समस्त राज्य को पवित्र करती हुई, सत्यासत्य धर्माधर्म का चालनी या सूप के समान विवेक करती हुई, ( आगात् ) प्राप्त हुई है । ( यस्याम् ) जिसमें ( बह्व्यः ) बहुत सी ( इमाः ) ये ( वीतपृष्ठाः ) कमनीय स्वरूप वाले, ज्ञान प्राप्त किये, ( तन्वः ) शरीर अर्थात् शरीरधारी जन विद्यमान हैं ।

( तया ) उनसे ( सधमादेषु ) एकत्र आनन्दोत्सवों के अवसरों पर ( मदन्तः ) प्रसन्न और हर्षित होते हुए ( वयं ) हम सब ( रयीणां पतयः ) ऐश्वर्यों के पालक, स्वामी ( स्याम ) हों। विशेष २ अवसरों पर समस्त प्रजाजनों के प्रतिनिधि, बड़े २ आदमी, अधिकारी आदि की महासभा हो। उसमें वे अपनी उन्नति के विषयों पर विचार करें।

इसी प्रकार ( वैश्वदेवी ) समस्त स्त्रियों में अधिक विद्यासम्पन्न विदुषी आचार्याणी प्राप्त हो। ( यस्यां ) जिसके आधीन ( बह्व्यः ) बहुत सी ( वीतपृष्ठाः ) प्रश्न करने में कुशल जिज्ञासु, विद्यार्थिनी कन्याएं हों। उनके द्वारा हम प्रजाजन ( सधमादेषु ) गृहस्थ के कार्यों में भी अति सुख प्राप्त करें और ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

ये स॑मा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ यम॒राज्ये॑।
तेषां॑ लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञो दे॒वेषु॑ कल्पताम् ॥ ४५ ॥

पितरो देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—( यमराज्ये ) नियन्ता राजा के राज्य में ( ये ) जो ( समानाः ) समान मान वाले, ( समनसः ) समान चित्त वाले, ( पितरः ) राज्य के पालक, अधिकारी जन हैं ( तेषां ) उनको ( लोकः ) रहने का निवास-स्थान और ( स्वधाः ) आत्मभरण पोषण योग्य अन्न, वस्त्र, वेतनादि ( नमः ) सत्कार प्राप्त हो जिससे ( यज्ञः ) यज्ञ, प्राप्त करने योग्य न्याय और प्रजापालन, परस्पर सुसंगत राजव्यवस्था ( देवेषु ) विद्वानों, शासकों और कर अधीन माण्डलिकों के बीच ( कल्पताम् ) और भी दृढ़ और उत्तम प्रद हो। शत० १२। ८। १। १९॥

ये स॑मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः।
तेषा॒ᳪ श्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तᳪ समाः॑ ॥ ४६ ॥

आशीः। श्रीर्देवता। त्रिष्टुप्। गांधारः॥

भा०—( जीवेषु ) जीवित मनुष्यों में से ( ये ) जो ( मामकाः ) मेरे ( जीवाः ) जीवित सम्बन्धी लोग ( समानाः ) मेरे समान मान वाले और ( समनसः ) मेरे समान ज्ञान और चित्तवाले प्रेमीजन हैं ( तेषां ) उनकी ( श्रीः ) समस्त शोभा, लक्ष्मी, सम्पत्ति ( अस्मिन् लोके ) इस लोक में ( शतं समाः ) सौ वर्ष तक, पूर्ण आयु भर ( मयि कल्पताम् ) मेरे में, मेरे अधीन, मेरे निमित्त सदा बढ़ती और बनी रहे। शत० १२।८।१।२०॥

**द्वे सृती ऽअशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।**
**ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ ४७ ॥**

पितरो देवताः। स्वराट् पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—( अहम् ) मैं ( मर्त्यानाम् ) मनुष्यों के लिये, उनके जीवन व्यतीत करने के ( द्वे सृती ) दो मार्ग ( अशृणवम् ) श्रवण करता हूं। ( पितॄणाम् ) एक पितरों का पितृयाण मार्ग ( उत ) और दूसरा ( देवानाम् ) देव, विद्वान् मुमुक्षुओं का ( यत् ) जो भी ( पितरं मातरं च अन्तरा ) पिता और माता के बीच, दोनों के संसर्ग से उत्पन्न ( इदं ) यह ( विश्वम् ) समस्त ( एजत् ) चर, जीवित संसार है वह ( ताभ्याम् ) उन दो मार्गों से ही ( सम्-एति ) सुखपूर्वक उत्तम रीति से प्रयाण करता है। जीवन व्यतीत कर रहा है। शत० १२। ८। १। २१॥

अथवा—( अहम् ) मैं जीवों के दो उत्तम मार्ग सुनता हूं। ( देवानाम् उत पितॄणाम् ) एक देवों का देवयान और दूसरा पितरों का 'पितृयाण' मार्ग। ( उत ) और शेष तीसरा ( मर्त्यानाम् ) मरणधर्मा जीवों का मार्ग है। उन दोनों से यह जीव संसार ( सम् इति ) सम्यक् पद या लोक को प्राप्त होता है जो भी पिता माता के बीच या आकाश और भूमि के बीच उत्तम हैं।

छान्दोग्य में तीन मार्ग जैसे—( १ ) तद्य इत्थं विदुः ये चेमेऽरण्ये

श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्ति स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्थाः ॥ ( २ ) अथ य इमे ग्रामे इष्टापूर्ते दत्तम् इत्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति ( ३ ) अथैतयोः पथोर्न कत्तरेणचन । तानीमानि क्षुद्राण्य सकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्तिं जायस्व म्रियस्वेत्येतत् तृतीयं स्थानं तेनासौ-लोको न संपूर्यते ।

राष्ट्रपक्ष में—समस्त राष्ट्र वासी प्रजाजन के जीवन यापन के दो ही मार्ग हैं । एक पालक शासक रूप से राजा की सरकारी सेवा में लगने का, दूसरा ( मर्त्यानाम् ) साधारण प्रजा का अपने माता पिता के पेशे में लगे रहने का ।

**इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽअस्मासु धत्त ॥ ४८ ॥**

अग्निर्देवता । निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—( इदं ) यह ( मे ) मेरे ( हविः ) दान करने और गर्भ में स्त्री द्वारा स्वीकार करने योग्य ( प्रजननं ) उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेवाला वीर्य ( दशवीरम् ) दश पुत्र उत्पन्न करनेवाला अथवा दशों प्राणयुक्त ( सर्वगणम् ) सर्व अंगों में व्यापक, अथवा सब उत्तम गुणों और अंगों से पूर्ण, सर्वाङ्ग सुन्दर होकर ( स्वस्तये ) कल्याण के लिये हो । वह ( आत्मसनि ) अपने देह में बल धारण करनेवाला, ( प्रजासनि ) प्रजा देनेवाला, ( पशुसनि ) पशुओं और प्राणगण का बल दाता, ( लोकसनि ) लोक, आत्मा को बल देनेवाला और ( अभयसनि ) अभय देनेहारा हो । ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी, वीर, पति ( मे ) मेरी ( बहुलां प्रजां ) बहुतसी प्रजाओं को ( करोतु ) उत्पन्न करे । और ( अस्मासु ) हम में ( अन्नं ) अन्न, ( पयः ) पुष्टिकारक दुग्ध आदि पदार्थ और ( रेतः ) वीर्य को भी ( धत्त ) धारण करावे । शत० १२ । ८ । १ । २२

राष्ट्रपक्ष में—( इदं हविः ) यह आदान योग्य कर ( प्रजननं ) उत्तम फलजनक हो। यह ( दशवीरम् ) शरीर में दश प्राणों के समान दशवीर नेताओं से युक्त ( सर्वगणम् ) समस्त प्रजाजन को ( स्वस्तये करोति ) सुख कल्याणयुक्त करे। वह ( हविः ) कर द्वारा प्राप्त अन्न आदि ऐश्वर्य ( आत्मसनि ) राजा के भोग योग्य, ( प्रजासनि पशुसनि लोकसनि अभयसनि ) प्रजा, पशु, अन्य लोक आश्रय का देनेवाला, या उनको पुष्ट करने वाला हो। ( अग्निः ) अग्रणी वीर नेता सेनापति मेरी प्रजाओं की वृद्धि करे और राष्ट्र में अन्न ( पयः ) दूध आदि पशु सम्पत्ति और ( रेतः ) वीर्य, बल की वृद्धि करे।

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४६॥

४९—६१—शंख ऋषिः। पितरो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( अवरे ) निकृष्ट, तृतीय श्रेणी के ( परासः ) उत्कृष्ट श्रेणी के और (मध्यमाः) बीच की श्रेणी के (सोम्यासः) राजा के अधीन रहनेवाले राष्ट्र के हितकारी अधिष्ठाता रूप, ( पितरः ) राज्य के पालक अधिकारी जन, ( उद् ३ ईरताम् ) उन्नति को प्राप्त हों और राष्ट्र की उन्नति करें, उसे उठावें। ( ये ) जो ( ऋतज्ञाः ) सत्य व्यवहारों के जाननेहारे एवं ऋत, सत्य व्यवस्था नियमों के विज्ञ और स्वयं ( अवृकाः ) वृक, भेड़िये या चोरों के समान प्रजा के घातक और राजकार्य में धन के चोर न होकर ( असुम् ) अपने प्राण को ( ईयुः ) धारण करते हैं। अर्थात् ईमानदारी से जीवन व्यतीत करते हैं ( ते ) वे ( पितरः ) पालक जन ( नः ) हमारी संग्रामों में ( अवन्तु ) रक्षा करें।

आङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५० ॥

भा०—( नः ) हमारे ( पितरः ) पालन करनेवाले, पिता के समान पूजनीय, ( अंगिरसः ) अग्नि और अंगारों के समान तेजस्वी, दुष्टों के संतापक, ( नवग्वाः ) नवीन या स्तुति योग्य, उत्तम २ वाणियों, ज्ञानों का उपदेश करने और स्वयं प्राप्त करनेवाले, ( अथर्वाणः ) अहिंसक, शत्रु से कभी परास्त न होने वाले, ( भृगवः ) दुष्ट पुरुषों को भूननेवाले, एवं स्वयं परिपक्व ज्ञानी, तेजस्वी ( सोम्यासः ) सौम्य, गुणवान्, एवं सोम अर्थात् राष्ट्र, ऐश्वर्य के हितकारी हैं। ( तेषां ) उन ( यज्ञियानां ) यज्ञ, राष्ट्र व्यवस्था के करनेहारे पुरुषों की ( सुमतौ ) शुभ मति और ( भद्रे सौमनसे ) कल्याणकारी, सुखप्रद शुभ चित्तता में ( वयम् ) हम सदा ( स्याम ) रहा करें।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ५१ ॥

भा०—( ये ) जो ( नः ) हमारे ( पूर्वे ) पूर्व के या पूर्ण सामर्थ्य वाले, ( पितरः ) पालक पिता, गुरु, आचार्य आदि पूज्य पुरुष ( वसिष्ठाः ) अति अधिक ऐश्वर्यवान्, ( सोम्यासः ) सोम, राज्यैश्वर्य के हितकारी होकर ( सोमपीथं ) राज्य, ऐश्वर्य या राजपद के पालन एवं भोग को ( अनु-ऊहिरे ) उचित रीति से अनुकूल रहकर वहन करते हैं राजा की आज्ञा और नियमानुसार राज्य कार्यों के भार उठाते हैं ( यमः ) नियन्ता, राजा पुत्र के समान ( उशद्भिः ) नाना कामनाएं करनेहारे ( तेभिः ) उनके साथ स्वयं भी ( उशन् ) कामनावान् या कान्तिमान् तेजस्वी होकर ( हवींषि संरराणः ) अन्न आदि भोग्य पदार्थों का अन्यों को दान करता एवं स्वयं रमण करता हुआ ( प्रतिकामम् ) प्रत्येक कामना योग्य भोग का ( अनु ) भोग करे।

त्वꣳ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्।

तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ ५२ ॥

भा०—हे ( सोम ) सर्व आज्ञापक अभिषेकयुक्त, राजन् ! विद्वन् ! ( त्वं ) तू ( प्रचिकितः ) उत्कृष्ट ज्ञानवान् है । अतः ( मनीषा ) अपनी बुद्धि से ( त्वं ) तू ( रजिष्ठम् ) अति सरल ( पन्थाम् ) मार्ग पर ( नेषि ) ले चल । ( तव ) तेरी ( प्रणीती ) उत्तम शासन नीति में हे ( इन्दो ) ऐश्वर्यवन् ! चन्द्र के समान, दयार्द्र एवं शीतलस्वभाव ! (धीराः) बुद्धिमान्, धैर्यवान् ( पितरः ) प्रजापालक जन, पुत्र के शासन में पिताओं के समान ( देवेषु ) राजाओं और ज्ञानवान् विद्वानों के बीच ( रत्नम् ) रमण करने योग्य श्रेष्ठ पद एवं राष्ट्र को ( अभजन्त ) प्राप्त करें ।

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँरऽऽरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥५३॥

भा०—हे ( सोम ) राजन् ! हे ( पवमान ) वायु के या सूर्य के समान शुद्ध करनेहारे ! ( हि ) क्योंकि ( त्वया ) तेरे द्वारा ही ( नः ) हमारे ( पूर्वे ) पूर्व के या विद्याओं में पूर्ण, ( धीराः ) बुद्धिमान् ( पितरः ) पालक पुरुष भी ( कर्माणि ) समस्त कार्य ( चक्रुः ) करते हैं । तू स्वयं ( अवातः ) किसी से पीड़ित और कम्पित न होकर, ( वन्वन् ) राष्ट्र का भोग करता हुआ, सेनाओं को उचित स्थानों पर संविभक्त करता हुआ ( परिधीन् ) चारों तरफ स्थित शत्रुओं को ( अप ऊर्णु ) दूर हटा देता । और ( वीरेभिः अश्वेभिः ) वीर अश्वारोहियों द्वारा ( नः ) हमारे लिये ( मघवा ) परम ऐश्वर्यवान् होकर ( भव ) रह ।

त्वꣳसोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी ऽआ ततन्थ ।
तस्मै त ऽइन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥५४॥

भा०—हे ( सोम ) सोम ! राजन् ! ( त्वं ) तू ( पितृभिः ) राष्ट्र-

पालक शासकों एवं राजसभा के सभासद् पुरुषों से ( संविदानः ) सहमति करता हुआ ( अनु ) तदनुसार ( द्यावा पृथिवी ) सूर्य पृथिवी के समान राजशक्ति और प्रजागण को ( आततन्थ ) विस्तृत कर। हे ( इन्दो ) चन्द्र के समान प्रिय ! ( ते तस्मै ) उस तुझे हम ( हविषा ) स्वीकार करने और प्रदान करने योग्य उत्तम आदर एवं पुरस्कार द्वारा ( विधेम ) सत्कार करें, तेरी आज्ञा पालन करें। और ( वयं ) हम ( रयीणाम् ) ऐश्वर्यों के ( पतयः ) स्वामी ( स्याम ) हों।

बर्हिषदः पितरऽ ऊत्युर्वागिमा वो हुव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गुतावसा शन्तमेनाथा नुः शं योरर्पो दधात ॥ ५५ ॥

भा०—हे ( बर्हिषदः ) प्रजाओं के ऊपर शासकरूप से विराजमान एवं उत्तम आसनों और पदों पर स्थित ( पितरः ) पालक जनो ! ( वः ) आप लोगों के लिये ( इमा हव्या ) इन अन्नादि भोग्य पदार्थों को हम ( चकृम ) उत्पन्न करते हैं। आप लोग ( ऊत्या ) अपने रक्षा के निमित्त ( जुषध्वम् ) उनको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें। ( ते ) वे आप लोग ( शंतमेन ) अति अधिक शान्तिदायक, सुखकारी ( अवसा ) रक्षण सामर्थ्य से ( आगत ) आओ। ( नः ) हमें ( शं ) शान्ति, सुख ( योः ) और कष्टों का निवारण कर ( अरपः ) पाप और दुःख से रहित, सदाचार और सुख ( दधात ) प्रदान करो।

आहं पितृन्त्सुविदत्राँ२ऽ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त ऽइहागमिष्ठाः ॥५६॥

भा०—( अहम् ) मैं ( सुविदत्रान् ) उत्तम, विविध शुभ ज्ञानों के देने और जानने वाले ( पितृन् ) पिता के समान पूजनीय, गुरु आदि पालक पुरुषों को ( आ अवित्सि ) प्राप्त करूं। और ( विष्णोः ) व्यापक परमेश्वर के

( नपातं च ) अविनाशी, सामर्थ्य और ( विक्रमणं च ) विविध व्यापक सृष्टि-क्रम को भी ( आ अवित्सि ) जानूं । और (ये) जो (बर्हिपदाः) महान् ब्रह्म में ही स्थित ब्रह्मिष्ठ पुरुष ( स्वधया ) आत्म धारणा शक्ति से ( सुतस्य ) स्वयं निष्पादित । साक्षात् किये, (पित्वः) पान योग्य, परमानन्द, रसस्वरूप आत्मा का या ब्रह्म का ( भजन्ते ) भजन, सेवन करते हैं ( ते इह ) वे इस राष्ट्र या गृह में ( आ अगमिष्ठाः ) आवें ।

राजा के पक्ष में—मैं प्रजाजन ( सुविदत्रान् ) उत्तम रीति से नाना प्रकार के पदार्थों के दाता, एवं पालक पुरुषों को प्राप्त करूं और जानूं और ( विष्णोः ) व्यापक सामर्थ्यवान् राजा के ( नपातं ) अखण्ड तेज और ( विक्रमणं ) पराक्रम को भी प्राप्त करूं । ( ये ) जो ( स्वधया ) अपने वेतन के द्वारा ही ( बर्हिषदाः ) उच्च आसन या प्रजाओं पर अधिकारी रूप से विराजते हैं और ( सुतस्य पित्वः ) उत्पादित अन्नादि पदार्थों का भोग करते अथवा अभिषिक्त परिपालक राजा की सेवा करते हैं ( ते इह ) वे इस राष्ट्र में ( आ अगमिष्ठाः ) आवें ।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
तऽआ गमन्तु तऽइह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५७ ॥

भा०—(सोम्यासः) सोम, राष्ट्र, ऐश्वर्य एवं राजा के हित कर, उसके चाहने वाले ( पितरः ) पालक जन ( बर्हिष्येषु ) प्रजाओं के संगृहीत उत्तम उत्तम पदार्थों अथवा आसनों के योग्य ( प्रियेषु ) प्रिय, अतिमनोहर ( निधिषु ) धन कोशों के आधार पर उनके भोग करने के लिये ( उपहूताः ) निमन्त्रित किये जाते हैं । ( ते ) वे ( आगमन्तु ) आवें, ( ते ) वे ( इह ) इस राष्ट्र में आकर ( श्रुवन्तु ) हमारे वचन सुनें । ( ते अधि ब्रुवन्तु ) वे अधिष्ठाता होकर आज्ञा और उपदेश दें । ( ते ) वे ( अस्मान् ) हमारी ( अवन्तु ) रक्षा करें ।

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५८ ॥

भा०—( नः ) हमारे ( सोम्यासः ) राष्ट्र समृद्धि और ऐश्वर्य के इच्छुक (अग्निष्वात्ताः) अग्नि, अग्रणी रूप में स्वात्त, स्वीकृत; अथवा अग्रणी; ज्ञानी, विद्वान् आचार्य आदि पदों का भोग करने वाले; अथवा अग्नि के समान तेजस्वी राजा द्वारा स्वीकृत या उत्तम पदों पर प्राप्त होकर ( पितरः ) पालक जन ( देवयानैः ) देवों, विद्वानों से चलने योग्य ( पथिभिः ) मार्गों से, ( आ यन्तु ) आवें । ( ते ) वे भी ( अस्मिन् यज्ञे ) इस यज्ञ में, ज्ञान मार्ग एवं प्रजा पालन के कार्य में ( स्वधया ) अन्नादि वेतनों द्वारा ( मदन्तः ) तृप्त, संतुष्ट होकर ( अधि ब्रुवन्तु ) शासक होकर आज्ञा करें और ( अस्मान् ) हमें ( अवन्तु ) दुष्ट पुरुषों के आघात से बचावें ।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन ॥ ५९ ॥

भा०—हे ( अग्निष्वात्ताः पितरः ) पूर्वोक्त अग्निष्वात्त, अग्रणी रूप से राजा द्वारा स्वीकृत एवं पालक पुरुषो ! आप लोग ( इह आगच्छत ) यहां आओ । और ( सुप्रणीतयः ) उत्तम सुखदायक मार्ग में लेजाने एवं उत्तम न्याय और राजनीति के वर्त्तन में कुशल होकर ( सदः सदः सदत ) अपने २ पृथक् घरों और एवं राजसभाओं में विराजमान होओ । और ( प्रयतानि ) नियमपूर्वक नियत ( हवींषि ) स्वीकार योग्य अन्नादि वेतनों को ( अत्त ) भोग करो । ( अथा ) और ( बर्हिषि ) विशाल राष्ट्र एवं गण पर ( सर्ववीरम् रयिम् ) समस्त वीरों के उत्पादक ऐश्वर्य को ( दधातन ) धारण करो ।

ये ऽअग्निष्वात्ता ये ऽअनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ ६० ॥

भा०—( ये ) जो ( अग्निष्वात्ताः ) अग्रणी आदि पदों पर स्थित अथवा राजा से स्वीकृत हैं और ( ये ) ( अनग्निष्वात्ताः ) जो अग्रणी मुख्य पदों पर नहीं स्थित हैं अथवा जिनको राजा की ओर से नहीं चुना गया है प्रत्युत जो प्रजा द्वारा चुने गये हैं या ज्ञाननिष्ठ आदर योग्य हैं और जो ( मध्ये दिवः ) ज्ञान प्रकाश से युक्त राजसभा के बीच ( स्वधया ) अपनी धारणा, शक्ति, सामर्थ्य से ( मादयन्ते ) आनन्द प्रसन्न रहते और अन्यों को ज्ञान से तृप्त करते हैं। (तेभ्यः) उनके लिये भी ( स्वराड्) स्वयं सबों पर विराजमान, सूर्य के समान तेजस्वी, बड़ा राजा ( यथावशं ) यथाशक्ति ( असुनीतिम् ) प्राण धारण कराने वाली ( तन्वं ) शरीरवृत्ति को ( कल्पयाति ) लगादे।

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं य ऽआशुः।
ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६१॥

भा०—( ये ) जो ( नाराशंसे ) उत्तम पुरुषों के प्रशंसा के समय, उत्तम आदर सत्कार व्यवहार में ( सोमपीथम् ) राज्यैश्वर्य के पालन करने के पदाधिकार को ( आशुः ) प्राप्त करते हैं उन ( अग्नि-ष्वात्तान् ) अग्रणी, तेजस्वी पद को प्राप्त या सेनानायकों द्वारा स्वीकृत ( ऋतुमतः ) क्षात्र-बल के स्वामी पुरुषों को ( हवामहे ) आदर से बुलावें। ( ते ) वे ( विप्रासः ) मेधावी, विद्वान् पुरुष ( नः ) हमें ( सुहवाः ) उत्तम समृद्धि के देने वाले ( भवन्तु ) हों। और हम ( रयीणां पतयः स्याम ) ऐश्वर्यों के स्वामी बनें।

'ऋतुमतः'—याः षड् विभूतयः ऋतवस्ते। जै० १।२।१।१॥ ऋतव उपसदः। श० १०।२।९॥ तदस्या ऋतवोऽभवन्। तै० ३।१२।९।४॥ ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो, यथा, मनुष्यस्य। ऐ० १।१३॥ ऋतव एते यदृतव्याः। क्षत्रं वा ऋतव्याः, विश इमा इतरा

इष्टकाः ॥ श० । ७ । १ । १ । ७२ ॥ विभूतियें उपसद् अर्थात् उप-सभाएं, या मोर्चे, राजाओं के सम्बन्धी जन, राजसभा के सदस्य और क्षत्रिय पदाधिकारी ये सब 'ऋतु' कहाते हैं ।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व ऽआगः पुरुषता कराम ॥६२॥

६२—७१ पितरो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( जानु ) गोड़े को ( आच्य ) संकोच कर ( दक्षिणतः ) दायें तरफ ( निषद्य ) बैठ कर ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) यज्ञ, सब राष्ट्र को सुसंगत करने वाले प्रजा पालक राजा को लक्ष्य करके ( विश्वे ) आप लोग सब ( अभिगृणीत ) अपना २ वक्तव्य प्रकट करो । हे ( पितरः ) प्रजा के पालक पुरुषो ! ( केनचित् ) किसी भी प्रकार से ( नः ) हमें ( मा हिंसिष्ट ) मत मारो । ( यद् ) जब हम ( वः ) आप लोगों के प्रति ( पुरुषता= पुरुषतायाम् ) पुरुषार्थ करते हुए अथवा पुरुष अर्थात् सामान्य मनुष्य होने से ( आगः ) अपराध या त्रुटि भी ( कराम ) करदें ।

आसीनासो ऽअरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त ऽइहोर्जं दधात ॥ ६३ ॥

भा०—हे ( पितरः ) पालक पिता लोगो ! आप लोग ( अरुणीनाम् ) गौर वर्ण, एवं गौओं के समान प्रिय, मनोहर मातृजनों के ( उपस्थे ) समीप में ( आसीनासः ) बैठे हुए ( दाशुषे मर्त्याय रयिं धत्त ) दानशील त्यागी पुरुष को ऐश्वर्य प्रदान करो । हे ( पितरः ) पालक पिता जनो ! ( पुत्रेभ्यः ) पुत्रों को ( तस्य वस्वः ) उस २ धन को प्रदान करो । ( ते ) वे आप लोग ( इह ) इस गृहाश्रम में रह कर ( ऊर्जं ) बल पराक्रम के गुण ( दधात ) धारण करो ।

राज्यपक्ष में—( अरुणीनाम् ) लाल ऊन के गद्दियों के (उपस्थे) पीठ

पर या भूमियों पर अधिकारी रूप से ( आसीनासः ) बैठे हुए आप लोग ( दाशुषे मर्त्याय ) कर आदि देने वाले प्रजाजन को (रयिं धत्त) ऐश्वर्य भूमि आदि अधिकार प्रदान करो । ( पितरः पुत्रेभ्यः ) पुत्रों को जिस प्रकार पिता लोग अपनी २ जायदाद देते हैं उसी प्रकार आप लोग (तस्य वस्वः) उस २ नाना प्रकार के धन का प्रजाओं को ( प्रयच्छत ) प्रदान करो । ( ते ) वे आप लोग ( इह ) इस राष्ट्र में, या इस राजा में इसके अधीन रह कर इसके निमित्त ( ऊर्जं ) बल पराक्रम को ( धत्त ) धारण करो ।

यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ ६४ ॥

त्रिष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी नेतः ! राजन् ! हे ( कव्यवाहन ) विद्वान्, कवि, पुरुषों के देने योग्य ऐश्वर्य के धारक ! अथवा स्तुत्य गुणों को धारण करने हारे ! ( त्वं ) तू ( यम् ) जिस ( रयिम् ) ऐश्वर्य को, ( गीर्भिः ) वाणियों द्वारा ( श्रवाय्यम् ) अन्यों को सुनाने योग्य, प्रशंसनीय ( देवत्रा ) देव, विद्वानों को ( युजम् ) देने योग्य ( चित् ) ही ( मन्यसे ) मानता है ( तत् ) उसको ( नः ) हमें ( पनय ) प्रदान कर ।

यो ऽअग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य ऽआ ॥ ६५ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः । अग्निर्देवता ॥

भा०—( यः ) जो ( अग्निः ) ज्ञानवान् विद्याओं के प्रकाश से प्रकाशमान् ( कव्यवाहनः ) विद्वान् मेधावी पुरुषों के योग्य ज्ञानवचनों को धारण करने हारा विद्वान् (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान के बढ़ाने वाले, ( पितॄन् ) पालक पुरुषों को ( यक्षत् ) पूजा सत्कार करता है । और ( हव्यानि )

ग्रहण करने योग्य ज्ञानों का ( देवेभ्यः ) ज्ञानवान् पुरुषों और (पितृभ्यः) पालक पुरुषों के लिये (आ प्रवोचत् ) प्रवचन द्वारा सर्वत्र प्रदान या उपदेश करता है, वह ( आ ) सर्वत्र विख्यात होता है।

त्वमग्न ऽईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवीᳬषि ॥ ६६ ॥

अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने! ज्ञानवान्! हे ( कव्यवाहन ) विद्वानों के वर्णन योग्य कर्मों और सामर्थ्यों को धारण करने वाले! ( त्वम् ) तू ( ईडितः ) स्तुति को प्राप्त होकर ( हव्यानि ) अन्नादि पदार्थों को ( सुरभीणि कृत्वा ) उत्तम सुगन्ध युक्त, अन्नों के समान सुखजनक करके ( अवाट् ) ग्रहण कर और ( पितृभ्यः ) पालक जनों को भी ( प्रादाः ) प्रदान कर। ( ते ) वे लोग ( स्वधया ) अपने देह के पोषणकारी अन्न और वेतन के रूप से उसका ( अक्षन् ) भोग करें और ( त्वं ) तू हे ( देव ) देव! राजन्! ( प्रयता ) उत्तम रीति से साधित अन्नादि के समान उन ( हवींषि ) प्रदत्त कर आदि भोग्य पदार्थों को ( अद्धि ) भोग कर।

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२ऽ उ च न प्रविद्म । त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञᳬ सुकृतं जुषस्व ॥ ६७ ॥

भा०—( ये च पितरः ) जो पालक जन, शासक ( इह ) यहां विद्यमान हैं ( ये च ) और जो ( न इह ) यहां नहीं हैं, (यान् उ च विद्मः) जिनको हम जानते हैं और ( यान् उ च न प्रविद्म ) जिनको हम नहीं भी जानते हैं, हे ( जातवेदः ) ऐश्वर्यवन्! हे विद्वन्! ( ते ) ( यति ) जितने भी हों ( त्वं ) तू उनको ( वेत्थ ) जान और ( स्वधाभिः )

६६—त्वमग्न ईळितो जातवेदो वाड्ढव्यानि० इति काण्व० ।

योग्य अन्न आदि देहपोषक सामग्रियों से ( सुकृतम् ) उत्तम रूप से सम्पादित ( यज्ञम् ) प्रजापालनरूप 'यज्ञ' को ( जुपस्व ) सेवन करो। उनको राष्ट्र-कार्य से प्रेम उत्पन्न करो। उनसे राष्ट्र की सेवा करो।

**इ॒दं पि॒तृभ्यो॒ नमो॑ऽअस्त्व॒द्य ये पूर्वा॑सो॒ यऽ उप॑रास॒ऽ ई॒युः।**
**ये पार्थि॑वे॒ रज॒स्या निष॑त्ता॒ ये वा॑ नू॒नꣳ सु॑वृ॒जना॑सु वि॒क्षु ॥६८॥**

भा०—( अद्य ) आज विशेष नियत दिन में ( ये पूर्वासः ) जो पूर्व के, हमारे पहले के और हमसे पूर्व ही कार्य में नियुक्त हैं और ( ये ) जो ( उपरासः ) अपने कार्य की अवधि समाप्त करके ( ईयुः ) चले गये हैं उन ( पितृभ्यः ) पालक पुरुषों के निमित्त ( इदं नमः ) यह नमस्कार, आदर भाव एवं अन्न आदि पदार्थ ( अस्तु ) प्राप्त हो। और ( ये ) जो ( पार्थिवे रजसि ) पृथिवी लोक में ( आ निषत्ताः ) अधिष्ठाता रूप से विद्यमान हैं ( ये वा ) और जो ( नूनम् ) निश्चय से ( सु-वृजनासु ) उत्तम बल और उत्तम आचार वाली ( विक्षु ) प्रजाओं पर ( आनिषत्ताः ) अधिष्ठाता रूप से विद्यमान हैं उनको भी ( इदं नमः अस्तु ) यह अन्नादि वेतन प्राप्त हो।

**अधा॒ यथा॑ नः पि॒तर॒: परा॑सः प्र॒त्नासो॑ऽअग्न ऋ॒तमा॑शुषा॒णाः।**
**शुचीद॑य॒न्दीधि॑तिमुक्थ॒शास॒: क्षामा॑ भि॒न्दन्तो॑ अरु॒णीरप॑ व्रन् ॥६९॥**

पितरो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्! ( अध ) और ( यथा ) जिस प्रकार ( नः ) हमारे ( परासः ) पर, उत्कृष्ट पद को प्राप्त ( प्रत्नासः ) पूर्व के ( पितरः ) गुरु जन ( शुचि ) शुद्ध पवित्र ( ऋतम् ) सत्य, परम ज्ञान को ( आशुषाणाः ) प्राप्त होते हुए और ( उक्थशासः ) ज्ञानोपदेश करते हुए ( क्षामाः ) विनाशकारिणी नीच प्रवृत्तियों को या

भूमियों को ( भिन्दन्तः ) भेदते हुए ( दीधितिम् ) ज्ञान-रश्मि या आदित्य स्वरूप परमेश्वर को ( अप व्रन् ) प्राप्त होते हैं। अथवा-( अप ) सदूरवर्त्ती ( अरुणीः ) प्रकाशमय उच्चकोटि की भूमियों को ( व्रन् ) प्राप्त होते अथवा-अन्धकार भूमियों को दूर छोड़ते हुए प्रकाशमय लोकों को प्राप्त करते हैं।

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत ऽआवह पितॄन्हविषे ऽअत्तवे ॥ ७० ॥

पितरो देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! पुत्र के समान प्रिय राजन् ! हम लोग ( उशन्तः ) कामना करते हुए ( त्वा ) तुझको ( निधीमहि ) राज्यासन पर स्थापित करते हैं। और ( उशन्तः ) कामनावान् होकर ही ( सम्-इधीमहि ) सब मिल कर तुझे अग्नि के समान नित्य प्रदीप्त करते, तुझे अधिक तेजस्वी करते हैं। तू ( उशन् ) स्वयं भी यश और अर्थ की कामना करता हुआ ( उशतः ) कामना वाले ( पितॄन् ) राज्य के पालक हम लोगों को ( हविषे अत्तवे ) अन्न, कर आदि ग्राह्य पदार्थों के प्राप्त करने और भोग करने के लिये ( आ वह ) प्राप्त करा या हमें प्राप्त कर लेने की आज्ञा दे।

अपां फेनेन नमुचेः शिरऽ इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ७१ ॥

इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुविदारक ! वीर सेनापते ! राजन् ! ( यत् ) जब तू ( विश्वाः ) समस्त ( स्पृधः ) संग्राम में प्रतिस्पर्धा करने वाली शत्रु सेनाओं को ( अजयः ) विजय करता है तब ( अपां फेनेन ) जिस प्रकार सूर्य, वायु या विद्युत् वर्षा योग्य जलों की वृद्धि करके ( नमुचेः ) जल न छोड़ने वाले मेघ के ( शिरः ) घनीभूत भाग को ( उत् अवर्त्तयः )

छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार राजा भी ( अपां ) प्रजा और आप्त पुरुषों के ( फेनेन ) बल की वृद्धि करके उससे ( नमुचेः ) आग्रह और संग्राम भूमि को न छोड़ने वाले शत्रु के ( शिरः ) शिर, सेना के मुख्य भाग को ( उत् अवर्त्तयः ) काट डालता है ।

'उत् अवर्त्तयः'—उत् पूर्वो वृति धातु छेदनेऽर्थे वर्त्तते इति उवटः । 'फेनः'—स्फायते वर्धते इति फेनः । दया० उणा० ।

**सोमो राजामृतꣳ सुतऽऋजीषेणाजहान्मृत्युम् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳशुक्रमन्धस ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयो ऽमृतं मधु ॥ ७२ ॥**

अश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयः । ग्रहाः सोमो राजा च देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( सोमः ) सर्वप्रेरक ( राजा ) राजा, सब से ऊपर विराजमान पुरुष भी ( सुतः ) राज पद पर अभिषिक्त होकर ( अमृतम् ) अमृत, अखण्ड राज्याधिकार को प्राप्त करता है और ( ऋजीषेण ) सरल, धर्मानुकूल आचरण से, अथवा संगृहीत प्रभूत धनकोष और सेनाबल द्वारा ( मृत्युम् ) प्रजा और राजा पर आने वाले मृत्यु अर्थात् प्राण संकट को ( अजहात् ) दूर करता है । (ऋतेन) सत्य वेदज्ञान से ( सत्यम् ) सच्चे ( विपानम् ) विविध प्रकार से राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ ( इन्द्रियम् ) राजोचित ऐश्वर्य और ( अन्धसः ) अन्न के ( शुक्रं ) शुद्ध, सारभूत वीर्य और ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् सेनापति के ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य और ( इदम् ) इस प्रत्यक्ष ( पयः ) पुष्टिकारक अन्न, ( अमृतम् ) दीर्घ जीवन या उत्तम जल और ( मधु ) मधुर पदार्थ, सभी उत्तम पदार्थ को प्राप्त करता है ।

अध्यात्म में—( सोमः राजा ) प्रकाशवान् ज्ञानी पुरुष ( सुतः ) योग आदि द्वारा ज्ञानसम्पन्न शुद्ध बुद्ध होकर ( अमृतं ) अमृत हो जाता

है और ( मृत्युम् अजहात् ) मृत्यु को पार कर जाता है। ( अन्धसः ) अन्न से जिस प्रकार वीर्य को प्राप्त करता है उसी प्रकार ( ऋतेन ) सत्य के बल पर ( सत्यम् इन्द्रियं ) सच्चे आत्मिक बल को और ( इन्द्रस्य ) अपने ऐश्वर्यवान् आत्मा के ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्यमय स्वरूप को ( इदम् ) साक्षात् ( पयः ) दूध के समान स्वच्छ ( अमृतम् ) अमृत के समान अविनाशी (मधु) मधु के समान मधुर आनन्दमय रूप को प्राप्त करता है।

**अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतं मधु ॥ ७२॥**

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—( क्रुङ् ) हंस जिस प्रकार ( अद्भ्यः ) जलों के बीच में से ( क्षीरम् ) दूध को ( वि अपिवत् ) विशेष रूप से पान कर लेता है उसी प्रकार ( आङ्गिरसः ) ज्ञानवान् आत्मा, अङ्गों २ में रस या सार, शक्तिरूप में व्यापक ( क्रुङ् ) अति सूक्ष्म, आत्मा या ज्ञानी, योगी, परमहंस ( धिया ) अपनी योगधारणावती बुद्धि से ( अद्भ्यः ) प्राणों के बीच में से ( क्षीरम् ) परम उपभोग्य परमानन्द रस को ( वि अपिबत् ) विशेष रूप से पान करता है। ( ऋतेन सत्यम् इत्यादि ) पूर्ववत् ॥

इसी प्रकार राजा के पक्ष में—( क्रुङ् ) हंस के समान अति सूक्ष्म या व्यापक, कुटिल दुर्बोध, गहन, नीतिमान् ( आङ्गिरसः ) शरीर में प्राण के समान राष्ट्र में व्यापक, कार्यप्रवर्त्तक एवं आङ्गिरस वेद का ज्ञाता, विद्वान् राजा ( धिया ) अपने धारण पालन करने वाली राजनीति से ( अद्भ्यः ) आप्त प्रजाओं से ही ( क्षीरम् ) भोग योग्य सार पदार्थ को ( वि अपिवत् ) विविध रूपों में पान करता, ग्रहण करता है।

सोमम॒द्भ्यो व्य॑पिब॒च्छन्द॑सा ह॒ꣳसः शु॑चि॒षत्। ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥ ७४ ॥

सोमो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( हंसः ) हंस जिस प्रकार ( अद्भ्यः ) जलों के बीच में से ( सोमम ) परम साररूप अंश को ( वि अपिवत् ) विशेष रूप से पान कर लेता है उसी प्रकार ( शुचिषत् ) शुद्ध ब्रह्म में विद्यमान योगी ( हंसः ) अपने समस्त सांसारिक दुःखों का नाश करने में समर्थ होकर ( छन्दसा ) स्वच्छन्द अपने आत्म सामर्थ्य से या प्राण के बल से यथेच्छ ( अद्भ्यः ) प्राणों के बीच में से या प्राप्त ज्ञानों और कर्मों में से ही ( सोमम् ) परम ब्रह्मानन्द रसों का ( वि अपिवत् ) विविध प्रकारों से पान करता है। और उसी प्रकार राष्ट्र में राजा ( शुचिषत् ) शुचि, निष्पाप, निश्छल, शुद्ध निष्कपट, धर्माध्यक्ष के आसन पर विराजमान राजा भी ( हंसः ) शत्रुओं और दुष्ट पुरुषों के हनन करने के अधिकार को प्राप्त करके ( छन्दसा ) प्रजा के आच्छादन या रक्षण बल से ( अद्भ्यः ) आप्त प्रजाओं के बीच में से ( सोमम् ) राष्ट्र के ऐश्वर्य को ( वि अपिवत् ) विविध उपायों से प्राप्त करता है । ( ऋतेन सत्यम् इत्यादि ) पूर्ववत् ॥

अन्ना॑त्परि॒स्रुतो॒ रसं॒ ब्रह्म॑णा॒ व्य॑पिबत् क्ष॒त्रं पयः॒ सोमं॑ प्र॒जाप॑तिः। ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥ ७५ ॥

भा०—( प्रजापतिः ) प्रजा का पालक राजा ( परिस्रुतः ) परिपक्व ( अन्नात् ) अन्न से प्राप्त ( रसम् ) रस के समान प्राप्त ( क्षत्रं )

त्रान्नबल, ( पयः ) पुष्टिकार अन्न और ( सोमम् ) ऐश्वर्य को ( ब्रह्मणा ) ब्रह्मवेद और वेदज्ञ विद्वान् के साथ मिलकर ( वि अपिबत् ) विविध प्रकार से पान करने में समर्थ होता है । ( ऋतेन० इत्यादि ) पूर्ववत् ॥

अध्यात्म में—( प्रजापतिः ) आत्मा ( ब्रह्मणा ) ब्रह्मज्ञान से परिपक्व अन्न से रस के समान ( परिस्रुतः ) परिस्रवण करने वाले आत्मा में प्रवाहित होने वाले ज्ञान का ( क्षत्रम् ) रक्षाकारी, पुष्टिकर, अध्यात्म ऐश्वर्य का पान करता है ।

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृतऽउल्वं जहाति जन्मना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७६ ॥

इन्द्रो देवता । भुरिगति शक्करी । पञ्चमः ॥

भा०—जो ( इन्द्रियं ) इन्द्रिय ( मूत्रं जहाति ) मूत्रोत्सर्ग करता है परन्तु ( योनिम् ) स्त्री योनि में ( प्रविशत् ) प्रवेश करता हुआ वही ( इन्द्रियम् ) पुरुष का उपस्थ इन्द्रिय जिस प्रकार ( रेतः ) वीर्य को ( विजहाति ) विशेष रूप से उत्सर्ग करता है । उसी प्रकार ( इन्द्रियम् ) राजा या इन्द्र का बल, सेना बल भी जो अन्यत्र प्रायः ( मूत्रं ) छोड़ देने योग्य, त्यागने योग्य पदार्थों का दान करता है अथवा जो छोड़ने या फेंकने योग्य अस्त्रों को शत्रु पर फेंकता है वही राजा का ऐश्वर्य बल ( योनिम् ) अपने आश्रयभूत राष्ट्र में ( प्रविशत् ) प्रवेश करता हुआ ( रेतः ) वीर्य, अर्थात् उत्पादन सामर्थ्य को ( वि जहाति ) विविध उपायों से और विविध रूपों में छोड़ता या फैला देता है । और जिस प्रकार ( गर्भः जरायुणावृतः ) गर्भ जरायुओं से ढका होकर भी ( जन्मना ) जन्म लेकर ( उल्वं )

उस 'उल्व' अर्थात् जेर को ( जहाति ) छोड़ देता है। उसी प्रकार राजा भी ( गर्भः ) राष्ट्र को अपने वश करने में समर्थ होकर ( जरायुणा ) शत्रुनाशक बल से आवृत होकर अपने ( जन्मना ) राज्याभिषेक द्वारा या विशेष प्रादुर्भाव के द्वारा ( उल्वं ) संघ में एकत्र हुए अधिक सेना के भाग को ( जहाति ) परित्याग कर देता है। ( ऋतेन सत्यम्० ) इत्यादि पूर्ववत् ॥

**दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७७ ॥**

प्रजापतिर्देवता। अतिशक्वरी। पञ्चमः ॥

भा०—( प्रजापतिः ) प्रजा का पालक परमेश्वर, राजा और न्यायकर्त्ता, ( ऋतेन ) सत्य ज्ञान के बल से ( सत्यानृते रूपे ) सत्य और अनृत, सच और झूठ दोनों के स्वरूपों को पृथक् २ विवेचना द्वारा ( दृष्ट्वा ) देखकर ( वि आ अकरोत् ) पृथक् २ उपदेश करता है। वह ( अनृते ) असत्य, सत्यज्ञान से रहित पदार्थ में ( अश्रद्धाम् ) अश्रद्धा, अप्रेम, या अग्राह्य बुद्धि को ( अदधात् ) धारण करता और कराता है और ( सत्ये ) सत्य में ( श्रद्धाम् अदधात् ) श्रद्धा अर्थात् सत्य करके मानने की बुद्धि को धारण कराता है। उसी प्रकार प्रजापालक राजा भी सत्य और असत्य को ( ऋतेन ) वेद के द्वारा निर्णय करा कर प्रकट करे और असत्य मन्तव्यों को अग्राह्य ठहरावें और सत्य में प्रेम, विश्वास और ग्राह्यता या मान्यता बुद्धि उत्पन्न करे। ( ऋतेन ) सत्य वेद द्वारा प्राप्त ( सत्यम् ) सत्य पदार्थ ( इन्द्रियम् ) आत्मा का हितकारी ( विपानम् ) विविध प्रकार से रक्षा करनेवाला, ( शुक्रम् ) आत्मा की शुद्धि करनेवाला, ( अन्धसः इन्द्रस्य ) अन्धकार के निवर्त्तक ऐश्वर्यवान् आत्मा और परमेश्वर प्रभु का ( इन्द्रियम् )

परम ऐश्वर्य है जो ( इदम् ) साक्षात् ( पयः ) पुष्टिकारी दूध के समान सुखप्रद बुद्धिवर्धक, ( अमृतम् ) जल के समान जीवनप्रद, मृत्यु के भय को हरनेवाला और मधु के समान मधुर एवं ज्ञानरूप से मनन करने योग्य है। इसी प्रकार ( ऋतेन ) व्यवस्था ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त ( सत्यं ) सत्यनिर्णय या सज्जनों का हितकारी ( इन्द्रियम् ) चक्षु के समान मार्गदर्शक, मनके समान निर्णयकारी, ( विपानं ) प्रजा का विशेष पालक, ( शुक्रम् ) शुद्ध, ( अन्धसः इन्द्रस्य ) अज्ञाननाशक राजा का ( इन्द्रियम् ) विशेष ऐश्वर्य के समान शोभाकर है, जो ( इदम् ) साक्षात् ( पयः ) सबको तृप्तिकारक, ( अमृतम् ) अमर, अविनाशी और ( मधु ) दुष्टों को दमनकारी है।

**वेदे॑न रू॒पे व्य॑पिबत्सुतासु॒तौ प्र॒जाप॑तिः। ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं विपा-नꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽ इन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॑ऽमृतं॒ मधु॑ ॥ ७८ ॥**

प्रजापतिर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—( प्रजापतिः ) प्रजा का पालक राजा ( वेदेन ) परम ज्ञान, ईश्वर से प्रकाशित सत्य ज्ञान, वेद के द्वारा ( सुतासुतौ ) 'सुत', इन्द्रियग्राह्य एवं विद्वानों द्वारा उपदिष्ट और 'असुत' इन्द्रियों द्वारा अप्राप्य, एवं विद्वानों द्वारा न उपदेश किये गये दोनों प्रकार के पदार्थों का ( वि-अपिवत् ) विशेष रूप से ज्ञान ग्रहण करे। ( ऋतेन० इत्यादि ) पूर्ववत्।

**दृष्ट्वा परि॑स्रुतो॒ रसꣳ॑ शु॒क्रेण॑ शु॒क्रं व्य॑पिबत् पयः॒ सोमं॑ प्र॒जा-प॑तिः। ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पानꣳ॑ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒य-मि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥ ७९ ॥**

प्रजापतिर्देवता। भुरिगतिजगती। निषादः ॥

भा०—( परिस्रुतः ) सब प्रकार से अभिषिक्त ( प्रजापतिः ) प्रजा-पालक राजा ( शुक्रेण ) शुद्धि करनेवाले उपाय से ( शुक्रम् ) शुद्ध किये

गये ( रसं ) सारवान् पदार्थ को ( दृष्ट्वा ) पर्यालोचन करके ( पयः ) पुष्टिकारक ( सोमम् ) ऐश्वर्य को ( वि अपिबत् ) विविध उपायों से ग्रहण करता है। अथवा-( परिस्रुतः रसम् ) परिपक्व अन्न के रस के समान उत्तम या भपके द्वारा प्राप्त सार पदार्थ के समान ( शुक्रम् ) शुद्ध, कान्तिमान् अन्न, सुवर्ण आदि पदार्थ को भी ( प्रजापतिः ) राजा ( शुक्रेण ) शुद्ध निष्पाप उपाय से ( दृष्ट्वा ) देखभाल कर ( पयः सोमम् ) पुष्टिप्रद दूध के समान ऐश्वर्य को ओषधि के समान स्वच्छ करके ( वि अपिबत् ) पान करे, ग्रहण करे। ( ऋतेन सत्यम्० इत्यादि ) पूर्ववत्।

**सीसे॑न॒ तन्त्रं॒ मन॑सा मनी॒षिण॑ऽऊर्णासू॒त्रेण॑ क॒वयो॑ वयन्ति।**
**अ॒श्विना॑ य॒ज्ञꣳ स॑वि॒ता सर॑स्वती॒न्द्र॑स्य रू॒पं वरु॑णो भिष॒ज्यन् ॥८०॥**

सविता सरस्वती वरुणश्च देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( कवयः ) क्रान्तदर्शी ( मनीषिणः ) बुद्धिमान्, विद्वान् पुरुष जिस प्रकार ( सीसेन ) सीसा के बल पर ( तन्त्रं ) राष्ट्र को ( वयन्ति ) वृद्धि करते हैं अर्थात् सीसा की गोलियों से दुष्ट शत्रुओं का संहार करके राष्ट्र की वृद्धि करते हैं और जिस प्रकार वे ( मनसा ) मन से, आत्मचिन्तन से ( तन्त्रम् ) अति विस्तृत शास्त्र सिद्धान्त को ( वयन्ति ) उहापोह द्वारा विस्तृत ज्ञान करते और व्याख्या करते हैं और जिस प्रकार ( ऊर्णासूत्रेण ) ऊन और अन्य कोमल सूत्रमय पदार्थों के सूत से उसके समान ( तन्त्रं ) विस्तृत पट को ( वयन्ति ) बुनते हैं उसी प्रकार ( अश्विना ) राष्ट्र के स्त्री पुरुष, ( सविता ) आज्ञापक, सूर्य के समान विद्वान् पुरुष और ( सरस्वती ) ज्ञानी वेदज्ञ और ( वरुणः ) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ सेनापति ये सब मिलकर ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् राजा के ( रूपं ) उज्वल कान्तिमान् रूप को ( भिषज्यन् ) शरीर के समान पीड़ा और बाधाओं से रहित, निष्कण्टक करते हुए ( तन्त्रं ) राष्ट्र का ( वयन्ति ) विस्तार करते हैं।

तद॑स्य रूपम॒मृत॒ꣳ शची॑भिस्ति॒स्रो द॑धुर्दे॒वता॑ः सꣳररा॒णाः। लोमा॑नि शष्पै॑र्बहु॒धा न तोक्म॑भि॒स्त्वग॑स्य मा॒ꣳसम॑भव॒न्न ला॒जाः ॥ ८१ ॥

अश्विनौ सविता सरस्वती वरुणश्च देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( तिस्रः देवताः ) तीनों विजयशाली देवगण, ( शचीभिः ) अपनी २ शक्तियों से ( अस्य ) इस राष्ट्र-प्रजा-पालक राजा को ( अमृतम् ) अविनाशी, अखण्ड ( रूपम् ) रूप ( संरराणाः ) अच्छी प्रकार प्रदान करते हुए ( दधुः ) धारण पोषण करते हैं। वे ( बहुधा ) बहुत प्रकारों के ( शष्पैः ) शष्पों अर्थात् शत्रुओं को मारने और पालन करनेवाले साधन अस्त्र शस्त्रों से ( अस्य लोमानि संदधुः ) इस राष्ट्रमय प्रजापति के रोमों को निर्माण करते हैं। जैसे शरीर पर या पशु के शरीर पर बाल उसकी रक्षा करते हैं और सेहे के शरीर के रोमरूप कांटे ही उसकी शत्रु से रक्षा करते हैं उसी प्रकार शस्त्रास्त्र भी राजा और राज्य की रक्षा करते हैं। अतः वही राष्ट्र शरीर के लोम हैं। ( न ) और ( तोक्मभिः ) शत्रु को व्यथा देनेवाले और मारनेवाले सेनाओं के बल एवं महास्त्रों द्वारा वे विद्वान् ( अस्य ) इस राष्ट्रमय प्रजापति के ( त्वक् ) शरीर पर लगी त्वचा के समान आवरण परकोट की रचना करते हैं। बड़ी २ सेनाएं और परकोट आदि राष्ट्र की त्वचा के समान हैं। (न) और ( लाजाः ) शोभाजनक, कान्तिमान् विभूतियां ही (मांसम्) इसका 'मांस' अर्थात् मनको लुभानेवाले पदार्थ के समान (अभवन्) है। अथवा—वही राष्ट्र में विद्यमान भोग साधन, पुष्ट शरीर के घटक मांस के समान है। राष्ट्र में विभूति समृद्धि ही राष्ट्र के हृष्ट पुष्ट शरीर में मांस के समान है। उस समृद्धि से ही राष्ट्र हृष्ट पुष्ट रहता है, पर दूसरे उसी को देखकर लुभा जाते हैं और उनका मन हरने से ही समृद्धियां 'मांस' के समान हैं।

'न'—अध्यायसमाप्तिपर्यन्तं नकारः सर्वे चकारार्थाः इति महीधरः। नकारः समुच्चये आ अध्याय परिसमाप्तेरिति उवटः। यज्ञपक्षे—'न' निषेधार्थे इति दयानन्दः।

स्वाध्याय यज्ञपक्ष में—( तिस्रः देवताः ) शिष्य गुरु और परीक्षक, परस्पर ज्ञान का आदान प्रदान करते हुए ( अस्य अमृतं रूपं ) इसके अमृतरूप को धारण करते हैं। और ( शष्पैः लोमानि दधुः ) लम्बे २ बालों के सहित लोमों को धारण करते हैं अर्थात् जटिल होकर व्रत से रहते हैं। ( न तोक्मभिः ) बालकों से यह यज्ञ नहीं होता। और ( अस्य त्वग् मांसम् लाजा न अभवन् ) उसके हवि में त्वचा, मांस, खीलें आदि हवि नहीं होतीं।

**तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो ऽअन्तरम्। अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥ ८२ ॥**

अश्विनौ सरस्वती च देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—( रुद्रवर्त्तनी ) शरीर में एकादश रुद्रों, प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन सञ्चार कराने वाले ( अश्विना ) अश्विगण, विद्वान् स्त्री पुरुष एवं गुरु और शिष्य और ( सरस्वती ) वेदविद्या या विद्वत्-सभा ये तीनों मिलकर ( तत् ) उस राष्ट्र के ( अन्तरं ) भीतरी ( पेशः ) सुन्दर रूप को ( वयति ) बनाते हैं। और ( मासरैः ) परिपक्व ओषधि रसों से जिस प्रकार वैद्य लोग शरीर के ( अस्थि मज्जानम् ) हड्डी और मज्जा भाग को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार उक्त विद्वान् लोग भी ( कारोतरेण ) कूप समूहों से और उत्तम शिल्पी, क्रियानिष्ठ मुख्य पुरुषों और ( गवां त्वचि ) भूमियों के पृष्ठ पर और ( मासरैः ) मासिक वेतनबद्ध भृत्यों से राष्ट्र के ( अस्थि ) अस्थि के समान स्थिर कार्यों, आधार स्थानों और ( मज्जानम् ) मज्जा के समान दृढ़ संधिबन्धों को अथवा वर्ष के दिन

रातों के समान राष्ट्रशरीर के समस्त मुख्य और गौण अङ्ग प्रत्यङ्गों को ( दधतः ) धारण करते हैं।

'अस्थि मज्जानम्'—सप्त च ह वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहानि च रात्रयश्चेत्येतावन्त एव पुरुषस्यास्थीनि च मज्जानश्चेत्यत्र तत्समम् ॥ गो० पू० ५ । ५ ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥ ८२ ॥

सरस्वती देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( सरस्वती ) विज्ञानवाली, विदुषी स्त्री जिस प्रकार अपना ( दर्शतम् ) दर्शनीय ( वपुः ) शरीर बनाती है उसी प्रकार ( सरस्वती ) विज्ञानवान् विद्वानों की परिषद् भी ( नासत्याभ्याम् ) असत्य व्यवहारों से रहित, स्त्री पुरुषों से मिलकर राजा के लिये ( मनसा ) अपने ज्ञान के बल से ( पेशलं ) अति सुन्दर, सुवर्ण आदि से समृद्ध ( वसु ) ऐश्वर्य को ( वयति ) पट के समान निरन्तर बुनती सी रहती, पैदा ही करती रहती है। और जिस प्रकार स्त्री ( परिस्रुता ) परिस्रवण किये गये चुआये गये लाख से, मेंहदी के पीसे हुए रस से ( रोहितं रसं न ) लाल रस को पैदा कर देती है उसी प्रकार पूर्वोक्त विद्वत्सभा और ( धीरः नग्नहुः ) बुद्धिमान्, 'नग्न' अर्थात् विशुद्ध ज्ञान के ग्रहण करने हारा सभापति ( परिस्रुता ) राष्ट्र के समस्त प्रान्तों से प्राप्त राज्यलक्ष्मी से ही ( रोहितं ) 'रोहित', आदित्य के समान तेजस्वी, ( रसम् ) सारभूत लाल पोषाक पहले राजा को उसी प्रकार उत्पन्न करते हैं जैसे ( तसरं वेम न ) तसर और वेमा मिलकर ( रोहितं न ) लाल पट बुना करते हैं।

अथवा—( सरस्वती ) स्त्री और ( नग्नहुः ) सुन्दर स्त्री को

स्वीकार करने वाला उसका पति दोनों मिलकर ( रोहितं ) रक्त, कांचन वर्ण ( तसरं वेम न ) दुःखक्षयकारक पुत्र को जिस प्रकार उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार ( सरस्वती नग्नहुः धीरः ) विद्वत् सभा और शुद्ध तत्वज्ञानी बुद्धिमान् सभापति दोनों ( तसरम् ) प्रजा के दुःखनाशक ( रसं ) आनन्दप्रद ( रोहितं ) लोहित, काञ्चन ऐश्वर्य से युक्त अथवा आदित्य के समान तेजस्वी और लाल पोपाक पहने राजा को ( वयति ) उत्पन्न करते हैं।

सरस्वती—प्रशस्तं सरः विज्ञानं यस्याः साः । दया० ।

'नग्नहूः'—नग्नं शुद्धं जुहोति गृह्णाति । अथवा–पतिपक्षे 'न-ग्नां' अन्येनानुपगतां कन्यां, अथवा नग्नशरीरे शुभलक्षणवतीं कन्यां जुहोति गृह्णाति यः सः ।

'नग्निकां श्रेष्ठां यवीयसीमुपयच्छेत' इति मानवगृह्यसूत्रम् । 'नग्न-शरीरेपि शुभलक्षणवतीमिति' अष्टावक्रः ।

'रोहितं'—देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य रोहित सूक्त ( ३ खण्ड ) ।

**पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः ।**
**अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातꣳ सब्वं तदारात् ॥८४॥**

सोमो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( पयसा ) जिस प्रकार पुष्टिकारक अन्न से ( अमृतं ) अमृत, आनन्दप्रद ( जनित्रम् ) पुत्रोत्पादक, ( मूत्रात् ) मूत्रेन्द्रिय से ( रेतः ) वीर्य को ( सुरया ) सुख से रमण करने योग्य स्त्री के संग सुरति द्वारा उत्पन्न कर ( जनयन्त ) प्रजा को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार ( पयसा ) पुष्टिकारक अन्न और बलके आधार पर ( सुरया ) सुख से रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी के संग से ( मूत्रात् ) शत्रु से त्राण करने वाले सेना-बल से ही ( शुक्रम् ) शुद्ध, ( अमृतम् ) अविनश्वर, अखण्ड ( जनित्रम् )

और अधिक उत्पादक ( रेतः ) वीर्य या राजोचित तेज को ( जनयन्त ) विद्वान् लोग उत्पन्न करते हैं। ( तत् ) और तब ( अमतिम् ) राष्ट्र में से अमति, अज्ञानी या अदम्य और ( दुर्मतिं ) दुष्टमति वाले या दुर्दान्त पुरुषों को ( अप बाधमानाः ) विनष्ट करते हुए ( ऊवध्यं वातं ) पेट में बैठी अपान वायु और ( सब्वं ) पक्वाशयगत मल को जिस प्रकार दूर फेंक दिया जाता है उसी प्रकार ( ऊवध्यम् ) लटका कर मारने योग्य ( वातम् ) वायु के समान प्रबल ( सब्वं ) राजा के विपरीत संघ या षड्यन्त्र बना कर बैठने वाले शत्रु को ( आरात् ) दूर निकाल देते हैं।

राष्ट्र के कार्यों को शरीर के दृष्टान्त से समझाया है कि उसमें वीर्य और सन्तति जनक शक्ति के समान ही राष्ट्र में राजा का पद है। बुरे व्यक्ति मल और अपान वायु के समान हैं।

'मूत्रात्'—मुच्यते यत् तत् मूत्रम्। उणादि० ४। १६३॥

'सब्वं'—सप समवाये। समवायं संघं कृत्वा स्थितम् इत्यर्थः। सामवायिकों के वशीकरण का प्रकरण राजनीति के ग्रन्थों से जानना चाहिये।

**इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सुत्यं पुरोडाशेन सविता जजान। यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषुज्यन्मतस्ने वायुव्यैर्न मिनाति पित्तम्॥ ८५॥**

सविता देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

**भा०**—( सविता ) उत्पादक पुरुष देह जिस प्रकार ( पुरोडाशेन ) सुसंस्कृत अन्न से ( सत्यं ) सात्विक बल वीर्य को ( जजान ) उत्पन्न करता है और जिस प्रकार ( सविता ) सूर्य ( पुरोडाशेन ) प्रकाश से ( सत्यं जजान ) सत्पदार्थों के सत्य स्वरूप को प्रकट करता है उसी प्रकार ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् ( सुत्रामा ) उत्तम प्रजापालक ( सविता )

सूर्य के समान तेजस्वी राजा ( हृदयेन ) अपने हृदय से ( सत्यं ) सज्जनों के हितकारक राज्य को ( जजान ) प्रकट करता है ।

और जिस प्रकार ( वरुणः ) शरीर में स्थित अपान ( यकृत् ) यकृत्-कलेजे को, ( क्लोमानं ) पिलही या कण्ठ नाड़ी को और ( पित्तम् ) पित्तखण्ड को और ( मतस्ने ) गुर्दों को ( वायव्यैः ) अपने वायु वेगों से ( भिषज्यन् ) पीड़ाएं दूर करता हुआ भी ( न मिनाति ) नहीं विनष्ट होने देता उसी प्रकार ( वरुणः ) समस्त प्रजाओं द्वारा वरण किया गया एवं दुष्टों का वारक राजा ( वायव्यैः ) अपने वायु के समान बलवान् वीर पुरुषों द्वारा ( भिषज्यन् ) राष्ट्र-शरीर में बैठे रोग को दूर करके उसको स्वस्थ सुखी बनाना चाहता हुआ भी ( यकृत् ) शरीर में यकृत्=कलेजे के समान राष्ट्र में यथानियम समस्त प्रजाओं को परस्पर सत्कर्म में लगाने वाले, दानशील विद्वान्, धार्मिक पुरुष को ( क्लोमानं ) शरीर में क्लोम, पिलही के समान दुष्ट पुरुषों के नाशक या कण्ठ नाड़ी के समान प्राण-धारक पुरुषों को ( मतस्ने ) आनन्द से सब को स्नान कराने वाले, शरीर में गुर्दों के समान मलशोधकों के समान 'मत्-स्ने' आनन्द से तृप्तिकारक ज्ञान से हृदय पवित्र करने वाले अध्यापक और उपदेशक, या आनन्द से रहने वाले स्त्री पुरुषों और राष्ट्र के भीतरी घटक और उपकारक अंगों को ( पित्तम् ) शरीर में पित्त के समान पालनकारी, पवित्रकारी, गुरुजन को भी ( न मिनाति ) पीड़ित नहीं करता ।

यकृत् । यजतीति यकृत् । यजेर्ऋतन् उणादिप्रत्ययः । इति दया० उणा० ।

**आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः । श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥**

सविता देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( श्येनस्य ) बाज के समान तीव्र वेग से शत्रु पर आक्रमण करने में वीर राजा की ( स्थालीः ) राज्य स्थापना की शक्तियां ( आन्त्राणि ) शरीर में आँतों के समान राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को भीतर ही उपयोग करती हैं। वे ( पात्राणि ) पालन करने वाले अधिकारी शासकों के पद शरीर में ( मधु पिन्वमानाः ) अन्न को समस्त शरीर में पहुंचा देने वाले ( गुदाः ) गुदागत स्थूल नाड़ियों के समान स्वयं भी ( गुदाः ) आनन्द या मधु ऐश्वर्य को ( पिन्वमानाः ) सर्वत्र पहुंचाने हारे ( गुदाः ) आनन्द या उत्तेजना उत्पन्न करने वाले या गति प्रदान करने वाले सञ्चालक रूप हैं। और ( सुदुघा ) समस्त उत्तम ऐश्वर्यों की देने वाली यह पृथिवी ( धेनुः न ) दुधार गौ के समान है। शरीर में स्थित ( प्लीहा न ) पिलही जिस प्रकार शरीरस्थ विकारों को नाश करती है उसी प्रकार ( श्येनस्य ) बाज के समान शत्रु पर झपटने वाले वीर पुरुष का ( पत्रम् ) तलवार या विजय रथ है। ( नाभिः आसन्दी ) जिस प्रकार शरीर में नाभि केन्द्र है सब नाड़ियें वहां सम्बद्ध हैं उसी प्रकार 'आसन्दी' राजा के बैठनी की गद्दी या राजधानी है। जिस प्रकार ( उदरं न माता ) शरीर में उदर, पेट समस्त अन्नों को लेकर रस ग्रहण करता और अपरस को बाहर निकालता है उसी प्रकार राजा की 'माता' उसको उत्पन्न करने वाली अथवा 'माता' ज्ञान करने हारी परिषद् सत्या-असत्य, ग्राह्य-अग्राह्य का विवेक करती है। वह ( शचीभिः ) अपनी प्रज्ञाओं और शक्तियों से और राज्य का सञ्चालन करती है।

कुम्भो व॑निष्ठुर्ज॑नि॒ता शची॑भि॒र्यस्मि॒न्नग्रे॒ योन्यां॒ गर्भो॑ऽअ॒न्तः।
प्ला॒शिर्व्य॑क्तः श॒तधा॑र॒ उत्सो॑ दु॒हे न कु॒म्भी स्व॒धां पि॒तृभ्यः॑ ॥८७॥

भा०—( वनिष्ठुः ) शरीर में 'वनिष्ठु' अर्थात् जिस में स्थूल आँतें रहती हैं वह कटि का चूतड़ भाग जिसमें ( अग्रे ) सब से प्रथम

स्त्री-शरीर में ( योन्यां ) योनि के ( अन्तः ) बीच में स्थित ( गर्भः ) गर्भ रहता है उसके समान ही राजा भी स्वयं ( कुम्भः ) पृथ्वी को भी पोषण करने में समर्थ और ( शचीभिः ) अपनी शक्तियों से ( जनिता ) राष्ट्र का उत्पादक होता है। शरीर में जिस प्रकार ( प्लाशिः ) शिश्न भाग ( व्यक्तः ) प्रकट है जो मूत्रादि बहाने में ( शतधारः उत्सः इव ) शतधार स्रोत के समान है उसी प्रकार राष्ट्र शरीर में भी ( प्लाशिः=प्राशिः ) उत्तम पदों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने वाला वैश्य भाग है जो ( शतधारः उत्सः इव ) सैकड़ों धारा वाले स्रोत या मेघ के समान ऐश्वर्यों को बहाता है। और ( कुम्भी ) घर की धान और जल से भरी गगरी जिस प्रकार ( पितृभ्यः ) घर के पालक वृद्धजनों को भी ( स्वधां दुहे ) अन्न और जल प्रदान करती है ( न ) उसी प्रकार ( कुम्भी ) पृथिवीवासिनी प्रजा का पालन करने वाली यह पृथिवी ( पितृभ्यः ) पालक, शासक पुरुषों को ( स्वधाम् ) अन्न और स्व अर्थात् देहधारक, वेतन आदिक ( दुहे ) प्रदान करती है।

गृहस्थ प्रकरण में—( कुम्भः ) कलश के समान वीर्य शौर्य आदि से पूर्ण, ( वनिष्ठुः ) भोक्ता, ( जनिता ) सन्तानोत्पादक, ( प्लाशिः ) समस्त पदार्थों का संग्रहीता, ( शतधारः ) सैकड़ों वाणी वाला, ( उत्सः ) कूप के समान गंभीर प्रेम का स्रोत होकर पति रहे। और ( कुम्भी ) इसी प्रकार वीर्यादि से पूर्ण स्त्री भी रहे। दोनों ( पितृभ्यां स्वधां दुहे ) अपने पालक जनों को अन्न भोजन दें। पुरुष ( यस्मिन् अग्रे ) जिसमें प्रथम ही वीर्य रूप में सन्तान विद्यमान होती है और स्त्री जिसमें बाद में ( योन्यामन्तः गर्भः ) योनि के भीतर गर्भ रूप से सन्तान उत्पन्न होती है, दोनों ही अपने ( पितृभ्यां ) पिताओं के ऋण रूप ( स्वधाम् ) उनके अपने अंश रूप सन्तति को ( दुहे ) उत्पन्न करके सफल हों।

८

मुख॑ᳬ सद॑स्य शिर॒ऽइत् सतेन॑ जि॒ह्वा प॒वित्र॑म॒श्विना॒सन्त्सर॑स्वती।
चप्यं॒ न पा॒युर्भि॒षग॑स्य॒ वालो॑ व॒स्तिर्न॒ शेपो॒ हर॑सा तर॒स्वी ॥८८॥

भा०—( अस्य ) इस राजा का ( मुखं ) शरीर में मुख के समान और ( शिरः ) शिर के समान ( सत् ) संसत्, राजसभा है। ( आसन् ) मुख में जिस प्रकार ( जिह्वा ) जिह्वा होती है उसी प्रकार ( सतेन ) विभक्त राजसभा में ( पवित्रम् ) सदाचारवान् ( अश्विना ) स्त्री पुरुष और ( सरस्वती ) पवित्र वेदवाणी, व्यवस्था पुस्तक है। (पायुः) शरीर में 'पायु' गुदा भाग जिस प्रकार शरीर में से मल मूत्रादि दूर करके शरीर को शान्ति देता है ( न ) उसी प्रकार ( चप्यं ) राष्ट्र में दुष्टों को दूर करके प्रजा को सान्त्वना और सुख की आशा दिलाने के श्रेष्ठ कार्य हैं। ( वालः ) शरीर में जिस प्रकार बाल समस्त रोगों को दूर करते हैं और पुच्छादि के बाल जिस प्रकार मशक आदि को दूर करते हैं उसी प्रकार ( अस्य ) इस राजा के राष्ट्र के ( भिषग् ) रोगों के निवारक वैद्यगण हैं। ( वस्तिः शेपः न ) जिस प्रकार शरीर में वस्ति अर्थात् मूत्र स्थान और पुरुष-शरीर में 'शेप' अर्थात् प्रजनेन्द्रिय दोनों में एक तो वेग से मूत्र प्रवाहित करके शरीर को शुद्ध करता है दूसरा काम वेग से तीव्र होकर भोगभिलाषी होता है उसी प्रकार राष्ट्र में ( हरसा ) शत्रु को मार भगाने में समर्थ वीर्य से ( तरस्वी ) अति वेगवान सेनाबल दुष्ट को राष्ट्र से बाहर निकालता है और राष्ट्र के निमित्त समस्त सुखों को प्राप्त भी कराता है।

गृहस्थ पक्ष में—इसी मन्त्र से स्त्री पुरुष के व्यवहार का भी वर्णन किया है।

'सतः' तिरः सतः इति प्राप्तस्य। निरु० ३। ४। ३॥ 'चप्यं' चप सान्त्वने। भ्वादिः॥

अ॒श्विभ्यां॒ चक्षु॑र॒मृतं॒ ग्रहा॑भ्यां॒ छाग॑ने॒न तेजो॑ ह॒विषा॑ शृ॒तेन॑।
पक्ष्मा॑णि गो॒धूमैः॒ कुव॑लैरु॒तानि॒ पेशो॒ न शु॒क्रमसि॑तं वसाते ॥८९॥

अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( ग्रहाभ्यां ) एक दूसरे को ग्रहण या स्वीकार करनेवाले (अश्विभ्यां) एक दूसरे को व्याप्त को करके परस्पर का सुख आनन्द भोग करने वाले राजा प्रजा और स्त्री पुरुष दोनों से ही राजा या ऐश्वर्यमय राष्ट्र की ( अमृतम् ) अमृतमय ( चक्षुः ) शरीर में आंख के समान सत् असत् दिखानेवाली चक्षु बनती है। ( छागेन ) बकरी के दूध से और ( शृतेन हविषा ) परिपक्व अन्न से जिस प्रकार शरीर में चक्षु के ( तेजः ) तेज, कान्ति की वृद्धि ही होती है उसी प्रकार राष्ट्र के शरीर में ( छागेन ) पर पक्ष के छेदन करनेवाले तर्क अथवा शत्रु पक्ष के छेदन करनेवाले नीति और सैन्य बल से और (शृतेन हविषा) संपक्व अन्न के भोजन से ( तेजः ) तेज, बल, पराक्रम की वृद्धि होती है। जिस प्रकार ( पक्ष्माणि ) आंख के पलकों के बाल होते हैं उसी प्रकार राष्ट्र में उनकी तुलना ( गोधूमैः ) खेत में उगे गेहूं आदि धान्यों से करनी चाहिये। ( उतानि ) जिस प्रकार आंख के बचाव के लिये भौंहों के बाल हैं उनकी तुलना ( कुवलैः ) राष्ट्र भूमि में उगे झरबेरीयों के कांटेदार वृक्षों से करना चाहिये। और जिस प्रकार चक्षु को ( शुक्रम् असितं न ) श्वेत और काला ( पेशः ) दोनों प्रकार के चर्म ( वसाते ) आंख को ढके हुए हैं उसी प्रकार राष्ट्ररूप चक्षु को ( शुक्रम् ) शुद्ध स्वच्छ कान्तिमान् स्वर्ण, रजतादि धातु और ( असितं ) काले वर्ण के लोहे, सीसा आदि धातु दोनों ( पेशः ) बहुमूल्य सुवर्ण आदि पदार्थ अथवा ( शुक्रम् असितं पेशः ) श्वेत और काले, उजले और कृष्ण वर्ण के अथवा गृहस्थ और मुमुक्षु लोग ( वसाते ) बसा रहे हैं, आच्छादित करते हैं।

राष्ट्रवासी स्त्री पुरुषों ने मिलकर मानो राष्ट्र को एक आंख का रूप दे दिया है। शस्त्र, बल और अन्न उसका तेज है, गेहूं धान उसकी पलकें हैं, बेरी आदि कांटेदार वृक्ष भौंहें हैं। गोरे और काले या गृहस्थ और

मुमुक्षु आदमी या उजली काली धातुएं, या चमकदार और बेचमकदार काले उसके सफेद पदार्थ भीतरी चमड़े हैं जो उसको ढांपते हैं ।

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्थाऽअमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ९० ॥

इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की 'नासिका' से तुलना करते हैं । ( नसि ) नाक में जिस प्रकार ( अविः मेषः ) बल और जीवन का सेचन करनेवाला प्राण है और वह शरीर की ( न ) भी ( अविः ) रक्षा करता और ( वीर्याय ) शरीर में बल उत्पन्न करने के लिये है उसी प्रकार राष्ट्र में ( अविः ) राष्ट्र का रक्षक पुरुष और ( मेषः ) उसको सुख समृद्धि से सेचन करने और शत्रुओं के प्रति स्पर्द्धा करने में समर्थ होकर राष्ट्र के ( वीर्याय ) वीर्य, बल वृद्धि के लिये होता है । और यह नाक ( ग्रहाभ्याम् ) सदा ग्रहण करने योग्य प्राण और अपान या उच्छ्वास और निःश्वास दोनों द्वारा या श्वास ग्रहण करनेवाले मार्गों से बनी है और वही (प्राणस्य) प्राण का भी (अमृतः) अमृत, जीवनप्रद (पन्थाः) मार्ग है । उसी प्रकार ( ग्रहाभ्याम् ) एक दूसरे को स्वीकार करनेवाले स्त्री पुरुषों से ही इस राष्ट्र की रचना है, वह (प्राणस्य) मुख्य प्राण या बल का (अमृतः) अमृत, जीवनप्रद, अविनाशी (पन्थाः) मार्ग बना है । और वही (सरस्वती) वाणी शरीर में जिस प्रकार ( उपवाकैः ) समीप ही स्थित वचनों से नासिका में (व्यानं) व्यान नामक प्राण के विविध सामर्थ्यों को प्रकट करता है उसी प्रकार राष्ट्र में ( सरस्वती ) विज्ञानों से पूर्ण विद्वत्सभा ( उपवाकैः ) नाना शास्त्र-प्रवचनों से ( व्यानं ) विविध सामर्थ्य प्रकट करती है । ( नस्यानि ) जिस प्रकार नाक के लोम हैं वे नाक में शुद्ध वायु का प्रवेश कराते हैं और नासिका के हितकारी हैं उसी प्रकार

( बर्हिर्बदरैः ) कुश आदि ओषधियें और बेर आदि वन्य फल के वृक्षों से मानो राष्ट्ररूप नाक में लोम के समान (जजान) प्रतीत होते हैं। संक्षेप में-राष्ट्ररूप नाक में रक्षक राजा प्राण है स्त्री पुरुष दो प्राण के मार्ग हैं, विद्वत्सभा द्वारा बनाई नियमाज्ञावचन नाक में स्थित व्यान है और जंगल के ओषधि फलादि वृक्ष नाक के लोम हैं।

**इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याᳬश्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम्। यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥ ९१ ॥**

इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—राष्ट्र की मुख से तुलना करते हैं। ( बलाय ) बल के कार्य करने के लिये जिस प्रकार ( ऋषभः ) बड़ा बैल गाड़ी में लगाया जाता है उसी प्रकार ( ऋषभः ) शरीर में व्यापक, उसे गति देनेवाला आत्मा या मुख्य प्राण ही ( बलाय ) शरीर में बल उत्पन्न करने और बलके कार्य करने के लिये है। उसी प्रकार राष्ट्र में ( ऋषभः ) समस्त नरों में श्रेष्ठ पुरुष बलवान् कार्य के लिये नियुक्त किया जाता है। वही ( इन्द्रस्य रूपम् ) शत्रु नाशक राजा, एवं आत्मा का स्वरूप उत्तम मुख के समान है। कैसे? ( ग्रहाभ्याम् कर्णाभ्यां तस्य अमृतं श्रोत्रम् ) जैसे शब्दों के ग्रहण करनेवाले कानों से उस आत्मा का 'अमृत' अविनाशी, ( श्रोत्रम् ) श्रोत्र अर्थात् श्रवण शक्ति बनी है उसी प्रकार वेतन आदि स्वीकार करनेवाले कानों के समान प्रिय वचनों को श्रवण करनेवाले स्त्री पुरुषों से ही उस राष्ट्ररूप मुख का मानो 'श्रोत्र' बना है। और ( यवाः बर्हिः न ) और ओषधि आदि मानो राष्ट्ररूप मुख पर लगे ( भ्रुवि केसराणि ) भौंहों के रोमों के समान हैं। ( कर्कन्धु ) परिपक्व फल मानो ( सारघं मधु ) मधु मक्खियों का मधु आदि पदार्थ और अन्न ( मुखात् ) मुख से निकलनेवाले ( सारघं मधु ) सारवान्, अर्थ संपूर्ण मधुर वचन के समान है।

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम। केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिꣳहस्य लोम त्विपिरिन्द्रियाणि ॥९२॥

आत्मा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राष्ट्र की शरीर से तुलना करते हैं ( आत्मन् ) समस्त देह में और ( उपस्थे ) गुह्य भाग में ( लोम ) जितने रोम या बाल हैं वे मानो राष्ट्र में विद्यमान ( वृकस्य लोम ) भेड़िये के लोमों के समान है। अर्थात् भेड़िये के स्वरूप या स्वभाव वाले पुरुष शरीर में सामान्य लोम गुह्यांग लोमों के तुल्य हैं। और ( व्याघ्रलोम ) व्याघ्र के लोम अर्थात् व्याघ्र के समान बड़े जन्तुओं पर भी आक्रमण करनेवाले शौर्य गुण के सम्पन्न पुरुष ( मुखे श्मश्रूणि ) शरीर में मुख पर लगे मोंछ के बालों के समान हैं। ( यशसे ) यश के लिये, बड़े साहस के कार्य करने वाले पुरुष देह में ( शीर्षन् ) शिर पर लगे ( केशः न ) केशों के समान हैं। लक्ष्मी और शोभामात्र के लिये उद्यम करनेवाले लोग ( शिखा ) सिर पर चोटी के बालों के समान हैं। ( सिंहस्य लोम ) सिंह के समान पराक्रम करनेवाले स्वभाव के लोग शरीर में विद्यमान ( त्विषिः ) तेज या कान्ति के समान एवं ( इन्द्रियाणि ) शरीर में लगे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के समान हैं।

अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती। इन्द्रस्य रूपꣳ शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधाना: ॥९३॥

अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( भिषजौ ) समस्त रोगों की चिकित्सा करने वाले (अश्विनौ) सद्वैद्य जिस प्रकार ( आत्मन् ) देह में ( अङ्गानि ) अंगों को ( सम् अधाताम् ) जोड़ देते हैं और जिस प्रकार ( अश्विनौ ) शरीर में व्यापक प्राण और अपान दोनों ( आत्मन् ) आत्मा के समस्त ( अंगानि ) ज्ञाने-

न्द्रिय और कर्मेन्द्रियों को सम्बद्ध किये रहते हैं ( तत् ) उसी प्रकार ( अश्विना ) व्यापक सामर्थ्य वाले स्त्री और पुरुष या मुख्य दो अधिकारी ( आत्मन् ) आत्मस्वरूप राष्ट्र के राज्य में ही समस्त ( अङ्गानि ) राज्य के अंगों को ( सम् अधातम् ) भली प्रकार जोड़ते हैं। और ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञान से युक्त स्त्री के समान राजसभा ( अङ्गैः ) राज्य के सारे अंगों के साथ ( आत्मानम् ) आत्मा के समान व्यापक शक्तिमान् राजा को ( सम अधात् ) संयुक्त करती है। पूर्वोक्त दो अश्विगण और सरस्वती तीनों ( चन्द्रेण ) चन्द्र के बल से ( अमृतं ज्योतिः ) अमृतमय सुखप्रद ज्योति के समान ( चन्द्रेण ) आह्लादकारी राजा या राज्य के साथ ( अमृतम् ) अविनाशी, सुखप्रद अन्नादि समृद्धि और ( ज्योतिः ) परम तेज को ( दधानाः ) धारण करते हुए ( इन्द्रस्य ) शत्रुनाशक राजा के ( रूपं ) स्वरूप को और ( आयुः ) जीवन को ( शतमानम् ) सौगुणा अथवा सौ वर्षों के परिमाण वाला कर देते हैं।

अध्यात्म में—( अश्विनौ अङ्गानि आत्मन् ) प्राण और अपान दोनों का अभ्यास योग के अंगों को समाहित, सुसम्पन्न करता है। ( सरस्वती आत्मानम् अङ्गैः सम् अधात् ) सरस्वती, वेद वाणी का स्वाध्याय आत्मा को योगाङ्गों से युक्त करता है। प्राणायाम और स्वाध्याय दोनों ( इन्द्रस्य रूपं शतमानम् आयुः ) जीव की आयु को सौ वर्षों का बना देते हैं। वे ( चन्द्रेण ) आह्लादजनक वीर्य के साथ या सोमचक्र के साथ ( अमृतं ज्योतिः दधानाः भवन्ति ) अमृत-आत्म-ज्योति या प्रकाश को धारण कराते हैं।

'अंगानि'—मन्त्राङ्गानि—सहायाः साधनोपाया: विभागो देशकालयोः।
विनिपात प्रतीकारः मन्त्रः पञ्चांगइष्यते।

सप्ताङ्गानि—स्वाम्यमात्यसुहृत-कोश-राष्ट्र-दुर्ग-बलानि च।

योग के अष्टांग—यम, नियमासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा समाधयः ॥

गृहस्थ पक्ष में—( अश्विनौ ) स्त्री पुरुष ( आत्मन् ) अपने आत्मा के भीतर समस्त अंगों को ( सम् अधाताम् ) संधान करें, धारण करें। ( सरस्वती ) वाणी, ( अंगैः ) अपने समस्त अंगों से आत्मा या जीव को युक्त करे। समस्त प्राणगण ( चन्द्रेण ) वीर्य के साथ ( अमृतं ज्योतिः दधानाः ) अमर आत्मा की ज्योति को धारण करने वाले अंग ही ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् आत्मा के ( शतमानम् आयुः ) सौ वर्ष के दीर्घ जीवन को धारण करते हैं।

**सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्त्ति।**
**अपांᳪरसेन वरुणो न साम्नेन्द्रᳪ श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ९४॥**

सरस्वती देवता। विराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—जिस प्रकार ( सरस्वती ) स्त्री ( पत्नी ) गृहपत्नी होकर ( योन्याम् अन्तः ) योनिस्थान में ( सुकृतम् ) उत्तम रीति से स्थापित ( गर्भम् ) गर्भ को ( बिभर्त्ति ) धारण पोषण करती है, उसी प्रकार ( योन्याम् अन्तः ) संगत होने या एकत्र होने के स्थान सभाभवन के भीतर ( पत्नी ) राष्ट्र का पालन करने वाली ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा ( अश्विभ्याम् ) राजा और प्रजा दोनों के लिये ( सुकृतम् ) उत्तम रूप से बनाये गये ( गर्भम् ) राष्ट्र के ग्रहण करने वाले राजा को ( बिभर्त्ति ) धारण करती है। और ( वरुणः ) स्वयं वरण किया पति जिस प्रकार ( अपां रसेन ) प्राणों के वीर्य से ( इन्द्रं जनयत् ) जीव, बालक को उत्पन्न करता है। (वरुणः) समस्त प्रजा द्वारा वरण किया गया (राजा) राजा राजपद पर विराजमान होकर ( अपां रसेन ) आप्त पुरुषों के बल से ( साम्ना ) और साम उपाय से ( अप्सु ) प्रजाओं में ( श्रियै ) लक्ष्मी,

धन समृद्धि की वृद्धि के लिये ( इन्दम् ) ऐश्वर्य रूप राष्ट्र को ( जनयत् ) उत्पन्न करता है ।

तेजः पशूनाᳪं हुविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु। अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुता सुताभ्याममृतः सोम ऽइन्दुः ॥ ९५ ॥

अश्विनौ देवते । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—जिस प्रकार ( पशूनां ) पशुओं का ( दुग्धं ) दुहा गया दूध ( हविः ) खाने योग्य, ( इन्द्रियावत् ) शरीर में बलकारक, ( तेजः ) तेज उत्पन्न करने वाला है। और जिस प्रकार ( सारघम् मधु ) मधुमक्खियों से प्राप्त किया, फूलों २ से दुहा गया 'मधु' ( इन्द्रियावत् तेजः ) बल और तेज को उत्पन्न करता है। उसी प्रकार ( अश्विभ्याम् ) राष्ट्र के स्त्री पुरुषों या मुख्य अधिकारियों ने और ( सरस्वत्या ) विद्वत्सभा ने मिलकर (परिस्रुता) सब ओर से स्रवण करने वाले अभिषेक के ( पयसा ) जल से ( सुत-असुताभ्याम् ) अभिषिक्त राजाओं और अनभिषिक्त प्रजाओं से ( अमृतः ) राष्ट्र के जीवन स्वरूप, अमर ( इन्दुः ) परमैश्वर्यवान् ( सोम ) सबका आज्ञापक राजा ( दुग्धः ) मानो दुहकर प्राप्त किया है।

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥



# अथ विंशोऽध्यायः

प्रजापतिर्ऋषिः ।

॥ ओ३म् ॥ क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि ।
मा त्वा हिꣳसीन्मा मा हिꣳसीः ॥ १ ॥

राजा सभेशो देवता । द्विपदा विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राजन् ! तू ( क्षत्रस्य ) वीर्य, क्षात्रबल और राज्य का ( योनिः ) आश्रयस्थान ( असि ) है । ( क्षत्रस्य ) राजकुल, क्षात्र सेना-बल का ( नाभिः ) नाभि के समान केन्द्र, उनको परस्पर सुप्रबद्ध करने वाला मुख्य पुरुष ( असि ) है । यह राष्ट्रवासी प्रजाजन ( त्वा ) तुझे ( मा हिंसीत् ) न मारे, विनाश न करे । हे राजन् ! ( मा ) मुझ राष्ट्रवासी जन को भी तू ( मा हिंसीः ) मत मार ।

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः । मृत्योः पाहि विद्योत् पाहि ॥ २ ॥

भुरिग् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—( धृतव्रतः ) व्रतों, नियमों को धारण करने वाला, ( सुक्रतुः ) उत्तम प्रज्ञावान्, कुशल पुरुष ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ, प्रजा के कष्टों को वारण करनेहारा ( पस्त्यासु ) न्यायगृहों में या प्रजाओं के बीच, ( आ नि-ससाद ) साक्षात् विराजमान हो । हे राजन् ! तू ( मृत्योः ) प्रजा को मृत्यु अर्थात् मरने के कारण से ( पाहि ) बचा । ( विद्योत् ) विद्युत् के समान अग्नि आदि के बने नाशक अस्त्रों से ( पाहि ) बचा । अर्थात् राजा प्रजा की अकारण, एवं अकाल मृत्यु से रक्षा करे और शत्रु के आक्रमणों से रक्षा करे ।

---

१—क्षत्रस्य नाभिरसि क्षत्रस्य योनिरसि० । इति काण्व० ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि ।
सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामि ।
इन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ॥ २ ॥

अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—अभिषेक का वर्णन करते हैं । हे राजन् ! मैं अध्वर्यु, वेदज्ञ पुरुष, राजा और प्रजाजन दोनों का प्रतिनिधि होकर ( सवितुः ) सर्वोत्पादक ( देवस्य ) सर्वप्रकाशक परमेश्वर के ( प्रसवे ) महान् ऐश्वर्यमय जगत् में ( अश्विनोः ) विद्या और कर्म दोनों में पारंगत विद्वान् और कर्मिष्ठ पुरुषों के ( बाहुभ्याम् ) शत्रुओं को पीड़न करने में समर्थ बाहुओं से और ( पूष्णः ) पुष्टि करने वाले अन्नादि से सबके पोषक भूमिवासी कृषक वर्ग के हाथों से और ( अश्विनोः ) वैद्यक विद्याओं में निष्णात पुरुषों के ( भैषज्येन ) चिकित्सा या रोगनिवृत्ति के द्वारा सम्पादित ( तेजसे ) तेज, पराक्रम की वृद्धि और ( ब्रह्मवर्चसाय ) ब्रह्मवर्चस, वीर्यरक्षा वेदज्ञान की वृद्धि के लिये ( अभि षिञ्चामि ) तुझे अभिषिक्त करता हूं । और ( सरस्वत्यै ) प्रशस्त ज्ञान वाली वेदवाणी के द्वारा ( भैषज्येन ) अविद्यादि दोषों के दूर करने के उपाय से मैं तुझको ( वीर्याय ) वीर्य, बल की वृद्धि के लिये और ( अन्नाद्याय ) राष्ट्र के भोग्य अन्नादि पदार्थों के भोगार्थ अधिक शक्ति प्राप्त करने के लिये ( अभि षिञ्चामि ) अभिषेक करता हूं और ( इन्द्रस्य ) शत्रुहन्ता सेनापति और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के ( इन्द्रियेण ) बल से ( बलाय ) बल या सेनाबल की वृद्धि और ( श्रियै ) राज्यलक्ष्मी की वृद्धि और ( यशसे ) कीर्त्ति के लिये ( अभि षिञ्चामि ) अभिषिक्त करता हूं ।

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा ।
सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥ ४ ॥

निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे उत्तम पुरुष ! तू ( कः असि ) तू कौन है, तू ( कतमः असि ) उपस्थित पुरुषों में से कौन सा है । यह अपना परिचय समस्त पुरुषों को दे । ( कस्मै त्वा ) किस प्रयोजन के लिये तुझे यहां अभिषेक किया है, इसका भी परिचय दे । ( काय ) प्रजापालक, प्रजापति, राजा पद के लिये ( त्वा ) मैं तुझे अभिषेक करता हूं । अध्वर्यु राजा को राजपद पर बैठा कर तिलक कर के सम्बोधन करे । हे ( सु-श्लोक ) उत्तम कीर्त्ति वाले ! हे ( सुमङ्गल ) उत्तम मङ्गल कार्यों के करने हारे ! हे ( सत्यराजन् ) सत्य के प्रकाशक ! और सत्य न्याय से प्रकाशमान या सत्यधर्मों के प्रकाशक राजन् ! या सत्य यथार्थ राजा स्वरूप तुझे मैं अभिषिक्त करता हूं । अथवा—हे राजन् ! ( कः असिः ) तू प्रजापति है । तू ( कतमः असि ) प्रजापालको में सब से उत्तम है । ( कस्मै त्वा ) प्रजापति के पद के लिये तुझे अभिषिक्त करता हूं । ( काय त्वा ) ब्रह्म, या वेद ज्ञान की वृद्धि के लिये तुझे अभिषिक्त करता हूं । इत्यादि पूर्ववत् ॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ।
राजा मे प्राणोऽअमृतꣳसम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ५ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! राज्य में अभिषिक्त ( मे ) मुझ राजा का ( श्रीः ) शोभा या धनैश्वर्य ( शिरः ) मेरे शिर के समान है । ( यशः मुखं ) यश मुख के समान है । ( त्विषिः ) ओज, कान्ति, पराक्रम, शौर्य ( श्मश्रूणि केशाः च ) शिर के केश और मूछों के समान है । ( मे ) मुझ राष्ट्र का (प्राणः) प्राण (राजा) राजा का पद या स्वयं राजा (अमृतम्) जीवन

रूप है। ( सम्राट् ) सम्राट् का पद ( चक्षुः ) आंख के समान साक्षीरूप है। ( विराट् ) विविध विद्वान् सभासदों से प्रकाशमान् राजसभा ( श्रोत्रम् ) शरीर में लगे श्रोत्र के समान प्रजा राजा के समस्त व्यवहारों को सावधान होकर श्रवण करने वाला हो।

जि॒ह्वा मे॑ भ॒द्रं वाङ्मह्रो॒ मनो॑ म॒न्युः स्व॒राड् भामः॑।
मोदा॑ः प्र॒मोदा॒ऽअ॒ङ्गुली॒रङ्गा॑नि मि॒त्रं मे॒ सहः॑ ॥ ६ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( जिह्वा मे भद्रम् ) शरीर में जिस प्रकार जिह्वा है उसी प्रकार ( मे ) मेरे राष्ट्र में ( भद्रम् ) समस्त कल्याण के कार्य हैं। ( वाक् महः ) वाणी विज्ञान है। ( मनः मन्युः ) मन ज्ञानवान् पुरुष के समान है। ( स्वराड् भामः ) स्वराड् का पद शरीर में विद्यमान क्रोध के समान है। ( मोदाः प्रमोदाः ) राष्ट्र में विद्यमान आमोद, प्रमोद ( अङ्गुलीः अङ्गानि ) हाथ की अंगुलियों और अन्य अंगों के समान है। ( मे सहः ) शत्रु के पराजय करने में समर्थ सैन्यबल ( मे मित्रम् ) मेरा मित्र है।

बा॒हू मे॒ बल॑मिन्द्रि॒यꣳ हस्तौ॑ मे॒ कर्म॑ वी॒र्य॑म्।
आ॒त्मा क्ष॒त्रमुरो॒ मम॑ ॥ ७ ॥

भा०—( इन्द्रियं बलम् मे बाहू ) इन्द्र, सेनापति का समस्त बल मेरे बाहू हैं। ( वीर्यं कर्म मे हस्तौ ) वीर्योचित कर्म मेरे हाथ हैं। ( आत्मा उरः च मम क्षत्रम् ) राष्ट्र को क्षति से बचाने वाला क्षात्रबल मेरा आत्मा और विशेष कर छाती के समान है।

पृ॒ष्ठीर्मे॑ रा॒ष्ट्रमु॒दर॒मꣳसौ॑ ग्री॒वाश्च॒ श्रोणी॑।
ऊ॒रूऽअ॑र॒त्नी जानु॑नी॒ विशो॑ मेऽङ्गा॑नि स॒र्वतः॑ ॥ ८ ॥

निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( राष्ट्रं मे पृष्ठीः ) राष्ट्र, जनपद मेरी पसुलियों के समान हैं। ( विशः ) समस्त प्रजाएं ( उदरम् ) पेट, ( अंसौ ) कन्धे, ( ग्रीवाः

च ) गर्दन के मोहरे, ( श्रोणी ) कटि, ( ऊरू ) जांघ, ( अरत्नी ) हाथ के भाग, ( जानुनी ) गोड़े ( सर्वतः ) ये सब ( मे अङ्गानि ) मेरे अंगों के समान हैं।

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्।
आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः।
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः॥ ९॥

षट्पदाऽनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—( चित्तं ) चित्त ( मे नाभिः ) मेरी नाभि के समान है। ( विज्ञानं ) विज्ञान ( पायुः ) पायु अर्थात् गुदा के समान है। ( अपचितिः ) पूजासामग्री या प्रजाओं का उत्पन्न होना, ( मे भसत् ) स्त्री शरीर के प्रजननाङ्ग के समान ( भगः ) प्रजाओं का ऐश्वर्य, दोनों ( मे ) मेरे ( आनन्द-नन्दौ ) स्त्रीसंभोग द्वारा प्राप्त सुख में सुखी होने वाले ( आण्डौ ) अण्ड-कोशों के समान हैं। मैं ( जंघाभ्यां पद्भ्यां ) समृद्ध जंघाओं और पैरों से ( धर्मः अस्मि ) धारण करने वाला सामर्थ्य धर्म हूं। इस प्रकार से ( विशि ) समस्त प्रजा के स्वरूप में भी ( राजा ) राजा मानों शरीर धर के ( प्रतिष्ठितः ) प्रतिष्ठा को प्राप्त है।

इसी प्रकार—प्रत्येक शरीर में राष्ट्र के समस्त धर्म विद्यमान हैं वे भी कह दिये गये हैं। समाज के भिन्न २ विभागों के कर्त्तव्य शरीर के भिन्न २ भागों के धर्मों से तुलना द्वारा जानने चाहियें।

प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु। प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे॥ १०॥

विराट् शक्वरी। धैवतः॥

भा०—राजा की राष्ट्र के भिन्न २ ऐश्वर्यों और भागों में प्रतिष्ठा। 'मैं' राजा ( प्रति क्षत्रे ) प्रत्येक क्षत्रियकुल में ( प्रति तिष्ठामि ) प्रतिष्ठा

को प्राप्त करूं। ( राष्ट्रे प्रतितिष्ठामि ) प्रत्येक राष्ट्र में प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं। ( अश्वेषु ) अश्वों में और ( गोषु ) गौवों में भी ( प्रतितिष्ठामि ) प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं। ( अङ्गेषु ) समस्त अङ्गों में प्रतिष्ठित होऊं। ( आत्मन् प्रतितिष्ठामि ) आत्मा में प्रतिष्ठित होऊं। ( प्राणेषु ) प्राणों में ( प्रतितिष्ठामि ) प्रतिष्ठित होऊं। ( पुष्टे प्रति ) पुष्ट, पोषणकारी अन्न आदि पदार्थों में प्रतिष्ठित होऊं। ( द्यावापृथिव्योः ) आकाश और पृथिवी पर और (यज्ञे) यज्ञ में भी (प्रतितिष्ठामि) प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं।

**त्रया देवाऽ एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः।**
**बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे। देवा देवैरवन्तु मा ॥११॥**

भा०—( त्रयाः एकादश ) तीन विशेष शक्तियों के ही अंशांश रूप से विद्यमान ११, ११, और ११ ये (त्रयः त्रिंशाः) तैंतीस (देवाः) देव-विद्वान् गण ( सुराधसः ) उत्तम धनैश्वर्य से सम्पन्न एवं ( बृहस्पति पुरोधसः ) बृहस्पति, वेदज्ञ विद्वान् को अपना महामात्य पुरोहित, अग्रवर्ती प्रमुख बनाकर (देवस्य) देव ( सवितुः ) सबके प्रेरक राजा के भी राजा परमेश्वर के ( सवे ) परमैश्वर्य युक्त शासन या जगत् में रहें। और वे ( देवाः ) समस्त विद्वान् पुरुष ( देवैः ) अपने दिव्य गुणों और व्यवहारों से ( मा अवन्तु ) मेरी, मुझ प्रजाजन और राजा की रक्षा करें।

साधारणतः—पृथ्वी अप, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ये आठ वसु, दश प्राण और ११ वां जीव, ये ११ रुद्र, १२ मास, १२ आदित्य, विद्युत् और यज्ञ ये सब मेरी रक्षा करें।

अर्थात्—शत्रु मित्र दोनों के देशों को वश करूं, पशु, गौ अश्वादिमान् होऊं। प्राणों से नीरोग होऊं, आत्मप्रतिष्ठ अर्थात् मानस दुःख से रहित

होऊं। धनसमृद्ध, इह और पर दोनों लोकों में कीर्तिमान्, धर्मात्मा और प्रभावशाली होऊं।

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूंषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥

विश्वेदेवा देवताः । प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः ॥

भा—(प्रथमाः) प्रथम कोटि के विद्वान् या देव, रक्षकजन (द्वितीयैः) द्वितीय कोटि के विद्वानों या रक्षकों के साथ मिल कर हमारे समस्त कामनायोग्य पदार्थों की वृद्धि करें। और (द्वितीयाः) द्वितीय कोटि के विद्वान् (तृतीयैः) तृतीय, सर्वोत्तम कोटि के विद्वान् पुरुषों से मिल कर और (तृतीयाः) तीसरे, उच्च कोटि के विद्वान् (सत्येन) सत्य व्यवहार, वेदानुकूल न्याय और धर्म से युक्त होकर, ( सत्यं यज्ञेन ) सत्य सत्यव्यवहार भी, यज्ञ, परस्पर आदर और संगति और सत्यवाणी से सम्पन्न होकर, ( यज्ञः यजुर्भिः ) यज्ञ, यजुर्वेद के मन्त्रों से वाणी को मानस विचारों से और प्रजापालन को क्षत्रियों से और ( यजूंषि सामभिः ) यजुर्वेद के मन्त्र सामवेदोक्त गायनों से, ( सामानि ऋग्भिः ) सामवेद के गायन ऋग्वेद की ऋचाओं से, ( ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः ) ऋचाएं पुरोनुवाक्या अर्थात्-अथर्ववेद के प्रकरणों से ( पुरोनुवाक्याः ) पुरोनुवाक्याएं ( याज्याभिः ) ऋचाओं से, ( याज्याः वषट्कारैः ) ज्याया ऋचाएं वषट्कारों या स्वाहाकारों से, ( वषट्-कारैः आहुतिभिः ) वषट्कार अर्थात् स्वाहाकार आहुतियों से समृद्ध हों। और ( आहुतयः ) आहुतियें ( मे कामान् ) मेरी समस्त कामनाओं को ( समर्धयन्तु ) समृद्ध करें। ( भूः स्वाहा ) यह समस्त पृथिवी मेरे वशमें अच्छी प्रकार हो।

( १ ) 'सत्यं'—तद् यत् सत्यं त्रयी सा विद्या । २ । ७ । ५ । १ । १८ ॥ सत्यं वा ऋतम् २ । ७ । ३ । १ । २३ ॥ यो वै धर्मः सत्यं वै तत् । सत्यं वदन्तमाहु धर्मं वदन्तीति । धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति । श० १४ । ४ । २ । २६ ॥ एतत् खलु वै व्रतस्य रूपं यत् सत्यम् । श० १२ । ८ । २५ ॥ एवं ह वै देवा व्रतं चरन्ति सत्यमेव । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥

( २ ) 'यज्ञः'—स ( सोमः ) तायमानो जायते स यत् जायते तस्माद् यज्जः । यज्जो ह वै नाम एतत् यद् यज्ञः । श० ३ । ७ । ४ । २३ ॥ यज्ञो वै विशः । यज्ञो ह सर्वाणि भूतानि प्रतिष्ठितानि । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥ वाग् यज्ञस्य रूपम् । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

( ३ ) 'यजूंषि'—एष हि यन् एव इदं सर्वं जनयति । एतं यन्तमिदमनुप्रजायते । तस्माद् वायुरेव यजुः । अयमेवाकाशो जूः । यदिदमन्तरिक्षमेतं हि आकाशमनुजायते तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षं यच्च जूश्च । तस्माद् यजुः । तस्माद् यजुः । श० १० । ३ । ५ । २ ॥ 'इषे त्वा । ऊर्जे त्वा । वायव स्थ । देवो वः सविता । प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे । इत्येवमादिं कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । गो० पू० १ । २७ ॥ मन एव यजूंषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ । यजुर्वेदं क्षत्रियास्याहुर्योनिम् । तै० ३ । १२ । १ । २ ॥

( ४ ) 'सामानि'—देवाः सोमं साम्ना समानयन् । तत्साम्नः समानत्वम् । तै० २ । २ । ८ । ७ ॥ स प्रजापतिः हैवं षोडशधा आत्मानं विकृत्य सार्धं समैत् । तद् यत्सार्धं समैत् तत्साम्नः सामत्वम् । जै० ३ । १ । ५ । ७ । तद्यत् संयन्ति तस्मात्साम । जै० ३० १ । ३ । ३ । ६ ॥ तदाह्वेष सर्वैर्लोकैः समः तस्मात् साम । जै० ३० १ । १२ । ५ ॥ सो च अमश्चेति तत्साम अभवत् । जै० ३० १ । ५ । ३ । २ ॥ साम हि नाष्ट्राणां रक्षसामपहन्ता । श० ४ । ७ । ५ । ६ ॥ क्षत्रं वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ साम हि सत्याशीः । तां० ११ । १० । १० ॥ धर्म इन्द्रो राजा । तस्य देवाः विशः । सामानि वेदः । श० १३ । ४ । ३ । १४ ॥

( ५ ) 'ऋचः '—प्राणा वा ऋक् । कौ० ७ । १० ॥ वाग् ऋक् । जै० ३ । ४ । २३ । ४ ॥ अमृतं ऋक् । कौ० ७ । १० ॥ अस्थि वा ऋक् । श० ७ । ५ । २ । २५ ॥ पय आहुतयो यदृचः । श० ११ । ५ । ६ । ४ ॥

( ६ ) 'पुरोऽनुवाक्याः '—प्राण एव पुरोऽनुवाक्या । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥ पृथिवीलोकमेव पुरोनुवाक्यया यजति । शत० १४ । ६ । १ । ६ ॥

( ७ ) 'याज्या '—इयं पृथिवी याज्या । श० १ । ४ । २ । १६ ॥ वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव । ए० २ । ५ । अन्नं वै याज्या । गो० उ० ३ । २२ । प्रत्तिर्वै याज्या पुण्या लक्ष्मीः । ए० ३ । ४० ॥

( ८ ) 'वषट्काराः ' —स वै 'वौक्' इति करोति । वाग् वै वषट्कारः वाग् रेतः । रेत एतत् सिञ्चति । षड् इति ऋतवः । ऋतवो वै षट् । ऋतुष्वेवैतद् रेतः सिच्यते । यो धाता स एव वषट्कारः । ऐ० ३ । ४६ ॥

( ९ ) 'आहुतयः '—तद् यदाह्वयति तस्मादाहुतिर्नाम । श० ११ । २ । २ ॥ आहितयो ह वै ता आहुतय इत्याचक्षते । श० १० । ६ । १ । २ ।

अर्थात्—प्रथम श्रेणी के पुरुष द्वितीय श्रेणीके पुरुषों के द्वारा बलवान् बनें, द्वितीय कोटि के तृतीय अर्थात् उच्च-कोटि के पुरुषों से समृद्ध हों । उच्च कोटि के लोग सत्य, न्याय और धर्म से बढ़ें । सत्य वाग् यज्ञ से बढ़ें । प्रजाजन रूप यज्ञ सत्य व्यवहार को बढ़ावें । यज्ञ यजुओं से बढ़े अर्थात् वाणी, मनके विचार से पुष्ट हो । और प्रजा का परस्पर संगठन रूप यज्ञ वायु के समान बलवान् और अन्तरिक्ष के समान आवरणकारी रक्षक राजा के बल से बढ़े । यजुर्वेद सामवेद से बढ़े अर्थात् क्षात्रबल एक साथ कार्य करके, सबके समान पोशाक, एक साथ सञ्चालनादि के कार्य से पुष्ट हो । सामवेद ऋक् से बढ़े अर्थात् क्षत्रिय लोग पुष्टिकारी अन्न या वैश्यों की सहायता से बढ़ें । ऋचाएं पुरोनुवाक्या से बढ़ें अर्थात् अन्न का बल प्राण या अन्न की वृद्धि पृथिवी की वृद्धि से हो । पुरोनुवाक्या याज्या से बढ़े अर्थात् पुण्य

लक्ष्मी अन्न सम्पत्ति से बढ़ें। याज्या वषट्कार से बढ़े अर्थात् पुण्य लक्ष्मी वीर्य और सामर्थ्य की वृद्धि से बढ़े। वषट्कार आहुतियों से बढ़ें अर्थात् बल वीर्य परस्पर के संघर्ष और स्थिर सम्पत्तियों के प्रदान कर्तव्य रक्षणों से बढ़ें। शत० १२। ८। ३। ३०॥

लोमा॑नि॒ प्रय॑ति॒र्मम॒ त्वङ्‌ म॒ आन॑ति॒राग॑तिः।
मा॒ꣳसं म॒ ऽउप॑नति॒र्वस्व॒स्थि म॒ज्जा म॒ ऽआन॑तिः॥ १२॥

अनुष्टुप्। गांधारः। लोमत्वङ्मांसास्थिमज्जानो लिंगोक्ता देवताः॥

भा०—राजा के शरीर की राष्ट्र से प्राप्त राजा की शक्तियों से तुलना। (प्रयतिः) राष्ट्र में समस्त जनों का प्रयत्न करना, श्रम करना या उत्तम नियमन या शासन व्यवस्था करना (मम) मेरे शरीर के (लोमानि) लोम के समान राष्ट्र की बाह्य या प्रत्यक्ष रक्षा करने वाले साधन हैं। (आनतिः) अपने समस्त शत्रुओं और दुष्ट पुरुषों को झुकाने वाली शक्ति और (आगतिः) मेरी आज्ञा प्राप्त करते ही मेरे सामने उनका आजाना, उपस्थित हो जाना, ये दोनों शक्तियां (मे त्वङ्) मेरी त्वचा के समान मेरे राष्ट्र की रक्षा करने वाली हैं। (उपनतिः) मेरे समीप आने वाले लोगों को आदर से झुकाने वाली शक्ति (मे मांसम्) मेरे शरीर के मांस के समान राष्ट्र-शरीर के स्वस्थ और हृष्टपुष्ट होने की समृद्धि के समान है। (वसु अस्थि) मेरा समस्त प्रजाजनों को बसाने वाला सामर्थ्य और ऐश्वर्य मेरे शरीर में विद्यमान अस्थि या हड्डी के समान राष्ट्र-शरीर के दृढ़ मूल आधार के समान है। (मज्जा मे आनतिः) प्रेम से, स्नेह से लोगों को आदर पूर्वक मुग्ध करके मेरे गुणों के समक्ष झुकाने वाला बल (मे) मेरे शरीर में विद्यमान (मज्जा) मज्जा के समान, राष्ट्र-शरीर में सब को आनन्द, सुख, शान्ति देनेवाला एवं सब अंगों के पालन धारण करने वाला है। शत० १२। ८। ३। ३१॥

यद्दे॑वा देवहेड॑नं॒ देवा॑सश्चकृ॒मा व॒यम्।

अ॒ग्निर्मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥ १४ ॥

अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं विजिगीषु पुरुषो ! (देवासः) उत्तम गुण और विद्यावान्, एवं विजयशील (वयम्) हम लोग (यत्) जो भी (देवहेडनम्) उत्तम विद्वान्, ज्ञानी पुरुषों का अनादर और अपराध (चकृम) करें (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् परमेश्वर, आचार्य और प्रतापी राजा (मा) मुझको (तस्मात् विश्वात्) उस सब प्रकार के (एनसः) अपराध और पाप से (मुञ्चतु) मुक्त करे, छुड़ावे। शत० १२ । ६ । २ । २ ॥

यदि॒ दिवा॒ यदि॒ नक्त॒मेना॑ꣳसि चकृ॒मा व॒यम् ।
वा॒युर्मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥ १५ ॥

वायुर्देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(यदि) चाहे (दिवा) दिन के समय (यदि नक्तम्) चाहे रात्रिकाल में (वयम्) हम लोग (एनांसि) अपराध और पाप (चकृम) करें तो भी (वायुः) वायु के समान व्यापक, अन्तर्यामी परमेश्वर, उसके समान आप्त पुरुष, एवं बलवान् राजा (तस्मात् एनसः) उस अपराध से और (विश्वात् अंहसः) सब प्रकार के पाप से भी (मा मुञ्चतु) मुझे मुक्त करे। शत० १२ । ६ । २ । २ ॥

यदि॒ जाग्र॒द्यदि॒ स्वप्न॒ ऽएना॑ꣳसि चकृ॒मा व॒यम् ।
सूर्यो॑ मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥ १६ ॥

सूर्यो देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(यदि जाग्रत्) यदि जागते और (यदि स्वप्ने) यदि सोते में भी (वयम्) हम (एनांसि) पाप (चकृम) करें तो (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर विद्वान् राजा (मा) मुझको (तस्मात्

१४—(१४-१६) तिस्रः कूष्माण्डीसंज्ञा ऋचः । '०हेळनं०' इति काण्व० ।

एनसः ) उस पाप से और ( विश्वात् अंहसः ) समस्त प्रकार के पाप से ( मुञ्चतु ) मुक्त करे। शत० १२। ७। २। २॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ १७ ॥

लिंगोक्ता देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( वयम् ) हम ( यत् ) जो ( एनः ) पाप ( ग्रामे ) ग्राम में, ( यत् अरण्ये ) जो पाप जंगल में, ( यत् सभायाम् ) जो पाप सभा में, और ( यत् इन्द्रिये ) जो अपराध चित्त में और चक्षु आदि इन्द्रियों से, परस्त्री दर्शन आदि, ( यत् शूद्रे ) जो शूद्र या सेवक जन पर, ( यद् अर्ये ) और जो पाप स्वामी के प्रति, ( चकृम ) करें और ( यत् ) जो अपराध हम ( एकस्य ) एक, किसी भी पुरुष के ( धर्मणि अधि ) धर्म या कर्त्तव्य पालन या व्रत पालन के भङ्ग करने में करें ( तस्य ) उस अपराध का, हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! हे राजन् ! तू ( अवयजनम् ) नाश करने वाला ( असि ) हो। शत० १२। ९। २। ३॥

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ १८ ॥

भा०—( यदाप० इत्यादि ) देखो अ० ६। २२ ॥ ( अवभृथ० इत्यादि ) देखो व्याख्या अ० ३। ४८ ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सन्त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः। सुमित्रिया नऽआप ऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १९ ॥

भा०—( समुद्रे० इत्यादि ) व्याख्या देखो अ० ८। २५ ॥ ( सुमित्रिया० इत्यादि ) व्याख्या देखो अ० ६। २२ ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥ २० ॥

आपो देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( आपः ) जलों के स्वच्छ करने वाले, स्वतः शान्ति और जीवन के देने वाले आप्त जन, या सदा प्राप्त परमेश्वर ( मा ) मुझको ( एनसः ) पाप से ऐसे ( शुन्धन्तु ) शुद्ध करें जैसे ( मुमुचानः ) मुक्त होने या टूटने वाला फल ( द्रुपदात् इव ) वृक्ष से अथवा ( मुमुचानः द्रुपदादिव ) जिस प्रकार छूटने वाला पशु काष्ठ के बने खूंटे से छूट जाता है, और जिस प्रकार ( स्विन्नः ) पसीने से भरा पुरुष ( स्नातः ) नहा धोकर ( मलात् इव ) मल से रहित हो जाता है, और जिस प्रकार ( पवित्रेण ) छानने के कम्बल या वस्त्र से ( पूतम् ) छना हुआ ( आज्यम् ) घी, कीट, मल आदि से स्वच्छ हो जाता है । शत० १२ । ६ । २ । ७ ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २१ ॥

प्रास्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । विराड् त्रिष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( वयम् ) हम ( उत्तरम् ) इस लोक से उत्कृष्ट और उच्च, ( स्वः ) सुखमय लोक को और ( उत्तमम् ) सब से उत्तम, उत्कृष्ट, ( ज्योतिः ) परम ज्योतिःस्वरूप, ( देवत्रा देवम् ) प्रकाशमान पदार्थों में भी सब से अधिक प्रकाशमान, दानशीलों में सब से अधिक दानशील, विजिगीषुओं में सब से अधिक विजिगीषु ( सूर्यम् ) सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर और राजा को ( पश्यन्तः ) देखते हुए ( तमसः ) अन्धकार से ( परि ) दूर ( उत् अगन्म ) ऊपर उठें । शत० १२ । ६ । २ । ८ ॥

अपो अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि । पयस्वानग्न ऽ

आगमं तं मा सꣳसृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥ २२ ॥
अग्निर्देवता । पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने ! ज्ञानवन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! पापवारक ! ( अद्य ) आज मैं ( अपः ) जलों में नियमानुसार स्नान करने के समान आप्त पुरुषों को प्राप्त होकर ज्ञान और कर्मानुष्ठानों को ( अनु अचारिषम् ) नियमानुकूल यथाविधि आचरण कर चुका हूं और ( रसेन ) ज्ञान के उत्तम रस या बल से हम ( सम् असृक्ष्महि ) संयुक्त हो जावें । ( पयस्वान् ) उस शक्तिवर्धक ज्ञान-रस से युक्त होकर ही, ( आगमम् ) तेरी शरण आता हूं ( तं मा ) उस मुझको ( वर्चसा ) तेज, वीर्य और अधिकार से, ( प्रजया ) प्रजा से और ( धनेन च ) धन, ऐश्वर्य से (संसृज) युक्त कर।१२। ६। २। ६॥

लौकिक कर्मकाण्ड में 'यदापः०' मन्त्र से स्नान करते हैं। 'द्रुपदा०' मन्त्र से वस्त्र बदलते हैं। 'उद्वयं०' से जल से बाहर आते हैं, 'अपो अधा०' मन्त्र से उपास्य अग्नि के पास आते हैं। 'एधोसि०' से समित् लेकर अग्नि की परिचर्या करते हैं ।

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।
समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । समु विश्वमिदं जगत् ।
वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥२३॥

समिद् अग्निर्वैश्वानरश्च देवताः । स्वराड् अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे प्रभो ! ( त्वम् ) तू ( एधः असि ) काष्ठ जिस प्रकार अग्नि में रख देने से उसको अधिक प्रदीप्त करता है उसी प्रकार तू तेज को बढ़ा देने वाला है। हम (एधिषी महि) सदा वृद्धि को प्राप्त हों। तू ( समित् असि ) काष्ठ के समान संग लगे अग्नि को प्रज्वलित कर देने और प्रकाशित करने वाला है, तू स्वयं ( तेजःअसि ) तेजः स्वरूप है।

( मयि ) मुझ में तू ( तेजः देहि ) तेज प्रदान कर । ( पृथिवी ) पृथिवी, यह लोक ( सम् आववर्ति ) अच्छी प्रकार रहे, सुखदायक हो । ( उषाः ) प्रातःकालीन उषा ( सम् ) अच्छी प्रकार सुखदायिनी हो, ( सूर्यः सम् उ ) सूर्य भी हमें सदा सुखदायी हो । ( इदं विश्वं जगत् ) यह समस्त जगत् ( सम् उ ) सदा हमें सुखकारी हो । और मैं ( वैश्वानर-ज्योतिः ) समस्त विश्व के हितकारक जाठर अग्नि, सामान्य अग्नि, विद्युत् और सूर्य को और परमेश्वर सब के ज्योतियों के समान ज्योति को धारण करने वाला, अथवा, सर्व हितकारी ज्योति के समान सर्वोपकारक ( भूयासम् ) होऊं । मैं ( विभून् ) बड़े २, विविध ( कामान् ) कामना योग्य ऐश्वर्यों को ( व्यश्नवै ) प्राप्त करूं । ( भूः स्वाहा ) समस्त संसार के उत्पादक, सत्ता-मात्र परमेश्वर को और पृथ्वी को उत्तम न्यायानुकूल धर्माचरण और सत्य ज्ञान द्वारा प्राप्त करूं । शत० १२ । ६ । २ । १० ॥

**अभ्या दधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि ।**
**व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽअहम् ॥ २४ ॥**

अश्वतराश्वि ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे ( व्रतपते अग्ने ) समस्त व्रतों और सत्य कर्मों के पालक अग्ने ! तेजस्विन् ! (त्वयि) जिस प्रकार अग्नि में काष्ठ या समिधा रखदी जाती है उसी प्रकार तुझमें ( समिधम् ) अच्छी प्रकार प्रदीप्त होजाने में समर्थ अपने आपको मैं तुझ में ( अभि आदधामि ) तेरे समक्ष शिष्यरूप से स्थापित करता हूं । और ( व्रतं च ) व्रत और ( श्रद्धां च ) सत्य धारणा, दृढ़ विश्वास बुद्धि को ( उप-एमि ) प्राप्त होता हूं । और ( अहम् ) मैं ( दीक्षितः ) दीक्षित होकर ( त्वा इन्धे ) तुझे भी प्रज्वलित करूं ।

गुरु शिष्य के समीप व्रत और श्रद्धा को प्राप्त करके उसकी दीक्षा प्राप्त करे और काष्ठ जिस प्रकार अग्नि में जलके अग्नि को भी प्रदीप्त

करता है उसी प्रकार शिष्य भी व्रत और विद्या से प्रदीप्त होकर गुरु के यश का कारण हो। इसी प्रकार वीरगण अपने नायक रूप अग्नि में अपने को काष्ठ के समान समर्पित करें और उसी के अधीन कर्म और सत्य विश्वासबुद्धि रख कर उसी की आज्ञा पालन करते हुए उसके तेज और पराक्रम की वृद्धि करें।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥ २५॥

अश्वतराश्विर्ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—( यत्र ) जहां ( ब्रह्म च क्षत्रं च ) ब्रह्म, ब्राह्मणगण और वेद ज्ञान, क्षात्रबल, शौर्य, वीर्य और क्षत्रियगण, दोनों ( सम्यञ्चौ ) अच्छी प्रकार से पुष्ट होकर ( सह ) एक साथ ( चरतः ) विचरण करें, विद्यमान हों ( तम् ) उस दर्शनीय ( लोकं ) जनसमाज को मैं ( पुण्यं ) पुण्य, निष्पाप, पवित्र, ( प्रज्ञेषं ) उत्कृष्ट जानता हूं, ( यत्र ) जहां ( देवाः ) विद्वान् गण और विजयशील सैनिकजन ( अग्निना ) तेजस्वी आचार्य एवं नायक सेनापति या राजा के साथ निवास करते हैं।

वह आत्मा अच्छा है जिसमें वेदज्ञान और बाहुबल दोनों पूर्ण हों जिसमें इन्द्रिय गण आत्मा के साथ सुख से रहें। वह समाज और देश उत्तम है जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय हृष्ट पुष्ट रहें और देव अर्थात् विद्वान् गण प्रजा-गण अपने नायक के साथ रहें। वह परब्रह्म आचार्य कुल भी उत्तम है जिसमें दीक्षित होकर ब्रह्म क्षत्र अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय सभा सदाचारी होकर धर्म का आचरण करें और देव अर्थात् विद्वान् शिष्यगण आचार्य के साथ रहें।

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते॥ २६॥

ऋष्यादि पूर्ववत्।

भा०—( यत्र ) जहां, जिस लोक में ( इन्द्रः च वायुः च ) इन्द्र और वायु ( सम्यञ्चौ ) पूर्ण बलवान् होकर ( सह चरतः ) एक साथ विचरण करते हैं मैं ( तं लोकं ) उस लोक, स्थान, प्रदेश, आत्मा और समाज को ( पुण्यं ) पवित्र ( प्रज्ञेषं ) जानता हूं। ( यत्र ) जहां ( सेदिः ) अन्नादि के न मिलने के कारण उत्पन्न विपत्ति, दुर्भिक्ष आदि क्लेश ( न विद्यते ) नहीं होता।

जिस मोक्ष में इन्द्र अर्थात् जीव और वायु अर्थात् व्यापक परमेश्वर दोनों साथ विचरते हैं, वह पुण्य लोक है। वहां भूख प्यास के कष्ट नहीं, या वहां जन्म मरण के कष्ट नहीं। वह देश जिसमें इन्द्र अर्थात् राजा, वायु अर्थात् सेनापति दोनों बलवान् होकर भी परस्पर ( सम्यञ्चौ ) सुसंगत होकर प्रेम से रहते हैं वह देश पुण्य है जहां ( सेदिः ) अन्नादि का अभाव और प्रजाजन का नाश नहीं होता है। वह शरीर पवित्र है जिसमें (इन्द्रः) आत्मा और ( वायुः ) प्राण सुसंगत होकर रहें, जहां ( सेदिः ) रोगादि क्लेश नहीं रहते।

अ॒ꣳशुना॑ ते अ॒ꣳशुः पृ॑च्यतां॒ परु॑षा॒ प॑रुः।
ग॒न्धस्ते॒ सोम॑मवतु॒ मदा॑य॒ रसो॒ऽअच्यु॑तः॥ २७॥

सूर्यो देवता। विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—( ते अंशुना ) तेरे व्यापक सामर्थ्य से ( अंशुः ) राष्ट्र का व्यापक सामर्थ्य और ( परुषा परुः ) पोरू से पोरू ( पृच्यताम् ) जुड़ा रहे। ( ते ) तेरा ( गन्धः ) गन्ध या शत्रुनाशक बल और ( अच्युतः ) कभी न्यून न होने वाला ( रसः ) रस, परम बल ( मदाय ) परम आनन्द और सुख प्राप्त करने के लिये ( सोमम् ) सोम, ऐश्वर्य और राष्ट्र के राज-पद को ( अवतु ) रक्षा करे।

अध्यात्म में—व्यापक परमेश्वर से तेरा आत्मा और पालन करने

वाले सामर्थ्य अर्थात् वीर्य से तेरा पोरू २ सदा युक्त रहे। तेरा गन्ध अर्थात् सद्भाव ( सोम ) परमेश्वर को प्राप्त हो। अच्युत, परब्रह्म रस ( ते मदाय ) तेरे परम आनन्द के लिये हो।

सि॒ञ्चन्ति॒ परि॑ षिञ्च॒न्त्युत्सि॑ञ्चन्ति पु॒नन्ति॑ च।
सु॒रायै॑ ब॒भ्र्वै॒ मदे॒ कि॒न्त्वो व॑दति॒ कि॒न्त्वः॥ २८॥

सोम इन्द्रो वा देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—दानशील राजा का वर्णन करते हैं। सभी प्रजाजन (सिञ्चन्ति) राजा को अभिषेक करते हैं, ( परि षिञ्चन्ति ) वे सब ओर से आये प्रजाजन उसको अभिषेक करते हैं, ( उत्सिञ्चन्ति ) उसको उत्तम पद पर अभिषिक्त करते हैं। और उसको ( सुरायै ) सुखपूर्वक देने योग्य, या उत्तम रमण करने योग्य, एवं ( बभ्र्वै ) सब के भरण पोषण करने वाली राज्य-लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये ( पुनन्ति ) पवित्र करते हैं, जिससे राजा राज-पद को प्राप्त करके पापमय व्यसनों में न फंसे, प्रत्युत, उत्तम धर्मात्मा बना रहे। वह भी (मदे) राज्यलक्ष्मी के प्राप्ति के परम सुख में तृप्त होकर सब को ( वदति ) कहता है ( किंत्वः किंत्वः ) हे प्रजाजन तुझे क्या चाहिये ? तुझे क्या चाहिये ? तुझे क्या कष्ट है, तुझे क्या दुःख है। वह राज्य-लक्ष्मी पाकर दरिद्रों को अन्न वस्त्र आदि जो आवश्यक हों दे। दुःखितों का कष्ट निवारण करे, दण्डितों के अपराध क्षमा करे।

राज्याभिषेक के समय सभी लोकों का राजा को स्नान कराना उसको राजपद के लिये पवित्र करने और अनाचार, अधर्म, पाप से मुक्त करने के लिये होता है।

धा॒नाव॑न्तं कर॒म्भिण॑मपू॒पव॑न्तमु॒क्थिन॑म्।
इन्द्र॑ प्रा॒तर्जु॑षस्व नः॥ २९॥

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री षड्जः॥

भा०—( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( नः ) हम में से ( धानावन्तं ) धारण पोषण करने वाली नाना गौओं या शक्तियों से युक्त, ( करम्भिणम् ) क्रियाशील, उद्यमी पुरुषों से सम्पन्न, ( अपूपवन्तम् ) इन्द्रियों के सामर्थ्य वाले और ( उक्थिनम् ) वेद शास्त्र के ज्ञान प्रवचन से युक्त प्रजाजन को ( प्रातः ) प्रातः सब से प्रथम ( जुषस्व ) प्राप्त कर ।

करोतेरम्बच । करम्बः । उणादि० । अपूपामिन्द्रियम् । श० ।

बृहदिन्द्रा॑य गायत॒ मरु॑तो वृत्र॒हन्त॑मम् ।
येन॒ ज्योति॒रज॑नयन्नृता॒वृधो॑ दे॒वं दे॒वाय॒ जागृ॑वि ॥ ३० ॥

नृमेध पुरुमेधावृषी । इन्द्रो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे ( मरुतः ) विद्वान् पुरुषो ! वायु के समान तीव्र, वेगवान् वीर पुरुषो ! हे शत्रुओं को मारने हारो ! आप लोग ( वृत्रहन्तमम् ) नगर को रोक लेने वाले शत्रु को मारने वालों में सब से श्रेष्ठ ( बृहत् ) महान् शक्तिमान् राष्ट्र के उस अधिकार का ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राजा को (गायत) उपदेश करो (येन) जिस द्वारा ( ऋतावृधः ) सत्य ज्ञान और न्याय व्यवहार की वृद्धि करने वाले ( देवाय ) देव, दानशील राजा की ( जागृवि ) सदा जागने वाले, सदा सावधान, ( देवं ) सर्व विजयकारी, ( ज्योतिः ) तेज को ( अजनयन् ) उत्पन्न करते हैं, प्रकट करते हैं ।

उपासना विषय में—अज्ञाननाशक ( इन्द्राय ) परमेश्वर के महान् सामर्थ्य का वर्णन करो, जिससे ( ऋतावृधः ) ज्ञानवृद्धि करने वाले लोग परमेश्वर के सदा चेतन, प्रकाशस्वरूप ज्योति को साक्षात् करें ।

अध्व॑र्यो॒ऽ अद्रि॑भिः सु॒तꣳसोमं॑ प॒वित्र॒ऽ आ न॑य ।
पु॒नी॒हीन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥ ३१ ॥

इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो! विद्वन्! यज्ञ के समान अहिंसित अखण्ड राज्य के संयोजक महामात्य पुरुष! तू (अद्रिभिः) अजेय शस्त्रधारियों से (सुतम्) अभिषिक्त हुए (सोमम्) राजा को (पवित्रे) पवित्र, पुण्य, राज सिंहासन पर (आ नय) प्राप्त करा, उसको बैठा। और (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त, परमैश्वर्यवान्, राष्ट्र के (पातवे) पालन करने के लिये (पुनीहि) उसको पवित्र कर। उसके, आत्मा, मन और इन्द्रियों को भी पवित्र कर। उसको उसके परम, उच्च कर्त्तव्यों का उपदेश कर।

**यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽ अधिश्रिताः। यऽईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥**

नारायणीयः कौण्डिन्य ऋषिः। आत्मा परमात्मा च देवते। पंक्तिः पञ्चमः।

भा०—राजा के कर्त्तव्यों का उपदेश। हे राजन्! (यः) जो परमेश्वर (भूतानाम्) समस्त चराचर प्राणियों का (अधिपतिः) सबसे बड़ा पालक, स्वामी है। (यस्मिन् लोकाः) जिसके भीतर, जिसके आश्रय पर समस्त लोक, समस्त ब्रह्माण्ड (अधिश्रिताः) आश्रित हैं, स्थान पा रहे हैं, (यः) जो (महान्) सबसे महान् होकर (महतः) बड़े २ आकाशादि महत् परिमाण के पदार्थों और महत् तत्व आदि प्रकृति के विकारों को भी (ईशे) अपने वश कर रहा है (तेन) उस परमेश्वर के परम ऐश्वर्य से (त्वाम्) तुझको (अहम्) मैं (गृह्णामि) राज्य पद के लिये स्वीकार करता हूं। (त्वाम्) तुझको (अहम्) मैं राज्य कार्य का मुख्य प्रवर्त्तक 'अध्वर्यु' (मयि) अपने ही उत्तरदातृत्व या सामर्थ्य पर (गृह्णामि) ग्रहण या स्वीकार करता हूं। अर्थात् जिस प्रकार परमात्मा समस्त भूतों का पति है वैसे तू भी राष्ट्र के समस्त प्राणियों का स्वामी बन, जैसे उसमें समस्त लोक स्थित हैं, वैसे तेरे आश्रय पर समस्त लोक जन हैं। जैसे वह

बड़े आकाशादि पर वश करता है वैसे तू बड़े २ राजाओं पर वश कर। उसी ऐश्वर्य से तुझे राज पद के लिये चुनता हूं।

उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे।
एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३३॥

भा०—इसकी व्याख्या देखो अ० १० । २२ ॥

प्राणपा मेऽअपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे।
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥ ३४ ॥

लिंगोक्ता देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे परमेश्वर! परमात्मन्! राजन्! हे विद्वन्! आचार्य! तू (मे) मुझ शिष्य जन और प्रजाजन के (प्राणपाः) प्राणों का पालक, (अपानपाः) अपानों का पालक, (श्रोत्रपाः) श्रोत्रों का पालक, (मे वाचः) मेरी वाणियों के (विश्वभेषजः) सब दोषों को दूर करने वाला और (मनसः) मनको (विलायकः) विविध मार्गों में लगाने हारा है। तू सदा पिता, गुरु, आत्मा के समान आदर करने योग्य है।

आश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य।
उपहूतऽ उपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

ग्रहाः लिंगोक्ता देवताः । निचृदुपरिष्टाद् बृहती । मध्यमः ।

भा०—मैं गौण, अधीनस्थ अधिकारी पुरुष को भी (उपहूतः) आदरपूर्वक निमन्त्रित हूं। हे राष्ट्रजन! मैं (आश्विन कृतस्य) प्रजा के स्त्री पुरुषों द्वारा कृत, निश्चित, (सरस्वतीकृतस्य) विद्वत्सभा द्वारा निश्चित और (सुत्राम्णा) उत्तम, सर्वोत्तम रक्षक राजा द्वारा (कृतस्य) नियत (ते) तेरे हितके लिये (उपहूतस्य) आदरपूर्वक प्राप्त अधिकार का मैं (भक्षयामि) उपभोग करूं।

समिद्धऽ इन्द्रऽउषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद् वावृधानः।

त्रिभिर्देवैस्त्रिᳬशता वज्रंबाहुर्जघान॑ वृत्रं वि दुरो॑ ववार॥ ३६ ॥

[ ३६—४७ ] इन्द्रो देवता: । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥ आंगिरस ऋषिः ।

भा०—( समिद्धः ) अति प्रदीप्त, अति तेजस्वी, ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् सूर्य जिस प्रकार ( उपसाम् अनीके ) उषाओं या प्रभात काल के मुख में ( पुरोरुचा ) अपने आगे चलने वाली अति दीप्ति से ( पूर्वकृत् ) पूर्व विद्यमान अन्धकार को नाश करता हुआ आगे बढ़ता है इसी प्रकार ( समिद्धः ) सूर्य के समान तेजस्वी, ( इन्द्रः ) शत्रुओं का नाशक इन्द्र, सेनापति ( उपसाम् ) शत्रु के गढ़ों को जलाने हारे, या शत्रु सेनाओं को अपने आग्नेयास्त्रों से जलाने वाले सैन्यों के, या (उपसाम) स्वयं दाहकारी आयुधों के ( अनीके ) सेना समूह के, अग्र भाग में ( पुरोरुचा ) आगे फैलने वाली दीप्ति से या दीप्तिमान् शक्ति से ( पूर्वकृत् ) पूर्व ही शत्रु पर आक्रमण करने हारा होकर, या पूर्ण बलवान्, शत्रु का नाशक होकर स्वयं ( वावृधानः ) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ ( वज्रबाहुः ) खड्ग को हाथ में लिये, बलवान्, दण्डधर राजा, ( त्रिभिः त्रिंशता देवैः ) तेंतीस देवों अर्थात् राष्ट्र के निमित्त विजय करने वाले कुशल पुरुषों के साथ मिलकर (वृत्रं जघान) आवरणकारी शत्रु का नाश करे। और ( दुरः ) शत्रु दुर्ग के द्वारों को ( वि ववार ) विविध रूप से खोलदे।

आत्मा के पक्ष में—( इन्द्रः समिद्धः ) इन्द्र, आत्मा योगद्वारा तेजस्वी होकर ( उपसाम् अनीके ) अज्ञानदाहक, ध्यान योग से प्रकट होने वाली ज्योतिष्मती प्रज्ञाओं के प्रारम्भ में स्वयं उग्र दीप्ति से अन्धकार को नाश करके ज्ञानवज्र से युक्त होकर आवरणकारी तम और बन्धनकारी देहबन्धन का नाश करे और द्वारों को खोलदे।

नराशᳬसः प्रति शूरो मिमा॑नस्तनूनपा॒त्प्रति॑ यज्ञस्य॒ धाम॑ ।

३६—ततः सौत्रामणिकं होतम् ॥ अतः प्रयाजैरन्द्रस्याभिषः ।

गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥३७॥

इन्द्रस्तनूनपाद् देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(नराशंसः) अपने आश्रित जनों से स्तुति के योग्य, (शूरः) शूरवीर, निर्भय, (प्रति मिमानः) राष्ट्र के प्रत्येक कार्य को स्वयं जानता और करता हुआ (तनूनपात्) अग्नि के समान, तेजस्वी, जाठर अग्नि जिस प्रकार शरीर को नहीं गिरने देता उसी प्रकार राष्ट्र का पतन न होने देने वाला और प्राण जिस प्रकार शरीर नष्ट नहीं होने देता उसी प्रकार राष्ट्र का रक्षक होकर विराजमान (यज्ञस्य) राज्यावस्था रूप यज्ञ या प्रजापति राजा को (धाम) धारण सामर्थ्य और प्रताप के। (प्रति) प्रतिस्पर्द्धा में बनाये रक्खे। वह (गोभिः) गवादि पशुओं से (वपावान्) अति लक्ष्मीवान् एवं (गोभिः वपावान्) भूमियों से कृषि-सम्पत्तिमान्, (गोभिः वपावान्) शास्त्र-वाणियों से विस्तृत बुद्धिमान् होकर (मधुना) स्वयं मधु, ज्ञान, अन्न और बल से (समञ्जन्) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ, (हिरण्यैः) सुवर्ण आदि रमणीय और हितकारी पदार्थों से (चन्द्री) प्रजा के आनन्दकारी, ऐश्वर्यवान् होकर (प्रचेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर (यजति) यज्ञ करता, दान देता, राष्ट्र को सुव्यवस्थित करता है।

ईडितो देवैर्हरिवाँ२॥ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्द्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरायातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥ ३८ ॥

इड इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (देवैः) देव, विजिगीषु वीर पुरुषों और विद्वानों द्वारा (ईडितः) स्तुति और आदर, प्राप्त (हरिवान्) उत्तम घोड़ों वाला, (अभिष्टिः) सब दिशाओं में आक्रमण करने और गमन करने में समर्थ, (आजुह्वानः) शत्रुओं द्वारा ललकारा गया, या विद्वानों द्वारा आदर से

बुलाया हुआ (हविषा) राष्ट्र से प्राप्त कर रूप ऐश्वर्य से (शर्धमानः) शत्रुओं का पराजय करता हुआ, ( पुरन्दरः ) शत्रु के गढ़ों को तोड़ने वाला, ( गोत्रभिद् ) शत्रुवंशों के उच्छेद करने वाला, ( वज्रबाहुः ) खड्ग आदि वीर्य को धारण करने वाला वह राजा ( नः ) हमारे ( यज्ञम् ) राष्ट्र के पालन कार्य, प्रजापति पद को ( जुषाणः ) प्रेम से स्वीकार करता हुआ हमें ( आ यातु ) प्राप्त हो।

जुषाणो ब॒र्हिर्हरि॑वान्न॒ऽइन्द्रः॑ प्रा॒चीन॑ꣳसीदत्प्र॒दिशा॑ पृथि॒व्याः।
उ॒रु॒प्रथाः॒ प्रथ॑मानꣳस्यो॒नमा॑दि॒त्यैर॒क्तं वसु॑भिः स॒जोषाः॑ ॥ ३६ ॥

बर्हिष्मान् इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( बर्हिः जुषाणः इन्द्रः ) अन्तरिक्ष में विराजमान सूर्य जिस प्रकार ( पृथिव्याः ) पृथिवी के ( प्राचीनं ) प्राचीन दिशा के प्रदेश में ( प्र-दिशा ) प्रबल तेज से विराजता है और ( हरिवान् ) किरणों से युक्त सूर्य जिस प्रकार (आदित्यैः) अपने किरणों से ( अक्तं ) प्रकाशित ( बर्हिः ) महान् ब्रह्माण्ड या अन्तरिक्ष में ( आ सीदत् ) विराज जाता है। ( हरिवान् ) तीव्र वेगवान् अश्वों और तीव्र मतिमान् विद्वान्, वीर पुरुषों का स्वामी, ( इन्द्रः ) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् राजा ( प्र-दिशा ) अपने उत्कृष्ट शासन के बल से ( पृथिव्याः ) पृथिवी ( बर्हिः ) महान्, बृहत् राष्ट्र या ऐश्वर्य को ( जुषाणः ) स्वीकार करता हुआ ( उरुप्रथाः ) अति विस्तृत शक्तिशाली होकर (आदित्यैः) सूर्य के किरणों के समान तेजस्वी, ( वसुभिः ) बसने वाले प्रजा के विद्वान् पुरुषों द्वारा अथवा ( आदित्यैः वसुभिः ) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों से ( सजोषाः ) सम्पन्न होकर ( अक्तं ) प्रकाशित, तेजोमय ( स्योनम् ) सुखकारी ( प्रथमानम् ) विख्यात एवं विस्तृत एवं ( प्राचीनं ) अति उत्कृष्ट राज्य को ( आसीदत् ) विराजे।

३६—'पृथिव्या०' इति काण्व०।

इन्द्रं दुर॑: कव॒ष्यो॒ धाव॑माना॒ वृषा॑णं यन्तु॒ जन॑यः सु॒पत्नी॑: ।
द्वारो॑ दे॒वीर॒भितो॒ वि श्र॑यन्ता᳖सु॒वीरा॑ वी॒रं प्रथ॑माना॒ महो॑भिः ॥४०॥
ऋ० २ । ३ । ५ ॥

द्वारवान् इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार ( कवष्यः ) उत्तम स्तुति करने वाली, (जनयः) पुत्रजनन में समर्थ (सुपत्नीः) उत्तम गृहपत्नियां, स्त्रियां (धावमानाः) रजोधर्म शुद्ध हुई ( वृषाणं ) वीर्य सेचन में समर्थ अपने पतियों के पास जाती हैं उसी प्रकार (कवष्यः) उत्तम, हर्ष ध्वनि करने वाली, (दुरः) अति वेगवती ( जनयः ) उत्तम रूप से सजाई गई, ( सुपत्न्यः ) उत्तम रीति से नगर की रक्षा करने वाली ( द्वारः ) द्वारों के समान शत्रुओं का वारण करने वाली (धावमानाः) बड़े उत्सुकता से समीप आती हुई सेनाएं ( वृषाणं ) बलवान् ( इन्द्रम् ) राजा या सेनापति को (यन्तु) प्राप्त हों और जिस प्रकार (सुवीराः) उत्तम पुत्रवती स्त्रियें (महोभिः) आनन्द उत्सवों से (वीरं प्रथमानाः) अपने वीर पति की प्रशंसा करती हुई विराजती हैं उसी प्रकार ( सुवीराः ) उत्तम वीर पुरुषों से सजी (देवीः) शोभा वाली, विजयशील (महोभिः) तेजों से ( वीरं ) वीर्यवान् राजा की (प्रथमानाः) शक्ति और यश को विस्तृत करती हुई ( द्वारः ) शत्रुओं का वारण करने वाली द्वारों के समान सुदृढ़ सेनाएं ( विश्रयन्ताम् ) विविध रूप से विविध देशों और दिशाओं में खड़ी हों ।

अथवा—जिस प्रकार पत्नियां पति के स्वागत के लिये ( दुरः यन्तु ) द्वार पर आजाती हैं उसी प्रकार ( जनयः ) प्रजाएं राजा के स्वागत के लिये ( दुरः यन्तु ) द्वार पर आवें । उसी प्रकार (सुवीराः देवीः द्वारः विश्रयन्ताम् ) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त उत्तम प्रजाएं द्वारों पर खड़ी हों ।

संस्कृत में 'द्वार' शब्द स्त्रीलिङ्ग होने से उनकी श्लिष्टोपमा स्त्रियों के साथ की गई है । फलतः ऐसे वीर राजा के स्वागत और नगर की रक्षा के लिये बहुत से द्वार तथा रक्षक कटक खड़े किये जायं ।

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥

ऋ० २ । ३ । ६ ॥

उषासानक्तौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार (उषासानक्ता) उषा अर्थात् प्रभातवेला, और नक्त-रात्रिवेला दोनों (इन्द्रम्) सूर्य को (पेशसा) उत्तम रुचिकारक तेज से (संवयन्ती) आवरण करती हुई (यजतः) संगत होती हैं उसी प्रकार (बृहती) बड़ी भारी दो सेनाएं या प्रजा और सेना की पंक्तियें (पयस्वती) पुष्टिकारक तेज पराक्रम और अन्न को धारण करने वाली, (सुदुघे) उत्तम शक्ति और ऐश्वर्य से राजा को पूर्ण करने वाली होकर (शूरम् इन्द्रम्) शूरवीर राजा को (तन्तुम्) पट के तन्तुओं के समान स्वयं (ततं) विस्तृत (पेशसा) ऐश्वर्य या उज्ज्वल रूप से (संवयन्ती) मानो बुनतीसी हुई उसके विस्तृत रूप को प्रकट करती हुई (सुरुक्मे) सुखप्रद ऐश्वर्य सहित होकर (देवानां) तेजस्वी और विजयी पुरुषों के बीच (देवम्) तेजस्वी विजिगीषु पुरुष को (यजतः) प्राप्त होती हैं ।

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होतारा॒विन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥ ४२ ॥

दैव्यौ होतारौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(दैव्यौ होतारौ) देवों, विद्वानों में उत्तम प्रतिष्ठा से विद्यमान, (होतारौ) यज्ञ के होताओं के समान राष्ट्र को अपने वश करने में समर्थ अधिकारी वायु और अग्नि, सेनापति और विद्वान् महामात्य दोनों (प्रथमा) सबसे मुख्य (सुवाचा) उत्तम वाणी वाले, (पुरुत्रा मनुषः) बहुतसे मनुष्यों को (मिमानौ) अपने वश करके राज्य का निर्माण करते हुए और (इन्द्रम्) शत्रुनाशक या ऐश्वर्यवान् राजा को (यज्ञस्य) सुव्यवस्थित

४२ — ०होतारा इन्द्रं० इति काण्व० ।

राज्य के या प्रजापति के पद के ( मूर्धन् ) मुख्य शिरोभाग पर ( मधुना ) अपने ज्ञान और बल से ( दधाना ) स्थापन करते हुए ( प्राचीनं ज्योतिः ) प्राची दिशामें उत्पन्न सूर्य के समान उदित होते हो तेजस्वी राजा को ( हविषा ) अन्न, बल, ज्ञान और कर द्वारा होता जिस प्रकार हविसे अग्नि को बढ़ाते हैं उसी प्रकार (वृधातः) बढ़ाते हैं, अधिक शक्तिशाली बनाते हैं।

तिस्रो देवीर्हविषा वर्द्धमाना॒ऽइन्द्रं॑ जुषा॒णा जन॑यो॒ न पत्नीः॑ ।
अच्छि॑न्नं॒ तन्तुं॒ पय॑सा॒ सर॑स्वती॒डा दे॒वी भार॑ती वि॒श्वतू॑र्त्तिः ॥४३॥

ऋ० २ । ३ । ८ ॥

इडासरस्वतीभारत्यस्तिस्रो देव्यो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( सरस्वती ) सरस्वती, विद्वत्-सभा या विद्वान् जन ! ( इडा ) इडा, धर्मसभा और ( देवी ) विजयशालिनी ( भारती ) धारण पोषण कर्त्री, प्रबन्धक सभा, ( विश्वतूर्त्तिः ) तीनों समस्त कार्यों को विना विलम्ब के अति शीघ्रता से करने में समर्थ, ( तिस्रः ) तीनों ( देवीः ) दिव्य गुण वाली, एवं विद्वान् सदस्यों से बनी सभाएं ( हविषा ) अन्नादि ऐश्वर्य, ज्ञान और बल से ( वर्धमानाः ) बढ़ती हुई ( जनयः पत्नीः नु ) पुत्रोत्पादन करने वाली पत्नियों के समान, ( इन्द्रं ) अपने ऐश्वर्यशील स्वामी, राजा या राज्य कार्य को ( जुषाणाः ) प्राप्त करके ( पयसा ) ऐश्वर्य, वीर्य, सामर्थ्य से ( अच्छिन्नं तन्तुम् ) अटूट सन्तान के समान विस्तृत राज्य-प्रबन्ध को ( वर्धयन्ति ) बढ़ावें ।

त्वष्टा॒ दध॒च्छुष्म॒मिन्द्रा॑य॒ वृष्णेऽपा॒कोऽचि॑ष्टुर्य॒शसे॑ पु॒रूणि॑ ।
वृषा॒ यज॒न्वृष॑णं॒ भूरि॑रेता मू॒र्द्धन्य॒ज्ञस्य॒ सम॑नक्तु दे॒वान् ॥ ४४ ॥

त्वष्टा रूपेवेन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

---

४३—०तिस्रा० इति काण्व० ।

भा०—( त्वष्टा ) राज्य के समस्त उत्तम कार्यों को सम्पादन करने में समर्थ तेजस्वी वीर क्षत्रिय ( वृष्णे ) शत्रुओं की शक्ति को बांधने वाले *(इन्द्राय) इन्द्र ऐश्वर्यवान्, राज पद या सेनापति पद के लिये (शुष्मम्) शत्रुओं* को सुख देने वाला बल वीर्य को ( दधत् ) धारण करे। और वह ( अपाकः ) जिससे अधिक और प्रशंसनीय, योग्यतम प्राप्त न हो ऐसा, सब से अधिक प्रशंसनीय और ( यशसे ) यश और कीर्ति के लिये ( अचिष्टुः ) समस्त देश भर में पूजनीय होकर ( पुरूणि ) बहुतसी प्रजाओं को ( दधत् ) धारण करे। वही ( वृषा ) जल सेचन में समर्थ मेघ और वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष के समान ( भूरिरेताः ) प्रचुर वीर्यवान्, शक्तिशाली होकर ( वृषणं ) मेघ के समान समस्त सुखों की धाराएं वर्षाने वाले राष्ट्र को या प्रभूत बल को ( यजत् ) प्राप्त करता हुआ ( यज्ञस्य ) प्रजा पालक राष्ट्र के ( मूर्धन् ) सर्वोच्च पद पर रह कर ( देवान् ) विजयशील, विद्वान् पदाधिकारियों को और राज-सभासदों को ( सम् अनक्तु ) एकत्र करे।

**वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या सम॒ञ्जञ्छमिता न देवः ।**
**इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥ ४५ ॥**

वनस्पतिरूप इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( वनस्पतिः ) वन में लगे वृक्षों के समान अगणित असंख्य प्रजाजनों और सेनाजनों का पालक अथवा वनस्पति, महा वृक्ष वट आदि के समान बहुतों को अपने नीचे शीतल छाया और आश्रय का देने वाला राजा स्वयं ( पाशैः ) सभी बंधनों से ( अवसृष्टः ) मुक्त सा होकर भी ( त्मन्या ) अपने ही तेजः सामर्थ्य से ( सम् अञ्जन् ) प्रकाशमान होता हुआ वह ( देवः ) सूर्य के समान तेजस्वी, अन्यों को प्रकाशप्रद होकर ( शमिता न ) सब को शान्तिदायक एवं दण्डकर्ता हो जाता है। वह ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के ( जठरं ) उदर के समान यहां कोश को ( हव्यैः )

ग्रहण करने योग्य अन्न और ऐश्वर्यमय बहुमूल्य रत्नों से ( पृणानः ) पूर्ण करता हुआ ( यज्ञं ) व्यवस्थित, सुसंगत राष्ट्र को ( मधुना घृतेन ) मधुर घी से भोजन के समान (मधुना) मधुर ( घृतेन ) तेज से (स्वदाति) स्वयं भोगता है।

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर ऽइन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा ऽअमृता मादयन्ताम् ॥४६॥

भा०—( स्तोकानाम् ) अल्प शक्ति वाले पुरुषों में से जो ( वृषभः ) महान् ( तुराषाट् ) हिंसक, दुष्ट पुरुषों को पराजित करने हारा, ( वृषायमाणः ) सब प्रजाओं पर मेघ के समान वर्षक और राष्ट्र पर आने वाले संकटों का प्रतिबन्धक होकर ( शूरः ) शूर वीर है, वह ( इन्द्रः ) इन्द्र पद के योग्य है। उस ( इन्द्रम् प्रति ) ऐश्वर्यवान्, दयार्द्र स्वभाव, राजा के ( प्रति ) प्रति ( घृतप्रुषा ) स्नेह और तेज को सेचन करने वाले ( मनसा ) मन या विज्ञान से ( मोदमानाः ) अति प्रसन्न होते हुए ( अमृताः देवाः ) जीवित, अधिकारी राज पुरुष ( स्वाहा ) उत्तम यश या अपने आत्मसमर्पक वचनों द्वारा ( मोदयन्ताम् ) हर्ष अनुभव करें और प्रजा को सुप्रसन्न, सुतृप्त करें।

आयात्विन्द्रोऽवस ऽउप न ऽइह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ ४७ ॥

ऋ० ४ । २१ । १ ॥

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( इन्द्रः ) शत्रुओं का विदारण करनेवाला, विजयी ( शूरः ) शूरवीर ( नः अवसे ) हमारी रक्षा करने के लिये ( इह ) इस राष्ट्र में ( उप आयातु ) प्राप्त हो। ( स्तुतः ) उत्तम गुणों से प्रशंसित वह

४७—( ४७–५२ ) षड् याज्यानुवाक्या ।

( सधमाद् अस्तु ) समस्त प्रजा और शासन के साथ सु-प्रसन्न होकर रहे। (यस्य) जिसके ( पूर्वीः ) पूर्ण सामर्थ्यवाले ( तविषीः ) बल के बड़े २ कार्य और शक्तियां विद्यमान हैं और जो स्वयं ( वावृधानः ) सदा वृद्धिशील है वह (अभिभूति) शत्रु के पराजय करने में अपने समर्थ ( क्षत्रम् ) क्षात्र बल, वीर्य को (द्यौः न) सूर्य के समान ( पुष्यात् ) तेजस्वी, प्रचण्ड और पुष्ट करे।

आ नऽइन्द्रो दूरादा नऽआसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥४८॥
ऋ० ४ । २० । १ ॥

इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( नः ) हमारा ( इन्द्रः ) शत्रुओं को फोड़देने में समर्थ ऐश्वर्यवान् राजा ( दूरात् ) दूर देश से और ( आसात् ) समीप से भी ( नः अवसे ) हमारी रक्षा के लिये ( उग्रः ) अति बलवान् होकर ( आ यासत् ) आवे। और वह ( ओजिष्ठेभिः ) अति पराक्रमी, वीर पुरुषों के ( सङ्गे ) संग में ( समत्सु ) संग्राम के अवसरों पर ( पृतन्यून् ) सेना द्वारा आक्रमण करने वाले शत्रुओं को ( तुर्वणिः ) विनाश करने में समर्थ ( वज्रबाहुः ) वीर्यवान् बाहुओं वाले शस्त्रास्त्र सम्पन्न ( नृपतिः ) नरों का पालक हो।

आ नऽइन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ ४९ ॥
ऋ० ४ । २० । २ ॥

इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( वज्री ) वीर्यवान्, शस्त्र बल से युक्त, (मघवा) ऐश्वर्यवान्, ( विरप्शी ) महान्, ( इन्द्रः ) इन्द्र, सेनापति, ( अर्वाचीनः ) अभिमुख दिशा में आगे की तरफ बढ़नेवाला, सदा उदयशील, होकर ( नः )

हमारे ( अवसे ) रक्षा के लिये और ( राधसे च ) हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये ( अच्छे ) भली प्रकार ( आयातु ) आगे बढ़े। वह ( वाजसातौ ) संग्राम में या वाज=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये ( इमं यज्ञम् ) इस यज्ञ अर्थात् प्रजापति के महान् कार्य को ( अनु तिष्ठाति ) करे।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥५०॥

ऋ० ४। ४७। ११॥

गर्ग ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—मैं ( इन्द्रम् ) शत्रुओं के विदारण करनेवाले और ( त्रातारम् ) कष्टों से बचाने वाले पुरुष को ( ह्वयामि ) बुलाता हूं। ( हवे हवे ) प्रत्येक संग्राम में मैं ( अवितारम् ) रक्षा करनेवाले ( इन्द्रम् ) परमैश्वर्यवान् पुरुष को बुलाता हूं। मैं ( सुहवं ) उत्तम संग्राम करनेवाले शूरवीर, ( इन्द्रम् ) इस राष्ट्र के धारणकर्त्ता 'इन्द्र', राजा को बुलाता हूं। मैं ( शक्रं ) शक्तिशाली, ( पुरुहूतम् ) बहुत प्रजाओं द्वारा स्वीकृत, ( इन्द्रम् ) अन्नादि के रक्षक पुरुष को ( ह्वयामि ) बुलाता हूं। वह ( मघवान् ) धनादि समृद्ध ( इन्द्रः ) पृथ्वी का पालक ( नः ) हमें ( स्वस्ति ) कल्याण और सुख ( धातु ) प्रदान करे।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ऽ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो ऽअभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥

ऋ० ४। ५७। १२॥

इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् भुरिक् पंक्तिर्वा पञ्चमो वा। धैवतः॥

भा०—( सुत्रामा ) राज्य के उत्तम साधनों से पालन करनेवाला, ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, ( स्ववान् ) अपने नाना सहायकों से युक्त ( विश्ववेदाः ) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करके ( अवोभिः ) अपने नाना

प्रकार के रक्षण साधनों से ( सुमृडीकः भवतु ) प्रजा को सुखकारी हो। वह ( द्वेषः ) शत्रुता करनेवालों को ( बाधताम् ) पीड़ित करे और दण्डित करे और राष्ट्र में ( अभयं कृणोतु ) समस्त प्रजा को परस्पर भय रहित करे। और हम प्रजाजन ( सुवीर्यस्य ) उत्तम सामर्थ्य और पराक्रम के ( पतयः ) स्वामी ( स्याम ) होकर रहें।

**तस्य॑ व॒यꣳ सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म। स सु॒त्रा-मा॒ स्ववाँ॒२ऽ इन्द्रो॑ऽअ॒स्मेऽआ॒राच्चि॒द्द्वेषः॑ सनु॒तर्यु॑योतु ॥ ५२ ॥**

ऋ० ४। ४७। १२॥

इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( वयम् अपि ) हम भी ( तस्य ) उस ( यज्ञियस्य ) प्रजापति पद के योग्य, राज्य व्यवस्थापन में कुशल पुरुष के ( सुमतौ ) शुभ उत्तम ज्ञान और ( भद्रे ) सुखकारी ( सौमनसे ) उत्तम चित्त के व्यवहार में, उसकी प्रसन्नता में ( स्याम ) रहें। ( सः ) वह ( सुत्रामा ) उत्तम रक्षक ( स्ववान् ) उत्तम धनैश्वर्य और सहायकों से युक्त, ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति ( सनुतः ) सदा ( द्वेषः ) द्वेष करनेवाले पुरुषों को ( अस्मे ) हम से ( आरात् चित् ) दूर ही ( युयोतु ) करे।

**आ म॒न्द्रैरि॑न्द्र॒ हरि॑भिर्या॒हि म॒यूर॑रोमभिः। मा त्वा॒ के चि॒न्नि य॑म॒न्विं॒ न पा॒शिनोऽति॒ धन्वे॑व॒ ताँ२ऽ इ॑हि ॥ ५३ ॥** ऋ० ३। ४५। १ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! राजन् ! तू ( मयूररोमभिः ) मोर के पंखों के समान नील वर्ण के लोमों वाले ( मन्द्रैः ) अति उत्तम ( हरिभिः ) अश्वों सहित, अथवा ( मयूररोमभिः ) मोर के पंखों से सजे ( हरिभिः ) शत्रुसंहारक सेनानायकों सहित ( आयाहि ) तू प्राप्त हो। ( पाशिनः विं न ) फांसा फेंकनेवाले शिकारी लोग जिस प्रकार पक्षी के फांस लेते हैं

उसी प्रकार ( त्वा ) तुझ को ( के चित् ) कोई भी ( मा नियमन् ) न बांध लें। तू ( तान् ) उन दुष्ट वन्धकों को भी ( अतिधन्वा इव ) बड़े धनुर्धर के समान ( अति ) वीरता पूर्वक अतिक्रमण करके, पार करके ( आ इहि ) हमें प्राप्त हो।

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५४॥

ऋ० ७।२३।६॥

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( वृषणम् ) बड़े बलवान्, ( वज्रबाहुम् ) वीर्यवान् और शस्त्रों से सुसज्जित बाहु वाले ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् राजा की ( एव इत् ) ही ( वसिष्ठासः ) बड़े २ धनाढ्य राष्ट्रवासी पुरुष ( अर्कैः ) उत्तम आदर सत्कारों से ( अभि अर्चन्ति ) सब प्रकार से पूजा सत्कार करें। ( सः ) वह ( स्तुतः ) कीर्तिमान् पुरुष, ( नः ) हमारे ( वीरवद् ) वीरों से युक्त और ( गोमत् ) गौ, अश्व आदि पशुओं से समृद्ध राष्ट्र की ( धातु ) रक्षा करे। हे वीर पुरुषो ! ( यूयम् ) आप लोग ( नः ) हमें ( सदा ) सदा काल, ( स्वस्तिभिः ) सुखकारी उपायों से ( पात ) पालन करो।

समिद्धोऽअग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥

विदर्भिर्ऋषिः। अश्विनौ सरस्वती इन्द्रश्च देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे ( अश्विनौ ) प्रजा के स्त्री पुरुषो ! ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी राजा ( सम् इद्धः ) अपने तेज से अति प्रदीप्त ( तप्तः ) पराक्रम से शत्रु प्रतापी, ( घर्मः ) आदित्य के समान ( विराट् ) विविध

५५—अतो द्वादशऽध्यायाप्रायः।

ऐश्वर्यों से युक्त होकर ( सुतः ) अभिषिक्त है। ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञान से युक्त वेदवाणी के समान विदुषी, विद्वत्सभा ( धेनुः ) गाय के समान समस्त सार पदार्थों को प्रदान करने वाली ( इह ) इस राष्ट्र में ( शुक्रम् ) शुद्ध, कान्तिमान्, ( इन्द्रियम् ) इन्द्र राजा के पद के योग्य ( सोमम् ) समस्त राज्यैश्वर्य या राज्य को ( दुहे ) दोहन करती, पूर्ण करती है। उसको पूर्ण बलवान् करती है।

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती।
मध्वा रजांसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

भा०—( तनूपा ) शरीर की रक्षा करने वाले, ( भिषजा ) सर्व रोग निवारक वैद्यों के समान राष्ट्र के विस्तृत शरीर के रक्षक, दुष्ट पुरुषों के चिकित्सक, (उभे अश्विना ) दोनों अश्व युक्त, सेना के पति, राजा, मन्त्री या सब स्त्री और पुरुष गण और (सरस्वती) वेद वाणी के समान ज्ञान से पूर्ण विद्वत्सभा ये सब (मध्वा) मधुर अन्न, ज्ञान और बल से ( रजांसि ) समस्त लोक और ( इन्द्रियम् ) राजोचित ऐश्वर्य का, ( पथिभिः ) नाना सत्-उपायों और मार्गों से ( इन्द्राय ) परम ऐश्वर्यवान् राजा के लिये ( वहान् ) प्राप्त करावें, एकत्र करें।

इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम्।
अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥ ५७ ॥

भा०—( सरस्वती ) उत्तम ज्ञानसम्पन्न विद्वत् सभा, ( इन्द्राय ) दुःखों के नाश करने वाले परम ऐश्वर्य युक्त राजपद के लिये ( नराशंसेन ) समस्त उत्तम पुरुषों द्वारा गुण स्तवन के सहित ( नग्नहुम् ) दरिद्रों के पालक, प्रजा के सुखदायक ( इन्दुम् ) दयालु, आर्द्रस्वभाव, ऐश्वर्यवान् आल्हादक पुरुष को ( अधात् ) राज्य पद पर स्थापित करे। और ( भिषजा अश्विना ) रोग निवारक वैद्यों के समान विवेकी विद्वान् स्त्री पुरुष

( सुते ) अभिषिक्त राजा के निमित्त या राष्ट्र में ( भेषजम् ) रोग निवारक ओषधि के समान ( मधु ) मधुर अन्न और सेना बल को ( अधाताम् ) धारण करें, स्थापित करें। सेना पोलीस आदि भी शरीर में रोग शमन, कारी ओषधि के समान उपद्रवकारी पुरुषों को शान्ति के लिये और अन्नादि पदार्थ भूख शान्ति के लिये हों। वह व्यर्थ प्रजा के पीड़त करने और अन्नादि पदार्थ व्यसनों में फंसने या दुरुपयोग के लिये न हों।

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम्।
इडाभिर्श्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳ रयिं दधुः॥ ५८॥

भा०—( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राजा के लिये ( इन्द्रियाणि ) इन्द्रियों के सामर्थ्यों और इन्द्रोचित ऐश्वर्यों का और ( वीर्यम् ) परम शक्ति, अधिकार ( आजुह्वाना ) प्रदान करती हुई ( सरस्वती ) प्रशस्त ज्ञानवती विदुषी स्त्री के समान विद्वत्सभा और ( अश्विनौ ) ओषधियों से ही अन्न और बल को उत्पन्न करा देने वाले वैद्यों के समान ( अश्विनौ ) नाना विद्याओं में विख्यात स्त्री और पुरुष, या उच्च दो अधिकारी ( इडाभिः ) नाना प्रकार के अन्नों से ( इषं ) इच्छानुसारी ( ऊर्जम् ) बल पराक्रम को और ( रयिम् ) ऐश्वर्य को भी ( सं सं दधुः ) प्रदान करें।

अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता।
सरस्वती तमाभरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे॥ ५९॥

भा०—( अश्विनौ ) नाना विद्याओं में कुशल राष्ट्र के स्त्री पुरुष अथवा वसन्त और ग्रीष्म के समान सौम्य और प्रचण्ड अधिकारी, सन्धि और विग्रह के कर्ता अधिकारीगण, ( नमुचेः ) न छोड़ने योग्य शत्रु से ही प्राप्त करके ( परिस्रुता ) अभिषेक क्रिया द्वारा ( सुतं ) अभिषिक्त ( शुक्रं ) शुद्ध किये गये ( सोमम् ) राज्य को प्राप्त करते हैं। ( सरस्वती ) विद्वत्सभा भी ( तम् ) उसको (बर्हिषे) बड़े भारी सामर्थ्य से या प्रजारूप से

( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् शासक के ( पातवे ) भोग के लिये ( आभरत् ) प्रस्तुत करती है ।

१ 'अश्विनौ'—अथ यदेनं ( अग्निम् ) द्वाभ्याम् बाहुभ्यां द्वाभ्याम् अरणीभ्यां मन्थन्ति द्वौ वा अश्विनौ तदस्याश्विनं रूपम् ॥ ऐ० ३ । ४ ॥ मुख्यौ वा अश्विनौ यज्ञस्य । श० ४ । १ । ५ । १७ ॥ वसन्तग्रीष्मावेवाश्विनाभ्यामवरुन्धे । श० १२ । २ । २ । ३४ ॥

गृहस्थपक्षमें—स्त्री पुरुष, ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी, या गुरु और शिष्य (नमुचेः) अत्याज्य, अखण्ड ब्रह्मचर्यकाल से प्राप्त जिस ( सोमं ) वीर्य को सम्पादित करते हैं उसको (सरस्वती) उत्तम स्त्री, (बर्हिषा) सन्तति रूप से ( इन्द्राय पातवे) अपने सौभाग्य के भोग के लिये अपने भीतर ( आभरत्) धारण करती है । अर्थात् वीर्याधान द्वारा पुरुष को भोग और सन्तति लाभ, दोनों प्राप्त हों ।

कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः ।
इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥ ६० ॥

भा०—( इन्द्रः ) सूर्य जिस प्रकार ( अश्विभ्याम् ) दिन और रात्रि द्वारा या वायु सूर्य और चन्द्र द्वारा ( व्यचस्वतीः ) विस्तृत रूप से व्यापक ( दिशः ) दिशाओं को पूर्ण करता है, उनमें व्यापता है, उसी प्रकार ( इन्द्रः ) शत्रुओं का नाशक, एवं ऐश्वर्यवान् राजा ( अश्विभ्याम् ) नाना भोग समृद्धि के भोक्ता स्त्री पुरुषों द्वारा, या व्यापक अधिकार वाले मुख्य अधिकारियों द्वारा ( कवष्यः ) नाना स्तुति समान शत्रुवारण करने वाली वीर प्रजाओं और सेनाओं को वचनों और वाद्य ध्वनियों से गूंजती हुई (दुरः) नगर की द्वारों या शत्रुवारक सेनाओं को ( दुहे ) पूर्ण करता है । द्वारों को शोभा और उत्सवों से और सेनाओं को युद्ध साधनों से युक्त करता है । इसी प्रकार ( इन्द्रः ) सूर्य जिस प्रकार ( सरस्वती१ ) अपनी तीव्र

व्यापक शक्ति से ( उभे रोदसी ) दोनों आकाश और पृथ्वी को ( दुहे ) पूर्ण करता है और उनसे दोनों के रसों का दोहन करता है इसी प्रकार ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा द्वारा ( उभे ) दोनों राजा और प्रजागण तथा स्त्री और पुरुषों के वर्गों को ( दुहे ) पूर्ण करता और उनसे सारवान् रत्न आदि ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

उ॒षासा॒नक्त॑म॒श्विना॒ दिवेन्द्र॑ᳫं॑ सा॒यमि॑न्द्रि॒यैः ।
सं॒जा॒ना॒ने सु॒पेश॑सा॒ सम॑ञ्जाते॒ सर॑स्वत्या ॥ ६१ ॥

भा०—अश्वि नामक राष्ट्र के दो मुख्य कार्यकर्त्ताओं के कर्त्तव्य—( अश्विना ) दोनों अश्विगण, ( उषासा नक्तम् ) उषा दिन और रात्रि काल के समान हैं। उषा अर्थात् दिन जिस प्रकार अपने तेज से पदार्थों को तपाता है उसी प्रकार राजा के वह मुख्य अधिकारी हैं जो दुष्ट पुरुषों को तपावें। दूसरा रात्रि जिस प्रकार शीतल स्वभाव है उसी प्रकार दुःखितों को सान्त्वना देने वाला दूसरा अध्यक्ष है। वे दोनों अधिकारी राष्ट्र के कार्यों में व्यापक होने से 'अश्वि' हैं। उनमें से एक प्रजा के हितकारी नियमों का प्रकाशन करता है दूसरा उसको न पालन करने वालों को दण्ड देता है। वे दोनों ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र को या राष्ट्र के राजा को ( इन्द्रियैः ) इन्द्र पद के योग्य अधिकारों और बलों से ( समञ्जाते ) युक्त करते हैं। और स्वयं ( संजानाने ) परस्पर सहमति करके तत्पश्चात् ( सरस्वत्या ) उत्तम ज्ञानसम्पन्न विद्वत्सभा द्वारा राजा को ( सुपेशसा ) उत्तम ऐश्वर्य या रूप से ( सम्-अञ्जाते ) सम्पन्न करते और अच्छी प्रकार प्रकट करते हैं।

पा॒तं नो॑ अश्विना॒ दिवा॑ पा॒हि नक्त॑ᳫं॑ सरस्वति ।
दैव्या॑ होतारा भिषजा पा॒तमिन्द्र॑ᳫं॑ सचा॑ सु॒ते ॥ ६२ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) सूर्य चन्द्र और दिन रात्रि के समान, प्रताप और शान्ति से युक्त मुख्य दो अधिकारी जनो ! आप दोनों ( नः ) हमारी ( दिवा ) दिन के समय रक्षा करो और हे ( सरस्वति ) सरस्वति !

विद्वत्सभे ! तू हमें ( नक्तम् ) जिस काल में कोई सत्य पदार्थ स्पष्टरूप में प्रकट न हों वहां ज्ञान द्वारा उत्तम रीति से दर्शा कर ( पाहि ) अनर्थ से बचा। ( दैव्या होतारा ) दिव्यगुण सम्पन्न, सब प्रकार के सुख देनेवाले ( भिषजा ) शरीर के रोगों की चिकित्सा करनेवाले वैद्यों के समान राष्ट्र शरीर के दोषों को दूर करने वाले आप दोनों ( सुते ) उत्तम रीति से व्यवस्थित राष्ट्र में ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् राजा की ( सचा ) एक साथ मिलकर ( पातम् ) रक्षा करे।

अध्यात्म में—प्राणापानौ वै दैव्यौ होतारौ। ए० २। ४॥ वाक् सरस्वती। इन्द्र आत्मा।

**ति॒स्रस्त्रे॒धा सर॑स्वत्य॒श्विना॒ भार॑तीडा॑।**
**ती॒व्रं परि॒स्रुता॒ सोम॒मिन्द्रा॑य सुषुवु॒र्मद॑म्॥ ६३॥**

भा०—( सरस्वती ) सरस्वती, ( भारती ) भारती ( इडा ) इडा ये ( तिस्रः ) तीनों और ( अश्विनौ ) दोनों, सद्-वैद्यों के समान उक्त अधिकारी ( परिस्रुता ) अभिषेक द्वारा ( इन्द्राय ) इन्द्र, राजा के लिये ( तीव्रं ) तीव्र ( मदम् ) आनन्द और हर्ष जनक ( सोमम् ) राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को ( सुषुवुः ) उत्पन्न करते हैं। अथवा—( इन्द्राय ) ऐश्वर्यमय राष्ट्र के लिये ( मदम् ) हर्षजनक ( तीव्रम् ) तीव्र, तीक्ष्ण स्वभाव के राजा को उत्पन्न करते हैं।

**अ॒श्विना॑ भेष॒जं मधु॑ भेष॒जं नः॒ सर॑स्वती।**
**इन्द्रे॒ त्वष्टा॒ यशः॒ श्रिय॑ꣳ रू॒पꣳ रू॒पम॑धुः सु॒ते॥ ६४॥**

भा०—( अश्विनौ ) पूर्वोक्त दोनों अश्वि नाम अधिकारियों ने ( मधु ) मधुर ( भेषजम् ) समस्त रोगों और दोषों को शान्त करने वाला उपाय, अन्न, बल और ज्ञान ( सुते इन्द्रे ) अभिषिक्त राष्ट्र और राष्ट्रपति में स्थापित किया

६०—१. तृतीयाविभक्तेर्लुक्।

और ( सरस्वती ) विदुषी माता के समान विद्वत्सभा भी ( सुते इन्द्रे ) अभिषिक्त इन्द्र राजा में ( भेषजम् ) सर्व रोगों और उपद्रवों को शान्त करने वाले ( यशः ) यश या वीर्य बल और अधिकार प्रदान करती है। ( त्वष्टा ) शिल्पी, समस्त पदार्थों को घड़ कर बनाने वाला विश्वकर्मा जिस प्रकार ( इन्द्रे ) विद्युत् के बल पर ( श्रियम् ) नाना शोभाजनक, बहुमूल्य सम्पत्ति और ( रूपम् रूपम् ) नाना सुन्दर २ पदार्थ, ( अधुः ) स्थापित करता है उसी प्रकार विश्वकर्मा लोग राजा के आधार पर नाना राष्ट्र के कार्य करें।

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता।
कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥ ६५ ॥

भा०—( वनस्पतिः ) वृक्ष जिस प्रकार ( शशमानः ) वृद्धि को प्राप्त होकर ( ऋतुथा ) ऋतु के अनुसार ( परिस्रुता ) जलादि सेचन करने से ( मधु कीलालं दुहे ) मधुर अन्न फल प्रदान करता है उसी प्रकार वनस्पति स्वभाव का ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा भी ( शशमानः ) उत्तम रीति से वृद्धि को प्राप्त होकर ( परिस्रुता ) अभिषेक द्वारा ( ऋतुथा ) अपने बल वीर्य के अनुसार ( मधु ) मधुर बलकारी ( कीलालम् ) अन्न और अन्न के समान नाना भोग्य पदार्थों को ( दुहे ) उत्पन्न करता है। अथवा—( मधु ) शत्रु को कंपन करने वाला ( कीलालम् ) बल उत्पन्न करता है। ( धेनुः ) दुधार गाय के समान ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा भी ( अश्विभ्याम् ) दो प्रधान विद्वान् मन्त्रि और सभापति के साहाय्य से, ( मधु कीलालम् ) मधुर दुग्ध के समान मनन करने और धारण करने योग्य ज्ञान को, अथवा—( मधु ) आनन्दजनक सुखकारी, ( कीलालम् ) राज्य के प्रबन्ध को ( दुहे ) उत्पन्न करती है।

कीलालम्—कीलालममृतं पयः इति अमरः। कल गतौ चौरादिः। कील बन्धने खण्डने च भ्वादिः। कलयति कल्पते वा तत् ज्ञानं कीलालम्।

कीलयति बध्नाति, खण्डयति घ्यते खण्ड्यते वा तत् कीलालम् प्रबन्धः, शत्रुच्छेदकं बलं, अन्नं वा।

गोभिर्न सोमंमश्विना मासरेण परिस्रुता।
समधातुᳬ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥ ६६ ॥

भा०—हे ( अश्विनौ ) अश्विगणो ! दो मुख्य अधिकारीजनो ! आप लोग ( सरस्वत्या ) सरस्वती नामक विद्वत्समिति के साथ मिलकर ( गोभिः ) पशुओं से और ( परिस्रुता ) अभिषेक द्वारा प्राप्त सब दिशाओं की प्राप्त लक्ष्मी और ( मासरेण ) प्रति मास देने योग्य वेतन के नियम से ( स्वाहा ) उत्तम राज्य की नीति से ( इन्द्रे ) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में ( मधु सुतम् ) मधुर, सर्वप्रिय अभिषिक्त पुरुष को ( सम् अधातम् ) स्थापित करो। अथवा—( इन्द्रे ) ऐश्वर्यवान् पुरुष में ( मधु ) मधुर, आनन्द-जनक ( सुतं ) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को ( सम् अधातम् ) अच्छी प्रकार स्थापन करो।

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती।
आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६७ ॥

[ ६७—६९ ] अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। गायत्री। षड्जः॥

भा०—( अश्विना ) पूर्वोक्त दो अधिकारी जन और ( सरस्वती ) विद्वत्सभा ( धिया ) बुद्धिपूर्वक और राष्ट्र के धारण करनेवाली शक्ति से ( नमुचेः ) कभी न छोड़ने योग्य, सदा बंध कर देने योग्य शत्रु से अथवा शत्रु के हाथ कभी न देने योग्य राष्ट्र से ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक राजा के लिये ( हविः ) अन्न समृद्धि या स्वीकार करने योग्य ( इन्द्रियं ) ऐश्वर्य या इन्द्रपद और ( शुक्रम् ) शुद्ध तेजोमय ( वसु ) प्रजा को बसानेवाला राष्ट्र और ( मघम् ) ऐश्वर्य सम्पत्ति इन पदार्थों को ( आ जभ्रिरे ) प्राप्त कराते हैं।

यम॒श्विना॒ सर॑स्वती ह॒विषेन्द्र॒मव॑र्द्धयन् ।
स बि॑भेद ब॒लं म॒घं नमु॑चावासु॒रे सचा॑ ॥ ६८ ॥

भा०—( अश्विना, सरस्वती ) दोनों प्रकार के वैद्य और विदुषी माता जिस प्रकार पुत्र को ( हविषा ) अन्न से ( अवर्धयन् ) पुष्ट करते हैं ( आसुरे नमुचौ ) प्राणों में रमण करनेवाले आत्मा के निमित्त ( मघं बलं विभेद ) अति उत्तम बल प्राप्त करता है उसी प्रकार ( अश्विनौ सरस्वती ) उत्तम पदों को प्राप्त होकर अश्विजन और विद्वत्सभा तीनों मिलकर ( हविषा ) अन्नादि समृद्धि और उत्तम उपाय से ( यम् इन्द्रम् ) जिस शत्रु नाश करनेवाले पुरुष को ( अवर्धयन् ) बढ़ाते हैं ( सः ) वह ही ( आसुरे नमुचौ ) असुर स्वभाव के नमुचि अर्थात् उपेक्षा न करने योग्य, शत्रु के पास ( सचा ) विद्यमान ( मघम् ) ऐश्वर्य को ( बिभेद ) उससे छीन लेता है और ( बलम् ) उसके बल, सेना-बल और यन्त्र-बल को ( बिभेद ) तोड़ डालता है ।

तमिन्द्रं॑ प॒शव॒: सचा॒श्विनो॒भा सर॑स्वती ।
दधा॑ना॒ऽअ॒भ्यनूषत ह॒विषा॑ य॒ज्ञऽइ॑न्द्रि॒यैः ॥ ६६ ॥

भा०—( पशवः ) नाना पशु सम्पत्तियें, अथवा बहुतसे दूरदर्शी पुरुष ( सचा उभा अश्विना ) परस्पर संयुक्त दोनों मुख्य पदाधिकारी और ( सरस्वती ) सरस्वती नामक विद्वत्-सभा ( तम् इन्द्रम् ) उस ऐश्वर्य-वान्, शत्रुनाशक, राष्ट्र और राष्ट्रपति को ( दधानाः ) धारण करते हुए ( यज्ञैः ) प्रजापालनरूप यज्ञ में ( हविषा ) अन्नादि सामग्री और ( इन्द्रियैः ) ऐश्वर्यों और राजकीय बलों से ( अभि अनूषत ) सब प्रकार से बढ़ाते और उसकी प्रशंसा और कीर्ति उत्पन्न करते हैं ।

य॒ऽइन्द्र॒ऽइ॑न्द्रि॒यं द॒धुः स॑वि॒ता वरु॑णो॒ भग॑: ।

६८—'०मुचा आसु०' इति काण्व० ॥

स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥ ७० ॥

[ ७०—७२ ] इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( सविता ) उत्पादक या अभिषेककर्त्ता, ( वरुणः ) राजा का वरण करनेवाला, ( भगः ) राजा का सेवक अथवा ( सविता ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष सबका आज्ञापक, ( वरुणः ) राष्ट्र के विपत्तियों का निवारक सेनापति और ( भगः ) ऐश्वर्यवान्, कोषाध्यक्ष ये तीनों मिलकर ( इन्द्रे ) ऐश्वर्यवान् शत्रुविजयी–इन्द्र पद के योग्य पुरुष में ( इन्द्रियम् ) इन्द्रपद के योग्य ऐश्वर्य और बल को ( दधुः ) स्थापन करते हैं । ( सः ) वह ( सुत्रामा ) राष्ट्र का उत्तम रीति से रक्षा करनेहारा ( हविष्पतिः ) समस्त ग्राह्य पदार्थों का स्वामी होकर ( यजमानाय ) दानशील, करप्रद अधीन माण्डलिक और अपने साथ आ मिलनेवाले अथवा पूजनीय प्रजाजन के लाभ के लिये उस राजपद को ( सश्चतु ) प्राप्त करें ।

सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे ।
आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥

भा०—( सविता ) सबका प्रेरक और ( वरुणः ) दुष्टों का निवारक श्रेष्ठ पुरुष, ( दाशुषे ) करप्रद ( यजमानाय ) अपने से मिले हुए मित्र राजा को ( सुत्रामा ) उत्तम त्राणकर्त्ता होकर ( नमुचेः ) अत्याज्य शत्रु के ( बलम् इन्द्रियम् ) बल, ऐश्वर्य और ( वसु ) धन को स्वयं ( आदत्त ) ले ले ।

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् ।
सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ ७२ ॥

भा०—( वरुणः ) शत्रुओं का निवारक, ( इन्द्रियं ) इन्द्र, राजा के योग्य ( क्षत्रं ) क्षात्रबल को ( सविता ) सर्वाज्ञापक अथवा ऐश्वर्य का

उत्पन्न करनेवाला, स्वयं ( भगेन ) कोप के ऐश्वर्य के साथ मिलकर ( श्रियम् ) राज्यलक्ष्मी को और ( सुत्रामा ) उक्त रीति से राष्ट्र की रक्षा करनेहारा राजा स्वयं ( यशसा ) अपने यश से, वीर्य से ( बलं ) सेनाबल को ( दधानाः ) धारण करते हुए ( यज्ञम् ) यज्ञ सुव्यवस्थित राष्ट्र को ( आशत ) छाये रहें, वश किये रहें, या भोग करें।

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम्।
हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥ ७३ ॥

[ ७३–७५ ] अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—( अश्विनौ ) राज्य के दो मुख्य पदाधिकारी, ( गोभिः ) दुग्धों से जिस प्रकार शरीर में इन्द्रिय सामर्थ्य बढ़ता है और ( अश्वेभिः ) व्यापक प्राणों से वीर्य और बल बढ़ता है उसी प्रकार ( अश्विनौ ) राज्य के दोनों मुख्य पदाधिकारी क्रम से ( गोभिः ) गौ आदि पालतू पशुओं से ( इन्द्रियम् ) राजा के ऐश्वर्य को बढ़ावें। और ( अश्वेभिः ) घोड़ों से या घुड़सवारों से ( वीर्यम् ) शरीर में वीर्य के समान राष्ट्र में तेज और वीरकर्म से युक्त ( बलम् ) सेना के बल की वृद्धि करें। और ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा ( यजमानम् ) सबके स्नेही, राज्य के व्यवस्थापक, सर्वाश्रयप्रद ( इन्द्रम् ) इन्द्र, राजा को ( हविषा ) आदान योग्य करके ( अवर्धयन् ) वृद्धि करें।

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा।
सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥

भा०—( ता ) वे दोनों ( नासत्या ) सदा सत्य धर्म में वर्त्तमान, ( सुपेशसा ) उत्तम रूप वाले, ( हिरण्यवर्त्तनी ) सुवर्ण आदि धातुओं के व्यापार वृत्ति करने वाले, अथवा हितकारी मनोरम मार्ग से जाने वाले ( नरा ) नेता और ( सरस्वती ) विद्वत्-सभा ( हविष्मती ) प्रदान करने

योग्य ज्ञान और श्रवण करने योग्य उपायों से सम्पन्न होकर हे ( इन्द्र ) राजन् ! ( नः ) हमारे ( कर्मसु ) समस्त कार्यों में ( अवत ) रक्षा करो ॥

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती ।
स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥

भा०—( ता ) वे दोनों ( सुकर्मणा ) उत्तम राष्ट्र के कर्म करने वाले ( भिषजा ) उत्तम वैद्य के समान राष्ट्र के दोषों को दूर करने हारे हैं। ( सा ) वह ( सरस्वती ) ज्ञानवती विद्वत् सभा ( सुदुघा ) उत्तम दुग्ध देने वाली गौ के समान ज्ञानरस को दोहन करती है। और ( शतक्रतुः ) सैकड़ों कर्म करने वाले ( वृत्रहा ) शत्रुओं को मारने वाले, ( इन्द्राय ) इन्द्र पद, राज्य के लिये ( ऐश्वर्यम् दधुः ) ऐश्वर्य को धारण करें ।

युवꣳ सुराममश्विना नमुचा वासुरे सचा ।
विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥ ७६ ॥

[ ७६, ७७ ] अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे ( अश्विना ) पूर्वोक्त मुख्य पदाधिकारियो ! ( युवं ) तुम दोनों एवं हे ( सरस्वति ) ज्ञानवाली विद्वत्सभे तुम मिलकर ! तीनों ( असुरे ) असुर स्वभाव के ( नमुचौ ) शत्रु के सदा विद्यमान रहते हुए ( सुरामम् ) उत्तम रीति से रमण करने योग्य, सुन्दर ( इन्द्रम् ) इन्द्र पद को या ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को ( कर्मसु ) समस्त कर्मों में ( विपिपानाः ) विविध उपायों से रक्षा करते हुए ( अवतम् ) प्राप्त होवे अथवा सदा उसकी रक्षा करता रहें ।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥७७॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । ३४ ॥

७६—'०नमुचा आसुरे०' इति काण्व० ।
७७—'०तरा अश्वि०' इति काण्व० ।

यस्मिन्नश्वास॑ऽऋष॒भास॑ऽउ॒क्षणो॑ व॒शा मे॒षाऽअ॑वसृ॒ष्टास॒ आहु॑ताः।
की॒ला॒ल॒पे सोम॑पृष्ठाय वे॒धसे॑ हृ॒दा म॒तिं ज॑नय॒ चारु॑म॒ग्नये॑ ॥ ७८ ॥
ऋ० १० । ९१ । १४ ॥

[ ७८, ७९ ] अग्निर्देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—( यस्मिन् ) जिसके आश्रय, जिसके निमित्त, और जिसके अधीन ( अश्वासः ) अश्व के समान वेगवान् अश्वारोही जन, ( ऋषभासः ) श्रेष्ठजन, एवं महावृषभ के समान परोपकारी, ( उक्षाणः ) सेचन समर्थ, युवा पुरुष, ( वशाः ) इन्द्रियों और देशों पर वश करने में समर्थ वशी, तपस्वी और तेजस्वी लोग ( मेषाः ) शत्रुओं से स्पर्द्धा पूर्वक लड़ने वाले योद्धा लोग ( आहुताः ) आदरपूर्वक बुला २ कर ( अवसृष्टासः ) उनके अधीनस्थ अधिकारी बनाये गये हैं उस ( कीलालपे ) शत्रु छेदन में समर्थ बल की रक्षा करने वाले ( सोमपृष्ठाय ) राष्ट्र और राजपद को पालन करने एवं उसको अपने ऊपर लेने वाले ( वेधसे ) बुद्धिमान्, महापुरुष ( अग्नये ) ज्ञानवान् सबके नेता पुरुष के लिये ( हृदा ) हृदय से ( चारुम् ) श्रेष्ठ ( मतिम् ) मान आदर ( जनय ) करो ।

ईश्वर के पक्ष में—जिस परमेश्वर में ( अश्वासः ) तीव्र वेगवान् सूर्य विद्युत् आदि पदार्थ, ( ऋषभासः ) मेघ के समान ( उक्षाणः ) नद, जल वर्षक, ( वशाः ) पृथिवी, ( मेषाः ) सूर्य ये सब ( अवसृष्टासः ) उत्पन्न होते और प्रलय काल में फिर लीन होजाते हैं । उस ( कीलालपे ) नाशवान् स्वतः उच्छेद्य संसार के रक्षक अथवा कीलाल-अमृत के रक्षक, ( सोमपृष्ठाय ) संसार के पालक, ( वेधसे ) जगत् के विधाता ( अग्नये ) ज्ञानवान् स्वप्रकाश, परमेश्वर के लिये ( हृदा मतिं चारुं जनय ) हृदय से उत्तम स्तुति कर। उवट और महीधर दोनों ने इस मन्त्र का अर्थ किया है;—'जिस अग्नि में घोड़े, बैल, सांड, वांझ गायें और मेंढे काट २ कर डाल दिये और पकड़ २ कर ला ला कर झोंक दिये उस अग्नि के लिये उत्तम शुद्ध चित्त रख।'

विद्वान् के पक्ष में—जिस पुरुष के अधीन घोड़े, बैल, सांड, बांझ गौएं और मेंढे भी ( आहुताः ) पकड़ पकड़ कर लाये गये और ( अवसृष्टासः ) सधा लिये जाते, अधीन रहकर नाना कार्यों में नियुक्त करने योग्य बना लिये जाते हैं, उस ( कीलालपे ) उत्तम अन्नाहारी या अन्नरक्षक ( सोमपृष्ठाय ) सोम्य गुण के पोषक ( अग्नये ) विद्वान् के लिये हृदय से उत्तम विचार रक्खो। अर्थात् पशुओं के सधाने वाले लोगों को भी तुच्छ दृष्टि से न देखो। मं० दया० ॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः।
वाजसनिꣳ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥७९॥
ऋ० १० । ९१ । १५ ॥

अग्निर्देवता। जगती छन्दः। निषादः॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने! तेजस्विन्! सर्वप्रकाशक! ( ते ) तेरे ( आस्ये ) शत्रु के उखाड़ फेंकने वाले बल के निमित्त ( हविः ) ग्रहण करने योग्य समस्त राष्ट्र ( स्रुचिघृतम् इव ) स्रुवे में घृत के समान और ( चम्वि ) यज्ञपात्र में ( सोमः इव ) सोम के समान, अथवा ( चम्वि ) सेना के ऊपर (सोमः) उसके आज्ञापक के समान, अथवा ( चम्वि सोमः ) पृथ्वी पर राजा के समान ( अहावि ) प्रदान किया, या धरा जाता है वह तू ( अस्मे ) हम पर ( वाजसनिम् ) संग्राम द्वारा प्राप्त होने योग्य अथवा बहुत अन्न और ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले ( रयिम् ) ऐश्वर्य को ( धेहि ) दे और हम पर ( प्रशस्तं सुवीरम् ) उत्तम, बढ़िया सुस्वभाव के वीर (यशसं) यशस्वी ( बृहन्तम् ) बड़े पुरुष को ( धेहि ) स्थापित कर।

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्।
वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥

[ ८० — ९० ] एकादशर्च शक्लम्। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—( अश्विनौ ) शरीर में प्राण और अपान दोनों ( तेजसा ) तेज के साथ ( चक्षुः ) चक्षु इन्द्रिय को ( दधतुः ) धारण करते हैं। और ( सरस्वती ) बल को धारण करने वाली चेतना शक्ति ( प्राणेन वीर्यम् ) प्राण के द्वारा वीर्य को शरीर में धारण करती है। ( इन्द्रः ) इन्द्र, मुख्य प्राण ( वाचा ) वाक्-शक्ति के साथ और ( बलेन ) बल से ( इन्द्राय ) जीव के लिये ( इन्द्रियम् ) इन्द्रियगण को ( दधौ ) धारण करता है। उसी प्रकार ( अश्विनौ ) राष्ट्र के स्त्री पुरुष या मुख्य अधिकारी ( तेजसा ) तेजसे जिस प्रकार चक्षु को धारण करते हैं और जिस प्रकार ( प्राणेन वीर्यम् ) प्राण से बलवीर्य को धारण करते हैं और ( वाचा ) वाक्शक्ति से ( इन्द्रः ) जीव ( इन्द्रियम् ) इन्द्रियगणों को धारण करता है। उसी प्रकार ( अश्विनौ ) दोनों मुख्य अधिकारी दो आंखों के समान ( तेजसा ) तेज, पराक्रम से ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राज्य के ( चक्षुः ) चक्षु या निरीक्षण के कार्य को धारण करें और ( सरस्वती ) विद्वत्सभा, ( प्राणेन ) प्राण के समान जीवनप्रद अन्न और वेतन आदि आदि पदार्थों द्वारा राष्ट्र के ( वीर्यम् ) वीर्य, बल और पराक्रम को धारण करे। ( इन्द्रः ) सभापति ( वाचा ) ज्ञानमय वाणी, व्यवस्था पुस्तक से और सेनापति ( वाचा ) अपनी आज्ञाकारिणी वाणी से और ( बलेन ) सेना-बल से ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य सपन्न राज्य के ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य को ( दधुः ) धारण करें।

गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना।
वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ८१ ॥ ऋ० २ । ४१ । ७ ॥

[ ८१—८३ ] गृत्समद ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( नासत्या ) सदा सत्यव्यवहार में रहनेवाले, ( अश्विना ) राष्ट्र के व्यापक शक्ति से युक्त! हे ( रुद्रा ) दुष्टों को रुलानेहारे ( वर्ती ) न्यायोचित मार्ग से वर्तनेवाले अधिकारी पुरुषो! आप दोनों ( गोमत् ) गौ

आदि पशुओं से सम्पन्न ( घोश्वादिवत् ) अश्वों और अश्वारोहियों से भरपूर, ( नृपाय्यम् ) और मनुष्यों की रक्षा करनेवाले राज्य को आप दोनों ( सु यातम् ) उत्तम रीति से प्राप्त करो।

न यत्परो नान्तर ऽआदुधर्षद्वृषण्वसू।
दुःशꣳसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८२ ॥ ऋ० २।४१।८॥

भा०—हे ( वृषण्वसू ) जलों के वर्षण करनेवाले मेघ और विद्युत् के समान सुखों का वर्षण करनेवाले होकर प्रजाओं को बसानेवाले आप दोनों अधिकारी सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष बनो ! ( यत् ) जिससे ( परः ) बाहर का शत्रु और ( आन्तरः ) राजा के भीतर का शत्रु और ( दुःशंसः ) दुःसाध्य ( मर्त्यः रिपुः ) शत्रु पुरुष अथवा बुरी अपकीर्ति फैलानेवाला ( रिपुः ) पापी ( मर्त्यः ) पुरुष ( न आदधर्षत् ) राष्ट्र का और राजा का अपमान और आघात न कर सके वैसे आप राज्य को वश करो।

ता न ऽआ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम्।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ८३ ॥ ऋ० २।४१।९॥

भा०—हे ( धिष्ण्या ) बुद्धिमान् एवं विशेष आसन पर प्रतिष्ठित ( ता ) वे आप दोनों ( अश्विना ) राष्ट्र पर विशेष अधिकार प्राप्त पुरुषो ! आप लोग ( नः ) हमें ( पिशङ्गसंदृशम् ) सुवर्ण के समान सुन्दर दीखनेवाले ( वरिवोविदम् ) धन समृद्धि को प्राप्त करानेवाले ( रयिम् ) राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को ( आ वोढम् ) धारण करो, उसका सञ्चालन करो।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८४ ॥ ऋ० १।३।१०॥

[ ८४–८६ ] मधुच्छन्दा ऋषिः। सरस्वती देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा० – ( पावका ) पवित्र करने वाली, ( वाजेभिः ) ऐश्वर्यों और

८३—०वोळ्हम० इति काण्व० ६।

बलों से ( वाजिनीवती ) बलयुक्त पुरुषों से बनी सेनाओं और विद्वान् पुरुषों से बनी उप समितियों से युक्त ( धियावसुः ) बुद्धि और क्रिया व्यापार द्वारा ऐश्वर्यवती अथवा अपने धारण पालन सामर्थ्य से सबको बसानेवाली होकर ( यज्ञं ) प्रजा पालक यज्ञ को या प्रजापति राजा को ( वष्टु ) तेजस्वी बनावे ।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ८५ ॥ ऋ० १ । ३ । ११ ॥

भा०—( सूनृतानाम् ) उत्तम सत्य वाणियों की ( चोदयित्री ) प्रेरणा देनेवाली, आज्ञा करनेवाली, ( सुमतीनाम् ) उत्तम बुद्धियों को और बुद्धिमान् पुरुषों को ( चेतन्ती ) ज्ञानवान् करती हुई, ( सरस्वती ) सरस्वती वेदवाणी जिस प्रकार ( यज्ञं दधे ) यज्ञ, परमेश्वर को ( दधे ) धारण करती उसका ज्ञान धारण करती और उसका प्रतिपादन करती है उसी प्रकार ( सरस्वती ) विद्वत्सभा ( सूनृतानां ) उत्तम सत्य सिद्धान्तों, उत्तम सत्य व्यवस्थाओं को प्रेरित और आज्ञापित करती हुई, ( सुमतीनां ) राष्ट्र के हित के लिये शुभ मतियों, विचारों को ( चेतन्ती ) प्रकट करती हुई लोगों को चेताती हुई, ( यज्ञं ) प्रजापति राजा को और राज्य को भी ( दधे ) धारण करती है ।

महो ऽअर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ ८६ ॥ ऋ० १ । ३ । १२ ॥

भा०—( सरस्वती ) वेदवाणी ( केतुना ) अपने महान् ज्ञान से ( महः अर्णः ) बड़े भारी ज्ञान या शब्दसागर को ( प्र चेतयति ) प्रकट करती है । और ( विश्वाः धियः ) समस्त कर्मकाण्डों, कर्मों, कर्त्तव्यों को ( वि राजति ) प्रकाशित करती है । उसी प्रकार विद्वत्सभा ( केतुना ) विज्ञापक बल से ( महः अर्णः ) बड़ा ज्ञान प्रकट करती है । राष्ट्र के

( विश्वा धियः ) समस्त कर्मों को या समस्त ( धियः ) बुद्धियों, बुद्धिमान् पुरुषों या धारण सामर्थ्यों को ( वि राजति ) विविध रूपों से प्रकाशित करती है ।

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता ऽइमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ८७ ॥　ऋ० १ । ३ । १२ ॥

( ८७-८९ ) मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे ( चित्रभानो ) अद्भुत २ ज्ञानों के प्रकाश करनेवाले ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! ( इन्द्र ) ज्ञानों के द्रष्टा ! सभापते ! राजन् ! ( इमे ) ये ( सुताः ) समस्त प्राप्त राष्ट्रगत ऐश्वर्य एवं अभिषिक्त या पालक राजगण ( त्वायवः ) तुझे ही प्राप्त हो रहे हैं और वे ( अण्वीभिः ) अपने से छोटी प्रजा के द्वारा ( तना ) अपने विस्तृत गुण कीर्ति द्वारा ( पूतासः ) अभिषेक द्वारा पवित्र हैं ।

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ८८ ॥　ऋ० १ । ३ । ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन् ! तू ( धिया ) बुद्धि और उत्तम कर्म द्वारा प्रेरित ( विप्रजूतः ) विद्वान् मेधावी पुरुषों से शिक्षित होकर ( सुतावतः ) ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ( वाघतः ) विद्वान् पुरुषों को ( ब्रह्माणि उप ) अन्नों, धनों, ऐश्वर्यों, वीर्यों और अधिकारों को प्राप्त करने के लिये ( उप आ याहि ) प्राप्त हो ।

इन्द्रायाहि तूतुजान ऽउप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ८९ ॥　ऋ० १ । ३ । ५ ॥

भा०—हे ( हरिवः ) ज्ञानी पुरुषों और वीर अश्वारोहियों के स्वामिन् ! हे ( इन्द्र ) राजन् ! तू ( तूतुजानः ) क्षिप्रकारी, राष्ट्र के समस्त कार्यों को विद्युत् के समान अति शीघ्रता से करने हारा होकर ( ब्रह्माणि ) समस्त अधिकारों, वीर्यों और ऐश्वर्यों को (उप आयाहि) प्राप्त कर । ( नः )

बलों से ( वाजिनीवती ) बलयुक्त पुरुषों से बनी सेनाओं और विद्वान् पुरुषों से बनी उप समितियों से युक्त ( धियावसुः ) बुद्धि और क्रिया व्यापार द्वारा ऐश्वर्यवती अथवा अपने धारण पालन सामर्थ्य से सबको बसानेवाली होकर ( यज्ञं ) प्रजा पालक यज्ञ को या प्रजापति राजा को ( वष्टु ) तेजस्वी बनावे ।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ८५ ॥ ऋ० १ । ३ । ११ ॥

भा०—( सूनृतानाम् ) उत्तम सत्य वाणियों की ( चोदयित्री ) प्रेरणा देनेवाली, आज्ञा करनेवाली, ( सुमतीनाम् ) उत्तम बुद्धियों को और बुद्धिमान् पुरुषों को ( चेतन्ती ) ज्ञानवान् करती हुई, ( सरस्वती ) सरस्वती वेदवाणी जिस प्रकार ( यज्ञं दधे ) यज्ञ, परमेश्वर को ( दधे ) धारण करती उसका ज्ञान धारण करती और उसका प्रतिपादन करती है उसी प्रकार ( सरस्वती ) विद्वत्सभा ( सूनृतानां ) उत्तम सत्य सिद्धान्तों, उत्तम सत्य व्यवस्थाओं को प्रेरित और ओवापित करती हुई, ( सुमतीनां ) राष्ट्र के हित के लिये शुभ मतियों, विचारों को ( चेतन्ती ) प्रकट करती हुई लोगों को चेताती हुई, ( यज्ञं ) प्रजापति राजा को और राज्य को भी ( दधे ) धारण करती है ।

महो ऽअर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ ८६ ॥ ऋ० १ । ३ । १२ ॥

भा०—( सरस्वती ) वेदवाणी ( केतुना ) अपने महान् ज्ञान से ( महः अर्णः ) बड़े भारी ज्ञान या शब्दसागर को ( प्र चेतयति ) प्रकट करती है । और ( विश्वाः धियः ) समस्त कर्मकाण्डों, कर्मों, कर्त्तव्यों को ( वि राजति ) प्रकाशित करती है । उसी प्रकार विद्वत्सभा ( केतुना ) विज्ञापक बल से ( महः अर्णः ) बड़ा ज्ञान प्रकट करती है । राष्ट्र के

( विश्वा धियः ) समस्त कर्मों को या समस्त ( धियः ) बुद्धियों, बुद्धिमान् पुरुषों या धारण सामर्थ्यों को ( वि राजति ) विविध रूपों में प्रकाशित करती है।

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता ऽइमे त्वायवः।
अण्वीभिस्तना पूतासः॥ ८७॥ ऋ० १।३।१२॥

( ८७-८९ ) मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद् गायत्री षड्जः॥

भा०—हे ( चित्रभानो ) अद्भुत २ ज्ञानों के प्रकाश करनेवाले! सूर्य के समान तेजस्विन्! ( इन्द्र ) ज्ञानों के द्रष्टा! सभापते! राजन्! ( इमे ) ये ( सुताः ) समस्त प्राप्त राष्ट्रगत ऐश्वर्य एवं अभिषिक्त या पालक राजगण ( त्वायवः ) तुझे ही प्राप्त हो रहे हैं और वे ( अण्वीभिः ) अपने से छोटी प्रजा के द्वारा ( तना ) अपने विस्तृत गुण कीर्ति द्वारा ( पूतासः ) अभिषेक द्वारा पवित्र हैं।

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
उप ब्रह्माणि वाघतः॥ ८८॥ ऋ० १।३।४॥

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन्! तू ( धिया ) बुद्धि और उत्तम कर्म द्वारा प्रेरित ( विप्रजूतः ) विद्वान् मेधावी पुरुषों से शिक्षित होकर ( सुतावतः ) ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ( वाघतः ) विद्वान् पुरुषों को ( ब्रह्माणि उप ) अन्नों, धनों, ऐश्वर्यों, वीर्यों और अधिकारों को प्राप्त करने के लिये ( उप आ याहि ) प्राप्त हो।

इन्द्रायाहि तूतुजान ऽउप ब्रह्माणि हरिवः।
सुते दधिष्व नश्चनः॥ ८९॥ ऋ० १।३।५॥

भा०—हे ( हरिवः ) ज्ञानी पुरुषों और वीर अश्वारोहियों के स्वामिन्! हे ( इन्द्र ) राजन्! तू ( तूतुजानः ) क्षिप्रकारी, राष्ट्र के समस्त कार्यों को विद्युत् के समान अति शीघ्रता से करने हारा होकर ( ब्रह्माणि ) समस्त अधिकारों, वीर्यों और ऐश्वर्यों को (उप आयाहि) प्राप्त कर। ( नः )

हमारे ( सुते ) अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्र में ( धनः ) भोग्य ऐश्वर्य और अन्न समृद्धि को ( दधिष्व ) धारण कर, जिससे प्रजा भूखी न मरे।

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।
इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳪं सोम्यं मधु ॥ ९० ॥

ऋ० १ । ३ । ६ ॥

अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—( अश्विनौ ) राष्ट्र के मुख्य दो अधिकारी ( सजोषसा ) परस्पर प्रीतियुक्त होकर ( सरस्वत्या ) सरस्वती, विद्वत्सभा के साथ मिलकर ( मधु ) उत्तम राष्ट्र के ऐश्वर्य को ( पिबताम् ) भोग करें। वे और ( सुत्रामा ) राष्ट्र का उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ ( इन्द्रः ) शत्रुनाशक राजा, ( वृत्रहा ) शत्रु एवं विघ्नकारी वारक या बाधक कारणों का नाश करके ( सोम्यं ) ऐश्वर्य एवं राजपद के योग्य ( मधु ) मधुर अन्नादि से युक्त राष्ट्र का ( जुषन्ताम् ) भोग करें, या प्रेम से पालन करें।

॥ इति विंशोऽध्यायः ॥

इति पूर्वाविंशतिः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये विंशोऽध्यायः ॥

रसवस्वङ्कचन्द्राब्दे कार्तिकेऽपरपक्षके ।
द्वादश्यां मङ्गले शुक्लयजुषोऽर्द्धं समाप्यते ॥



# ॥ अथैकविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
त्वामवस्युराचके ॥ १ ॥ ऋ० १ । २५ । १६ ॥

[ १,२ ] शुनःशेप ऋषिः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( वरुण ) सब द्वारा वरण करने योग्य ! सर्वश्रेष्ठ ( मे ) मेरी, मुझ प्रजाजन की ( हवम् ) स्तुति, आह्वान, पुकार को ( श्रुधि ) श्रवण कर और ( अद्य च ) आज और सदा ही, हमें ( मृडय ) सुखी कर । ( अवस्युः ) रक्षा चाहता हुआ मैं ( त्वाम् ) तुझे मैं अपना रक्षक बनाना ( आचके ) चाहता हूं । ईश्वर और राजा के पक्ष में समान है ।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न ऽआयुः प्र मोषीः ॥२॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १८ । मं० ४९ ॥

त्वं नो ऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो ऽअव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांꣳसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥३॥
ऋ० ४ । १ । ४ ॥

[ ३,४ ] वामदेव ऋषिः । त्रिष्टुप् धैवतः । अग्निर्वरुणश्च देवते ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नेतः ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! ( त्वं ) तू ( नः ) हमारे बीच में ( विद्वान् ) विद्यावान् है । अतः तू ( वरुणस्य देवस्य ) समस्त शत्रुओं के वारक एवं सर्वश्रेष्ठ, देव, विजयशील राजा के द्वारा ( हेडः ) प्राप्त अनादर एवं उसके प्रति हमसे हुए अनादर या अवज्ञा के भाव को या उसके कोप को ( अव यासिसीष्ठाः ) दूर कर । तू ही

---

१—'०मृळय'० इति काण्व० । २—'हेळो'० इति काण्व० ।

( यजिष्ठः ) सब से अधिक पूजा करने योग्य, ( वह्नितमः ) समस्त कार्य-भार को वहन करने में सब से उत्तम, नेता होने योग्य और ( शोशुचानः ) और अग्नि के समान स्वयं शुद्ध और अन्यों को शुद्ध पवित्र करने हारा तथा ज्ञान दीप्ति से प्रकाशमान है। तू गुरु या आचार्य के समान शिक्षक होकर ( अस्मत् ) हम से ( विश्वा द्वेषांसि ) समस्त प्रकार के द्वेषभावों को ( प्र मुमुग्धि ) दूर कर।

स त्वं नो॑ऽअग्नेऽवमो भ॑वोती नेदि॑ष्ठोऽअ॒स्याऽउ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ।
अव॑ यक्ष्व नो॒ वरु॑णꣳ ररा॑णो वी॒हि मृ॑डी॒कꣳ सु॒हवो॑ नऽएधि ॥४॥

ऋ० ४। १। ५॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! ( सः ) वह ( त्वं ) तू ( नः ) हमारा ( ऊती ) अपने रक्षा सामर्थ्य से ( अवमः ) सब से उत्तम रक्षक, ( नेदिष्ठः ) हमारे अति समीप ( भव ) हो। और ( अस्याः ) इस ( उषसः ) प्रभात काल के ( व्युष्टि ) प्रकाशित होने पर ( नः ) हमें ( वरुणम् ) सबसे वरण करने योग्य राजा का ( अव यक्ष्व ) सत्संग करा। और तू ( रराणः ) उत्तम भेंट पुरस्कार आदि प्रदान करता हुआ ( मृडीकम् ) सुखकर राजा को ( वीहि ) प्राप्त हो अथवा ( मृडीकम् ) सुखकारी, पद, या भोग्य ऐश्वर्य को प्राप्त कर। ( नः ) हमें ( सुहवः ) सुख प्रदान करता ( एधि ) रह। प्रजा अपने में से को उत्तम अपसे अति निकट प्रेमी अधिकारी नेता बना कर स्वयं भी राज्य में सुख प्राप्त करे।

म॒हीमू॒ षु मा॒तर॑ꣳ सुव्र॒ताना॑मृ॒तस्य॒ पत्नी॒मव॑से हुवेम।
तु॒वि॒क्ष॒त्राम॒जर॑न्तीमुरू॒चीꣳ सु॒शर्मा॑ण॒मदि॑तिꣳ सु॒प्रणी॑तिम् ॥५॥

अथ० ७। ६। २॥

अदितिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

४—०मृळीकं० इति काण्व०।

भा०—हम लोग, ( महीम् ) बड़ी, माननीय, ( सुव्रतानाम् मातरम् ) उत्तम व्रतों, नियमों, कर्त्तव्य आचरणों को निर्माण करने वाली एवं सदाचारवान् पुरुषों की माता के समान ( ऋतस्य ) सत्य व्यवस्था धर्म और न्याय के ( पत्नीम् ) पालन करने वाली ( तुविक्षत्राम् ) बहुत से क्षत्र बल से युक्त, ( अजरन्तीम् ), व्रह भी नाश न होने वाली सदा नूतन २ सभासदों से बनी, ( उरूचीम् ) विशाल राष्ट्र के शासक रूप से व्यापक ( सुशर्माणम् ) उत्तम गृह, सभाभवन में विद्यमान उत्तम सुख देने वाली ( सुप्रणीतिम् ) उत्तम, सुखकारी नीति, राजनैतिक प्रगतियों वाली ( अदितिम् ) सदा अखण्ड शासन वाली, महासभा को ( हुवेम ) हम बनावें और उसको स्वीकार करें।

इसी प्रकार जो उत्तम सदाचारी पुरुषों की माता है, (ऋत) अन्न, यज्ञ और जीवन की मालिक है, जो बहुतसे ऐश्वर्य और वीर्यवान् वीरों से सुरक्षित सदा अजर, विस्तृत सुखप्रद, अखण्ड उत्तम नीतियुक्त उस पृथिवी या राष्ट्र को हम ( हुवेम ) अपनावें।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये॥ ६॥

अथ० ७। ६। ३॥ ऋ० १०। ६३। १०॥

गयप्लात ऋषिः। अदितिर्देवता। भुरिक्त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( सुत्रामाणम् ) उत्तम रीति रक्षा करने वाली, ( पृथिवीम् ) अति विस्तृत, ( द्याम् ) ज्ञान प्रकाश से युक्त, ( अनेहसम् ) गौ के समान नाश न करने योग्य, अथवा क्रोध रहित। ( सुशर्माणम् ) उत्तम भवन या शरणप्रद साधनों और सुखसाधनों से युक्त, ( सुप्रणीतिम् ) उत्तम राजा प्रजा की नीति से युक्त, ( सु-अरि-त्राम् ) उत्तम रीति से शत्रुगण से प्रजा की रक्षा करने वाली, ( अस्रवन्तीम् ) अपना रहस्य शत्रुको न देने वाली

छिद्र रहित, ( अनागसम् ) अपराध रहित निर्दोष धर्मानुकूल, ( दैवीम् ) विद्वानों की बनी हुई ( नावम् [ इव ] ) नाव के समान समस्त कष्टों से पार उतारने और सबको सन्मार्ग में चलाने वाली ( अदितिम् ) दूसरों के उपजाप आदि के प्रयोगों से अखण्डित, एकमत, फूट से रहित राजसभा का या राज्यव्यवस्था का (स्वस्तये) सुख और कल्याण प्राप्त करने के लिये ( आरुहेम ) आश्रय लें ।

नाव के पक्ष में—( सुत्रामाणं ) डूबने से बचाने वाली, ( पृथिवीम् ) विस्तृत, ( अनेहसम् ) निर्दोष, उथल पुथल न होने वाली, ( सुशर्माणम् ) उत्तम घर उक्त तथा डूबते को बचाने के साधनों वाली, ( सुप्रणीतिम् ) उत्तम रचना और चाल वाली अथवा उत्तम संचालन प्रबन्ध वाली, ( सु अरित्राम् ) उत्तम पतवारों वाली, ( अनागसम् ) निर्दोष, मृत्यु आदि के भय से रहित, ( अस्रवन्तीम् ) बिना छिद्र की, जल को भीतर आने न देने वाली, ( दैवीं नावं ) विद्वानों की बनाई नाव को हम ( स्वस्तये ) सुख वृद्धि के लिये चढ़ें ।

'सुत्रामा' इन्द्र का वर्णन पूर्व अध्याय में सौत्रामणी प्रकरण में आ चुका है । यहां उसी प्रजा पालक राजशक्ति एवं विद्वत्सभा का नौका रूप से श्लेष विशेष से वर्णन किया गया है यह मन्त्र पृथिवी और सूर्य पक्षमें भी लगता है ।

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् ।
शतारित्राᳬ स्वस्तये ॥ ७ ॥

गयप्लात ऋषिः । स्वार्नौर्देवता । यवमध्या गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( अस्रवन्ती ) अपना रहस्य अपने से किसी भी प्रकार बाहर न जाने देने वाली, गुप्त मन्त्र रखने वाली, ( अनागसम् ) निर्दोष, प्रजा के हित में किये सब धर्मानुकूल कार्यों को करने वाली, ( शतारित्राम् ) सैकड़

से पार जाने के सैकड़ों उपायों से युक्त ( सुनावम् ) उत्तम मार्ग से प्रेरित करने वाली नौका के समान राजसभा और धर्मसभा का ( आरुहेयम् ) मैं राजा भी आश्रय लूं।

नौका के पक्ष में—गत मन्त्र में सब विशेषणों को दर्शा दिया गया है। 'नावम्, सुनावम्'—नौः नुदति प्रेरयतीति नौः। ग्लानुदिभ्यां डौप्रत्यय उणादिः। २। ६४ ॥ इति उणा० दया० ॥

आ नों मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।
मध्वा रजांꣳसि सुक्रतू ॥ ८ ॥ ऋ० ३। ६२। १२ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(मित्रावरुणौ) हे मित्र! समस्त लोकों को स्नेह से देखने और मृत्यु से बचाने वाले न्यायाधीश! और हे वरुण! सबसे वरण, करने योग्य सब को संकटों से वारक, दुष्ट चोरों के वारण करने हारे अधिकारिन्! तुम दोनों ( गव्यूतिम् ) मार्ग को दो दो कोस ( घृतैः ) जलों से, और तेजस्वी पुरुषों से (नः) हमारे हित के लिये ( आ उक्षतम् ) सेचित करो। जिस प्रकार मित्र और वरुण, वायु और मेघ जलों से सेचन करते हैं उसी प्रकार राजा के दो महकमे प्रति दो कोसों पर ( घृतैः ) जलस्थानों, जनरक्षक पुलिस के सैनिकों और विद्वान् पुरुषों से प्रजाजन को भरदें। अर्थात् प्रति दो कोश में पुलिस की चौकी जल के प्याऊ और पाठशाला हों। और हे ( सुक्रतू ) उत्तम कर्मों को करने एवं उत्तम प्रज्ञा वालो! आप इस प्रकार ( मध्वा ) मधुर ज्ञान, अन्न और बल सुख ऐश्वर्य से ( रजांसि ) समस्त लोकों को ( सिञ्चतम् ) युक्त करो। अथवा-( घृतैः गवि-ऊतिम् आ उक्षतम् ) तेजस्वी पुरुषों से पृथिवी पर, प्रजापालन की नीति को फैलाओ। अथवा पृथिवी पर कृषि को सेचन करो।

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन । आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ६ ॥

ऋ० ७ । ६२ । ५ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र, सबके स्नेही एवं मरण से त्राणकारिन्! और हे ( वरुण ) दुष्टों के वारक ! तुम दोनों ( नः जीवसे ) हम प्रजाजनों के जीवन की रक्षा के लिये ( बाहवा ) अपने बाहुओं को, शत्रुगण या विपक्षों के बाधन, पीड़न करने वाले साधनों को और बाहुओं के समान वीरों को ( प्र सिसृतम् ) आगे बढ़ाओ या तुम दोनों बाहुओं के समान आगे बढ़ो । अर्थात् जिस प्रकार शरीर की रक्षा के लिये बाहुएं आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार प्रजा की रक्षा के लिये राष्ट्र की बाहुएं, क्षत्रिय लोग, आगे बढ़ें । और ( घृतेन ) मेघ जिस प्रकार जल से पृथिवी को सींचता है, उसी प्रकार आप दोनों अधिकारी ( नः ) हमारे ( गव्यूतिम् ) राष्ट्र के प्रति दो कोस की भूमि को ( घृतेन ) जल के समान प्राणप्रद या तेजस्वी विद्वान् और वीर क्षत्रिय गण से ( आ उक्षतम् ) सर्वत्र सेचन करदो । हे ( युवानौ ) सदा युवाओ । अथवा संधि और विग्रह, मेल और फूट कराने में कुशल पुरुषो ! आप दोनों ( जने ) समस्त राष्ट्र जन के बीच ( मा ) मुझको राजा, शासक रूप से ( आ श्रवयतम् ) आघोषित करदो । और ( मे ) मेरी (इमा हवा ) इन आज्ञाओं को ( श्रुतम् ) श्रवण करो ।

राजा, मित्र और वरुण दोनों अधिकारियों को अपने समस्त राज्य में प्रति दो कोश में राज्य की चौकी, प्याऊ, पाठशाला, धर्म स्थान आदि बनाने की आज्ञा दे, प्रजा की रक्षा के लिये बाहुओं के समान वे प्रजा की रक्षा करें, राजा की आज्ञा आघोषित करें, उसकी आज्ञा पर ध्यानदें और पालन करें ।

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १० ॥
वाजे-वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा ऽअमृता ऽऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ११ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । १६, १८ ॥

समिद्धो ऽअग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः ।
गायत्री छन्द ऽइन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥ १२ ॥

[ १२–२२ ] स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । आग्नियो देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( अग्निः ) ज्ञानवान् पुरुष, अग्रणी नेता, ( समिधा समिद्धः ) काष्ठ से प्रज्वलित आग के समान ( सम्-इधा ) उत्तम ज्ञान प्रकाश से ( सम्-इद्धः ) खूब प्रज्वलित और ( सु-सम्-इद्धः ) सूर्य के समान अत्यन्त देदीप्यमान, तेजस्वी होकर ( वरेण्यः ) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष ( गायत्री ) समस्त जीवों के प्राणों की रक्षा करने वाली पृथिवी के समान ( छन्दः ) समस्त जनों का आच्छादन या रक्षा करने वाला पुरुष, ( त्र्यविः ) शरीर, इन्द्रिय और आत्मा इन तीनों की रक्षा करने वाला, ( गौः ) विद्वान् पुरुष, ये सब 'इन्द्र' या राजा के ऐश्वर्यमय राज्य में ( इन्द्रियं ) ऐश्वर्य आत्मिक बल और ( वयः ) बल, ज्ञान, दीर्घ आयु को ( दधुः ) धारण, स्थापन करें ।

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती ।
उष्णिहा छन्द ऽइन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १३ ॥

भा०—( तनूनपात् ) शरीरों को न गिरने देने वाले प्राण के समान (शुचिव्रतः) शुद्ध धर्माचरण, शीलवान् पुरुष और (तनूपाः) शरीरों अर्थात् पुत्रादि की रक्षा करने वाली ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञान वाली स्त्री और

१०—अतः परं ६ । १६ पठ्यते । काण्व० ।

विद्वत् सभा, और ( उष्णिहा छन्दः ) उष्णिहा छन्द, और ( दित्यवाड् गौः ) 'दित्यवाड्' बैल ये चारों ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र में (इन्द्रियम्) राजा के योग्य ऐश्वर्य को और ( वयः ) दीर्घ आयु, ज्ञान, बल को ( दधुः ) धारण करें। अर्थात् ( उष्णिहा छन्दः ) २८ अक्षरों के समान २८ वर्षों तक अपने बल वीर्य को आच्छादित करने वाला पुरुष और दित्यवाड् गौ अर्थात् दो वर्ष का वृषभ जिस प्रकार ( इन्द्रियं ) हृष्ट पुष्ट वीर्य और बल को धारण करते हैं उसी प्रकार के लोग राष्ट्र में राजा के ऐश्वर्य और बल की वृद्धि करें।

१. उष्णिहा छन्दः—उष्णिक् इत्युत्स्नावात्। स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणः। आपिवोष्णीपिणोवेत्यौपमिकम्। दैवय० ३। ४॥ आयुर्वा उष्णिक्। ऐ० १। ५॥ चक्षुरुष्णिक्। शत० १०। ३। १। १॥ पशवो वा उष्णिक्। तां० २। १०। १४॥

दित्यवाड् गौः—द्विवर्षः पशुःइति महीधरः। अथवा दित्यं खण्डनीय धान्यं वहति इति दित्यवाड्।

इडाभिर॒ग्निरीड्यः॒ सोमो॑ दे॒वो ऽअम॑र्त्यः।
अ॒नु॒ष्टुप् छन्द॑ ऽइन्द्रि॒यं पञ्चा॑विर्गौर्वयो॑ दधुः ॥ १४ ॥

भा०—( इडाभिः ) हवियों-अन्नों द्वारा ( ईड्यः ) पूजनीय अग्नि के समान ( इडाभिः ) अन्नों और स्तुतियों द्वारा प्रशंसनीय ( अग्निः ) ज्ञानवान् नेता पुरुष और ( अमर्त्यः ) कभी नाश न होने वाला ( देवः ) देव, दिव्य गुणों से युक्त, तेजस्वी, ( सोमः ) सूर्य या वायु के समान प्राण देने वाला राजा, ( अनुष्टुप् छन्दः ) अनुष्टुप् छन्द, अर्थात् ३२ वर्ष तक इन्द्रियों और बलों का रक्षक ब्रह्मचारी और ( पञ्चाविः गौः ) अढ़ाई वर्ष का बैल अथवा पांचों इन्द्रियों का संयमी

१४—'इळा०' इति काण्व०।

जिस प्रकार ( इन्द्रियं ) प्राण बल, और ( वयः ) दीर्घ, जीवन को धारण करते हैं वैसे ही लोग राष्ट्र में ऐश्वर्य बल और वीर्य जीवन को धारण करें ।

अनुष्टुप् छन्दः—द्वात्रिंशदक्षरा अनुष्टुप् । कौ० २६ । १ ॥ प्रजापतिर्वा अनुष्टुप् । तां० ४ । ८ । ९ ॥

पञ्चाविः गौः । सार्धद्विवर्षः । षण्मासात्कः कालोऽविः ।

सुवर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णवर्हिरमर्त्यः ।
बृहती छन्द ऽइन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥ १५ ॥

भा०—( पूषण्वान् ) पृथिवी को धारण करने वाला ( अग्निः ) सूर्य जिस प्रकार ( सु बर्हिः ) उत्तम रीति से आकाश में व्याप्त है वैसे ( पूषण्वान् ) पुष्टिकारक भूमि और अन्नों से युक्त अथवा पोषक जनों से युक्त ( अग्निः ) अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष ( सु-बर्हिः ) उत्तम प्रजा से युक्त होता है । ( स्तीर्णबर्हिः ) वह पुरुष यज्ञ में वेदि पर कुशाओं को बिछाने वाले यज्ञकर्त्ता के समान पृथिवी पर अपनी प्रजाओं को फैला देता है । वह ( अमर्त्यः ) अमर हो जाता है । वह सदा मानो प्रजा रूप से जीता रहता है । इसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी राजा ( सु-बर्हिः ) उत्तम प्रजा वाला, ( पूषण्वान् ) पोषक अन्न सम्पत्ति और भूमियों और प्रजाओं के पोषक अधिकारियों से युक्त हो । वह ( स्तीर्णबर्हिः ) शत्रु के नाशकारी क्षात्रबल को फैला कर बैठने वाला ( अमर्त्यः ) फिर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता । ( बृहती छन्दः ) छत्तीस अक्षरों के बृहती छन्द के समान ३६ वर्षों तक के ब्रह्मचर्य का पालक पुरुष और ( त्रिवत्सः गौः ) तीन वर्ष के हृष्टपुष्ट बैल के समान युवा पुरुष, ये सब ( इन्द्रियम् ) ब्रह्मचर्य बल और दीर्घ जीवन को धारण करते हैं । उनके समान प्रजागण भी राष्ट्र में बल वीर्य और दीर्घ जीवन धारण करें ।

द्वुरो॑ दे॒वीर्दिशो॑ म॒हीर्ब्र॒ह्मा दे॒वो बृह॒स्पतिः॑ ।
प॒ङ्क्तिश्छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं तु॑र्य॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः ॥ १६ ॥

भा०—( देवीः ) तेजवाली स्त्रियां, ( दुरः ) प्रकाश वाले बड़े २ द्वार और ( महीः ) बड़ी विस्तृत ( दिशः ) दिशाओं के समान ( महीः दिशः ) पूजनीय, गुरुवाणियां और ( ब्रह्मा ) चतुर्वेदों का विद्वान् ( देवः ) ज्ञान का प्रकाशक, ( बृहस्पतिः ) वेद वाणी का पालक, अथवा महान् राष्ट्रपति देव, राजा और ( पंक्तिः छन्दः ) चालीस अक्षरों वाले पंक्ति छन्द के समान ४० वर्ष तक का ब्रह्मचारी पुरुष, और ( तुर्यवाड् गौः ) चतुर्थ वर्ष का बैल अथवा ( तुर्यवाड् ) चतुर्थ आश्रम का सेवी परिव्राट् और ( गौः ) आदित्य के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ये सब ( इन्द्रियं ) ऐश्वर्य और दीर्घ जीवन स्वयं धारण करते हैं, वे ही राष्ट्र में भी ऐश्वर्य तेजबल और दीर्घ जीवन धारण करावें ।

उ॒षे य॒ह्वी सु॒पेश॑सा॒ विश्वे॑ दे॒वा ऽअम॑र्त्याः ।
त्रि॒ष्टुप् छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं प॑ष्ठ॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः ॥ १७ ॥

भा०—( यह्वी ) बड़ी, पूजनीय, ( सुपेशसा ) उत्तम रूप वाली, ( उषे ) उषा और सायं वेलाओं के समान पूज्य, उत्तम ज्ञान प्रकाश वाली, पाप और अज्ञान का दहन करने में समर्थ, उपदेशिका और अध्यापिका, अथवा धर्मसभा और विद्वत्-सभा और ( विश्वे देवाः ) समस्त ज्ञानी और विजयी पुरुष, ( अमर्त्याः ) दिव्य पदार्थ पृथिवी सूर्य के समान स्थिर रहने वाले, अनश्वर, सुरक्षित एवं नित्य हैं । वे और ( त्रिष्टुप् छन्दः ) ४४ अक्षरों वाले त्रिष्टुप् के समान ४४ वर्षों तक के अक्षत ब्रह्मचर्यवान् पुरुष और ( पष्ठवाड् गौः ) पृष्ठ से भार उठाने वाले बैल के समान राष्ट्र का कार्यभार अपने ऊपर लेने वाले पुरुष ये

सब ( इह ) इस राष्ट्र में ( इन्द्रियं ) बल, वीर्य, ऐश्वर्य और ( वयः ) दीर्घ जीवन, अन्न और ज्ञान को ( दधुः ) स्वयं धारण करें और धारण करावें।

देव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा।
जगती छन्द ऽइन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः ॥ १८ ॥

भा०—( दैव्या ) देवों, शरीरस्थ प्राणों में व्यापक, ( होतारौ ) सब को अपने भीतर ग्रहण करने वाले, ( भिषजा ) वैद्यों के समान शरीर के समस्त रोग विकारों को दूर करने वाले, ( इन्द्रेण सयुजौ ) इन्द्र आत्मा के साथ सदा संयुक्त और ( युजा ) सदा स्वयं साथ रहने वाले प्राण अपान और उनही के समान ( दैव्या होतारा ) देवों, विद्वानों में हितकारी, ( भिषजाः ) शरीर और मन एवं समाज शरीर के दोषों को भी सद्वैद्य के समान दूर करने वाले ( इन्द्रेण ) राजा के साथ ( सयुजौ ) सहयोग रखने वाले, ( युजा ) सदा परस्पर संयुक्त और ( जगती छन्दः ) ४८ अक्षर के जगती छन्द के समान ४८ वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालक पति और ( अनड्वान् गौः ) शकट को उठाने वाले बैल के समान राष्ट्र के शकट को उठाने वाला वीर बलवान् पुरुष, ये सभी ( इन्द्रियम् ) बल ऐश्वर्य और ( वयः ) दीर्घ आयु और ज्ञान को ( दधुः ) धारण करते हैं और ऐश्वर्यमय राष्ट्र में भी धारण कराते हैं।

तिस्र ऽइडा सरस्वती भारती मरुतो विशः।
विराट् छन्द ऽइहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥ १९ ॥

भा०—( इडा, सरस्वती, भारती ) इडा, सरस्वती और भारती नामक, ( तिस्रः ) तीनों समितियें और ( मरुतः ) वायुओं के समान तीव्र वेग वाली या देश देशान्तर में गमन करने वाली अथवा—शत्रु मारक वीर सेनारूप ( विशः ) प्रजाएं और ( विराट् छन्दः ) ४० अक्षरों के विराट्

छन्द के अनुसार ४० वर्षों का अक्षत ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला पुरुष और ( धेनुः गौः ) दुधार गौ ये सब राष्ट्र में ( इन्द्रियम् ) राजा के ऐश्वर्य और ( वयः ) दीर्घ जीवन को धारण करते हैं वे उसमें भी धारण करावें ।

त्वष्टा तुरीपो ऽअद्भुत ऽइन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना ।
द्विपदा छन्द ऽइन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ २० ॥

भा०—( त्वष्टा ) शिल्पी, नये यन्त्र और पदार्थों को गढ़ कर बनाने वाला त्वष्टा या कान्तिमती विद्युत् ( अद्भुतः ) आश्चर्यजनक रूप से (तुरीपः) शीघ्रता से स्थानान्तर में जाने में समर्थ है। इसी प्रकार (इन्द्राग्नी) सेनापति ग्राम और नगर के नेता दोनों ही ( पुष्टिवर्धना ) राज्य की पुष्टि को बढ़ाते हैं। ( द्विपदा छन्दः ) द्विपदा ऋचा के समान दो पैरों से प्रतिष्ठित होने वाली मानव सृष्टि और ( उक्षा गौः ) वीर्य सेचनमें समर्थ वृषभ ये सब राष्ट्र में ( इन्द्रियम् वयः ) ऐश्वर्य और दीर्घ जीवन को ( दधुः ) धारण करावें ।

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्द ऽइहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥ २१ ॥

भा०—( वनस्पतिः ) वन का पालक या वट आदि महावृक्ष के समान ( शमिता ) शान्तिप्रद छाया और शरण देने वाला ( सविता ) और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ( भगम् ) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को ( प्रसुवन् ) उत्पन्न करता हुआ और ( ककुप् छन्दः ) ककुप्-२८ अक्षरों का छन्द, तदनुसार २८ वर्ष के ब्रह्मचर्य का पालक पुरुष अथवा प्राण के समान श्रेष्ठ मुख्य नेता, ( वशा ) पृथ्वी या राष्ट्र को वश करने वाली सभा और ( वेहत् ) दुष्टों के षड्यन्त्रों को गर्भ में ही विविध उपायों से नाश करने वाली राजा की नीति, ये सब ऐश्वर्य से पूर्ण राष्ट्र और राजा में

( वयः ) दीर्घ जीवन, बल, और ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य को स्वयं धारण करें और ( दधुः ) धारण करावें ।

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् ।
अतिच्छन्दा ऽइन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः ॥ २२ ॥

भा०—( वरुणः ) सब से वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ राजा, ( सुक्षत्रः ) उत्तम धन-ऐश्वर्य और क्षात्रबल से युक्त होकर ( स्वाहा ) उत्तम उपदेश, शिक्षा, सत् रीति नीति से ( यज्ञम् ) सुसंगत राष्ट्र या प्रजापति के पद को ( भेषजं ) शरीर में से रोग को दूर करने वाली ओषधि के समान राष्ट्र के दोष दूर करने में समर्थ उपाय ( करत् ) करता है । जिस प्रकार ( अतिच्छन्दाः ) और अति शब्द के योग्य से कहे जाने वाले छन्द, अति धृति, अत्यष्टि अतिशक्करी और अतिजगती, ये चारों छन्द अपने विशुद्ध नाम धृति, अष्टि, शक्करी और जगती इनसे ४, ४ अक्षर अधिक होते हैं उसी प्रकार अन्यों से सामर्थ्यों में अधिक पुरुष, ( बृहत् ऋषभः गौः ) और बड़े विशाल बलीवर्द के समान बहुत अधिक भार उठाने में समर्थ महा पुरुष ये सब ( वयः ) दीर्घ जीवन, बल और ( इन्द्रियं ) वीर्य, इन्द्रियसामर्थ्य और ऐश्वर्य को स्वयं धारण करते हैं वे ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र में उसके स्वामी राजा में भी इन पदार्थों को धारण करावें।

वसन्तेन ऽऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः ।
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २३ ॥

( २३–२८ ) लिंगोक्ता देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( वसवः देवाः ) वसु नामक देव, विद्वान् पुरुष, ( वसन्तेन ऋतुना त्रिवृता ) त्रिवृत् स्तोम और ( रथन्तरेण ) रथन्तर साम से और तेज, पराक्रम से ( इन्द्रे ) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में या निमित्त ( हविः वयः दधुः ) अन्न और बल, दीर्घजीवन को धारण कराते और स्वयं धारण करते हैं ।

ग्रीष्मेण ऽऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ।
बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २४ ॥

भा०—( रुद्राः देवाः ) रुद्र नामक देव, विद्वान् गण, ( ग्रीष्मेण ऋतुना ) ग्रीष्म ऋतु से ( पञ्चदशे ) पंचदश नामक स्तोम के आधार पर ( बृहता ) बृहत् नामक साम से ( यशसा ) और यश से ( इन्द्रे ) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में ( बलं वयः हविः दधुः ) बल, दीर्घायु और अन्नादि ऐश्वर्य धारण करते और कराते हैं ।

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः ।
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २५ ॥

भा०—( आदित्याः ) 'आदित्य' नामक विद्वान् गण, वर्षाभिःऋतुना) वर्षाऋतु से ( सप्तदशे स्तोमे ) सप्तदशस्तोम के आधार पर ( वैरूपेण ) वैरूप साम से ( विशौजसा ) प्रजा और पराक्रम से (इन्द्रे हविः वयः दधुः ) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में अन्न और दीर्घ जीवन को धारण कराते और करते हैं ।

शारदेन ऽऋतुना देवा ऽएकविꣳश ऽऋभवं स्तुताः ।
वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २६ ॥

भा०—( शारदेन ऋतुना ) शरद् ऋतु से, ( देवाः ऋभवः ) ऋभु नामक विद्वान् गण, ( एकविंशे ) एक विंशस्तोम के आधार पर ( वैराजेन ) वैराज साम से और ( श्रिया ) लक्ष्मी से ( इन्द्रे ) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में ( श्रियं ) शोभा, लक्ष्मी, ऐश्वर्य ( हविः ) अन्न और ( वयः ) दीर्घ जीवन को ( दधुः ) धारण कराते और स्वयं धारण करते हैं ।

हेमन्तेन ऽऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतं स्तुताः ।
बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २७ ॥

भा०—( मरुतः देवाः ) मरुत् नामक देव, विजिगीषु पुरुष, ( हेमन्तेन ऋतुना) हेमन्त ऋतु से, ( त्रिनवे स्तुताः ) त्रिनव नामक स्तोम में स्तुत होकर

( बलेन ) बल से ( शक्करीः ) शक्वरी नामक सोम से ( इन्द्रे हविः सहः वयः ) राष्ट्र और राष्ट्रपति इन्द्र में अन्न, शत्रु-विजयकारी बल और दीर्घ जीवन (दधुः) धारण कराते हैं और उसके निमित्त स्वयं भी धारण करते हैं।

शैशिरेण॑ऽऋतुना॑ देवास्त्रयस्त्रि॒ꣳशेऽमृता॑ स्तु॒ताः ।
स॒त्येन॑ रे॒वतीः क्ष॒त्रꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥ २८ ॥

भा०—( अमृताः देवाः ) अमृत नामक देव, विद्वान् पुरुष ( शैशिरेण ऋतुना ) शिशिर ऋतु के साथ, ( त्रयस्त्रिंशे ) त्रयस्त्रिंश नामक स्तोम में ( स्तुतः ) वर्णित या प्रस्तुत होकर ( रेवतीः ) रेवती साम द्वारा ( सत्येन ) सत्य के बल से ( इन्द्रे ) राष्ट्र और राष्ट्रपति इन्द्र में या उसके निमित्त या उसके आश्रय पर ( क्षत्रं हविः वयः दधुः ) धन, अन्न और दीर्घ जीवन धारण कराते और स्वयं करते हैं।

संवत्सर और यज्ञ दोनों ही प्रजापति के स्वरूप हैं। इधर राजा भी प्रजापति है। आत्मा और परमात्मा भी प्रजापति है। उनके अंग प्रत्यंगों की कल्पना द्वारा राजा के अधीन २ अधिकारीगणों के कर्त्तव्यों का निरूपण उक्त ६ मन्त्रों में किया गया है, जैसे—

१—वर्ष में ६ ऋतु हैं राजा या प्रजापति के ६ प्रकार के प्रधान रूप हैं। प्रथम ऋतु वसन्त है। जिसके आश्रय पर लोग वसें जो सबको वसावें वह मुख्य अधिकारी 'वसन्त' के समान है। एवं उस प्रकृति का स्वतः राजा भी 'वसन्त' है। अधीन प्रजाओं को सुखपूर्वक वास देने हारे अधिकारी जन 'वसु' हैं पृथिव्यादि आठ वसुओं के समान वे प्रजाओं के को शरण दें। शरीर में वसे प्राणों के समान प्रजा के जीवन प्रद हों, उनका स्तोम अर्थात् मुख्य पुरुष संघ "त्रिवृत्" हैं त्रिवृत स्तोम में जिस प्रकार तीन ऋचाएं हैं उसी प्रकार तीन अधिकारी हैं। उसका बल रथन्तर है रथों से देश देशान्तर में जाएं आवें और तेज, पराक्रम से रथ सेना

संग्रामों को तरते हैं। वे उस पराक्रम से ही राज्य और राजा का बल बढ़ाते हैं।

२. नेता, प्रजापति राजा का दूसरा स्वरूप है, उसका प्रधान नेता ग्रीष्म ऋतु के समान है। सूर्य जिस प्रकार प्रखर होकर भूभागों को तपा कर उनसे जल शोष लेता है उसी प्रकार अपने तेज से बलपूर्वक अधीन किये भूपतियों से राजा करों द्वारा ऐश्वर्य ग्रहण करता है। उस कार्य में नियुक्त पुरुष 'रुद्र' रूप देव हैं। उनको देखकर जमींदार लोग रोते हैं। वे भी शरीर में भूख प्यास लगाने वाले तीव्र प्राणों के समान होने से रुद्र हैं। उनके पञ्चदश स्तोम हैं। अर्थात् जिस प्रकार शरीर में अंग और पांच प्राण हैं उसी प्रकार राष्ट्र में उनके १५ अधिकारियों की स्थिति है। उनका 'यश' अर्थात् वीर्य और ख्याति यज्ञ में बृहत् साम के समान महान् है। वे राज्य में बल, अन्न और दीर्घायु धारण कराते हैं।

३. वर्षा ऋतु प्रजापति का तीसरा रूप है। उसका कार्य वर्षा के मेघ के समान प्रजा या पृथिवी से संगृहीत ऐश्वर्य को प्रजा के हित के लिये पुनः प्रजा पर वर्षा देना है। यह कार्य 'आदित्य' नामक अधिकारियों का है। उनकी स्थिति सूर्य में किरणों के समान है। उनका वर्णन 'सप्तदश' स्तोम से किया जाता है अर्थात् दश इन्द्रिय, पंच प्राण और आत्मा, मन इन १७ के समान ये राष्ट्र शरीर में व्याप्त रहते हैं और कार्य करते हैं। उसका ओज पराक्रम नाना रूप से विविध प्रकारों से प्रकाशित होने से यज्ञ में वैराज साम के समान एवं प्रजा को समस्त ऐश्वर्य प्राप्त होने से वे प्रजा के द्वारा राष्ट्र की सम्पत्ति और बल को बढ़ाते हैं।

४. प्रजापति का तीसरा रूप 'शरद् ऋतु' है। शरद् काल वर्षाकालिक मेघों को छिन्न भिन्न करके जैसे आकाश को स्वच्छ करता, चन्द्रमा को निर्मल करता, अन्न और फलों को वृद्धि करता और जलों को स्वच्छ करता है

उसी प्रकार राजा प्रजा के ऊपर आयी शत्रु घटाओं को दूर करता, संकटों को हटाता, अन्नादि सम्पदाओं को बढ़ाता, सबको उत्सवादि से प्रसन्न करता है। इस कार्य में नियुक्त अधिकारी 'ऋतु देव' हैं। 'ऋत' सत्य से प्रकाशित होना, ज्ञान विज्ञान कौशल से समस्त प्रजा को सुखी करना, संकटों को दूर करना उनका कर्त्तव्य है। उसी से वे 'ऋतु' कहाते हैं इस वर्ग में न्यायाधीश, विद्वान्, शिल्पी, वैज्ञानिक आजाते हैं। ये 'एकविंश-स्तोम' से स्तुत या वर्णित हैं। यज्ञ में २१ ऋचा वाले स्तोम के समान एवं शरीर में हाथ पांओं की दश २ अंगुली एवं २१ वां आत्मा, इनके समान नये २ पदार्थों को प्राप्त करते हैं। और राष्ट्र को उत्तम मार्गों में चलाते और नाना सुख भोग प्रदान करते हैं। विविध ऐश्वर्यों से प्रकाशित होने से उनकी तुलना वैराज साम के साथ है। वे 'श्री', लक्ष्मी, शोभा, शिल्प, कला कौशल से राज्य और राजा के राजकार्य में भी ऐश्वर्य और शोभा करते और अन्न, ऐश्वर्य और दीर्घजीवन प्रदान करते हैं।

५. प्रजापति का पांचवां स्वरूप 'हेमन्त ऋतु' है। हेमन्त ऋतु जिस प्रकार अपने तीव्र शीत से समस्त प्राणियों को कष्ट देता, जलों को असह्य शीतल कर देता है, नदियों को संकोचित कर देता है। उसी प्रकार दुष्ट जनोंओ को तीव्र दण्डों से दण्डित करता है, उनको संकुचित करता है, प्रजाओं को वश करता है। उसके तीव्र शीतल वायुओं के समान मरुद्गण, देव हैं जो दुष्टों को दमन करने वाले वायु के समान वेगवान् सैनिकबल हैं। उनका स्तोम 'त्रिनव' है अर्थात् शरीर में हाथ पांव के २० अंगुलियाँ पांच प्राण, मन और आत्मा के समान राष्ट्र के २७ अंग हैं। यज्ञ में शाक्वर साम के समान उनका भी स्वरूप 'शक्वरी' अर्थात् शक्तिमती सेनाएं हैं वे सैन्य-बल से ही शक्तिमती होने से 'शक्वरी' कहाती हैं। वे शत्रु को पराजय करने का परम सामर्थ्य 'सहः' को और वीर्य और राष्ट्र के दीर्घजीवन को उत्पन्न करते हैं।

६. प्रजापति का ६ ठा रूप शिशिर-ऋतु है। शिशिर जिस प्रकार पतझड़ के बाद वृक्षों में नया रस सेचन करता है नये पत्र और नये पुष्प खिलाने के निमित्त रस उत्पन्न करता है उसी प्रकार प्रजा में नवीन साहस, नवीन शक्ति, नवीन ऐश्वर्य संचारित करने वाला राजा शिशिर के समान है। उसके अधीन कार्यकर्त्ता 'अमृत देव' हैं। वे प्रजा में जलों के समान अमर जीवन प्रदान करते हैं। उनकी स्थिति यज्ञ में त्रयस्त्रिंश स्तोम के समान है, अर्थात् जिस प्रकार शरीर में पञ्च स्थूल भूत, पंचतन्मात्रा, पंच-कर्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, चार अन्तःकरण, जीव, शिर, २ हाथ, २ जांघें, १ उदर, २ उरःस्थल, ये अंग हैं। उसी प्रकार वे भी राष्ट्र-शरीर के स्थूल, सूक्ष्म विभागों के घटक, संयोजक और अंग हैं। वे सत्य के बल से ऐश्वर्यवान् होने से 'रेवतीः' कहाती हैं। वे यज्ञ में रैवत साम के समान ऐश्वर्यजनक हैं। वे राष्ट्र में 'क्षत्र' धन अन्न, वीर्य, दीर्घायु धारण कराते हैं।

सभी मुख्य, गौण अधिकारी राजा ही के प्रतिनिधि हैं। और राजा ही सबका स्वरूपवान् आत्मा के समान है। इसलिये गुण भेद से 'वसन्त' आदि राजा के ही स्वरूप होकर राजा के भिन्न २ विभागों के प्रधान पदाधिकारियों के भी ये नाम हैं। उनके भिन्न २ कर्त्तव्य वर्ष में ऋतुओं के अनुसार, ब्रह्माण्ड में सूर्य की किरणों के और जगत् की मुख्य दिव्य शक्तियों के अनुसार, यज्ञ में स्तोमों के अनुसार, शरीर में अंगों के अनुसार जानने चाहियें। उन दृष्टान्तों से स्थूल रूप से, और शब्द में छिपे धात्वर्थगत स्वरूपों और निर्वचनों से सूक्ष्मरूप से राजा के उन स्वरूपों के और अधीन अधिकारियों के कर्त्तव्यों का वर्णन जानना चाहिये। अन्ततः, वे सब व्यवस्थाएं, पद, अधिकार आदि राष्ट्र और राष्ट्र पति में ही अपने समस्त बल, अधिकार ऐश्वर्यों को समर्पित करते हैं। यही वेद ने उपदेश किया है। इस विषय में विशेष संगतियें देखने के लिये देखो। अ० १० । मं० १०, १४ ॥ अ० ९ । ३४ ॥ अ० ११ । ५८, ६०, ६५ ॥

वसन्तादि ऋतुओं के विशेष रहस्य एवं तुलना के लिये देखो अ० १३। मं० ५४–५८॥ तथा अ० १३। मं० २५ ॥ तथा अ० १४। मं० ६, १५, २७, ५७॥ वसु आदि के कर्त्तव्यों के विषय में अ० १४। मं० २५॥ स्तोमों के स्वरूप देखो अ० १४। २८—३१॥

**होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज ऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २६ ॥**

( २६–४१ ) एता द्वादश आप्रियः। अश्विसरस्वत्यैन्द्राः लिंगोक्ता देवताः। निचृदष्टिः। मध्यमः॥

भा०—( १ ) ( होता समिधा अग्निम् इडस्पदे अश्विनौ, इन्द्रं सरस्वती यक्षत् ) यज्ञ में ( होता ) होता नामक विद्वान् ऋत्विक् जिस प्रकार ( समिधा ) काष्ठ से ( अग्निम् ) अग्नि को प्रज्वलित करता है उसी प्रकार ( होता ) राष्ट्र को पदाधिकारियों के प्राप्त करने और उनको मननपूर्वक स्वीकार करने वाला पुरुष ( इडस्पदे ) इस पृथ्वी के प्रधान आसन पर (अश्विनौ) विद्याओं और राष्ट्र भागों के अच्छे ज्ञाता, सूर्य और चंद, और शरीर में प्राण और अपान के समान दोषनाशक प्रधान सचिव रूप दो अधिकारियों को (इंद्रम्) शत्रुनाशकारी, ऐश्वर्यवान्, बलवान् सेनापति को और ( सरस्वतीम् ) उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की बनी विद्वत्सभा को ( यक्षत् ) नियुक्त करे और उचित स्थानों पर संगत करे।

( २ ) ( अजो धूम्रो न गो, धूमैः कुवलैः भेषजम् ) ( अजः ) बकरा बकरी जाति का पशु और अजवायन, अजमोद नामक ओषधि जिस प्रकार अपने उग्रगन्ध से नाना रोगों को ( भेषजम् ) दूर करता है और (धूम्रः) तीव्र धूम जिस प्रकार रोगकारी अंशों को नष्ट करता है और ( गोधूमैः ) हूंग के अन्नों से जिस प्रकार शरीर पुष्ट होता है और ( कुवलैः ) बेर

आदि झाड़ियों से जिस प्रकार पौधों को अन्य पशुओं से खाये जाने से बचाया जाता है उसी प्रकार ( अजः ) शत्रुओं पर नाना अस्त्र शस्त्रों को फेंकने में कुशल वीर योद्धा पुरुष ( न ) और ( धूम्रः ) उनको अपने बल, साहस, वीरता, पराक्रम और युद्ध नीति से कंपा देने और धुन डालने वाला पुरुष ( गोधूमैः ) पृथ्वी के देशों को कम्पाने में समर्थ वीर पुरुषों और अस्त्रशस्त्रों से और ( कुवलैः ) अति घोर गर्जनाकारी अथवा शत्रु की भूमि को घेर लेने वाले सेना दलों सहित ( भेषजम् ) शत्रु तथा प्रजा-पीड़कों को दूर करने का उचित उपाय प्राप्त होता है।

( ३ ) ( शष्पैः मधु न तेजः इन्द्रियम् ) ( शष्पैः ) शष्प, नवांकुरित धान और उसकी जाति के धान्यों से जिस प्रकार ( मधु ) मधु खाद्य अन्न ( न ) और ( तेजः ) तेज, प्राणबल और ( इन्द्रियम् ) शरीर में इन्द्रिय सामर्थ्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार राष्ट्र में ( शष्पैः ) शत्रु के मारने में समर्थ वीर पुरुषों और घोर घातक अस्त्रों से शस्त्र आदि साधनों से राष्ट्र और राजा ( मधु ) शत्रुओं को पीड़न में समर्थ ( तेजः ) पराक्रम और ( इन्द्रियम् ) इन्द्र, विद्युत् और सूर्य का सा राजकीय ऐश्वर्य और पराक्रम उत्पन्न होता है।

( ४ ) ( पयः सोमः परिस्रुता ) ( परिस्रुता ) उत्तम रीति से प्राप्त रस से जिस प्रकार ( पयः ) दुग्ध आदि पुष्टि प्रद अन्न और ( सोमः ) परिस्रवणक्रिया से प्राप्त सोम, ओषधियों का रस जिस प्रकार तीव्र गुण-कारी हो जाता है उसी प्रकार ( परिस्रुता ) अभिषेक द्वारा ( पयः ) राष्ट्र के पोषकवर्ग और ( सोमः ) ऐश्वर्यवान् अभिषिक्त राजा दोनों ही राष्ट्र में बलवान् और तेजस्वी हो जाते हैं।

( ५ ) (घृतं मधु व्यन्तु) हे पूर्वोक्त अश्वि, इन्द्र, सरस्वती, सोम आदि पदाधिकारियों सर्व विद्वत्सभा के सभासद्गण ! साधारण मनुष्य जैसे शरीर

की उन्नति और पुष्टि के लिये घी दुग्ध और अन्न ग्रहण करता है उसी प्रकार आप सब लोग ( घृतं ) तेज और ( मधु ) बल, अन्न और ज्ञान को राष्ट्र की उन्नति और अभ्युदय के लिये ( व्यन्तु ) प्राप्त करें।

( ६ ) ( आज्यस्य होतः यज ) हे ( होतः ) होता जन ! तू जिस प्रकार यज्ञ में घृत की आहुति देता है उसी प्रकार हे ( होतः ) राष्ट्र के पदों को प्रदान करने हारे विद्वन् ! तू ( आज्यस्य ) वीर्य, विजयोपयोगी सामर्थ्य और बलको ( यज ) प्रदान कर या प्राप्त करा।

**होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥**

अतिधृतिः । षड्जः ।

भा०—( १ ) ( तनूनपात् होता सरस्वतीम् अश्विनौ इन्द्राय यक्षत् ) ( तनूनपात् ) शरीर के न्यून अंश को पुष्ट कर उसको पालन और पूर्ण करने में समर्थ ( होता ) राष्ट्र के पदाधिकारों का प्रदाता, विद्वान् ( सरस्वतीम् ) ज्ञानमय वाणी के उपदेष्टा गुरु के समान उत्तम ज्ञानमय विद्वत्सभा को और ( अश्विनौ ) विद्याओं में पारंगत दो मुख्य विद्वान् पुरुषों को ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राजा और राष्ट्र की उन्नति के लिये ( यक्षत् ) नियुक्त करे।

( २ ) ( पथा मधुमता इन्द्राय वीर्यं हरन् ) जिस प्रकार ( मधुमता ) जल वाले, जल से हरे भरे या नदी के मार्ग से जाने वाला सुगमता से और सुख से चला जाता है इसी प्रकार राष्ट्र के सञ्चालकों को ( मधुमता ) मधुर, उत्तम फलों से युक्त ( पथा ) नीति मार्ग से ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राजा को ( वीर्यं ) बल ( हरन् ) प्राप्त करावे।

( ३ ) ( अविः मेषः न भेषजम् ) शीतकाल में जिस प्रकार शीत निवारण के लिये भेड़, भेड़ा ही अपनी ऊन द्वारा उसके उपाय हैं उसी

प्रकार राष्ट्र पर आने वाले बाधक कारणों का उपाय ( मेषः न ) मेढ़े के समान प्रतिपक्ष से टक्कर लेने वाला, शत्रुजन पर शस्त्रों का और प्रजा पर सुख साधनों का वर्षण करने वाला ( अविः ) रक्षक का होना ही ( भेषजम् ) बाधाओं को दूर करने का उत्तम उपाय है।

( ४ ) ( बदरैः उपवाकाभिः तोक्मभिः भेषजम् यक्षत् ) जिस प्रकार ( बदरैः ) बेर जैसी झाड़ियों से बाड़ बना कर उद्यानों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार राष्ट्र पर आने वाले शत्रुओं को ( बदरैः=वधरैः ) हिंसाकारी शस्त्रों का प्रहार करने वाले सेना दलों से ( यक्षत् ) उपाय करे। राष्ट्र की मूर्ख जनता को ( उपवाकाभिः ) गुरुओं के दीक्षा द्वारा उपदेश क्रियाओं से शिक्षित करे। ( तोक्मभिः ) व्यथादायी उपायों से राष्ट्र के भीतरी दुष्टों का उपाय करे।

( ५ ) ( पयः सोमः परिस्रुतः। घृतं मधु व्यन्तु। आज्यस्य होतः यज ) इत्यादि पूर्ववत् ॥

**होता॑ यक्षन्न॒राश॑ꣳसं॒ न न॒ग्नहुं॒ पति॒ꣳ सुर॑या भेष॒जं मे॒षः सर॑स्वती भि॒षग्र॒थो न च॒न्द्र्य॒श्विनो॑र्व॒पाऽइन्द्र॑स्य वी॒र्यं॒ बद॑रैरुप॒वाका॑भिर्भेष॒जं तोक्म॑भिः॒ पय॒ः सोम॑ः परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥ ३१ ॥**

अतिधृतिः। षड्जः।

भा०—( १ ) ( होता नराशंसं नग्नहुं पतिं न सुरया यक्षत् ) ( न ) जिस प्रकार ( नराशंसं ) समस्त पुरुषों से प्रशंसनीय ( नग्नहुं ) सुन्दर स्त्री को स्वीकार करने वाले ( पतिं ) पति को ( सुरया ) उत्तम रमणी के साथ संगत कर दिया जाता है उसी प्रकार ( होता ) राष्ट्र के पदाधिकारियों का नियोजक विद्वान् पुरुष ( सुरया ) उत्तम रमणयोग्य, राज्यलक्ष्मी से ( नराशंसं ) समस्त नेतृ पुरुषों से प्रस्तुत, स्तुति योग्य, ( नग्नहुम् )

दरिद्रों के पोषक, दुष्ट पुरुषों के विनाशक, ( पतिम् ) पालक, राष्ट्रपति को ( यक्षत् ) संगत करे ।

( २ ) ( भेषजं मेषः सरस्वती भिषग् ) पति-पत्नी के परस्पर विवाहित होजाने पर यदि प्रजोत्पत्ति में कोई बाधक कारण हो तो जिस प्रकार ( मेषः ) वीर्य सेचन करने में वीर्यपुष्टिकर औषध ही ( भेषजम् ) रोग-नाशक होता है और ( सरस्वती भिषग् ) उत्तम ज्ञानमय वाणी या उसका धारक विद्वान् ही भिषक्, चिकित्सक है । अथवा विवाहित होजाने पर भी परस्पर मिलने में ( मेषः ) वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष ही उत्तम प्रजोत्पत्ति का ( भेषजम् ) उपाय है और ( सरस्वती ) स्त्री ही ( भिषक्= अभि-पक् ) प्रजोत्पत्ति करने वाली, उससे संगत होती है । उसी प्रकार राष्ट्रपति बनाने में आये बाधक कारणों को दूर करने में ( मेषः भेषजम् ) प्रतिद्वन्द्वी से टक्कर लेने वाले मेढ़े के समान वीर, प्रतिस्पर्द्धी पुरुष ही ( भेषजम् ) उपाय है । और ( सरस्वती ) वेदवाणी विद्वत्सभा ही ( भिषग् ) उस उपाय को बतलाने वाले वैद्य के समान है ।

( ३ ) ( रथो न चन्द्री ) दम्पति के लिये जिस प्रकार मार्ग पार करने का साधन रथ है उसी प्रकार राष्ट्र लक्ष्मी और राष्ट्रपति को नीति मार्ग पर चलने का उत्तम साधन ( चन्द्री ) सुवर्ण आदि धन वाला कोशवान् पुरुष ही है ।

( ४ ) ( अश्विनोः वपा इन्द्रस्य वीर्यम् ) जिस प्रकार ( अश्विनोः ) स्त्री पुरुषों की ( वीर्यम् ) वीर्य ही ( वपा ) सन्तानोत्पत्ति की शक्ति है, उसी प्रकार ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति और राष्ट्र का ( वीर्यम् ) बल ही ( अश्विनोः ) प्रधान पदपर नियुक्त महामात्यों की ( वपा ) शत्रु-उच्छेदन करने की शक्ति है ।

( ५ ) ( बदरैः उपवाकाभिः० इत्यादि ) पूर्ववत् ।

होता यक्षदिडेडित॑ऽआजुह्वा॑नः सर॑स्वती॒मिन्द्रं॑ ब॒लेन॑ व॒र्धय॑न्नृष॒भेण॑

गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

विराड् अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—( १ ) ( होता सरस्वतीम् आजुह्वानः इडा यक्षत् ) पूर्व वर्णित पदाधिकारियों को नियुक्त करने हारा विद्वान् 'होता' ( ईडितः ) स्वयं आदर सत्कार प्राप्त करके ( सरस्वतीम् ) उत्तम विद्वानों से पूर्ण विद्वत्-सभा या वेदवाणी की व्यवस्था को ( आजुह्वानः ) प्रदान करता हुआ, या स्वीकार करता हुआ ( इडा ) अन्न सम्पदा से ( इन्द्राय ) सम्पन्न राष्ट्र को ( यक्षत् ) संयुक्त करे ।

( २ ) ( बलेन इन्द्रं वृषभेण गवा इन्द्रियं वर्धयन् ) बल से, सेना-बल से 'इन्द्र' राजा को ( वर्धयन् ) अधिक शक्तिशाली करता हुआ, और ( वृषभेण ) सांड और ( गवा ) गौ इन जाति के पशुओं से ( इन्द्रियम् ) इन्द्र अर्थात् राजा के ऐश्वर्य को ( वर्धयन् ) बढ़ाता हुआ ।

( ३ ) (यवैः कर्कन्धुभिः मधु लाजैः न मासरं भेषजं यक्षत्) (यवैः) जौ आदि धान्यों से ( मधु ) राष्ट्र के अन्न और उनके समान रोगनाशक, (यवैः) शत्रुनाशक पुरुषों से राष्ट्र के ( मधु ) बल को उसी प्रकार ( कर्कन्धुभिः ) कांटेदार वृक्षों से ( मधु ) बेर के समान मधुर फल एवं हिंसाकारी शस्त्रों के धारक वीर पुरुषों से ( मधु ) शत्रु के नाशक बल को और ( लाजैः न ) लाजाओं, खीलों के समान शुभ्रवर्ण से ( मासरम् ) प्रति-मास दिये जाने वाले वेतन को ( भेषजम् ) उपायन, या भेंट रूप धातुओं से ( यक्षत् ) नियत करे ।

( ४ ) ( पय सोमः० इत्यादि ) पूर्ववत् ।

---

'०दिळेळित' इति काण्व० ।

होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ् नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशु-
मती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः
परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—( होता ) उक्त होता नाम पदाधिकारी पुरुषों का नियोक्ता विद्वान् 'होता' नाना प्रकार के दोषों को दूर करने के साधनों और उपायों को ( यक्षत् ) प्राप्त करे । ( १ ) ( बर्हिः ऊर्णम्रदाः भिषक् ) ऊन जिस प्रकार कोमल होकर शरीर को शीत से रक्षा करती है उसी प्रकार ( बर्हिः ) प्रजा भी ( ऊर्णम्रदाः ) कोमल होकर भी राजा और राष्ट्र की कम्बल के समान रक्षाकारी होकर ( भिषक् ) उसकी त्रुटियों को दूर करती है। ( २ ) ( नासत्या अश्विना भिषजा ) कभी असत्य व्यवहार न करने हारे, सदा सत्यप्रेमी पूर्वोक्त दो अधिकारी भी वैद्यों के समान राष्ट्र के भीतर विद्यमान असद्-व्यवहारों को दूर करते हैं । ( अश्वा ) वेगवती घोड़ी के समान तीव्र बुद्धि वाली अथवा ( अश्वा ) हृदयग्राहिणी और ( शिशुमती ) उत्तम बालकों से युक्त ( धेनुः ) गौ के समान मधुर रस देने वाली विदुषी स्त्री राजा और राष्ट्र के दोषों को ( भिषक् ) दूर करती है । और ( सरस्वती ) सरस्वती विदुषी स्त्री और विद्वत्सभा भी ( भिषग् ) नाना दोषों को दूर करते हैं ये सब भी ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र और राजा के लिये ( भेषजम् ) ओषधि रसों के समान नाना उपाय ( दुहे ) प्रदान करती है। ( पयः सोमः० इत्यादि । पूर्ववत् ।

होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश
ऽइन्द्रो न रोदसी दुघे । दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳ
शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वा-
ज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

भुरिगतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—( होता यक्षत् ) उक्त होता नामक विद्वान् अश्वि नामक अधिकारी और सरस्वती नामक विद्वत्सभा को नियुक्त करे। ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( अश्विभ्यां ) उक्त दोनों राजनीति कुशल अधिकारियों द्वारा ( दिशः न ) दिशाओं के समान ( कवस्यः ) विशाल अवकाशवाली और ( व्यचस्वतीः ) अति विस्तृत ( दुरः ) द्वारों और ( दुरः ) द्वारों के समान ( दिशः ) अवकाश वाली विस्तृत दिशाओं को, और ( रोदसी न ) सूर्य चन्द्र या वायु और सूर्य द्वारा आकाश और पृथ्वी जिस प्रकार दुही जाती हैं, उनके पूर्ण उपभोग्य पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं, उसी प्रकार विद्वान् नेता और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों द्वारा राष्ट्रवासी स्त्री पुरुषों या राज प्रजावर्ग दोनों को ( दुघे ) दोहता है, उनसे ऐश्वर्य प्राप्त करता है। ( सरस्वती ) सरस्वती नाम विद्वत्सभा ( इन्द्राय ) राजा के लिये ( पयः ) दूध को ( धेनुः ) दुधार गौ के समान ( भेषजं ) सर्व रोग-हर औषध, ( शुक्रं ) शरीर में बलकारी, वीर्य और ( ज्योतिः ) प्रकाश और ( इन्द्रियं ) ऐश्वर्य उत्पन्न करे। इसी प्रकार ( अश्विनौ ) शरीर में व्यापक प्राण और अपान के समान दोनों अधिकारी ( इन्द्राय ) शरीर के अधिष्ठाता, इन्द्र, जीव के समान राष्ट्र के स्वामी के लिये ( भेषजं शुक्रं न ) सर्व रोगहर औषध और वीर्य के समान ऐश्वर्य और ( ज्योतिः ) जीवन-बल और ( इन्द्रियम् ) राज्य सामर्थ्य को ( दुहे ) उत्पन्न करें। ( सोमः परिस्रुता० ) इत्यादि पूर्ववत्।

होता यक्षत् सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या।
त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं
पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३५ ॥

भुरिगतिधृतिः। षड्जः ॥

भा०—( होता ) होता नामक विद्वान् ( यक्षत् ) राष्ट्र की सुव्यवस्था के अधिकारियों को योग्यपद पर नियुक्त करे। ( सुपेशसा ) उत्तम रूप वाली, उत्तम धनैश्वर्य से सम्पन्न, ( उपे ) प्रातःसायं की सन्ध्याओं के समान, या सूर्य चन्द्र के समान ( अश्विना ) अश्वि नामक विद्वान् दोनों अधिकारी ( दिवानक्तम् ) दिन और रात (सरस्वत्या) सरस्वती नामक विद्वत्सभा से ( सम् अञ्जाते ) एक मत करके रहते हैं। और ( इन्द्रे ) ऐश्वर्यवान् राजा में ( त्विषिम् ) कान्ति या तेज को ( भेषजम् ) रोगहारी रस के समान स्थापन करते हैं। तब वह ( श्येनः न ) श्येन या बाज़ जिस प्रकार बड़े वेग से अपने निर्बल पक्षियों पर आक्रमण करता है उसी प्रकार वह राजा भी अपने ( रजसा ) कान्ति से या तेजस्वी लोक-समूह से निर्बल शत्रुपक्ष पर आक्रमण करने में समर्थ हो जाता है। तब वह ( हृदा ) हृदय से या हरणकारी आक्रमण से और ( श्रिया ) श्री—शोभा और ऐश्वर्य से ( न ) भी ( मासरं ) भात के समान या अपने मासिक वेतन के समान अपने अधीन शत्रु को भोग करता है। ( पयः सोम० इत्यादि ) पूर्ववत्।

**होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः। शूषꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुहऽइन्द्रियं। पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥ ३६॥**

निचृदष्टिः। मध्यमः॥

भा०—( होता ) पदाधिकारियों का नियोक्ता विद्वान् ( दैव्या होतारा ) देवों, प्रजा के विद्वान् दानशील पुरुषों के हितकारी दो (होतारा) प्रधान वशकारी अधिकारी पुरुषों को और ( अश्विना ) अधिकार, और राजनीति विद्या में व्यापक, ( भिषजा ) शरीर के रोगों के चिकित्सकों के समान राष्ट्र दोषों के सुधारक पुरुषों को और ( इन्द्रं न ) शत्रुहन्ता पुरुष को भी ( यक्षत् ) नियुक्त करे। ( भिषक् भेषजैः न ) वैद्य

जिस प्रकार अपने औषधों द्वारा शरीर में बल उत्पन्न करता है उसी प्रकार ( सरस्वती ) उत्तम विद्वत्सभा ( दिवा नक्तं ) दिन रात ( जागृवि ) जागती हुई, सावधान रह कर, ( सीसेन ) सीसा के बने गुलिकास्त्र से ( शूषं ) बल, सामर्थ्य और ( इन्द्रियं ) इन्द्र, राजा के उचित मान, ऐश्वर्य को भी ( दुहे ) उत्पन्न करती है । ( पयः सोमः० ) इत्यादि पूर्ववत् ।

**होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती । वाचा सरस्वती महऽइन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३७ ॥**

धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—( होता ) पूर्वोक्त पदाधिकारियों का नियोजक व्यक्ति 'होता' ही ( तिस्र देवीः ) तीन सभाओं को ( यक्षत् ) व्यवस्थित करे । ( त्रिधातवः ) शरीर की तीन धारक धातु वात पित्त, कफ जिस प्रकार ( भेषजं न ) वैद्य से दी गई औषधि को धारण कर लेते हैं उसी प्रकार ( त्रयः ) वे तीन ( अपसः ) कर्मों के करने वाले प्रधान नेताओं के अधीन होकर ( इन्द्रे ) राजा में ( रूपं ) रुचि-रूप धारण कराती हैं । ( अश्विनौ ) इनमें भी दो मुख्य अधिकारी अश्वि नामक हैं वे दोनों और ( इडा ) इडा नाम भूमि की प्रबन्धकर्त्री संस्था ( इन्द्रे ) राजा में ( हिरण्ययम् दुहे ) सुवर्ण आदि धातुमय ऐश्वर्य को धारण कराती हैं । भारती और भारती नाम कला कौशल की नियामक संस्था भी और ( अश्विना ) दो अधिकारियों को प्राप्त होकर ( इन्द्रे रूपं हिरण्ययम् दुहे ) राजा में ऐश्वर्य को प्रदान करती है । ( सरस्वती ) सरस्वती नाम विद्वत्सभा ( वाचा ) वाक् या त्रयी विद्या, वाणी, व्यवस्था और आज्ञा द्वारा (इन्द्राय महः इन्द्रियम् दुहे) राजा के प्रति आदर योग्य बड़े भारी सामर्थ्य को प्रदान करती है । ( पयः सोमः० ) इत्यादि पूर्ववत् ।

**होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं**

न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशः सुरया भेषजं श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३८ ॥

भुरिक् कृतिः । निषादः ॥

भा०—( होता ) उचित पदों पर उचित व्यक्तियों को नियुक्त करने वाला अधिकारी होता, ( सुरेतसम् ) उत्तम वीर्यवान्, ( ऋषभम् ) सेचने में समर्थ वृषभ के समान उत्तम भूमि में उत्तम बीज वपन करने में समर्थ, एवं मेघ के समान उत्तम जलरूप उत्पादक सामर्थ्य से युक्त, ( नर्यापसम् ) लोकोपकारी कर्म करने वाले, ( त्वष्टारम् ) शिल्पी, एन्जी-नीयर और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष को, और (अश्विनौ) दो मुख्य अधिकारियों को ( भिषजम् ) सब दोषों को दूर करने वाले वैद्य के समान ( सरस्वतीम् ) उत्तम ज्ञान और ज्ञानी पुरुषों से युक्त विद्वत्सभा को ( यक्षत् ) राष्ट्र में नियुक्त करे । वे सब लोग क्रम से ( ओजः ; पराक्रम ( न ) और ( जूतिः ) वेग से, चुस्ती से कार्य संचालन, ( इन्द्रियम् ) राजा के उचित ऐश्वर्य और इन्द्रियों के तीव्र सामर्थ्य को उत्पन्न करते हैं । और ( वृकः न ) जिस प्रकार भेड़िया छुपकर अपने से निर्बल जीव को ताकता है और बेखबर पर वेग से जा पड़ता है उसी प्रकार वह राजा भी अपने ओज और शीघ्रकारिता से उसी प्रकार अपने निर्बल शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ होता है । और ( रभसः भिषग् ) अति कार्य-कुशल वैद्य जिस प्रकार अपनी चुस्ती से ( सुरया ) उचित ओषधि से या सुरा के योग से ( भेषजं ) रोगहारी ओषधि को देता है और ( यशः ) धन और सुख्याति प्राप्त करता है और मरणासन्न रोगी को भी बचा लेता है उसी प्रकार ( सुरया ) उत्तम राज्यलक्ष्मी से या उत्तम सुव्यवस्था से राजा राष्ट्र शरीर में उठी अव्यवस्था का उपाय करता है और ( यशः ) यश, ऐश्वर्य और ख्याति प्राप्त करता है और ( श्रिया ) अपने ऐश्वर्य से,

ही ( मासरम् ) अपने राष्ट्र और पर-राष्ट्र को परिपक्व भात के समान भोग करता है, अथवा लक्ष्मी के बल से सब को प्रति मास वेतन भी देता है। ( पयः सोमः० इत्यादि ) पूर्ववत् ॥

होता यक्षद्वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुं भीमं न मन्युं राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामं सरस्वती भिषगिन्द्राय दुह ऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३९॥

निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—( होता ) योग्य पदाधिकारियों का नियोक्ता 'होता' नामक विद्वान् पुरुष ( वनस्पतिम् ) वट आदि महावृक्ष के समान समस्त प्रजाओं को निःस्वार्थ भाव से आश्रय देने वाले, ( शमितारम् ) वन में लगी आग को जलधाराओं से शमन करने वाले मेघ के समान संतप्त प्रजाओं को शान्ति देने वाले, ( शतक्रतुम् ) सैकड़ों प्रकार के कर्म करने में समर्थ विद्युत् के समान सैकड़ों सामर्थ्यों से युक्त और ( मन्युं न भीमं ) मन्यु, क्रोध के समान अति भयकारी ( व्याघ्रं राजानम् ) पशुओं पर व्याघ्र के समान, अन्य बड़े राजाओं पर भी आक्रमण करने में निर्भय राजा को ( नमसा ) सब को नमाने वाले दण्डाधिकार से युक्त करके और (अश्विनौ) दो मुख्य पदाधिकारियों को भी ( यक्षत् ) नियुक्त करे। ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञानपूर्ण विदुषी, विद्वत्-सभा और वेदवाणी ( इन्द्राय ) इन्द्र को ( भामम् ) असह्य क्रोध रूप तेज और ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य को ( दुहे ) प्रदान करती है। (पयः सोमः० इत्यादि) पूर्ववत्।

होता यक्षदग्निं स्वाहाज्यस्य स्तोकानां स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्यां स्वाहा मेषं सरस्वत्यै स्वाहऽऋषभमिन्द्राय सिंहाय सहसऽइन्द्रियं स्वाहाग्निं न भेषजं स्वाहा सोममिन्द्रियं स्वाहेन्द्रं सुत्रामाणं सवितारं वरुणं भिषजां

पति॑ꣳस्वाहा॒ वन॒स्पतिं॑ प्रि॒यं पाथो॒ न भे॑ष॒जꣳस्वाहा॑ दे॒वाऽआ॑ज्य॒पा जु॑षा॒णोऽअ॒ग्निर्भे॑ष॒जं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ४० ॥

निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—( होता ) पूर्वोक्त उचित पदों पर उचित पुरुषों को नियुक्त करने वाला होता नामक विद्वान् ( अग्निम् ) अग्रणी सेनापति को ( स्वाहा ) उत्तम रीति, सुख्याति और उत्तम अन्नादि वृत्ति से ( यत्तत् ) पद पर नियुक्त करे । ( आज्यस्य ) प्राप्त होने योग्य, विनयकारी सेना बल, साधन के लिये ( स्तोकानां ) छोटी वृत्ति वालों को भी ( सु-आहा ) उत्तम शिक्षा द्वारा ( यत्तत् ) नियुक्ति करे । ( मेदसां ) व्याघ्र सिंह आदि हिंसक जन्तुओं के समान एक स्थान पर मिलकर न रहने वाले हिंसाकारी पुरुषों को ( पृथक् ) सब से पृथक् ( स्वाहा ) उत्तम रीति से, उत्तम शिक्षा और व्यवस्था से नियुक्त करे । ( अश्विभ्याम् ) अश्वि, राष्ट्र में व्यापक, बड़े दो पदों के लिये ( छागम् ) प्रजाओं के दुःखों और दुष्टों के गर्वों के काटने में समर्थ पुरुष को ( स्वाहा ) उत्तम अन्न द्रव्य की वृत्ति देकर ( यत्तत् ) नियुक्त करे । ( सरस्वत्यै मेषम् ) सरस्वती, प्रशस्त ज्ञान वाली स्त्री के लिये जिस प्रकार वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष को संगत किया जाता है उसी प्रकार उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की विद्वत्सभा के लिये भी ( मेषम् ) मेष के समान प्रतिस्पर्द्धी से टक्कर लेने वाले, ज्ञान जलों के वर्षक और विजयी स्पर्द्धालु मस्तक बल से जीने वाले विद्वान् पुरुष को नियुक्त करे । ( इन्द्राय ) इन्द्र, राजा पद के लिये ( ऋषभम् ) मेघ के समान प्रजाओं पर जल के वर्षक, सर्वश्रेष्ठ, सौम्य पुरुष को ( यत्तत् ) नियुक्त करे । इसी प्रकार ( सिंहाय सहसे ) सिंह के समान बलशाली पुरुष के योग्य (सहसे) शत्रु को पराभव करने वाले बल कार्य के लिये ( इन्द्रियम् ) इन्द्र अर्थात् महाराज पद को प्राप्त करने योग्य, ऐश्वर्यवान् एवं शत्रु को पराभव करने

चाले बल से युक्त पुरुष को ( स्वाहा ) उत्तम वेतन वृत्ति, भूमि एवं यश, मान द्वारा ( यत्तत् ) नियुक्त करे। ( अग्निम् न ) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष को ( भेषजं ) दोष को दूर करने वाले औषध के समान ( स्वाहा ) उत्तम आदर से ( यत्तत् ) नियुक्त करे। ( सोमम् इन्द्रियम् ) सोम, राजा पद को भी ( इन्द्रियम् ) इन्द्र, शत्रु-नाशक बलधारी के पुरुष के समान ही ( स्वाहा ) उत्तम मान आदर से ( यत्तत् ) नियुक्त करे। ( इन्द्रम् ) शत्रुहन्ता, ( सुत्रामाणम् ) उत्तम प्रजा के रक्षक, ( सवितारम् ) सब के प्रेरक ( वरुणम् ) सर्वश्रेष्ठ सब के वरण योग्य पुरुष को ( भिषजां पतिम् ) सर्व दोषों के चिकित्सकों ज्ञानवान् पुरुषों के भी पालक बनाकर उनको ( स्वाहा ) उत्तम आदर करके उचित रीति से ( यत्तत् ) नियुक्त करे। ( प्रियम् पाथः न ) प्रिय, मनोहारी अन्न के समान, ( वनस्पति ) महावृक्ष के समान सर्वाश्रय दाता ऐश्वर्यवान् पुरुष को ( भेषजम् ) उपद्रवों के शान्त करने वाले औषध के समान जानकर ( स्वाहा ) आदर से ( यत्तत् ) रक्खे। ( देवाः ) देव, विजिगीषु लोग सभी ( आज्यपाः ) संग्राम के विजयकारि पदों के पालक हों। ( जुषाणः ) आदरपूर्वक नियुक्त ( अग्निः ) ज्ञानी विद्वान् नेता ही ( भेषजम् ) औषध के समान राष्ट्र शरीर के सब अंगों को शान्त, स्वस्थ रखता है। ( पयः सोमः० इत्यादि ) पूर्ववत्।

**होता॑ यक्षदश्विनौ॒ छाग॑स्य व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षेता॑ᳪं ह॒विर्होत॒र्यज॑। होता॑ यक्ष॒त्सर॑स्वतीं मे॒षस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षता॑ᳪं ह॒विर्होत॒र्यज॑। होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑मृष॒भस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षता॑ᳪं ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥ ४१ ॥**

त्रयो वपानां प्रैषाः ॥ सप्तलिंगोक्ता देवताः। अतिधृतिः। षड्जः ॥

**भा०**—( होता ) पदों पर योग्य अधिकारियों का नियोजक 'होता' नामक अधिकारी पुरुष ( अश्विनौ यक्षत् ) अश्वि नामक दो अधिकारी

पुरुषों को नियुक्त करे। वे दोनों ( छागस्य ) शत्रु और प्रजा के पीड़कों के उच्छेदन करने में समर्थ पुरुष की ( वपायाः ) उच्छेदन करने वाली शक्ति और ( मेदसः ) हिंसन या दण्ड देने के सामर्थ्य को ( जुषेताम् ) प्राप्त करें। हे ( होतः ) होतः ! तू उन दोनों को ( हविः ) उचित अन्न, वीर्य और अधिकार ( यज ) प्रदान कर। इसी प्रकार ( होता ) होता नामक विद्वान् ( सरस्वतीम् ) ज्ञान से पूर्ण विद्वत्सभा को ( यजत् ) नियुक्त करे। वह ( मेषस्य ) परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करने वाले विद्वान्गण के ( वपायाः ) परस्पर खण्डन मण्डन की शक्ति और ( मेदसः ) परस्पर स्नेह या परपक्ष के खण्डन की शक्ति का ( जुषेताम् ) सेवन या अभ्यास करें। ( होता इन्द्रम् यजत् ) होता 'इन्द्र' नामक शत्रुनाशक सेनापति को नियुक्त करे। वह ( ऋषभस्य ) सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च पुरुष के ( वपायाः ) दूसरे की यश कीर्त्ति के उच्छेदन करने की शक्ति और ( मेदसः ) स्पर्धा में दूसरे के नाशक बल वीर्य को ( जुषताम् ) प्राप्त करे। ( होतः ) हे होतः ! तू इस अधिकारी को ( हविः यज ) मान, अन्न, वेतन, अधिकार प्रदान कर।

गृहस्थ पक्षमें—( अश्विनौ ) स्त्री पुरुषों को होता यज्ञ करावे। परस्पर नियुक्त करे, वे ( छागस्य ) बकरे की सी उत्पादक शक्ति और परस्पर के स्नेह को करें। ( सरस्वती ) विदुषी स्त्री, वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष के ( वपायः ) बीजवपन शक्ति और स्नेह का लाभ करे। इन्द्र ऐश्वर्यवान् पुरुष ( ऋषभस्य ) श्रेष्ठ पुरुष के ( वपायाः ) ज्ञान और ऐश्वर्य और श्रेष्ठ पुरुष के समान शिष्यों और पुत्रों को स्नेह से अपने समान बनाने और देखने की प्रेममयी शक्ति को प्राप्त करे। हे ( होतः ) विद्वन् ! तू उन तीनों स्त्री पुरुष विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री और श्रेष्ठ आचार्य को (हविः यज) अन्न आदि प्रदान कर।

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥ ४२ ॥

अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—( होता ) योग्य पुरुषों को योग्य अधिकारों का प्रदाता विद्वान् पुरुष ( अश्विनौ सरस्वतीम् ) विद्या और राज्य-कार्यों में अच्छी प्रकार कुशल दो पुरुषों को और सरस्वती नामक विद्वत्सभा को, और ( इन्द्रं सुत्रामाणम् ) उत्तम रीति से राज्य के पालन करनेहारे इन्द्र, राजा को (यक्षत्) आदरपूर्वक योग्य अधिकार प्रदान करे । ( इमे सोमाः ) ये परम ऐश्वर्य सम्पन्न विद्वान्, राज पदाधिकारी जन ( सुरामाणः ) उत्तम राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होकर ( छागैः ) शत्रुनाशक, ( मेषैः ) विद्या और बल में प्रतिस्पर्द्धा वाले ( ऋषभैः ) और प्रजा में प्रतिष्ठित, उत्तम पुरुषों द्वारा ( सुताः ) अभिषिक्त होकर, ( शष्पैः ) शत्रुओं को हिंसाकारी शस्त्रों, ( तोक्मभिः ) शत्रु के व्यथादायी महास्त्रों और ( लाजैः ) विशेष दीप्तिजनक ऐश्वर्यों से ( महस्वन्तः ) बड़े भाग्यशाली, आदर और अधिकार को प्राप्त, ( मदा ) तृप्ति कर, उनके चित्तों को संतोष-जनक ( मासरेण ) प्रतिमास दिये जाने वाले वेतन, पुरस्कार आदि या अन्न आदि भोग्य सामग्री से ( परिष्कृताः ) सत्कृत, ( शुक्राः ) शुद्ध आचारवान्, ( पयस्वन्तः ) पुष्टिकारक, अन्न, दुग्ध एवं पशु आदि समृद्धि से सम्पन्न, अथवा वीर्यवान्, ( अमृताः ) अजर, आत्मज्ञानी, दीर्घायु, ( प्रस्थिताः ) उत्तम पद पर स्थित हैं । हे ऐश्वर्यवान्, विद्वान्, सौम्य पुरुषो ! ( तान् ) उन ( मधुश्चुतः ) ज्ञान को प्रदान करने वाले ( वः ) आप लोगों को ( अश्विनौ ) दोनों

प्रधान पुरुष, (सरस्वती) विद्वत्-सभा और (सुत्रामा वृत्रहा) उत्तम पालक, शत्रुनाशक (इन्द्रः) इन्द्र राजा, ये सब (जुषन्ताम्) प्रेम और आदर से प्राप्त करें। और (सोम्यं मधु) सोम्य=राष्ट्र के हितकारी ऐश्वर्य या ज्ञान को (पिबन्तु) उत्तम रीति से सुनें, प्राप्त करें। और (मदन्तु) तृप्त और सन्तुष्ट हों। और (व्यन्तु) उसको ग्रहण करें। हे (होतः) विद्वन् होतः! तू उनको (यज) अधिकार प्रदान कर।

[1]होता यक्षदश्विनौ छार्गस्य [2]हविष आत्तामद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमाना सुमत्क्षराणा शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवाश्विना जुषेता हविर्होतर्यज ॥ ४३ ॥

(१) याजुषी पंक्तिः। पंचमः। (२) उत्कृतिः। षड्जः॥

भा०—(होता) पदाधिकारों का प्रदाता (अश्विनौ) व्यापक अधिकारों वाले दो मुख्य अधिकारियों को (यक्षत्) नियुक्त करे। और वे दोनों (छागस्य) शत्रुओं के बल को नष्ट करने वाले राष्ट्र के (हविषः) उपादान योग्य अन्न आदि कर को (आ अत्ताम्) प्राप्त करें। (अद्य) अब, नित्य (मध्यतः) राष्ट्र के बीच में से (मेदः) शत्रु के बल को नाश करने वाला सेना बल (उद्भृतम्) प्राप्त किया जाय। उक्त दोनों अधिकारी (द्वेषोभ्यः पुरा) शत्रुओं के हाथ में आजाने से पूर्व और (पौरुषेय्याः गृभः पुरा) लोगों के पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त करलेने के पूर्व ही (नूनं) निश्चय से (घस्ताम्) वे उसको लेलें। कैसे अन्नों को लें सो बतलाते हैं? दोनों अधिकारी (घासे अज्राणां) अन्न में जिनका रस नष्ट न हुआ हो, जिनको भोजन के निमित्त प्राप्त किया जा सके, ऐसे (यवसप्रथमानाम्) यव, गोहूं आदि जाति के अन्नों में भी सब से

उत्तम कोटि के ( सुमत्क्षराणाम् ) उत्तम रीति से तृप्ति और आनन्द देने वाले, ( शतरुद्रियाणाम् ) सैकड़ों रुद्र नाम पदाधिकारियों द्वारा प्राप्त करने योग्य अथवा उनके निमित्त लेने योग्य, ( अग्निष्वात्तानाम् ) सूर्य रूप अग्नि से उत्तम रीति से परिपक्व, अथवा अग्नि और ज्ञानी पुरुषों द्वारा उत्तम रीति से परीक्षा करके लिये गये, ( पीवोपवसनानाम् ) आहार व्यवहार द्वारा पुष्टि करने वाले, ( पार्श्वतः ) राष्ट्र के पार्श्वों पर के बसे देशों से, ( श्रोणितः ) बीच के देशों से, ( शितामतः ) अति वीर्यवान् या विस्तृत या विशेष रूप से व्यवहित देशों से और ( उत्सादतः ) जो देश राजा के विपरीत सिर उठाते हैं उन देशों से भी अर्थात् ( अङ्गाद् अङ्गाद् ) राष्ट्र के प्रत्येक अंग से ( अवत्तानाम् ) प्राप्त किये, करों को ( अश्विनौ ) उक्त दोनों 'अश्विनामक' अधिकारीगण ( नूनम् ) अवश्य संग्रह करलें और ( जुषेताम् ) उनको सेवन करें। अथवा ( करतः एव जुषेताम् ) कर रूप से ही सेवन करें। हे ( होतः ) होतः ! तू ( हविः ) अन्न आदि ग्राह्य पद को ( यज ) प्रदान कर।

इसी प्रकार, अश्विनामक व्यापक अधिकार वाले अधिकारी गण (छागस्य ) शत्रुओं के छेद न करने वाले ( हविषः ) राष्ट्र से संग्रह करने योग्य सेना बल को ( आ अत्ताम् ) प्राप्त करें। यह सेना बल कहां से प्राप्त करें ? ( मेदः ) यह शत्रुनाशक एवं बलकारी प्रजा का अंश भी ( मध्यतः उद् भृतम् ) राष्ट्र के बीच में से उठाया जाय, प्राप्त किया जाय। कब ? (द्वेषोभ्यः पुरा) शत्रुओं के वश में चले जाने के पहले ही अर्थात्, जब प्रजा में राजा के शत्रुपक्ष प्रजा के बलवान् अंश को राजा के विपरीत संगठित करें इसके पहले ही प्रजा के बीच में से बलवान् प्रजा के अंश को अश्वि नामक अधिकारी अपनी सेना और अन्यान्य कार्यों में लगावें। और कब ? ( पुरा पौरुषेय्याः गृभः ) वे स्वयं अपने विशेष पुरुषार्थ, धनार्जन धर्मार्थ, एवं मोक्ष मार्ग के निमित्त, विशेष व्यवसाय को पकड़ें अथवा स्वयं

पुरुषार्थ करके वे कोई अधिकार या बल पकड़लें इससे भी पूर्व उनको राजकार्य में लगा लिया जाय। और वे दोनों अधिकारी ( नूनं वरताम् ) अवश्य ही इस अंश को लेही लें, उपेक्षा न करें। राष्ट्र-बल के और सेना के निमित्त जिन प्रजाजनों को लिया जाय वे किस प्रकार के हों ? ( घासे ) अन्न या राज से भोजन-वृत्ति प्राप्त करलेने पर ( अज्राणाम् ) शत्रु से कभी पराजित न होनेवाले, अथवा अन्न प्राप्त करने पर या अन्नद्वारा कभी शरीर में जीर्ण न होनेवाले, हृष्ट पुष्ट, ( यवस-प्रथमानाम् ) शत्रुओं को नाश करने में सबसे श्रेष्ठ, अथवा सबसे उत्तम यव आदि प्राप्त करने वाले, ( सुमत्-क्षराणाम् ) उत्तम हर्ष आनन्द के सेचन करनेवाले, स्वयं सुप्रसन्न, स्वामी की सदा प्रसन्नता के उत्पादक, स्वामी के सेवक, (शत-रुद्रियाणाम् ) सैकड़ों दुष्टों को रुलानेवाले, अथवा वीर सेनापतियों के अधीन, अथवा सेनापति पद के योग्य, ( पीवोपवसनानाम् ) स्थूल, मजबूत, पक्की पोशाक, कवच आदि पहनने वाले, ( पार्श्वतः ) पासों से, ( श्रोणितः ) कमर से, (शितामतः) गुह्यांग से और ( उत्सादतः ) उखड़नेवाले, निर्बल ( अङ्गात् अङ्गात् अवत्तानाम् ) प्रत्येक अंग अंग पर सुबद्ध अर्थात् छाती पर कसी पोषाक, कमर में पेटी और गुह्यांगों में लंगोट बांधने वाले, उत्साद अर्थात् विनाश योग्य, या ढीले प्रत्येक अंग को पेटी कवच आदि से बांधनेवाले, कसे कसाये वीर पुरुषों को ( करतः एव ) अवश्य प्राप्त करें। और (अश्विनौ) विद्या और अधिकार वाले जन उनको ( जुषेतां ) प्रेम से स्वीकार करें। ( होतः ) हे होतः ! अधिकार दातः ! तू ( हविः यज ) उनको अन्न और अधिकार, वृत्ति और पद प्रदान कर।

अध्यात्म में—होता, प्राणापान का साधक, प्राणापान को वश करनेहारा ( अश्विनौ ) प्राण और अपान दोनों को वश करे। वे दोनों ( छागस्य ) अज सर्वच्छेत्ता, आत्मा के ( हविषः ) बल को ( आत्ताम् ) प्राप्त करें। ( अद्य ) वह पूर्वोक्त प्राण को ( मध्यतः ) अपने

शरीर के बीच में से (उद्भृतम्) उठाया जाय। वे प्राण और अपान, अपने ग्राह्य सूक्ष्म अंशों को ( द्वेषोभ्यः पुरा, पौरुषेय्याः गृभः पुरा ) अप्रीति जनक, बाधक व्यसनों, रोगों और पुरुष देह पर आनेवाली विपत्तियों के द्वारा उन अंशों के नष्ट होने के पहले ही, ( नूनं घस्ताम् ) देह के उन अंशों को अवश्य ग्रहण करे, वश करे। वे सूक्ष्म अंश कैसे हों ? ( घासे अज्राणाम् ) अन्नरस खाने में कभी नष्ट न होनेवाले, सदा बलवान्, ( यवस-प्रथमानाम् ) मिश्रण अमिश्रण, उचित अंश के ग्रहण और हानि-कारक अंश के त्याग में श्रेष्ठ, ( सुमत्क्षराणाम् ) उत्तम हर्षजनक, ( शत रुद्रियाणां ) सैकड़ों प्राणों के स्वरूप में प्रकट, ( अग्नि-स्वात्तानाम् ) जठराग्नि द्वारा उत्तम रीति से सुपाचित्त, ( पीवोपवसनानाम् ) पुष्टिकारी आवरण में सुरक्षित, ( पार्श्वतः ) कोखों से, ( श्रोणितः ) कटि भाग से, ( शितामतः ) गुह्यांग से और (उत्सादतः अङ्गाद् अङ्गाद् अवत्तानाम्) हानि प्राप्त करनेवाले प्रत्येक मर्म अंग से उन प्राणों के सूक्ष्म अंशों को ( करतः एव ) वे प्राण और अपान क्रिया शक्ति से ही ( जुषताम् ) संचालित करें। ( होतः हविः यज ) हे साधक ! तू ! प्राण की अपान में और अपान की प्राण में हवि को प्रदान कर। अर्थात् इसी विधि से प्राणायाम का अभ्यास कर।

इस मन्त्र को उवट और महीधर ने बकरे के कोख, कमर, लिंग, गुदा आदि भागों से मांस काट २ कर अश्वि देवताओं के निमित्त आहुति करने परक अर्थ किया है। सो असंगत है। वस्तुतः इसमें अश्विनाम व्यापक बड़े अधिकारी लोगों को नियुक्त करने और सेनाबल के निमित्त सैनिक लेने एवं अध्यात्म में, प्राणापान द्वारा शरीर को पुष्ट करने के नियमों का उपदेश किया है।

( १ ) 'छागस्य'—छ्यतेश्छेदनार्थाद् धातोरौणादिको गन् प्रत्ययः। छ्यति छिनत्ति इति छागः। इति दया० उणादि०। छापूखडिभ्यः कित्।

उणादिसूत्रम् । १ । १२४ ॥ छो छेदने । दिवादिः । छोगुग् ह्रस्वश्च इति कत् प्रत्यये गुगागमोह्रस्वश्च उणादि० १ । १०४ ॥ छ्यति छिनत्तीति छगलः छागः बर्करो वा इति दया० उणादि० ।'अजः'—न जायते इत्यजः । अजति गच्छति, व्याप्नोति इत्यजः ।अथ यः सः कपाले रसो लिप्त आसीदेष सोऽअजः । श० ६ । ३ । १ । २८ ॥ ब्रह्म वा अजः श० ७ । ५ । २ । २१ ॥ प्रजापति र्वा एष यदजपंभः । श० ५ । २ । १ । २४ ॥

'मेदः'—मिद मेद मेधा हिंसनयोः । भ्वादिः । मेदो वा मेधः । श० ३ । ८ । ४ । ६ ॥ मेधाय अन्नायेत्येतत् । श० ७५ । २ । ३२ ॥ ते मेधं (देवाः) खनन्त इवान्वीयुस्तमन्वविन्दन् ताविमौ व्रीहियवौ । मेधो वा आज्यम् । तै० ३ । १ । १२ । १ ॥

'अघ्राणां'—यैरजितं स्वेच्छया, यान्यजराणि वा इत्युवटः ।

[1]होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य [2]हुविषऽआवयद्द्य मध्यतो मेद्ऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्नूनं घासेऽअंज्राणां यवसप्रथमानाᳪ सुमत्क्षराणाᳪ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवᳪ सरस्वती जुषतांᳪ हुविर्होतुर्यज ॥ ४४ ॥

(१) याजुषी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥ (२) स्वराट् उत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—( होता ) अधिकार प्रदाता अधिकारी ( सरस्वतीम् ) पूर्वोक्त विद्वत्सभा को ( यक्षत् ) संयोजित करे । वह ( मेषस्य ) ज्ञान और बलमें प्रतिस्पर्द्धा करने वाले विद्वान् के ( हविः ) ग्रहण करने योग्य ज्ञान बल को ( आवयत् ) प्राप्त करें । ( मध्यतः मेदः उद्भृतम् ) विद्वानों के बीच में से मेधा ज्ञानवती वाणी का बल उत्पन्न होता है । वह भी पूर्वोक्त रीति से ही (पुरा द्वेषोभ्यः. पुरा पौरुषेय्याः गृभः) शत्रुओं के हाथ में जाने और उनके अपने उदरों में लगने से पहले ही (घस्नन् नूनं) उनको अवश्य

प्राप्त करले । ( घासे अज्राणां ) अन्नादि वृत्ति पाने पर कभी जीर्ण न होने वाले, सदा विजयी, ( यवसप्रथमानाम् ) सब से प्रथम अन्न प्राप्त करने वाले. ( सुमत्क्षराणां ) उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाले, ( शतरुद्रियाणां ) सैकड़ों ज्ञान स्तुतियों को देने वाले ( अग्नि-स्वात्तानाम् ) ज्ञानवान् आचार्य द्वारा सुशिक्षित, ( पीवोपवसनानाम् ) दृढ़ता से निवास करने वाले, ( पार्श्वतः श्रोणितः शितामतः उत्सादतः अङ्गाद् अङ्गाद् अवत्तानां ) देश के समस्त भागों से प्राप्त, अथवा पार्श्व, कमर, लिङ्ग, और मर्म के अंगों अंगों में दृढ़, अर्थात् जितेन्द्रिय पुरुषों को ( करत् ) नियुक्त करे। ( सरस्वती एवं जुषताम् ) विद्वत् सभा इस प्रकार राष्ट्र के कार्य को स्वीकार करे । हे ( होतः हविः यज ) विद्वन् ! तू अधिकार और वेतनान्न प्रदान कर ।

[1]होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष[2] आवयदद्य मध्यतो मेद॒ऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस॑न्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳪं सुमत्क्षराणाᳪं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानाम्पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताᳪं हविर्होतर्यज ॥ ४५ ॥

( १ ) भुरिक् प्राजापत्या उष्णिक् । ( २ ) भुरिगभिकृतिः ॥ ऋषभः ॥

भा०—( होता इन्द्रम् यक्षत् ) पूर्वोक्त अधिकारप्रदाता पुरुष इन्द्र नाम पदाधिकारी सेनानायक या राजा को नियुक्त करे । वह इन्द्र नाम पदाधिकारी ( ऋषभस्य ) ज्ञानवान्, सर्वश्रेष्ठ पुरुष के ( हविषः ) ग्रहण-योग्य अधिकार और अन्नादि भृति को ( आवयत् ) प्राप्त करे । ( अद्य मध्यतः० ०यज । इत्यादि ) पूर्ववत् ।

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित । यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य

हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयसऽइव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषताᳪं हविर्होतर्यज ॥ ४६ ॥

भुरिगभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः ॥

भा०—( होता ) योग्य पदाधिकारों का दाता 'होता' नामक विद्वान्, ( वनस्पतिम् ) वनस्पति, महावृक्ष के समान अपने आश्रितों के पालक बड़े उच्च पदाधिकारी को ( यक्षत् ) नियुक्त करे। और जिस प्रकार (पिष्टतमया) अत्यन्त कूट पीस कर बनाये महान २ सूतों से बनी और ( रभिष्ठया ) और खूब दृढ़ता से बांधने वाली, मज़बूत, ( रशनया ) रस्सी से पशु को बांधते हैं, उसी प्रकार उस मुख्य प्रजापालक सर्वाश्रय राजा को भी खूब ( पिष्टतमया ) अधिक पिसी या अति सुविचार और विवेक और तर्कद्वारा निर्धारित और ( रभिष्ठया ) अति दृढ़ता से बांधने वाली ( रशनया ) अतिव्यापक राजानियमव्यवस्था से राजा और अधीन पदाधिकारियों को ( हि अभि-अधित ) निश्चय से बांधे। उनको कहां नियुक्त करे ? ( यत्र ) जिस स्थान पर ( अश्विनोः छागस्य ) पूर्वोक्त व्यापक, राष्ट्र के अधिकारी मुख्य दो पुरुषों के अधीन दुष्टों के छेदन करने वाले शूर पुरुष को ( हविषः ) देने योग्य पदाधिकार ( प्रियाणि ) अति प्रिय, उसके मन के अनुकूल, हितकर, उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले ( धामानि ) स्थान, या पद हों उनपर। और ( यत्र सरस्वत्याः ) जहां सरस्वती नाम विद्वत्सभा के ऊपर ( मेषस्य ) नियुक्त अतिविद्वान्, ज्ञानी पुरुष के ( प्रिया धामानि ) मनोनुकूल पद हों,

और यत्र ( इन्द्रस्य ऋषभस्य ) ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष सभापति के ( प्रिया धामानि ) मनोनुकूल पद हों, और ( यत्र अग्नेः ) जहां अग्रणी नायक, विद्वान् आचार्य आदि के अधीन ( प्रिया धामानि ) उनके मन के अनुकूल पद हों, इसी प्रकार यत्र, ( सोमस्य ) सोम, सर्व प्रेरक राजा, के ( सुत्राम्णः इन्द्रस्य ) उत्तम पालक, शत्रुनाशक इन्द्र के, ( सवितुः ) सर्व-प्रेरक, एवं उत्पादक सविता के ( वरुणस्य ) सर्व कष्टों के वारक, दुष्टों के नाशक, सब के वरणीय पुरुष के, ( वनस्पतेः ) वट आदि के समान प्रजा के आश्रयरूप पुरुष के, और ( यत्र ) जहां ( आज्यपानाम् ) विजय साधन शास्त्रास्त्रों के पालक, ( देवानाम् ) विजयशील पुरुषों के और ( यत्र अग्नेः होतुः ) जहां सब विज्ञानों के प्रकाशक, सब को पदाधिकारों के प्रदाता होता नामक अधिकारी के ( प्रिया धामानि ) उन २ अधिकारियों के मनोनुकूल पद और ( प्रिया पाथांसि ) प्रिय, अन्नादि द्रव्य, या पालन करने योग्य सेवा स्थान हों ( तत्र ) उन २ स्थानों पर ( एतान् ) इन २ नाना पदाधिकार योग्य २ पुरुषों को ( प्रस्तुत्य इव ) स्वयं बुला २ कर, सब के समक्ष आदर २ पूर्वक दर्शन करा कर उन को प्रस्तुत कर २ के, या प्रस्ताव करके और ( उपस्तुत्य च ) साथ ही उनके सम्बन्ध में उत्तम परिचय करा कर, या उनका समर्थन करके ( उप अव अस्रक्षत् ) उन २ मुख्य पदाधिकारियों के अधीन स्थापित करे। और उनको भी ( रभीयसः इव ) खूब नियम में प्रबद्ध, एवं कार्यकुशल ( कृत्वी ) बना कर स्वयं ( वनस्पतिः ) आश्रय वृक्ष के समान सर्वाश्रयदाता, वनस्पति नामक पद पर स्थित मुख्य पुरुष ( करद् ) अपने राष्ट्र में नियुक्त करे। ( एवं ) इस प्रकार ( देवः वनस्पतिः ) विजिगीषु राजा, या सबको अधिकार देनेवाला, ( वनस्पतिः ) सर्वाश्रय, मुख्य पदाधिकारी ( हविः जुषताम् ) ग्रहण करने योग्य पद और राष्ट्र को स्वीकार करे। हे ( होतः यज ) होतः ! तू उसको यह पद प्रदान कर।

किसी व्यक्ति को कोई पदाधिकार या सभासद् पद प्रदान करने के पूर्व उसका परिचय और गुणस्तुति आवश्यक है। इसी को वेद 'प्रस्तुत्य, उपस्तुत्य' कहता है। प्रथम 'प्रस्ताव' हो उसके पश्चात् 'उपस्ताव' या समर्थन हो।

[1]होता यक्षद्ग्निꣳस्विष्टकृतम् [2]अयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथाꣳस्ययाड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षद्ग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतामेज्याऽइषः कृणोतु सोऽअध्वरा जातवेदा जुषताꣳहविर्होतर्यज ॥ ४७ ॥

१. गुरिगाकृतिः । ( २ ) आकृतिः । पञ्चमः ॥

भा०—( होता ) पूर्वोक्त अधिकार प्रदाता विद्वान् पुरुष ( स्विष्टकृतम् ) स्विष्टकृत, राज्यरूप सुव्यवस्थित राष्ट्र के संचालन की न्यूनाधिकता को पूर्ण करने वाले और सर्वाश्रय क्षत्रपति, ( अग्निम् ) अग्रणी तेजस्वी, ज्ञानी, विद्वान् पुरुष को भी ( यक्षत् ) आदर से नियुक्त करे। वह ( अग्निः ) नेता, क्षात्र बलका नायक पुरुष भी ( अश्विनोः ) उक्त अश्विनाम पदाधिकारी जनों के ( छागस्य हविषः ) शत्रु नाशक साधन के ( प्रिया धामानि ) अनुकूल पदों को ( अयाट् ) सुव्यवस्थित करे। वह ( सरस्वत्याः मेषस्य हविषः ) सरस्वती नाम विद्वत्सभा के ज्ञान प्रतिस्पर्द्धी नायक के ( प्रिया धामानि ) मनोनीत पदों को सुसंगत करे। वह ( इन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः ) इन्द्र पद पर बैठे, सर्व श्रेष्ठ पुरुष के मनोनीत पद को ( अयाट् )

सुसंगत करे । इसी प्रकार ( अग्नेः, सोमस्य, सुत्राम्णः इन्द्रस्य, सवितुः ) अग्नि, सोम, उत्तम रक्षक सेनापति इन्द्र, और सविता नाम मुख्य पदाधिकारियों के ( प्रिया धामानि अयाट् ) मनोनुकूल प्रिय पदों को या तेज, और वीर्यों को प्राप्त करे करावे । वह ( वनस्पतेः प्रिया पाथांसि अयाट् ) वनस्पति नामक अधिकारी के प्रिय, अधिकारों को प्राप्त करावे । ( आज्यपानां देवानाम् ) युद्धोपयोगी सामग्री के रक्षक देव, विजयी पुरुषों के या ज्ञान के रक्षक विद्वानों के ( प्रिया धामानि यक्षत् ) प्रिय अधिकारों को प्राप्त करावे । ( होतुः अग्नेः ) सब के अधिकारों को प्रदान करने वाले नेता पुरुष के भी ( प्रिया धामानि यक्षत् ) प्रिय, मनोनुकूल अधिकारों को प्राप्त करावे । इस प्रकार वह 'स्विष्ट कृत्' अग्रणी नेता 'अग्नि' ( स्वम् ) अपने ( महिमानम् ) महान् सामर्थ्य को ही ( आयजताम् ) सब को प्रदान करे । और वही ( एज्याः ) प्रदान करने योग्य ( इषः ) अभिलषित वेतन और अन्नादि सामग्री ( कृणोतु ) उत्पन्न करता है । ( सः ) वह ही ( जातवेदाः ) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी होकर ( अध्वरा ) प्रजा का पालन करने वाले राज्यों को ( जुषताम् ) सेवन करे, प्राप्त करे । हे ( होतः हविः यज ) होतः ! तू उसको ( हविः ) उचित अधिकार ( यज ) प्रदान कर ।

'स्विष्टकृतम्':—क्षत्रं वै स्विष्टकृत् । श० १२ । ८ । ३ । १६ ॥ तपः स्विष्टकृत् । श० ११ । २ । ७ १६ ॥ अयमेवावाङ् प्राणः स्विष्टकृत्- शत० ११ । १ । ६ । ३० ॥ वास्तु स्विष्टकृत् श० १ । ७ । ३ । १८ ॥ प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत् । ऐ० २ । १० ॥

स्विष्टम्—यद्वै यज्ञस्य न्यूनातिरिक्तं तत्स्विष्टम् । श० ११ । २ । ३ । १६ ॥ क्षत्रं वै स्विष्टकृत् । क्षत्रेणैवैनमेतदभिषिञ्चति । सोमो वै वनस्पतिरग्निः स्विष्टकृत् । अग्नीषोमाभ्यामेवैनमेतत् परिगृह्याभिषिञ्चति । तस्माद्ये चैते

विदुर्ये च न, त आहुः क्षत्रियो वाव क्षत्रियस्याभिषेक्ता । इति ॥ श० १२ । ८ । ३ । १९ ॥

दे॒वं ब॒र्हिः सर॑स्वती सु॒दे॒वमिन्द्रे॑ऽअ॒श्विना॑ । तेजो॒ न चक्षु॑र॒क्ष्योर्ब॒र्हिषा॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ४८ ॥

( ४८—५९ ) सरस्वत्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः

भा०—( सरस्वती ) उत्तम बल वीर्य, और ज्ञानवती स्त्री जिस प्रकार ( देवं ) अपने कामना योग्य पति को ( बर्हिः ) आसन, या विष्टर प्रदान करती है उसी प्रकार ( सरस्वती ) विद्वत्-सभा ( सुदेवम् ) उत्तम राजा को ( बर्हिः ) बृहत् राष्ट्र या प्रजा के ऊपर शासन पद प्रदान करे। ( अश्विनौ ) सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार ( अक्ष्योः चक्षुः न ) दोनों आंखों को दर्शन शक्ति प्रदान करते हैं उसी प्रकार ( अश्विनौ ) उक्त मुख्य विद्वान् एवं व्यापक शक्तिमान् 'अश्वि' नामक अधिकारी दोनों ( इन्द्रे ) ऐश्वर्यवान् राजा में ( तेजः इन्द्रियं दधतुः ) तेज और ऐश्वर्य को प्रदान करें। और दो अश्विन्, और सरस्वती तीनों मिलकर ( इन्द्रे ) राजा और राष्ट्र में ( बर्हिषा ) इस प्रजामय राष्ट्र के महान् पद या प्रजागण द्वारा ही ( वसुधेयस्य ) ऐश्वर्य, धन समृद्धि के रक्षा स्थान कोष के योग्य धनको ( वसुवने ) धन समृद्धि प्राप्त करने वाले राजा के लिये स्वयं ( व्यन्तु ) प्राप्त करें। हे ( होतः ) अधिकार प्रदातः ! तू ( यज ) उनको वह अधिकार प्रदान कर।

दे॒वीर्द्वारो॑ऽअ॒श्विना॑ भि॒षजेन्द्रे॒ सर॑स्वती । प्रा॒णं न वी॒र्य्यं न॒सि द्वारो॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ४९ ॥

भाकृत्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—( सरस्वती ) सुशिक्षिता स्त्री जिस प्रकार ( इन्द्रे ) अपने सौभाग्यवान् पति के लिये ( देवीः ) प्रकाशवाले, उत्तम सजे ( द्वारः ) द्वारों को खोल देती है उसी प्रकार ( सरस्वती ) विद्वत्सभा

( इन्द्रे ) राजा के लिये ( देवीः द्वारः ) उत्तम शोभा से युक्त द्वारों और विजयशील शत्रुवारक शक्तियों को खोलती, प्रकट करती है। और ( अश्विना ) प्राण और अपान जिस प्रकार ( नासि प्राणं न दधतुः ) नासिका में प्राण का स्थापन करते हैं उसी प्रकार ( भिषजा अश्विना ) रोग चिकित्सक, विद्यापारंगत अश्वि नामक वैद्य या पूर्वोक्त राष्ट्र शरीर के दोषों, उपद्रवों को शान्त करने वाले दोनों अधिकारी गण ( नासि प्राणं न ) नाक में प्राण के समान ही मुख्य पुरुष में ( वीर्यं दधुः ) वीर्य, इन्द्रिय, राजा के ऐश्वर्यों और बलको धारण कराते हैं। और वे तीनों मिलकर ( वसुधेयस्य वसुवने ) कोश के निमित्त धन को धनाभिलाषी राजा के लिये ( व्यन्तु ) प्राप्त करावें। और हे होतः ! तू उनको ( यज ) अधिकार प्रदान कर।

देवीऽउषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती। बलं न वाचमास्यऽउषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५० ॥

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा० —( सरस्वती देवी उपासा ) स्त्री जिस प्रकार प्रकाशमान प्रातः और सायं दोनों कालों को ( इन्द्रे ) उत्तम परिपालक पति के निमित्त अर्पण करती है उसी प्रकार ( सरस्वती ) विद्वत्सभा ( उपासा देवी ) दिव्य गुणवाली दिन रात्रि प्रातः सायं दोनों कालों को ( इन्द्रे ) इन्द्र, राजा के निमित्त व्यय करे। और (सुत्रामा) उत्तम रक्षक स्वरूप (अश्विना) प्राण और उदान जिस प्रकार शरीर में ( आस्ये वाचम् ) मुख में वाणी को धारण कराते हैं उसी प्रकार उक्त अश्वी नामक पदाधिकारी ( उषाभ्याम् ) दोनों कालों, दिन और रात ( बलं दधतुः ) बल को धारण करावें। और ( इन्द्रियं वसुवने० ) इत्यादि पूर्ववत्।

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्। श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५१ ॥

भा०—( सरस्वती ) पूर्वोक्त सरस्वती ( देवी जोष्ट्री ) गृहदेवी पति के प्रति अति प्रेमवती होकर जिस प्रकार उसको बढ़ाती है उसी प्रकार विद्वत्सभा और ( अश्विनौ ) प्राण और अपान जिस प्रकार ( इन्द्रम् ) आत्मा को बढ़ाते हैं और ( कर्णयोः ) कानों में ( श्रोत्रं न ) श्रवणेन्द्रिय के समान ( यशः ) उत्तम ख्याति को उक्त तीनों ( जोष्ट्रीभ्रां दधुः ) प्रेम और सेवा करनेवाली प्रजा और राजवर्ग दोनों से धारण कराते हैं इस प्रकार वे ( इन्द्रियं दधुः ) ऐश्वर्य को भी प्रदान करते हैं। वे तीनों ( वसुवने ) धनवान् राजा के लिये ( वसुधेयस्व ) ऐश्वर्य को ( व्यन्तु ) प्राप्त करें। हे होतः ! तू उनको ( यज ) पदाधिकार दे।

देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः। शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥५२

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( सरस्वती ) स्त्री जिस प्रकार सायं प्रातः दोनों समय ( इन्द्रे ) अपने पति के लिये ( देवी ) उत्तम गुणवाली, मन को लुभाने वाली ( ऊर्जाहुती ) अन्न की थाली प्रदान करती है। उसी प्रकार ( सरस्वती ) विद्वत्सभा ( इन्द्रे ) राजा के निमित्त ( देवी ) उत्तम गुणों वाली होकर ( दुघे ) बलकारक (ऊर्जाहुती) अन्न और वीर्य के आहुतियों को प्रदान करती है। और ( सुदुघा ) उत्तम रीति से समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले ( अश्विना ) दोनों अश्वी नामक अधिकारी ( भिषजा ) दो वैद्यों के समान (अवतः) इन्द्र, अर्थात् राजा और राज्य की रक्षा करते हैं। और स्त्री जिस प्रकार ( स्तनयोः शुक्रं न ) स्तनों में दूध धारण करती है और प्राण और अपान जिस प्रकार शरीर में ( ज्योतिः ) कान्ति को या दिन रात्रि जिस प्रकार द्यौ और पृथिवी के बीच में कान्तिमान् ( ज्योतिः ) सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार वे तीनों

( ज्योतिः ) तेज और पराक्रम को और ( आहुती ) अन्नाहुति और वीर्याहुति दोनों प्रकार की आहुतियों द्वारा ( इन्द्रे इन्द्रियं धत्त ) राजा और राष्ट्र में ऐश्वर्य और राजोचित बल ( धत्त ) धारण करावें। वे ( वसुवने ) राष्ट्र-सम्पत्ति के भोक्ता राष्ट्रपति के लिये ( वसुधेयस्य ) धन कोश को ( व्यन्तु ) प्राप्त करें। हे होतः! उनको ( यज ) तू अधिकार प्रदान कर।

**दे॒वा दे॒वानां॑ भि॒षजा॒ होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑। व॒ष॒ट्का॒रैः सर॑स्वती॒ त्विषिं॒ न हृद॑ये म॒तिꣳ होतृ॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५३ ॥**

अतिजगती। निषादः ॥

भा०—( सरस्वती देवानां होतारौ देवौ ) स्त्री जिस प्रकार विद्याप्रेमियों को विद्या प्रदान करनेवाले गुरु और उपदेशक दोनों को अपने पति के बढ़ाने के लिये ( वषट्कारैः ) सत्कारपूर्वक अन्नादि प्रदान करके सत्कार करती है उसी प्रकार ( सरस्वती ) विद्वत्सभा ( वषट्कारैः ) राष्ट्र के निमित्त सन्धि आदि छहों कार्यों द्वारा ( दैव्यौ होतारौ ) उत्तम विद्वान् कर्म-शिक्षा और ज्ञान देनेवाले दो विद्वानों को नियत करे और ( इन्द्रम् अवर्धयत् ) इन्द्र राजा की वृद्धि करे। और जिस प्रकार ( भिषजा अश्विना ) वैद्यों के समान प्राण और उदान शरीर में ( होतृभ्यां ) आदान और प्रतिदान करनेवाले बलों से ( हृदये मतिम् ) मस्तक में मनन शक्ति की रक्षा करते हैं उसी प्रकार ( अश्विनौ ) वे दोनों अश्विनामक अधिकारी और सरस्वती नाम विद्वत्सभा राष्ट्र में ( त्विषिं ) उग्र तेज ( होतृभ्याम् ) उक्त प्रकार के दोनों विद्वानों द्वारा और ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य को ( दधुः ) स्थापन करें। और ( वसुवने० इत्यादि ) पूर्ववत्।

**दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीर॒श्विनेडा॒ सर॑स्वती। शूषं॒ न मध्ये॒ नाभ्या॒-**

मिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५४ ॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( सरस्वती इन्द्राय यथा तिस्रः देवीः ) स्त्री जिस प्रकार अपने पति के लिये अन्न, कान्ति और उत्तम वाणी तीनों अभिलषणीय शक्तियों का प्रयोग करती है, उसी प्रकार ( इन्द्राय सरस्वती तिस्रः देवीः ) राजा के लिये विद्वत्सभा भी तीनों प्रकार की सभाओं की स्थापना करे। और ( अश्विनौ ) अश्वि नामक अधिकारी, और ( इडा ) इडा नाम भूमि की प्रबन्ध-कारिणी सभा तीनों ( नाभ्यां मध्ये शूषं न ) नाभी के बीच में बल के समान ( इन्द्रियं दधुः ) वीर्य को धारण करें। और ( वसुवने० इत्यादि ) पूर्ववत्।

देवऽ इन्द्रो नराशꣳसंस्त्रिवरूथस्सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः। रेतो न रूपमृमृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५५ ॥

स्वराट् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—( देवः ) विजिगीषु विद्वान् ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् ( नराशंसः ) समस्त जनों से स्तुति योग्य, राजा ( त्रिवरूथः ) अपने तीनों तरफ़ तीन शत्रुवाहक सेनाओं सहित होकर ( सरस्वत्या अश्विभ्याम् ) सरस्वती, और दोनों अश्वीनामक अधिकारी इन तीनों से ( त्रिवरूथः रथ इव ) तीन छज्जों से सुरक्षित रथ के समान ( ईयते ) प्रतीत होता है। ( त्वष्टा ) शिल्पी, बढ़ई जिस प्रकार ( इन्द्राय रूपम् इन्द्रियाणि दधत् ) ऐश्वर्यवान् स्वामी के लिये रुचिकर सुन्दर, पदार्थ, और नाना ऐश्वर्य के योग्य बहुमूल्य पदार्थ बनाता है और जिस प्रकार ( त्वष्टा ) जगत् का कर्त्ता परमेश्वर ( इन्द्राय ) जीव के भोग के लिये ( अमृतम् ) अमृत स्वरूप, ( जनित्रम् ) सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ ( रेतः न ) वीर्य को और ( इन्द्रियाणि )

चक्षु, नाक, कान आदि इन्द्रियों को ( दधत् ) शरीर में रचता है ( न ) उसी प्रकार ( त्वष्टा ) नाना शिल्पों का विज्ञ, विश्वकर्मा, अधिकारी (इन्द्राय) राजा के भोग के लिये ( रूपम् ) सुन्दर २ भवन, आभूषण युक्त पोषाक और ( इन्द्रियाणि ) नाना राजोचित ऐश्वर्य, यन्त्र कौशल आदि प्रदान करता है। ( वसुवने० इत्यादि ) पूर्ववत्।

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णोऽअश्विभ्या॑ सरस्वत्या सुपिप्पल ऽइन्द्राय पच्यते मधु। ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५६ ॥

निचृदत्यष्टिः। गान्धारः ॥

भा०—( वनस्पतिः ) महावृक्ष वट, गूलर आदि जिस प्रकार बहुतों को आश्रय देता है उसी प्रकार समस्त प्रजाजनों को आश्रय देनेवाला पुरुष, अथवा वृक्ष समूहों के समान सघन सैनिक दलों का पति ( देवः ) विजयशील सेनापति स्वयं ( देवैः ) विजयेच्छु सैनिकों से ( हिरण्यवर्णः ) सुवर्ण के पत्रों या सुन्दर पत्रों से सजे वृक्ष के समान और ( सुपिप्पलः ) उत्तम पालन सामर्थ्यों से उत्तम बलवान् ( अश्विभ्यां सरस्वत्या च ) अश्वि-गण और सरस्वती, विद्वत्-सभा द्वारा ( इन्द्राय ) सम्राट् के लिये ( मधु पच्यते ) मधुर रस के समान उत्तम बल को परिपक्व करता है। वह ( ऋषभः वनस्पतिः ) सर्वश्रेष्ठ बलवान् वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट 'वनस्पति,' सेनापति ( ओजः न, भामं न ) देह में स्थित ओज और क्रोध के समान राष्ट्र में भी ( ओजः भामं ) पराक्रम और तेजस्विता को और ( इन्द्रियाणि ) शरीर के इन्द्रियों के समान राष्ट्र में नाना ऐश्वर्यों को ( दधत् ) धारण करावे। ( वसुवने० इत्यादि ) पूर्ववत्।

अग्निर्वै वनस्पतिः। कौ० १० । ६ प्राणो वै वनस्पतिः। कौ० १२ । ७ ॥

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या

स्योनमिन्द्र ते सदः । ईशायै मन्युꣳराजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५७ ॥

भा०—माता पिता द्वारा ( ऊर्णम्रदाः स्तीर्णवर्हिः ) ऊन के समान कोमल बिछाया आसन जिस प्रकार ( सदः ) वर के बैठने का आसन होता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! ( वारितीनाम् ) संकटों और शत्रु के आक्रमणों को निवारण करने वाली सेनाओं के ( अध्वरं ) राज्य पालन के कार्य में ( सरस्वत्याः अश्विभ्याम् ) सरस्वती और अश्वि नामक प्रधान पदाधिकारियों द्वारा ( स्तीर्णम् ) विस्तृत ( अध्वरे ) यज्ञ में या गृह में ( सरस्वत्या अश्विभ्याम् ) विदुषी कन्या और उसके द्वारा किया गया ( देवं ) ज्ञान और उत्तम गुणों से युक्त, भव्य ( वर्हिः ) प्रजारूप राष्ट्र या जनपद ( ते ) तेरे लिये ( ऊर्णम्रदाः ) ऊन के समान कोमल एवं आच्छादक या राजा के गुणों के आच्छादन करनेवाले लोगों को मर्दन करे देनेवाले ( स्योनं सदः ) सुखकारी आसन के समान आश्रय हो। सरस्वती और दोनों अश्विगण ( मन्युम् ) शत्रुओं का स्तम्भन करनेवाले (राजानम् ) राजा को ( ईशायै ) राष्ट्र के शासन करने के लिये ( इन्द्रियं ) ऐश्वर्य को ( दधुः ) धारण कराते हैं । ( वसुवने० इत्यादि ) पूर्ववत् ।

क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरे वर्हिः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥ अयं वै लोको वर्हिः । श० १ । ४ । १ । २४ ॥ प्रजा वै वर्हिः । कौ० ५ । ७ ॥

गृहस्थपक्ष में—पशवो वै वर्हिः । ऐ० २ । ४ ॥

[1]देवोऽअग्निः स्विष्टकृद् देवान्यक्षद्यथायथꣳ होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचꣳ सरस्वतीमग्निꣳ सोमꣳ स्विष्टकृत् स्विष्टऽ इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा आज्यपाः [2]स्विष्टोऽअग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिꣳ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५८॥

भा०—( स्विष्टकृत् ) उत्तम रीति से अधिकार प्रदान करनेवाला ( देवः अग्निः ) विद्वान् अग्रणी पुरुष ( देवान् यक्षत् ) अन्य विद्वान्, विजयशील, एवं इच्छानुकूल पुरुषों को ( यक्षत् ) नियुक्त करे। ( होतारौ ) अधिकार प्रदान करनेवाले ( अश्विना ) अश्वि नामक व्यापक अधिकार वाले विद्वान् पुरुष ( वाचा ) अपनी आज्ञा रूप वाणी से ( इन्द्रम् ) इन्द्र ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष को नियुक्त करते हैं। वे ही (वाचम्) व्यवस्था-पुस्तक, वाणी का विधान करते हैं। वे ही ( सरस्वतीम् ) विद्वत्—सभा को, (अग्निम्) अग्रणी, सेनापति को, और (सोमम्) ऐश्वर्यवान् राजा को, नियुक्त करते हैं। ( स्विष्टकृत् स्विष्टः ) उत्तम शासक पुरुष भी उत्तम आदर के पद को प्राप्त हो। ( सुत्रामा इन्द्रः ) उत्तम रक्षक इन्द्र नामक पदाधिकारी, ( सविता, वरुणः भिषग् ) सविता, वरुण और चिकित्सक, ( देवः वनस्पतिः ) वनस्पति नामक विजेता, ये सब ( इष्टः ) उचित आदर प्राप्त करें। ( आज्यपाः देवाः ) बल वीर्य के रक्षक विद्वान् पुरुष ( स्विष्टाः ) उत्तम आदर प्राप्त करें। ( अग्निना ) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष द्वारा ही ( अग्निः ) उसी प्रकार का तेजस्वी पुरुष ( स्विष्टः ) उत्तम रीति से आदर पद प्राप्त करे। और ( होता ) अधिकार दाता पुरुष ( होत्रे ) अन्य अधिकार दाता पुरुष को ( स्विष्टकृत् ) उत्तम आदर मान देनेवाला हो। और वह ( यशः ) यश, ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य ( ऊर्जम् ) उत्तम अन्न, बल, पराक्रम, ( अपचितिम् ) आदर पूजा, ( स्वधाम् ) अन्न वेतनादि ( दधत् ) प्रदान करे। ये सभी ( वसुवने ) ऐश्वर्य के अधिकारी बड़े राजा के कार्य के लिये ( वसुधेयस्य व्यन्तु ) उचित धनैश्वर्य प्राप्त करें। हे होतः! ( यज ) उन सबको अधिकार और वेतनादि प्रदान कर।

अग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न् पु॒रो॒डा॒शा॑न् ब॒ध्नन्न॒श्विभ्या॒ञ्छाग॒ꣳ सर॑स्वत्यै मे॒षमिन्द्रा॑य ऋ॒ष॒भꣳ सुन्व-

अश्विभ्या॑ᳪ सर॑स्वत्या॒ऽइन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ सुरा॒सोमा॑न् ॥ ५९ ॥

धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—( अद्य ) आज, अब, नित्य ( अयं यजमानः ) यह यजमान, सब राज्यव्यवस्था को सुसंगत करने और सबको पदाधिकार देनेवाला राजा ( अग्निम् ) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को ( होतारम् ) 'होता' पद के लिये ( अवृणीत ) वरण करता है । और वह यजमान, ( पक्तीः ) नाना कर्मों के बदले में देने योग्य प्रति फलों को और ( पुरोडाशान् ) काम करने के पूर्व ही पेशगी देने योग्य पदार्थों को ( पचन् २ ) पकाता या नियत करता हुआ उनको पक्का करता हुआ और ( अश्विभ्यां ) पूर्वोक्त अश्वि नामक व्यापक या बड़े पद के अधिकारियों के कार्य के लिये ( छागम् ) छेदन भेदन में कुशल पुरुष को और ( सरस्वत्यै ) सरस्वती, विद्वत्सभा के लिये ( मेषम् ) प्रतिपक्षी की स्पर्द्धा में बोलने वाले पुरुष को और ( इन्द्राय ) इन्द्र, सेनापति पद के लिये, या राष्ट्र के संचालक पद के लिये ( ऋषभम् ) सर्वश्रेष्ठ पुरुष को ( बध्नन् ) बड़े वेतन पर बांधता हुआ और ( अश्विभ्यां ) अश्वियों, ( सरस्वत्यै ) सरस्वती, विद्वत्सभा और ( सुत्राम्णे इन्द्राय ) उत्तम त्राणकारी, सुरक्षक इन्द्र पद के लिये ( सुरासोमान् ) राज्य-लक्ष्मी और राष्ट्र के अंशों को, या ( सुरासोमान् ) स्त्री पुरुषों को, या अभिषेक क्रिया से अभिषिक्त पुरुषों को ( सुन्वन् ) नाना पदों पर अभिषिक्त करता हुआ 'होता' का वरण करता है ।

सू॒प॒स्थाऽ अ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभवद॒श्विभ्यां॒ छागे॑न॒ सर॑स्वत्यै मे॒षेणेन्द्रा॑य ऽऋष॒भेणाक्षँ॒स्तान् मे॑द॒स्तः प्रति॑ पच॒ताग्रृ॑भीष॒तावी॑वृधन्त पुरो॒डाशै॒रपु॑र॒श्विना॒ सर॑स्व॒तीन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ सुरा॒सोमा॑न् ॥६०॥

धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—( अद्य ) आज, अब, अभिषेक हो चुकने और पदाधिकारियों

के नियुक्त हो जाने पर, ( वनस्पतिः ) वट आदि महावृक्ष के समान समस्त प्राणियों को अपनी सुख देने वाली छत्रछाया में रखने हारा ( देवः ) राजा ( अश्विभ्यां ) मुख्य अधिकारियों के निमित्त स्थापित (छागेन) संशय छेदन करने वाले विद्वान् द्वारा और (सरस्वत्यै) सरस्वती, वेदवाणी या विद्वत्सभा के कार्य के लिये नियुक्त (मेषेण) प्रतिपक्षियों के स्पर्द्धाशील, विद्वान् से और ( इन्द्राय ऋषभेण ) इन्द्र के निमित्त नियुक्त सर्वश्रेष्ठ पुरुष से ( सूपस्थाः ) उत्तम रीति से राष्ट्र में व्यवस्थित ( अभवत् ) हो जाता है। (मेदस्तः) उनके स्नेह से या उनके प्रिय पदार्थ या उनको शत्रुनाशक बल से ही वे अश्वि आदि पदाधिकारी उक्त पुरुषों को ( अघ्नन् ) प्राप्त करते हैं। और (पचता) परिपक्व, सुअभ्यस्त, दृढ करने योग्य पुरुषों को दृढ करने के लिये ( प्रति अग्रभीषत ) प्राप्त करते हैं, उनको भर्ती करते हैं। और बहुतों को ( पुरोडाशैः ) पद पर नियुक्त होने के पूर्व ही वृत्तियां देकर उन पूर्व प्रदत्त वृत्तियों से ( अवीवृधन्त ) उन पुरुषों के उत्साहों को बढ़ाते हैं, और इस प्रकार ( अश्विनौ ) दोनों उच्च पदाधिकारी अश्विजन और ( सरस्वती ) विद्वत्सभा और ( सुत्रामा इन्द्रः ) उत्तम प्रजारक्षक राजा, ( सुरासोमान् ) अभिषेक क्रिया द्वारा अभिषिक्त योग्य पुरुषों को अथवा राज्यलक्ष्मी से ऐश्वर्यवान् पुरुषों को ( अपुः ) पालन करते हैं।

त्वामुद्यऽ ऋषऽ आर्षेयऽ ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्यऽ आ सङ्गतेभ्यऽ एष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यतऽइति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्माऽ आ च शास्स्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥६१॥

भुरिग् विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—हे ( ऋषे ) विद्वन् ! मन्त्रार्थों के देखने वाले ! ( आर्षेय ) ऋषि मन्त्रार्थ द्रष्टाओं में उत्तम विद्वन्, ! हे ( ऋषीणां नपात् ) मन्त्रार्थ-

द्रष्टा ऋपियों के पुत्र ! अथवा उनके सिद्धान्तों को न गिरने देनेहारे ! ( अयं यजमानः ) यह यजमान, वेतन पुरस्कार आदि देने वाला राजा, गृहपति, यजमान के समान ( वहुभ्यः ) वहुतसे ( संगतेभ्यः ) एकत्र हुए विद्वानों में से ( अद्य ) आज ( त्वाम् आ अवृणीत ) तुझे ही वरण करता है। क्योंकि यह जानता है ( एषः ) यह आप ( मे ) मुझ यजमान को ( देवेषु ) विद्वानों और राजाओं के बीच ( वसु ) धनैश्वर्य, ( वारि ) और वरण करने योग्य सकल पदार्थ ( आयक्ष्यते ) प्राप्त करा देंगे ( इति ) इसलिये वह आपको वरता है। हे ( देव ) विद्वन् ! ( देवाः ) विद्वान् पुरुष या दानशील राजागण, धनाढ्य पुरुष ( या ) जो २ ( ता ) वे नाना प्रकार के ( दानानि ) दान करने योग्य पदार्थों को ( अदुः ) प्रदान किया करते हैं ( तानि ) वे सब प्रकार के पदार्थ ( अस्मै ) इसके लिये भी ( आशास्स्व च ) प्राप्त करने की आशा कर। ( इषितः च ) इस प्रकार प्रार्थना किया गया तू ( आगुरस्व च ) उद्यम कर। हे ( होतः ) होतः ! विद्वन् ! उपदेष्टः ! ज्ञान प्रदान करने हारे ! तू ( भद्रवाच्याय ) सुख और कल्याण करने वाले हितकारी कार्यों के उपदेश के लिये ( प्रेषितः असि ) प्रार्थना किया जाता है। हे विद्वन् ! तू (मानुषः) विचारवान् पुरुष होकर (सूक्तवाकाय) उत्तम सुवचनों के उपदेश के करने के लिये ( सूक्ता ब्रूहि ) उत्तम २ वचनों और वेद के सूक्तों का उपदेश कर।

पारिप्लव विधिमें होता समस्त राज्य के प्रजाजनों को नाना वेदों का उपदेश करता है।

॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकविंशोऽध्यायः ॥

# ॥ अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पाऽआयुर्मे पाहि। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥

[ अ० २२—२५ ] प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। निचृत् पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—हे राजन्! तू (तेजः) तेज है। तू (शुक्रम्) शरीर में शुक्र धातु के समान राष्ट्र में वलकारी है। (अमृतम्) शरीर में वीर्य, पृथ्वी में जल और अग्नि के समान राष्ट्र में भी अमृत, जीवन का रक्षक है। तू (आयुष्पाः) सब के आयुओं का पालक (असि) है। तू (मे आयुः पाहि) मेरे मैं दीर्घजीवन का पालन कर। परमेश्वर के पक्ष में स्पष्ट है।

हे राष्ट्र वासिजन! (त्वा) तुझको (सवितुः) सर्वोत्पादक परमेश्वर के (प्रसवे) बनाये जगत् में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्र के समान प्रचण्ड और सौम्य स्वभाव के अधिकारियों की (बाहुभ्याम्) शत्रुओं के बाधक शक्तियों या बाहू के समान बलवान् क्षात्रवल से और (पूष्णः) पृथ्वी के समान पोषक वैश्य वर्ग के या राजा के (हस्ताभ्याम्) हाथों के समान ग्रहण करनेवाले या दुष्टों के हनन करनेवाले साधनों के द्वारा (त्वा आददे) तुझ राष्ट्र को मैं अपने वश करता हूं। (देवस्य त्वा सवितुः०) इत्यादि व्याख्या देखो अ० १। मं० १० ॥

इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वऽआयुषि विदथेषु कव्या।
सा नोऽअस्मिन्त्सुत आ बभूवऽऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥२॥

यज्ञपुरुष ऋषिः। रशना देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

अथातश्चतुर्भिरध्यायैरश्वमेधः ॥

भा०—(अस्मिन् सुते) इस उत्पन्न जगत् में भी (नः) हमें (सा) वह व्यापक शक्ति (आबभूव) ज्ञात होती है जो (ऋतस्य) मूल, परम

सत्य कारणरूप परमेश्वर और प्रकृति के सत्य तत्त्व के ( सरम् ) व्यापार या चेष्टा को ( सामन् ) आदि से अन्त तक ( आ रपन्ती ) स्पष्ट बतलाती है। ( इमाम् ) उस ( रशनाम् ) व्यापक शक्ति की ज्ञान शृंखला को ही ( ऋतस्य पूर्वे आयुषि ) संसार के प्रारम्भ के काल में ( कवयः ) क्रान्त-दर्शी ऋषि लोग ( विदथेषु ) यज्ञों और ज्ञान के अवसरों में या ज्ञानरूप वेदों में ( अगृभ्णन् ) ग्रहण करते हैं, जानते हैं।

राष्ट्र के पक्ष में—( ऋतस्य पूर्वे आयुषि ) व्यक्त जगत् के प्रारम्भ के आदि काल में ( वृषभः ) क्रान्तदर्शी ऋषि लोग ( इमाम् रशनाम् ) रस्सी के समान व्यापक या विस्तृत संसार की नियामक शक्ति को या व्यवस्था को ( विदथेषु ) ज्ञानमय वेदों में ( अगृभ्णन् ) प्राप्त करते हैं। ( सा ) वह व्यापक व्यवस्था ( अस्मिन् सुते ) राजा के अभिषेक के अवसर पर भी ( नः आबभूव ) हमें प्राप्त हो। वह ( ऋतस्य ) सत्य व्यवहार से पूर्ण राष्ट्र के ( सामन् ) आदि से अन्त तक हमें ( सरम् ) ज्ञान का ( आरपन्ती ) स्पष्ट उपदेश करनेवाली रहे। शत० १३।१।२।१॥

अभिधाऽ असि भुवनमसि यन्तासि धर्ता।
स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसङ्गच्छ स्वाहाकृतः॥ ३॥

अग्निर्देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे परमेश्वर! तू ( अभिधाः असि ) समस्त पदार्थों को साक्षात् बतलाने वाला है। तू ( भुवनम् असि ) जलके समान समस्त चराचर प्राणियों और लोकों का प्राण देने वाला आश्रय, उत्पादक है। तू ( यन्ता असि ) समस्त संसार का नियन्ता, उसको नियम में रखने वाला है। तू ( धर्त्ता ) सबका धारण करने वाला है। ( सः ) वह तू ( सप्रथसम् ) अति विस्तृत शक्ति से युक्त ( वैश्वानरम् ) समस्त ब्रह्माण्ड को चलाने वाली प्रवर्त्तक शक्तियों के सञ्चालक ( अग्निम् ) ज्ञानरूप, तेजोमय, स्वतः

प्रकाश, सर्वप्रकाशक सूर्य आदि को भी ( स्वाहाकृतः ) उत्तम गुण-कीर्त्तनों और सत्य वाणियों द्वारा स्तुति किया जाकर ( गच्छ ) व्याप्त है।

विद्वान् नेता एवं राजाके पक्षमें—हे राजन् ! तू ( अभिधाः असि ) ज्ञानों का उपदेश करने वाला या राष्ट्र को सब प्रकार से बांधने या प्रबन्ध करने में समर्थ है। तू ( भुवनम् असि ) सबका आश्रय, ( यन्ता ) नियामक और ( धर्त्ता ) कर्त्ता, धर्त्ता, धारण करने हारा है। ( सः त्वम् ) वह तू ( स्वाहाकृतः ) उत्तम स्तुति से युक्त होकर या उत्तम यश कीर्त्ति से सम्पन्न होकर, या सत्यवाणी से विश्वासयोग्य होकर, ( सप्रथसम् ) अतिविस्तृत यश से युक्त, (वैश्वानरम्) समस्त जनों के हितकारी ( अग्निम्) अग्रणी नेता पद को ( गच्छ ) प्राप्त हो। शत० १३। १। २। ३॥

स्वगा त्वा॑ देवेभ्य॑ः प्रजाप॑तये ब्रह्मन्नश्वं॑ भन्त्स्यामि॑ देवेभ्य॑ः प्रजाप॑तये तेन॑ राध्यासम्। तं ब॑धान देवेभ्य॑ः प्रजाप॑तये तेन॑ राध्नुहि ॥४॥

अश्वो विश्वेदेवाश्च देवताः। जगती। निषादः॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! मैं अभिषेककर्त्ता ( त्वा ) तुझको ( स्वगा ) स्वतन्त्र, यथेच्छा पूर्वक जाने का अधिकार देता हूं। ( देवेभ्यः ) समस्त विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के लिये और ( प्रजापतये ) प्रजा के पालक राजा के पद के लिये, हे ( ब्रह्मन् ) ब्रह्मन् ! ज्ञानवृद्ध पुरुष ! ( देवेभ्यः ) विद्वानों, विजिगीषु पुरुषों के हित के लिये और ( प्रजापतये ) प्रजा के पालन करने वाले राजा के कर्त्तव्य पालन के लिये ( अश्वं ) मैं अति शीघ्रगामी अश्व के समान व्यापक शक्ति-वाले, शूरवीर एवं राष्ट्र के भोक्ता पुरुष को ( भन्त्स्यामि ) बाधूंगा, राजपद पर नियुक्त करूंगा। ( तेन ) उससे मैं ( राध्यासम् ) समृद्ध होऊं, बढ़ूं, उद्देश्य को प्राप्त करूं। हे विद्वन् ! तू ( देवेभ्यः प्रजापतये ) विद्वानों, विजयेच्छु पुरुषों के लिये और प्रजापति पद के लिये ( तं बधान )

उसको बांध, नियुक्त कर। उसको भोग्य सामग्री देकर उसे वेतनादि पर रक्ख। तू ( तेन राध्नुहि ) उससे समृद्ध हो, कार्य को पूर्ण कर।

अश्वमेध में इस मन्त्र से अश्व को बांधकर खुला विचरने देते हैं। वह अश्व राष्ट्रपति का प्रतिनिधि है। शत० १३। १। २। ३, ४॥

वीर्यं वा अश्वः। श० २। १। ४। २३॥ क्षत्रं वा अनु अश्वः। श० ६। ४। ४। १२॥ क्षत्रं वा अश्वो विडितरे पशवः। श० १३। २। २। १५॥ वज्रो वा अश्वः। श० १३। १। २। ९॥ इन्द्रो वा अश्वः। कौ० १५। ४॥ वज्री वा अश्वः प्राजापत्यः। तै० ३। ८। ४। २॥

अध्यात्ममें—अश्व=आत्मा, ब्रह्म=परमात्मा। ब्रह्मचर्य पक्षमें—ब्रह्म=आचार्य। अश्व=वीर्य।

**प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि। योऽअर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्त्तः परः श्वा॥ ५॥**

इन्द्रादयो देवताः। अतिधृतिः। षड्जः॥

भा०—हे विद्वन्! श्रेष्ठ पुरुष! ( जुष्टं ) सबके प्रेमपात्र ( त्वा ) तुझको मैं ( प्रजापतये ) प्रजा के पालक पद के लिये, ( इन्द्राग्नीभ्यां त्वा ) इन्द्र और अग्नि, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी सेनापति और अग्रणीपद के लिये, ( वायवे ) वायु के समान शत्रुरूप वृक्षों के डाले तोड़ डालने वाले शूरवीर के पद पर और ( विश्वेभ्यः देवेभ्यः ) समस्त प्रजा के विद्वान् पुरुषों के हित के लिये, ( जुष्टं ) सब लोगों से प्रसन्न, एवं चाहे गये ( त्वा ) तुझको ( प्रोक्षामि ५ ) अभिषिक्त करता हूं। ( यः ) जो पुरुष भी ( अर्वन्तम् ) अश्व के समान तीव्र वेगवान् वीर, एवं विद्वान् पुरुष, और सब पदों के प्राप्त करने वाले राजा को

( जिघांसति ) मारना चाहता है ( वरुणः ) दुष्टों का वारक पदाधिकारी ( तम् ) उसको ( अभि-अगोति ) विनष्ट करे। ऐसा ( मर्त्तः ) राजद्रोही, पुरुष ( परः ) शत्रु है, उसको देश से निकाल कर दूर कर दिया जाय और (परः श्वा) पर अर्थात् शत्रु पुरुष कुत्ते के समान दुत्कार दिया जाय। अथवा ( श्वा ) कुत्ते के स्वभाव के व्यर्थ निन्दा करनेवाला पुरुष भी ( परः ) पर, अर्थात् शत्रु है उसे भी राष्ट्र से बाहर कर दिया जाय। शत० १३ । १ । २ । ५-६ ॥

**अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥ ६ ॥**

भुरिगति जगती । निषादः ॥ अग्न्यादयो देवताः ॥

भा०—राजा के समस्त स्वरूपों के लिये आदर सत्कार करने का उपदेश करते हैं। ( अग्नये स्वाहा ) अग्नि के समान ज्ञानदाता आचार्य और उसके समान तेजस्वी राजा आदि पुरुष का उत्तम स्तुति और सत्कार करो। 'अग्नि' तत्व का सदुपयोग लो। ( सोमाय स्वाहा ) सब के आज्ञापक, ऐश्वर्यवान्, ज्ञानी और सोमरस के समान आनन्द और पुष्टिकारक पुरुष का आदर करो और ओषधियों के रस रूप सोम का सेवन करो। ( अपां मोदाय ) जलों के समान स्वच्छ, शान्तिदायक एवं प्रवाह से चलने वाले आप्त जनों के आनन्द देनेवाले और प्रजाओं के हर्षकारी राजा के कर्मों और ज्ञानों को प्रसन्नता से प्राप्त कराने वाले गुरु का आदर सत्कार करो और जलों से प्राप्त आनन्द का उत्तम रीति से सेवन करो। ( सवित्रे स्वाहा ) सविता, सूर्य, सर्वोत्पादक परमेश्वर, आज्ञापक राजा, नेता, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् का आदर करो और सूर्य के प्रकाश और ताप का उचित प्रयोग और ज्ञान करो। ( वायवे स्वाहा ) वायु के

दशाश्वस्तोमीयाः ।

समान तीव्र, मतिमान् सैनिक, उसके समान शत्रु रूप वृक्षों को उखाड़-ने में समर्थ सेनापति, राजा, और वायु के समान जीवनाधार पुरुष का आदर करो और वायु और प्राण का उत्तम उपयोग और ज्ञान करो। ( विष्णवे स्वाहा ) सर्वव्यापक परमेश्वर की उपासना, स्तुति प्रार्थना करो और व्यापक शक्तिशाली राजा शास्त्र में पारंगत विद्वान् का आदर सत्कार करो। विष्णु अर्थात् यज्ञ का अनुष्ठान करो, और विद्युत् का प्रयोग करो। ( बृहस्पतये स्वाहा ) सब बड़ों से भी बड़े, ब्रह्माण्डों के पालक परमेश्वर की उपासना करो। बृहती वेदवाणी के पालक विद्वान् ब्राह्मण का, राजा के विद्वान् मन्त्री का और बड़े राष्ट्र के पालक सम्राट् का आदर करो। ( मित्राय स्वाहा ) सबके स्नेही, मृत्यु से बचानेवाले परमेश्वर की उपासना करो। एवं मित्र, स्नेही पुरुष, सूर्य के समान तेजस्वी राजा, स्नेही न्यायाधीश और मित्र राजा का भी आदर करो। ( वरुणाय स्वाहा ) दुष्टों के वारक, रक्षक, सब से श्रेष्ठ, वरण करने योग्य पुरुष का आदर और ऐसे परमेश्वर की स्तुति करो। शत० १३। १।२।३॥

हिङ्काराय् स्वाहा हिङ्कृताय् स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय् स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय् स्वाहा गन्धाय् स्वाहा घ्राताय् स्वाहा निविष्टाय् स्वाहोपविष्टाय् स्वाहा सन्दिताय् स्वाहा वल्गते स्वा-हासीनाय् स्वाहा शयानाय् स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय् स्वाहा विजृम्भमाणाय् स्वाहा विचृताय् स्वाहा सꣳहानाय् स्वाहोपस्थिताय् स्वाहाऽयनाय् स्वाहा प्रायणाय् स्वाहा ॥ ७ ॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय् स्वाहोद्द्रुताय् स्वाहा शूकाराय् स्वाहा शूकृताय् स्वाहा निषण्णाय् स्वाहोत्थिताय् स्वाहा जवाय्

७—प्रक्रमहोमय एकोनञ्चपाशत् ।

स्वाहा वलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥

अत्यष्टिः । गान्धारः । ८ अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—( हिंकाराय स्वाहा ) 'हिं' ऐसा शब्द करने वाले साम गायक विद्वान् का, राजा का, (हिंकृताय) 'हिं' कर चुकनेवाले विद्वान् का (स्वाहा) आदर सत्कार करो। और अश्व प्राणी का उपयोग करो। वज्रो हिङ्कारः। कौ० ३। २॥ हिङ्कारेण वज्रेण अस्माल्लोकादसुराननुदत। जै० उ० २। ८। ३॥ अर्थात् वज्र को धारण करनेवाले राजा का और शासन करने वाले शासक का आदर करो। शुक्लमेव हिंकारः। जै० उ० १। ३४। १॥ उत्तम धर्म कार्य करनेवाले और धर्मात्मा का आदर करो। प्राणो वै हिंकारः। श० ४। २। २। ११॥ प्राण साधक और प्राण विद्यावित् का आदर करो। प्रजापतिर्वै हिंकारः। ता० ६। ८। ५॥ प्रजा के पालक पुरुष का आदर करो। जिसने प्रजा का पहले पालन किया हो ऐसे वृद्ध, भूतपूर्व पालक की भी प्रतिष्ठा करो। ( क्रन्दते स्वाहा अवक्रन्दाय स्वाहा ) शत्रु को ललकारने वाले, विद्वानों को बुलाने वाले और ललकारने वाले का दबानेवाले राजा का, या विजय से बुलानेवाले सत्पुरुष का आदर करो। ( प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा ) स्वयं सब पदार्थों को स्वतः प्राप्त करनेवाले उत्कृष्ट कोटि के धनैश्वर्यादि प्राप्त करनेवाले का आदर सत्कार करो। ( गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा ) गन्ध लेनेवाले और गन्धादि के भोग के अनुभवी, सुगन्ध प्रेमी स्वामी का और पुरुष का भी आदर करो। (निविष्टाय स्वाहा) छावनी बनाकर, या बस्ती बसाकर बैठे हुए और ( उपविष्टाय ) 'आसन'

वृत्ति से नीति पूर्वक विराजनेवाले राजा का आदर करो। इसी प्रकार पूज्य पुरुष जो लेटा हो या बैठा हो उसका उसी अवस्था में भी आदर करे। ( संदिताय स्वाहा ) अच्छी प्रकार से शत्रुओं को काटनेवाले या न्यायपूर्वक विभाग करनेवाले का आदर करो। ( वल्गते स्वाहा ) गमन करते हुए, या आतिथ्य सत्कार करते हुए, उत्तम उपदेश करने वाले पुरुष का आदर करो। ( आसीनाय स्वाहा ) बैठे हुए आदर करो। ( शयानाय स्वाहा ) सोते हुए का आदर करो। (स्वपते, जाग्रते, कूजते स्वाहा) सोते हुए, जागते हुए, बुद बुदाते हुए का भी आदर करो। (प्रबुद्धाय, विजृम्भमाणाय, विचृताय स्वाहा) अच्छी तरह से जागे हुए, जम्भाई लेते हुए, बन्धनादि से युक्त होते हुए का भी आदर करो। ( संहानाय स्वाहा ) विस्तर त्यागते हुए का आदर करो। ( उपस्थिताय स्वाहा ) सभाभवन में उपस्थित हुए का, ( अयनाय ) मार्ग से जाते हुए का ( प्रायणाय ) विशेष रूप से जाते हुए का भी ( स्वाहा ) आदर करो ॥ ७ ॥

( यते ) गमन करते हुए, ( धावते ) दौड़ते हुए, ( उद्‌द्रावाय ) बहुत तीव्र गति से जाते हुए ( उद्‌द्रुताय स्वाहा ) और उछल २ कर द्रुत गति से जाने वाले शूरवीर का भी आदर करो। ( शूकाराय, शूकृताय ) शीघ्र काम करने वाले और शीघ्रता करने वाले, ( निषण्णाय, उत्थिताय, ) बैठे और उठे का भी आदर करो। ( जवाय, बलाय, विवर्तमानाय, विवृत्ताय ) वेग और बल वाले, लोटते पोटते और पासे पलटते हुए का भी आदर करो। ( विधून्वानाय, विधूताय ) विविध शत्रुओं अथवा विविध मानस वासनाओं को धुनते हुए और शत्रुओं को परास्त कर चुके हुए या पापमलसे रहित का भी आदर करो। ( शुश्रूषमाणाय, शृण्वते, ) विद्वानों से ज्ञान श्रवण करने के लिये उनकी सेवा शुश्रूषा करने वाले और ज्ञान श्रवण करते हुए को भी आदर करो। ( ईक्षमाणाय, ईक्षिताय, वीक्षिताय ) साक्षात्

करते हुए, साक्षात् किये, और विशेष रूप से साक्षात् हुए का भी आदर करो। ( निमेषाय ) पलक चलाते हुए, इशारा करते हुए ( यदत्ति तस्मै ) जब खावे तब उसका, ( यत् पिबति तस्मै ) जब कुछ पान करता हो तब उसका, ( यत् मूत्रं करोति ) जब मूत्र करता हो तब उसका, ( कुर्वते, कृताय स्वाहा ) काम करते हुए और काम कर चुकने पर भी उसका आदर करो ॥ ८ ॥ शत० १३ । १ । ३ । ५ ॥

इस प्रकार ४९ दशाओं में आदरणीय पुरुष का आदर करना चाहिये और इन ४९ दशाओं में राजा को भी उत्तम रीति से आदर सत्कार और संरक्षा करनी चाहिये।

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ९ ॥ ऋ० ३ । ६२ । १० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३ । ३५ ॥

हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ ह्वये।
स चेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम् ॥ १० ॥ ऋ० १ । २२ । ५ ॥

१०—१४ सविता देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( हिरण्यपाणिम् ) सुवर्ण को कंकण रूप में धरने । हाथों में रखने वाले, अथवा हिरण्य अर्थात् लोह के बने तलवार को हाथ में रखने वाले ( सवितारम् ) सबके आज्ञापक, वीर राजा को मैं (ऊतये) रक्षा के लिये ( उपह्वये ) बुलाता हूं। ( सः ) वह ( चेत्ता ) समस्त बातों का ज्ञाता और सब को सत्यासत्य का बतलाने वाला राजा ( देवता ) साक्षात् देव सब का दाता और परम सर्वोच्च पद है। अथवा वह (देवता पदम्) समस्त विद्वानों का आश्रय है।

परमेश्वर के पक्ष में—( हिरण्यपाणिम् ) सूर्यादि पदार्थों को वश करने वाले, ( सवितारम् ) सर्वोत्पादक, परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूं वह

(चेत्ता) सर्वज्ञ, सत्यासत्य का ज्ञापक और ( पदम् ) परम प्राप्य ( देवता ) देव, प्रकाशक और सर्वप्रद है।

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे ।
सुमतिꣳ सत्यराधसम् ॥ ११ ॥

भा०—(सवितुः) सब के शासक, (चेततः) सब को चैतन्य अर्थात् सावधान करने वाले, ( देवस्य ) दानशील राजा की ( महीम् ) बड़ी भारी ( सत्यराधसम् ) सत्य, धर्मानुकूल ऐश्वर्य के देनेवाली ( सुमतिम् ) उत्तम मति, शासन शक्ति की ( प्र हवामहे ) स्तुति करते हैं।

ईश्वर पक्ष में—( चेततः सवितुः ) चित्स्वरूप, सर्वोत्पादक ( देवस्य ) परमेश्वर देव के ( सत्यराधसम् ) सत्य ज्ञान, ऐश्वर्ययुक्त ( सुमतिं ) उत्तज्ञानमयी वेदवाणी की ( प्र हवामहे ) याचना करते हैं।

सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳसवितुरीमहे ।
प्र देवाय मतीविदे ॥ १२ ॥

भा०—( सुमतीवृधः ) उत्तम स्तुति और मति, ज्ञान की वृद्धि करने वाले ( सवितुः ) सर्वोत्पादक, परमेश्वर और सर्वप्रेरक राजा का ( देवाय ) धन विद्यादि की कामना करने वाले ( मतीविदे ) विद्वान् के प्रति देने योग्य ( रातिम् ) दान की ( ईमहे ) याचना करते हैं।

रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये ।
आसवं देववीतये ॥ १३ ॥

भा०—( रातिम् ) दानशील, (सत्पतिम्) सत् जनों, सत् पदार्थों और समस्त जीवों के पालक, (सवितारम्) सब के शासक, सब के उत्पादक (आसवं) सब कार्यों की अनुज्ञा देनेहारे, अथवा सब प्रकार से ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और राजा की ( देववीतये ) दिव्यगुणों और विद्वान् पुरुषों के प्राप्त करने के लिये ( उपह्वये ) स्तुति करता हूं।

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् ।
धिया भगं मनामहे ॥ १४ ॥

भा०—(देवस्य) सब सुखों के दाता, सब कुछ देखने वाले (सवितुः) शासक और उत्पादक राजा और परमेश्वर की (मतिम्) मति अर्थात् ज्ञान का और (विश्वदेव्यम्) समस्त विद्वानों के हितकारी, (आसवम्) समस्त ऐश्वर्यों के उत्पादक (भगम्) ऐश्वर्य का (धिया) धारणावती बुद्धि से हम (मनामहे) मनन करते हैं ।

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् ।
हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १५ ॥

[ १५—१७ ] अग्निर्देवता । सुतम्भरविश्वामित्रविश्वरूपा ऋषयः ।
गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे पुरुष ! तू ( अमर्त्यम् ) अविनाशी, कारणरूप से नित्य ( अग्निम् ) अग्नि को जिस प्रकार ( स्तोमेन ) काष्ठ समूह से जलाया जाता है उसमें ( हव्या ) हव्य, चरु पदार्थ डाल कर वायु आदि दिव्य-गुण वाले पदार्थों में पहुंचा दिये जाते हैं उसी प्रकार तू ( सम् इधानः ) ज्ञान से प्रदीप्त होता हुआ भी ( स्तोमेन ) स्तुतियां द्वारा ( अमर्त्यम् ) अमर, मरणधर्म से रहित, आत्मारूप ( अग्निम् ) अग्नि, स्वतःप्रकाश तेजोमय को ( बोधय ) प्रदीप्त कर । और ( नः देवेषु ) हमारे देव अर्थात् अन्य प्राणों में भी ( हव्या ) ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थों को ( दधत् ) धारण कर ।

दूत के पक्ष में—( स्तोमेन ) स्तुतियों से ( अमर्त्यम् ) अमर्त्य, सुरक्षित, न मारने योग्य, अवध्य, ( अग्निम् ) अग्नि के समान तेजस्वी, विद्वान् पुरुष को ( समिधानः ) प्रदीप्त करता हुआ ( बोधय ) चेता । और वह ( नः देवेषु ) हमारे अन्य विजिगीषु शासकों और विद्वान् पुरुषों को ( हव्या )

अन्न आदि भोग्य पदार्थ अथवा राजा की ग्रहण और स्वीकार करने योग्य आज्ञाओं को ( दधत् ) प्रदान करें।

स हव्यवाडमर्त्यऽ उशिग्दूतश्चनोहितः।
अग्निर्धिया समृण्वति ॥ १६ ॥ ऋ० ३ । ११ । २ ॥

भा०—( सः ) वह ( हव्यवाड् ) स्वीकार करने योग्य आज्ञाओं को दूसरों तक पहुंचाने वाले, ( अमर्त्यः ) न मारने योग्य ( उशिग् ) स्वयं कान्तिमान्, अन्यों को प्रिय, विद्वान् ( दूतः ) दूत ( चनोहितः ) वचनों को धारण करने में समर्थ है वह ( अग्निः ) तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष ( धिया ) अपनी बुद्धि से ( सम् ऋण्वति ) समस्त कर्म सम्पादन करता है।

अग्नि के पक्ष में—हव्य चरु को वायु आदि तक पहुंचानेवाला कारण, नित्य, ( उशिक् ) कान्तिमान्, ( दूतः ) तापवान्, ( चनोहितः ) परिपाक करने में लगाने योग्य ( अग्निः ) अग्नि ( धिया ) धारण सामर्थ्य या दाहक्रिया से ही ( सम्-ऋण्वति ) अन्य दिव्य पदार्थों से संगत होता है।

अध्यात्म में—वह ज्ञानी, कान्तिमान्, ( दूतः ) उपासक ( चनो-हितः ) सञ्चित ज्ञान या उत्तम वचन को धारण करनेवाला ( अग्निः ) ज्ञानी आत्मा ( धिया ) धारणा के बल से परमेश्वर को ( समृण्वति ) प्राप्त करता है।

'चनः'—वचनशब्दस्य वकारलोपेमान्ते सकारोपजनेन 'चनः'। यद्वा वचे रसुनि बाहुलकात् नोन्तादेशः इति दे० य० ॥ चनः इत्यन्न नाम। तथैव पचनस्य पकारलोपे सकारोपजनेम च। पचेर्वासुनि नोन्तादेशः। चीयतेर्वा।

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे देवाँ२ऽ
आसादयादिह ॥ १७ ॥ ऋ० ८ । ४४ । ३ ॥

---

१६—०वाळ० इति काण्व० । इतः परमेका ऋगधिका पठ्यते काण्व० परिशिष्टे द्रष्टव्या ।

भा०—मैं राजा (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य संदेश को जानेवाले ( दूतम् ) दूत बनकर आये, ( अग्निम् ) ज्ञानी विद्वान् को ( पुरः ) सबके समक्ष, आगे ( दधे ) स्थापित करता हूं और ( उपब्रुवे ) उससे प्रार्थना करता हूं कि वह ( इह ) इस पद पर रहकर ( देवान् आसादयात् ) अन्य राजाओं तक पहुंचे ।

अग्नि के पक्ष में—हव्य, चरु को वहन करनेवाले ( दूतं ) तापयुक्त अग्नि को मैं आगे स्थापित करता हूं । वह ( देवान् आसादयात् ) वायु आदि पदार्थों तक चरुको पहुंचावे ।

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥ ऋ० ९ । ११० । ३ ॥

अरुणत्रसदस्यू ऋषी । पवमानो देवता । पिपीलिकमध्याकृतिः अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे ( पवमान ) सबको पवित्र करनेहारे विद्वन् ! अग्नि तत्व जिस प्रकार (सूर्यं) सूर्य को उत्पन्न करता है उसी प्रकार तू (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष राजा को (अजीजनः) उत्पन्न करता है । और सूर्य जिस प्रकार ( गोजीरया ) समस्त पृथ्वी लोक को जीवन देने और ( पुरन्ध्या ) पुर देह, ब्रह्माण्ड को धारण पोषण करनेवाली शक्ति से ( रंहमाणः ) गति करता हुआ ( शक्मना ) अपनी शक्ति से ( पयः ) जल को ( विधारे ) विशेष रूप से धारण करता है और उसी प्रकार ( गोजीरया ) गौ आदि पशुओं के जीवन देनेवाली और ( पुरंध्या ) पुर को धारण करनेवाली राजनीति से ( रंहमाणः ) चलता हुआ ( शक्मना ) अपनी शक्ति से ( पयः ) पुष्टिकारक राष्ट्र को धारण करता है ।

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणाऽ असि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि । देवाऽ आशापालाऽ एतं देवेभ्यो-

ऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षत। इह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा॥ १६॥

अग्निर्देवता। भुरिग् विकृतिः। मध्यमः॥

**भा०**—हे राजन्! तू (मात्रा विभूः) माता के प्रभाव से विविध गुणों से युक्त है। और (पित्रा प्रभूः) पिता के द्वारा उत्कृष्ट प्रभु शक्ति या ऐश्वर्य से युक्त है। अर्थात् तू मातृमान् और पितृमान् है। गर्भ के उत्तम संस्कारों में माता और विनय आदि में पिता द्वारा शिक्षित है। तू (अश्वः असि) समस्त राष्ट्र का भोक्ता है। तू (हयः असि) अति वेगवान्, पराक्रमी है। तू (अत्यः असि) निरन्तर गतिशील, बराबर आगे बढ़नेवाला, सबको अतिक्रमण करने हारा है। तू (मयः असि) प्रजा का सुखकारी अथवा नियन्ता है। तू (अर्वा असि) सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने हारा, एवं सब विद्याओं का ज्ञाता है। तू (सप्तिः असि) शत्रु का पीछा करने हारा, अथवा राष्ट्र के सातों अंगों का स्वामी, या राष्ट्र में समवाय बनाकर रहने में समर्थ है। तू (वाजी असि) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् और आक्रमण में वेगवान् है। तू (नृमणाः असि) मनुष्यों के मान और आदर योग्य, सबके मनों का आकर्षक है। तू (ययुः नाम असि) शत्रुओं पर विजय करने के लिये प्रयाण करनेवाला होने से 'ययु' नाम से विख्यात है। तू (शिशुः नाम असि) शत्रियों को कृश, या दुर्बल, या नाश करनेवाला, राष्ट्र में व्यापक होकर रहने वाला होने से 'शिशु' नाम से कहाता है। पृथ्वी का पुत्र या शासक होने से भी तू 'शिशु' है। (आदित्यानां) सूर्य जिस प्रकार मासों के अनुसार द्वादश राशियों में गमन करता है उसी प्रकार तू आदित्य के समान तेजस्वी होकर द्वादश राज-मण्डल के बीच में (पत्वा) राजमार्ग से (अनु इहि) गमन कर। अथवा—(आदित्यानां) आदित्यों के समान विद्वान् पुरुषों के (पत्वा) गमनयोग्य मार्ग का (अनु इहि) अनुसरण कर। हे (देव) विजय की

कामना करनेवाले ! ( आशापालाः ) दिशावासिनी प्रजा के पालक मण्डलिक राजगण ! आप लोग ( देवेभ्यः ) विद्वान् पुरुषों, विजयी और दानशील पुरुषों की उन्नति और ( मेधाय ) राष्ट्र के वलवृद्धि या शत्रुओं के नाश के लिये ( एतं ) इस ( प्रोक्षितं ) अभिषिक्त हुए राजा की ( रक्षत ) रक्षा करो। ( इह ) इस राष्ट्र में ( रन्तिः ) चित्त की प्रसन्नता है। ( इह रमताम् ) यहां रमण करें। ( इह धृतिः ) इस राष्ट्र में धारण करने की सामर्थ्य है ( इह ) इसमें ही ( स्वधृतिः ) अपनी पूर्ण धृति अर्थात् धारण शक्ति हो। ( स्वाहा ) इससे तेरा उत्तम यश और आदर हो।

यही विशेषण अश्व, विद्वान्, परमेश्वर और आत्मा पक्ष में भी लगते हैं। मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद। शत०।

**[1]काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा [2]सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥ २० ॥**

कादयो देवताः। ( १ ) विराड् अतिधृतिः। ( २ ) निचृदतिधृतिः। षड्जः ॥

भा०—( काय, कस्मै, कतमस्मै ) साधनों के करनेवाले, सुख-स्वरूप साधकों में भी श्रेष्ठ, प्रजापालक प्रजापति का ( स्वाहा ) उत्तम मान, आदर करो। ( आधिम् ) आधीन, अग्निस्थापन या पदार्थसंग्रह करनेवाले का और (आधीताय) समस्त विद्याओं को पढ़नेवाले का (स्वाहा)

२० औदुग्राभणानि। 'मृळीकाय ०' इति काण्व०।

उत्तम अन्नादि से सत्कार करो। ( मनः=मनसे ) मननशील और ( प्रजापतये ) प्रजा के पालक का ( स्वाहा ) उत्तम रीति से आदर करो। ( चित्तं-चित्ताय ) चित्त के समान चिन्तन करनेवाले का और ( विज्ञताय ) विज्ञान और उसके विशेष ज्ञाता का आदर करो। ( आदित्यै स्वाहा ) पृथिवी और माता का आदर करो। ( आदित्यै मह्यै ) अखण्ड, पृथ्वी, पूजनीय माता और विशाल अखंड शासन की व्यवस्था और पूज्य गोमाता का ( स्वाहा ) आदर करो। ( सुमृडीकायै आदित्यै स्वाहा ) समस्त सुखों के देनेवाली, माता, वेदवाणी का उत्तम उपयोग करो। ( सरस्वत्यै स्वाहा ) सरस्वती, वेदवाणी, स्त्री और विद्वत्सभा का आदर, आज्ञापालन, संमान करो। ( पावकायै सरस्वत्यै ) पावन, पवित्र करनेवाली ज्ञानमयी ब्रह्मशक्ति की (स्वाहा) पूजा करो। ( बृहत्यै सरस्वत्यै ) बृहती, बड़ी भारी, विद्वानों की सभा या प्रभुवाणी का ( स्वाहा ) अभ्यास, मनन, श्रवण और अध्यापन, वाचन, दान करो। (पूष्णे स्वाहा) पोषक पुरुष का आदर करो। ( प्रपथ्याय ) उत्तम पथ्य, आहारयोग्य पोषक अन्न का (स्वाहा) सदुपयोग करो। और ( नरन्धिषाय पूष्णे ) मनुष्यों को धारण पोषण करनेवाले प्रजापालक राजा का ( स्वाहा ) उत्तम रीति से आदर करो। (त्वष्ट्रे स्वाहा) त्वष्टा, शिल्पी का आदर करो, उसे उत्तम उपयोग में लगाओ। (तुरीपाय त्वष्ट्रे स्वाहा) तुरीप अर्थात् नौकाओं के पालक अथवा बुनने के यन्त्रों के पालक, अथवा वेगवान् रथों के पालक, निर्माता का आदर और ( पुरुरूपाय त्वष्ट्रे ) नाना रूपों के पदार्थों के बनाने वाले, त्वष्टा, परमात्मा की उपासना करो। ( विष्णवे स्वाहा ) व्यापक परमेश्वर की उपासना करो। ( निभूयपाय विष्णवे स्वाहा ) सब के नीचे, सब का आश्रय होकर, जो सब की रक्षा करे उस व्यापक शक्तिमान् राजा का आदर करो। और (शिपिविष्टाय विष्णवे स्वाहा) समस्त पशुओं में व्यापक रूप से, अथवा शक्ति रूप से या किरणों में तेज रूप से विद्यमान तेजस्वी, सर्वोत्पादक प्रभु शक्ति का आदर करो।

यही सब नाम ईश्वर, परमेश्वर, आत्मा और राजा के भी होने से उन में उन गुणों को रक्खा जा सकता है ।

विश्वो॑ देवस्य॑ नेतुर्मर्त्तो॑ वुरीत सुख्यम् ।
विश्वो॑ रायऽ इषुध्यति द्युम्नं वृ॑णीत पुष्यसे स्वाहा॑ ॥ २१ ॥

अग्निर्ऋषिः । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—( विश्वः ) समस्त ( मर्त्तः ) मनुष्य, मरणशील प्राणीमात्र ( नेतुः देवस्य ) नायक राजा के ( सख्यम् ) मित्रभाव को ( वुरीत ) प्राप्त करे । ( विश्वः मर्त्तः ) समस्त मनुष्य ( रायः ) धनों को ( इषुध्यति ) चाहते हैं । और सभी ( पुष्यसे ) पुष्टि के लिये ( द्युम्नं ) धनैश्वर्य को ( वृणीत ) प्राप्त करना चाहते हैं । उसी के लिये ( स्वाहा ) उत्तम व्यवहार से रहो । विशेष व्याख्या देखो ( अ० ४ । ८ ) ।

आ ब्रह्म॑न् ब्राह्म॒णो ब्र॑ह्मवर्च॒सी जा॑यता॒मा रा॒ष्ट्रे रा॑ज॒न्यः॒ शूर॒ऽइष॒व्यो॒ऽतिव्या॒धी म॑हार॒थो जा॑यतां॒ दोग्ध्री॑ धे॒नुर्वोढा॑न॒ड्वाना॒शुः सप्तिः॒ पुर॑न्ध्रि॒र्योषा॑ जि॒ष्णू र॑थे॒ष्ठाः स॒भेयो॒ युवा॒स्य यज॑मानस्य वी॒रो जा॑यतां निका॒मे-नि॑कामे नः प॒र्जन्यो॑ वर्षतु॒ फल॑वत्यो न॒ ओष॑धयः पच्यन्तां योगक्षे॒मो नः॑ कल्पताम् ॥ २२ ॥

लिंगोक्ता देवता । स्वराडुत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—हे ( ब्रह्मन् ) ! महान् शक्ति वाले ब्रह्मन् ! परमेश्वर ! ( राष्ट्रे ) राष्ट्र में ( ब्राह्मणः ) ब्रह्म, वेद का विद्वान्, ज्ञाता पुरुष ( ब्रह्मवर्चसी ) ब्रह्मवर्चस्वी, वीर्यवान् ( आ जायताम् ) हो । और राष्ट्र में ( राजन्यः ) राजा का पुत्र या क्षत्रियगण ( शूरः ) शूर, ( इषव्यः ) धनुर्धर ( अति व्याधी ) अति वेग और बल से शत्रु को परास्त करने वाला, ( महारथः ) महारथी, बड़े २ रथारोही वीरों का स्वामी, ( आ जायताम् ) हो । ( धेनुः

२२—०' वोळ्हा ०' इति काण्व० ।

दोग्ध्री ) गाय बहुत दूध देने वाली, ( अनड्वान् वोढा ) बैल खूब बोझा उठाने में समर्थ, ( आशुः सप्तिः ) घोड़ा अति वेगवान् और ( योषा पुरन्धिः ) स्त्री कुटुम्ब को धारण करने में समर्थ हो। ( जिष्णुः रथेष्ठाः ) रथ पर स्थित वीर विजयशील हो। ( अस्य यजमानस्य ) सब को वेतन और जीवन वृत्ति देने हारे राजा के राष्ट्र में ( सभेयः युवा ) सभा में साधु उत्तम वक्ता और युवा, स्त्रियों के हृदयों का ग्रहण करने वाला, ( वीरः ) वीर्यवान् पुरुष ( आ जायताम् ) हो। ( नः ) हमारे राष्ट्र में ( निकामे निकामे ) प्रत्येक प्रार्थना के अवसर पर जब जब भी हमें आवश्यकता हो तब २ ( पर्जन्यः वर्षतु ) मेघ बरसे। ( नः ) हमारी ( ओषधयः ) ओषधि, अन्न आदि ( फलवत्यः ) फल वाली होकर ( पच्यन्ताम् ) पकें। ( नः ) हमारे राष्ट्र में ( योगक्षेमः ) जो धन पहले प्राप्त न हो वह प्राप्त हो, जो प्राप्त है वह सुरक्षित ( कल्पताम् ) रहे।

**प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ २३ ॥**

प्राणादयो देवताः। स्वराडनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—( प्राणाय ) भीतर से बाहर आने वाला निःश्वास 'प्राण' है। और ( अपानाय ) बाहर से भीतर जाने वाला उच्छ्वास अपान है। अथवा इससे विपरीत समझें। अथवा नाभि तक संचरण करने वाला श्वासोच्छ्वास 'प्राण' है। नाभि से गुदा तक व्याप्त, एवं नीचे की तरफ के मलों को बाहर करने वाला बल 'अपान' है। इन दोनों को ( स्वाहा ) योग क्रिया से वश करना चाहिये। (व्यानाय स्वाहा) इसी प्रकार शरीर के अन्य शिर, बाहु, जंघा आदि में विद्यमान प्राण ही 'व्यान' है। उसका भी उत्तम रीति से ज्ञान और अभ्यास करना चाहिये। (चक्षुषे स्वाहा, श्रोत्राय स्वाहा) चक्षु को उत्तम रीति से देखने के कार्य में लगाओ, एवं दर्शन शक्ति को उत्तम

रीति से प्राप्त करो । श्रोत्र को गुरु के उपदेश में लगाओ और श्रवण शक्ति की वृद्धि करो । ( वाचे स्वाहा, मनसे स्वाहा ) वाणी को उत्तम रीति से योग करो और मन को उत्तम रीति से एकाग्र करो । शरीर में प्राण, अपान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र वाग् और मन को हृष्ट पुष्ट करो इसी प्रकार राष्ट्र शरीर के इन भागों को भी पुष्ट करो ।

**प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २४ ॥**

दिशो देवताः । निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—( प्राच्यै दिशे ) सूर्य प्रातः जिस दिशा को प्रथम स्पर्श करता है वह सूर्योदय की दिशा 'प्राची' है । ( अर्वाच्यै दिशे ) उसके समीप की कोण दिशा 'अर्वाची' है । ( दक्षिणायै दिशे ) पूर्वाभिमुख के दाहिने हाथ की दिशा 'दक्षिणा' है उसके समीप की (अर्वाच्यै दिशे) एक कोण दिशा 'अर्वाची' है । ( प्रतीच्यै दिशे ) पूर्वाभिमुख खड़े पुरुष की पीठ पीछे की दिशा 'प्रतीची' या पश्चिम दिशा है । उसके पास की दिशा (अर्वाच्यै दिशे) 'अर्वाची' है । ( उदीच्यै दिशे ) पूर्वाभिमुख पुरुष के बायें हाथ की दिशा 'उदीची' है उसके समीप की दिशा ( अर्वाच्यै दिशे ) 'अर्वाची' है । इसी प्रकार ( ऊर्ध्वायै दिशे, अर्वाच्यै दिशे ) पुरुष के शिर के ऊपर की दिशा ऊर्ध्वा है उसके पास की कोण-दिशा 'अर्वाची' है । और ( अवाच्यै, अर्वाच्यै दिशे ) पैरों के नीचे की दिशा 'अवाची' और उसकी कोण दिशा 'अर्वाची' है ।

इस प्रकार ६ दिशाएं, १२ उपदिशाएं हैं उनका उत्तम रीति से ज्ञान और उपयोग करो । इसी प्रकार राष्ट्र की सभी दिशाओं की उत्तम रीति

से रक्षा और विजय करनी चाहिये। इसी प्रकार विजिगीषु और प्रजापति की भी दिशाएं हैं। देखो व्रात्यसूक्त अथर्ववेद।

**अ॒द्भ्यः स्वाहा॑ वा॒र्भ्यः स्वाहो॑द॒काय॒ स्वाहा॒ तिष्ठ॑न्तीभ्यः॒ स्वाहा॒ स्रव॑न्तीभ्यः॒ स्वाहा॒ स्यन्द॑मानाभ्यः॒ स्वाहा॒ कूप्या॑भ्यः॒ स्वाहा॒ सूद्या॑भ्यः॒ स्वाहा॒ धार्या॑भ्यः॒ स्वाहा॑र्ण॒वाय॒ स्वाहा॑ समु॒द्राय॒ स्वाहा॑ सरि॒राय॒ स्वाहा॑ ॥ २५ ॥**

जलादयो देवताः। अष्टिः। मध्यमः॥

भा०—( अद्भ्यः ) सामान्य जल, ( वार्भ्यः ) रोगनिवारक, उत्तम जल, ( उदकाय ) गहरे प्रदेशों से ऊपर निकाले गये या गीला करने वाले, ( तिष्ठन्तीभ्यः ) एक स्थान पर खड़े रहने, या स्थिर परिमाण वाले ( स्रवन्तीभ्यः ) चूने या झरने वाले, ( स्यन्दमानाभ्यः ) प्रवाह से या नदी रूप से प्रवाह में बहने वाले, ( कूप्याभ्यः ) कूप के जल, ( सूद्याभ्यः ) झरनों के जल, ( धार्याभ्यः ) पात्रादि में धरे जल, ( अर्णवाय ) समुद्र और ( समुद्राय ) आकाशस्थ जल ( सरिराय ) वायुस्थ अथवा मध्यस्थ जल। इन सब को ( स्वाहा ) उत्तम रीति से शुद्ध करो, प्रयोग करो, संग्रह करो, उपयोग में लाओ जिससे सुख हो। जलों के समान प्रजाओं और सेनाओं के भी इतने भेद जानने चाहियें राजा उनको वश करे। जैसे आप्त प्रजा-जन 'आपः' हैं। शत्रुवारक वीर प्रजाएं 'वार्' हैं। सदा खड़े रहने वाली सावधान वीर सेनाएं 'तिष्ठन्ती' हैं। साधारण वेग से जाने वाली 'स्रवन्ती' हैं। रथ-वेग से दौड़ने वाली 'स्यन्दमाना' हैं। गहरी खाइयों की आड़ में बैठी 'कूप्या' हैं। शत्रु पर प्रहार करने वाली 'सूद्या' हैं। विशेष अवसर के लिये सुरक्षित सेनाएं 'धार्या' हैं। संग्रहीत समस्त सेना समूह 'अर्णव' है, और उमड़ती सेनाएं 'समुद्र' हैं और शत्रु पर आक्रमण करती सेना 'सरिर' हैं।

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहावर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥ २६ ॥

विराड्अभिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—( वाताय, स्वाहा ) वहने वाली, तीव्र वायु का उत्तम उपयोग करो, उसके समान प्रबलता से शत्रु पर आक्रमण करने और शत्रुरूप वृक्ष को तोड़ने वाले सेनापति का आदर करो। अथवा ( स्वाहा ) उसको उत्तम बल प्राप्त हो। (धूमाय स्वाहा) धूम, और धूम के समान नीले मेघ, उत्तम रीति से उत्पन्न हों। धूम अर्थात् शत्रु को कपाने वाले को आदर, बल, मान प्राप्त हो। ( अभ्राय स्वाहा ) वर्षणकारी मेघ की पूर्व दशा के मेघ अच्छे प्रकार बनें। अभ्र अर्थात् बदली के समान राष्ट्र या शत्रु सेना पर छा जाने वाले को उत्तम अधिकार, मान आदर प्राप्त हो। ( मेघाय स्वाहा ) जल वर्षाने वाला 'मेघ' कहाता है, उसी के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला पुरुष भी 'मेघ' है, उसका आदर हो। ( विद्योतमानाय स्वाहा ) विविध विद्युतों को पैदा करने वाला मेघ 'विद्योतमान' है उसकी उत्पत्ति हो। और विविध विद्याओं और गुणों से प्रकाशमान और अन्यों को प्रकाश देने वाला पुरुष 'विद्योतमान' है, उसको आदर और उन्नति प्राप्त हो। ( स्तनयते स्वाहा ) गर्जते हुए मेघ की वृद्धि हो। सिंहनाद करते पुरुष की वृद्धि हो। ( अवस्फूर्जते स्वाहा ) नीचे विद्युतें फेंकते हुए मेघ बढ़ें। और उस मेघ के समान ही आग्नेयास्त्रों का शत्रु पर प्रयोग करने वाले वीर सेनापति की विजय हो। ( वर्षते स्वाहा, उग्रं वर्षते स्वाहा ) बरसते

२६—' प्रश्नते ' इति काण्व० ।

हुए, प्रचण्ड वेग से वरसते हुए और भयंकर तीव्रता से वरसते हुए मेघ बढ़ें और लाभकारी हों। उनके समान प्रजाओं पर सुखों की और शत्रुओं पर शस्त्रों की वर्षा करते हुए शत्रुओं पर भयंकरता से शस्त्र वरसाते हुए और अति शीघ्रता से अस्त्र फेंकते हुए वीर सेनापति की वृद्धि और विजय हो। ( उद्गृह्णते स्वाहा, उद्गृहीताय स्वाहा ) जलों को पुनः ऊपर उठाते हुए, और खूब जल लेलेने वाले मेघ अच्छी प्रकार उठें और वरसें। उनके समान शत्रु से और मित्र राष्ट्र और अपने राष्ट्र से वल, धन, ऐश्वर्य संग्रह करते हुए और कर चुके हुए वीर पुरुष की वृद्धि और विजय हो। (प्रुष्णते स्वाहा) स्थूल बूंदों से सींचते हुए या नदी ताल आदि को भरते हुए मेघ की वृद्धि हो। और प्रजा पर स्नेह से देखते हुए उस पर कृपा करते और धनधान्य से पूर्ण करते हुए की सदा वृद्धि और यश हो। ( शीकायते स्वाहा ) सेचन करते हुए, फुहार छोड़ते हुए मेघ की अच्छी प्रकार से उत्पत्ति हो। और इसी प्रकार सुखकारी धनधान्य, उपकारों और सद्वचनों से प्रजा पर सुख सेचन करते हुए राजा की खूब वृद्धि हो। ( प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ) मेघ के स्थूल विन्दु सेचन करने वाली धाराओं की वृद्धि हो, राजा की भयंकर प्रजा को समृद्ध करने वाली शक्तियों की वृद्धि हो। ( ह्रादुनीभ्यः स्वाहा ) शब्द करने वाली विद्युतें बढ़ें। राजा की गरजती तोपें बढ़ें। ( नीहाराय स्वाहा ) कुहरे की वृद्धि हो। उसके समान शत्रु की लक्ष्मी को निःशेष रूप से हर लेने वाले सेनापति और राजा की वृद्धि हो।

इस मन्त्र में मेघ की सब दशाओं का और उसके समान आचरण करने वाले वीर सेनापति का वर्णन और उसकी वृद्धि की प्रार्थना भी है।

**अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ पृथि॒व्यै स्वाहा॒न्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑ दि॒वे स्वाहा॑ दि॒ग्भ्यः स्वाहाशा॑भ्यः॒ स्वाहो॒र्व्यै दि॒शे**

स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २७ ॥

अग्न्यादयो देवताः । जगती । निषादः ॥

भा०—( अग्नये स्वाहा ) अग्नि का सदुपयोग, जाठराग्नि की वृद्धि और स्वस्थता तथा अग्रणी नेता का अभ्युदय हो । ( सोमाय स्वाहा ) सोम आदि ओषधि रस प्राप्त हों, सब के प्रेरक राजा की उन्नति हो । (इन्द्राय स्वाहा) जीव की उन्नति हो, परमेश्वर प्रसन्न हो, विद्युत् गुणकारी हो, वह ऐश्वर्य सुख प्रदान करे । (पृथिव्यै स्वाहा) पृथिवी, (अन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा) अन्तरिक्ष और २ द्यौ तीनों लोक सुखकारी हों, ( आशाभ्यः स्वाहा ) आशाएं दिशाएं सुखकारी हों, प्रजाएं बढ़ें, ( ऊर्ध्वायै दिशे स्वाहा ) ऊपर की दिशा और (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) नीचे की दिशा ये सब खूब फलें, फूलें और सुखकारी हों ।

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऽऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा सँवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬस्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहा दित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥

नक्षत्रादयो देवताः । भुरिगष्टी । मध्यमः ।

भा०—( नक्षत्रेभ्यः, नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा २ ) नक्षत्र, जो कभी अपने स्थान से च्युत नहीं होते और 'नक्षत्रिय', नक्षत्रों में गति करने वाले ग्रह, उपग्रह, ये सभी हमें सुखकारी हों । ( अहोरात्रेभ्यः, अर्धमासेभ्यः, ऋतुभ्यः, आर्त्तवेभ्यः, संवत्सराय स्वाहा ५ ) दिन-रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु और ऋतुओं में होने वाले विशेष परिवर्त्तन और संवत्सर ये हमें सुखकारी हों । ( द्यावापृथिवीभ्यां, चन्द्राय, सूर्याय, रश्मिभ्यः स्वाहा ४ ) द्यौ, पृथिवी,

चन्द्र, सूर्य और रश्मियें सुखकारी हों। इनके शुभ लक्षण प्रकट हों। (वसुभ्यः रुद्रेभ्यः आदित्येभ्यः स्वाहा ३) आठ वसु, पृथिवी आदि ११ रुद्र= प्राण आदित्य द्वादश मास या अविनाशी काल के अवयव और (मरुद्भ्यः स्वाहा) नाना वायुएं ये हमें सुखकारी हों। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) समस्त अन्य दिव्य शक्तियां सुखकारी हों। (मूलेभ्यः शाखाभ्यः वनस्पतिभ्यः, पुष्पेभ्यः, फलेभ्यः ओषधीभ्यः स्वाहा ६) मूल, शाखा, वनस्पतियें, फूल, फल और ओषधिगण ये सब हमारे लिये सुखकारी हों और हम उन सब उक्त पदार्थों को सुखकारी बनाने के उत्तम साधन उपस्थित करें।

**पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥ २६ ॥**

पृथिव्यादयो देवताः। निचृदत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—(पृथिव्यै, अन्तरिक्षाय, दिवे, सूर्याय, चन्द्राय, नक्षत्रेभ्यः स्वाहा) पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ये सब हमें सुख दें, हम इनको सुखकारी बनाने के उत्तम उपाय करें। (अद्भ्यः ओषधीभ्यः वनस्पतिभ्यः स्वाहा) जल, ओषधि और वनस्पति उनको हम उत्तम बनाने का साधन करें जिससे ये सुखकारी हों। (परिप्लवेभ्यः चराचरेभ्यः सरीसृपेभ्यः स्वाहा) आकाश में स्वच्छन्दता से विहार करने, उपद्रव करने वाले धूमकेतु उल्का आदि, चराचर प्राणि और सर्प आदि रेंगने वाले जन्तु ये सभी हमें सुखकारी हों, हम इनको सुखकारी बनाने का उत्तम उपाय करें।

**असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय**

स्वाहा सᳫं॒स॒र्पाय॒ स्वाहा॑ च॒न्द्राय॒ स्वाहा॒ ज्योति॑षे॒ स्वाहा॑ मलिम्लु॒चाय॒ स्वाहा॒ दिवा॑ प॒तय॑ते॒ स्वाहा॑ ॥ ३० ॥

अस्वादयो देवताः । कृतिः । निषादः ॥

भा०—( असवे स्वाहा ) शरीर के रोगों को बाहर फेंकने वाले 'प्राण' की हम उत्तम साधना करें । ( वसवे स्वाहा ) शरीर में बसने वाले जीव की उत्तम साधना करें । ( विभुवे स्वाहा ) व्यापक वायु और परमेश्वर की हम साधना और उपासना करें । (विवस्वते स्वाहा) विविध वसु, वास योग्य लोकों को धारण करने वाले सूर्य को हम सुखकारी बनावें । इसी प्रकार शत्रु को बाहर निकालने के लिये अस्त्रों के फेंकने वाला 'असु', प्रजा को बसाने वाला 'वसु', विशेष सामर्थ्यवान् 'विभु', विविध ऐश्वर्यों से युक्त 'विवस्वान्', इन सब प्रकार के उत्तम आदर योग्य पुरुषों का हम आदर करें । ( गण-श्रिये ) गण, संघ, सैनिक संघ से सुशोभित या संघों में सुशोभित सैनिकों को उत्तम अन्न आदि पदार्थ प्राप्त हों । ( गणपतये स्वाहा ) उन गणों के पालक का उत्तम आदर हो । ( अभिभुवे स्वाहा ) सन्मुख जाने वाले का और ( आधिपतये ) अधिपति का उत्तम मान आदर हो । (शूराय स्वाहा) सैन्य बल की उत्तम वृद्धि और विजय लाभ हो । ( संसर्पाय स्वाहा ) शत्रुगण में गुप्त रूप से फैल कर उनके भेद लेने वालों को उत्तम जीविका प्राप्त हो । ( चन्द्राय स्वाहा ) आह्लादकारी पुरुष को और ( ज्योतिषे ) दीप्ति प्रकाश के उत्पादक को उत्तम पद प्राप्त हो । ( मलिम्लुचाय स्वाहा ) मारा मारी करके दूसरे के धन हरण करने वाले दुष्ट पुरुष का अच्छा दमन हो । और ( दिवापतये स्वाहा ) दिन के पालक अथवा दिन के समय दूर तक चलने वाले पथिक की उत्तम रक्षा हो ।

मध॑वे॒ स्वाहा॒ माध॑वाय॒ स्वाहा॑ शु॒क्राय॒ स्वाहा॒ शुच॑ये॒ स्वाहा॒ नभ॑से॒ स्वाहा॑ नभ॒स्या॒य॒ स्वाहे॒षाय॒ स्वाहो॒र्जाय॒ स्वाहा॒ सह॑से॒

स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांꣳहसस्पतये स्वाहा ॥ ३१ ॥

मध्वादयो देवताः । भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

**भा०**—( मधवे स्वाहा ) मधुरादि गुणों के उत्पादक 'मधु' नाम चैत्र को हम सुखकारी बनावें । इसी प्रकार ( माधवाय, शुक्राय, शुचये, नभसे, नभस्याय, इषाय, ऊर्जाय, सहसे, सहस्याय, तपसे, तपस्याय, स्वाहा ) वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण भाद्र, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष माघ और फाल्गुन इन समस्त मासों को हम सुखकारी बनायें । और ( अंहसः पतये स्वाहा ) सब मासों में अवशिष्ट तिथियों के रूप में सटे हुए काल के पालक १३ वें मल मास को भी हम सुखदायी बनावें । इसके अतिरिक्त संवत्सर के समान प्रजापति के ये द्वादश मासों के समान द्वादश अधिकारी और तदनुसार प्रजापति राजा के १२ स्वरूपों के भी क्रम से ये नाम हैं ।

मधुर स्वभाव होने से 'मधु', अन्न आदि मधु या उनका उत्पादक प्रबन्धक 'माधव', शुद्धि करने एवं तेजस्वी होने से 'शुक्र', ज्योतिष्मान्, सत्य व्यवहारवान् होने से 'शुचि', जलवर्षक होने या सब को बांधने वाला प्रबन्धक होने से 'नभस्', उस कार्य में उत्तम सहायक 'नभस्य' अन्नोत्पादक होने से 'इष्', बलोत्पादक या पराक्रमी होने से 'ऊर्ज', शत्रुदमनकारी बलवान् 'सहस्', उसका उत्तम सहयोगी 'सहस्य' शत्रुतापक 'तपस्', उसका उत्तम सहयोगी 'तपस्य' और पापी पुरुषों का अध्यक्ष जेलर 'अंहसस्पति' ये राजपदाधिकारी समझने चाहियें ।

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

आयुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहापानो

यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहात्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा ॥ ३३ ॥

भा०—( ३२ । ३३ ) की व्याख्या देखो क्रम से, अ० १८ मन्त्र २८ । २९ ॥ ( स्वः स्वाहा, ) सुख और प्रकाश हमें उत्तम रीति से प्राप्त हो, ( मूर्ध्ने स्वाहा ) शिर हमारा उत्तम सुख प्राप्त करे, उसको हम उत्तम रीति से शुद्ध पवित्र बलवान् करें। ( व्यश्नुविने स्वाहा ) विविध अंगों में व्यापक, वीर्य और उसके समान बलकारी पुरुष की वृद्धि हो ।

( प्राणः अपानः, व्यानः, उदानः, समानः, यज्ञेन, कल्पताम्, स्वाहा ) प्राण अपान, व्यान, उदान, समान पांचों शरीरस्थ वायुएं हमारे यज्ञ, परस्पर संगति, योगाभ्यास और साधना से अधिक बलशाली हों ।

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याᳬ स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥ ३४ ॥

एकादयो देवताः । आरिगुष्णिक् । धैवतः ॥

भा०—( एकस्मै, द्वाभ्यां, स्वाहा ) एक परमेश्वर, दो कार्य और कारण, इनको उत्तम साधना से साधो । ईश्वर की उपासना करो और कार्य और कारण का ज्ञान करो ! इसी प्रकार ( एकस्मै, द्वाभ्यां, त्रिभ्यः, चतुर्भ्यः, इत्यादि) एक, दो, तीन, चार, पांच आदि सभी संख्या से परिमित

३३—'आन्त्यायाय स्वाहा आन्त्यायनाय स्वाहा भौ०' इति काण्व० ।

पदार्थों को सुख से प्राप्त करो, उनका सदुपयोग करो। और इन संख्या से परिमित आयु के वर्ष भी सुखकारी हों। उनको हम सुखकारी बनावें। और अन्त में सौ वर्ष तक जीवें तब ( शताय स्वाहा ) सौ वर्ष का जीवन भी सुखकारी हो और अधिक जीवन हो तो ( एकशताय स्वाहा ) एक-सौ एकवां वर्ष भी सुखकारी हो। इससे अधिक की गणना दो, तीन आदि पहले कह चुके। विशेष पाप भावों को दहन करने वाली शक्ति की ( व्युष्ट्यै स्वाहा ) उन्नति हो, वह हमें प्राप्त हो। और (स्वार्गाय स्वाहा) स्वर्ग, अर्थात् सुख देनेवाले पदार्थ और उसके निमित्त पुरुषार्थ हमें उत्तम रीति से प्राप्त हों, उस आनन्दमय मोक्ष को हम साधना करें।

॥ इति द्वाविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्य एकविंशोऽध्यायः ॥



# ॥ अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १३। ४ ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा। यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा संम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा संम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा संम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥ २ ॥

प्रजापतिर्देवो देवता। निचृदाकृतिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे राजन्! तू (उपयाम-गृहीतः असि) राजव्यवस्था या समस्त प्रजा के निर्धारित राजनियमों द्वारा स्वीकृत या बद्ध है (जुष्टं) सबके प्रेमपात्र (त्वा) तुझको (प्रजापतये) प्रजापति के पद के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं और नियुक्त करता हूं। (ते एषः योनिः) तेरा यह स्थान, पद, अधिकार है। (सूर्यः ते महिमा) सूर्य तेरा महान् सामर्थ्य है। अर्थात् सूर्य तेरे बड़े अधिकार और सामर्थ्य को बतलाता है। अर्थात् सूर्य जिस प्रकार दिन को प्रकट करता है वह अन्धकार को नाश करता है इससे दिन में सूर्य का महान् सामर्थ्य प्रकट होता है, उसी प्रकार शत्रुरूप अन्धकार और अज्ञान को नाश करके प्रजा में सुख, शान्ति और ज्ञानप्रकाश फैला कर सब प्रजाजन को कार्यों में प्रवृत्त कराने रूप (यः) जो (ते) तेरा (अहनि) दिन में दिन के समान तेरे उज्ज्वल

२—वाया अन्तरिक्षे० इति काण्व०।

राज्य में ( महिमा ) महान् सामर्थ्य ( संबभूव ) अच्छी प्रकार प्रकट हो रहा है और ( संवत्सरे ) सूर्य जैसे वर्ष में १२ मासों को उत्पन्न कर उनमें भूलोक से जल ग्रहण कर, पुनः वर्षा कर अन्नादि उत्पन्न करता, एवं समस्त प्राणियों को पालन करता है उसी प्रकार प्रजा से कर लेकर दुष्टों का दमन कर, सब को वर्षा के समान शान्ति देकर, ऐश्वर्य को प्रजा के हित लगा कर ( संवत्सरे ) पुनः समस्त प्रजाओं को एकत्र बसा देने रूप कार्य में ( यः ते महिमा ) जो तेरा महान् सामर्थ्य है, और ( वायौ ) वायु जिस प्रकार सब प्राणों का आधार है उसी प्रकार सब के जीवनों का आधार होने से ( यः ) जो तेरा महान् सामर्थ्य ( वायौ ) वायु नाम महाभूत में और ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष जिस प्रकार सब को आच्छादित करता है उसी प्रकार सब पर छत्र-छाया रखने वाले तेरा ( यः ) जो ( महिमा ) महान् सामर्थ्य ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष में ( संबभूव ) प्रकट होता है। अथवा—( अन्तरिक्षे वायौ ) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार वायु सर्वव्यापक और बेरोकटोक बड़े वेग से व्यापता, गति करता है उसी प्रकार तू ( अन्तरिक्षे ) अपने और शत्रु राष्ट्र के बीच में स्थित मध्यम राष्ट्र में बेरोक गति करने का बड़ा प्रबल, महान् सामर्थ्य है, ( दिवि सूर्ये ) परले महान् आकाश में जिस प्रकार सूर्य प्रखर तेज से चमकता है, कभी अस्त नहीं होता, सबको प्रकाशित करता है उसी प्रकार ( दिवि ) तेजोमय राजसभा में तेरा सूर्य के समान जो प्रखर ( यः महिमा संबभूव ) महान् सामर्थ्य प्रकट है ( तस्मै ) उस ( ते ) तुझ ( प्रजापतये ) प्रजापालक राजा के ( महिम्ने ) महान् सामर्थ्य के लिये और ( देवेभ्यः ) तेरे अन्य देव, दानशील, विजयी, विद्वान् तेजस्वी पुरुषों के लिये भी ( स्वाहा ) हम उत्तम आदर सत्कार करते हैं। परमेश्वर पक्ष में—योग के यम नियमों से तू साक्षात् किया जाता है। ( जुष्टं ) अति सेवनीय तुझको ( प्रजापतये गृह्णामि ) प्रजापालक परमेश्वर करके मानता हूं ( एषः ) यह समस्त

विश्व ( ते ) तेरा निवासस्थान है । ( सूर्यः ते महिमा ) सूर्य तेरी महिमा है, ( यः ते अहन् संवत्सरे ) प्रतिदिन और प्रतिवर्ष में जो तेरा महान् सामर्थ्य ( सं बभूव ) प्रकट होता है, ( यः ते महिमा वायौ अन्तरिक्षे संबभूव ) जो तेरी महिमा वायुगण और अन्तरिक्ष में विद्यमान है और ( यः ते दिवि सूर्ये महिमा ) जो तेरा महान् सामर्थ्य तेजोमय सूर्य में प्रकट है उस महान् सामर्थ्य स्वरूप समस्त प्रजापालक परमेश्वर की और ( देवेभ्यः ) उसके प्रकट दिव्य गुणों की मैं ( सु-आहा ) सदा उत्तम स्तुति करूं ।

**यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक ऽइद्राजा जगतो बभूव ।**
**य ऽईशे ऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥**

कः प्रजापतिर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—परमेश्वर पक्षमें—( यः ) जो परमेश्वर ( महित्वा ) अपने महान् सामर्थ्य से ( प्राणतः ) प्राण लेने वाले और ( निमिषतः ) नेत्रादि के चेष्टा करने वाले सजीव, चर ( जगतः ) जगत् का ( एक इत् ) एकमात्र ( राजा बभूव ) राजा है । और ( यः ) जो ( अस्य ) इस ( द्विपदः ) दोपाये मनुष्य, पक्षी और ( चतुष्पदः ) चौपाये पशु संसार का भी ( ईशे ) स्वामी है, ( कस्मै देवाय ) उस 'क' प्रजा के विधाता, परमेश्वर, प्रजापति, देव, सर्वद्रष्टा, सर्व सुखदाता के लिये ( हविषा ) भक्ति से ( विधेम ) स्तुति, सेवा, प्रार्थना करें ।

राजा के पक्षमें—( यः ) जो ( महित्वा ) अपने बड़े सामर्थ्य से समस्त प्राणधारी जगत् का राजा है, और दुपाये चौपायों का स्वामी है, उस राज्यकर्त्ता, विधाता, प्रजापति का हम ( हविषा ) उसकी आज्ञानुसार चल कर अथवा अन्नादि भेंट योग्य पदार्थ द्वारा ( विधेम ) सत्कार करें ।

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा। यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

विकृति । मध्यमः ॥

भा०—( उपयामगृहीतः असि० ) इत्यादि पूर्ववत्। हे राजन् ! ( ते महिमा चन्द्रमाः ) तेरे महान् सामर्थ्य का एक स्वरूप चन्द्र है। अर्थात् तू चन्द्र के समान सबको आह्लादित, सुखी करता, रात्रि में भी प्रकाश और पहरेदारी करता है। अर्थात् ( यः ते रात्रौ संवत्सरे महिमा ) जो तेरा महान् सामर्थ्य रात्रि और संवत्सर में ( सं बभूव ) प्रकट होता है और (यः ते महिमा पृथिव्याम् अग्नौ सं बभूव) जो तेरा महान् सामर्थ्य पृथिवी पर अग्नि अर्थात्—शत्रुसाधक नायक अग्रणी के रूप में प्रगट होता है, ( यः ते महिमा ) जो तेरा महान् सामर्थ्य ( नक्षत्रेषु चन्द्रमसि ) नक्षत्रों और उसके बीच में उपस्थित चन्द्रमा में ( सं बभूव ) प्रकट है, उस ( ते प्रजापतये महिम्नः ) तुझ प्रजापति के महान् सामर्थ्य और ( देवेभ्यः ) तेरे दिव्य गुणों के लिये ( स्वाहा ) हम तेरा आदर सत्कार करते हैं। राजा का महान् सामर्थ्य रात्रि में कैसे ? रात्रि में जिस प्रकार चन्द्र प्रकट होता है, उसको प्रकाशित करता है और रात्रि चन्द्र को अधिक उज्ज्वल करती है इसी प्रकार ऐश्वर्यों को देनेवाली, समस्त प्राणियों को रमण कराने वाली राजसभा या राष्ट्र-शक्ति में राजा की महत्ता प्रकट होती है। जिस राजव्यवस्था में प्रजाएं सुखी, रात को सुख से निर्भय रहेंगी वह व्यवस्था राजा की महिमा है। इसी प्रकार चन्द्रमा संवत्सर में नाना स्वरूप प्रकट करता है। सभी मासों, पक्षों का प्रवर्त्तक है। उसी प्रकार जो संवत्सररूप राष्ट्र है जिसमें सब प्राणी एकत्र सुख से रहते हैं, उसमें चन्द

स्वरूप राजा की महत्ता प्रकट होती है। पृथिवी पर अग्नि की महती सत्ता प्रकट होती है, वह सब को भस्म कर देती है उसी प्रकार राजा पृथिवी पर समस्त प्रतिद्वन्द्वी शत्रुओं को भस्म कर देता है। नक्षत्रों के बीच में जैसे चन्द्रमा की शोभा है वैसे ही ' नक्षत्र ' अर्थात् क्षत्र-बल से रहित प्रजाओं के बीच क्षत्रिय राजा की शोभा है।

परमेश्वर के पक्षमें—परमेश्वर का महान् सामर्थ्य चन्द्र है उसका महान् सामर्थ्य रात्रि में, संवत्सर में, पृथिवी में, अग्नि में, नक्षत्रों में, चन्द्रमा में, सभी दिव्य पदार्थों में विद्यमान है। उन्हीं दिव्य गुणों के लिये हम प्रजापालक परमेश्वर की स्तुति उपासना करें।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। सूर्यराजाश्वात्मपरमेश्वराः स्तुतिविषया देवताः। गायत्री षड्जः।

भा०—परमेश्वर पक्षमें—जो विद्वान्, योगाभ्यासी जन ( ब्रध्नम् ) महान्, सूर्य के समान, सब के मध्य में स्थित होकर, सबको अपनी आकर्षण शक्ति से बांधने वाले, ( परि तस्थुषः ) अपने चारों ओर स्थिर चेतना रहित, महान्, पांच भूत आदि प्रकृति के विकार-पदार्थों के भीतर और बाहर सब प्रकार से ( चरन्तम् ) व्यापक ( अरुषं ) शरीर के सभी मर्मों में विराजमान आत्मा को ( युञ्जन्ति ) योग द्वारा साक्षात् करते हैं। वे ( दिवि ) ज्ञानमय मोक्ष में ( रोचनाः ) स्वतः दीप्तिमान् एवं यथा काम, यथारुचि होकर ( रोचन्ते ) प्रकाशित होते हैं।

आत्मा के पक्षमें—जो योगाभ्यासी ( परितस्थुषः ) चारों ओर स्थित इन्द्रियों में व्याप्त, ( ब्रध्नम् ) सब को अपने साथ बांधने वाले आत्मा को, अथवा, ( तस्थुषः ) स्थावर या स्थूल स्थिर देहों के ( परि )

आधार पर ( चरन्तम् ) भोग करने हारे ( अरुषम् ) मर्मों में व्यापक आत्मा को योग द्वारा प्राप्त करते हैं वे ( दिवि ) ज्ञान प्रकाश में (रोचनाः) यथेष्ट प्रज्वलित होकर ( रोचन्ते ) सबके प्रीतिपात्र होते हैं, अथवा प्रकाशित होते हैं, अथवा यथेष्ट कामों को प्राप्त करते हैं ।

सूर्यपक्षमें—( दिवि ) आकाश में ( रोचनाः ) तेजस्वी नाना सूर्य ( रोचन्ते ) चमकते हैं । ( परि तस्थुषः ) चारों ओर स्थित ग्रहों तक ( चरन्तम् ) प्रकाश से व्यापनेवाले ( ब्रध्नम् ) उनको आकर्षण सामर्थ्य से बांधने वाले ( अरुषम् ) अति दीप्त सूर्य को ( युञ्जन्ति ) सब के सञ्चालक रूप से नियुक्त करते हैं ।

राजा के पक्ष में—विद्वान् लोग ( परितस्थुषः ) चारों ओर खड़े रहनेवाले, अनुयायी लोगों और देशों को ( चरन्तम् ) भोग और पराक्रम द्वारा प्राप्त करनेवाले ( अरुषम् ) रोष रहित, सौम्य स्वभाव के, ( ब्रध्नम् ) सूर्य के समान तेजस्वी, सबके बांधनेवाले, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, महान् पुरुष को ( युञ्जन्ति ) राष्ट्रपति के पद पर नियुक्त करें और ( रोचनाः ) तेजस्वी पुरुष ( दिवि ) राजसभा में ( रोचन्ते ) विराजें ।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ६ ॥

सूर्यो देवता । विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( काम्या ) कमनीय, कान्तिमान्, सुन्दर ( विपक्षसा ) विविध बन्धनों से बंधे ( हरी ) दो घोड़ों को ( रथे ) रथ में जिस प्रकार ( युञ्जन्ति ) जोड़ते हैं उसी प्रकार ( रथे ) रमण योग्य इस शरीर में ( काम्या ) कान्तियुक्त, ( विपक्षसा ) विविध उपायों से वश में आये ( हरी ) वेगवान् प्राण और अपान को ( युंजन्ति ) योग द्वारा नियुक्त करते हैं । उसी प्रकार योगी जन ( अस्य रथे ) इस परमेश्वर के परम रस

में अपने ( काम्या हरी ) कमनीय, सुन्दर वेगवान् ज्ञान और कर्मेन्द्रियों को भी लगा देते हैं। (अस्य रथे) इस राष्ट्रपति के राष्ट्र में भी ( काम्या ) सब की अभिलाषा के पात्र, (विपक्षसा) विविध पक्ष अर्थात् अनुयायियों वाले, ( हरी ) समर्थ पुरुषों को ( युञ्जन्ति ) नियुक्त करते हैं। अश्व कैसे ? ( शोणा ) लाल रंग के ( धृष्णू ) बलवान् दृढ़, ( नृवाहसा ) मनुष्यों को ढो लेजाने वाले। प्राणापान कैसे हैं, ( शोणा ) गतिशील, ( धृष्णू ) अन्य समस्त प्राणों को दमन करनेवाले, ( नृवाहसा ) शरीर के नेता प्राणों को अपने में धारण करनेवाले। दो विद्वान् नेता कैसे हों ? ( शोणा ) ज्ञानी अथवा लाल पोषाक पहनने वाले, अथवा तेजस्वी, ( धृष्णू ) धर्षणशील, ( विपक्षसा ) विपक्ष के पराभव करनेवाले, ( नृवाहसा ) नेता पुरुषों को सन्मार्ग पर लेजाने वाले।

यद्वातो॒ऽ अ॒पो अग॑नीगन्प्रि॒यामिन्द्र॑स्य त॒न्व॒म्।
ए॒तᳬ स्तो॑तरने॒न॑ प॒था पुन॒रश्व॒माव॑र्त्तयासि नः ॥ ७ ॥

भा०—( यद् ) जब ( वातः ) वायु के समान तीव्रगति होकर या प्रचण्ड होकर यह राजा ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् पुरुष के ( प्रियाम् ) प्रिय ( तन्वम् ) स्वरूप और ( अपः ) जल के समान शीतल स्वभाव वाले आप्त प्रजाओं को ( अगनीगत् ) प्राप्त हो, तब हे ( स्तोतः ) विद्वन् ! ( नः ) हमारे ( एतं ) इस ( अश्वम् ) राष्ट्र के भोक्ता स्वामी को अश्व के समान ( अनेन पथा ) इस सन्मार्ग से ( आवर्त्तयासि ) लेआ। अर्थात् जब राजा अपनी प्रिय प्रजा को प्राप्त होकर स्वयं वायु के समान प्रचण्ड होकर चलने लगे तब विद्वान् पुरुष उसको सौम्य मार्ग में प्रवृत्त करें।

वस॑वस्त्वाञ्जन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑सा रु॒द्रास्त्वा॑ञ्जन्तु॒ त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑सादि॒त्यास्त्वा॑ञ्जन्तु॒ जाग॑तेन॒ छन्द॑सा। भूर्भुवः॒ स्व॒र्लाजी॒३ञ्छाची॒३न्यव्ये॒ गव्य॑ऽ ए॒तदन्न॑मत्त देवा ए॒तदन्न॑मद्धि प्रजापते ॥ ८ ॥

वाय्वादयो देवताः अत्यष्टिः। गांधारः॥

भा०—हे राजन् ! ( वसवः ) वसु नामक विद्वान् जन ( त्वा ) तुझको ( गायत्रेण छन्दसा ) गायत्री मन्त्र से, अथवा पृथ्वी पालन, अथवा ब्राह्मबल से ( अञ्जन्तु ) ज्ञानवान् एवं युक्त करें। ( रुद्राः ) रुद्र नैष्ठिक पुरुष ( त्वा ) तुझको ( त्रैष्टुभेन छन्दसा ) त्रिष्टुभ मन्त्र से ( त्वा अञ्जन्तु ) तुझको ज्ञानवान् करें अथवा ( रुद्राः ) क्षात्रियगण तुझको क्षात्रबल से युक्त करें। ( आदित्याः ) आदित्य ब्रह्मचारी लोग ( त्वा ) तुझको ( जागतेन छन्दसा ) जगती छन्द के मन्त्रों से शिक्षित करें और वैश्यगण व्यापारों द्वारा तुझे समृद्ध करें।

इसी प्रकार परमेश्वर के स्वरूप को ( वसवः ) बसनेवाले, जीवगण जीवों के बसाने वाले पृथिवी आदि लोक ( गायत्रेण छन्दसा ) पृथ्वी लोक के ज्ञान से प्रकाशित करते हैं। ( रुद्राः ) अन्तरिक्षस्थ वायु प्राण आदि पदार्थ ( त्रैष्टुभेन छन्दसा ) अन्तरिक्षस्थ जल वायु विद्युत् पदार्थों से परमेश्वर के स्वरूप को प्रकट करते हैं। सूर्य आदि लोक जागत छन्द से अर्थात् नाना जगतों के स्वरूप से ईश्वर के महान् सामर्थ्य को प्रकट करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! ( भूःभुवः स्वः ) पूर्व कहे उक्त तीनों लोक हैं भूः, भुवः, स्वः, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और प्रकाशस्थ लोक इन तीनों को तू वश कर। हे ( लाजिन् ) प्रकाशों से प्रकाशवान् और हे ( शाचिन् ) शक्ति से शक्तिमान् ! तू उक्त लोकों को अपने वश कर। हे ( देवाः ) विद्वान् पुरुष ! ( यव्ये ) जव आदि से बने और ( गव्ये ) गो दुग्ध आदि के बने पदार्थ के स्वरूप में विद्यमान ( एतत् ) इस ( अन्नम् ) भोजन करने योग्य अन्न को ( अत्त ) खाओ। हे ( प्रजापते ) प्रजापालक राजन् ! तू भी ( एतत् अन्नम् ) इस अन्न को ( अद्धि ) भोजन कर।

लाजिन् शाचिन् इत्येतत् संबोधनपदद्वयम्। दूरादाह्वाने प्लुतिः। लाजाः दीप्तयोऽस्य सन्तीति लाजी दीप्तिमान्। शाचाः शक्तयोऽस्य सन्तीति स शाची। शक्तिमान् इत्यर्थः।

कः स्विदेकाकी चरति कऽ उ स्विज्जायते पुनः ।
किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥ ६ ॥

[ ९-१२ ] ब्रह्मोद्यम् । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—बतलाओ ( कः स्वित् ) कौन ( एकाकी चरति ) अकेला विचरता है ? ( कः उ स्वित् ) बतलाओ कौन ( पुनः ) बार २ पैदा होता है ? ( किं स्वित् ) बतलाओ क्या पदार्थ ( हिमस्य ) शीत का ( भेषजम् ) उपाय है ? ( किम् ) और कौनसा पदार्थ ( महत् ) बड़ा भारी ( आवपनम् ) बोने का खेत है ?

सूर्यऽ एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ १० ॥

भा०—( सूर्यः ) सूर्य, सूर्य के समान सबका प्रेरक परमेश्वर और विद्वान् परिव्राट् और राजा ( एकाकी चरति ) अकेला, अद्वितीय विचरता है । ( चन्द्रमाः ) चन्द्र जिस प्रकार बार २ पैदा होता है कला घटते २ नाम शेष होकर पुनः कलावृद्धि से बढ़ता है उसी प्रकार जीव आत्मा बालक रूप से बढ़कर युवा होता, पुनः क्षीण होकर मृत्यु द्वारा अदृष्ट हो जाता है, अथवा योग द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होकर पुनः संसार में आता है । इसी प्रकार प्रजा को अह्लादित करनेवाला राजा युद्धादि में क्षीण होकर पुनः समृद्ध हो जाता है । ( अग्निः ) अग्नि, ( हिमस्य ) शीत का ( भेषजम् ) उपाय है । ( हिमस्य ) हनन करनेवाले शत्रु या दुष्ट पुरुष का वश करने का उपाय भी ( अग्निः ) अग्नि के समान प्रतापी राजा ही है । ( भूमिः ) यह भूमि ही ( महत् आवपनम् ) बड़ाभारी बीज बोने के योग्य खेत है । समस्त स्थूल विकारों को उत्पन्न करनेवाली प्रकृति ही परमेश्वर के बीज वपन का स्थान है । वही 'क्षेत्र' है । परमात्मा 'क्षेत्री' है ।

आदित्यस्य हि सहायनैरपेक्ष्येण जगद्भ्रमणं प्रसिद्धम्। कृष्णपक्षे क्षीणश्चन्द्रः शुक्लपक्षे पुनर्जायत इति प्रसिद्धम्। अग्निसेवया हि शैत्योपद्रवो निवर्तते इति सायणः तै० ब्रा० भाष्ये [ तै० ब्रा० । ८ । ३ । ६ । ५ ॥ ]

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किंस्विदासीद् बृहद्वयः।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ११ ॥

भा०—( पूर्वचित्तिः ) सबसे पूर्व की स्मरण करने योग्य ( का आसीत् ) कौनसी स्थिति है। और ( किं स्वित् ) बताओ! कौनसा ( बृहद् वयः ) सबसे बड़ा बल है। ( का स्वित् ) कौनसी ( पिलिप्पिला ) 'पिलिप्पिला' सुन्दर अर्थात् शोभावती है? ( का स्वित् ) कौनसी ( पिशंगिला ) 'पिशंगिला' अर्थात् समस्त रूपों को निगल जाने वाली है।

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ १२ ॥

भा०—( द्यौः ) द्यौ, वृष्टि ही ( पूर्वचित्तिः ) 'पूर्वचित्ति' है अर्थात् सबसे प्रथम स्मरण करने योग्य पदार्थ है। ( अश्वः ) समस्त पदार्थों को भस्मकर खाजाने वाला, सर्वव्यापक अग्नि ही ( बृहत् वयः ) सबसे बड़ा बल है और ( अविः ) सब की रक्षिका भूमि ( पिलिप्पिला ) 'पिलिप्पिला' सब से अधिक शोभा वाली है। (पिशंगिला) और 'पिशंगिला', समस्त पदार्थों के रूपों को निगलजाने वाली ( रात्रिः आसीत् ) रात्रि है।

राष्ट्र पक्षमें—सबसे पूर्व चयन या निर्माण करने योग्य, ( द्यौः ) प्रकाश ज्ञानवाली राजसभा है। (अश्वः) सर्व राष्ट्र का भोक्ता राजा या तुरंग बल ही ( बृहद् वयः ) बड़ा भारी बल है। ( अविः ) सबकी रक्षा करनेवाली राजशक्ति ( पिलिप्पिला ) पालन करनेवाली 'राष्ट्र श्री' है। (रात्रिः) समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करनेवाली, सबको रमानेवाली रात्रि, राजशक्ति ही ( पिशंगिला ) समस्त रूपवान् पदार्थों को अपने भीतर निगल जाती है।

श्रीर्वै पिलिप्पिला । अहोरात्रे वै पिशंगिले । शत० १३ । २ । ६ । १६ ॥ या वृष्टिकारणभूता द्यौः सैव प्रथमतः श्वेतयमाना । प्रथमतो वृष्टौ सत्यां पश्चादोषधिद्वारा सर्वे प्राणिनो जीवन्ति ।। युद्धद्वारा वीरजीवन हेतुत्वादश्वो वृहद्वयः ॥ अतिशयेन रूपवती पिशङ्गिला रात्रिश्च तादृशी चान्द्रिकया नक्षत्रैश्च रूपत्वप्रतिभासात् प्रजासमूहनिमित्तस्य ध्वनिविशेषस्य-पिलिप्पिलेत्यनुकरणं श्रीश्च तथाविधध्वनियुक्ता यस्मिन् गृहे धनं समृद्धिस्तत्र जनवाहुलतया निरन्तरं तथाविधः शब्दो भवति । इति सायणः ।

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या । एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्मा कृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥ १३ ॥

ब्रह्मादयः अश्वो वा देवता । भुरिगतिजगती । निषादः ।

भा०—हे राजन् ! (त्वा) तुझको (वायुः) वायु के समान वेगवान्, शत्रुओं को अपने प्रबल आक्रमण से उखाड़ने वाला वीर पुरुष (पचतैः) अपने शत्रुओं को परिपाक या पीड़न करने के साधनों से (त्वा अवतु) तेरी रक्षा करे । (असितग्रीवः) नीले गर्दन वाला, अर्थात् नीले मणि या विशेष चिह्न को कण्ठ में पहिनने वाला वीर पुरुष तुझे (छागैः) शत्रुओं के छेदन करने वाले अस्त्रों या वीरों से (अवतु) तेरी रक्षा करे । (न्यग्-रोधः) वट जिस प्रकार ज्यों २ फैलता जाता है त्यों स्थान २ पर अपने मूल छोड़ता है उसी प्रकार जिस २ देश को विजय करता जाय वहां वहां ही छावनी जमा कर राजा के शासन-सूत्रों को छोड़नेहारा 'वनस्पति' नामक अधिकारी (चमसैः) पर राष्ट्र को वश करने या हड़प जाने वाले सैनिकों द्वारा या पिण्डभोजी, वेतनबद्ध भृत्यों से (त्वा अवतु) तेरी रक्षा करे । (शल्मलिः वृद्ध्या) और सैमर वृक्ष के समान खूब विशाल प्रकाण्ड फैला २ कर बढ़ने और परिणाम में रुई

उड़ा २ कर मानो राजा की कीर्त्ति फैलाने वाला अधिकारी या प्रधान माण्डलिक अपनी वृद्धि से तुझे बढ़ावे। ( एषः ) यह ( अस्य ) इस राजा का ( राथ्यः ) रथ समूहों का स्वामी ( वृषा ) बलवान् सेनापति ( चतुर्भिः पद्भिः ) चार पदों या अधिकारों से युक्त होकर ( आ अगन् इत् ) आवे और ( अकृष्णः च ) अकृष्ण अर्थात् शुक्ल, निष्पाप या शुद्ध श्वेतवस्त्र धारण करने हारा ( ब्रह्मा ) चारों वेदों का ज्ञाता होकर ( नः ) हमें ( अवतु ) रक्षा करे। ( नमः अग्नये ) उस अग्नि के समान तेजस्वी वेदज्ञ विद्वान्, अग्नि के समान तेजस्वी राजा और सेनापति का हम प्रजाजन झुक कर आदर करें।

सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳ शितो रश्मिना हयः।
सꣳ शितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः॥ १४॥

भा०—जिस प्रकार ( रश्मिना ) रस्सी से ( संशितः ) अच्छी प्रकार बँधा ( रथः ) रथ अच्छा सुखकारी होता है और जिस प्रकार ( हयः ) घोड़ा भी ( रश्मिना ) रासों से बंधा हुआ उत्तम और वशीभूत रहता है उसी प्रकार ( अप्सुजाः ) प्रजा में से उत्पन्न विद्वान् ( अप्सु संशितः ) प्रजाओं द्वारा ही भली प्रकार नियम व्यवस्थाओं और कर्म, कर्त्तव्यों से बद्ध हो। और ( ब्रह्मा ) ब्रह्म अर्थात् वेद का जानने हारा विद्वान् ही ( सोम-पुरोगवः ) राजा के आगे २ चलने हारा, उसका मार्गदर्शक हो। अथवा—( अप्सुजाः ) प्रजाओं में विशेष तेज से स्वामी बनने वाला राजा ( अप्सु संशितः ) प्रजाओं द्वारा ही खूब तीक्ष्ण, एवं कर्त्तव्यपरायण, व्यवस्था बद्ध किया जाकर ( ब्रह्मा ) महान् शक्तिमान् प्रभु और विद्वान् के समान ( सोम-पुरोगवः ) ऐश्वर्य या राष्ट्र का नेता हो।

अध्यात्म में—( रथः ) रमण साधन देह, ( रश्मिना ) सूर्य के किरण के समान तापदायी तप से ( संशितः ) तीक्ष्ण किया जाय।

( हयः ) इन्द्रियें भी तप से तीक्ष्ण हों। ( अप्सुजाः ) प्राण भी तप से तप्त हों। और तब ( ब्रह्मा ) विद्वान् योगी ( सोम-पुरोगवः ) सोमनाम ब्रह्म रस प्राप्ति में अग्रसर होता है।

स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥ १५ ॥

विराट् छन्दः ॥

भा०—हे ( वाजिन् ) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवन् ! तू ( तन्वं ) अपने शरीर या विस्तृत राष्ट्र को ( स्वयं ) स्वयं, अपनी इच्छानुसार ( कल्पयस्व ) सजा, उत्तम और समर्थ, अधिक बलवान् बना। ( स्वयं यजस्व ) स्वयं यथेच्छ दान कर, अथवा स्वयं अन्यों से संगति लाभ कर। ( स्वयं जुषस्व ) स्वयं यथेच्छ राष्ट्र का प्रेम से सेवन कर। ( अन्येन ) अन्य, तेरे से भिन्न २ कोई, तेरा शत्रु राजा ( ते ) तेरे ( महिमा ) महान् सामर्थ्य को न ( सं नशे ) प्राप्त नहीं कर सके। अथवा तेरी महिमा को कोई नष्ट नहीं करे।

अध्यात्म में—हे ( वाजिन् ) आत्मन् ! तू अपने शरीर को यथेच्छ ग्रहण कर। स्वयं ( यजस्व ) अध्यात्म यज्ञ कर। स्वयं (जुषस्व) सेवन कर। तेरी महिमा तुझ से अन्य, जड़ देह, प्राणादि प्राप्त नहीं कर सकती।

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १६ ॥

अश्वो देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—( न वा ) और न ही ( एतत् ) इस प्रकार शक्तिशाली होजाने पर तू ( म्रियसे ) मर सकता है। ( न देवान् ) और न देवों, अन्य विद्वान्, एवं शासक और विजयशील, या तुझे चाहने, या तुझ से धन चाहने वाले लोगों को ( इत् ) ही ( रिष्यसि ) विनष्ट

करे। तू ( सुगेभिः ) सुख से गमन करने योग्य, सुगम ( पथिभिः ) प्रजा पालन के मार्गों से ( एपि ) गमन कर। ( यत्र ) जिस मार्ग में ( सुकृतः ) उत्तम सदाचारी पुरुष ( आसते ) स्थित रहते हैं और ( यत्र ) जिस पर उच्च यशस्वी पद को ( ते ययुः ) वे प्राप्त होते हैं। ( देवः सविता ) सब का द्रष्टा और दाता, सर्वोत्पादक परमेश्वर या तेरा मार्गदर्शक प्रेरक विद्वान् ( तत्र ) वहां ही ( दधातु ) स्थापित करे।

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तञ्जेष्यसि पिबैताऽअपः। वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः। सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽअपः ॥ १७ ॥

अग्न्यादयो देवताः। अतिशक्वर्यौ पञ्चमः ॥

भा०—( अग्निः ) 'अग्नि', ज्ञानी (पशुः) सर्वद्रष्टा, मार्गदर्शक, निरीक्षक ( आसीत् ) है। ( तेन ) उससे विद्वान् लोगों के समान दिव्य पांचों भूत ( अयजन्त ) यज्ञ किया करते हैं। ( सः ) वह ( एतं लोकम् ) इस लोक को ( अजयत् ) विजय कर लेता है, ( यस्मिन् अग्निः ) जिसमें अग्नि तत्व ही मुख्य बल है। तू भी हे राजन्, अग्नि के समान तेजस्वी होकर राष्ट्र का निरीक्षक साक्षी होकर रह। और इससे ( सः ) वह यह भूलोक ( ते लोकः ) तेरा अपना आश्रयस्थान ( भविष्यति ) हो जाएगा। तू ( तं जेष्यसि ) उसी लोक को विजय कर लेगा। इसके लिये ( एताः अपः ) इन आप्त पुरुषों का ज्ञान रस और इन प्रजाओं के ऐश्वर्य रस का ( पिब ) पान कर।

( वायुः पशुः आसीत् ) 'वायु' सर्वद्रष्टा है, ( तेन अयजन्त ) देवगण उससे यज्ञ करते हैं। ( सः ) वह वायु ( एतम् लोकम् अजयत् ) इस

अन्तरिक्ष लोक का विजय करता है ( यस्मिन् वायुः ) जिसमें वायु प्रधान बल है। ( ते सः लोकः भविष्यति ) तेरा वही लोक हो जायगा ( एताः अपः पिब ) तू इन आप्त जनों और प्रजागणों के ज्ञान और ऐश्वर्य का पान कर।

(सूर्यः पशुः आसीत्) सूर्य पशु, सर्वद्रष्टा है। देवगण (तेन अयजन्त) उससे ही यज्ञ सम्पादन करते हैं। ( सः एतं लोकम् अजयत् ) सूर्य उस लोक का विजय करता है ( यस्मिन् सूर्यः ) जिसमें सूर्य स्वयं विराजता है। ( ते सः लोकः भविष्यति ) तेरा भी वही लोक हो जायगा। (एताः अपः पिब) इन आप्तजनों के ज्ञानों और प्रजाओं का ऐश्वर्य पान कर।

अर्थात् राजा वायु के समान प्रचण्ड हो तो उसको मुख्य बनाकर 'देव' विजिगीषु जन युद्ध यज्ञ करते हैं। उससे वे अन्तरिक्ष लोक अर्थात् मध्यम राजाओं पर विजय करते हैं। इससे वह अन्तरिक्ष में वायु के समान और प्रजा का प्राण होकर विराजता है। यही राजा का अन्तरिक्ष विजय है। इसी प्रकार सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी को मुख्य बनाकर विजिगीषु गण युद्धयज्ञ करते हैं इससे वह स्वयं राजा सूर्य के समान 'द्युलोक' अर्थात् समस्त राजाओं और विद्वानों पर वश पाता है वह समस्त राजाओं के बीच, ग्रहों के बीच सूर्य के समान विराजता है। इन तीनों दशा में उसको प्रजा का ऐश्वर्य और विद्वानों का साहाय्य प्राप्त करना आवश्यक है।

इस मन्त्र की योजना अ० ६ । १० के साथ लगाकर देखो ॥

**प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा।**
**अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।**
**ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ १८ ॥**

प्राणादयो देवताः। विराड् जगती। निषादः ॥

भा०—( प्राणाय, अपानाय, व्यानाय स्वाहा ) प्राण, अपान और व्यान इन तीनों मुख्य शरीर के प्राणों को उत्तम रीति से प्रयोग करो और उनको उत्तम सामर्थ्य प्राप्त हो ।

सामर्थ्यवान् पुरुष के न होने से राजा से रहित राज्यलक्ष्मी कहती है हे ( अम्बे ) मातः पृथिवि ! हे ( अम्बिके ) मातः पृथिवि ! हे ( अम्बालिके ) मातः पृथिवि ! ( अश्वकः ) कुत्सित राजा तो ( ससस्ति ) आलस्य और अज्ञान से पड़ा सोता है । ( सुभद्रिकाम् ) उत्तम सुख-सम्पदा से युक्त ( काम्पीलवासिनीम् ) सुन्दर सुखप्रद, शोभाजनक वस्त्रों से ढकी सुन्दरी स्त्री के समान ( काम्पीलवासिनीम् ) सुखों के बांधनेहारे पति को राष्ट्रपति के अपने ऊपर बसाने में समर्थ ( मा ) मुझको ( कः चन ) कोई भी वीर-जन ( न नयति ) प्राप्त नहीं करता । कुत्सित आचरण वाला राजा मुझ राज्यलक्ष्मी को क्या भोग कर सकता है ? वीरभोग्यावसुन्धरा ।

'काम्पीलवासिनीम्'—काम्पीलनगरे हि सुभगा सुरूपा विदग्धा स्त्रियो भवन्तीत्युवटः । तथैव च महीधरः । काम्पीलशब्देन वस्त्रविशेष उच्यते । तं वस्ते आच्छादयति इति काम्पीलवासिनी इति सायणस्तैत्तिरीयसंहिता भाष्ये । का० ७ । ४ । १६ ॥ शृङ्गारार्थं विचित्रदुकूलवस्त्रोपेते इत्यपि सायणः । तैत्तिरीयब्राह्मणभाष्ये का० ३ । ६ । ६ ॥ कं सुखं पीलयति बध्नाति गृह्णाति इति कंपीलः । स्वार्थे अण् । तं वासयितुं शीलमस्यास्ताम् लक्ष्मीम् । इति दयानन्दः स्वभाष्ये । कं सुखं पीलयति बध्नाति इति कम्पीलः, अथवा कं प्रजापतिं पीड़यति । डो लत्वं छान्दसम् । सुखेन बध्नाति आश्लिष्यति यः सः पतिः प्रियतमः । तं वासयितुं शीलमस्याः स्त्रियाः राज्य-लक्ष्म्याः वा । सा काम्पीलवासिनी । अथवा कामेन यथाकामं वा पीडयति आश्लिष्यतियः स काम्पीलः । अलोपो लं त्वं च छान्दसम् । पृषोदरादित्वाद्

साधुः। तं वासयति तदधीनं वा वसति या सा काम्पीलवासिनी स्त्री। तत्सा-दृश्याच्च राजलक्ष्मीः। वेदे नगरविशेषाप्रसिद्धेरुवटमहीधरौ न समीचीनौ।

उक्त मन्त्र का शुक्ल कृष्ण दोनों शाखाओं में विनियोग भेद होने से कर्म काण्डानुसारी योजना व्यभिचरित है इसलिये उवटादिकृत कर्मकाण्ड-परक योजना असंगत, अव्यवस्थित और अश्लील है।

स्वयंवरा कन्या का माता आदि बूढ़ी स्त्रियों से ऐसा कहना कि–हे माता! क्षुद्र पुरुष तो आलस्य में सोते हैं। मुझ कल्याणी को कोई वैसा पुरुष न प्राप्त करे, बहुत उपयुक्त है। उस पक्ष में योजना नीचे लिखे प्रकार से है।

हे ( अम्बे अम्बालिके अम्बिके ) माता ! हे दादी ! हे परदादी ! ( अश्वकः ससस्ति ) क्षुद्र पुरुष प्रायः आलस्य किया करता है। वह ( सुभद्रिकाम् ) उत्तम कल्याण लक्षणों से युक्त ( काम्पीलवासिनीम् ) शुभ, सुखप्रद पति के पास रहने योग्य ( मां ) मुझको ( कः चन ) वैसा कोई भी ( न नयति ) न लेजावे।

इससे अगले १९–३१ तक १२ मन्त्र राष्ट्र की प्रजा और राजा के प्रवल दुर्बल और समवल के परस्पर भोग्य-भोक्तृरूप वर्त्ताव का वर्णन करते हैं और श्लेष से गृहपति और गृहपत्नी के परस्पर रहस्य का भी वर्णन करते हैं। यहां विशेषतः प्रथम पक्ष ही मुख्य है क्योंकि शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण दोनों में उस पक्ष को लेकर ही व्याख्यान है। और अश्वमेध का प्रकरण भी उसी अर्थ को पुष्ट करता है।

अध्यात्म में—हे ( अम्बे ) जगत् की माता स्वरूप परमात्मन् सबको परमोपदेश देने वाली शक्ते ! ( अश्वकः ससस्ति ) कुत्सित विषयों का भोक्ता मनुष्य प्रमाद में पड़ा सोता है। और ( मां ) मुझ पुरुष, या आत्मा को ( सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ) अति कल्याण कारिणी, एवं परम सुख

मय ब्रह्म में रहने वाली ब्रह्मविद्या के पास ( मा कश्चन न नयति ) मुझे कोई नहीं लेजाता।

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ १६ ॥

गणपतिर्देवता। शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—हे ( वसो ) सब राष्ट्र को बसाने हारे ! परमेश्वर और राजन् ! हे विद्वन् ! हम ( त्वा ) तुझको ( गणानां ) समस्त गणों का ( गणपतिम् ) गणपति, गणनायक ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं। ( प्रियाणां ) सब प्रिय पदार्थों का तुझको ( प्रियपतिम् ) प्रियपति, पालक ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं। और ( निधीनां ) समस्त खजानों का तुझको (निधिपतिम्) निधिपति, कोशपाल, ( हवामहे ) स्वीकार करते हैं। हे ( वसो ) राष्ट्र को बसाने हारे राजन् ! परमेश्वर ! तू ( मम ) मुझ पृथ्वीवासी राष्ट्र प्रजा का भी पति है। ( अहम् ) मैं प्रजा ( गर्भधम् ) अपने 'गर्भ'=ग्रहण करने या वश करने के सामर्थ्य को धारण करने वाले तुझ पति को (आ अ जानि) प्राप्त होती हूं। तू ( गर्भधम् ) अपने भीतर समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाली मुझको ( अजासि ) प्राप्त हो।

पति-पत्नी के पक्ष में—हे पते ! मैं समस्त गणों में स्त्री के समान अपना गणपति, समस्त प्रिय जनों में तुझको प्रियपति, अपने समस्त ऐश्वर्यों का निधिपति तुझको ही कहती हूं। मैं गर्भ धारण कराने में समर्थ तुझको ( आ अजानि ) प्राप्त होती हूं। गर्भ धारण में समर्थ, उर्वरा मुझ पत्नी को तू प्राप्त हो।

परमेश्वर सबका गणपति, प्रियपति और निधिपति है। प्रकृति कहती है—हे ईश्वर ! हिरण्यगर्भ को धारण करनेवाले, तुझको मैं ( आ

अजानि ) प्राप्त होती हूं और तू ( गर्भधम् ) समस्त संसार को अपने भीतर अव्यक्त रूप में धारण करनेवाली मुझ प्रकृति को ( त्वम् अजासि ) तू प्राप्त होता और सृष्टि को उत्पन्न करता है । अथवा (अहम्) मैं जीव (गर्भधम्) हिरण्यगर्भ के धारक और संसार को अपने बीच धारण करनेवाली प्रकृति के भी धर्त्ता तुझको जानूं, प्राप्त होऊं और तू प्रकृति को प्राप्त हो ।

'गर्भधं'—गर्भधारकं कलत्ररूपं इति सायणः । तै० ब्रा० भा० । 'गर्भधात्री' इति सायणः । तै० सं० भा० ॥

**ताऽ उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥**

लिंगोक्ते राजप्रजे, पतिपत्नी च देवते । स्वराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—( तौ उभौ ) वे हम दोनों राजा और प्रजा मिलकर ( चतुरः पदः ) चारों पद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन प्राप्तव्य पुरुषार्थों को ( सम्प्रसारयाव ) भली प्रकार विस्तृत करें, बढ़ावें । और ( स्वर्गे लोके ) सुखमय लोक में ( प्र ऊर्णुवाथाम् ) एक दूसरे को अच्छी प्रकार ढांपें, एक दूसरे की अच्छी प्रकार रक्षा करें । ( वृषा ) दुष्टों को बांधनेवाला और राष्ट्र का प्रबन्ध करनेवाला राजा और ( रेतोधाः ) वीर्य, सामर्थ्य, बल, पराक्रम को धारण करनेहारा होकर ( रेतः ) राष्ट्र में भी वीर्य, बल, पराक्रम को ( दधातु ) धारण करे ।

पतिपत्नी पक्षमें—(तौ उभौ) वे दोनों पति पत्नी परस्पर (चतुरः पदः) चारों पद, अर्थात् प्राप्तव्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनको विस्तृत करें । ( स्वर्गे लोके ) सुखमय लोक, गृहस्थ आश्रम में ( प्र ऊर्णुवाथाम् ) दोनों उत्तम रीति से अच्छे वस्त्र धारण करें या दोनों एक दूसरे को कवच के समान

२०—तौ सह चतुरः पदः । संप्रसार यावहै । सुवर्गे लोके सं प्रोर्णवाम् । वृषांग रेतोधा रेतो दधातु । इति तै० सं० । काण्व० च ।

आच्छादित करें, रक्षा करें। उन दोनों में से ( वृषा ) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष ( वाजी ) वेगवान् अश्व के समान बल वीर्यवान् एवं ( रेतोधा ) स्वयं वीर्य धारण करनेहारा और कलत्र में भी वीर्य स्थापन करने में समर्थ होकर ( रेतः ) वीर्य का ( दधातु ) स्थापन करे।

महीधर और उवट ने इस मन्त्र को घोड़े और रानी के भोग में लगाने का जो भ्रष्ट और असंगत अर्थ किया है वह अमान्य है।

'सम्प्रोर्णुवाथाम्' चौमं वस्त्रं सम्यागाच्छादयतम्। इति सायणः तै० सं० भा० का० ७। ४। १६॥

उत्स॑क्थ्या॒ऽअव॑ गु॒दं धे॑हि॒ सम॒ञ्जिं चा॑रया वृषन्।
य स्त्री॒णां जी॑व॒भोज॑नः ॥ २१ ॥

भुरिग्गायत्री। षड्जः। लिंगोक्तो वृषा देवता ॥

भा०—हे ( वृषन् ) दुष्टों के शक्ति को दमन करनेवाले! तू ( उत्सक्थ्याः ) सत्संग से वर्तमान प्रजा के बीच में ( गुदं ) उस केवल क्रीड़ाशील, व्यसनी पुरुष को ( यः ) जो ( स्त्रीणां ) स्त्रियों के ऊपर ( जीवभोजनः ) अपनी आजीविका का भोग करता है। ( अव धेहि ) नीचे गिरा। और ( अञ्जिम् ) विद्या और न्याय के प्रकाश को ( सं चारय ) अच्छी प्रकार फैला।

पति-पत्नीपक्षमें—हे ( वृषन् ) वीर्यसेक्तः पुरुष! तू ( उत्सक्थ्याः ) जांघें उठाये स्त्री के ( गुदम् अव अञ्जि धेहि, संचारय ) उस अंग में सुखपूर्वक वीर्य आधान कर ( स्त्रीणां ) स्त्रियों का ( यः ) जो अंग (जीवभोजनः)

२१—उत्सक्थ्योर्गृदं धेह्यञ्जिमुदञ्जिमवज। यः स्त्रीणां जीवभोजनो य आसां बिलधावनः। प्रियः स्त्रीणामपीच्यं। य आसां कृष्णे लक्ष्मणि सर्दिगृदिं परावधीत्। इति तै० सं०। अत्र उत् इतिः। सक्थ्योः। इति पदपाठः॥

न्यायधीशो देवता। द०। अश्व० इति सर्वा०॥

सन्तान रूप जीव का पालन करनेहारा है अथवा, हे नृपन्! युवा पुरुष (यः) जो तू (स्त्रीणां) स्त्रियों के जीवन की रक्षा करता है वह तू सन्तानोत्पत्ति कर इत्यादि इस रहस्य के विशेष जिज्ञासा के लिये चरक के प्रजोत्पत्ति विषयक शास्त्र भाग का मनन करना चाहिये।

अजिः शुक्ल वर्णः। इति सायणः तै०। सं० ७। ३। १७॥

युकासुकौ शंकुन्तिकाहुलगिति वञ्चति।
आहन्ति गुभे पसो निगल्गलीति धारका॥ २२॥

राजप्रजे देवते। विराड् अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(यका असकौ=या असौ) यह जो (शकुन्तिका) शक्ति सम्पन्न प्रजा (आहलक्) मेरा भूपति सर्वत्र कृषि के निमित्त हलादि चलाने के कार्य में कुशल है (इति) इस कारण (वञ्चति) अपने भूपति को प्राप्त होती है। वह भूमिपति (गभे=भगे) भाग्यवान् समृद्ध प्रजा में (पसः=सपः) संघ बनाकर बैठे, सुसम्बद्ध, सुप्रबद्ध राष्ट्र के राज्य-प्रबन्ध को (आ हन्ति) विस्तृत करता है। और वह (धारका) ऐश्वर्य धारण करने में समर्थ प्रजा उसकी आज्ञा को (नि गल्गलीति) अच्छी प्रकार श्रवण करती है।

'निगल्गलीति'—गल श्रवणे। भ्वादिः॥

गभः, पसः, वर्णव्यत्ययेन भगः सपः। षप समवाये। भ्वादिः॥

'शकुन्तिका'—शके रुनोन्तोन्त्युनयः। उणा०। पू० २। ४६॥ शक्नोतीति शकुनः। शकुन्तः। शकुन्तिः। शकुनिः॥ इति दया० उणा०। 'यका', 'असकौ', अकच् प्राक् टेः॥

---

२२—इयं यका शकुन्तिकाऽऽहलगिति सर्पति। आहतं गभे पसो निजल्गुलीति धाणिका इति तै० सं०। इतो दश अभिमेथिन्यः॥

दम्पति पक्ष में—( यका ) जो वह ( शकुन्तिका ) शक्तिमती, प्रजोत्पत्ति में समर्थ स्त्री ( असकौ आहलक् ) यह पुरुष मेरे हृदय को विलेखन, प्रेम से अंकन या आकर्षण करता है ( इति ) इस कारण से ( वञ्चति ) उसको प्राप्त हो। वह प्रेमी पति, ( गभे पसः आहन्ति ) उसके ऐश्वर्य सौभाग्य के निमित्त उससे संगत होता है। वह ( धारिका ) गर्भ धारण में समर्थ स्त्री ( निगल्गलीति ) उसके वचन आदर से श्रवण करती है। अर्थात् शक्तिमती स्त्री समर्थ पति को प्रेम से प्राप्त हो। वे सुसंगत होकर रहें। प्रेम से एक दूसरे के वचन श्रवण करें।

यकोऽसकौ शकुन्तक ऽआहलगिति वञ्चति।
विवक्षतऽ इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः ॥ २३ ॥

भा०—( यकः=यः ) जो पुरुष ( शकुन्तः ) शक्तिशाली है, ( असकौ=असौ ) वह ( आहलक् ) मैं सब प्रकार से भूमि को विलेखन करने में समर्थ हूं ( इति ) इस हेतु से ( वञ्चति ) भूमि को प्राप्त होता है। राज्य प्राप्त होजाने पर आगे उपदेश है कि—हे ( अध्वर्यो ) अध्वर्यो ! हिंसा रहित ! प्रजापालन के कार्यभार को संचालन करने हारे राजन् ! ( विवक्षतः ते ) विशेषरूप से राष्ट्र भार को उठाना चाहने वाले तेरा पद (मुखम् इव) शरीर में मुख के समान मुख्य है। अतः तू ( नः ) हम से ( मा अभिभाषथाः ) व्यर्थ बातें मत किया कर।

दम्पति पक्ष में—( यः शकुन्तः ) जो पुरुष शक्तिमान् है वह ( आहलक् ) मैं अमुक स्त्री के हृदय को खींचने में समर्थ हूं ( इति वञ्चति ) इसलिये उसको प्राप्त हो। हे अध्वर्यो ! गृहस्थ यज्ञ के मार्ग में युक्त होना चाहने वाले पुरुष ! (ते विवक्षतः इव मुखम्) तेरा मुख अब विवाहेच्छु पुरुष के समान है। तू ( नः मा अभिभाषथाः ) अब हम सामान्य स्त्री पुरुषों से अधिक व्यर्थालाप मत कर। महीधर ने इसमें भ्रष्ट अर्थों की पराकाष्ठा करदी है। जिसकी यहां गन्ध भी नहीं।

मा॒ता च॑ ते पि॒ता च॑ ते॒ऽग्रं॑ वृ॒क्षस्य॑ रोहतः ।
प्रति॑लामीति॒ ते पि॒ता ग॒भे मु॒ष्टिम॑तꣳसयत् ॥ २४ ॥

भूमिसूर्यो देवते । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! हे सूर्य ! ( ते माता च ) तेरे मध्य में माता अर्थात् ज्ञानवान् पुरुष तुझे निर्माण करने वाला, ( ते च पिता ) और तेरा पिता, पालक राजा, वे दोनों ( वृक्षस्य ) समस्त भूमि को आच्छादन करने वाले शासन के ( अग्रम् ) मुख्य पद पर ( रोहतः ) आरूढ़ होते हैं। और ( ते पिता ) तेरा पालक राजा भी ( प्रतिलामि इति ) स्नेह करता हूं इस भाव से ही ( गभे=भगे ) प्रजा के ऐश्वर्य के आधार पर ( मुष्टिम् ) अपने दुःखों से छुड़ाने वाले सुसंगठित राष्ट्र को अथवा शत्रु नाशक शस्त्र-बल को ( अतंसयत् ) सुशोभित करता है।

'अग्रं'—श्री वै राष्ट्रस्य अग्रम् । श्रियमेवेनं राष्ट्रस्याग्रं गमयति । विड्वै गभो । राष्ट्रं मुष्टिः । राष्ट्रम् एव विशि आहन्ति । तस्माद् राष्ट्री विशं घातुकः । श्री राष्ट्र का अग्र भाग है । 'गभ' प्रजा है । राष्ट्र राज्य-प्रबन्ध या शासन मुष्टि है । अर्थात् जिस प्रकार ढीले हाथ में कुछ शक्ति नहीं, परन्तु उसकी मुट्ठी बांध लेने पर वह बलवान् होजाता है उसी प्रकार अव्यवस्थित प्रजा को शासन में बांध लेने पर वह एक दृढ़ मुट्ठी के समान होजाता है । वह राष्ट्र ही प्रजा के आधार पर चलता है। इसीसे राष्ट्रपति भी प्रजा को ही प्राप्त होता है । राजा का यह स्नेह ही है कि वह बिखरी प्रजा को मुष्टि का रूप देता है जिस स्नेह से पांचों अंगुलियों के समान पांचों जन मिलकर एक होजाते हैं और यही प्रजा की शोभा है ।

'वृक्षस्य'—वृत्वा क्षां तिष्ठतीति । निरुक्तम् ।

'मुष्टिम्'—मोचनाद् मोषणाद्, मोहनाद्वा । निरु० ६ । १ । १ ॥

गृहस्थ पक्षमें—हे पुरुष ! ( ते माता च पिता च वृक्षस्य अग्रं रोहतः ) तेरे माता पिता ही गृहस्थाश्रमरूप आश्रय वृक्ष के मुख्य पद पर स्थित हैं। ( ते पिता ) तेरे पिता स्नेह करता हूं इस भाव से ही ( गभे = भगे ) ऐश्वर्य के बल पर अथवा स्त्री के आधार पर ही अपने ( मुष्टिम् ) मुट्ठी के समान एक कर देने वाली पारि वारिक स्नेहकी व्यवस्था को सुशोभित करता है।

माता च॑ ते पि॒ता च॑ तेऽग्रे॑ वृ॒क्षस्य॑ क्रीडतः ।
विव॑क्षतऽ इव ते॒ मुखं॒ ब्रह्म॒न्मा त्वं व॑दो ब॒हु ॥ २५ ॥

निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे प्रजाजन ! हे पुरुष ! ( ते माता च ) तेरी माता, उत्पादक जननी के समान परिपालक राजसभा और ( पिता च ) तेरा पिता, पालक राजा, दोनों ( वृक्षस्य ) समग्र पृथ्वी पर फैले राज्य के ( अग्रे ) मुख्य पद पर ( रोहतः ) विराजमान होते हैं। हे ( ब्रह्मन् ) महान् राष्ट्रपते ! और हे ब्रह्मज्ञान के जानने वाले विद्वन् ! ( विवक्षतः इव ) भार वहन करने वाले के समान ( ते ) तेरा ( मुखम् ) मुख्य कार्य है अर्थात् शरीर में मुख के समान राष्ट्र की व्यवस्था करना तेरा मुख्य और दर्शनीय कार्य है, इसलिये हे ( ब्रह्मन् ) महान् शक्तिशालिन् ! ( त्वं ) तू ( बहु ) बहुत सा व्यर्थ ( मा वदः ) मत बोला कर। उत्तरदायी जिम्मेवार पुरुष को व्यर्थ बहुत नहीं बोलना चाहिये। मुख्य अधिकारी को अपना आज्ञाकारी मुख बहुत सम्भाल कर रखना चाहिये। उससे बहुत अनर्थ होने सम्भव होते हैं।

ऊ॒र्ध्वामे॑नामुच्छ्रा॑पय गि॒रौ भा॒रᳬं हर॑न्निव ।
अथा॑स्यै॒ मध्य॑मेधताᳬं शी॒ते वाते॑ पु॒नन्नि॑व ॥ २६ ॥

श्रीर्देवता अनुष्टुप् । गांधारः ॥

२५—०क्रीळतः० इति काण्व० ।

भा०—( गिरौ ) पर्वत पर ( भारं ) भार, बोझा को ( हरन् इव ) उठा कर लेजाने वाला पुरुष जिस प्रकार सिर या पीठ पर लदी पोट को ऊपर लेजाता है उसी प्रकार ( एनाम् ) इस प्रजा, पृथ्वी को ( ऊर्ध्वाम् ) उन्नत पद पर ( उत् आपय ) उठा कर उन्नत कर। ( अथ ) और ( अस्यै ) इस राष्ट्र की प्रजा का ( मध्यम् ) मध्य भाग, बीच की राजधानी का भाग ( एधताम् ) बढ़े, समृद्ध हो। और ( शीते वाते ) शीतल वायु में जिस प्रकार किसान अन्न को छाज से गिरा २ कर साफ करता है और वायु के बल से तुषों को दूर करता है और स्वच्छ अन्न की ढेरी को बढ़ाता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी ( शीते वाते ) शीत अर्थात् बढ़े हुए वात अर्थात् वायु के समान प्रचण्ड बल पर राष्ट्र को पवित्र कर, उसे दुष्ट पुरुषों से रहित कर।

दम्पति के पक्षमें—( एनाम् ऊर्ध्वम् उत् आपय ) इस स्त्री को तू उच्च पद पर स्थापित कर, हे पुरुष ! तू ( गिरौ भारं हरन् इव ) पर्वत पर बोझा उठाकर लेजाने हारे के समान है। ( अथ अस्य मध्यम् ) और जब इसका मध्य भाग, गर्भाशय पुत्र सन्तान आदि से वृद्धि को प्राप्त हो तब तू उस समय पूर्वोक्त अन्न को साफ करनेवाले के समान ( शीते ) वृद्धि-कारी और ( वाते ) पवित्र पदार्थों के आधार पर अपने आचार व्यवहार को पवित्र रख और बालक पर उत्तम संस्कार डाल। स्त्री के गर्भिणी होने के काल में पुरुष को संयम से रहना चाहिये। उसको 'शीत' अर्थात् वृद्धि-कर, पुष्टिप्रद और पवित्र पदार्थों पर पुष्ट करे।

'शीतम्'—श्यैङ् वृद्धौ। भ्वादिः। श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः। श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यम्, क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतम्। श० ३। ३। १–४॥

ऊर्ध्वमे॑नमुच्छ्र॑यताद्गि॒रौ भार॒ᳬ हर॑न्निव।
अथा॑स्य॒ मध्य॑मेजतु शी॒ते वाते॑ पु॒नन्नि॑व ॥ २७ ॥

अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—( गिरौ भारं हरन् इव ) पर्वत पर बोझा उठाकर लेजाने वाला जिस प्रकार बोझा को पर्वत के शिखर पर लेजाता है और स्वयं भी ऊपर चढ़ जाता है उसी प्रकार हे प्रजे ! ( ऊर्ध्वम् ) ऊंचे पद पर स्थित ( एनम् ) इस राजा को ( उच्छ्रयतात् ) उन्नत कर। ( अथ ) और जब ( अस्य मध्यम् ) इसका मध्य भाग बीच का शासन का केन्द्र-बल ( शीते वाते ) परिपुष्ट ऐश्वर्य के आधार पर ऐसे ( एजतु ) कम्पन करें, ऐसे प्रदीप्त हों जैसे ( वाते ) वायु में ( पुनन् इव ) तुष, अन्न को साफ करता हुआ पुरुष चेष्टा करता है। अर्थात् राज्य का मुख्यबल देश के लुच्चे लोगों को दूर करे। सदा ऐसा प्रयत्न होता रहे।

दम्पति के पक्ष में—स्त्री पुरुष को उन्नत करे। पुरुष का मध्यभाग, धनसम्पत्ति अथवा प्रजनन भाग वीर्य बल से युक्त हो। और वह अपने आचार को ब्रह्मचर्य से पवित्र करें।

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत्।
मुष्काविदस्याऽएजतो गोशफे शकुलाविव ॥ २८ ॥

प्रजापतिर्देवता। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—( यद् ) जब ( अस्याः ) इस ( अंहुभेद्याः ) पाप को भेदन करनेवाली, स्वच्छ, दुर्गुणों से रहित, प्रजा को ( कृधु ) दुष्टों का नाशक ( स्थूलम् ) स्थूल, स्थिर दृढ़ राज्य ( उपातसत् ) पृथवी पर जम जाता है। तब ( अस्याः ) इसके ( मुष्कौ ) शत्रुओं और अज्ञान का खण्डन या विनाश करनेवाले अथवा बन्धन से छुड़ानेवाले अथवा पुष्टि करनेवाले क्षात्र और ब्राह्मण दोनों ( गोशफे ) गौ के चरण में ( शकुलौ ) लगे खुर के दो खण्डों के समान ( राजतः ) शोभा देते हैं। अर्थात् जिस प्रकार गौ के चरण में खुर के दो भाग ही पूरे शरीर को थामे रहते हैं उस

२८—मुष्काविद० इति काण्व०।

प्रकार प्रजा में से दुष्टों के नाशक क्षात्रबल और अज्ञान, अविद्या का नाशक ब्राह्म बल विद्वान् गण, दोनों पृथिवी के शासनरूप चरण में विराजते और पृथिवी रूप गौ का भार उठाये रहते हैं ।

'शुष्कः' सुपेः कः । श्रोणा० ३ । ४१ ॥ अथवा 'मुखे खण्डने' इत्यस्मात् कः पत्वं छान्दसम् । पुष्टिवद् मोचनाद्वेति इतिनिरुक्तम्: । पुषेर्वा । पस्य मरछान्दसः । 'कृधु' कृणोतेर्हिंसार्थस्य । करोतेर्वा । 'स्थूलं' तिष्टतेः ।

यद्देवासो ललामगुं प्र विष्टीमिनमाविपुः ।
सुक्थ्ना देदिश्यते नारी सुत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ २६ ॥

देवा: देवताः । अनुष्टुप् । गांधार: ॥

भा०—( यत् ) जब ( देवासः ) विद्वान् पुरुष ( ललामगुम् ) सुन्दर उत्तम वाणी वाले विद्वान् ( विष्टीमिनम् ) विशेष दयालुता के भावों से युक्त, अथवा विशेष प्रजा के विविध कर्मों के विवेचक न्यायाधीश पुरुष को ( प्र आविपुः ) प्राप्त होते हैं तब जैसे ( सक्थ्या ) शरीर के जंघा भाग से ( नारी देदिश्यते ) स्त्री या मादीन का पता लग जाता है उसी प्रकार ( अक्षिभुवः सत्यस्य ) आंख से देखे गये सत्य और ( अक्षिभुवः ) प्रत्यक्ष से उत्पन्न होनेवाले ( सत्यस्य ) सत्य अनुमान ज्ञान का भी ( देदिश्यते ) वर्णन किया जाय ।

'ललामगुः' ललाम सुखं कर्तुं गच्छति इति ललामगुः । इति उवटः ( विष्टीमिनम् ) विविधाः ष्टीमाः आर्द्रीभूताः पदार्था यस्मिन् अथवा 'विष्टी-मिनम्' विष्टीः कर्माणि वेतनानि वा मिनोति, माति, मन्यते, विवेचयति वा शब्दयति उपादिशति वा स 'विष्टीमी' तम् । माङ् माने शब्दे च अयादिः । माङ् माने । दिवादिः । ललामः ललाटैश्वर्ययुक्तः इति सायणः

अथवा—( नारी ) नेता पुरुषों की बनी सभा में ( सक्वन्था ) प्रेम से, सम्मिलित शक्ति से ( यथा ) यथावत् ( अक्षिभुवः सत्यस्य देदिश्यते ) आंख से देखे सत्य पदार्थ का प्रतिपादन करना उचित है।

पच सेवने सेचने च। पच समवाये भ्वादिः।
'नारी' इति लुप्तसप्तमाकं पदम्। नराणां इयं नारी तस्याम्।

**यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते।**
**शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥**

राजा देवता। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—( यत् ) जब ( हरिणः ) हरिण ( यवम् ) जौं को ( अत्ति ) खाता है तब क्षेत्रपति ( पशुम् ) पशु को ( पुष्टं ) पुष्ट हुआ ( न मन्यते ) नहीं मानता। प्रत्युत क्षेत्रपति अपने खेत का विनाश हुआ ही गिना करता है। इसी प्रकार यदि राष्ट्र की राजसत्ता यवरूप प्रजा को खाजाय तो प्रजा का स्वामी राजा ( पशुं ) राजसत्ता को पुष्ट हुआ नहीं मानता, प्रत्युत प्रजा के विनाश को होता देखकर अधिक दुःखी होता है। इसलिये राजा को चाहिये कि वह प्रजा को हानि पहुंचा कर राज्य प्रबन्ध या राजशक्ति को न पुष्ट करे। ( यद् ) जब ( शूद्रा ) शूद्र वर्ण की स्त्री नौकरानी ( अर्यजारा ) वैश्य या स्वामी को जार रूप से प्राप्त करती है तब वह ( पोषाय ) अपने कुटुम्ब पोषण के लिये धन नहीं चाहती। इसी प्रकार जो प्रजा ( शूद्रा ) केवल श्रमशील होकर ( अर्य-जारा ) अपने स्वामी की बल वृद्धि के लिये ही स्वयं जीर्ण और निर्बल होती रहती है और वह ( पोषाय ) अपने को समृद्ध वा पुष्ट करने के लिये ( न धनायति ) धन की आकांक्षा नहीं करती तब वह नष्ट ही होजाती है। इसलिये प्रजा को चाहिये कि राजा के भोग ऐश्वर्य के बढ़ाने के लिये वह अपना नाश न करे। इसी कारण विद्वान्‌जन वैशी पुत्र या वैश्यवृत्ति के राजा का अभिषेक नहीं करते वह प्रजा का समस्त ऐश्वर्य हर लेता है और प्रजा को धन समृद्ध नहीं करता है।

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते ।
शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनुमन्यते ॥ ३१ ॥

राजप्रजे देवते । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—( यत् ) जो ( हरिणः ) हरिण के समान राजा ( यवम् ) यव के समान प्रजाजन को खालेता है वह राजा ( पुष्टम् ) पुष्ट प्रजाजन को ( बहु ) अधिक आवश्यक ( न मन्यते ) नहीं जानता । इसी प्रकार वह ( शूद्रः ) शूद्र वर्ण का पुरुष, नौकर ( यत् ) जो ( अर्यायैः जारः ) गृहस्वामिनी का भोग करता है तब वह भी ( पोषम् ) अपने भरण पोषण की आजीविका पर ( न अनुमन्यते ) विचार नहीं करता । अर्थात्–जो राजा अपनी प्रजा को लूट कर पीड़ित करके खाता है वह उस हरिण के समान है जो खेत में लगे जौं को खाजाता है और खेत के जौं को बढ़ने नहीं देता । इसी प्रकार वह राजा उस शूद्र, नौकर के समान है जो व्यभिचार से घर की मालकिन का भोग करके उसका और उसके यश का नाश कर देता है और उसकी सम्पदा, मान कीर्ति और लक्ष्मी की वृद्धि की परवाह नहीं करता । वह राजा व्यभिचारी दुराचारी भृत्य के समान समृद्ध प्रजा को लूट खसोट के दरिद्र कर देता है और उसकी समृद्धि को बढ़ने नहीं देता । और प्रजा के भी आचार, व्यवहार, मान, कीर्ति और धन सब का नाश कर देता है ।

दधिक्राव्णो ऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३२ ॥

जिष्णुर्वाजी राजा वा देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः । दधिक्रावा ऋषिः ॥

भा०—( दधिक्राव्णः ) अपने धारक पोषक पुरुषों को प्राप्त होने वाले ( जिष्णोः ) विजयशील, ( वाजिनः ) ऐश्वर्यवान्, ( अश्वस्य ) राष्ट्र

के भोक्ता पुरुष को ( अकारिषम् ) मैं नियत करता हूं । वह ( नः ) हमारे ( मुखा ) मुख्य पदों को ( सुरभि ) उत्तम, बलवान्, यशस्वी ( करत् ) बनावे । (नः आयूंषि) हमारे जीवनों को (प्र तारिषत्) दीर्घ, चिरकाल तक स्थिर करे । ईश्वर पक्ष में—(दधिक्राव्णः) ध्यान करने वाले को प्राप्त होने वाले ( जिष्णोः ) सब दुखों के नाशक, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की (अकारिषम्) स्तुति करता हूं । वह ( नः मुखा ) हमारे मुख्य प्राणों को ( सुरभि ) बलवान् बनावे, हमें दीर्घ जीवन दे ।

गायत्री त्रिष्टुब् जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३३ ॥

वाचः विद्वांसो देवता । उष्णिक् । ऋषभः ।

भा०—हे पुरुष ! (गायत्री) गायत्री, (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप्, (जगती) जगती, ( अनुष्टुप् ) अनुष्टुप् ये समस्त छन्द ( पंक्त्या सह ) पंक्ति छन्द के साथ और (बृहती) बृहती और (ककुप्) ककुप् ये दोनों (उष्णिहा) उष्णिक् छन्द के साथ मिलकर ( सूचीभिः ) ज्ञान को सूचित करनेवाली ऋचाओं से तेरे हृदय को शान्त करती हैं । उसी प्रकार (गायत्री) गान और उपदेश करने वालों को त्राण या पालन करने वाली ( त्रिष्टुप् ) तीनों प्रकारों के सुखों को वर्णन करने वाली ( जगती ) जगत् में विस्तृत शक्ति, अनुष्टुप्, सबको अनुकूल उपदेश करनेहारी, ( पंक्त्या सहा ) परिपाक याः पुनः २ अभ्यास करने की क्रिया के सहित और ( बृहती ) बड़े प्रयोजनवाली, ( ककुप् ) सुन्दरपद-लालित्यवाली वाणी, ( उष्णिहा ) उत्तम स्नेहमयी वाणी के साथ मिलकर ( सूचीभिः ) ज्ञान और साधनों की सूचना देनेवाली अथवा वस्त्र खण्डों के समान नानादेश के भागों को मिलाकर सीकर सन्धियों द्वारा एक करदेने वाली नाना प्रकार की सन्धिकारिणी, वाणियों से विद्वान् लोग, हे राजन् ! ( त्वा ) तुझे ( शम्यन्तु ) शान्ति प्रदान करें ।

३३—१. 'वाच', इति पद ३५ मन्त्रादाकृष्यते ।

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥

वाचः देवताः । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे पुरुष (द्विपदाः) दो चरणवाली. (याः च चतुष्पदाः) और जो चार चरणवाली (याः च षट् पदाः) और जो छः चरणवाली, (विच्छन्दाः) विना छन्द की और (सच्छन्दाः) जो छन्द वाली हैं वे सब प्रकार की वाणियां (सूचीभिः) विशेष २ अभिप्राय बोधक शैलियों से (त्वा शम्यन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें ।

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥

वाचो देवताः । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(महानाम्न्यः) 'महानाम्नी' नामक वेद वाणियां, (रेवत्यः) रेवती नामक ऋचाएं और (विश्वाः आशाः) समस्त 'आशा' शब्दवाली ऋचाएं, (प्रभुवरीः) 'प्रभु' शब्दावली, (मैघीः) मेघ सम्बन्धी ऋचाएं, (विद्युतः) विद्युत् सम्बन्धी ऋचाएं, ये सब (वाचः) वाणियें (सूचीभिः) अपनी ज्ञानसूचक शैलियों से (त्वा शम्यन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें । ऊपर की तीनों ऋचाएं वाणियों के साथ २ प्रजाओं का भी वर्णन करती हैं । जैसे—(गायत्री) ब्राह्मण वर्ग, (त्रिष्टुप्) क्षत्रिय वर्ग, (जगती) वैश्य वर्ग, (अनुष्टुप्) भृत्य वर्ग, (पंक्ति) पञ्चजन, (बृहती) बड़े राष्ट्र की जनपद वासिनी या बड़ी शक्तिवाली, (उष्णिहा) सबके प्रेमी, (ककुप्) सर्व श्रेष्ठ पुरुष ये अपनी ज्ञान सूचक वाणियों से हृदय को शान्त करें ।

(२) (द्विपदाः) ब्रह्मचारी वर्ग, (चतुष्पदाः) गृहस्थ वर्ग, (त्रिपदा) वानप्रस्थ, (षट्पदा) षट्-साधनी, मुमुक्षु, (विच्छन्दाः) त्यागी

( सच्छन्दाः ) विशेष साधननिष्ठ ये सब भी तुझे ज्ञानप्रद वाणियों से सुखी करें । ( ३ ) ( महानाम्न्यः ) बड़ी यशस्विनी, ( रेवत्यः ) धन धान्य सम्पन्न, ( विश्वाः आशा ) समस्त दिशाओं में बसी, (प्रभूवरीः) प्रभूत, बल और धन सामर्थ्य वाली, (मेघीः) मेघ के समान सब पर सुख वर्षण करनेवाले ज्ञानोपदेशक वर्ग, ( विद्युतः ) विद्युत के समान प्रकाश देनेवाले शिल्पिवर्ग, ( वाचः ) वेद वाणियों के वक्ताजन ज्ञानसाधनों से तुझे ( शम्यन्तु ) शान्ति दें ।

नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥

भा०—हे राजन् ! ( ते ) तेरे राष्ट्र को ( पत्न्यः ) पालन करनेवाली ( नार्यः ) नेता पुरुषों की बनी राजसभाएं और ( नार्यः ) पुरुषों के हित के लिये बनी सेनाएं, ( मनीषया ) बुद्धि से ( ते ) तेरे ( लोम ) काटने योग्य, उच्छेद्य शत्रु को, नाइ जिस प्रकार केशों को पकड़ कर काटता है उसी प्रकार ( विचिन्वन्तु ) विशेषरूप से संग्रह करे । और ( देवानां पत्न्यः ) विद्वानों की पालक ( दिशः ) दिशाओं में रहनेवाली प्रजाएं और सेनापति के आज्ञा में मार्ग देखनेहारी सेनाएं ( सूचीभिः ) अपने ज्ञान सूचक नीतियों से और सेनाएं शस्त्रों से ( त्वा शम्यन्तु ) तुझको शान्ति, सुख, अभय प्रदान करें ।

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥

रजतादयः स्त्रियो देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—( रजताः ) राग से युक्त, ( हरिणीः ) मन को हरण करनेवाली, ( सीसाः ) प्रेम को बांधने वाली, ( युजः ) गृहकार्य में चतुर, समस्त कार्यों में सहयोग देने, और सावधान रहनेवाली, स्त्रियें (कर्मभिः) धर्मानुकूल क्रियाओं और व्रत पालन की प्रतिज्ञाओं द्वारा ( अश्वस्य )

उनके हृदय में व्यापक, ( वाजिनः ) उत्तम बलवान् श्रेष्ठ पुरुष की ( त्वचि ) रक्षा में, उसके साथ ( युज्यन्ते ) सदा के लिये जोड़ दी जाती है, संग करदी जाती हैं। वे ( सिमाः ) बद्ध होकर ( शम्यन्तीः ) स्वयं शान्ति सुख प्राप्त करती हुई उस पति को भी शम्यन्तु ) सुख प्रदान करें।

राजा प्रजा पक्षमें—( रजताः ) अनुरक्त या सुवर्णादि धनैश्वर्य से सम्पन्न ( हरिणीः ) हरणशील, बलवती, ( सीसाः ) और सन्धियों से या वेतनों से बंधी ( युजः ) राजा का राज्य कार्यों में सहयोग देनेवाली, प्रजाएं ( अश्वस्य वाजिनः ) राष्ट्र के भोक्ता, बलवान् पुरुष के ( त्वचि ) रक्षा में ( कर्मभिः युज्यन्ते ) कर्मों में नियुक्त की जांय। वे ( सिमाः ) बद्ध होकर ( शम्यन्तीः ) स्वयं शान्त रह कर ( शम्यन्तु ) राजा को सुखी करें।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूयं।
इहेहैषाङ् कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति ॥ ३८ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । ३२ ॥

कस्त्वाच्छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति।
क उ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥

भा०—हे प्रजाजन ! ( त्वा कः आच्छ्यति ) तुझको कौन विद्वान् पुरुष सब तरफ़ से काटता, या तुझे दण्डित करता है ? (त्वा कः विशास्ति) तुझको कौन नाना प्रकारों से विविध शास्त्रों में उपदेश करता है (ते गात्राणि) तेरे अंगों को ( कः शम्यति ) कौन सुख पहुंचाता है। और बतला, ( कः उ ) कौन सो विद्वान् पुरुष ( ते शमिता ) तुझे शान्ति प्रदान करता है। उन प्रश्नों का उत्तर इसके बीच में ही हैं। (कः) सुखकारक प्रजापति, प्रजा-पालक राजा ही प्रजा को दण्ड देता है। वही उस पर शासन करता है,

३८—०नयउक्तिनजगतुः। इति काराध०।

वह राज्य के समस्त अंगों को सुखी करता है, वही उसका ( शमिता ) शान्तिप्रद है।

ऋतवस्त ऽऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥

ऋतवो देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—( ऋतवः ) सत्यज्ञानवान्, राजसभा के सदस्यगण, ( ऋतुथा ) अपने ज्ञान के अनुसार ( शमितारः ) शान्तिदायक होकर (पर्व) प्रजा पालन करने के कार्य का ( वि शासतु ) विविध रूपों से उपदेश या शासन करें। और ( संवत्सरस्य ) समस्त प्राणियों और लोकों को बसाने वाले सर्वाश्रय राजा के ( तेजसा ) तेज, बल, पराक्रम से ( शमीभिः ) शान्तिदायक उपायों से हे राष्ट्र ( त्वा ) तुझे ( शम्यन्तु ) शान्ति प्रदान करें, सुख पहुंचावें।

सदस्या ऋतवोऽभवन्। तै० ३। १२। ६। ४ ॥ ऋतवो वै विश्वेदेवाः। यजु० १२। ६१ ॥ ऋतवो वै वाजिनः। कौ० ५। २ ॥ ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य। ऐ० १। १३ ॥

जिस प्रकार कालात्मक संवत्सर में ऋतुएं हैं उसी प्रकार राजा के अधीन विद्वान्, कार्यकुशल मुख्य राजसभासद्, शासक पुरुष हैं। वे सदा प्रजापालन के नये २ उपाय सोचें।

अर्द्धमासाः परूंषि ते मासा आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

प्रजाः राष्ट्रं वा देवता। अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—जिस प्रकार संवत्सर के पर्वों को अर्धमासों और मासों में विभक्त करते हैं। उसी प्रकार हे राष्ट्र! ( ते ) तेरे ( परूंषि ) पालन कार्य, राज्य-व्यवस्था के अंगों को ( अर्धमासाः ) विशेष समृद्ध विद्वान् पुरुष और ( मासाः ) विद्वान् पुरुष ( शम्यन्तः ) शान्ति प्राप्त करानेहारे ( आ

च्छ्यन्तु ) सब तरफ विभक्त करें। परिमाण करने या मापने में कुशल जन ही भूमि रूप राष्ट्र को भी माप २ कर विभाग करें। ( अहोरात्राणि ) वर्ष में दिन और रात्रि के समान विद्यमान ( मरुतः ) विद्वान्‌गण और दण्ड देनेहारे नियुक्त राजपुरुष ( ते ) तेरे व्यवस्थाकार्य में ( विलिष्टम् ) होनेवाली त्रुटि को ( सूदयन्तु ) विनष्ट करें। सामान्य मनुष्य पक्षमें—हे मनुष्य! तेरे पर्वों को मास, पक्ष और दिन, रात विभक्त करें। और वे तुझे शान्ति दें। ( मरुतः ) विद्वान् पुरुष तेरी ( विलिष्टम् ) त्रुटि को दूर करें।

दैव्या॑ अध्व॒र्यव॒स्त्वाच्छ्य॑न्तु॒ वि च॑ शासतु ।
गात्रा॑णि पर्व॒शस्ते॒ सिमाः॑ कृण्वन्तु॒ शम्य॑न्तीः ॥ ४२ ॥

भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! ( देवाः ) विद्वानों में भी कुशल, श्रेष्ठ कोटि के ( अध्वर्यवः ) यज्ञ के समान न नष्ट होनेवाले राष्ट्र के पालनकर्त्ता पुरुष ( त्वा ) तुझे ( छ्यन्तु ) विभक्त करें और ( वि शासतु च ) विविध उपायों से शासन करें। और वे ( ते ) तेरे ( गात्राणि ) अंगों को ( पर्वशः ) प्रति पर्व या पोरु २ पर ( शम्यन्तीः ) शान्तियुक्त सुखी करती हुई ( सिमाः ) तुझे बांधनेवाली मर्यादाएं, राज नियमानुकूल व्यवस्थाएं ( कृण्वन्तु ) करें।

द्यौस्ते॑ पृथि॒व्य॒न्तरि॑क्षं वा॒युश्छि॒द्रं पृ॑णातु ते ।
सूर्य॑स्ते॒ नक्ष॑त्रैः स॒ह लो॒कं कृ॑णोतु साधु॒या ॥ ४३ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः । पृथिव्यादयो देवताः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! ( ते ) तेरे ( छिद्रं ) छिद्र को ( द्यौः ) आकाश और उसके समान ज्ञानमय विद्वत्‌रूप सूर्यों से प्रकाशित राजसभा ( पृथिवी ) पृथिवी और उसके समान सर्वाश्रय राजा, ( वायुः ) वायु और वायु के समान तीव्र बलवान् सेनापति ( पृणातु ) पूर्ण करे। ( सूर्यः ) सूर्य और सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् राजा ( नक्षत्रैः ) नक्षत्रों और उनके समान

सामान्य प्रजाओं, अथवा युद्ध में क्षत और विचलित न होनेवाले वीर सैनिकों के ( सह ) साथ ( ते ) तेरे में बसे ( लोकं ) जन समूह को ( साधुया ) साधु, सच्चरित्र ( कृणोतु ) बनावे।

शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव॥ ४४॥

भा०—हे राष्ट्र! और हे राजन्! ( ते ) तेरे ( परेभ्यः ) पर उत्कृष्ट अंगों को (शम् अस्तु) कल्याण और शान्ति प्राप्त हो। और (अवरेभ्यः) गौण अंगों को भी (शम्) शान्ति प्राप्त हो। (अस्थभ्यः) शरीर में विद्यमान हड्डियों को और उनके समान राष्ट्र में विद्यमान उन दृढ पुरुषों को जो शत्रुओं और दुष्टों पर शस्त्र फेंकते हों, या उनको परे हटाते हों और ( तव मज्जभ्यः ) तेरी मज्जाओं और तुझे राष्ट्र के कण्टक शोधन करनेहारे, दमनकारी अथवा नगरों, ग्रामों और वसतिस्थानों में सफाई करानेवाले अधिकारी लोगों को और ( तव तन्वे ) तेरे शरीर को और तेरे सम्पूर्ण राष्ट्र को ( शम् अस्तु ) शान्ति प्राप्त हो, सदा कल्याण सुख बना रहे।

'अस्थि'—असेः क्थिन् उणादिः। ३। १५४॥ अस्यति प्रक्षिपति येन तद् अस्थि। 'मज्जा'—मज्जतेः मज्जति शुन्धतीति मज्जा। उणादि निपातनम्। १। १५७॥

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः।
किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत्॥ ४५॥

सूर्य ऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्॥ ४६॥

भा०—( ४५-४६ ) इन दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो इसी अध्याय के मन्त्र ६, १० में।

किꣳ स्वित्सूर्य्यसमं ज्योतिः किꣳ समुद्रसमꣳ सरः ।
किꣳ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( सूर्यसमं ज्योतिः किम् ) सूर्य के समान प्रकाश कौनसा है ? ( समुद्रसमं सरः किम् ) समुद्र के समान तालाव कौनसा है ? ( पृथिव्यै वर्षीयः ) पृथिवी से भी अधिक वर्षों का पुराना ( किं स्वित् ) कौनसा पदार्थ है ? ( कस्य मात्रा न विद्यते ) किसका परिमाण नहीं है ?

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

ब्रह्मादयो देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( सूर्यसमं ज्योतिः ) सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाश ( ब्रह्म ) ब्रह्म, वेद, वेदज्ञ और महान् परमेश्वर है । ( समुद्रसमं ) समुद्र के समान ( सरः ) जलों को निरन्तर वहानेवाला तालाव महान् जलाशय ( द्यौः ) आकाश या सूर्य है । ( पृथिव्यै वर्षीयान् ) पृथिवी से भी अधिक चिरकाल पुराना ( इन्द्रः ) परमैश्वर्यवान् सूर्य है । अथवा पृथिवी के लिये ( वर्षीयान् ) प्रभूत जल वर्षानेवाला, इन्द्र, वायु या मेघ है और पृथिवी से भी अधिक ( वर्षीयान् ) वृद्धतर, पूज्य ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा समस्त पृथिवी का पूज्य है । ( गोः तु ) गौ, वाणी और सूर्य की किरणों की ( मात्रा न विद्यते ) मात्रा या परिमाण कोई नहीं है ।

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशाँ३ऽ ॥ ४९ ॥

ब्रह्मविषयकः प्रश्नः ।

४९—०'विवेशा' इति काण्व० ।

भा०—हे ( ब्रह्मन् ) विद्वन् ! ब्रह्मन् ! हे ( देवसख ) देवों-विद्वानों के परम मित्र ! मैं ( चितये ) ज्ञान प्राप्ति के लिये ( त्वा पृच्छामि ) तुझ से प्रश्न करता हूं। (यदि) क्या ( त्वम् ) तू ( अत्र ) इस देवसभा में (मनसा) ज्ञान के साथ दत्तचित होकर ( जगन्थ ) उपस्थित है। अथवा यह प्रश्न स्वयं परमेश्वर से ही उपासक करता है। हे ( देवसख ) विद्वानों के सखा परमेश्वर ! ( त्वा ) तुझ से ( चितये ) ज्ञान को उत्तम रीति से प्राप्त करने के लिये ( पृच्छामि ) मैं पूछता हूं। ( यदि ) क्या ( त्वम् ) तू ( अत्र ) यहां ( मनसा ) ज्ञानरूप से ( जगन्थ ) व्याप्त है ? ( येषु त्रिषु पदेषु ) जिन तीन ज्ञान कराने वाले साधनों या ज्ञान करने योग्य पदों और लोकों, चरणों, सृष्टि, स्थिति, संहार इन त्रिविध सामर्थ्यों में ( विष्णुः ) तू व्यापक परमेश्वर ही ( इष्टः ) उपासना किया गया है ( तेषु ) उनमें ही क्या ( विश्वं भुवनम् ) यह समस्त उत्पन्न जगत् ( आ विवेशाँ ३॥ऽ) समा जाता है ?

अपि॒ तेषु॑ त्रि॒षु प॒देष्व॑स्मि॒ येषु॒ विश्वं॒ भुव॑नमावि॒वेश॑ ।
स॒द्यः पर्य्ये॑मि पृथि॒वीमु॒त द्यामेके॒नाङ्गे॑न दि॒वोऽ अ॒स्य पृ॒ष्ठम् ॥५०॥

परमेश्वरो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—[उत्तर]-(तेषु) उन (त्रिषु पदेषु) सृष्टि, स्थिति और संहार, द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों जानने योग्य स्वरूपों में (अपि) भी (अस्मि) मैं ही हूं ( येषु ) जिन में ( विश्वम् भुवनम् ) समस्त उत्पन्न जगत् भी ( आविवेश ) आविष्ट है। मैं ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( सद्यः ) बहुत शीघ्र या अत्र भी समान भाव से (परि एमि) व्याप्त हूं। ( उत द्याम् ) और द्यौ, सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों से व्याप्त आकाश में भी सदा व्याप्त हूं। और (एकेन अंगेन) एक अंग या एक अंश से (अस्य दिवः) इस तेजोमय सूर्य के भी ( पृष्ठम् ) ऊपर के भाग को या सेचन करने वाले सामर्थ्य को भी व्याप्त हूं।

केष्वन्तः पुरुष आ विवेश कान्यन्तः पुरुषे ऽ अर्पितानि ।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किꣳस्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥५१॥

पुरुषो देवता । प्रश्नः । पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—( पुरुषः ) पुरुष, जीव और परमेश्वर ( केषु ) किन पदार्थों के ( अन्तः ) बीच ( आ विवेश ) प्रविष्ट है। और (कानि) कौन २ से और कितने तत्त्व ( पुरुषे अर्पितानि ) पुरुष के आश्रय पर विद्यमान हैं । हे ( ब्रह्मन् ) ब्रह्मन् ! ब्रह्मवित् विद्वन् ! ( एतत् ) यह बात हम ( त्वा उप-वल्हामसि ) तुझ से पूछते हैं ? तू ( अत्र ) इस विषय में ( नः ) हमें ( किंस्वित् ) क्या ( प्रतिवोचासि ) प्रत्युत्तर कहता है ?

पुरुष, अर्थात् जीव या चेतन शक्ति किन २ तत्वों पर आश्रित है । और चेतन तत्त्व में क्या २ तत्त्व गुंथे हैं ? यह प्रश्न है । इस प्रश्न को वैज्ञानिक भी अभी तक सरल नहीं कर सके ।

पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषे ऽ अर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥

पुरुषो देवता । प्रतिवचनम् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( पञ्चसु अन्तः ) पांच प्राणों के भीतर ( पुरुषः ) पुरुष, जीवात्मा चेतन, ( आविवेश ) प्रविष्ट है, ओत प्रोत है । और ( तानि ) वे पाचों ( पुरुषे अर्पितानि ) पुरुष, आत्मा में आश्रित हैं । इसी प्रकार पांचों भूत और उन पांचों सूक्ष्म रूप पञ्चतन्मात्राओं के भीतर पुरुष, पूर्ण परमेश्वर आविष्ट है और वे पांचों भूत और तन्मात्राएं पूर्ण परमेश्वर में ओत प्रोत हैं । ( एतत् ) यह ( त्वा ) तुझे मैं ( प्रतिमन्वानः ) बतला रहा ( अस्मि ) हूं । हे प्रश्न करनेवाले ! ( मायया ) बुद्धि या ज्ञान से तू ( मत् ) मुझ से ( उत्तरः ) बढ़कर उत्कृष्ट समाधान करने वाला ( न भवसि ) नहीं है ।

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः कि्ँ स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ५३ ॥

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ ५४ ॥

भा०—( ५३,५४ ) दोनों की व्याख्या देखो अ० २३ । ११ । १२ ॥

काऽ ईमरे पिशङ्गिला काऽ ईं कुरुपिशङ्गिला ।
कऽ ईमास्कन्दमर्षति क ईं पन्थां विसर्पति ॥ ५५ ॥

प्रश्नः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—( अरे ) हे विद्वन् ! बतला ( का ईम् पिशङ्गिला ) 'पिशङ्गिला' क्या वस्तु है ? ( कुरुपिशङ्गिला का ईम् ) 'कुरुपिशङ्गिला' यह क्या वस्तु है ? ( आस्कन्दम् ) उछल उछल के ( कः ईम् अर्षति ) कौन चलता है । ( पन्थाम् ) मार्ग में ( कः ईम् ) कौन ( विसर्पति ) सरकता जाता है ।

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला ।
शशऽ आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥ ५६ ॥

प्रतिवचनम् । स्वराड् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—( अरे ) हे प्रश्नकर्त्तः ! सुन, ( पिशङ्गिला ) समस्त रूपों को अपने भीतर निगल जाने वाली ( अजा ) अजा प्रकृति है। वह कारणरूप समस्त कार्य पदार्थों को अपने में विलीन कर लेती है । ( श्वावित् ) सेही जिस प्रकार धान्यादि उत्पन्न अन्न को खाजाता है उसी प्रकार 'श्वा' कुत्ते के समान केवल विषय रस के पीछे भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला जीव, ( कुरुपिशङ्गिला ) स्वयं अपने कर्मों से उत्पादित रूपों को अपने में धारण करता है इसलिये वह 'कुरुपिशंगिला' है । ( शशः ) शशक जिस प्रकार कूद २ कर चलता है । उसी प्रकार ( शशः ) सबको क्षीण करने

वाला काल ही 'शश' है वह (आस्कन्दम्) सब पदार्थों पर आक्रमण करता हुआ (अर्षति) गुजरता जा रहा है। (अहिः) सर्प जिस प्रकार मार्ग पर सरकता जाता है उसी प्रकार मेघ (पन्थाम्) आकाश मार्ग में (विसर्पति) भ्रमण करता है। अथवा (अहिः) आघात करने वाला काल या मृत्यु (पन्थाम् विसर्पति) जीवन मार्ग में व्यापता है।

**कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः।**
**यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतार ऋतुशो यजन्ति ॥५७॥**

प्रश्नः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अस्य) इस जगत् के (कति विष्ठाः) कितने विशेष आश्रय हैं, जिन में यह जगत् स्थित है? (कति अक्षराणि) इसमें कितने अक्षर अर्थात् अविनाशी पदार्थ हैं जो कारण रूप होने से भी कभी नष्ट नहीं होते? (कति होमासः) कितने प्रकार के 'होम' अर्थात् कारण पदार्थों के संयोग विभाग हैं? (कतिधा समिद्धः) यह कितने प्रकारों से प्रकाशित एवं प्रेरित है अथवा (कतिधा समिद्धः) इसमें कितने प्रकाशक और प्रेरक तत्व हैं? हे विद्वन्! (यज्ञस्य विदथा) इन 'यज्ञ' विषयक विज्ञानों को मैं (त्वा) तुझ से (पृच्छम्) पूछता हूं और यह भी बतला कि (कति होतारः) कितने होता (ऋतुशः) ऋतुओं के अनुकूल (यजन्ति) यज्ञ कर रहे हैं।

**षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः।**
**यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतार ऽऋतुशो यजन्ति ॥ ५८॥**

प्रतिप्रश्नः। यज्ञो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

५८—वळस्य इति काण्व०।

भा०—(अस्य) इस अध्यात्म यज्ञ के ( विष्ठाः षट् ) छः आश्रय हैं। जिनमें वह विशेषरूप से स्थित हैं ५ प्राण, ६ ठा मन या आत्मा। (शतम् अक्षराणि ) जीवन के सौ वर्ष, सौ अक्षर हैं। ( अशीतिः होमाः ) इस पुरुष यज्ञ में ( अशीतिः ) अन्न का अशन, अर्थात् भोजन करना ही 'होम' है। (तिस्रः समिधः) तीन समिधा हैं बाल्य, तारुण्य और वार्धक्य। ( यज्ञस्य विदथा ) यज्ञ विषयक ज्ञानों को ( प्र ब्रवीमि ) मैं बतलाता हूं कि ( सप्त होतारः ) सात होता, शिर में स्थित सात प्राण ( ऋतुशः ) ऋतु अर्थात् प्राणों के बल पर ( यजन्ति ) यज्ञ करते, ग्राह्य विषयों से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

संवत्सररूप यज्ञ में—६ विष्ठा अर्थात् आश्रय, ६ ऋतुएं हैं, ( शतं अक्षराणि ) सौ अक्षर हैं। अर्थात् सैकड़ों दिन रात हैं। ( अशीतिर्होमाः ) अन्न का भोजन ही होम योग्य पदार्थ हैं। तीन समिधाएं तीन मुख्य ऋतु हैं, गर्मी, सरदी और वर्षा और सात रश्मियां जल ग्रहण करने से 'होता' है।

**को ऽअस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षम्।**
**कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥५६॥**

प्रश्नः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( अस्य भुवनस्य ) इस उत्पन्न जगत् की ( नाभिम् ) नाभि, बन्धनस्थान, या आश्रय को ( कः वेद ) कौन जानता है? ( कः द्यावापृथिवी ) आकाश भूमि और ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष को कौन जानता है कि वे कहां से पैदा हुए हैं? ( बृहतः सूर्यस्य ) महान् सूर्य के ( जनित्रम् ) मूल कारण को ( कः वेद ) कौन जानता है? ( चन्द्रमसं कः वेद ) चन्द्रमा के विषय में कौन जानता है कि वह ( यतः-जाः ) कहां से पैदा हुआ है?

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्य्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ६० ॥

प्रतिवचनम् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( अहम् ) मैं ( अस्य भुवनस्य ) इस समस्त उत्पन्न जगत् के ( नाभिम् ) परम आश्रय, मुख्य केन्द्र को ( वेद ) जानता हूं । और मैं ( द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम् ) आकाश पृथिवी और वायु स्थान, अन्तरिक्ष के विषय में भी जानता हूं कि ये जहां से उत्पन्न होते हैं । ( सूर्यस्य बृहतः ) महान् सूर्य के ( जनित्रम् ) उत्पत्ति स्थान को भी ( वेद ) जानता हूं । ( अथो ) और ( चन्द्रमसं ) चन्द्रमा के विषय में भी जानता हूं कि वह ( यतः-जाः ) जहां से उत्पन्न होता है । वह सब परमात्मा से उत्पन्न होते हैं । वह सबका कर्त्ता है और 'प्रकृति' जगत् का उपादान कारण है ।

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो ऽअश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ६१ ॥

प्रश्नः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विद्वन् ! ( त्वा ) तुझ से मैं ( पृथिव्याः ) पृथिवी का ( परम् अन्तम् ) परला अन्त, परली सीमा ( पृच्छामि ) पूछता हूं । ( यत्र ) जिस स्थान पर ( भुवनस्य ) इस जगत् का ( नाभिः ) केन्द्र है, जिस पर बद्ध होकर वह ठहरा है वह भी ( पृच्छामि ) पूछता हूं । और ( पृच्छामि ) पूछता हूं कि ( वृष्णः ) उस महान्, सब सुखों के वर्षक ( अश्वस्य ) सर्वव्यापक परमेश्वर का ( रेतः ) उत्पादक वीर्य क्या पदार्थ है ? और पूछता हूं ( वाचः ) वाणी का ( परमं ) परम, सर्वोत्कृष्ट ( व्योम ) विशेष रक्षास्थान कौनसा है ?

इयं वेदिः परो ऽ अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयꣳ सोमो वृष्णो ऽअश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ६२ ॥

भा०—( इयं वेदिः ) यह 'वेदि' ( पृथिव्याः परः अन्तः ) पृथिवी का परम अन्त है। ( अयं यज्ञः ) यह यज्ञ सर्व पूजनीय परमेश्वर ( भुवनस्य नाभिः ) समस्त संसार का परम आश्रय है। वही उसका व्यवस्थापक, संयोजक, और प्रबन्धक है। ( अयं सोमः ) यह 'सोम' सबका प्रेरक सूर्य, वायु, अग्नि, विद्युत् आदि पदार्थ समूह ही ( वृष्णः ) महान् ( अश्वस्य ) व्यापक परमेश्वर का ( रेतः ) परम वीर्य, सर्वोत्पादक सामर्थ्य है। ( अयं ब्रह्मा ) यह ब्रह्मवेत्ता, वेदज्ञ विद्वान् ब्रह्मा ही ( वाचः ) वाणी का ( परमम् व्योम ) परम रक्षास्थान है।

ये सब प्रश्नोत्तर राष्ट्र के पक्षमें भी नीचे लिखे प्रकार से नाना प्रश्नों का समाधान करते हैं। जैसे—

मं० [४७-४८] ब्रह्म, वृहत् राष्ट्रपति या महान् ब्रह्मज्ञ सूर्य के समान प्रकाशक है। 'द्यौः' राजसभा समुद्र के समान ज्ञानप्रसारक होने से अगाध समुद्र के समान अगाध ज्ञान का भण्डार है। 'इन्द्र' अर्थात् राजा पृथिवी से महान् है। 'गौ' अर्थात् पृथिवी या वाणी का कोई परिमाण नहीं।

मं० [ ४९-५० ] राजा तीनों पदों में विद्यमान है, राजा, शासकजन और प्रजा। उन्हीं में सब राष्ट्र स्थित हैं। पृथिवी और (द्यौः) राजसभा को प्राप्त करके राजा एक अङ्ग से सिंहासन पर विराजता है।

मं० [५१-५२] पुरुष, सबका पालक राजा पांचों जनों में स्थित है और पांचों जन उसमें आश्रित हैं।

[ ५६-५७ ] राष्ट्रवासी पुरुष चार प्रकार के स्वभाव वाले हैं एक 'अजा' स्वभाव के हैं जो सब स्थानों से धन प्राप्त करते हैं दूसरे 'श्वावित्' जो कर्म करके धन प्राप्त करते हैं। तीसरे 'शश' हैं जो उन्नति की उछाल भरते हैं, चौथे 'अहि' जो पथिक हैं।

(५७, ५८) ६ अमात्य राष्ट्र के ६ आधार हैं। सैकड़ों अक्षर, अक्षय कोष हैं। अन्नप्राप्ति होम है। प्रज्ञा, उत्साह, सेना ये तीन समिधाएं हैं। ६ अमात्य और सातवां राजा या राज्य के सप्ताङ्ग सात होता हैं।

[ ५९, ६० ] समस्त राष्ट्र का प्रबन्धक, राजा, राजसभा और शासक, सबका मूल, महान् सूर्य राजा है। आह्लादक राजा का उत्पत्ति स्थान यह राष्ट्र है।

[ ६१, ६२ ] राज्याभिषेक की वेदि सर्वोत्कृष्ट स्थान है यह राज्य प्रबन्ध राष्ट्र का प्रबन्ध है। सोम, ऐश्वर्य या राष्ट्र स्वतः राजा का बल है। ब्रह्मा, वेदज्ञ विद्वान्, वाणी अर्थात् समस्त आज्ञाओं का उत्कृष्ट स्थान है।

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥ ६३ ॥

प्रजापतिर्देवता। विराड् अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—( सुभूः ) सब से श्रेष्ठ, सर्वोत्पादक, ( स्वयं भूः ) स्वयं अपनी सत्ता से विद्यमान, ( प्रथमः ) सबसे प्रथम, पूर्व विद्यमान, जगदीश्वर ( महति अर्णवे ) बड़े भारी अर्णव, प्रकृति के परमाणु रूप सागर के ( अन्तः ) बीच में, ( ऋत्वियं ) स्त्री के देह में ऋतुकाल के अवसर पर पुरुष जैसे संतति उत्पादक गर्भ को स्थापित करता है उसी प्रकार ( ऋत्वियं ) ऋतु अर्थात् ठीक नियत काल में ( गर्भम् ) हिरण्यगर्भ को ( दधे ) स्थापन करता है। ( यतः ) जहां से ( प्रजापतिः ) प्रजा का पालक, सूर्य या संवत्सर ( जातः ) उत्पन्न होता है। राजा के पक्षमें—( सुभूः ) उत्तम सामर्थ्यवान्, ( स्वयंभूः ) स्वयं सत्तावान्, ( प्रथमः ) सब से श्रेष्ठ विद्वान् ( महति अर्णवे अन्तः ) बड़े भारी जन-सागर के बीच ( ऋत्वियं ) राजसभा के सदस्यों के अनुकूल ( गर्भम् ) राष्ट्र को वश करने वाले प्रबन्ध को ( दधे ) स्थापित करता है ( यतः ) जिसमें से ( प्रजापतिः ) प्रजा का पालक राजा और राष्ट्र ( जातः ) उत्पन्न होता है।

होता यक्षत्प्रजापतिᳬ सोमस्य महिम्नः।
जुषतां पिबतु सोमᳬ होतर्यज॥ ६४॥

भा०—( होता ) सब को अधिकार देनेहारा होता नामक विद्वान् ( प्रजापतिम् ) प्रजापति, अर्थात् प्रजा के पालक पुरुष को ( सोमस्य ) समग्र राष्ट्र के ऐश्वर्य के (महिम्नः) बड़े भारी अधिकार को ( यक्षत् ) प्रदान करे। और वह ( सोमं ) समग्र राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को ( जुषताम् ) प्रेम से स्वीकार करे। और (पिबतु) उसका उपभोग करे। हे ( होतः ) होतः ! तू (यज) अधिकार प्रदान कर।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयᳬ स्याम पतयो रयीणाम्॥ ६५॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । २० ॥

॥ इति त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥



# ॥ अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीवऽ आग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधो-रामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याᳪ सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छऽ इन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ॥ १ ॥

भुरिक् संकृतिः । गान्धारः ॥

भा०—राजा के अधीन राष्ट्र के अन्य अंग प्रत्यङ्गों का वर्णन करते हैं—( १ ) 'अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः॥' ( अश्वः ) घोड़ा, ( तूपरः ) सींगों वाला मेढ़ा, ( गोमृगः ) गोमृग अर्थात् नील गाय, ये तीन ( प्राजापत्याः ) प्रजापालक राजा के स्वरूप हैं अर्थात् राजा के ही स्वभाव के हैं। घोड़ा जिस प्रकार विजयशील है, अपने कन्धों पर दूसरों को उठाता है, गाड़ी में लग कर उसको खींचता है, इसी प्रकार राजा संग्राम में विजयी, अपने कन्धों पर प्रजाओं का भार उठाने वाला, राष्ट्र के रथ में आगे जुड़कर राष्ट्र का संचालन करता है। मेढ़ा अपना सिर दूसरे से जोप में लड़ाता है, अपने प्राणान्त तक लड़ना नहीं छोड़ता। इसी प्रकार राजा प्रजापालक भी अपने प्रतिस्पर्धी शत्रु से लड़े और प्राण रहते तक प्रतिपक्ष से टक्कर ले। 'गोमृग' नर बारहसींगा या नीलगाय मृग, नीली मादा गाय के लिये प्राण पण से लड़ता है इसी प्रकार राजा अपनी भूमि के लिये प्राण दे। अथवा जिस प्रकार नीलगाय अपने चंवर वालों के लिये जान देती है राजा भी अपनी शोभा और मान के लिये प्राण दे। इस प्रकार प्रजापति के ये तीन पशु प्रतिनिधि हैं। इनसे राजा

१—०'तूपराः' ०इति काण्व० ।

देवता की ( मेषी ) भेड़ ( हन्वोः अधस्तात् ) दोनों जबाड़ों के नीचे। अर्थात् भेड़ का स्वभाव है कि दो लड़ाऊ भेढ़ों में जो प्रबल है वह उसको प्राप्त होती है। अर्थात्, ( हन्वोः ) परस्पर आघात प्रतिघात करने वालों के ( अधःस्तात् ) मूल में उनके नीचे जिस प्रकार उन दोनों की स्पर्धा का विषय वह मेढ़ी होती है और जिस प्रकार ( सरस्वती ) सरस्वती, वाणी स्वयं ( हन्वोः अधस्तात् ) दोनों जबाड़ों के नीचे होती है इसी प्रकार ( सारस्वती मेषी ) सरस्वती नामक विद्वान् की प्रतिस्पर्द्धा में प्रवृत्त सभा भी ( हन्वोः ) पक्ष प्रतिपक्ष से एक दूसरे का खंडन करने वाले दोनों दलों के ( अधस्तात् ) नीचे, उनके किये निर्णय के अधीन रहे।

( ४ ) 'आश्विनौ अधोरामौ बाह्वोः ॥' शरीर में ( बाह्वोः ) जिस प्रकार बाहू हैं उसी प्रकार राष्ट्र शरीर में दो बाहुओं के स्थानों पर ( आश्विनौ ) 'अश्वि' देवता वाले ( अधोरामौ ) नीचे से श्वेत वर्ण के दो बकरों के समान स्वभाव के दो पुरुष नियुक्त किये जांय। अर्थात् बकरे जिस प्रकार सदा चरते हैं उस प्रकार वे दोनों भी राष्ट्र को चर सकें, निरन्तर भोग सकें, निरन्तर भोगने में समर्थ होने से ही वे ( आश्विनौ ) अश्वि देवता के हैं। अर्थात् वे राष्ट्र में व्याप्त होकर भोगने में समर्थ हैं। उनके पोशाक ऊपर से काले नीचे से श्वेत हों। ऊपर से भयंकर और नीचे से उज्वल हों। ऐसे भीतर में हितैषी और प्रकट में क्रूर, कठोर स्वभाव के पुरुषों को राष्ट्र के ( बाह्वोः ) बाहुओं अर्थात् रक्षा के निमित्त नियुक्त करें।

( ५ ) 'सौमापौष्णः श्यामः नाभ्याम् ॥' सोम और पूषा देवता वाला श्याम वर्ण का नाभिस्थान में हो। ( श्यामः ) श्याम, हरे वर्ण का खेतों में लगा हुआ अन्न ( नाभ्याम् ) राष्ट्र के नाभि या केन्द्रस्थान या मध्य भाग में हो। वे ( सौमापौष्णाः ) सोम, राष्ट्र के ऐश्वर्य और 'पौष्ण' प्रजा के पोषणकारी हैं। इस श्यामल वनस्पति वर्ग के दो देव, विद्वान्

अधिकारी है सोम, ओषधि रस का वेत्ता वैद्य और पोषक अन्न का उत्पादक कृषि-विभागाध्यक्ष ।

( ६ ) सौर्ययामौ श्वेतः च कृष्णः च पार्श्वयोः ॥ सूर्य और यम अर्थात् वायु और आकाश इन दो के गुणों के दिखानेवाले काले और सफेद पोषाक को पहनने वाले दो मुख्य अधिकारी ( पार्श्वयोः ) शरीर में दो पासों या बगलों के समान राष्ट्र की दो बगलें बनावें अर्थात् राष्ट्र में एक बगल श्वेत सूर्य के समान तेजस्वी प्रखर राजा और दूसरी बगल में यम अर्थात् दिन के विपरीत रात्रि के समान समस्त राष्ट्र में शान्तिस्थापन करनेवाला नियन्ता पुरुष हो। वह 'सूर्य' नामक पदाध्यक्ष श्वेत हो अर्थात् राष्ट्र के सब कार्यों को बढ़ानेवाला और यशस्वी, तेजस्वी हो, दूसरा नियन्ता 'यम' कृष्ण, रात्रि के समान सुख में प्रजा को प्रेम से खेंचनेवाला और पीड़ाओं से शत्रुओं को (कर्षण) अर्थात् वन्धनागार में खेंचनेवाला हो । राष्ट्र-व्यवस्था की ये ही दो बगलें या पहलू हैं । एक प्रजा की वृद्धि और दूसरा दुष्टों का दमन ।

( ७ ) "त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योः ॥" ( लोमशसक्थौ ) जिनकी सक्थि अर्थात् समवाय अर्थात् एका करके शत्रुओं का छेदन करनेवाले दो नायक जो ( त्वाष्ट्रौ ) शत्रु सेनाओं को शस्त्रों से विनष्ट करनेवाले हों उनको ( सक्थ्योः ) राष्ट्र-शरीर के 'सक्थि' अर्थात् जंघा भाग समझे ।

( ८ ) "वायव्यः श्वेतः पुच्छे ॥" पुच्छ भाग, आधार स्थान पर (वायव्यः) वायु के समान तीव्र प्रचण्ड बलवान् (श्वेतः) अति वृद्धिशील तेजस्वी पुरुष को नियुक्त करे ।

( ९ ) स्वपस्याय इन्द्राय वेहत् ॥ ( स्वपस्याय ) उत्तम कर्म और प्रज्ञावान् ( इन्द्राय ) इन्द्र सेनापति के कार्य के लिये ( वेहत् ) विशेष

रूप से या विशेष २ साधनों से शत्रुओं का नाश करनेवाला पुरुष नियुक्त किया जाय ।

( १० ) "वैष्णवो वामनः ॥" सर्वव्यापक सामर्थ्यवान् पद के लिये ( वामनः ) अति सुन्दर, हृदयग्राही पुरुष को नियुक्त करें ।

**रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः । शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः । शितिबाहुरन्यतःशितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥ २॥**

निचृत् संकृतिः । गांधारः ॥

भा०—( ११ ) "रोहितः धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितः ते सौम्याः ॥" ( रोहितः ) लाल रंग, ( धूम्ररोहितः ) धूआं मिला लाल रंग, लाल नीला और ( कर्कन्धु रोहितः ) बेर के फल का सा लाल, ये तीन रंग की पोशाक वाले अधीन अधिकारी (सोम्याः) सोम अर्थात् राजा के पद के साथ सम्बद्ध हैं ।

( १२ ) ( बभ्रुः ) भूरा, ( अरुणबभ्रुः ) लाल भूरा, ( शुकबभ्रुः ) हरा भूरा ये तीन प्रकार के रंग की पोशाकों वाले ( वारुणाः ) वरुण नाम पद के सम्बन्धी पुरुष हों ।

( १३ ) ( शितिरन्ध्रः ) श्वेत चिटकनों वाला, ( अन्यतः शितिरन्ध्रः ) एक तरफ श्वेत चिटकनेवाला, ( समन्त शितिरन्ध्रः ) सारे शरीर पर श्वेत चिटकनवाला ये तीन प्रकार के वस्त्रों के पुरुष ( सावित्राः ) सविता पद के सम्बन्ध के पुरुष हों ।

( १४ ) "शितिबाहुः अन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुः ते बार्हस्पत्याः ॥" ( शितिबाहुः ) बाहु भागों पर श्वेत, ( अन्यतः शितिबाहुः ) किसी एक ओर की बाहु भाग पर श्वेत, ( समन्त शितिबाहुः ) समस्त

बाहुओं पर श्वेत, ( ते ) ऐसी पोशाक वाले सर्व ( बार्हस्पत्याः ) बृहस्पति अर्थात् महामात्य पद के अधीन हों।

( १६ ) पृषती, क्षुद्रपृषती, स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥ ( पृषती ) विचित्र वर्ण के विन्दु या छींटवाली, ( क्षुद्रपृषती ) छोटी २ छींट वाली, ( स्थूल पृषती ) बड़ी २ छींटवाली पोशाकों वाली स्त्रियां ( मैत्रावरुण्यः ) मित्र, न्यायाधीश और वरुण, दुष्टों के वारक पोलीस विभाग की समझनी चाहियें।

ये १६ विभाग या अङ्ग राष्ट्र के 'पर्यङ्ग' कहाते हैं।

**शुद्धवा॑लः स॒र्वशु॑द्धवालो म॒णिवा॑ल॒स्तऽआ॑श्वि॒नाः श्येतः॑ श्ये॒ता॒क्षो॒ऽरु॒णस्ते रु॒द्राय॑ पशु॒पत॑ये क॒र्णा॒ या॒मा ऽअ॑वलि॒प्ता रौ॒द्रा नभो॑रूपाः पार्ज॒न्याः ॥ ३ ॥**

**भा०**—( शुद्धवालः ) शुद्ध श्वेत, बालों वाले, ( सर्वशुद्धवालः ) समस्त श्वेत बालों वाले, ( मणिवालः ) मणि के समान नीले बाल वाले (ते आश्विनाः ) वे आश्विन पद के अधिकारियों के अधीन हों।

"श्येतः श्येताक्षः अरुणः ते रुद्राय पशुपतये।" (श्येतः) श्वेत वर्ण का ( श्येताक्षः ) आंख पर श्वेत वर्णवाला और ( अरुणः ) लाल ये ( रुद्राय ) सब दुष्टों के रुलाने वाले ( पशुपतये ) पशु पालकजन के अधीन जानो।

( कर्णाः यामाः ) कानों वाले अर्थात् बहुश्रुत लोग 'यम' नामक अधिकारी के हों।

( अवलिप्ताः रौद्राः ) शरीर पर चन्दन आदि के विशेष रङ्ग का लेप करने वाले 'रुद्र' पद से सम्बद्ध जानो। ( नभोरूपाः पार्जन्याः ) आकाश के समान वर्णवाले हलके नीले रंग के ( पार्जन्याः ) 'पर्जन्य' अर्थात् मेघ के समान पुरुष जल-धाराओं से अग्नि बुझानेवाले विभाग के हों।

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः ॥ ४ ॥

भा०—( पृश्निः ) चित्रविचित्र वर्ण, ( तिरश्चीनपृश्निः ) तिरछे या आड़े शरीर पर चिटकने वाला, ( ऊर्ध्वपृश्निः ) ऊपर की ओर चित्र बिन्दु-वाले, ( मारुताः ) 'मरुत' विभाग के हैं।

फल्गूः, लोहितोर्णी, पलक्षी ताः सरस्वत्यः ॥ ( फल्गूः ) स्वल्पबल वाली, ( लोहितोर्णी ) लाल ऊन पहनने वाली और ( पलक्षी ) श्वेत ऊन वाली अथवा अतिचञ्चल आंखों वाली स्त्रियां ( ताः ) वे ( सारस्वत्यः ) सरस्वती, वाणी या आज्ञाएं पहुंचाने के कार्य में लगाई जायं।

प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णः अध्यालोहकर्णः ते त्वाष्ट्राः ॥ (प्लीहाकर्णः) तीव्र गति से भीतर प्रवेश करने वाले साधन, ( शुण्ठाकर्णः ) शुष्क काष्ठ के बने अथवा छोटे उपकरण और ( अध्यालोहकर्णः ) समस्त लोह के बने साधनों वाला ( ते ) ये सब ( त्वाष्ट्राः ) त्वष्टा अर्थात् शिल्पि वर्ग के पुरुष हैं।

"कृष्णग्रीवः शितिकक्षः अञ्जिसक्थः ते ऐन्द्राग्नाः ॥" काली ग्रीवा वाला या ग्रीवा पर काले चिह्न वाला, कक्ष अर्थात् बगल में श्वेत चिह्न वाला और जांघ पर श्वेत चिह्न वाला ये सब भी इन्द्र, अग्नि, सेनापति और अग्रणी-नेता पुरुषों के वर्ग के हैं।

कृष्णाञ्जिः, अल्पाञ्जिः महाञ्जिः तेः उपस्याः। काले लंगोट के छोटे लंगोट के और बड़े लंगोट के ये पुरुष 'उषस्याः', उषा शत्रुदाहक या प्रकाशकारी विभाग के पुरुष हों।

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाताऽअदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ५ ॥

निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—( वैश्वदेव्यः शिल्पाः ) सब प्रकारों के शिल्पों को दर्शाने वाले सभी कोटि के विद्वान् गण हैं। ( रोहिण्यः ) पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली लताएं या उनके समान बढ़ती उमर की कुमारी कन्याएं ( त्र्यवयः ) माता, पिता और गुरु इन तीन की रक्षा में रहने वाली होकर ( वाचे ) ज्ञान वाणी की शिक्षा के लिये जावें। ( अविज्ञाताः ) ज्ञान रहित प्रजाएं ( अदित्यै ) पृथ्वी के ऊपर कृषि और खोदने आदि श्रम के कार्य पर लगें। अथवा (अविज्ञाताः) अज्ञात कुल की कन्याएं पालनार्थ (अदित्यै) अखण्ड स्थिर गृहस्थों को पालनार्थ देदी जायं। (सरूपाः) समान रूप, गुण, कीर्त्ति वाली स्त्रियें ( धात्रे ) पोषण करने और उत्तम सन्तानार्थ बीज वपन करने में समर्थ पतियों को प्राप्त हों। ( वत्सतर्यः ) बहुत छोटी उमर की कन्याएं ( देवानां पत्नीभ्यः ) विद्वान् गुरुओं की स्त्रियों के अधीन रहकर शिक्षा प्राप्त करें।

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाᳬरोहिता रुद्राणाᳬश्वेता ऽअवरोकिणऽआदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ६ ॥

विराड् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः) गर्दन पर काले चिह्न वाले पुरुष 'अग्नि' अर्थात् अग्रणी सम्बन्धी हों। ( शितिभ्रवः वसूनाम् ) भ्रवों पर श्वेत चिह्न के पुरुष 'वसु' नाम के प्रजा बसाने वाले अधिकारियों के हों। ( रोहिताः रुद्राणां ) लाल वर्ण के पोषाक वाले 'रुद्र' नाम अधिकारियों के हों। श्वेत वस्त्र वाले दूसरों को बुरे काम करने और कुमार्ग से जाने में रोकने वाले पुरुष ( आदित्यानां ) आदित्य नाम के अधिकारियों के हैं। ( नभोरूपाः

पार्जन्याः ) नील मेघ के वर्ण की पोशाक वाले पुरुष 'पार्जन्याः' पर्जन्य, मेघ के समान जलदाता विभाग के हों।

उन्नतऽऋषभो वामनस्तऽऐन्द्रावैष्णवाऽउन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तऽऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषाऽआग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥ ७ ॥

अतिजगती । निषादः ॥

भा०—( उन्नतः ) ऊंचा, ( ऋषभः ) हृष्ट पुष्ट और ( वामनः ) बौना, या अतिसुन्दर रूप वाले ये तीनों प्रकार के पुरुष ( ऐन्द्रावैष्णवाः ) इन्द्र और विष्णु नाम अधिकारी के अधीन हों। ( उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठः ते ) ऊंचे, बाहु पर श्वेत वस्त्र वाले और पीठ पर श्वेत वस्त्र वाले ये तीनों ( ऐन्द्राबार्हस्पत्याः ) 'इन्द्र बृहस्पति' राजा, राजमन्त्री के विभाग के हों। ( शुकरूपाः वाजिनाः ) तोते के समान हरे पोषाक के पुरुष वेगवान् अश्वों के ऊपर नियत हों। ( कल्माषाः आग्निमारुताः ) श्वेत काले, खाखी रङ्ग की पोशाक वाले 'अग्नि और मरुत्' विभाग के हों। ( श्यामाः पौष्णाः ) नीले रङ्ग के पूषा अर्थात् कर-संग्राहक विभाग के हों।

एताऽऐन्द्राग्ना द्विरूपाऽअग्नीषोमीया वामना अनड्वाहऽआग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतऽएन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥

विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—( एताः ) कर्बुर रंग के ( ऐन्द्राग्नाः ) इन्द्र और अग्नि-विभाग के हैं। (द्विरूपाः अग्निषोमीयाः) दो २ रंग की पोशाक वाले (अग्निषोमीया) अग्नि और सोम विभाग के हैं। ( वामनाः ) छोटे अंग के पुरुष या पशु ( अनड्वाहः ) जो गाड़ी खींच कर लेजावें के ( आग्नावैष्णवाः ) अग्नि और विष्णु विभाग के हैं। ( वशाः ) वशकारिणी संस्थाएं और पुरुष ( मैत्रावरुण्यः ) 'मित्र और वरुण' विभाग के हैं। एक तरफ़ से चित्रित

वर्ण के वस्त्र पहनने वाली स्त्रियां (मैत्र्यः) 'मित्र' विभाग के अधीन हों।

**कृष्णग्रीवाऽआग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्याऽअविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥**

निचृत्पंक्तिः । पञ्चमः ॥

**भा०**—( कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः ) गर्दन पर काले चिह्न वाले 'अग्नि' विभाग के हैं। ( बभ्रवः सौम्याः ) बभ्रु, नेवले के रंग के, या भूरे रंग के 'सोम' विभाग के हैं। ( श्वेता वायव्याः ) श्वेत वर्ण के वायु विभाग के हैं। ( अविज्ञाताः ) इत्यादि म० ५ के समान।

**कृष्णा भौमा धूम्राऽआन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥ १० ॥**

विराड् गायत्री । षड्जः ॥

**भा०**—( कृष्णाः भौमाः ) कृषि के उपयोगी, कर्षक पुरुष और पशु ( भौमाः ) भूमि के उपायोगी हों। ( धूम्रा आन्तरिक्षाः ) धूम जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जाता है ऐसे धूम के द्वारा रमण करने में कुशल पुरुष अन्तरिक्ष में जाने में कुशल हों। ( बृहन्तः ) बड़े शक्तिशाली पुरुष (दिव्याः) सूर्य के समान तेजस्वी एवं ज्ञान, विजय और तेज को प्राप्त करते हैं। ( शबलाः ) बल को प्राप्त करने वाले तीव्र गतिमान् यन्त्र ( वैद्युताः ) विद्युत् से उत्पन्न करने के योग्य हैं। ( सिध्माः ) तीव्र वेग से जाने हारे साधन ( तारकाः ) दूर देशों तक लेजाने के लिये हों।

**धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥**

विराड् बृहती । मध्यमः ॥

**भा०**—( वसन्ताय ) वसन्त ऋतु के लिये ( धूम्रान् ) धुमेले रंग के वस्त्रादि को ( आलभते ) प्राप्त करे। ( ग्रीष्माय श्वेतान् ) ग्रीष्म काल

के लिये श्वेत वस्त्रों का उपयोग करे। ( वर्षाभ्यः कृष्णान् ) वर्षा काल के लिये काले या नीले रंग के वस्त्रों का उपयोग करे। ( अरुणान् शरदे ) शरद् काल के लिये लाल रंग के वस्त्रों का उपयोग करे। ( पृषत: हेमन्ताय ) नाना वर्ण के चिटकनेदार अथवा मोटे वस्त्रों को हेमन्त काल में उपयोग करे। ( पिशङ्गान् शिशिराय ) पीले, वसन्ती रंग के वस्त्रों का उपयोग शिशिर ऋतु के लिये करे। विशेष ऋतु में विशेष रंग के वस्त्रों, तथा अन्य पदार्थों के उपयोग से प्राकृतिक लाभ और चित्तप्रसाद और स्वास्थ्य उत्पन्न होता है। अथवा ऋतु भेद से जिस प्रकार मेघों का वर्ण भेद है उसी प्रकार सदस्यों के भेद से राजा के कर्त्तव्यों का भेद है। जैसे वसन्त के निमित्त धूमाकार मेघों को प्राप्त करता है। ग्रीष्म में श्वेत मेघों को, वर्षा में काले, शरद् में सायं समय में लाल, हेमन्त में कई रंग के और शिशिर के लिये पीले मेघों को प्राप्त करते हैं।

**त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा ऽअनुष्टुभे तुर्यवाहऽउष्णिहे॥ १२॥**

**पृष्ठवाहो विराजऽउक्षाणो बृहत्याऽऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिच्छन्दसे॥ १३॥**

विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—जैसे गौओं में अवस्था भेद से भेद है उसी प्रकार गौ रूप वाणी में भी छन्दो भेद से भेद है। गौ की अवस्थाओं को वाणी के छन्दों से तुलना करते हैं। ( त्रवयो गायत्र्यै ) १½ वर्ष की गौएं गायत्री के स्थान पर हैं। ( पञ्चावयः त्रिष्टुभे ) २⅓ वर्ष की गौएं त्रिष्टुप् की तुलना के लिये हैं। ( दित्यवाहः जगत्यै ) कटे धानों को पीठ पर लेकर चलने वाली २ वर्ष की गौएं जगती के समान जानो। ( त्रिवत्सा अनुष्टुभे ) तीन तीन वर्ष की गौ अनुष्टुप् के समान हैं। ( तुर्यवाह उष्णिहे ) चतुर्थ वर्ष की

गो-जाति उष्णिग् छन्द के समान है। ( पष्ठवाहः विराजे ) पृष्ठ से बोझ उठाने वाली गो-जाति विराट् छन्द के समान है। ( उक्षाणः बृहत्याः ) वीर्य सेचन में समर्थ बैल बृहती के समान हैं ( ऋषभाः ककुभे ) ऋषभ, बड़े बल, ककुप् छन्द के समान समझो। ( अनड्वाहः पंक्त्यैः ) शकट का बोझ उठाने वाले बैल, ( पंक्त्यैं ) पंक्ति छन्द के समान हैं और (धेनवः) दुधार गौवें (अतिछन्दसे) अति शब्दयुक्त छन्द के समान जानो।

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याऽउपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

भा०—( कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः ) गर्दन पर काले चिह्नवाले सेवक-जन ( आग्नेयाः ) 'अग्नि' पद के सम्बन्ध के हैं। ( बभ्रवः सौम्याः ) भूरे पोशाक वाले 'सोम' पद के सम्बन्ध के हैं। ( उपध्वस्ताः सावित्राः ) अन्य वर्ण से मिले २ वर्ण के 'सवितृ' पद के सम्बन्धी जन हैं। ( वत्सतर्यः सारस्वत्याः ) अत्यन्त छोटे वर्ष की बालक प्रजाएं (सारस्वत्याः) सरस्वती अर्थात् शिक्षा अथवा विभाग के अथवा गृहस्थ स्त्री द्वारा पोषण योग्य हैं। ( श्यामाः पौष्णाः ) श्याम, हरे धान, 'पूषा' अर्थात् भाग-धुक् नामक अधिकारी के हैं अथवा ( श्यामाः पौष्णाः ) नीले मेघ पृथ्वी के और अन्न के निमित्त हों। ( पृश्नयः ) रसों से पूर्ण गौएं ( मारुताः ) वैश्यगण की हैं। ( बहुरूपाः वैश्वदेवाः ) नाना प्रकार की प्रजाएं सामान्य समस्त विद्वान् पुरुषों की हैं। ( वशाः ) वशकारिणी शक्तियां ( द्यावा पृथिवीयाः ) द्यौ पृथिवी के समान माता पिता और राजा प्रजा के बीच में प्रयुक्त हैं।

उन्नताः सञ्चराऽएताऽऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥ १५ ॥

विराड् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—( सञ्चराः ) भिन्न २ विभागों के योग्य उनके भृत्य और अनुचरों का ( उक्ताः ) वर्णन कर दिया गया है। जैसे ( एताः ऐन्द्राग्नाः ) कर्बुर रंग के इन्द्र और अग्नि के ( कृष्णाः वारुणाः ) काले रंग के वरुण के, (पृश्नयः मारुताः) चित्र वर्ण के मरुतों के, (तूपराः कायाः) हिंसक स्वभाव के प्रजापति के हों।

**अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मुरुद्भ्यः सान्तपुनेभ्यः सवात्यान् मुरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान् मुरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान् मुरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥ १६ ॥**

शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—( अनीकवते ) मुख्य सेना के स्वामी ( अग्ये ) अग्रणी सेना नायक के कार्य के लिये, ( प्रथमजान् ) प्रथम श्रेणी के, एवं श्रेष्ठ गुणों और विद्याओं में कुशल पुरुष को ( आ लभते ) प्राप्त करे और उनको अग्रणी के बलवृद्धि के लिये नियुक्त करे।

( सांतपनेभ्यः ) अच्छी प्रकार स्वयं तपस्या करने और शत्रुओं के तपानेहारे ( मरुद्भ्यः ) विद्वान् पुरुषों या वायु के समान तीव्र वेग से आक्रमण करनेवाले पुरुषों के लिये ( सवात्यान् ) प्राणों को या तीव्र वायु के समान तेज़ी से भागनेवाले, हवा से बात करनेवाले पुरुषों और यानादि को (आलभते) प्राप्त करे। (गृहमेधिभ्यः मरुद्भ्यः) गृहस्थ विद्वान् के रक्षा के लिये (बष्किहान्) हिंसकों के भी मारनेवाले रक्षकों को (आलभते) प्राप्त करे। (क्रीडिभ्यः) क्रीड़ा अर्थात् आनन्द विनोद, या युद्ध क्रीड़ा करनेवाले (मरुद्भ्यः) प्रजाओं या वीर पुरुष के लिये (संसृष्टान्) उनके साथ मिलकर काम करने में समर्थ, या खूब सधे हुए साथियों को प्राप्त करे। (स्वतवद्भ्यः) अपने ही बल पर कार्य करनेवाले (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये ( अनुसृष्टान् ) उनके अनुकूल चलनेवाले पुरुषों को प्राप्त करे।

---

१६—साकमेधाः ।

उक्ताः सञ्चराऽएता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥ १७ ॥

भा०—( सञ्चराः उक्ताः ) इनके साथ के अनुचर पूर्व कह चुके हैं। ये विशेष समझो कि ( ऐन्द्राग्नाः ) इन्द्र और अग्नि के ( एताः ) चितकबरे वर्णों के ( प्राशृङ्गाः माहेन्द्राः ) महान् राज के अनुचर खुले हिंसा साधन, हथियारों को आगे थामे हुए हों। ( वैश्वकर्मणाः ) विश्वकर्मा एञ्जीनियर के अधीन ( बहुरूपाः ) नाना प्रकार के कर्मचारी हों।

इस प्रकार राष्ट्र के भिन्न २ पदाधिकारियों के अधीन उनके भृत्य, साथी सङ्गियों के नाना वर्ण के पोषाकों, स्वभावों और प्रकारों का वर्णन कर दिया। तदनुसार ही उनके विभाग में काम आनेवाले पशुओं और यान आदि के भी भिन्न २ रूप संकेतार्थ कर लेने चाहियें।

अश्वमेध यज्ञ में प्रतिनिधिवाद से इन वर्णों के बकरों को ही लेकर २१ यूपों में बांधने का लिखा है। पर जब अश्व राष्ट्र का प्रतिनिधि है तो ये बकरे भी राष्ट्र के कार्यों में नियुक्त पुरुषों के उपदर्शक मात्र हैं। ऐसा जानना चाहिये।

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितॄणाᳬं सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः। पितॄणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितॄणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥ १८ ॥

भुरिग् अतिजगती। निषादः ॥

भा०—( सोमवतां पितॄणां ) राज्य के विशेष पालन करने वाले रक्षक पुरुषों के अधीन पुरुष (धूम्राः) धुमैले रंग के और (बभ्रुनीकाशाः) भूरे के से पोशाक के हों। ( बर्हिषदां पितॄणाम् ) प्रजा पर अधिष्ठित पालक पुरुषों के अधीन चाकर ( बभ्रवः ) भूरे रङ्ग के (धूम्रनीकाशाः) धुमैले छापवाले, हों। अर्थात् उन के वस्त्रों पर धूमैले रंग पर भूरे रङ्ग की धारियां हों। दूसरों के वस्त्रों

पर भूरे रंग पर धूमैली धारियां हो । (अग्निष्वात्तानां पितृणाम्) विद्वान् अग्नि, स्वभाव के अग्रणी नेता पुरुषों के अधीन पालक पुरुषों के ( कृष्णाः बभ्रुनीकाशाः ) काले वस्त्रों पर भूरे चिह्न हों । ( त्रैयम्बकाः ) 'त्रियम्बक' अर्थात् तीन २ अधिकारों में लगे पुरुष ( कृष्णाः पृषन्तः ) काले रङ्ग पर चितकबरे नाना वर्णों के चिह्न के वस्त्र वाले हों ।

उ॒क्षाः स॑ञ्च॒रा ए॒ताः शु॑नासी॒रीयाः॑ श्वे॒ता वा॑य॒व्याः॒ श्वे॒ताः सौ॒र्याः॑ ॥१६॥

भा०—( सञ्चराः उक्षाः ) उनके साथ के अनुचर भी इसी प्रकार कहे जानने चाहियें । ( शुनासीरीयाः ) शुनासीर-विभाग, कृषि विभाग के लोग ( एताः ) कर्बुर रंग के हों । ( वायव्याः ) वायु विभाग के श्वेत और ( सौर्याः श्वेताः ) सूर्य अर्थात प्रकाशकारी विभाग के श्वेत वस्त्र के पुरुष हों ।

व॒स॒न्ताय॑ क॒पिञ्ज॑लाना॒लभ॑ते ग्री॒ष्माय॑ कल॒विङ्का॒न्व॒र्षाभ्य॑स्ति॒त्तिरी॑ञ्छ॒रदे॑ व॒र्त्तिका॑ हेम॒न्ताय॒ कक॑राञ्छिशि॒राय॒ विक॑करान् ॥ २० ॥

विराड जगती । निषादः ॥

भा०—ऋतुओं के अनुसार पक्षियों का वर्णन करते हैं । ( वसन्ताय ) वसन्त में ( कपिञ्जलान् ) कपिञ्जल नामक पक्षियों को ( आलभते ) देखता है । ( ग्रीष्माय कलविङ्कान् ) ग्रीष्म में 'कलविङ्क' नाम पक्षी को देखे । ( वर्षाभ्यः तित्तिरीन् ) वर्षा ऋतु में 'तित्तिरि' तीतर नाम के पक्षियों को देखे । ( शरदे वर्त्तिकाः ) शरत् काल में वटेर नामक पक्षियों को देखे । ( हेमन्ताय ककरान् ) हेमन्त में ककर नाम के पक्षियों को प्राप्त करे । ( शिशिराय विककरान् ) शिशिर के लिये 'विककर' नाम के पक्षियों को देखे ।

भिन्न २ ऋतुओं में भिन्न २ पक्षी प्रकट होते हैं । उसी २ ऋतु में ही उन २ पक्षियों को पक्षिशास्त्रज्ञ प्राप्त करें, जानें और उनका अध्ययन करे, विपरीत कालों में विपरीत पक्षियों का प्राप्त होना राष्ट्र के लिये दैवी

विपत्तियों का सूचक होता है। इसलिये राष्ट्र प्रकरण में इसका उल्लेख किया जाता है।

**समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥**

विराट् । मध्यमः ॥

भा०—(समुद्राय शिशुमारान् आलभते) समुद्र में शिशुमार घड़ियालों प्राप्त करे। (पर्जन्याय मण्डूकान्) मेघ काल में मेण्डक, (अद्भ्यः मत्स्यान्) जलों में मच्छियां, (मित्राय कुलीपयान्) मित्र अर्थात् मित्रता के लिये अथवा सूर्य सेवन या जल विहार के लिये 'कुलीपय' मुर्गाबी नाम के जन्तु, (वरुणाय नाक्रान्) वरुण अर्थात् भारी जलों में, या परस्पर वरण के निमित्त बड़े २ नाकों को प्राप्त करे, उनका स्वाध्याय करे।

**सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाकाऽइन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान् ॥ २२ ॥**

विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(सोमाय हंसान्) राजा के विनोद या चांदनी में या जल की शोभा के लिये, हंस को प्राप्त करे। (वायवे बलाकान्) वायु में बलाका या बक पङ्क्तियां देखे। (इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्) इन्द्र, सूर्य और अग्नि के अवसरों पर क्रुञ्च नाम पक्षी देखे। (मित्राय मुद्गून्) सूर्य या सुखद जलाशय के निमित्त या मित्रता के लिये मद्गु नामक छोटे हंस को देखे। और (वरुणाय चक्रवाकान्) परस्पर प्रेम पूर्वक वरण के निमित्त चकवों को देखे। हंस, बलाका, क्रुञ्च, आदि पक्षी उन स्थानों पर जिस २ विशेषता को रखते हैं उन २ विशेषताओं का ज्ञान और अध्ययन करे।

**अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्यऽउलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥ २३ ॥**

पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(अग्नये) अग्नि के प्रयोग के लिये (कुटरून्) कुटरू नामक मुर्गा, पक्षियों को ( आलभते ) प्राप्त करे। ( वनस्पतिभ्यः उलूकान् ) वनस्पतियों के ज्ञान के लिये उल्लू जातियों के पक्षियों को प्राप्त करे, उनके जीवन का अनुशीलन करे। ( अग्निषोमाभ्यां ) अग्नि और जल की परीक्षा के लिये ( चापान् ) चाप नामक पक्षियों को देखे। ( अश्विभ्यां मयूरान् ) स्त्री पुरुषों के संयमी और प्रेमी और सुन्दरता सुखप्रद आलाप के लिये ( मयूरान् ) मयूरों को देखे। ( मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ) मित्र और वरुण अर्थात् मित्रता, स्नेह और परस्पर वरण के लिये ( कपोतान् ) कपोत नाम पक्षियों को देखे।

**सोमा॑य लवाना॒ल॑भते॒ त्वष्ट्रे॑ कौली॒कान्॒ गो॑षा॒दीर्दे॒वानां॒ पत्नी॑भ्यः कु॒लीका॑ देवजा॒मिभ्यो॒ऽग्नये॑ गृ॒हप॑तये पारु॒ष्णान् ॥ २४ ॥**

भा०—( सोमाय लवान् आलभते ) सोम, सौम्य भाव के लिये 'लवा' नामक पक्षी को देखे ( त्वष्ट्रे कौलीकान् ) त्वष्टा, अर्थात् कारीगरी के काम देखने के लिये 'कौलिक' वया नाम पक्षी को देखे। ( देवानां पत्नीभ्यः ) विद्वान् पुरुषों या राजाओं की पत्नी या पालक शक्तियों के अच्छे दृष्टान्त के लिये ( गोषादीभ्यः ) गौओं पर बैठने वाली 'गुरुसल' नामक पक्षियों को देखे। वे गौ पर बैठती हैं, उनके नाशकारी कीड़ों को खाजाती हैं और गौ को हानि नहीं पहुंचातीं। इसी प्रकार पृथ्वी के पास शक्तियों को राष्ट्रवासी प्रजाओं को हानि न पहुंचा कर उनके बीच में दुष्ट पुरुषों को पकड़ २ कर नष्ट करें। ( कुलीकाः देवजामिभ्यः १ ) देव, विद्वानों या राजाओं या विजयी पुरुषों के 'जामि' भगनियों या स्त्रियों के लिये दृष्टान्त रूप से 'कुलीक' नामक पक्षी को देखना चाहिये। ( अग्नये गृहपतये पारुष्णान् ) गृहपति के उत्तम दृष्टान्त के लिये पारुष्ण

१—जामिः स्वसृकुलस्त्रियोः।

नामक पक्षियों को देखना चाहिये। वे प्रत्येक अंग में उष्ण होते हैं और अपने बच्चों को अपने अंगों से लगा कर पालते हैं।

अन्हे॑ पाराव॒तानाल॑भते॒ राज्यै॑ सीचा॒पूर॑होरा॒त्रयोः॑ स॒न्धिभ्यो॑ ज॒तूर्मासे॑भ्यो दात्यौ॒हान्त्सं॑वत्स॒राय॑ मह॒तः सु॑प॒र्णान् ॥ २५ ॥

विराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—दिन के प्रारम्भ के लिये ( पारावतान् ) कबूतरों को देखे, वे भोर में ही उठते हैं, घूत्कार करते हैं। वैसे मनुष्य भी शीघ्र उठे और मन्त्रपाठ करे। अथवा दिन के कार्य के लिये पारावत, कबूतरों के प्रयोग करे वे दिन में दूर तक देखते हैं। ( राज्यै सीचापूः ) रात्रि के कार्य के लिये 'सीचापूः' नाम पक्षी का ज्ञान करे। ( अहोरात्रयोः संधिभ्यः जतूः ) दिन और रात की संधिकाल या संध्या समय में 'जतू' अर्थात् चमगीदड़ों का ज्ञान करे। वे उस समय अच्छा देखती और आहार पाती हैं। ( मासेभ्यः दात्यौहान् ) मासों के उत्तमता के ज्ञान के लिये काले कौओं का ज्ञान करे। ( संवत्सराय महतः सुपर्णान् ) संवत्सर की उत्तमता को जानने के लिये बड़े २ पक्षियों का अध्ययन करे।

भूम्या॑ऽआ॒खूनाल॑भते॒ऽन्तरि॑क्षाय पा॒ङ्क्तान् दि॒वे क॒शान् दि॒ग्भ्यो न॑कु॒लान् ब॒भ्रुका॑नवान्तरदि॒शाभ्यः॑ ॥ २६ ॥

भा०—( भूम्यै आखून् आलभते ) भूमि की उत्तमता के लिये मूषकों का स्वाध्याय करे। ( अन्तरिक्षाय पांक्तान् ) अन्तरिक्ष विज्ञान के लिये पंक्ति बनाकर चलनेवाले पक्षियों को देखे। ( दिवे कशान् ) प्रकाश के लिये 'कश' नाम के पक्षियों को प्राप्त करे। ( दिग्भ्यः नकुलान् ) दिशाओं के ज्ञान के लिये ( नकुलान् ) नेवलों को स्वाध्याय करे। ( अवान्तर दिग्भ्यः ) उपदिशाओं के ज्ञान के लिये ( बभ्रुकान् ) बभ्रुक नामक जन्तुओं को देखे।

वसुभ्य ऽऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥ २७ ॥

भा०—प्रजा में वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वदेव और साध्य ये पांच श्रेणियां उसी प्रकार उत्तरोत्तर उत्कृष्ट जानो जैसे वन के मृगों में ऋष्य, रुरु, न्यङ्कु, पृषत और कुलुङ्ग ये पांच हरिण जातियां हैं। इनमें क्रम से एक के लिये एक को दृष्टान्तरूप से ले ले। ( वसुभ्यः ऋष्यान् आलभते ) वसु, २४ वर्ष के ब्रह्मचारियों के लिये मृग जाति में ( ऋष्यान् आलभते ) ऋष्य नामक मृगों को लेलें। ( रुद्रेभ्यः रुरून् ) रुद्रों के लिये रुरु नामक मृगों को और ( आदित्येभ्यः ) आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये ( न्यंकून् ) न्यङ्कु जाति के मृगों को और ( साध्येभ्यः कुलङ्गान् ) साध्य अर्थात् योग साधनाशील पुरुषों के लिये कुरङ्ग जाति के मृगों को ग्रहण करें। अथवा उक्तवसु आदि के लिये अमुक २ मृगों के चर्म वस्त्र, आसनादि के लिये प्राप्त करे।

ईशानाय परस्वत ऽआलभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयाँस्त्वष्ट्र उष्ट्रान् ॥ २८ ॥

बृहती। मध्यमः ॥

भा०—( ईशानाय ) ऐश्वर्य या सामर्थ्यवान् जन के लिये ( परस्वतः ) परस्वान् नामक मृगों का निरीक्षण करे। ( मित्राय गौरान् ) मित्र, स्नेही व्यक्ति के लिये ( गौरान् ) गौर मृगों का दृष्टान्त देखे। ये परस्पर बहुत ही स्नेह करते हैं। (वरुणाय महिषान्) वरुण, प्रतिद्वन्द्वी को वारण करने वाले के लिये महिष अर्थात् भैंसा को देखना चाहिये। ( बृहस्पतये गवयान् ) बृहस्पति के बड़े राष्ट्र की रक्षा के लिये नील गायों को देखना चाहिये। वे अपने रेवड़ की बड़ी धीरता से रक्षा करते हैं, नर गवय मादीनों के बीच में घेर के रक्षा करते हैं। ( त्वष्ट्रे उष्ट्रान् ) त्वष्टा, शिल्पियों के लिये उष्ट्र जाति के बोझा उठाने वाले जन्तुओं का निरीक्षण करना चाहिये। जिस प्रकार

लम्बी टांगों पर भारी शरीर किस कारीगरी से लगा है उसका अनुकरण करना चाहिये। या भार वाले पदार्थों के उठाने के लिये ऊंटों का उपयोग करना चाहिये।

**प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन ऽआलभते वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥ २९ ॥**

भा०—( प्रजापतये ) प्रजापालक राजा की सेवा के लिये ( पुरुषान् ) वीर पुरुषों को और ( हस्तिनः ) हाथियों को ( आलभते ) प्राप्त करे। ( वाचे ) वाणी के लिये ( प्लुषीन् ) प्लुषी नामक जन्तुओं को प्राप्त करे। ( चक्षुषे मषकान् ) आंख के लिये छोटे २ मच्छरों को देखें। जिस प्रकार चक्षु के रूप को देखकर वे मुग्ध होते हैं ऐसे उत्तम रूपों पर चक्षु को लगावे। ( श्रोत्राय भृङ्गाः ) श्रवणेन्द्रिय के सुख के लिये ( भृङ्गाः ) भृङ्गों को प्राप्त करे, उनके सुन्दर झंकार श्रवण करे।

**प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥**

भा०—( प्रजापतये वायवे च ) प्रजा के पालक और वायु के समान वेग से जाने के लिये ( गोमृगः ) गवय अनुकरण करने योग्य है। ( वरुणाय ) शत्रु को वरण करने के लिये ( आरण्यः मेषः ) जंगली मेढ़ा अनुकरण करने योग्य है। अर्थात् शत्रु को वारण करने वाला वीर मेढे के समान शत्रु से टक्कर ले। और ( यमाय कृष्णः ) यम, नियमपालक ब्रह्मचारी के लिये ( कृष्णः ) कृष्ण मेष अनुकरणीय है, वह उसके समान हृष्ट पुष्ट हो। ( मनुष्यराजाय मर्कटः ) मनुष्य स्वभाव के राजा के लिये वानर का दृष्टान्त समझना चाहिये। अर्थात् प्रायः मनुष्य-स्वभाव के राजा

वानर के समान चपल और क्रोधी होते हैं, अथवा वे उनके समान दिखावटी क्रोध के हों। भीतर से वे क्रोध न करें। ( शार्दूलाय रोहित् ) जिस प्रकार सिंह के लिये एक मृग पर्याप्त होता है उसी प्रकार शार्दूल के समान वीर पराक्रमी के लिये ( रोहित् ) वृद्धिशील प्रजा प्राप्त हो ( ऋषभाय गवयी ) जिस प्रकार बैल को भोग के लिये गौ प्राप्त होती है उसी प्रकार नरश्रेष्ठ को यह पृथिवी भोग के लिये प्राप्त हो। ( क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका ) जिस प्रकार वेग से झपटने वाले बाज को ( वर्त्तिका ) बटेरी शिकार में प्राप्त होती है। उसी प्रकार वेग से सेन पक्षी के समान परराष्ट्र पर आक्रमण करने में समर्थ वीर पुरुष को भी ( वर्तिका ) वृत्ति राज्य से प्राप्त हो ( नीलंगोः कृमिः ) नीड़ में बैठने वाले विशेष छोटी जाति के पक्षी को जिस प्रकार भोजन के लिये ( कृमिः ) कृमि प्राप्त होता है उसी प्रकार 'नीड़' अर्थात् आश्रय रक्षास्थान में बैठे पुरुष को उसके कर्म का फल प्राप्त हो। ( समुद्राय शिशुमारः ) समुद्र में जिस प्रकार स्वयं 'शिशुमारः' नाम का घड़ियाल आश्रय किये रहते हैं। उसी प्रकार ऐश्वर्य के समुद्र राजा के पास घड़ियाल के समान परशत्रु को अपने बल से खींचलाने वाले भयंकर विजयी पुरुष प्राप्त हों। ( हिमवते हस्ती ) जिस प्रकार विशालकाय हाथी जन्तु हिमवान् पर्वत का आश्रय लेता है उसी प्रकार हिमालय के समान उन्नत पुरुष के अधीन नर कुंजर भी प्राप्त होते हैं।

**मयुः प्राजापत्य ऽउलो हलिक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्राय वाचे क्रुञ्चः ॥ ३१ ॥**

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

**भा०**—( मयुः ) उत्तम आज्ञा देने वाला पुरुष (प्राजापत्यः) प्रजापति प्रजापालक राजापद के योग्य है। अथवा (मयुः) गान, संगीत आदि के उत्तम

शब्द गान करने हारा ( प्राजापत्यः ) प्रजापति, राजा के सुख के लिये हो। ( उलः ) ऊन के वस्त्र देने वाला, ( हलिक्ष्णः ) सिंह के समान निर्भय चक्षु वाला और ( वृषदंशः ) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट दिखाई देने वाला ( ते ) ये तीनों प्रकार के पुरुष ( धात्रे ) राष्ट्र में धाता, प्रजा के पोषणकारी पद के योग्य हैं। ( धुङ्क्षा ) शत्रुओं को धुन डालने या कंपा देने वाली और उसको क्षीण करने वाली सेना ( आग्नेयी ) 'अग्नि' नामक अग्रणी नायक के अधीन रहे। (कलविङ्कः) मधुरध्वनियों को या कलायन्त्रों को प्रकट करने वाला, ( लोहिताहिः ) लोहित अर्थात् लोहादि के बने पदार्थों को आघात करने वाला लोहकार और (पुष्कर-सादः) तालाब को बनाने वाला, अथवा पुष्ट करने वाले दृढ़ दुर्गों को बनाने वाला ( ते ) ये सब ( त्वाष्ट्राः ) शिल्पकार के अधीन हों। ( वाचे क्रुञ्चः ) उत्तम वाणी के लिये ज्ञानवान्, चतुर पुरुष प्राप्त हो।

**सोमा॑य कुलु॒ङ्ग ऽआ॑र॒ण्यो॒ऽजो न॑कु॒लः शका॒ ते पौ॒ष्णाः क्रो॒ष्टा मा॒योरिन्द्र॑स्य गौरमृ॒गः पि॒द्वो न्यङ्कु॑: कक्क॒टस्तेऽनु॑मत्यै प्रति॒श्रुत्का॑यै चक्रवा॒कः ॥ ३२ ॥**

भुरिग् जगती । निषादः ॥

भा०—(सोमाय कुलुङ्गः) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्यवान् पद के लिये (कुलुङ्गः) मृग के समान उछाल भर कर शत्रु पर धावा करने वाला पुरुष प्राप्त हो। ( आरण्यः अजः ) जंगली 'अज' 'अजाशृंगी नामक औषध' या शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला पुरुष, ( नकुलः ) नेवुरा और उस स्वभाव का विपचैद्य, ( शकाः ) मधु-मक्खियें और उनसे तैयार मधु अथवा समवाय बनाकर शक्तिशाली हुए पुरुष ( ते पौष्णाः ) ये सब पुष्टि करने के लिये प्राप्त किये जायँ। ( माय्वोः ) दीर्घ शब्द करने के निमित्त पद के लिये ( क्रोष्टा ) दूर तक बुलाने वाला पुरुष प्राप्त किया जाय। ( इन्द्रस्य गौरमृगः )

ऐश्वर्यवान् या इन्द्र आचार्य के पद के लिये ( गौरमृगः ) वाणियों में रमण करने और अन्तःकरणों को शुद्ध करने में समर्थ पुरुष चाहिये अथवा ऐश्वर्यवान् होने के लिये ( गौरमृगः ) गौओं और भूमियों में रमण करने और धनादि के खोजने वाला पुरुष चाहिये। ( पिद्वः ) ज्ञानवान् पुरुष, ( न्यङ्कुः ) नीचे, शनैः भाषणशील और ( कक्कटः ) निरन्तर ज्ञान का अभ्यास करने वाला ( ते ) वे ( अनुमत्यै ) अनुमति, सलाह करने के लिये प्राप्त करने चाहियें। ( चक्रवाकः ) चक्र, राजचक्र में भाषण करने में समर्थ, वाग्मी पुरुष ( प्रति-श्रुत्काय ) सभा में स्थित प्रत्येक को राजा की घोषणा श्रवण कराने के लिये प्राप्त किया जाय।

'पिद्वः'—पी गतौ। भ्वादिः। दुगागमः। न्यङ्कवति इति न्यङ्कुः। कटी गतौ। भ्वादिः, गति ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति त्रयोर्थाः। चक्रे वक्तीति चक्रवाकः। प्रति प्रति श्राव्यते यया क्रियया सा प्रतिश्रुत्का तस्यै। गोषु, वाणीषु, भूमिषु, गोषु धनेषु वा रमते इति गौरः। मृजू शुद्धौ। मृगयतेर्वा। कुलुंगः कुलं गच्छति इति कुलंगः उत्वं छान्दसम्। अथवा कुत्सितं लुनाति इति कुलुः शत्रुकुलं आकुलयति वा। अजति क्षिपति रोगान् बहिरिति अजः। अरण्ये भवः आरण्यः। न कुत्सितं मलं लाति इति नकुलः शुद्धान्नौषधप्रापकः। शकाः शच्यन्ते समवायेन वर्त्तन्ते, शक्नुवन्तीति वा शकाः।

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ३३ ॥

भा०—( बलाका ) बल से जाने वाली सेना को ( सौरी ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के लिये प्राप्त करे। ( शार्गः=सारगः ) सार पदार्थों तक पहुंचने वाला अथवा 'शार-ग' शरसमूहों सहित जाने वाला, अथवा ( शार्ङ्गः ) शृङ्ग के धनुष का धारण करने वाला, या शस्त्रधर ( सृजयः ) वेग

से विजय करने वाला और (शयाण्डकः) शयन से सुख कराने वाला, (ते) ये तीनों (मैत्राः) स्नेही एवं प्रजा को मरण से बचाने वाले राजा के लिये प्राप्त करो। (सरस्वत्यै) विद्या के अभ्यास के लिये (पुरुषवाक् शारिः) पुरुष वाणी बोलने वाली मैना के समान पढ़े पाठ को पुनः अभ्यास करने वाला पुरुष हो। (भौमी श्रावित्) भूमि के भीतरी तत्वों को प्राप्त करने वाला (श्रावित्) सेहे के समान खोदने वाला हो। (शार्दूलः) शार्दूल के समान पराक्रमी, (वृकः) भेड़िये के समान साहसी और (पृदाकुः) अजगर के समान तपस्वी ये तीनों प्रकार के पुरुष (मन्यवे) 'मन्यु' अर्थात् क्रोध-शीलता के लिये राजा को अनुकरणीय है (सरस्वते) प्रशस्त ज्ञान का अगाध सागर होने के लिये (पुरुषवाक् शुकः) पुरुष की वाणी बोलने वाले शुक के समान पुनः २ पाठशील पुरुष को प्राप्त करो।

**सुपर्णः पार्जन्य ऽआतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३४ ॥**

स्वराट् शक्करी। धैवतः ॥

भा०—(सुपर्णः) उत्तम पालनशक्ति से सम्पन्न सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (पार्जन्यः) मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों का प्रदाता हो। (आतिः) निरन्तर सर्वत्र भ्रमण करने में समर्थ, (वाहसः) वाहनों को साथ रखने वाला और (दर्विदा) दारु, अर्थात् काष्ठों के विद्वान् (ते) वे तीनों पुरुष (वायवे) वायु के समान तीव्र वेग से गति करने में उपकारी होवें, वे शीघ्रगामी रथ बनावें।

(वाचस्पतये पैङ्गराजः) वाणी के पालकस्वरूप वाचस्पति पद के लिये उत्तम उपदेश और अध्यापन कार्य, एवं उत्तम सूक्त पद्यादि कहने वालों में सर्वश्रेष्ठ पुरुष को प्राप्त करो। (अलजः) जो पुरुष अपने कामों

से दूसरों को संताप न दे ऐसा व्यक्ति ( आन्तरिक्षः ) अन्तरिक्ष के समान सब का रक्षक होने योग्य है। ( प्लवः ) जहाज़, ( मद्गुः ) जलकाग के समान जल और स्थल दोनों स्थानों पर विहार करने में समर्थयान और ( मत्स्यः ) मछली के समान रचना वाला यान ( ते नदीपतये ) ये नदीपति समुद्र के संतरण के लिये चाहिये।

(द्यावापृथिवीयः कूर्मः) क्रिया उत्पन्न करने में समर्थ सूर्य जैसे द्यौ और पृथिवी को प्रकाश करता है। इसी प्रकार (कूर्मः) क्रियाशील, कर्मक्षम, तेजस्वी पुरुष राजा और प्रजा दोनों का हितकारी हो। नीचे की पृथिवी और ऊपर का आकाश दोनों मिल कर महान् 'कूर्म' अर्थात् कच्छप का आकार बनाते हैं। यह विराट् कूर्म है, वह जैसे पृथिवी और आकाश का मिलकर कूर्म है उसी प्रकार पृथिवी और उसका रक्षक राजा दोनों का मिलकर राज्य रूप एक कूर्म बनता है। वह उत्तम राज्य राजा प्रजा दोनों का ही होने से द्यावा पृथिवी दोनों का कहाता है।

'पैङ्गराजः'—पिजिर्भासार्थः। 'अलजः'—अज ल्जीभर्जने भ्वादिः।

**पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥ ३५ ॥**

निचृत् शक्वरी। धैवतः ॥

**भा०**—( चन्द्रमसः पुरुषमृगः ) पुरुषों को अपने उपदेश, आचार व्यवस्था द्वारा पवित्र करने वाला पुरुष 'चन्द्रमा' के पदके योग्य है। वह चन्द्र के समान सब का आह्लादक है। ( गोधा ) गौओं का पालक ( कालका ) यथाकाल, ऋतु अनुसार फल प्राप्त करने वाला और ( दार्वाघाटः ) काष्ठों को चीरने फाड़ने वाला (ते) ये तीन पुरुष ( वनस्पतीनाम् ) वन के वनस्पतियों के पालने और प्रयोग के लिये हों। ( कृकवाकुः )

कण्ठ से शुद्ध वाणी बोलने वाला विद्वान् ( सावित्रः ) सविता, सर्वप्रेरक आज्ञापक और सविता के समान ज्ञानी आचार्य पद के योग्य है। ( हंस वातस्य ) हंस के समान जल में निर्लेप रह कर विहार करने वाला योगी (वातस्य) प्राण के संयमन में कुशल (नाक्रः) नक्र के शरीर के समान बनी नाव, (मकरः) मगरमच्छ के शरीर के समान बनी नाव और (कुलीपयः) कुलीपय नामक जलजन्तु के समान रचना वाला जलयान ( अकूपारस्य ) समुद्र के विहार के लिये बनाना चाहिये। ( ह्रियै शल्यकः ) लज्जा के लिये सेहा या जंगली कांटेदार चूहा अनुकरण करने योग्य है वह आहट और स्पर्श पाते ही मुंह छिपाकर पड़ जाता है।

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश ऽआश्विनः कृष्णो रात्र्या ऋक्षो जतूः सुपिलीका त ऽइतरजनानां जहका वैष्णवी ॥ ३६ ॥

निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—( एणी ) नित्य आनेवाली उषा ( अह्नः ) दिन को प्रकाश करती है। ( मूषिका तित्तिरिः मण्डूकः ) मेंढक, मूसा और तीतर ये तीनों ( सर्पाणाम् ) सांपों के आहार होते हैं। ( लोपाशः आश्विनः ) स्त्री और पुरुष दोनों का परस्पर सम्बन्ध 'लो' [पाश=लोहपाश] अर्थात् लोह से बने पाश के समान दृढ़ हो। ( कृष्णः ) काला अंधकार ( रात्र्याः ) रात्रि का स्वरूप है। ( ऋक्षः जतूः सुपीलिका ते इतरजनानाम् ) रीछ, चमगीदड़ और सुपीलिका नामक पक्षी ये तीनों श्रेष्ठ पुरुषों से भिन्न २ जनों के स्वभाव के दृष्टान्त हैं। रीछ क्रूर है वह पशु होकर भी अपुच्छ है, चमगीदड़ न पक्षी है न पशु है। सुपीलिका पक्षी होकर बिल बनाकर रहती है। इस प्रकार ये जिस वर्ग के हैं उसमें होकर भी उनसे भिन्न रूप और स्वभाव के हैं इसी प्रकार जो लोग श्रेष्ठ पुरुषों में होकर भी उनसे भिन्न

आचार व्यवहार के हों वे इन जन्तुओं के समान हैं। ( जहका वैष्णवी ) सर्वत्र फैलाने वाली व्यापक शक्ति परमेश्वर की है। राष्ट्र में व्यापक शक्ति राजा की है। 'जहका'—ओहाङ् गतौ।

अन्यवापोऽर्द्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासान् कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥ ३७ ॥

भुरिग् जगती। निषादः ॥

भा०—( अन्यवापः अर्धमासानाम् ) स्वक्षेत्र में दूसरों द्वारा बीज वपन केवल ( अर्धमासानाम् ) आधे मास, ऋतुकाल-मात्र के लिये हो। उसके अतिरिक्त समय नियुक्त पुरुष का क्षेत्र से कोई सम्बन्ध नहीं। जिस प्रकार 'अन्यवाप' अर्थात् दूसेर के बीज से उत्पन्न कोयल का काक से पालन मात्र का सम्बन्ध है बाद में वह पुनः कोमल का ही बच्चा कहाता है इसी प्रकार असमर्थ पुरुष के स्त्री में अन्य वीर्य द्वारा उत्पादित नियोगज पुत्रों का भी वीर्य सेक्ता के साथ केवल ऋतुकाल के १५ दिनों के संग-मात्र का सम्बन्ध है। उसके अतिरिक्त वे पुत्र स्त्री के पाणिग्रहीता पति के ही कहाते हैं।

( ऋष्यः मयूरः सुपर्णः ते गन्धर्वाणाम् ) ऋष्य नामक मृग जो गान पर मुग्ध हो जाता है ( मयूरः ) मोर जो मधुर षड्ज स्वर का आलाप करता है ( सुपर्णः ) हंस ये गन्धर्व अर्थात् गान-विद्या के विशेष २ पुरुषों के लिये स्वर-निर्णय में अनुकरण करने योग्य हैं। ऋष्य मृग का स्वर ऋषभ, मयूर का षड्ज और हंस का पञ्चम है।

( अपाम् उद्रः ) उद्र, अर्थात् उदक में रमण करनेहारे कर्कट नाम जीव का अनुकरण करके ( अपाम् ) जलों के विहार करने के साधन तैयार करना चाहिये। ( कश्यपः ) सर्वप्रकाशक, सूर्य ( मासान् ) मासों, १२ महीनों का उत्पादक होता है। ( रोहित् कुण्डृणाची गोलत्तिका ते

अप्सरसाम् ) रोहित्, कुण्डृणाची और गोलत्तिका ये तीन पशुजातियें ( अप्सरसाम् ) स्त्रियों के स्वभाव बतलाने वाले दृष्टान्त हैं। अथवा ये स्त्रियों के तीन नमूने हैं, १. 'रोहित्' जो पुरुष का सङ्ग लाभ कर पुत्र सन्तानादि से फूलती फलती हैं। अथवा लता स्वभाव की हैं। वे पुरुष का आश्रय करके रहती हैं। दूसरी ( कुण्डृणाची )दाह या कामानल से पीड़ित होकर पुरुष के पास आती हैं। तीसरी 'गोलत्तिका' अर्थात् गोरतिका, गौ के स्वभाव की, अन्न वस्त्र ही से संतोष करनेवाली अथवा गौ, इन्द्रियों को सुख देनेवाली. पशु के समान रतिमात्रफला। कदाचित् कामशास्त्र की दृष्टि से रोहित्=मृगी। कुण्डृणाची = हस्तिनी और गोलत्तिका = चित्रिणी हों।

( असितः ) बन्धन रहित जीव ( मृत्यवे ) मृत्यु अर्थात् शरीर त्याग के वश होता है। अर्थात् मृत्यु का स्वरूप देहबन्धन से छूटना है। अथवा ( असितः ) कृष्ण, पापी बन्धनरहित, निर्मर्याद पुरुष ( मृत्यवे ) मृत्युदण्ड के योग्य है।

**वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत ऽउलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥ ३८ ॥**

स्वराड् जगती। निषादः ॥

भा०—( वर्षाहूः ऋतूनाम् ) वर्षाओं को लानेवाला काल ( ऋतूनाम् ) ऋतुओं में सबसे श्रेष्ठ है। ( आखुः ) सब ओर से भूमि को खनकर उसमें से रत्न, जल, अन्नादि प्राप्त करने वाला, ( कशः ) कशा के समान शासन करने हारा या सर्व विद्याओं का प्रकाशक और ( मान्थालः ) मथन करके सार भाग प्राप्त करने वाला. ये तीनों प्रकार के पुरुष ( पितृणाम् ) पालक माता पिता के समान प्रिय, हितकारी होते हैं। (बलाय) बल के सम्पादन के लिये ( अजगरः ) अजगर का अनुकरण करना चाहिये। अर्थात् जिस प्रकार अजगर सुदृढ़, यथेच्छ बलवाला होता है उसी प्रकार

शरीर देखने में कोमल होकर भी इच्छानुसार कठोर और बलपूर्ण हो। ( वसूनां कपिञ्जलः ) उत्तम वचन कहने वाला पुरुष ( वसूनाम् ) राष्ट्र-वासी प्रजाओं का प्रिय होता है। ( कपोत उलूकः शशः ते निर्ऋत्यै ) कपोत, उलूक और शशक ये तीनों जन्तु संकट, विपत्ति की सूचना देने वाले और उस काल में सहायक हैं। उसके लिये इनकी प्रकृति का स्वाध्याय अर्थात् चाहिये। ( आरण्यो मेषः वरुणाय ) जंगली मेढ़ा या जंगली भैंसा, 'वरुण' अर्थात् शत्रुनिवारण करने वाले पुरुष को अनुकरण करने योग्य हैं। वह जैसे शत्रु से प्राणपण से जुट जाता है उसी प्रकार शत्रु मारने के काम में लगे पुरुष को अपने कार्य में प्राणपण से जुट जाना चाहिये।

**श्वित्रऽआदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्तेऽमत्या अरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥ ३९ ॥**

स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

**भा०**—( श्वित्रः आदित्यानाम् ) श्वेत प्रकाश सूर्य की किरणों का होता है। वह श्वित्र, निश्पाप चरित्र आदित्य ब्रह्मचारियों को अनुकरण करना चाहिये। ( उष्ट्रः घृणीवान्, वार्ध्रीनसः ते मत्यैः ) उष्ट्र, अर्थात् पापों का दहन करने वाला ( घृणीवान् ) सूर्य के समान तेजस्वी और ( वार्ध्रीनसः ) नाक में नकेल लगालेने के समान अपने इन्द्रियों पर निग्रह करने वाला ये तीन प्रकार के पुरुष ( मत्यै ) उत्तम मति, ज्ञान प्राप्त करने के लिये उपासना करने योग्य हैं। ( अरण्याय सृमरः ) गवय के समान नित्य जंगलों में घूमने वाला पुरुष जंगल के प्रदेश के लिये पथप्रदर्शक होने योग्य है। ( रुरुः ) निरन्तर उपदेश करने वाला ( रौद्रः ) उपदेशक विद्वान् होने योग्य है। अथवा भयंकर शब्द करने वाला पुरुष भयजनक है।

( क्वयिः कुटरुः दात्यौहः ते ) क्वयि कुटरु=कुक्कुट और काला काक ये तीनों ( वाजिनाम् ) घोड़ों के हितकारी होते हैं। अथवा बटेरा कुक्कुर और काक

ये तीन दृष्टान्त ( वाजिनाम् ) युद्ध करनेवालों को अनुकरण करने योग्य हैं । ( कामाय पिकः ) काम, मनोभिलाषा पूर्ण करने के लिये ( पिक :) कोकिल के समान मनोहर वाणी से बोलनेहारा हो ।

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥ ४० ॥

भा०—( खड्गः ) गैण्डा नामक पशु ( वैश्वदेवः ) समस्त विजिगीषु, योद्धा पुरुषों के ढाल बनाने के काम का होता है। अथवा ( खड्गः ) खड्ग, तलवार सब सैनिकों के उपयोग की है। ( कृष्णः श्वा ) काला कुत्ता, (कर्णः गर्दभः) कानों वाला गधा और ( तरक्षुः ) चीता ये पदार्थ (रक्षसाम्) दुष्ट पुरुषों से बचने के लिये उपाय और अनुकरणीय दृष्टान्त हैं। ( इन्द्राय सूकरः ) भूमि विदारण करने के काम में 'सूकर' सूअर नाम का लम्बी थोथन वाला पशु अनुकरण करने योग्य है। ( सिंहः मारुतः ) सिंह, प्रयाण करने वाले योद्धा के लिये वीरता और तीव्रता के लिये अच्छा अनुकरण योग्य दृष्टान्त है। ( कृकलासः ) कृकलास नाम सरट. गिरगट; ( पिप्पका ) पिप्पका नाम का छोटा पक्षी और ( शकुनिः ) शक्तिशाली बड़ा पक्षी, ये तीनों पदार्थ ( शरव्यायै ) बाण बनाने के उपयोग के हैं। गिरगट के समान बाण का मुख पिप्पका के पूंछ के समान बाण की पूंछ, और बड़े पक्षियों के पंखों के खण्डों से बाण बनाया जाता है। ( पृषतः विश्वेषां देवानाम् ) पृषत् नामक सामान्य मृग समस्त विद्वान् पुरुषों के लिये मृगछाला आदि के आसन और वस्त्र के कार्य का है ।

॥ इति चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

# ॥ अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ [1] शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बस्वैँस्तेगान्दꣳष्ट्राभ्याꣳ सरस्वत्याऽ अग्रजिह्वं जिह्वायाऽ उत्सादमवक्रन्देन तालु वाजꣳ हनुभ्यामप ऽआस्येन वृषणमाण्डाभ्याम् । [2] आदित्याँ श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याꣳशुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः ॥ १ ॥

भुरिक् शक्वरी ( २ ) निचृदतिशक्वरी । धैवतः ॥

भा०—( शादं दद्भिः ) काटने की क्रिया को दांतों से सीखो । ( दन्तमूलैः ) दांतों के मूल भागों से ( अवकाम् ) रक्षा करने की विधि का प्रयोग सीखो । काटने का विज्ञान दांतों से सीखना चाहिये कि किस प्रकार वे पदार्थों को काटते हैं । उसी प्रकार दन्तमूल काटने के अवसर पर दांतों की कैसे रक्षा करते हैं । ( बस्वैः मृदं ) दांतों के पृष्ठ-भागों से ( मृदम् ) मर्दन करने की क्रिया का पाठ सीखें । वे चवाये पदार्थ को कैसे मसलते हैं । ( दंष्ट्राभ्यां तेगाम् ) दांतों से तीक्ष्णता का ज्ञान करो । ( सरस्वत्यै अग्रजिह्वम् ) सरस्वती, शुद्ध वाणी के उच्चारण के लिये जिह्वा के अग्रभाग का उपयोग करो । ( जिह्वायाः ) जीभ से ( उत्सादम् ) उखाड़ने के व्यापार की शिक्षा लो । वह अपनी चतुरता से दांतों में फंसे अन्नादि के अवयवों को किस प्रकार उखाड़ती है । ( अवक्रन्देन तालु ) नीचे शब्द के प्रयोग से ( तालु ) तालु का प्रयोग सीखो ( हनूभ्याम् वाजम् ) दोनों जबाड़ों से बल की शिक्षा लो । ( आस्येन अपः ) मुख से जलों के

---

१—शादंदद्भिरित्यारभ्य पृथिवीं त्वचा [ २९ । ६ ] इत्यन्तः संहिता भागो ब्राह्मणं न मन्त्राः इति महीधरः ॥

प्रकट होने का विज्ञान देखो, किस प्रकार मुख में लगी ग्रन्थियों से जल छूटता है और नित्य सदा मुख जल से गीला रहता है। ( आण्डाभ्याम् वृषणम् ) अण्डकोषों से वीर्य सेचन के ज्ञान को प्राप्त करो। ( श्मश्रुभिः ) दाढ़ी मोंछ के बालों से ( आदित्यान् ) आदित्य ब्रह्मचारियों को पहचानो, अथवा दाढ़ी मोंछ के बालों से ( आदित्यान् ) सूर्य की किरणों को जानो। अर्थात् मनुष्य के मुख पर दाढ़ी मोंछे उसी प्रकार हैं जिस प्रकार सूर्यबिम्ब के चारों ओर उससे निकलने वाली किरणें। ( भ्रूभ्याम् पन्थानम् ) भौहों से मार्ग को जानो अर्थात् जिस प्रकार नाक पर दो भौहें एक दूसरे के विपरीत दिशा में लगी हैं उसी प्रकार भिन्न २ दिशा में गये मार्गों को सूचित करना चाहिये। अथवा ( भ्रूभ्याम् ) भौहों के इशारे से ही ( पन्थानम् ) जाने योग्य मार्ग को समझो। बुद्धिमान को इशारों से ही अपने कर्त्तव्या-कर्त्तव्य को जानना चाहिये। ( वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी ) ऊपर नीचे की पलकों से आकाश और पृथिवी को जाने अर्थात् जैसे दो पलकें ऊपर नीचे हैं वे चक्षु को अपने भीतर लिये रहती हैं उसी प्रकार आकाश ऊपर और पृथिवी नीचे वे दोनों दो पलकों के समान सूर्य रूप तेज को अपने भीतर धारण करती हैं। ( कनीनकाभ्यां ) आंख की पुतलियों से ( विद्युतम् ) विद्युत् या विशेष द्युतिमय सूर्य को समझो। पलकों के बीच की पुतली उसी प्रकार है जैसे आकाश और भूमि के बीच विशेष तेजस्वी सूर्य है। ( शुक्लाय स्वाहा ) आंख के शुक्ल भाग का भी ज्ञान करो और ( कृष्णाय स्वाहा ) कृष्ण भाग का भी ज्ञान करो। वे दोनों दिन और रात्रि के प्रकाश और अन्धकार के समान हैं। ( पक्ष्माणि ) पलकों पर के लोम ( पार्याणि ) नदी के परले तट पर लगे कासों के समान हैं। ( इक्षवः ) नीचे की पलकों के लोम ( अवार्याणि ) मानो इस तीर के कासों के समान हैं। अथवा ( पक्ष्माणि ) स्वीकार करने योग्य वस्तु (पार्याणि) पालन करने योग्य हैं। (इक्षवः) इच्छानुकूल पदार्थ (अवार्याणि)

धारण नहीं करने चाहियें। और इसी प्रकार ( पद्याणि अवार्याणि ) अपने पक्ष के, ग्रहण योग्यों को तिरस्कार न किया जाय। ( इत्त्वः पार्या ) इष्ट सम्बन्धियों को पालन करना चाहिये।

अथवा—इस मन्त्र में राष्ट्र की मनुष्य के मुँह से तुलना की गई प्रतीत होती है। जैसे (शादं दद्भिः) 'शाद' अर्थात् छेदन करनेवाले शस्त्र बल की दांतों से तुलना करो। (अवका दन्तमूलैः) शैवाल को दन्तमूलों से तुलना कर। अथवा काटने वाले हथियारों की दांतों से तुलना कर। राष्ट्र की रक्षा करने वाली सेना को दांतों के मूलों के तुल्य मानो। ( तेगां दंष्ट्राभ्याम् ) तीक्ष्ण शस्त्र की दाढ़ों से तुलना करो। ( सरस्वत्या अग्रजिह्वं ) सरस्वती या विद्वत्स-मिति से मुखस्थ जीभ की तुलना करो। ( जिह्वायाः उत्सादम् ) मुख में लगी जीभ की राष्ट्र में शत्रु को उखाड़ देने की शक्ति से तुलना करो। ( अव-क्रन्देन ) शत्रु को ललकारने वाले या दबाने वाले बल से ( तालु ) तालु की तुलना करो। जिस प्रकार भोज्य पदार्थ को तालु दबा लेता है उसी प्रकार राजा भोग्य राष्ट्र को दबाकर भोग करे। ( वाजं हनुभ्याम् ) राष्ट्र के बल वीर्य की मुख के जबाड़ों से तुलना करो। ( अपः आस्येन ) राष्ट्र में स्थिर जलों की ( आस्येन ) गीले मुख से तुलना करो। अथवा ( अपः आस्येन ) प्रजाओं की समस्त खाने वाले मुख से तुलना करो। ( वृषणम् आण्डाभ्याम् ) शरीर में स्थित अण्डकोशों से वर्षा करनेवाले मेघ की तुलना करो। ( आदित्यान् श्मश्रुभिः ) सूर्य की किरणों की मुख के मूंछ दाढ़ी से तुलना करो। ( पन्थानं भ्रूभ्याम् ) राष्ट्र में बने मार्ग की मुख पर लगी भौहों से तुलना करो। ( वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी ) दो पलकों से आकाश और पृथिवी की तुलना करो। ( विद्युतं कनीनकाभ्याम् ) आकाश पृथिवी के बीच स्थित विशेष कान्तिवाले सूर्य या विद्युत् की आंखों की पुतलियों से तुलना करो। ( शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा अर्थात् शुक्लेन शुक्लं सुष्टु आह। कृष्णेन कृष्णं सुष्टु उच्यते। अथवा, शुक्लः

शुक्लं स्वम् उपमानमाह कृष्णः कृष्णं स्वम् उपमानम् आह ) आंख के श्वेत भाग और कृष्ण भाग के लिये भी दिन और रात्रि के शुक्ल और कृष्ण, प्रकाश और अन्धकार दोनों की उत्तम रीति से तुलना करो। ( पक्ष्माणि पार्याणि ) ऊपर के पलक के लोम राष्ट्र के पालन करने वाले अथवा दूर के देश वासी जन के समान हैं। और ( इक्षवः ) निचली पलक के रोम ( अवार्याणि ) समीप के प्रान्तों के वासी जनों के समान हैं। अथवा इससे विपरीत ( पक्ष्माणि अवार्याणि पार्या इक्षवः ) ऊपर की पलकों के लोम पास के प्रान्तों की प्रजा और नीचे के पलक के रोम दूर के प्रान्तों की प्रजा के समान हैं।

वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याᳬं श्रोत्रᳬं श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिᳬं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणᳬं स्तुपेन ॥ २ ॥

भुरिगतिशक्वर्यौ। धैवतः ॥

भा०—( प्राणेन वातम् ) शरीरगत प्राण से राष्ट्रगत वायु की तुलना करो। (अपानेन नासिके) शरीर की नासिका को अपान वायु से तुलना करो। ( अधरेण ओष्ठेन उपयामम् ) नीचे की होठ से राज्यव्यवस्था की तुलना करो। ( सत् उत्तरेण ) ऊपर के होंठ से राज्य के सदाचार व्यवस्था की तुलना करो। ( प्रकाशेन अन्तरं ) राज्य में विद्यमान् विद्या, विज्ञान और सूर्यादि के प्रकाश से शरीर के भीतर विद्यमान् अङ्गों की ज्ञानपूर्वक रचना की तुलना करो। ( अनूकाशेन ) उसके अनुरूप प्रकाश से ( बाह्यम् ) देह के बाह्य स्वरूप की तुलना करो। ( मूर्ध्ना निवेष्यं ) शरीर

के शिरो भाग से राष्ट्र के भीतर व्यापक या एक स्थान पर राजधानी में बसे मुख्य भाग की तुलना करो। ( स्तनयित्नुं निर्बाधेन ) शरीर में स्थित शिर के बीच के भेजे के श्वेत भाग की तुलना आकाश में स्थित गर्जनकारी मेघ से करो। ( अशनिं मस्तिष्केण ) मस्तक में स्थित भेजे या भूरे रंग के भाग से मेघस्थ वज्र की तुलना करो। ( विद्युतं कनीनकाभ्यां ) चक्षुओं में स्थित पुतलियों से मेघस्थ विद्युत् की तुलना करो। ( कर्णाभ्यां श्रोत्रम् ) दिशाओं के दो कोनों से शरीर के श्रोत्र की, या कानों से आकाश की तुलना करो। ( श्रोत्राभ्यां कर्णौ ) शरीरगत श्रवण के साधन कानों से ( कर्णौ ) शेष दो कोनों की तुलना करो। ( तेदनीम् अधरकण्ठेन ) राष्ट्र की 'तेदनी'=तेजनी, तीक्ष्ण शक्ति को शरीरगत कण्ठ के अधर भाग से तुलना करो। (शुष्ककण्ठेन अपः) शरीरगत सूखे कण्ठ से राष्ट्र की (अपः) प्रजाओं की तुलना करो। अर्थात् वे सदा सूखे गले के समान अन्न जल की प्यासी रहती हैं। (चित्तं मन्याभिः) शरीर में स्थित चित्त को (मन्याभिः) राष्ट्र की मान करने वाली राजसभाओं से तुलना करो। ( अदितिं शीर्ष्णा ) शरीरस्थ शिर से प्रभु की अखण्ड आज्ञा की तुलना करो। ( निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा ) राष्ट्र के नाश या विपत्ति की तुलना शरीर में लगे विना बोलने वाले मृत्युग्रस्त अथवा ( निर्जर्जल्पेन ) अत्यन्त जर्जर, उस बेसुध शिर से करो जिसका बोलना बन्द हो चुका हो। (संक्रोशैः प्राणान् ) राष्ट्र में एक दूसरे के प्रति बोले हुए शब्द, वार्तालाप, आह्वान आदि की तुलना शरीरस्थ प्राणों से करो। (रेष्माणं स्तुपेन) शिर में लगे आघात आदि से राष्ट्र में उत्पन्न परस्पर घात प्रतिघात उपद्रव की तुलना करो।

अथवा—(प्राणेन वातञ् आपूरय) हे अभ्यासी पुरुष! तू प्राणवृत्ति अर्थात् बाहर से भीतर श्वास द्वारा वायु को पूर्ण कर। ( अपानेन नासिके ) और फिर अपान अर्थात् भीतर से बाहर आते हुए निःश्वास द्वारा दोनों नाकों को रिक्त करे। ( अधरेण ओष्ठेन उत्तरेण सत् उपयामम् ) ऊपर और नीचे

के ओष्ठों से प्राप्त या स्वीकृत नियम, मौनमुद्रा या वाक् संयम की साधना कर। ( प्रकाशेन अन्तरम् ) ज्ञान के प्रकाश से भीतर को उज्ज्वल कर और ( अनुकाशेन बाह्यम् ) तदनुसार स्वच्छ आचरण से अपने बाह्य शरीर को सुन्दर बना। ( मूर्ध्ना निवेश्यम् ) अपने शिर से ध्यान करने योग्य ध्येय पदार्थ की चिन्ता कर। ( निर्बाधेन ) अच्छी प्रकार रोक लेने के उपाय से ( स्तनयित्नुम् ) मेघ को या गर्जनकारी विद्युत् को प्राप्त कर अथवा ( निर्बाधेन ) निरन्तर ताड़ना या प्रहार से ( स्तनयित्नुम् ) शब्द करने की क्रिया को उत्पन्न कर। ( मास्तिष्केण अशनिम् ) मस्तिष्क--मस्तक में स्थित मज्जा तन्तु के जाल से देह में व्यापक विद्युत् की साधना कर। ( कनीनकाभ्याम् विद्युतम् ) आंख की पुतलियों से विशेष दीप्ति को प्राप्त कर। ( कर्णाभ्यां श्रोत्रम् ) कानों से श्रवण शक्ति को प्राप्त कर। ( श्रोत्राभ्यां कर्णौ ) श्रवण करने वाले भीतरी इन्द्रियों से बाह्य कानों को शक्तियुक्त कर। ( अधरकण्ठेन तेदनीम् ) कण्ठ के नीचे के भाग से 'तेदनी' भोजन की क्रिया को कर। ( शुष्ककण्ठेन अपः ) सूखे कण्ठ से जलों का पान कर। ( मन्याभिः चित्तम् ) मन्या नाम की धमनियों से या मनन करने की विज्ञान क्रियाओं से चित्तम् ) चित्त को तीव्र कर। ( शीर्ष्णा अदितिम् ) शिर से अविनाशिनी अर्थात् न नाश होने वाली अखण्ड ब्रह्मविद्या या प्रज्ञा को प्राप्त कर। ( निर्जर्जल्येन ) सर्वथा जर्जर हुए शिर से (निर्ऋतिम्) मृत्यु को या भूमि को प्राप्त हो। अर्थात् शिर की ज्ञान चेतना के सर्वथा नाश या लोप होजाने पर पुनः देह से मृत्यु द्वारा मिट्टी में मिल जा। ( संक्रोशैः प्राणान् ) लम्बे २ आह्वान अर्थात् दीर्घ शब्दों से प्राणों की शक्ति को बढ़ा ( स्तुपेन रेष्माणं ) हिंसा के प्रयोग से अपने हिंसक को विनाश कर।

'निर्जल्पेन' इतिबम्बईनिर्णयसागरीयः पाठः', 'निर्जर्जल्पेन इत्यजमेर मुद्रितः पाठः।' 'निर्जर्जल्येन' इति स्वाध्यायमण्डलप्रकाशितः शुद्धः पाठः

मशकान् केशैरिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनिसादेन कूर्म्माञ्छफैराक्रमणꣳ स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलान् जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावꣳसाभ्याꣳ रुद्रꣳ रोराभ्याम् ॥ ३ ॥

भा०—राष्ट्र में स्थित (मशकान्) मशक, मच्छर आदि क्षुद्र जन्तुओं की शरीर में स्थित (केशैः) केशों से तुलना करो। (वहेन स्वपसा) उत्तम कर्म करने और भार उठाने में समर्थ स्कन्ध देश से (इन्द्रम्) राष्ट्र के इन्द्र या मुख्य राजा की तुलना करो, (शकुनिसादेन) पक्षी या शक्तिशाली पुरुष के समान पैर नमाकर बैठने की शक्ति से (बृहस्पतिम्) राष्ट्र के बृहस्पति पद, महामात्य की तुलना करो। ( शफैः कूर्मान् ) पैर के खुरों से राष्ट्र के कछुओं या क्रियाशील पुरुषों की तुलना करो।(स्थूराभ्याम् आक्रमणम्) स्थूल चूतड़ों से राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर उसे दवा बैठने की तुलना करो। अर्थात् जैसे मनुष्य चूतड़ों से आसन पर बैठ जाता है और उस जगह को घेर लेता है उसी प्रकार एक राष्ट्र दूसरे पर आक्रमण करके उसे अपने वश कर लेता है, उसे घेर लेता है। ( ऋक्षलाभिः कपिञ्जलान् ) चूतड़ के नीचे की नाड़ियों से राष्ट्र में विद्यमान कपिञ्जल अर्थात् उत्तम २ उपदेश देनेवाले विद्वानों की तुलना करो। ( जङ्घाभ्याम् जवम् ) शरीर के जंघाओं से राष्ट्र के वेग के कार्यों की तुलना करो। ( बाहुभ्याम् अध्वानम् ) शरीर के हाथों से राष्ट्र के मार्ग की तुलना करो। ( जाम्बीलेन अरण्यम् ) गाड़ी के नीचे के भाग से राष्ट्र के जंगल के भाग की तुलना करो। ( अतिरुग्भ्याम् अग्निम् ) अति दीप्तिवाले सुन्दर दोनों जानु भागों से राष्ट्र के 'अग्नि' अग्रणी पद से तुलना करो। ( दोर्भ्यां पूषणं ) बाहुओं से राष्ट्र के पूषा नामक अधिकारी की तुलना करो। ( अंसाभ्याम् अश्विनौ ) कन्धों से 'अश्वी' नामक दो मुख्य अधिकारियों की तुलना करो। ( रोराभ्यां रुद्रम् ) कन्धों की गांठों से रुद्र नामक अधिकारी की तुलना करो।

अथवा—( केशैः मशकान् ) बालों की चौआरियों से जिस प्रकार मच्छरों को दूर किया जाता है उसी प्रकार मच्छर के स्वभाव के दुःखदायी जीवों को ( केशैः=क्लेशैः ) क्लेशदायी साधनों से विनष्ट करो। ( स्वपसा ) उत्तम कर्म और प्रज्ञा से ( इन्द्रम् ) आत्मा और ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को प्राप्त करो। ( वहेन ) उत्तम प्राप्ति के साधन रथादि से ( बृहस्पतिम् ) बृहती वेद वाणी के पालक आचार्य को, या बड़े राष्ट्र के पालक राजा को प्राप्त करो। ( शकुनिसादेन ) पक्षियों को पकड़ने के साधन जाल से ही कूर्म के जाति के जन्तुओं को जल में से जिस प्रकार पकड़ा जाता है उसी प्रकार ( शकुनिसादेन ) पक्षियों के पकड़ने की विधि अर्थात् प्रलोभन दिखा २ कर (कूर्मान्) कर्म करनेवाले योग्य पुरुषों को वश करो। ( शफैः आक्रमणम् ) खुरों से जिस प्रकार वेग से आक्रमण किया जाता है इसी प्रकार वेगवान् साधनों से आक्रमण करो। ( स्थूराभ्यां जंघाभ्य जवम् ) हृष्ट पुष्ट जंघाओं से वेगपूर्वक गमन करो। ( ऋक्षलाभिः कपिञ्जलान् ) 'ऋक्षरा' अर्थात् कपाटिकाओं से जिस प्रकार गौरय्या जैसे छोटे २ पंछियों को पकड़ा जाता है उसी प्रकार 'ऋक्षरा' अर्थात् विद्वानों की वृत्तियों द्वारा उत्तम उपदेश देनेवाले विद्वानों को प्राप्त करो। ( जंघाभ्याम्) अध्वानम् ) जांघों से ही मार्ग को तय करो। ( जाम्बीलेन अरण्यम् ) जम्बीर जाति के कांटेदार वृक्षों से जंगल को पूर्ण करो। ( अतिरुग्भ्याम् पूषणं अग्निम् ) रुचि और पुष्टिकारक अन्न को और दीप्ति से अग्नि को प्राप्त करो। ( दोर्भ्यां अंसाभ्यां ) बाहुओं और कन्धों से ( अश्विनौ ) राजा और प्रजा को प्राप्त करो। अर्थात् राजा अपने बाहुओं के बल से प्रजा को वश करे और प्रजाएं अपने कन्धों से राजा का वहन करें। ( रोराभ्याम् ) श्रवण और उपदेश द्वारा ( रुद्रं ) विद्वान् उपदेशक को प्राप्त करो।

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै

पञ्चमीन्द्राण्यै पुष्ठी मुरुताᳪ सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्युम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादुशी वरुणस्य द्वादुशी युमस्य त्रयोदुशी ॥४॥

स्वराड् धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—राष्ट्र के अंगों की, शरीर के छाती की पसुलियों के अंगों से तुलना करते हैं। (अग्नेः पक्षतिः) अग्नि अर्थात् अग्रणी पुरुष की शरीर में प्रथम पसुली से तुलना करो। (वायोर्निपक्षितिः) वायु की दूसरी पसली से तुलना करो। (इन्द्रस्य तृतीया) इन्द्र विद्युत् की तीसरी पसुली से तुलना करो। (सोमस्य चतुर्थी) सोम, ओषधि आदि की तीसरी पसुली से तुलना करो। (पञ्चमी अदित्यै) अदिति अर्थात् भूमि से पांचवीं पसुली की तुलना करो। (इन्द्राण्यै षष्ठी) इन्द्र राजा की स्त्री, महाराणी, से छठी पसुली की तुलना करो। (मरुतां सप्तमी) वायुएं और वैश्य प्रजाओं या विद्वान् पुरुषों से सातवीं पसली की तुलना करो। (बृहस्पतेः अष्टमी) बृहस्पति, मन्त्री की आठवीं पसुली से तुलना करो। (अर्यम्णः नवमी) अर्यमा, न्यायकारी न्यायाधीश की नवीं पसुली से तुलना करो। (धातुर्दशमी) धाता, राष्ट्रपोषक से दशवीं पसुली की तुलना करो। (इन्द्रस्य एकादशी) इन्द्र, सेनापति की ११ वीं पसुली से तुलना करो। (वरुणस्य द्वादशी) वरुण की १२ वीं पसुली से तुलना करो। (यमस्य त्रयोदशी) नियन्ता ब्रह्मचारी पुरुष 'यम' की तेरहवीं पसुली से तुलना करो। इस प्रकार १३ अधिकारी मानो राष्ट्र की दायीं ओर की छाती के १३ अधिकारी हैं। इसी प्रकार अगले मन्त्र में वाम पार्श्व की १३ पसुलियों से अन्य १३ अंगों का वर्णन करेंगे।

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सुर्पाणाᳪ सप्तमी विष्णोरष्टमी

४—तृतीयायां चतुर्थी० इति काण्व० ।

पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥५॥

स्वराड् विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—(इन्द्राग्न्योः पक्षतिः) बायें पार्श्व की प्रथम पसुली इन्द्र और अग्नि दोनों पदों की समझो। (सरस्वत्यै निपक्षतिः) सरस्वती की दूसरी पसुली से तुलना करो। (मित्रस्य तृतीया) 'मित्र' की तीसरी पसुली से तुलना करो। (अपां चतुर्थी) प्रजाओं की चौथी पसुली से तुलना करो। (निर्ऋत्यै पञ्चमी) 'निर्ऋति' अर्थात् मृत्यु दण्ड की पांचवीं पसुली से तुलना करो। (अग्नीषोमयोः षष्ठी) अग्नि और सोम की छठी पसुली से तुलना करो। (सर्पाणां सप्तमी) सर्प अर्थात् चरों की सातवीं पसुली से तुलना करो। (विष्णोः अष्टमी) व्यापक विष्णु या राजा की आठवीं पसुली से तुलना करो। (त्वष्टुः) त्वष्टा अर्थात् शिल्पशास्त्र वेत्ता की (नवमी) नवमी पसुली से तुलना करो। (इन्द्रस्य एकादशी) इन्द्र की ११ वीं पसुली से तुलना करो। (वरुणस्य द्वादशी) 'वरुण' की १२ वीं पसुली से तुलना करो। (यम्यै त्रयोदशी) यमी, ब्रह्मचारिणी स्त्रियों की १३ वीं पसुली से तुलना करो। इस प्रकार (द्यावापृथिव्योः) द्यौ और पृथिवी के समान एवं राजा और प्रजा दोनों का (दक्षिणं पार्श्वम्) दायां पार्श्व है और (विश्वेषां देवानाम् उत्तरम्) समस्त विद्वान् पुरुषों का बायां पार्श्व है।

अर्थात् राजसभा के दो भाग होगये एक में राजा और प्रजा के अधिकारीगण और दूसरे में समस्त विद्वान् जन।

मरुताᳪ स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ

५—० तृतीया सोमस्य० इति काण्व०।

श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऽऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणꣳ स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—( मरुतां स्कन्धाः ) जैसे शरीर में कन्धे हैं वैसे ही राष्ट्र में 'मरुत्' अर्थात् शत्रु को वायुवेग से झपट कर मारने वाले सैनिकों के (स्कन्धाः) स्कन्धावार या छावनियां ही राष्ट्र के कन्धे हैं। ( विश्वेषां देवानाम् ) समस्त विद्वान् पुरुषों की ( प्रथमा ) सब से प्रथम, सर्वोत्तम ( कीकसा ) उपदेश क्रिया ( प्रथमा कीकसा ) प्रथम 'कीकसा' अर्थात् कूल्हे की पहली मोहरी के समान परम आधार है। (रुद्राणां द्वितीया) रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले दमनकारी पुरुषों की शासन व्यवस्था दूसरी मोहरी के समान है। ( तृतीया आदित्यानां ) आदित्य के समान तेजस्वी अखण्डित शासन कारी अधीशों का शासन तीसरी मोहरी के समान है। ( वायोः पुच्छम् ) 'वायु' न्यायाधीश का पद शरीर में पूंछ के समान राष्ट्र का आश्रय अथवा ( पुच्छम् ) दुष्ट पुरुषों का नाशक है। ( अग्निसोमयोः ) अग्नि, अग्रणी, सेनापति और सोम, ऐश्वर्यवान् राजा इन दोनों तेजस्वी पदाधिकारी राष्ट्र के ( भासदौ ) दो नितम्ब भागों के समान राष्ट्र के आधार हैं। ( क्रुञ्चौ ) हंसों के समान विशेष विवेकी, दो विद्वान् ( श्रोणिभ्याम् ) राष्ट्र के कटीप्रदेशों से तुलना किये जाते हैं। ( इन्द्रा बृहस्पती ) इन्द्र और बृहस्पति, राजा और मन्त्री दोनों ( ऊरुभ्याम् ) राष्ट्र के दो जांघों से तुलना किये जाते हैं। ( अल्गाभ्यां ) अति वेग से गमन करने वाले ऊरुओं के दो सन्धि भागों से ( मित्रावरुणौ ) मित्र और वरुण इन दो पदाधिकारियों की तुलना की जाती है। ( आक्रमणं ) राष्ट्र का विजयार्थ आक्रमण करना ( स्थूराभ्याम् ) स्थूल जांघों के भागों से तुलना किया

६—मित्रावरुणा अल्गा० इति काण्व० ।

जाता है। ( कुष्ठाभ्याम् ) जांघ और चूतड़ दोनों के बीच गहरे स्थानों से ( बलं ) राष्ट्र के सैन्य-बल की तुलना की जाती है।

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत ऽआन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्मान्छकपिण्डैः ॥ ७ ॥

भा०—( वनिष्ठुना पूषणम् ) स्थूल आँतों से पूषा नाम अधिकारी की तुलना करो। ( स्थूलगुदया अन्धाहीन् ) अन्धे साँपों की स्थूल गुदा के भाग से तुलना करे। ( गुदाभिः सर्पान् ) गुदाओं से सांपों की तुलना करो। (आन्त्रैः विह्रुतः) शरीर की आंतों से अन्य कुटिलगामी सर्पों की तुलना करो। ( वस्तिना अपः ) राष्ट्र के भीतर जल, जलाशयों नदियों की वस्ति भाग से तुलना करो। ( वृषणमाण्डाभ्याम् ) वर्षणकारी मेघ की वीर्य सेचन समर्थ अण्डकोशों से तुलना करो। (वाजिनं) वीर्यवान् पुरुष बलवान् को शरीर में पुं-लिङ्ग से तुलना करो। ( रेतसा प्रजां ) राष्ट्र की प्रजा की शरीरस्थ वीर्य से तुलना करो। ( चाषान् पित्तेन ) खाने योग्य पदार्थों की शरीरस्थ पित्त पदार्थ से तुलना करो। ( पायुना प्रदरान् ) शरीरस्थ पायु या गुदा मार्ग से राष्ट्र के भीतर विशेष फटे २ दरारभागों की तुलना करो। (कूश्मान्) 'कूश्म' अर्थात् शासक पदाधिकारी अथवा अग्नि के बल से फेंके जाने वाले गोलों और अग्निमय पदार्थों को ( शकपिण्डैः ) शक्तिमान् पिण्डों के समान शरीर में स्थित विष्ठा के पिण्डों से तुलना करो।

अथवा—( पूषणम् ) पोषक पुरुष को उससे ( वनिष्ठुना ) याचना द्वारा शक्ति और अन्न प्राप्त करो। ( स्थूलगुदया सहितान् अन्धाहीन् गुदया सर्पान् ) मोटी गुदा से युक्त अंधे सापों को और गुदा भाग से साधारण सांपों को पकड़ कर वश करो। ( आन्त्रैः विह्रुतः ) विशेष कुटिल सापों को उनकी आंतों से वश करो। (वस्तिना अपः) वस्ति

क्रिया द्वारा जलों को प्राप्त करो। ( अण्डाभ्याम् वृषणम् ) अण्ड-कोषों से वीर्याधार स्थान को पूर्ण करो। ( शेपेन वाजिनम् ) लिङ्ग-भाग से वीर्यवान् अश्व या वीर्यवान् पुरुष की परीक्षा करो। ( रेतसः ) वीर्य से ( प्रजाम् ) प्रजा को प्राप्त करो। ( पित्तेन ) पित्त के बल से ( चाषान् ) भुक्त पदार्थों को पचाओ। ( प्रदरान् पायुना ) गुदा भाग से पेट के भीतरी भागों को स्वच्छ और बलवान् करो। ( शकापिण्डैः ) शक्ति के संघों से ( कूश्मान् ) शासन बलों को प्राप्त करो।

इन्द्र॑स्य क्रो॒डोऽदि॑त्यै पाज॒स्यं॑ दि॒शां ज॒त्रवोऽदि॑त्यै भ॒सज्जी॒मूता॒न्हृद॒यौप॒शेना॒न्तरि॑क्षं पुरी॒तता॒ नभ॑ उद॒र्ये॒ण चक्रवा॒कौ मत॑स्नाभ्यां॒ दिवं॑ वृ॒क्काभ्यां॑ गि॒रीन् प्ला॒शिभि॒रुप॑लान् प्ली॒ह्ना व॒ल्मीका॑न् क्लो॒मभि॑र्ग्लौ॒भिर्गु॒ल्मा॑न् हि॒राभिः॒ स्रव॑न्तीर्ह्र॒दान् कु॒क्षिभ्या॑ᳪं समु॒द्रमु॒दरे॑ण वैश्वान॒रं भस्म॑ना ॥ ८ ॥

निचृदतिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—( क्रोडः इन्द्रस्य ) शरीर का गोद का भाग इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा का है। शरीर में जिस प्रकार पेट का अगला भाग, नाभि स्थान केन्द्र है उसी प्रकार राष्ट्र के नाभि भाग में राजा का स्थान है। ( अदित्यै पाजस्यं ) अदिति पृथिवी का स्वरूप शरीर में पाद या खड़े होने का स्थान है। ( दिशां जत्रवः ) दिशाओं का स्वरूप शरीर में जत्रु अर्थात् कन्धे और कोखके बीच की पसुलियां है। ( अदित्यै भसत् ) अदिति, द्यौः, आकाश ही राष्ट्र की ( भसत् ) प्रकाशक, तेजस्वरूप होने से वह शरीर में भी (भसत्) लिङ्गभाग, तेजोमय, वीर्यवान् अंग के समान है। (जीमूतान् हृदयौपशम्) राष्ट्र के विजयशील पुरुषों को, या मेघों को शरीर के हृदय भाग में विद्यमान बल, या रुधिर सञ्चारक उपकरणों से तुलना करो। ( पुरीतता अन्तरिक्षम् ) शरीर में स्थित पुरीतत् नामक हृदय की नाड़ी से अन्तरिक्ष

की तुलना करो। ( उदर्येण ) उदर में स्थित यन्त्रों से ( नभः ) आकाश की तुलना करो। ( मतस्नाभ्यां ) हृदय के दोनों पार्श्व पर स्थित फुफ्फुसों को ( चक्रवाकौ ) राष्ट्र में स्थित चकवा चकवी के समान प्रेम से बद्ध स्त्री पुरुषों की तुलना करो। ( दिवं वृक्काभ्याम् ) शरीर में वृक्क अर्थात् गुर्दों से ( दिवम् ) द्यौ या आकाश की तुलना करो। अर्थात् जिस प्रकार आकाश से जल गिरता है उसी प्रकार शरीर के गुर्दों से मूत्र जल स्रवित होता है। ( गिरीन् प्लाशिभिः ) शरीर में स्थित 'प्लाशि' नामक पेट के भीतरी अन्नरस ग्रास करने वाली नाड़ियों से ( गिरीन् ) राष्ट्र में स्थित पर्वतों की तुलना करो। ( उपलान् प्लीह्ना ) शरीर में स्थित प्लीहा, पिलही भाग से मेघों की तुलना करो। ( क्लोमभिः वल्मीकान् ) राष्ट्र में स्थित वल्मीक के बने ढेरों की शरीर के 'क्लोम' नाम कलेजों के खण्डों से तुलना करो। दोनों सच्छिद्र होने से एक जैसे हैं। ( ग्लौभिः गुल्मान् ) राष्ट्र में विद्यमान लता आदि से आवृत प्रदेशों को 'ग्लौ' नामक हृदय की हर्ष, भय या शोक, पीड़ा, आघात संवेदना आदि अनुभव करने वाली विशेष नाड़ियों से तुलना करो। ( हिराभिः स्रवन्तीः ) शरीर में स्थित अन्नरस और रुधिर को वहन करने वाली नाड़ियों से राष्ट्र में स्थित नदियों की तुलना करो। ( ह्रदान् कुक्षिभ्याम् ) राष्ट्र में विद्यमान ताल, जलाशयों की शरीर में स्थित कोखों के बीच रुधिर से भरे स्थानों से तुलना करो। ( समुद्रम् उदरेण ) समुद्र की उदर भाग से तुलना करो। जिस प्रकार समुद्र से जल उठकर समस्त भूमि पर वर्षा होती और बलकारी अन्नरस ओषधियां उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार उदर से अन्नरस उठकर सर्वत्र पहुंचते हैं और केश, लोम, मांस, त्वचा आदि सब पुष्ट होते हैं। ( वैश्वानरं भस्मना ) भस्म के समान निस्सार अथवा भुक्त अन्न को जीर्ण करने वाली कान्तिजनक जाठर अग्नि से वैश्वानर नामक समस्त नरों के हितकारी अग्नि की तुलना करो।

इस मन्त्र की तुलना तैत्तिरीय संहिता के का० ७ । प्र० ५ । २५ से तथा बृहदारण्यक के १ । १ । से करो, उसमें अश्व के अङ्गों से यज्ञ पुरुष, एवं विराट् प्रजापति और राष्ट्र शरीर की तुलना की गई है।

विधृ॑तिं॒ नाभ्या॑ घृ॒तꣳ रसे॑ना॒पो यू॒ष्णा मरी॑चीर्वि॒प्रुड्भि॑र्नीहा॒रमू॒ष्मणा॑ शी॒नं वस॑या प्रु॒ष्वा अश्रु॑भिर्ह्रा॒दुनी॑र्दू॒षीका॑भिर॒स्ना रक्षा॑ꣳसि चि॒त्राण्यङ्गै॒र्नक्ष॑त्राणि रू॒पेण॑ पृथि॒वीं त्व॒चा ।

भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—( विधृतिं ) विशेष रूप से लोकों को धारण पालन करने वाली शक्ति को ( नाभ्या ) शरीर के मध्य में स्थित नाभि के भाग से तुलना करो। ( घृतं रसेन ) घृत के समान तेजोवर्धक पदार्थ की शरीरस्थ बलकारी रस से तुलना करो। ( यूष्णा आपः ) शरीर में पक्काशय में स्थित पक्करस से राष्ट्र में स्थित जनों की या परिपक्व ज्ञान वाले विद्वान् आप्त पुरुषों की तुलना करो। ( मरीचीः विप्रुड्भिः ) सूर्य की किरणों की तुलना विशेष पूर्ण रूप करने वाले शरीर के वसा आदि धातुओं से करो। ( ऊष्मणा नीहारम् ) शरीर में स्थित उष्णता से राष्ट्र के 'नीहार' अर्थात् प्रभात काल में पड़े जलके ओस के फुहार से तुलना करो। अर्थात् जैसे शरीर की गर्मी से सब अंग जीवित जागृत रहते हैं उसी प्रकार ओस से वनस्पति आदि जीवित, वर्धित होते हैं। ( शीनं वसया ) शरीर में स्थित अंग प्रत्यंग या मांस के प्रत्येक परमाणु में बसे जीवन के कारणस्वरूप जीवन शक्ति से शीन अर्थात् वनस्पतियों और प्राणियों की वृद्धि करने वाली शीतलता की तुलना करो। ( प्रुष्वा अश्रुभिः ) शरीर के आँसुओं से वृक्षों को सींचने वाले फुहारों की तुलना करो। ( ह्रादुनीः दूषिकाभिः ) नेत्र में उत्पन्न मल, गीदों से आकाश में उत्पन्न विद्युतों की तुलना करो। ( अस्ना रक्षांसि ) शरीर के रुधिर से रक्षा करने वाले साधनों और रक्षा करने योग्य पदार्थों

की तुलना करो। ( चित्राणि अङ्गैः ) शरीर के भिन्न २ अङ्गों से राष्ट्र के चित्र विचित्र, स्थानों, दृश्यों और देशों की तुलना करो। (नक्षत्राणि रूपेण) नक्षत्रों की तुलना शरीर के बाह्य रूप या रुचिकर तेज से करो। ( पृथिवीं त्वचा ) पृथिवी या राष्ट्र के पृष्ठ की तुलना (त्वचा) शरीर की त्वचा से करो।

जुम्बकाय स्वाहा ॥ ९ ॥

शुगिड्भो मुगिड्भोवा औदन्यऋषिः। जुम्बको वरुणो देवता।

द्विपदा यजुर्गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(जुम्बकाय) सब शत्रुओं के नाश करने में समर्थ, सब से अधिक वेगवान्, बलवान् पुरुष को यह राष्ट्र ( स्वाहा ) उत्तम सत्य प्रतिज्ञा करा कर उसी तरह सौंप दिया जाय जिस प्रकार ( जुम्बकाय ) रोगनाशन में समर्थ या वेगवान् बलकारी, अपान के अधीन यह समस्त शरीर है।

वरुणो वै जुम्बकः। श० १३। ३। ६। ५॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १० ॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव।
यऽईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११ ॥

भा०—व्याख्या ( १०—११ ) को देखो अ० २३। १, ३ ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १२ ॥

कः प्रजापतिर्देवता । स्वराट्पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—( यस्य ) जिसके ( महित्वा ) महान् सामर्थ्य से ( इमे ) ये ( हिमवन्तः ) हिमवाले वर्फों से ढके पर्वत बने हैं और ( यस्य महित्वा ) जिसके महान् सामर्थ्य से (रसया सह) स्नेह गुण या जलों से बद्ध, ठोस हुई

स्थल रूप पृथिवी के साथ ( समुद्रम् ) महान् समुद्र को वर्तमान (आहुः) बतलाते हैं। और ( यस्य ) जिसके महान् सामर्थ्य से बनी ( इमाः ) ये) ( प्रदिशाः ) दिशाएं और उपदिशाएं ( यस्य बाहू ) जिसके बाहुओं के समान फैली हैं, उस ( कस्मै ) सुखस्वरूप, प्रजापालक ( देवाय ) कान्तिमान् तेजस्वी परमेश्वर की ( हविषा ) स्तुति द्वारा हम ( विधेम ) उपासना करें। राजा के पक्ष में—( यस्य महित्वा ) जिसके महान् सामर्थ्य के अधीन ये हिमवाले पर्वत और पृथ्वी सहित समुद्र कहे जायं, दिशा प्रदिशा के वासी जिसके आधीन रहकर ( यस्य बाहू ) जिसके बाहु के समान बल या सहायक हों उस महान् प्रजापालक राजा को हम ( हविषा ) कर और अन्न और ज्ञान द्वारा सेवा करें।

यऽआत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर ( आत्मदाः ) आत्मा, चेतन जीव को प्राणियों के शरीर में प्रदान, स्थापन करता है और जो ( बलदाः ) जीवों को जीते रहने और बाधक कारणों को दूर करने का बल प्रदान करता है अथवा ( यः ) जो ( आत्मदाः ) समस्त विश्व को अपना ऐश्वर्य प्रदान करता है ( यस्य ) जिसके ( प्रशिषं ) उत्कृष्ट शासन को ( विश्वे देवाः ) समस्त सामान्य जन और विद्वान् गण एवं छोटे बड़े सूर्य आदि लोक भी ( उपासते ) शरण के समान प्राप्त करते हैं और उसके शासनकारी स्वरूप की उपासना, या ध्यान करते हैं। ( यस्य ) जिसकी ( छाया ) आश्रय लेना ( अमृतम् ) अमृत स्वरूप, अभय और मृत्यु पर विजय है। और ( यस्य ) जिसके शासन का भङ्ग करना ही ( मृत्युः ) मृत्यु है। ( कस्मै देवाय हविषा विधेम ) उस सुखस्वरूप प्रजापालक सब सुखों के दाता परमेश्वर की हम ज्ञान स्तुति द्वारा उपासना करें।

राजा के पक्ष में—जो ( आत्मदाः ) अपने आपको राष्ट्र में सौंपता और राष्ट्र शरीर में आत्म के समान ऐश्वर्य को भोगता है, ( बलदा ) राष्ट्र में बल प्रदान करता है। समस्त सामान्य जन और ( देवाः ) विजिगीषु राजा भी जिसके शासन का आश्रय लेते हैं जिसकी ( च्छाया ) छत्रछाया अभय, अमृत के समान है ( यस्य ) जिसकी आज्ञा भङ्ग करना, करने वालों के लिये मृत्यु है उसकी हम अन्न आदि द्वारा सेवा करें।

आ नो॑ भ॒द्राः क्रत॑वो यन्तु वि॒श्वतोऽद॑ब्धासो॒ऽअप॑रीतास॒ऽउ॒द्भिदः॑ ।
दे॒वा नो॒ यथा॒ सद॒मिद्वृ॒धेऽअस॒न्नप्रा॑युवो रक्षि॒तारो॑ दि॒वे दि॑वे ॥ १४ ॥

[१४–२३] गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । [१४–१६] जगतीः । निषादः ॥

भा०—( नः ) हमें ( विश्वतः ) सब प्रकार से सब से, (अदब्धासः) अविनाशी, नित्य, ( अपरीतासः ) अविज्ञात, जिनको अभी तक किसी ने न पाया हो ऐसे, (उद्भिदः) नाना फलों को उत्पन्न करने वाले, (भद्राः) सुखकारी, ( क्रतवः ) विज्ञान और बल ( नः ) हमें ( विश्वतः ) सब ओरों से, ( आयन्तु ) प्राप्त हों। ( यथा ) जिससे ( नः रक्षितारः ) हमारे रक्षक ( देवाः ) देव, दिव्य पदार्थ और विद्वान् पुरुष ( अप्रायुवः ) दीर्घायु और अप्रमादी होकर ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( वृधे ) वृद्धि, उन्नति के लिये ( नः सदम् ) हमारी सभा में ( असत् ) विद्यमान हों।

दे॒वानां॑ भ॒द्रा सु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तां दे॒वाना॑ꣳ रा॒तिर॒भि नो॒ निव॑र्त्तताम् ।
दे॒वाना॑ꣳ स॒ख्यमुप॑सेदिमा व॒यं दे॒वा न॒ आयुः॒ प्रति॑रन्तु जी॒वसे॑ ॥ १५ ॥

भा०—( देवानां ) विद्वान्, विद्या के दाता, ज्ञानप्रकाशक पुरुषों की ( भद्रा ) कल्याणकारिणी सुखप्रद ( सुमतिः ) उत्तम ज्ञानमयी, शुभ मति, (नः) हमें ( नि वर्त्तताम् ) सब प्रकार से प्राप्त हो। और (ऋजूयतां) सरल, धर्म के मार्गों से जाने वाले या सब की वृद्धि की कामना करने वाले

(देवानां) दानशील विद्वान् और पुरुषों के (रातिः) ज्ञान और धन के दान (नः) हमें ( अभि निवर्त्तताम् ) सब ओर से प्राप्त हों । ( वयम् ) हम ( देवानां सख्यम् ) विद्वानों के मित्र भाव को ( उप सेदिम ) प्राप्त हों । ( देवाः ) विद्वान् पुरुष ( जीवसे ) दीर्घ जीवन के लिये ( आयुः प्रतिरन्तु ) आयु की वृद्धि करें ।

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् । अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ १६ ॥

भा०—( वयम् ) हम ( भगम् ) ऐश्वर्यवान्, ( मित्रम् ) स्नेही, ( अदितिम् ) अखण्ड ब्रह्मचारी, अखण्ड विद्यावान्, ( दक्षम् ) ज्ञानवान्, बलवान्, कार्यचतुर, ( अस्रिधम् ) बात से न चूकने वाला, सदा सद्भाव युक्त, अहिंसक, ( अर्यमणम् ) न्यायकारी, स्वामी, ( वरुणम् ) सर्वश्रेष्ठ, दुःखों के वारक, ( सोमम् ) सन्मार्ग में प्रेरक, ऐश्वर्यवान्, ( अश्विनौ ) विद्या में निष्णात स्त्री और पुरुष और ( सुभगा ) उत्तम सौभाग्य से युक्त ( सरस्वती ) वेदवाणी, विद्वत्सभा या विदुषी स्त्री इन ( तान् ) नाना विद्वानों को हम ( पूर्वया ) सब से पूर्व विद्यमान अथवा पूर्णभाव से युक्त, अथवा प्रथम जिस रूप में चित्त में आई, ऐसी अकृत्रिम सत्य ( निविदा ) ज्ञानयुक्त वाणी से ( हूमहे ) आदर सत्कार करें । वह ( नः ) हमें ( मयः ) सुख कल्याण ( करत् ) करे ।

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ १७ ॥

भा०—( वातः ) वायु ( नः ) हमें ( तत् ) नाना प्रकार के ( भेषजं ) रोगनाशक, ( मयोभु ) सुखकारी ओषधि ( वातु ) प्राप्त करावे या औषध

रूप होकर बहे। ( माता ) माता और उसके समान सर्वोत्पादक (पृथिवी) पृथिवी और ( तत् ) उसी के समान ( पिता ) पालक पिता और ( द्यौः ) सूर्य, ( तद् ) उसी के समान ( सोमसुतः ) ज्ञान ऐश्वर्य के देने वाले (ग्रावाणः ) उपदेशक विद्वान् पुरुष, ये सब (मयोभुवः) सुख के उत्पादक हों। ( तत् ) और हे ( अश्विना ) विद्या में निष्णात उत्तम पुरुषो! या रथी और सारथी के समान राजा और मन्त्री जनो! ( धिष्ण्या ) प्रज्ञावान् एवं राष्ट्र की व्यवस्था के धारक और मुख्य पदाधिकार पर स्थित होकर (युवम्) तुम दोनों ( नः शृणुतम् ) हम, प्रजा के हितों का श्रवण करो।

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियंजि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम्।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥१८॥

भा०—( तम् ) उस ( जगतः तस्थुषः ) जंगम और स्थावर संसार के ( पतिम् ) पालक, ( धियं जिन्वम् ) अपने कर्म और ज्ञान से सबको तृप्त और प्रसन्न करनेहारे ( ईशानम् ) परमेश्वर और स्वामी को ( वयम् ) हम ( अवसे ) रक्षा के लिये ( हूमहे ) बुलाते हैं, प्रार्थना और स्तुति करते हैं। ( यथा ) जिससे ( पूषा ) सब का पोषक, ( रक्षिता ) रक्षक, ( पायुः ) सबका पालक, ( अदब्धः ) किसी से भी न पराजित होकर ( नः ) हमारे ( वेदसां ) धनैश्वर्यों और ज्ञानों के ( वृधे ) वृद्धि करने के लिये और ( स्वस्तये ) सुख पूर्ण जीवन स्थिति या कल्याण के लिये ( असत् ) हो।

स्व॒स्ति न॒ऽइन्द्रो॑ वृ॒द्धश्र॑वाः स्व॒स्ति नः॑ पू॒षा वि॒श्ववे॑दाः।
स्व॒स्ति न॒स्तार्क्ष्यो॒ऽअरि॑ष्टनेमिः स्व॒स्ति नो॒ बृह॒स्पति॑र्दधातु ॥१९॥

इन्द्रो देवता। स्वराड् बृहती। मध्यमः॥

भा०—( वृद्धश्रवाः ) बहुत अधिक ज्ञान, यश, धन से युक्त आचार्य, राजा और परमेश्वर ( नः ) हमें ( स्वस्ति दधातु ) सुख प्रदान

करे। ( विश्ववेदाः ) समस्त ज्ञान रूप वेदों और समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी, ( पूषा ) सबका पोषक, परमेश्वर ( नः ) हमें ( स्वस्ति दधातु ) कल्याण, सुख प्रदान करे। ( तार्क्ष्यः ) रथ या अश्व जिस प्रकार ( अरिष्टनेमिः ) चक्र धारा के बिना टूटे, सुखपूर्वक मार्ग से इष्ट देश को पहुंचाता है उसी प्रकार ( अरिष्टनेमिः ) अखण्ड, अटूट या नित्य सामर्थ्यवान् ( तार्क्ष्यः ) अश्व के समान बलवान् राजा और व्यापक शक्तिमान् परमेश्वर ( नः स्वस्ति दधातु ) हमें कल्याण सुख प्रदान करे। ( बृहस्पतिः ) महान् राष्ट्र का पालक राजा और बृहती वेदवाणी का पालक विद्वान् और महती शक्ति का स्वामी परमेश्वर ( नः स्वस्ति दधातु ) हमारा कल्याण करे।

**पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥ २० ॥**

मरुतो देवताः। गोतम ऋषिः। निषादः ॥

भा०—( पृषदश्वाः ) हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले, ( पृश्निमातरः ) पृथिवी को अपनी माता मानने वाले ( शुभंयावानः ) शुभ, कल्याण मार्ग पर गमन करने वाले ( विदथेषु जग्मयः ) संग्रामों में जाने वाले, ( मरुतः ) वायुओं के समान तीव्र वेगगामी, (मनवः) मननशील एवं शत्रु स्तम्भन में समर्थ, ( अग्निजिह्वाः ) विद्वान् को प्रमुख प्रवक्ता रखने वाले, ( सूरचक्षसः ) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् को अपने आँखों के समान मार्गदर्शक बनाने वाले ( देवाः ) विजयी पुरुष ( अवसा ) अपने रक्षण और ज्ञान सामर्थ्य सहित ( इह ) इस राष्ट्र में ( नः ) हमें ( आ गमन् ) प्राप्त हों।

वायु पक्ष में—( पृषदश्वाः ) पुष्ट अश्वों के समान तीव्रगामी या महान् आकाश को व्यापने वाले, ( पृश्निमातरः ) मेघों के उत्पादक, अथवा अन्तरिक्ष में उत्पन्न, ( शुभंयावानः ) प्रजा के कल्याण के लिये गमन करने वाले, ( विदथेषु ) आकाश मार्गों में चलने वाले ( अग्निजिह्वाः )

विद्युत्रूप जिह्वा से युक्त अथवा अग्नि की लपटों की ज्वाला से युक्त (सूरचक्षसः) सूर्य के प्रकाश से प्रेरित, (मनवः) जलस्तम्भक, (देवाः) सुखदायक (अवसा) अपने रक्षण, सामर्थ्य और अन्न, जल समृद्धि सहित (इह) यहां (आगमन्) आवें।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २१ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! (कर्णेभिः) कानों से (भद्रं) कल्याणकारी, सुखजनक, हितवचनों का (शृणुयाम) श्रवण करें। हे (यजत्राः) ईश्वरोपासक, एवं सत्संगति योग्य पुरुषो! हम सदा (भद्रम्) सुख कल्याणजनक पदार्थ को ही (अक्षभिः) आंखों से देखा करें। हम (स्थिरैः) स्थिर, दृढ़ (अङ्गैः) अङ्गों से (तुष्टुवांसः) ईश्वर की स्तुति करते हुए अथवा सत्य तत्त्वों का उपदेश करते हुए, (तनूभिः) शरीरों से (देवहितं) विद्वानों द्वारा 'हित' अर्थात् निश्चित की हुई (यत्) जो (आयुः) उचित १०० या १२५ वर्ष आयु की अवधि है उसको (वि अशेमहि) विशेष प्रकार से और विविध उपायों से प्राप्त करें और उसका आनन्द लाभ करें। साग्रं वर्षशतं जीवेत्। इति स्मृतिः। भूयश्च शरदः शतात् इति श्रुतिः॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥२२॥

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! (अन्ति) आप लोगों के समीप (यत्र) जब, जिस काल में, (शतम् शरदः) सौ वर्ष (इत् नु) का ही जीवन कम से कम (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों के (जरसं) वृद्धावस्था को (चक्र) बनावे। अर्थात् विद्वानों के सत्संग से हम १०० वर्षों

२१—"व्यशेम देव" इति काण्व॥

के वृद्ध हों। ( यत्र ) जब ( पुत्रासः ) मनुष्यों को बुढ़ापे के कष्ट से बचाने वाले पुत्र और शिष्य लोग ( पितरः ) बच्चों के बाप और बूढ़ों और कुटुम्बियों के पालक (भवन्ति) होजायं तब तक आप लोग (गन्तोः) गुजरते हुए (नः) (आयुः) आयु को (मध्या) हमारे बीच में (मा रीरिपत) मत विनष्ट करो।

वृद्धावस्था आदि वाह्य कष्टों को देख कर भी विद्वान् लोग जीवन को बीच ही में विनष्ट न किया करें। मनुष्यों में जीवन भोगने दिया करें।

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः।
विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑ति॒र्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥२३॥

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(द्यौः) आकाश और सूर्यादि कारणरूप तेज (अदितिः) कभी खंडित या टुकड़े २ या विनष्ट नहीं होते। ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष भी (अदितिः) अविनाशी, सत् है। (माता) सब जगत् की निर्माण करने वाली प्रकृति भी ( अदितिः ) कभी विनाश को प्राप्त नहीं होती। (सः पिता) वह सबका पालक परमेश्वर और ( सः पुत्रः ) वह पुत्र, पुरुषदेह का पालक जीव, ये भी ( अदितिः ) कभी नाशशील नहीं हैं। ( विश्वेदेवाः अदितिः ) सब दिव्य पदार्थ या मूल तत्व जो अपने गुण इन नाशवान् पदार्थों को प्रदान कर रहे हैं वे भी नाश न होने वाले हैं। ( पञ्चजनाः ) पांच उत्पन्न होने वाले तत्व, भी ( अदितिः ) विनष्ट होने वाले नहीं हैं। ( जातम् अदितिः ) उन पांचों भूतों के सूक्ष्म परमाणुओं से उत्पन्न हुआ यह जगत् भी (अदितिः ) कारण रूप से नाशवान् नहीं है। और ( जनित्वम् ) जो आगे पैदा होता है वह भी सत् कारण रूप से विनष्ट नहीं होता।

राजा के पक्ष में—( द्यौः ) राजसभा, ( अन्तरिक्षम् ) सर्वोपरि रक्षक राजा, ( माता ) राजा को बनाने वाली प्रजा, ( सः पिता ) वह पालक राजा और पुत्र के समान ( सः ) वही राजा पृथिवी का पुत्र है। समस्त

विद्वान् लोग और (पञ्चजनाः) पांचों जन चार वर्ण और वर्णबाह्य, पांचवां (जातम्) नव उत्पन्न सन्तान और (जनित्वं) अगली उत्पन्न होने वाली सन्तान ये सब (अदितिः) पृथिवी या अखण्ड राष्ट्र का रूप है और ये सब (अदितिः) अदीन, दीनता रहित या प्रवाह से नाश न होने वाली हों।

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुत॒: परि॑ख्यन्।
यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्ते॑: प्र व॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॑णि ॥ २४ ॥

[ २४-२९ ] दीर्घतमा ऋषिः। त्रिष्टुप् धैवतः। मित्रादयो देवताः ॥

भा०—(मित्रः) सबका स्नेही, प्राण के समान प्रिय मित्र, (वरुणः) दुष्टों का वारक, उदान के समान श्रेष्ठ, (अर्यमा) न्यायाधीश के समान नियन्ता (आयुः) दीर्घ जीवन, अन्न (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सेनापति, राजा के समान आत्मा, (ऋभुक्षाः) सत्य व्यवहार से उज्ज्वल पुरुषों में निवास करने वाले बड़े पुरुष और (मरुतः) विद्वान् पुरुष (नः) हमें (मा परि ख्यन्) त्याग न करें, हमारी निन्दा और उपेक्षा न करें। (यत्) क्योंकि (देव-जातस्य) विद्वान् पुरुषों द्वारा उत्पन्न और दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (वाजिनः) वेग और ऐश्वर्यवान् (सप्तेः) सर्पणशील अश्व के समान बलवान् एवं समवाय बनाकर कार्य करने वाले राजा के (वीर्याणि) बल पराक्रम और पदाधिकारों का ही हम (प्र वक्ष्यामः) विशेष रूप से वर्णन करते हैं।

यन्नि॒र्णिजा॒ रेक्ण॑सा॒ प्रावृ॑तस्य रा॒तिं गृ॑भी॒तां मु॑ख॒तो नय॑न्ति।
सुप्रा॑ङ॒जो मेम्य॑द्वि॒श्वरू॑प इन्द्रापू॒ष्णोः प्रि॒यमप्ये॑ति॒ पाथ॑: ॥ २५ ॥

भा०—(यत्) जब (निर्णिजा) विशेष राज्य अभिषेक और (धनेन) ऐश्वर्य से (प्रावृतस्य) घिरे हुए सुशोभित राजा के (रातिम्) प्रदान की हुई और पुनः (गृभीताम्) स्वीकार की गई वृत्ति को सब अधीनस्थ लोग (मुखतः) मुख्य रूप से (नयन्ति) प्राप्त करते हैं। तभी (सुप्राङ्) उत्तम रीति से आगे बढ़ाने वाला, उन्नतिशील (विश्वरूपः)

सब अधिकारियों के स्वरूपों को धारण करने वाला ( अजः ) सब का प्रेरक राजा, ( मेम्यत् ) सब को आज्ञा करता हुआ ( इन्द्रपूष्णोः ) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा और सर्व पोषक पूषा, दोनों पक्षों के ( प्रियम् ) मनोहर ( पाथः ) पालन करने हारे सामर्थ्य और भोग्य ऐश्वर्य को ( अप्येति ) प्राप्त करता है ।

अर्थात् जब राजा राज्याभिषेक और राष्ट्र के ऐश्वर्य को प्राप्त करले और अधीन नियुक्त पुरुष उसकी दी वृत्ति और पुरस्कार का मुख्य रूप से ग्रहण करें उसी को सर्वस्व मानें, वे और सब पेशे छोड़ दें और वे सबको आज्ञा में चलावें, तभी यह राजा, प्रजा पोषक के प्रिय ऐश्वर्य पद को प्राप्त करता है । वह दान देने से 'इन्द्र' है, वृत्ति द्वारा पोषक होने से पूषा है ।

परमेश्वर के पक्ष में—( यत् ) क्योंकि ( निर्णिजा ) शुद्ध स्वरूप से और ( रेक्णसा ) ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर के दिये दान और प्राप्त वृत्ति को ही लोग मुख्य मानते हैं । वह मुख से पूर्व दिशा में प्राप्त सूर्य के समान उज्ज्वल ( विश्वरूपः ) समस्त विश्वका प्रकाशक, वेदवाणी द्वारा उपदेश करता सब लोकों को अपनी आज्ञा में चलाता है । वह इन्द्र और पूषा के परम ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ।

विद्वान के पक्ष में—( निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य ) जो विद्वान्गण शुद्ध, निष्पाप, धन से युक्त पुरुष के दान को प्राप्त कर मुख से खाते हैं, वे और विश्व के पदार्थों को निरूपण करने वाला विद्वान् ऐश्वर्यवान् और पोषक दोनों के प्रिय अन्न भोग्य को प्राप्त करता है ।

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति ॥२६॥

निचृत् जगती । निषादः ॥

भा०—( यत् ) जब ( विश्वदेव्यः ) समस्त विजयी पुरुषों से, सबसे श्रेष्ठ, एवं सब विद्वानों का हितकारी ( एषः ) यह ( छागः ) शत्रुओं का छेदन भेदन करने हारा अथवा राष्ट्र को भिन्न २ विभागों में बांटने वाला पुरुष ( वाजिना ) ऐश्वर्य युक्त ( अश्वेन ) राष्ट्र के द्वारा ( पुरः ) सबके आगे, सबसे प्रथम, ( पूष्णः ) पूषा, सर्व राष्ट्र पोषक के पद को ( भागः ) सेवन करने वाला ( नीयते ) प्राप्त किया जाता है। तब ( त्वष्टा इत् ) त्वष्टा, शत्रुनाशक सेनापति ही ( अर्वता ) व्यापक राष्ट्र के सहित विद्यमान, ( अभि प्रियम् ) सबको प्रिय लगने वाले ( पुरोडाशम् ) सबसे प्रथम देने योग्य पदाधिकार को ( सौश्रवसाय ) उत्तम कीर्त्ति के लिये ( जिन्वति ) पूर्ण करता, या राजा को प्रदान करता है।

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥२७॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( यत् ) जब ( हविष्यम् ) अन्न के समान श्रेष्ठ हवि के रूप में स्वीकार करने योग्य ( देवयानं ) देवों, विद्वानों को प्राप्त करने योग्य ( अश्वं ) अश्व के समान बलवान्, राष्ट्र के भोक्ता राष्ट्रपति को ( मानुषाः ) मनुष्य लोग ( ऋतुशः ) ऋतु, ऋतु में भिन्न २ अवसरों में ( त्रिः ) वर्ष में तीन वार ( परि नयन्ति ) सर्वत्र लेजाते हैं उसको भ्रमण कराते हैं तब ( अत्र ) इस राष्ट्र में ( पूष्णः ) पोषक, पृथ्वी का ( प्रथमः भागः ) सबसे अधिक श्रेष्ठ, सेवनीय ( अजः ) सबका प्रेरक विद्वान् ( देवेभ्यः ) समस्त विद्वानों के हित के लिये ( यज्ञं ) प्रजापालक, सबके संयोजक राजा को ( प्रतिवेदयन् ) विज्ञापित करता हुआ ( एति ) प्राप्त होता है।

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ २८ ॥

निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता अग्नीध्र, ग्रावस्तुत्, प्रशास्ता, और ब्रह्मा ये ऋत्विग् होते हैं उसी प्रकार राष्ट्ररूप यज्ञ में ( होता ) अधिकारों का प्रदाता, ( अध्वर्युः ) मुख्य महामात्य या पुरोहित ( आवयाः ) आहुति प्रदान करने वाले के समान, सबको परस्पर सुसंगत करने वाला, या अधनों को वेतन देने वाला, (अग्निमिन्धः) अग्नि को प्रदीप्त करने वाले अग्नीध्र के समान राजा को विशेष ज्ञान और मान से उज्वल करने वाला, (ग्रावग्राभः) सोमयज्ञ में प्रस्तरों के ग्रहण करने वाले के समान राष्ट्र में विद्वानों का आदर सत्कार से ग्रहण करने वाला या शस्त्रास्त्र धर, ( शंस्ता ) राजा का प्रशंसक अथवा उत्तम उपदेष्टा, ( सुविप्रः ) यज्ञ के ब्रह्मा के समान उत्तम मेधावी, ज्ञानी विद्वान् सभापति पद पर स्थित हो । ( तेन ) उस ( स्वरङ्कृतेन ) उत्तम रीति से सुसज्जित सुशोभित ( स्विष्टेन ) उत्तम रीति से सुसञ्चालित (यज्ञेन) सुव्यवस्थित राष्ट्र से ( वक्षणाः ) जलों से नदियों के समान अपनी अभिलाषाओं या प्रजाओं को ( आ पृणध्वम् ) पूर्ण करो ।

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनꣳ सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ २६ ॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ये)जो पुरुष (यूपव्रस्काः) यज्ञ के यूप को गढ़ने वालों के समान शत्रुओं के विनाश करने वाले राजा या उसके बल अधिकार को बनाते हैं— ( उत ) और ( ये ) जो ( यूपवाहाः ) उस शत्रुनाशक, सूर्य समान तेजस्वी अधिकारी को अपने ऊपर धारण करते हैं। जो (ये) और (अश्वयूपाय) अश्व के लिये खड़े यशस्तम्भ के समान राष्ट्र संचालक राजा के लिये ( चषालम् ) यूप के छल्ले या अग्र भाग के समान राजा के अग्रासन का ( तक्षति ) निर्माण करते हैं और ( ये च ) जो ( अर्वते ) ज्ञानवान् राजा के लिये

( पचतं ) पाक योग्य नाना भोग्य ऐश्वर्य सामग्री को ( संभरन्ति ) संग्रह करते हैं, लाते हैं ( तेषाम् ) उन सबका ( अभिगूर्त्तिः ) उद्यम ( नः ) हमें ( इन्वतु ) प्राप्त हो ।

उप॒ प्रागा॑त्सु॒मन्मे॑ऽधायि॒ मन्म॑ दे॒वाना॒माशा॒ उप॑ वी॒तपृ॑ष्ठः ।
अन्वे॑नं॒ विप्रा॒ ऋष॑यो मदन्ति दे॒वानां॑ पु॒ष्टे च॑कृमा सु॒बन्धु॑म् ॥३०॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जो पुरुष ( मे ) मुझ प्रजाजन के हित के लिये ( वीतपृष्ठः ) विशाल हृष्ट पुष्ट पीठ वाला, सबको आश्रय देने में समर्थ, अश्व के समान बलवान् ( सुमत् ) स्वयं ( उप प्र अगात् ) मुझे अनायास ही प्राप्त है और ( येन ) जो ( देवानाम् ) विद्वानों और शासकों के मन को अभिप्रेत ऐश्वर्य को और ( आशाः ) समस्त कामनाओं और दिशावासी प्रजाजनों को भी ( उप अधायि ) धारण पोषण करता है ( एनम् अनु ) उसको देखकर ( विप्राः ) विद्वान्, मेधावी ( ऋषयः ) ज्ञानी, मन्त्रद्रष्टा, ऋषिजन भी ( मदन्ति ) प्रसन्न होते हैं । और ( पुष्टे ) हृष्ट पुष्ट, धन से समृद्ध प्रजाजन के बीच उसको ही हम ( देवानाम् ) विद्वानों और विजयशील सैनिकों के ( सुबन्धुम् ) उत्तम बन्धु और उत्तम प्रबन्धकर्त्ता ( चकृम ) नियत करें ।

यद्वा॒जिनो॒ दाम॑ स॒न्दान॒मर्व॑तो॒ या शी॑र्ष॒ण्या॒ रश॒ना रज्जु॑रस्य ।
यद्वा॑ घास्य॒ प्रभृ॑तमा॒स्ये॒ तृण॒ꣳ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥३१॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( यत् ) जिस प्रकार ( वाजिनः ) वेगवान् अश्व के ( दाम ) दमन करने वाला बन्धन, नियन्त्रण उसके पेट पर, ( संदानम् ) और जैसा नियन्त्रण पैरों आदिक में रहता है । और ( अर्वतः ) शीघ्र वेग से जाने वाले अश्व के ( या ) जो ( शीर्षण्या ) शिर पर बन्धी ( रज्जुः )

रस्सी होती है उसी प्रकार ( वाजिनः ) ऐश्वर्यवान् पुरुष पर भी ( दाम ) दमनकारी नियन्त्रण और ( संदानम् ) उत्तम दान करने के नियम या दण्ड भय अथवा ( दाम संदानम् ) सुन्दर, प्रभावशाली शिरोवेष्टन या मुकुट आदि होता है ( अर्वतः ) ज्ञानी पुरुष को ( अस्य ) इसके ( शीर्षण्या ) शिर की या मुख्य अङ्ग या पद के लिये शोभा देने वाली ( रशना ) राष्ट्र में व्यापक ( रज्जुः ) सदा सर्जनकारिणी, व्यवस्थानिर्मात्री शक्ति या अधिकार प्राप्त हों। ( यत् ) और जिस प्रकार ( अस्य आस्ये तृणं प्रभृतम् ) इस पशु के मुख में तृण, घास आदि दिया जाता है उसी प्रकार ( अस्य आस्ये ) इसके मुख्य अधिकार के स्थान में ( तृणम् ) शत्रु और संकटों के काटने वाले बल, ( प्रभृतम् ) भली प्रकार भृति या वेतन पर नियत किया जाय, ( ता ते सर्वा ) वे तेरे सब पदार्थ ( देवेषु अपि ) विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर ( अस्तु ) हों।

रशना:—अशेरशच् । अश्नुते व्याप्नोतीति रशना । उ० २ । ७५ ।

रज्जुः—सृजेरसुम् च । उ० २ । १५ ॥ सृज्यते सृजति वा इति रज्जुः । तृणम्-तृहेः क्नो हलोपश्च । उ० ५ । ८ ॥ तृह्यते हन्यते तृन्धि हिनस्ति वा तत् तृणम् ।

अर्थात् ऐश्वर्य राष्ट्र और राष्ट्रपति पर भी उत्तम व्यवस्था और नियन्त्रण हों, उसके रचना और निर्माण की शक्ति विद्वान् के हाथ में हो, उसका नाशकारी मुख्य बल वेतनबद्ध हो वे सब विद्वानों के आश्रय पर हों।

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३२ ॥

निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( क्रविषः ) विजय करने योग्य ( अश्वस्य ) अश्व के समान बड़े बलवान् राष्ट्र का ( यत् ) जो अंश ( मक्षिका ) शिक्षा या उपदेश या रोष का कार्य करने वाली सभा या सेना ( आश ) खाजाती है ( यत् वा ) और जो अंश ( स्वरौ ) अति तापदायक, शत्रुसन्तापक ( स्वधितौ ) वज्र आदि शस्त्रास्त्रों में ( रिप्तम् अस्ति ) लग जाता है और ( यत् ) जो भाग ( शमितुः ) शान्ति करने वाले मध्यस्थ पुरुष या दुष्टों के उपद्रव शान्त करने वाले के ( हस्तयोः ) हाथों में या हनन करने के साधनों और उपायों में है। और ( यत् नखेषु ) जो भाग राष्ट्र के प्रबन्धकर्त्ताओं और प्रबन्ध के कार्यों में राष्ट्र का है ( सर्वा ता अपि ) ये सब भी कार्य ( देवेषु ) विद्वानों के अधीन हों।

अर्थात् सेना, शस्त्रागार, शान्ति, सन्धि, विग्रह आदि, राज्य प्रबन्ध आदि पर होने वाले सब राष्ट्र के व्यय विद्वानों के अधीन हों।

"मक्षिका"—मश शब्दे रोषकरणे च। भ्वादिः। हनिमशिभ्यां सिकन्। उणा० ४। १५४॥ मशति शब्दयति रोषं करोति वा सा मक्षिका।

'क्रविषः'॥ कृवि हिंसाकरणयोश्च॥ अत्र करणमर्थः॥ 'स्वरु' स्व,, शब्दोपतापयोः। अत्र उपतापार्थः। स्वधितिर्वज्रः। 'नखेषु' नहेः हलोपश्चेतिखः। उ० ५। २३॥ नह्यति बध्नाति इति नखः॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु॥३३॥

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( यद् ) जो भी ( ऊवध्यम् ) उच्छेद करने योग्य या मलिन कार्य करने वाला राष्ट्र का भाग ( उदरस्य ) पेट से अधकचे अजीर्ण अन्न के समान उपद्रवियों के उच्छेदक विभाग से ( अप वाति ) निकल भागे और ( यः ) जो ( आमस्य ) रोगकारी, हिंसक जन्तुओं का ( गन्धः )

हिंसा का व्यापार ( अस्ति ) है । ( शमितारः ) उपद्रवों और संतापक द्रवों और मानुषी विपत्तियों के शान्त करने वाले विद्वान् ( सुकृता ) उत्तम उपाय द्वारा ( तत् ) उसका ( कृण्वन्तु ) प्रतिकार करें । और ( मेधं ) हिंसा योग्य दुष्टजन को अन्न के समान ( शृतपाकं ) खूब परि संताप से ( पचन्तु ) संतप्त करें ।

उदि दृणातेरलचौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च । 'उदरम्' । उणा० ५ । ७६ ॥

अम रोगे । आमः । गन्ध चूर्णने । गन्धः । मेधः । मेधृ हिंसानादरयोः ।

**यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।**
**मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥३४॥**

भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! ( शूलम् ) पीड़ाजनक शूल, हल आदि शस्त्रों से ( अभिनिहतस्य ) मारे या खोदे गये और ( अग्निना ) अग्नि के समान संतापक सूर्य या राजपुरुष द्वारा ( पच्यमानात् ) परिपक्क किये हुए ( गात्रात् ) शरीर रूप खेतों आदि से ( यत् ) जो भाग भी ( अवधावति ) अलग प्राप्त हो ( तत् ) वह भाग ( भूम्याम् ) भूमि पर ( मा ) न ( आशिश्रिषन् ) पड़ा रहे, ( मा तृणेषु ) वह अंश तिनकों में न मिल जाय प्रत्युत ( तत् ) वह ( उशद्भ्यः ) चाहने वाले ( देवेभ्यः ) देवों, विद्वान् पुरुषों को ( रातम् अस्तु ) दान कर दिया जाय ।

हल आदि चला कर सूर्य द्वारा पके हुए अन्न और ओषधि आदि जो पदार्थ राष्ट्र के शरीर से उत्पन्न हों वे मट्टी में और घासफूस में न मिल जायं प्रत्यतु वे विद्वानों को प्राप्त हों । वे उससे प्रजा का पालन और रोग नाश करें ।

ब्रह्मचर्य पक्ष में—हे ब्रह्मचारि ! ( अग्निना पच्यमानात् ) ब्रह्मरूप अग्नि या तप से संतप्त ( शूलम् अभि निहतस्य ) संतापकारी कामदेव से

पीड़ित (गात्रात्) गात्र से जो वीर्य नीचे के अंगों में स्रवित होता है वह वीर्य भूमि स्त्री योनि में भी न जावे और तिनकों, या तुच्छ व्यसनों में भी न नष्ट हो बल्कि ( उशद्भ्यः ) वह सुरक्षित वीर्य या बलको चाहने वाले अंगों की पुष्टि में लगाया जावे ।

**ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।**
**ये चार्वतो माꣳसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥३५॥**

स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—( ये ) जो विद्वान् लोग ( वाजिनम् ) अन्नादि समृद्धि से युक्त या संग्रामादि समृद्धि से युक्त राष्ट्र को खूब (पक्वं) परिपक्व, पके खेतों वाला और दृढ ( परि पश्यन्ति ) देख लेते हैं और ( ये ) जो ( ईम् ) इसके प्रति ( आहुः ) कहा करते हैं कि वह (सुरभिः) बड़े उत्तम पक्व धान के गन्ध से युक्त है ( निः हर ) इसे अच्छी प्रकार काट लाओ और ( ये च ) जो इस ( अर्वतः ) भोग योग्य राष्ट्र के ( मांसभिक्षाम् ) मन के लुभाने वाले अन्न आदि पदार्थों की भिक्षा या याचना का ( उपासते ) आश्रय करते हैं (तेषाम् ) उनका ( अभिगूर्तिः ) उद्यम ( नः ) हमें सफलता पूर्वक प्राप्त हो ।

पूर्ण ब्रह्मचारी के पक्ष में—जो विद्वान् ( वाजिनं ) ज्ञानवान् बलवान् ब्रह्मचारी को ( परिपश्यन्ति ) देखते हैं और ( ये ) जो ( ईम् ) इसको लक्ष्य करके ( पक्वं ) उसे परिपक्व ( आहुः ) कहते हैं और ( सुरभिः ) उत्तम वीर्य पालक होकर उत्तम आचार के सुगन्धि से युक्त पुरुष ( निर्हर ) हम से भिक्षा ले ( इति ) इस भाव से ( ये च ) जो गृहस्थ जन ( अर्वतः ) ज्ञानवान् पुरुष के ( मांसभिक्षाम् ) मनको प्रिय लगने वाले पदार्थों की भिक्षा की ( उपासते ) प्रतीक्षा करते हैं उन हितैषी पुरुषों का ( अभिगूर्त्तिः ) उद्यम, प्रयत्न ( नः ) हमें ( इन्वतु ) सफल होकर प्राप्त हो ।

शूरवीर पुरुष के पक्ष में—( ये ) जो ( वाजिनं ) बलवान् पुरुष को देखते हैं, ( ये ईम् पक्वम् आहुः ) जो उसको परिपक्व, शस्त्रकौशल में सुअभ्यस्त बतलाते हैं ( सुरभिः निर्हर इति ये च ) सुरक्षित होकर परराष्ट्र की लक्ष्मी को लेआ इस प्रकार जो ( अर्वतः मांस भिक्षाम् उपासते ) बलवान् पुरुष के शरीर की याचना की प्रतीक्षा करते हैं (तेषां) उनका ( अभिगूर्त्तिः ) राष्ट्र के प्रति क्रिया श्रम (नः) हमें प्राप्त हो। राजा राष्ट्र में बलवान् पुरुषों को परिपक्व करे और फिर उनके शरीरों को युद्धादि कार्यों के लिये लगावे।

**यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि। ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥ ३६ ॥**

भुरिक् पंक्तिः । पञ्चमः ।।

**भा०**—( यत् ) जो ( मांसपचन्याः ) मनको अच्छे लगने वाले नाना फलों को परिपाक करने वाली ( उखायाः ) उत्तम फल देने वाली भूमि का ( नीक्षणं ) निरंतर देखभाल करना, या दर्शन करने योग्य दृश्य और (या) जो ( पात्राणि ) पालन करने वाले (यूष्णः) रस या जल के ( आसेचनानि ) सेचन करने के साधन कूप तड़ाग आदि स्थान हैं और जो ( चरूणाम् ) विचरने वाले पथिकों के निमित्त (ऊष्मण्या) ग्रीष्मकाल में सुखकारी ( अपिधाना ) के, आच्छादित स्थान, विश्राम गृह हैं और जो ( अङ्काः ) स्थान २ पर अंकित मार्ग और ( सूनाः ) स्नान करने के तीर्थ स्थान हैं वे ही सब सुखद पदार्थ (अश्वम्) अश्व अर्थात् विशाल राष्ट्र को (परि भूषन्ति) सर्वत्र सुभूषित करते हैं।

उवट आदि की दृष्टि में--मांस की हांडी को खोल २ कर झांकना, मांसरस के पात्र, उनके गरम ढक्कन और मांस काटने के छावड़े ये अश्व को सुभूषित करते हैं। अश्व को इन आभूषणों से सजाया जाय तो बस समस्त संसार के अश्व विनष्ट हो जायं।

अध्यात्म में—( मांस्पचन्याः उखायाः ) मांस आदि देहगत धातुओं को अन्न रस से परिपक्व या दृढ़ करने वाले देह रूप इस पात्र का ( यत् ) जो ( निईक्षणं ) स्वयं ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्यपदार्थों का देखना, और ( या ) जो ( पात्राणि ) कोष्ठ भाग ( Sells ) ( यूष्णः ) अन्न रस को सर्वत्र ( आसेचनानि ) सेचन करते हैं और ( चरूणाम् ) अंगों के ( ऊष्मण्या ) देह के ताप की रक्षा करने वाली ( अपिधाना ) त्वचाएं हैं और जो ( अंकाः ) वाह्य पदार्थों का भीतर ज्ञान करना और ( सूनाः ) भीतरी मन के विचारों को बाहर प्रकट करना है ये सब अद्भुत बातें ( अश्वम् परिभूषन्ति ) भोक्ता आत्मा के शोभाजनक हैं ।

**मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभिविक्त जघ्रिः ।**
**इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रतिगृभ्णन्त्यश्वम् ॥ ३७ ॥**

स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! एवं राष्ट्रपते ! ( धूमगन्धिः ) धूएं के गन्ध वाला (अग्निः) आग जिस प्रकार मनुष्य को छींक और आंसू ला देता है उसी प्रकार ( धूमगन्धिः ) परराष्ट्र को कम्पा देने वाले बल से प्रजा को पीड़ित कर देने वाला ( अग्निः ) कोई अग्रणी, अग्नि के समान सन्तापक पुरुष अथवा विषैली धूम से प्रजा को पीड़ित करने वाला अग्नि ( त्वा ) तुझको ( मा ध्वनयीत् ) पीड़ित कर न रुलावे । अग्निमयी हांडी, कुप्पा या बॉम्ब जिस प्रकार चटखकर २ फूट जाता है और पास बैठने वाले के लिये भय का कारण होता है उसी प्रकार ( भ्राजन्ती ) तेज और क्रोध से अति प्रदीप्त होती हुई ( उखा ) पृथिवी, ( जघ्रिः ) प्रचण्ड व्याधि के समान तुझे सूंघती हुई तेरा पीछा करती हुई, तुझे (मा अभिविक्त) उद्विग्न न करे । (इष्टं) सब को प्रिय, (वीतम्) कान्तिमान् तेजस्वी, ( अभिगूर्त्तं ) परिश्रमी, ( वषट्कृतं ) दानशील, ( तं अश्वम् ) उस नरश्रेष्ठ शीघ्रकारी चतुर पुरुष को ( देवासः ) विद्वान् पुरुष ( प्रतिगृभ्णन्ति ) अपना नेता स्वीकार करते हैं ।

'आजन्ती उखा' कदाचित् विस्फोट पदार्थों से फूटने वाली विशेष घातक कृत्या प्रतीत होती है जिसका वर्णन अथर्ववेद का० ११ सू० १ में स्पष्ट है। इसी प्रकार 'धूमगन्धी अग्नि' धूममात्र से मार देने वाली आग विषैली गैस प्रतीत होती है।

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३८॥

विराट् पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—( अर्वतः ) अश्व का जिस प्रकार कदम बढ़ाना, बैठना, लेटना पैरों का बान्धना, जल पीना, घास खाना आदि सब विवेक पूर्वक हो उसी प्रकार ( अर्वतः ) व्यापक राष्ट्र का भी ( निक्रमणम् ) सुरक्षित रूप से निकलने के मार्ग, ( निषदनम् ) सुरक्षित रूप से गुप्त बैठने के स्थान, ( यत् च पड्वीशम् ) और जो पदाधिकारों पर योग्य पुरुषों का नियुक्त करने का कार्य, ( विवर्त्तनम् ) विविध प्रकार के राजकीय कारबार के स्थान और राष्ट्रवासी जन और अधिकारी राष्ट्रपति आदि ( यत् च पपौ ) जो पदार्थ पान करते और ( यत् च घासिं जघान ) जो खाने योग्य पदार्थ खाते हैं ( ते ) तुझ राष्ट्र और राष्ट्रवासी जन और राष्ट्रपति राजा के ( सर्वा ता ) वे सब कार्य भी ( देवेषु ) देव अर्थात् विद्वानों के अधीन (अस्तु) हों।

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै।
सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ ३६ ॥

विराट् पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—( यत् ) जो ( अश्वाय ) अश्व के समान वेगवान्, तीव्र पराक्रमी राष्ट्रपति के आदर के लिये ( वासः ) वस्त्र ( उपस्तृणन्ति ) बिछाये जाते हैं और ( यत् ) जो ( अधिवासं ) ऊपर पहनने का लम्बा गौन दिया जाता है और ( या ) जो ( अस्मै ) उसको ( हिरण्यानि ) सुवर्ण के

आभूषण पहनाये जाते हैं और ( अर्वन्त ) उस व्यापक, महान् अधिकारवान् पुरुष को ( संदानं ) शिर का विशेष मुकुट दिया जाता है और जो ( पड्बीशं ) पैर का पीढ़ा दिया जाता है वह सब ( प्रिया ) प्रिय, मनोहर पदार्थ उसको ( देवेषु ) विद्वान् पुरुषों के अधीन ( आयामयन्ति ) सर्वथा नियमानुकूल रूप से सुरक्षित रखते हैं।

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥४०॥

भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे राजन्! ( महसा ) अपने तेज से ( शूकृतस्य ) शीघ्रता से कार्य करने वाले, अविवेक से कुपथ पर पैर रखने वाले ( ते ) तेरे ( सादे ) अवसाद, अर्थात् कार्यभ्रष्ट हो जाने पर यदि कोई पुरुष, ( पार्ष्ण्या ) प्रमादयुक्त घोड़े को अश्वारोही जिस प्रकार 'शू' करके एडी या चाबुक से चला देता है उसी प्रकार कोई ( पार्ष्ण्या ) तेरे पीठ पीछे से आक्रमण करने वाली सेना द्वारा और ( कशया ) अपनी शासन शक्ति से तुझे ( तुतोद ) व्यथा या पीड़ा पहुंचावे तो ( ते ) तेरी ( ता ) उन ( सर्वा ) सब त्रुटियों को मैं पुरोहित ( हविषः स्रुचा इव ) स्रुवों से जैसे हवि, चरु दिया जाता है उसी प्रकार उनको ( ब्रह्मणा सूदयामि ) वेद ज्ञान द्वारा अथवा महान् साम्राज्य शक्ति से ( सूदयामि ) दूर करूं नष्ट करूं कश गतिशासनयोः। भ्वादिः ॥

चतुस्त्रिꣳशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोतु परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥ ४१ ॥

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—( स्वधितिः ) स्वयं समस्त राष्ट्र को धारण करने में समर्थ वीर्यवान् पुरुष तथा वज्र, दण्ड, शासन चक्र, ( वाजिनः ) ऐश्वर्यवान्, ( देवबन्धोः ) विद्वानों के बन्धु ( अश्वस्य ) व्यापक राष्ट्र के ( चतुस्त्रिंशत् ) इन ३४ (वंक्रीः) अंगों को (समेति) भली प्रकार प्राप्त करता है, अपने वश करलेता है। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग राष्ट्र के (गात्रा) अंगों को ( वयुना ) ज्ञान द्वारा ( अच्छिद्रा ) त्रुटि रहित, निर्दोष ( कृणोतु ) करें और उसके ( परुः परुः ) प्रत्येक पोरु २, अंग २ अर्थात् प्रत्येक विभाग को ( अनुघुष्य ) यथा क्रम आघोषित कर २ के प्रजाजन को ( वि शस्त ) विविध प्रकार से बतला ।

स्पष्टीकरण देखो शतपथ में पारिप्लव विधि ।

एकुस्त्वष्टुरश्वस्या विशुस्ता द्वा युन्तारा भवतुस्तथुऽऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता ता पिण्डानां प्रजुहोम्युग्नौ ॥४२॥

स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—संवत्सर रूप प्रजापति की राष्ट्रमय प्रजापति से तुलना करते हैं । ( त्वष्टुः ) सूर्य के ( अश्वस्य ) आशुगामी काल का ( एकः ऋतुः ) एक पूर्ण वत्सर (विशस्ता) उसको विभाग करता है और इसके (द्वा यन्तारा) दो अयन नियन्ता ( भवतः ) होते हैं । ( तथा ) उसी प्रकार ( ऋतुः ) एक २ ऋतु संवत्सर को विभक्त करता है और उस ऋतु के भी ( द्वा यन्तारा) दो दो मास नियम से (भवतः) होते हैं । इसी प्रकार हे प्रजापते! प्रजापालक राष्ट्र ! ( ते ) तेरे ( गात्राणाम् ) अङ्गों में से ( या ) जिन अङ्गों को मैं विद्वान् पुरुष (ऋतुथा) संवत्सर के ऋतु के समान नियामक, बली पुरुष के सामर्थ्य के अनुसार ( कृणोमि ) पृथक् २ विभक्त करूं उन विभक्त (पिण्डानाम्) अवयवों में से ( ता ता ) उन २ अवयवों, या राष्ट्र के विभागों को ( अग्नौ ) ज्ञानवान्, नेता, अग्रणी पुरुष के अधीन ( प्र जुहोमि ) प्रदान करूं ।

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व ऽआ तिष्ठिपत्ते।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥४३॥

भा०—हे राजन्! हे राष्ट्र! (प्रियः आत्मा) अपने देह और आत्मा के समान प्रिय पुरुष (अपियन्तम्) प्रयाण करते समय (त्वा) तुझको (मा तपत्) सन्तप्त न करे, तुझे शोकातुर न बनाये, अथवा तुझे पीड़ित न करे। (स्वधितिः) वज्र, तलवार या शस्त्र-बल भी (ते तन्वः) तेरे शरीर के भागों पर (मा आ आतिष्ठिपत्) अपना अधिकार न करे। अर्थात् शस्त्र-बल भी तुझे व्यर्थ न सतावे। (अविशस्ता) उत्तम शासक न होकर कोई (गृध्नुः) लालची महामात्य या राजा (ते छिद्राणि) तेरे भीतर विद्यमान त्रुटियों को (अतिहाय) छोड़कर (मिथू) व्यर्थ, झूठ मूठ, निष्प्रयोजन (ते गात्राणि) तेरे अंगों, राज्यांगों को (असिना) शस्त्र बल से (मा कः) मत काटे। राष्ट्र जिसको अपना हितू समझे वह उसको पीड़ित न करे, व्यर्थ शस्त्र-बल सेना आदि प्रजा को न सतावे। राजा या मन्त्री उत्तम शासक न होकर केवल लोभ, ज़ोर जबरदस्ती करके अपने पैसे के लोभ में राष्ट्र के अंग छेदन न करें अर्थात् प्रजा को न सतावे।

अध्यात्म में—(अपियन्तम्) ब्रह्म में 'अप्यय' अर्थात् लीन होने वाले या परिव्राजक मार्ग या गुरुगृह में जाते हुए (त्वा प्रियः आत्मा मा तपत्) तेरा प्रिय देह, या बन्धु तुझे शोक से संतप्त मत करे। (स्वधितिः) अपनी ही विशेष धारणा करने की अहंकार वासना अथवा स्व=धन की लालसा (ते तन्वः) तेरे शरीर को (मा आतिष्ठिपत् आस्थापयेत्) न बनाये रक्खे। (अविशस्ता) अविद्वान्, उपदेश से अनभिज्ञ, अविद्वान् पुरुष (गृध्नुः) केवल लोभ वश (ते छिद्राणि अतिहाय) तेरे दोषों को छोड़कर, तेरे अपराधों के विना ही, (गात्राणि) तेरे अंगों को (असिना इव) तलवार के समान दुख-

दायी शस्त्रादि या वाणी से (मा मिथू कः) व्यर्थ मत काटे, व्यर्थ अंग भेदन छेदन और पीड़ित आदि न करे।

न वाऽ उऽएतन् म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।
हरी ते युञ्जा पृषतीऽ अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥४४॥

स्वराड् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे राष्ट्रवासीजन! (एतत्) इस प्रकार सुव्यवस्था से तू (न वा उ म्रियसे) कभी मृत्यु को प्राप्त न हो। (न रिष्यसि) तू कभी पीड़ित न हो, (सुगेभिः पथिभिः) उत्तम गमन करने योग्य मार्गों, राज-नियम और मर्यादाओं से (देवान्) इस उत्तम २ राज प्रजा के परस्पर व्यवहारों, श्रेष्ठ गुणों और उन्नत प्रजाओं और विद्वानों को (एषि) प्राप्त हो। (ते) तेरे सञ्चालक (पृषती हरी) रथ में हृष्ट पुष्ट घोड़ों के समान खूब दृढ़ राज्य के सञ्चालन में कुशल हो कर (युञ्जा) नियुक्त (अभूताम्) हों और (रासभस्य) मार्गोपदेश करने वाले महामन्त्री के (धुरि) पद पर (वाजी) ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष (उप अस्थात्) स्थित हो, स्थापित किया जाय।

हे साधक पुरुष! तू तपस्या में लग कर मर मत, (न रिष्यसि) कष्ट मत पा। इन (सुगेभिः) सुगम मार्गों से विद्वानों को प्राप्त होते हुए तेरे (पृषती हरी) बलवान् प्राण और अपान (युञ्जा) योग द्वारा युक्त हों और (रासभस्य धुरि) उपदेश करने वाले आचार्य के पद पर (वाजी) ज्ञानवान् पुरुष (उप अस्थात्) उपस्थित हो।

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ२ऽ उत विश्वापुषं रयिम्। अनागास्त्वं नोऽ अदितिः कृणोतु क्षत्रं नोऽ अश्वो वनताᳬ हविष्मान् ॥ ४५ ॥

स्वराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—( वाजी ) ज्ञानैश्वर्यवान्, संग्राम में कुशल राष्ट्रपति पुरुष ( नः ) हमें ( सुगव्यम् ) उत्तम गोधन, ( सु-अश्वं ) उत्तम अश्व धन, ( पुंसः पुत्रान् ) पुमान्, वीर पुरुष स्वभाव के मर्द, पुत्र को ( उत ) और ( विश्वापुषम् रयिम् ) समस्त विश्व को पोषण करने में समर्थ ऐश्वर्य प्रदान करे। हे राजन् ! तू ( अदितिः ) अखण्ड शासन और अदीन, स्वतन्त्र शासन वाला होकर ( नः ) हमें ( अनागाः ) अपराधों से रहित, शुद्ध आचार व्यवहार वाला ( कृणोतु ) बनावे। ( नः ) हमारा ( अश्वः ) राष्ट्र का भोक्ता श्रेष्ठ पुरुष ( हविष्मान् ) अन्नादि समृद्धि से युक्त एवं ज्ञान और उपायों से युक्त होकर ( क्षत्रं ) क्षात्र बल को ( वनताम् ) प्राप्त करे।

**इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः। आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्। यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥ ४६ ॥**

अयास्यपुत्रो भुवन ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिक् शक्वरी। धैवतः॥

भा०—( नुकं इमा भुवनानि ) इन समस्त भुवनों, लोकों को, हम ( सीषधाम ) अपने वश करें, ( इन्द्रः च ) ऐश्वर्यवान् सेनापति, राजा, ( विश्वे चः देवाः ) समस्त विद्वान्, शासकजन या विजयी सैनिक लोग, ( इन्द्रः आदित्यैः ) १२ मासों सहित सूर्य के समान राष्ट्र को अपने वस में करने हारे शासकों से युक्त इन्द्र, राजा, (सगणः) अपने गणों या-दलों सहित ( मरुद्भिः ) वैश्यों या तीव्र वेगवान् रथों से जाने वाले वीर पुरुषों सहित ( अस्मभ्यं ) हमारे राष्ट्र का ( भेषजं करत् ) यथोचित प्रबन्ध करे। दोषों को दूर कर उसे शरीर के समान हृष्ट पुष्ट करे। ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा, ( आदित्यैः सह ) १२ मासों सहित सूर्य के समान अपने आदित्य समान तेजस्वी विद्वान्, सभासदों, या मन्त्रियों

सहित ( नः ) हमारे ( यज्ञं ) सुसंगत प्रजापालक राष्ट्र को और ( नः तन्वं ) हमारे शरीरों को और ( प्रजां च ) हमारी प्रजा को भी ( सीपधाति ) हृष्ट पुष्ट कर अपने अधीन रक्खे।

अग्ने त्वन्नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ॥ ४७ ॥
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्याणो अघायतः समस्मात् ॥ ४८ ॥

भा०—[४७-४८] दोनों की व्याख्या देखो अ० २ । २५, २६ ॥

॥ इति पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ।



४८—बहुत्र 'सखिभ्य'ः इत्यन्तो मन्त्रः। 'स नो बोधीति०' चरणद्वयं अ० २। २६। इत्यस्योत्तरार्धभागः॥

# ॥ अथ षड्विंशोऽध्यायः ॥

[अ० २६–४०] विवस्वान् याज्ञवल्क्यश्च ऋषी ॥

॥ ओ३म् ॥ अग्निश्च पृथिवी च संनते ते मे संनमतामदो । वायुश्चान्तरिक्षं च संनते ते मे संनमतामदऽआदित्यश्च द्यौश्च संनते ते मे संनमतामदः । आपश्च वरुणश्च संनते ते मे सन्नमतामदः । सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी । सकामाँ२॥ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

अभिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—( अग्निः च पृथिवी च ) अग्नि अर्थात् सूर्य और पृथिवी दोनों (संनते) परस्पर एक दूसरे के अनुकूल रहते हैं । (ते) वे दोनों (अदः) अमुक मेरे प्रेम और अभिलाषा के पात्र को ( मे संनमताम् ) मेरे अनुकूल करें, उसे मेरे प्रति प्रेम से झुकावें । ( वायुः च अन्तरिक्षं च ) वायु और अन्तरिक्ष दोनों ( संनते ) परस्पर एक दूसरे के उपकार्य उपकारक होकर एक दूसरे के अनुकूल रहते हैं । वे दोनों अपने दृष्टान्त से ( अदः ) अमुक को ( मे ) मेरे लिये ( संनमतात् ) प्रेम से संगत करें । ( आदित्यः च द्यौः च ) सूर्य और आकाश दोनों ( संनते ) एक दूसरे के साथ उपकार्य उपकारक भाव से संयुक्त हैं । वे ( मे ) मेरे लिये अमुक को ( संनमताम् ) अपने दृष्टान्त से मेरे अनुकूल प्रेम व्यवहार युक्त करें । ( आपः च वरुणः च ) जल और वरुण, महान् समुद्र या मेघ दोनों ( संनते ) एक दूसरे के अनुकूल होकर रहते हैं । ( ते ) वे दोनों (मे) मेरे लिये ( अदः संनमताम् ) अमुक को मेरे प्रति प्रेमयुक्त, अनुकूल करें ।

---

अथ खिलानि । अतः सप्तसप्तति मन्त्राः ॥

( सप्तसंसदः ) ये सात संसद् हैं इनके आश्रय समस्त जीव स्थिर हैं इनमें ( अष्टमी ) आठवीं ( भूतसाधनी ) समस्त भूतों अर्थात् प्राणियों को अपने वश करती है। अर्थात् अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष आदित्य, द्यौ, आपः और वरुण ये सात 'संसत्' हैं इनके आश्रय समस्त लोक विराजते हैं। और आठवीं पृथ्वी सब प्राणियों को अपने वश में करती है। वह सबको उत्पन्न करती और पालती है। हे राजन् ! तू ( अध्वनः ) समस्त मार्ग को ( सकामान् ) अपने कामनानुकूल कर। ( अमुना ) अमुक, २ शक्ति और पदार्थ से मे संज्ञानम् अस्तु ) मुझे सम्यक् अर्थात् सत्य, यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याᳬं शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणायच। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ २ ॥

स्वराड् अत्यष्टिः। गान्धारः ॥

भा०—मैं परमेश्वर और राजा ( यथा ) जिस प्रकार ( इमां ) इस ( कल्याणीं वाचम् ) सब को सुख देनेवाली वाणी के ( जनेभ्यः ) समस्त उत्पन्न लोकों के हित के लिये ( ब्रह्मराजन्याभ्याम् ) ब्राह्मण, क्षत्रिय (शूद्राय) शूद्र और (अर्याय च) वैश्य, (स्वाय च) अपने प्रिय लगने और (अरणाय) प्रिय न लगने वाले, अपने और पराये सब जनों के लिये ( आवदानि ) सर्वत्र उपदेश करूँ। इसी प्रकार मैं भी सब जनों के हितकारी वाणी बोलूँ जिससे मैं ( देवानां ) विद्वानों का और ( दक्षिणायै दातुः ) दक्षिणा वृत्ति देनेहारे पुरुष का भी ( इह ) इस राष्ट्र में या लोक में ( प्रियः भूयासम् ) प्रिय होऊँ। ( मे अयं कामः ) मेरी यह कामना, ( समृध्यताम् ) पूर्ण हो। (अदः) अमुक पुरुष और मेरा अमुक प्रयोजन ( मा उपनयतु ) मुझे प्राप्त हो, मेरे अनुकूल हो, मेरे वश या अधीन हो।

परमेश्वर जिस प्रकार सब के हितार्थ वेद-वाणी का उपदेश करता है

इसी प्रकार राजा भी अपनी आज्ञा वाणी को सर्वहितार्थ बोले वह विद्वानों और प्रजाजनों के वृत्तिदाता धनकुबेरों का भी प्रिय होकर रहे। उसकी सब इच्छा पूर्ण हों, इस प्रकार उसके अनुकूल, प्रतिकूल समीप और दूर के सभी व्यक्ति और राष्ट्र भी इसके अधीन हों।

बृह॑स्पते॒ अति॒ यद॒र्यो अर्हा॑द् द्यु॒मद्वि॒भाति॒ क्रतु॑म॒ज्जने॑षु। यद्दी॒दय॒च्छव॑सऽऋतप्रजात॒ तद॒स्मासु॒ द्रवि॑णं धेहि चि॒त्रम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ बृह॒स्पत॑ये त्वै॒ष ते॒ योनि॒र्बृह॒स्पत॑ये त्वा ॥ ३ ॥

गृत्समदो बृहस्पतिर्वा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। भुरिग् अत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—हे ( बृहस्पते ) बड़े बड़ों के पालक, उनके स्वामिन्! उनमें प्रधान पुरुष! ( यत् ) जिस कारण से तू ( अर्यः ) सबका स्वामी होकर ( अर्हात् ) पूजने योग्य है। और ( जनेषु ) समस्त जनों में ( द्युमत् ) सूर्य के समान तेजस्वी ( ऋतुमत् ) प्रज्ञावान् और क्रियावान् होकर ( अति विभाति ) सब से अधिक चमकता है और ( यत् ) जिस कारण से हे ( ऋतप्रजात ) सत्य व्यवहार, धर्म और ज्ञान द्वारा प्रसिद्ध एवं उत्कृष्ट पद पर स्थित तू ( शवसा ) बल से ही ( दीदयत् ) सब की रक्षा करता है अतः तू ( अस्मासु ) हम प्रजाजनों में ( चित्रम् ) संग्रह करने योग्य ( द्रविणम् ) ऐश्वर्य का ( धेहि ) प्रदान कर, धारण करा। हे विद्वान् पुरुष! तू ( उपयामगृहीतः असि ) राष्ट्र के सुव्यवस्थित राजनियमों द्वारा स्वीकार किया गया है। ( त्वा ) तुझको ( बृहस्पतये ) बृहस्पति पद के लिये चुनते हैं। ( एषः ते योनिः ) यह तेरे योग्य आसन, पदाधिकार है। ( बृहस्पतये त्वा ) तुझे बृहस्पति पद के लिये नियुक्त करता हूँ।

परमात्मा के पक्षमें—हे ( बृहस्पते! ) महान् लोकों और बृहती वेद वाणी और बृहती अर्थात् प्रकृति के स्वामिन्! तू ( जनेषु क्रतुमत् ) समस्त

उत्पन्न होनेहारे पदार्थों में क्रियावान् और ज्ञानवान् है, तू प्रकाशस्वरूप, सर्व से पूज्य और स्वामी रूप से प्रकाशमान है। हे (ऋतुप्रजात) व्यक्त जगत् के उत्पादक और सत्यरूप से प्रसिद्ध हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर। तू (उपयामगृहीतः) यम नियमों और तप द्वारा योग से प्राप्त होता है यही तेरा स्वरूप है, तुझको बृहस्पति करके मानता हूँ।

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो विद्युद्भिर्ग्रावभिः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे (गोमन्) वाणी, आज्ञा एवं गवादि पशु और गौ=पृथ्वी के स्वामिन्! तू (इह) यहां इस राष्ट्र में (आयाहि) प्राप्त हो, हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं क्रिया सामर्थ्यों और अधिकारों से युक्त! तू (विद्युद्भिः) विशेष रूप से विद्यमान अथवा विविध खण्डन-मण्डन करने वाले (ग्रावभिः) विद्वानों द्वारा (सुतम्) सिद्धान्त रूप से प्राप्त किये (सोमम्) ज्ञान रस का पान कर। अथवा (विद्युद्भिः) विविध शस्त्रास्त्रों से शत्रुओं का खण्डन करनेवाले (ग्रावभिः) शस्त्रधारियों और विद्वानों से (सुतम्) प्राप्त किये गये (सोमम्) अभिषेक द्वारा प्रदत्त सोम नाम राजपद या राष्ट्र और ज्ञान का (पिब) पान कर, उपभोग कर। हे वीर पुरुष! तू (उपयामगृहीतः असि) राष्ट्र द्वारा शासन व्यवस्था द्वारा स्वीकृत या नियुक्त है (त्वा गोमते इन्द्राय) तुझको 'गोमत् इन्द्र' अर्थात् पृथिवी के स्वामी 'इन्द्र' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। (एष ते) यह तेरे योग्य (योनिः) आश्रय, पदाधिकार है। (इन्द्राय त्वा गोमते) 'गोमान् इन्द्र' पद के लिये तुझे स्थापित किया जाता है।

इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोमꣳ शतक्रतो। गोमद्भिर्ग्रावभिः

सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) हे शत्रुओं के विदारक ! हे ( वृत्रहन् ) विघ्नकारियों के नाशक ! हे ( शतक्रतो ) सैकड़ों प्रजा और अधिकारों से सम्पन्न ! तू ( गोमद्भिः ) पृथ्वी के स्वामी, ( ग्रावभिः ) शस्त्रधारी भूपतियों द्वारा ( सुतम् ) अभिषेक द्वारा प्राप्त ( सोमम् ) राष्ट्र ऐश्वर्य को शिलाओं से कुटे सोमरस के समान ( पिब ) उपभोग कर। (उपयाम गृहीत० इत्यादि) पूर्ववत्।

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥६॥

भा०—( ऋतावानं ) सत्य ज्ञानवान् ( ऋतस्य ज्योतिषः ) सत्यज्ञान रूप ज्योति के पालक ( घर्मम ) अति देदीप्त विद्वान्, ( वैश्वानरम् ) समस्त पुरुषों के हितकारी पुरुष को ( अजस्रं ) निरन्तर ( ईमहे ) प्राप्त हों।

सूर्य के पक्ष में—( ऋतावानम् ) जल को रश्मियों से ग्रहण करने वाला (ऋतस्य ज्योतिषः पतिम्) जल और प्रकाश के पालक, सूर्य से (घर्मम्) अविनाशी ज्योति या दीप्ति, तेज को (ई महे) प्राप्त करें। (उपयाम० इत्यादि) पूर्ववत्।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ७ ॥

जगती। निषादः ॥

भा०—हम लोग ( वैश्वानरस्य ) समस्त विश्व के, या समस्त राष्ट्र के नायक के ( सुमतौ ) शुभ बुद्धि के अधीन ( स्याम ) रहें। ( राजा ) वह राजा ही ( भुवनानां ) समस्त लोकों के लिये ( अभिश्रीः ) सब प्रकार से आश्रय करने योग्य है। वह ( जातः ) प्रादुर्भूत होकर ( इतः ) इस मुख्य पद से

ही ( विश्वम् इदम् ) इस समस्त विश्व को सूर्य के समान ( विचष्टे ) देखता है और प्रकाशित करता है। इसी से ( वैश्वानरः ) समस्त राष्ट्र का नेता वैश्वानर नाम राजा, ( सूर्येण ) सूर्य के समान तेजस्वी होकर ( यतते ) राष्ट्र के कार्यों में उद्योग करता है। ( उपयाम० इत्यादि पूर्ववत् )।

अध्यात्म में—पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय और आठवीं वाणी है। हे वाणि ! तू मेरे लिये सब ज्ञान मार्गों को सफल कर और अमुक अभ्यास, प्रयत्न और पदार्थ से मुझे यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो।

पृथिवी पर जिस प्रकार अग्नितत्व प्रधान है, पृथिवी अग्नि के अधीन है। और पृथिवी अग्नि का ही उपकारक है इसी प्रकार राष्ट्र की प्रजा का राजा से, स्त्री का पुरुष से सम्बन्ध है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष में वायु व्यापक है और स्वच्छन्द विहार करती है इसी प्रकार वायु के समान तीव्र वेगवान् बलवान् सेनापति अपने आच्छादक बल पर रहे। आदित्य सूर्य जिस प्रकार आकाश में तेजस्वी है, आकाश को प्रकाशित करता है उसी प्रकार सभापति सभा में विराजे, जल जिस प्रकार समुद्र के आश्रय है आप्तजन या प्रजाजन वरुण, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पुरुष में अपना आश्रय समझें। उसी से अपनी वृद्धि करें। परन्तु पृथिवी और तत्स्थानीय राष्ट्र प्रजा ही आठवीं समस्त प्राणियों को अपने आश्रय में रखती है। हे पुरुष ! राजन् ! तू अपने ( अध्वनः ) मार्गों, राज्य के संञ्चालन के नियमों को अपने प्रयोजन और इच्छा और आवश्यकतानुसार बना। (अमुना) अमुक २ विद्वान् पुरुष से मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हो सदा ऐसा यत्न कर।

वैश्वानरो नऽ ऊतयऽ आ प्रयांतु परावतः। अग्निरुक्थेन वाहसा। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८॥

भा०—( वैश्वानरः ) समस्त राष्ट्र का नेता, अथवा समस्त नेता पुरुषों का स्वामी, ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी ( उक्थेन )

अपने प्रशंसनीय ( वाहसा ) साधनों और वाहनों से ( नः ऊतये ) हमारी रक्षा के लिये ( परावतः ) दूर देश तक भी ( आ प्रयातु ) जाए और दूर देश से भी अजाया करे। ( उपयाम० इत्यादि ) पूर्ववत्।

अ॒ग्निॠषि॒: पव॑मान॒: पाञ्च॑जन्यः पु॒रोहि॑तः। तमी॑महे महाग॒यम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽस्य॒ग्नये॑ त्वा॒ वर्च॑सऽए॒ष ते॒ योनि॑र॒ग्नये॑ त्वा॒ वर्च॑से ॥ ९ ॥

वसिष्ठभारद्वाजावृषी। अग्निर्देवताः। जगती। निषादः ॥

भा०—( अग्निः ) ज्ञानवान् अग्नि के समान तेजस्वी, ( ऋषिः ) ज्ञानों, मन्त्रार्थों का देखने वाला, ( पाञ्चजन्यः ) पांचों जनों का हितकारी ( पुरोहितः ) पुरोहित, सब कर्मों का साक्षी हो। ( महागयम् ) अति स्तुति योग्य या बड़े विशाल गृहों, धनैश्वर्यों और बड़ी प्रजावाले ( तम् ) इससे हम अपने अभिलषित पदार्थ की (याचामहे) याचना करें। (उपयामगृहीतः असि०) इत्यादि पूर्ववत्।

म॒हाँ२ऽ इन्द्रो॒ वज्र॑हस्तः षोड॒शी शर्म॑ यच्छतु। हन्तु॑ पा॒प्मानं॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॑। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि म॒हेन्द्रा॑य त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्म॒हेन्द्रा॑य त्वा ॥ १० ॥

वसिष्ठ ऋषिः। महान् इन्द्रो देवता। निचृज्जगती। निषादः ॥

भा०—( महान् ) बड़ा भारी ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक इन्द्र राजा, (वज्रहस्तः) खांडा हाथ में लिये हुए, बलवान् वीर्यवान्, ( शोडषी ) सोलहों कलाओं के समान सोलह अमात्यों या राज्यांगों से चन्द्र के समान पूर्ण होकर हमें ( शर्म ) सुख ( यच्छतु ) प्रदान करे। ( यः ) जो ( अस्मान् ) हमसे ( द्वेष्टि ) द्वेष करे उस ( पाप्मानं ) पापी, दुष्टाचारी पुरुष को ( हन्तु ) दण्ड दे। ( उपयामगृहीत० ) इत्यादि पूर्ववत्।

तं वो॑ द॒स्ममृ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः।

अभि वृत्सं न स्वसंरेषु धेनव॒ऽ इन्द्रं॑ङ्गीर्भिर्नवामहे ॥ ११ ॥

नोधा गोतमः आदित्ययाज्ञवल्क्यौ वा ऋषी । इन्द्रो देवता । गान्धारः । विराड् अनुष्टुप् ॥

भा०—(स्वसरेषु) दिनों के पूर्व भाग में (धेनवः वत्सं न) गौवें जिस प्रकार अति प्रेम से अपने बच्छे के प्रति हंभारती हैं उसी प्रकार हम भी (वत्सं) अभिवादन और स्तुति करने योग्य, ( दस्मम् ) दर्शनीय, शत्रुओं के विनाशक, प्रियवादी और कार्यसाधक (वसोः) बसनेवाले राष्ट्र और ( अन्धसः ) अन्नादि नानाभोग्य पदार्थ से ( मन्दानम् ) स्वयं और अन्यों को तृप्त, आनन्दित करनेवाले ( ऋतीषहम् ) अपने ज्ञान, प्रयाण या चालों से शत्रुओं को परास्त करनेवाले ( इन्द्रम् ) इन्द्र, सेनापति और राजा को हम ( गीर्भिः ) स्तुतिवाणियों द्वारा ( अभि नवामहे ) साक्षात् होने पर स्तुति करें, उसका आदर करें ।

यद्वाहिष्ठन्तदुग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वदुयिस्त्वद्वाजाऽ उदीरते ॥ १२ ॥

सयुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री ॥ षड्जः ॥

भा०—हे मनुष्यो! (यत्) जो (वाहिष्ठम्) सब से अधिक सुख प्राप्त करानेवाला, बड़े जिम्मेवारी का (बृहत्) बड़ा महान् पद है वह (अग्नये) ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष को प्रदान करो । ( अर्च ) उसका आदर सत्कार करो । हे ( विभावसो ) तेजो रूप ऐश्वर्यवान् तेजस्विन् ! ( महिषी इव ) जिस प्रकार रानी अपने पति के लिये बड़ी उत्कंठा और प्रेम से उसके आदरार्थ उठती है, उसे प्राप्त होती है, इसी प्रकार ( त्वत् रयिः ) तेरे निमित्त ऐश्वर्य और ( त्वत् ) तेरे निमित्त, ( वाजाः ) समस्त वीर्य, पदाधिकार ( उदीरते ) उठते हैं और तुझे प्राप्त होते हैं ।

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न॑ऽइत्थेत॑रा गिरः॑ । एभिर्व॑र्द्धासु॒ऽइन्दु॑भिः ॥१३॥

भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! ( एहि ) आ । ( ते ) तुझे मैं विद्वान् पुरुष ( इतराः ) और नाना ( गिरः ) उपदेश वाणियों का ( इत्था ) यथार्थ रूप से ( सु ब्रवाणि ) उत्तम रीति से उपदेश करूँ । ( एभिः ) इन ( इन्दुभिः ) ऐश्वर्यों से तू ( वर्धासे ) वृद्धि को प्राप्त हो ।

ऋतव॑स्ते य॒ज्ञं वि त॑न्वन्तु मासा॑ रक्षन्तु ते ह॒विः॑ ।
सं॒व॒त्स॒रस्ते॑ य॒ज्ञं द॑धातु नः प्र॒जां च॒ परि॑ पातु नः ॥ १४ ॥

भुरिग् बृहती । निषादः । संवत्सरो देवता ॥

भा०—हे नायक ! राजन् ! ( ऋतवः ) जिस प्रकार जगत् रूप यज्ञ को ऋतुएँ करते हैं उसी प्रकार उनके समान सदस्यगण ( ते यज्ञम् ) तेरे राष्ट्र पालन रूप यज्ञ को ( वितन्वन्तु ) विविध उपायों से करें । ( मासाः ) मास जिस प्रकार जगत् के अन्नादि पदार्थों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार ( मासाः ) ज्ञानवान् और दुष्ट के नाशक अधिकारीगण ( ते ) तेरे ( हविः ) अन्न और राष्ट्र की ( रक्षन्तु ) रक्षा करें । ( ते यज्ञं ) तेरे यज्ञ को ( संवत्सरः ) जिसमें समस्त प्राणी सुख से बसें और रमण करें ऐसे प्रजा पालक विद्वान् पुरुष वर्ष के समान सर्वगुणनिधान, ( दधातु ) धारण करे । और वही ( नः ) हमारे ( प्रजां ) प्रजा का ( परिपातु ) परिपालन करे ।

उ॒प॒ह्व॒रे गि॑री॒णाᳬ स॑ङ्ग॒मे च॑ न॒दीना॑म् ।
धि॒या विप्रो॑ऽअजायत ॥ १५ ॥

वत्स ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( गिरीणाम् ) पर्वतों के ( उपह्वरे ) समीप में ( नदीनां च सङ्गमे ) और नदियों के संगम स्थान में, रह कर ( धिया ) ध्यान, धारणा,

कर्म; और विद्याभ्यास करके ( विप्रः ) विविध विद्याओं से संपूर्ण, निष्णात होकर विद्वान् सोम और सूर्य के समान जन ( अजायत ) प्रकट होता है।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे।
उग्रꣳशर्म महि श्रवः ॥ १६ ॥ ॥

[१६–१९] आमहीयवऋषिः। गायत्री। षड्जः॥

भा —( ते ) तेरे हे ( सोम ) ऐश्वर्यसम्पन्न ! सूर्य के समान सबके प्रेरक राजन् ! ( अन्धसः ते ) तुझ अखिल विश्व को धारण करनेवाले तेरा जो ( उच्चा दिवि ) ऊँचे आकाश में ( सत् ) सत् शक्ति रूप से वही ( उग्रम् ) बड़ा बल, ( शर्म ) सुखकारी शरण और ( महि श्रवः ) बड़ा ऐश्वर्य ( जातम् ) प्रकट होता है उसको ( भूमि आददे ) भूमि स्वयं ग्रहण करती हैं, अथवा उसको मैं प्रजाजन ( भूमि इव ) सर्वोत्पादक सर्वाश्रय रूप से स्वीकार करता हूँ।

स नऽ इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
वरिवोवित्परि स्रव ॥ १७ ॥

भा०—हे सोम ! राजन् ! ( सः ) वह तू ( नः ) हमारे (इन्द्राय) शत्रुनाशक, ( यज्यवे ) दानशील, ( वरुणाय ) सर्व श्रेष्ठ, आपत्ति निवारक और ( मरुद्भ्यः ) विद्वान् मनुष्यों के लिये ( वरिवोवित् ) धनवान् ऐश्वर्यवान् सेवा करो कर्त्तव्य जानकर ( परिस्रव ) प्राप्त हो।

एना विश्वान्यर्यऽआ द्युम्नानि मानुषाणाम्।
सिषासन्तो वनामहे ॥ १८ ॥

भा०—( एना ) ये ( विश्वा ) सब प्रकार के ( मानुषाणां द्युम्नानि मनुष्यों के उपायोगी धनों का ( अर्यः ) स्वामी ही ( आ ) प्राप्त करता

है। हम (सिषासन्तः) उनका सेवन करना चाहते हुए (वनामहे) उन्हीं पदार्थों की याचना करते हैं।

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः।
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥१९॥

आशीः। त्रिष्टुप्। धैवतः। मुद्गल ऋषिः॥

भा०—(देवाः) देवगण (नः) हमारे (यज्ञम्) परस्पर संगत, गृहस्थ, समाज और राष्ट्र रूप यज्ञ को या प्रजापालक राजा को (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार, यथाकाल, यथावसर इस प्रकार (नयन्तु) ले जावें। इस प्रकार मार्ग दिखावें कि (वयम्) हम (वीरैः) वीरों से (अनुपुष्यास्म) पुष्ट हों, (गोभिः अनु) गौओं से समृद्ध हों, (पुष्टैः अश्वैः अनु) हृष्ट पुष्ट अश्वों से समृद्ध हों, (सर्वेण द्विपदा चतुष्पदा) सब प्रकार के दोपाये और चौपाये भृत्य और पशुओं से (अनु) खूब पुष्ट हों।

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप।
त्वष्टारᳫं सोमपीतये ॥ २० ॥

मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! राजन् अग्रणी! पुरुष! (इह) इस परस्पर सुसंगत राष्ट्र और समाज के कार्य में (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों की उन (पत्नीः) स्त्रियों को जो (उशतीः) कार्य के करने की अभिलाषा करती हों (उप वह) प्राप्त करा, उनको भी इस कार्य में लगा और (सोमपीतये) सोम या राजापद के स्वीकार करने के लिये (त्वष्टारं) शत्रुहन्ता, प्रजापालक पुरुष को भी प्राप्त करा।

अथवा—राष्ट्र के पालन के लिये (देवानां पत्नीः) देवों विद्वानों और राजा और विजयी पुरुषों की पालन शक्तियों, सेनाओं को एकत्र कर (त्वष्टारं) सब के त्वष्टा, शिक्षक या भूमि आदि के मापन राजप्रासाद दुर्गआदि के निर्माता शिल्पी को भी प्राप्त कर।

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिबऽऋतुना ।
त्वꣳ हि रत्नधाऽअसि ॥ २१ ॥

[२१-२२] मेधातिथिर्ऋषिः । ऋतुर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( नेष्टः ) नेता ! नायक पुरुष ! राजन् ! (नः) हमारे (यज्ञं) प्रजापालक राष्ट्र के स्वरूप को (अभि) स्पष्टरूप को (नः गृणीहि) हमें बतला । हे ( ग्नावः ) पालक शक्ति से युक्त वाग्मिन् ! इस राष्ट्र को ( ऋतुना ) अपने बल और ज्ञान से या अन्य अधिकारियों द्वारा ( पिब ) भोग कर । ( त्वं हि ) तू ही ( रत्नधा असि ) राज्य के रत्नों और पुरुषों का धारक और पोषक है ।

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥२२॥

भा०—( द्रविणोदाः ) धन और यश का देनेवाला पुरुष ही ( पिपीषति ) सृष्टि का भोग करना चाहता है । ( जुहोत ) उसको पदाधिकार प्रदान करो और ( प्रतिष्ठत च ) शत्रु पर प्रस्थान करो । ( नेष्टाद् ) नेष्टा, नायक से ( ऋतुभिः ) ऋतुओं के अनुसार उसके मुख्य सदस्यों सहित ( इष्यत ) इष्ट फल को प्राप्त करो ।

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ्शश्वत्तमꣳ सुमना अस्य पाहि । अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ २३ ॥

भा०—हे राजन् ! ( अयं सोमः ) यह ऐश्वर्य युक्त राज्य या राष्ट्र ( तव ) तेरा है । ( त्वं ) तू ( सुमनाः ) शुभ चित्त होकर ( अस्य ) इस राष्ट्र के ( शश्वत्तमम् ) सदा काल से चले आये ऐश्वर्य को ( अर्वाङ् ) अपने अधीन रख के (पाहि) पालन कर । (अस्मिन् यज्ञे) इस महान् यज्ञ में, और इस ( बर्हिषि ) राजगद्दी पर या प्रजा जन के ऊपर (आनिषद्य) विराज कर ( इमं ) इस ( इन्दुम् ) ऐश्वर्य शील राष्ट्र को ( इन्द्र ) ऐश्वर्य

के इच्छुक ( जठरे ) पेट में अन्न के, या ओषधि रस के समान ( दधिष्व ) धारण कर ।

अग्नेवं नः सुहवा ऽआ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मदस्व जुजुषाणो ऽअन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥२४

गृत्समद ऋषिः । जगती । निषादः । त्वष्टा देवपत्न्यश्च देवताः ॥

भा०—हे (सुहवाः) सुन्दर, शुभ नामवाली देवपत्नियों अर्थात् विद्वान् पुरुषों के स्त्री जनो ! और हे विद्वान् जनो ! आप सब लोग (आ गन्तन हि) आइये । ( बर्हिषि ) उत्तम आसन पर ( नि सदतन ) निश्चिन्त होकर विराजिये । और ( रणिष्टन ) उत्तम उपदेश, शिक्षा प्रदान कीजिये । हे (त्वष्टः) विद्वन् ! राजन् ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार सूर्य अपने (देवेभः) किरणों से जल को ग्रहण करता है उसी प्रकार तू भी (देवेभिः) सहयोगी विद्वान् पुरुषों और (जनिभिः) सहयोगी माता भगिनी पत्नी आदि आनन्द प्रसन्न स्त्रियों के सहित और ( सुमत्-गणः ) उत्तम गुणों वाले गणों अर्थात् भृत्यजनों सहित (अन्धसः) अन्न आदि का (जुजुषाणः) भोग करता हुआ ( मदस्व ) हृष्ट-पुष्ट हो ।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २५ ॥

भा०—हे (सोम) सबके प्रेरक ! तू (इन्द्राय) 'इन्द्र' पद अर्थात् समृद्ध राज्य के लिये ( सुतः ) अभिषिक्त होकर ( स्वादिष्ठया ) अति स्वाद वाली, अति मधुर (मदिष्ठया) सबको अति आनन्द देनेवाली, (धारया) प्रजा को धारण पोषण करने वाली, दुग्ध-धारा के समान मधुर वाणी और शक्ति से (इन्द्राय) ऐश्वर्य के (पातवे) पालन करने और भोग करने के लिये (पवस्व) निरन्तर शुद्ध पवित्र होकर रह ।

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २६ ॥

भा०—(रक्षोहा) राक्षसों और दुष्ट पुरुषों का नाशक (विश्वचर्षणिः) समस्त प्रजाओं का द्रष्टा होकर सुवर्ण आदि से व्याप्त, ऐश्वर्य युक्त (द्रोणे) राष्ट्र में ( सधस्थम् ) योग्य स्थान, मान और पद के समान योग्य प्रतिष्ठित पद और ( योनिम् ) अपने गृह या अधिकार पद पर ( आसदत् ) विराजे और उत्तम गृह में रहे ।

॥ इति षड्विंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥



# ॥ अथ सप्तविंशोऽध्यायः ॥

[ अ० २७ ] प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता ॥

॥ ओ३म् ॥ समास्त्वाग्न ऽऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सरा ऽ ऋषयो यानि सत्या । सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा ऽआभाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ १ ॥

[ १—६ ] अग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! अग्रणी नायक ! राजन् ! ( त्वा ) तुझको (समाः) एक समान मान, पद और ज्ञानवाले विद्वान् पुरुष और (ऋतवः) बलवान् सभासद् गण, (संवत्सराः) अच्छी प्रकार प्रजाओं को बसाकर उनमें स्वयं रमण करनेहारे प्रजापालक नरपति लोग और (ऋषयः) वेदमन्त्रों और सत्य ज्ञानों के गूढ़ तत्वों के अध्यापक तथा अध्येता जन और ( यानि-सत्या ) जितने होनेवाले सत्य, यथार्थ विज्ञान और सत्य व्यवहार हैं वे सब ( त्वा ) तुझको ( सं वर्धयन्तु ) बढ़ावें, तेरे यश, बल और ऐश्वर्य की वृद्धि करें । तू ( दिव्येन ) उत्तम कान्तियुक्त ( रोचनेन ) सबको अच्छा लगने वाले तेज से ( सं दीदिहि ) सूर्य के समान प्रकाशित हो । और सूर्य के समान ही ( विश्वा ) समस्त ( चतस्रः ) चारों दिशा उपदिशाओं सबको ( आभाहि ) जगमगा, प्रकाशित कर ।

सूर्यपक्ष में—( समाः ) वर्ष ( ऋतवः ) वसन्तादि, ( संवत्सराः ) प्रभव आदि सब सूर्य की महिमा को बढ़ाते हैं ।

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय । मा च रिषदुपसत्ता ते ऽअग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! विद्वन् ! नायक ! राजन् ! तू (सं इध्यस्व च)

अग्नि के समान खूब प्रज्वलित, तेजस्वी हो। ( एनम् ) इस राष्ट्र को भी ( प्र बोधय च ) खूब जगा, प्रबुद्ध और शिष्य को गुरु के समान सोते से, या अज्ञान दशा से जगा कर ज्ञानवान् कर। तू स्वयं भी (महते सौभगाय) बड़े सौभाग्य और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, (उत् तिष्ठ) ऊँचे आसन पर विराज। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (ते उपसत्ता) तेरे समीप आनेवाला, तेरा उपासक और तेरे समीप बैठने वाला अमात्य, शिष्य, मित्र आदि (मा रिषत् च) कभी कष्ट प्राप्त न करे। हे (अग्ने) विद्वन् तेजस्विन्! (ब्रह्माणः) ब्रह्म वेद और ऐश्वर्य के ज्ञानी विद्वान्गण ( ते ) तेरे आश्रय रह कर ( यशसः ) यशस्वी (सन्तु) हों। (ते अन्ये) और वे दूसरे अर्थात् तेरे शत्रु जन (मा) कभी यशस्वी न हों। अथवा (यशसः ब्रह्माणः अन्ये मा सन्तु) यशस्वी विद्वान् ब्राह्मण तेरे विरोधी शत्रु न हो जायं।

त्वाम॑ग्ने वृणते ब्राह्मणा ऽइमे शिवो ऽअ॑ग्ने संवर॑णे भवा नः।
सपत्नहा नो ऽअभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) राजन्! तेजस्वी पुरुष! ( त्वां ) तुझको ( इमे ब्राह्मणाः ) ये ब्रह्म के जाननेहारे विद्वान् ब्राह्मण लोग ( वृणते ) वरण करते हैं, अपना नेता स्वीकार करते हैं। हे ( अग्ने ) अग्ने! तेजस्विन्! तू ( नः ) हमारे ( संवरणे ) वरण करलेने पर ( शिवः ) हमारे प्रति कल्याण और सुख का देनेहारा ( भव ) हो। और तू ( सपत्नहा ) शत्रुओं का नाशक और (अभिमाति-जित् च) गर्वीले, दुष्ट पुरुषों को विजय करनेहारा होकर ( स्वे गये ) अपने गृह और विजित राष्ट्र में ( अप्रयुच्छन् ) कभी प्रमाद न करता हुआ ( जागृहि ) सदा सावधान होकर पहरेदार के समान जागता रह।

इहैवाग्ने ऽअधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचितो निकारिणः।
क्षत्रम॑ग्ने सुयम॑मस्तु तुभ्य॑मुपसत्ता व॑र्द्धतां ते ऽअनिष्टृतः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! हे राजन् ! तू ( इह एव ) यहां ही इस राष्ट्र में, या पद पर ( रयिम् ) धन ऐश्वर्य को (अधि धारय) धारण कर। और ( पूर्वचितः ) तेरे पूर्व परिचित जन ( निकारिणः ) तेरा अपमान करने में समर्थ पुरुष भी ( त्वा मा निक्रन् ) तेरा निरादर न करें। अथवा—( पूर्वचितः ) पूर्व ही प्राप्त अधिक विज्ञानवान् पुरुष और (कारिणः) निरन्त कर्मशील, उद्योगी जन ( त्वा मा नि क्रन् ) तुझे नीचे न गिरादें, तुझे राजसिंहासन से न उतार दें। ( तुभ्यम् ) तेरी रक्षा के लिये तेरा ( क्षत्रम् ) वीर्य और क्षात्रबल ( सुयमम् ) उत्तम प्रबन्ध में व्यवस्थित ( अस्तु ) हो। ( ते उपसत्ता ) तेरे समीप बैठा हुआ मन्त्री, आदि आश्रित प्रजाजन भी ( अनिस्तृतः ) किसी प्रकार क्षति को प्राप्त न होकर, सुरक्षित रह कर ( वर्धताम् ) सदा वृद्धि को प्राप्त हो।

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सᳬ रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व।
सजातानां मध्यमस्था ऽएधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥ ५ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने ! तेजस्विन् ! राजन् ! तू ( क्षत्रेण ) क्षात्रबल, क्षत अर्थात् त्रुटि के पूर्ण करने वाले, धन और प्रजा को क्षय होने से बचाने वाले राज्य से ( सु-आयुः, स्व-आयुः ) अपने उत्तम आयु को ( संरभस्व ) प्राप्त कर, अपने जीवन को सुरक्षित रख। हे अग्ने ! राजन् ! ( मित्रेण ) अपने स्नेही, मित्र राजा और धार्मिक विद्वान् पुरुषों से ( मित्रधेये ) मित्रता के बनाये रखने का ( यतस्व ) यत्न कर। और ( सजातानाम् ) कुल, शील, राज्य और ऐश्वर्य और पद में समान प्रतिष्ठा वाले पुरुषों के बीच में ( मध्यमस्थाः ) मध्यम राजा के रूप में सबको चल तोलने में समर्थ होकर ( एधि ) रह। हे ( अग्ने ) विद्वन् ! राजन् ! तू ( राज्ञाम् ) राजाओं के बीच में ( विहव्यः ) विशेष आदर से स्तुति योग्य और विशेष आदर से बुलाये जाने योग्य होकर ( इह ) इस राष्ट्र में ( दीदिहि ) प्रदीप्त, तेजस्वी होकर चमक।

अति॒ निहो॒ऽ अति॒ स्रिधो॒ऽत्यचि॑त्ति॒मत्यरा॑तिमग्ने ।
विश्वा॒ ह्य॑ग्ने दुरि॒ता सह॒स्वाथा॒स्मभ्य॑ꣳ स॒हवी॑राꣳ र॒यिं दाः ॥६॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! तू ( निहः अति ) प्रजाके घातकों को दवा कर, ( स्रिधः अति ) निन्दित आचार व्यवहार वालों को दवाकर, ( अचित्तिम् ) अज्ञानी और मूर्ख या हृदय-हीन को दवा कर और ( अरातिम् ) अदानशील शत्रु को दवा कर ( विश्वा दुरिता ) समस्त प्रकार के दुष्ट आचरणों को ( सहस्व ) विनष्ट कर। ( अथ ) और ( अस्मभ्यम् ) हमें ( सहवीराम् ) वीर पुत्रों और वीर सैनिकों सहित ( रयिम् ) राष्ट्र और ऐश्वर्य का ( दाः ) प्रदान कर।

अ॒ना॒धृ॒ष्यो जा॒तवे॑दा॒ऽअनि॑ष्टृतो वि॒राड॑ग्ने क्षत्र॒भृद्दी॑दिही॒ह ।
विश्वा॒ऽआशाः॑ प्रमु॒ञ्चन्मानु॑षीर्भि॒यः शि॒वेभि॑र॒द्य परि॑ पाहि नो वृ॒धे ॥७॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने ! राजन् ! सभापते ! तू ( अनाधृष्यः ) दूसरे से कभी अपमान करने एवं पराजय करने योग्य न हो। तू ( जातवेदाः ) विद्यावान् ऐश्वर्यवान्, ( अनिस्तृतः ) अहिंसित, ( विराट् ) विशेषरूप से तेजस्वी, ( क्षत्रभृत् ) क्षात्र-बल को पालन और धारण करने हारा होकर ( इह ) इस राष्ट्र में ( दीदिहि ) हमें प्रेम कर या प्रकाशमान होकर रह। और ( मानुषीः भियः ) समस्त प्रकार के मनुष्यों को या मनुष्यों से होने वाले भयों को ( प्र मुञ्चन् ) छोड़ कर और अन्यों को भी भय से मुक्त करता हुआ ( नः ) हमारी ( विश्वाः आशाः ) सब आशाओं, मनोरथों को और दिशाओं को और उनमें रहने वाली प्रजाओं को ( अद्य ) अब, निरन्तर ( नः वृधे ) हमारी वृद्धि के लिये ( परिपाहि ) पालन कर।

बृह॑स्पते सवितर्बो॒धयै॑न॒ꣳ सꣳशि॑तं चि॒त्सं॑त॒राꣳ सꣳ शि॑शाधि ।
व॒र्धयै॑नं मह॒ते सौभ॑गाय॒ विश्व॒ऽएन॒मनु॑ मदन्तु दे॒वाः ॥ ८ ॥

भा०—हे ( बृहस्पते ) बड़े लोकों के पालक, बड़े राज्यों और राज-कार्यों के पालक, अधिष्ठातः ! बृहस्पते ! विद्वन् ! हे ( सवितः ) सूर्य के समान तेजस्विन् ! राजन् ! आचार्य ! तू (एनं) इस अपने अधीन प्रजाजन और शिष्य को ( संशितम् ) और अच्छी प्रकार तप, और विद्या-अभ्यास द्वारा तीक्ष्ण, बुद्धिमान् करके ( संबोधय ) अच्छी प्रकार ज्ञानवान् कर। ( संतराम् सं शिशाधि ) अच्छी प्रकार इसका शासन कर और उपदेश कर। ( एनं ) उसको ( महते सौभगाय ) बड़े भारी सौभाग्य, उत्तम लक्षण, चरित्र और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (वर्धय) बढ़ा। ( एनम् अनु ) इसको देखकर इसके पीछे २ (देवाः) समस्त विद्वान् पुरुष और उसको चाहनेवाले प्रेमी तथा विजयेच्छुजन भी ( अनु मदन्तु ) आनन्द प्रसन्न हों।

अमुत्र भूयादध यद्यमस्य बृहस्पते ऽअभिशस्तेरमुञ्चः।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः॥ ९॥

भा०—हे (बृहस्पते) बृहत् राष्ट्र के पालक! और विद्वन्! ( यत् ) जो ( यमस्य ) राष्ट्र के नियन्ता राजा को ( अमुत्र भूयात् ) अमुक, दूसरे देश में होने वाले ( अभिशस्तेः ) अपराध, अपवाद, लोक निन्दा से और ( अध ) और ( यत् ) भी जो अयुक्त बात हो उससे उसको ( अमुञ्चः ) छुड़ा। हे ( अग्ने ) राजन्! ( अश्विना ) विद्या में पारंगत 'अश्वी' नामक अधिकारीजन ( देवानां भिषजा ) विद्वान् पुरुषों में वैद्यों के समान सब राज्यगत दोषों के उपाय करने में कुशल होकर ( शचीभिः ) अपनी शक्तिशाली सेनाओं से ( अस्मा ) इस राष्ट्र में ( मृत्युम् ) मृत्यु या मारनेवाले दुष्ट जन को ( प्रति औहताम् ) यत्नपूर्वक दूर करें।

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ १०॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २०। २१॥

ऊर्ध्वा ऽअस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीँष्यग्नेः।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥ ११ ॥

[ ११—१२ ] द्वादश आप्रियः। प्रजापतिरग्निर्देवता। उष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—(अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के जिस प्रकार ऊपर जलते हुए काष्ठ उज्ज्वल, तेजवान् होते हैं उसी प्रकार ( समिधः ) प्रकाशक, उत्तम ज्ञान से उसकी बुद्धि को चमकाने वाले जन भी (ऊर्ध्वाः भवन्ति) उच्चपद पर विराजमान होते हैं। और उस अग्नि रूप प्रजापालक परमेश्वर और राजा के ( शुक्राः ) शुद्ध करने वाले ( शोचींषि ) तेज भी ( ऊर्ध्वाः ) सबके ऊपर विद्यमान् होते हैं। ( सुप्रतीकस्य ) सुन्दर उज्ज्वल मुख वाले, उत्तम ज्ञानवान् ( सूनोः ) पुत्र और शिष्य के समान सौम्य स्वभाव वाले, अथवा सबके प्रेरक आदित्य के समान तेजस्वी ईश्वर और राजा के तेज ( द्युमत्तमानि ) अति ऐश्वर्यवान् अति उज्ज्वल हों।

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥ १२ ॥

भा०—( तनूनपात् ) शरीरों को न गिरने देने वाला, ( असुरः ) प्राणों में रमण करने वाला, ( देवः ) शक्ति देने और ज्ञान के देखने वाला जीव ( देवेषु देवः ) श्रोत्र आदि पदार्थ द्रष्टा उपकरणों में ( देवः ) सबका अध्यक्ष है वह ( मध्वा ) ज्ञान से ( घृतेन ) और प्रकाश से ( पथः ) अपने जीवन के मार्गों को ( अनक्तु ) प्रकाशित करे।

वायु के पक्ष में—शरीरों को न गिरने देने वाला ( असुरः ) बलवान् ( देवः ) दिव्य गुणवाला सर्वत्र व्यापक, ( देवेषु देवः ) अग्नि आदि पदार्थों को शक्ति देने वाला, ( मध्वा ) मधुर ( घृतेन ) जल से ( पथः ) मार्गों को ( अनक्तु ) सींचे, वृष्टि करे।

राजा के पक्ष में—विस्तृत राष्ट्र का पालक, (विश्ववेदाः) समस्त ऐश्वर्य वाला, (असुरः) बलवान्, ऐश्वर्यवान्, ( देवेषु देवः ) दानशीलों में सब से अधिक दानशील, ( देवः ) सबका द्रष्टा, ( मध्वा घृतेन ) मधुर आकर्षण और तेज से, सौम्यता और प्रखरता दोनों से ( पथः ) प्रजा के व्यवस्थापक मार्गों, राजनियमों को ( अनक्तु ) प्रकाशित करे।

परमेश्वर के पक्ष में—सब शरीरों का रक्षक होने से 'तनूनपात्' है, सर्वज्ञ होने से 'विश्ववेदा', सब सूर्यादि का प्रकाशक होने से 'देवों का देव', सर्वप्रद होने से 'देव' और सबके प्राणों का और ऐश्वर्यों का दाता होने से [ वसु-र ] 'असुर' है। वह ( मध्वा ) मधुर आनन्द से और ( घृतेन ) प्रकाशमय ज्ञान से हमारे जीवन के समस्त ऐहिक और पारलौकिक मार्गों को वेदोपदेश द्वारा प्रकाशित करे।

मध्वा॑ यज्ञं न॑क्षसे प्रीणा॒नो न॒राश॒ꣳसो॑ ऽअग्ने।
सु॒कृद्दे॒वः स॑वि॒ता वि॒श्ववा॑रः ॥ १३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्! राजन्! तू ( यज्ञम् ) परस्पर के आदान प्रतिदान व्यवहार और प्रजा-पालन-रूप यज्ञ को, ( मध्वा ) मधुर चित्ता-कर्षक वचन से, या सुन्दर, मधुर रूप से ( नक्षसे ) व्याप्त है। यदि राजा की व्यवस्था न हो तो प्रजा के परस्पर व्यवहार बड़े कर्कश और दुःखदायी हों, व्यवस्था होने से वे सौम्य होजाते हैं। तू (नराशंसः) विद्वानों का प्रशंसक और सर्व साधारण से स्तुति योग्य, या सबको शिक्षा देने हारा और ( प्रीणानः ) सबको तृप्त और प्रसन्न करने हारा हो। तू स्वयं ( सुकृत् ) शुभ कार्यों का करने वाला, (सविता) सबका प्रेरक और (विश्ववारः) सबको वरने या स्वीकारने वाला, सब से वरने योग्य, या सबका रक्षक एवं सब बुरे पदार्थों का वारण करने हारा हो।

अच्छा॒यमे॑ति॒ शव॑सा घृ॒तेने॑डा॒नो वह्नि॒र्नम॑सा।

अग्निं स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥ १४ ॥

भा०—( अयम् वह्निः ) यह राज्य-भार को वहन करने में समर्थ पुरुष, ( शवसा ) बल से, ( घृतेन ) तेज से और ( नमसा ) दुष्टों को नमाने या दमन करने वाले बल से ( ईडानः ) स्तुति योग्य होता हुआ ( अच्छ एति ) प्राप्त होता है। ( अध्वरेषु प्रयत्सु ) हिंसा रहित, प्रजा के पालन कार्यों के प्रारम्भ होजाने पर ( स्रुचः ) स्रुवे जिस प्रकार अग्नि को उद्दीप्त करते हैं उसी प्रकार ( स्रुच् ) दानशील प्रजाएं अपने अंशों से ( अग्निम् ) इस नायक को प्रदीप्त तेजस्वी और बलवान् करें।

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः सऽईं मन्द्रा सुप्रयसः ।
वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥ १५ ॥

भा०—जो ( वसुः ) प्रजाओं को बसानेहारा, ( वसिष्ठः ) सबसे अधिक ज्ञानवान्, (वसुधातमः) बसनेवाली प्रजाओं का धारण पोषण करनेवाला, सबको ऐश्वर्य देनेवाला है। वह ( अस्य अग्नेः ) इस अग्नि, अग्रणी नामक पद के ( महिमानम् ) महान् सामर्थ्य को ( यक्षत् ) प्राप्त करे और ( सः ) वही ( सुप्रयसः ) उत्तम अन्नादि योग्य पदार्थों से सम्पन्न धनाढ्य पुरुष के ( मन्द्रा ) आनन्दप्रद सुखों को ( ईम् यक्षत् ) भी प्राप्त करे।

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः ।
उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥ १६ ॥

भा०—( द्वारः ) द्वार जिस प्रकार गृह के स्वामी को आने और जाने देते हैं और गृहस्वामी के ऐश्वर्य के अनुसार ही सजते हैं, उसी के इच्छानुसार खुलते और बंद होते हैं। और ( देवीः ) स्त्रियां जिस प्रकार गृहस्वामी के ऐश्वर्यानुसार सजती और उसी के आज्ञानुसार कार्य, धर्माचरण आदि करती हैं उसी प्रकार ( अस्य ) इस ( अग्नेः ) ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष के ( अनु ) अनुकूल उसके पीछे, ( देवीः द्वारः )

विजयशील शत्रु वारक सेनाएं और ( विश्वे ) समस्त पुरुष ( व्रता ) नाना सत्य भाषण आदि कर्मों को ( ददन्ते ) धारण करते हैं और ( उरुव्यचसः ) महान् व्यापक सामर्थ्य वाले इसके ही ( धाम्ना ) तेज, ऐश्वर्य से और पराक्रम या पद से वे स्वयं ( पत्यमानाः ) ऐश्वर्यवान्, समृद्ध हो जाते हैं ।

ते ऽअंस्य योषणे दिव्ये न योना ऽउषासानक्ता ।
इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ १७ ॥

भा०—( ते ) वे दोनों स्त्री और लक्ष्मी, घर की शोभा का आश्रय स्थान स्त्री और राज्यलक्ष्मी दोनों ( उषासा नक्ता न ) दिन और रात्रि के समान ( दिव्ये योषणे ) दिव्य, उत्तम गुणवती और दानशील दो स्त्रियां हैं । वे दोनों ( नः इमं यज्ञम् ) हमारे इस यज्ञ और राष्ट्र को ( अध्वरम् ) अविनष्ट रूप में ( अवताम् ) पालन करें ।

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यावहोरात्रे' इत्यादि २८।...यजु० ।

दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् ।
कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥ १८ ॥

भा०—( दैव्या होतारो ) विद्वानों, आप्त प्रसिद्ध विद्या, कला कौशल की शिक्षा देने में कुशल ( नः अध्वरम् ) हमारे विनष्ट होनेवाले ( ऊर्ध्वम् ) सबके ऊपर विद्यमान् उन्नत 'यज्ञ' राज्यव्यवस्था का ( अभिगृणीतम् ) सब प्रकार से उपदेश करें । और वे दोनों ( अग्नेः ) ज्ञानवान्, अग्रणी नायक पुरुष की ( जिह्वाम् ) मुख, वाणी की अथवा ( जिह्वाम् ) वश-कारिणी व्यवस्था की शिक्षा दें । और ( नः ) हम प्रजाजनों को ( सु-इष्टिम् ) उत्तम फल देनेवाली व्यवस्था ( कृणुतम् ) करें ।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ सदन्त्विडा सरस्वती भारती ।
मही गृणाना ॥ १९ ॥

भा०—( मही ) बड़ी, उच्च गुणोंवाली, ( देवीः ) ज्ञान की प्रकाशक, ( गृणाना ) उत्तम उपायों का उपदेश देती हुई (इडा, सरस्वती, भारती) इडा, सरस्वती, और भारती, पृथ्वी, वाणी और तेज को धारण करने-वाली ( तिस्रः ) तीनों सभाएं ( इदं बर्हिः ) इस महान् प्रजा या राष्ट्र पर ( आ सदन्तु ) आकर विराजें, ये तीनों सभाएं शासन करें ।

तन्न॑स्तुरीप॒मद्भु॑तं पुरु॒क्षु त्वष्टा॑ सु॒वीर्य॑म् ।
रा॒यस्पोषं॒ वि ष्य॑तु॒ नाभि॑म॒स्मे ॥ २० ॥

भा०—( त्वष्टा ) अति दीप्तिमान्, अति शीघ्रता से सर्वत्र व्यापने-वाला, शीघ्रगामी । शिल्पज्ञ पुरुष ( नः ) हमें ( तुरीपम् ) वेग से पहुंचा देने और प्राप्त होनेवाले ( अद्भुतम् ) आश्चर्यकारक ( पुरुक्षु ) नाना प्रकार के पदार्थों में विविध प्रकार से विद्यमान ( सुवीर्यम् ) उत्तम वीर्य या बलयुक्त ( रायस्पोषम् ) धनैश्वर्य के पोषण करनेवाले ऐश्वर्य को ( अस्मे नाभिम् ) हमारे राष्ट्र के बीच में ( वि ष्यतु ) प्रदान करे ।

वन॑स्पते॒ऽव॑ सृजा॒ ररा॑ण॒स्त्मना॑ दे॒वेषु॑ ।
अ॒ग्निर्ह॒व्यꣳ श॑मि॒ता सू॑दयाति ॥ २१ ॥

भा०—हे ( वनस्पते ) सेवन करने योग्य राष्ट्र के पालक ! (शमिता) शान्तिदायक, राष्ट्र के उपद्रवों को शान्त करदेने में समर्थ, ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी, सेनानायक ( हव्यं ) ग्रहण करने योग्य राष्ट्र आदि ऐश्वर्य को ( सूदयाति ) तुझे प्रदान करे । और तू ( त्मना ) स्वयं ( देवेषु ) विद्वान्, विजयशील पुरुषों के हाथों उसको ( रराणः ) प्रदान करता हुआ ( अव सृज ) उसको अपने अधीन रख ।

अग्ने॒ स्वाहा॑ कृणुहि जातवेद॒ इन्द्रा॑य ह॒व्यम् ।
विश्वे॑ दे॒वा ह॒विरि॒दं जु॑षन्ताम् ॥ २२ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! हे ( जातवेदः ) विद्याओं में कुशल पुरुष ! तू ( स्वाहा ) उत्तम उपदेशप्रद वाणी से ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र या राष्ट्रपति के लिये ( वृषभम् ) स्वीकार करने योग्य स्तुति एवं राष्ट्र पदाधिकार को ( कृणुहि ) कर। ( इदं हविः ) इस स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को ( विश्वे देवाः ) सभी विद्वान् शासकगण ( जुषन्ताम् ) प्राप्त करें।

पीवो॑ऽअन्ना रयि॒वृधः॑ सु॒मेधाः॑ श्वे॒तः सि॑षक्ति नि॒युता॑मभि॒श्रीः।
ते वा॒यवे॒ सम॑नसो॒ वि त॑स्थु॒र्विश्वेन्नरः॑ स्वप॒त्यानि॑ चक्रुः॥ २३॥

[ २३—२४ ] वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( नियुताम् ) नियुक्त हुए शासकों को ( अभि श्रीः ) सब प्रकार से आश्रय करने योग्य, मुख्य, पुरुष ( श्वेतः ) उनकी वृद्धि करने वाला होकर ( पीवः-अन्नाः ) पुष्टिकर अन्नों को खानेवाले, ( रयिवृधः ) ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले, ( सुमेधाः ) उत्तम बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुषों को ( सिसक्ति ) अपने साथ मिलाकर समवाय बना कर रहे। और ( ते ) वे ( समनसः ) सब एक समान चित्त होकर, ( वायवे ) अपने प्राण-स्वरूप, वायु के समान जीवनप्रद नेता के लिये ( वि तस्थुः ) विविध कार्यों पर अधिष्ठाता या अध्यक्ष होकर विराजें। और ( नरः ) नेता लोग या सर्वसाधारण मनुष्य ( विश्वा ) सब अपने ( सु-अपत्यानि ) उत्तम २ सन्तानों को ( चक्रुः ) बनावें।

रा॒ये नु यं ज॒ज्ञतू॒ रोद॑सी॒मे रा॒ये दे॒वी धि॒षणा॑ धाति दे॒वम्।
अध॑ वा॒युं नि॒युतः॑ सश्चत॒ स्वा उ॒त श्वे॒तं वसु॑धितिं निरे॒के॥२४॥

भा०—( इमे रोदसी ) पृथिवी और सूर्य के समान सम्बद्ध राजा और प्रजायें दोनों ( यं ) जिस मध्यस्थान अन्तरिक्ष में व्यापक वायु के समान दोनों के धारण पोषण करने में समर्थ पुरुष को ( राये ) ऐश्वर्य

की रक्षा के लिये ( जज्ञतुः ) प्रकट करते हैं। और ( धिषणा ) समस्त कर्म और विज्ञानों और अधिकारों को धारण करने वाली ( देवी ) स्त्री जिस प्रकार विद्वान् पतिको अपने पतिरूप से स्वीकार करती है उसी प्रकार यह राजसभा जिस ( देवम् ) विद्वान्, मार्गद्रष्टा पुरुष को ( धाति ) धारण करती या मुख्य पद पर स्थापित करती है। ( अध और जिस प्रकार (नियुतः) अश्वगण अपने 'वायु' अर्थात् प्रेरक सारथी को धारण करते हैं उसी प्रकार ( नियुतः ) नियुक्त हुए पदाधिकारी लोग जिस ( वायुम्, ) प्राण और जीवनवृत्ति के दाता अपने स्वामी को (स्वाः) अपने अपने बन्धु-जनों के समान ( सश्चत ) सेवन करते, उसका आश्रय लेते हैं ( उत ) और उस ( श्वितम् ) परम वृद्ध, आदर योग्य पुरुष को ( निरेके ) निर्भय या बहुत से जनों से बसे स्थान में, या ( निरेके ) अक्षय कोश पर ( वसु धितिम् ) समस्त ऐश्वर्य की रक्षा करने वाला बना कर ( सश्चत ) स्थापित करते हैं और स्वयं उसकी रक्षा करते हैं।

अक्षयकोष के रक्षक राजा या ख़ज़ानची को 'वायु' पद प्रदान किया जाय।

**आपो॑ ह॒ यद् बृ॑ह॒तीर्विश्व॒माय॒न् गर्भं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर॒ग्निम्। ततो॑ दे॒वाना॒ᳪ᳖ सम॑वर्त्त॒तासु॒रेकः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥२५॥**

भा०—( यत् ) जब ( बृहतीः आपः ) बड़ी भारी शक्तिशाली (आपः) प्रकृति की व्यापक तन्मात्राएं, अर्थात् सूक्ष्म कारणावयव (विश्वम्) अपने भीतर प्रवेश करने वाले परमेश्वर के सामर्थ्य को (गर्भम्) गर्भ रूप से ( दधानाः ) धारण करती हुईं ( अग्निम् ) अग्नि, सूर्य आदि तेजस्तत्व को प्रकट कर रही होती हैं ( ततः ) तब भी ( देवानाम् ) सब दिव्य शक्तियों, पृथिवी आदि पदार्थों का ( एकः ) एक ही ( असुः ) प्राणस्वरूप सबको स्वतन्त्र रूप से गति देनेहारा प्रवर्त्तक होता है। ( कस्मै ) उस सर्वकर्त्ता

( देवाय ) सबको गति देनेवाले, सर्व जगत् के प्रकाशक परमेश्वर का हम ( हविषा ) ज्ञान और स्तुति से ( विधेम ) प्रतिपादन करें ।

उसी प्रकार से राजा के पक्षमें—( बृहतीः ) बड़ी भारी, बड़े सामर्थ्य वाली, वृद्धिशील, ( आपः ) जलों के समान राष्ट्र में व्यापक, आप्त प्रजाएं ( यत् ) जब, ( विश्वम् ) उनमें प्रविष्ट होनेवाले, व्यापक, बलवान् पुरुष को ( आयन् ) प्राप्त होती हैं और ( गर्भम् ) ग्रहण करनेहारे गर्भ को स्त्री के समान, राष्ट्रैश्वर्यवान् ( अग्निम् )अग्रणी नेता को अपने बीचमें (जनयन्तीः) प्रकट कर रही होती हैं (ततः) तब वह (देवानां) समस्त विद्वान् शासकों का ( एकः ) एकमात्र ( असुः ) प्रवर्त्तक, इन्द्रियों के प्रवर्त्तक प्राण के समान होता है । ( कस्मै ) उस प्रजापालक, सर्वकर्त्ता ( देवाय ) राजा का हम ( हविषा ) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य आदि से ( विधेम ) आदर सत्कार करें ।

**यश्चि॒दापो॑ महि॒ना प॒र्यप॑श्य॒द्दक्षं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर्य॒ज्ञम् ।**
**यो दे॒वेष्वधि॑ दे॒व एक॒ आसी॒त्कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥२६॥**

[ २५—२६ ] हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापति र्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( यः चित् ) और जो ( महिना ) अपने महान् सामर्थ्य से ( दक्षं दधानाः ) बल और क्रियावेग को धारण करती हुई ( यज्ञं जनयन्तीः ) सुसंगत, नियमबद्ध संसार को प्रकट करती हुई ( आपः ) प्रकृति की सूक्ष्म तन्मात्राओं को ( परि अपश्यत् ) साक्षात् देखता, उनपर साक्षी रूप से विद्यमान् रहता है । और ( यः ) जो ( देवेषु ) समस्त क्रीड़ाशील, एवं फलाकांक्षी जीवों पर, और पृथिव्यादि कान्तिमान् लोकों पर भी ( एकः देवः ) एक अकेला सबको प्रकाशक सुखदाता परमेश्वर ( अधि आसीत् ) अधिष्ठाता रूप से विद्यमान् है, ( कस्मै ) उस विश्व के कर्त्ता-सुखकारक प्रजापति परमेश्वर को हम ( हविषा ) ज्ञान और क्रियायोगसे ( विधेम ) परिचर्या करें ।

राजा के पक्षमें—( यः चित् ) जो ( महिना ) अपने महान् सामर्थ्य से ( दक्षं दधानाः ) अपने ही बलका धारण करती हुई, ( यज्ञम् ) राष्ट्र को और राष्ट्रपति को प्रकट करती हुई ( आपः ) प्रजाओं को अध्यक्षरूप से ( परि अपश्यत् ) देखता है। और ( यः देवेषु अधिदेवः एकः ) जो एक अकेला ही सब विद्वानों और शासकों पर भी शासक है उसका हम अन्नादि से सत्कार करें।

प्र याभिर्यासि दाश्वाँसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे।
नि नो रयिꣳ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥२७॥

भा०—हे ( वायो ) सब के प्राण के समान जीवनाधार वायु! अधिकारिन्! तू ( याभिः ) जिन ( नियुद्भिः ) नियुक्त पुरुषों के साथ या जिन सेवाओं के साथ ( दाश्वांसम् ) दानशील राष्ट्र के प्रति (दुरोणे) अपने आश्रय स्थान, गृह में (इष्टये) इष्टि अर्थात् योग्य कार्य सम्पादन करने के लिये ( प्रयाति ) प्रयाण करता है ( अच्छ ) वह ठीक ही है। ( नः ) हमें ( सुभोजसं ) उत्तम अन्नादि भोग्य पदार्थों से युक्त या उत्तम रक्षावाले ( रयिम् ) ऐश्वर्य को ( नि युवस्व ) निरन्तर प्रदान कर। और ( वीरं ) वीरे, ( गव्यम् ) गौओं और ( अश्व्यम् ) अश्वों से युक्त ( राधः ) धन का भी ( नियुवस्व ) प्रदान कर।

'नियुत्' शब्द उभयलिङ्गः, इति उवटः ॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२८॥

भा०—हे ( वायो ) वायु के समान प्राणरक्षक! वायु के समान प्रचण्डता से शत्रुओं के उखाड़ देने हारे वीर! सेनापते! तू ( शतिनीभिः ) सैकड़ों पुरुषों से बनी और ( सहस्रिणीभिः ) हज़ारों से बनी ( नियुद्भिः ) शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करनेहारी सेनाओं के साथ ( नः )

हमारे ( अध्वरम् ) रक्षा करने योग्य ( यज्ञम् ) प्रजापति, सबके व्यवस्थापक, राष्ट्रपति को ( उपयाहि ) प्राप्त हो। तू ( अस्मिन् सवने ) उस राज्याभिषेक काल में ( मादयस्व ) सबको प्रसन्न कर। ( यूयम् ) आप सब लोग ( स्वस्तिभिः ) उत्तम कल्याणकारी उपायों से ( नः ) हमारी ( सदा ) सदा काल ( पात ) रक्षा करो।

नियुत्वान् वायवागह्ययꣳ शुक्रो ऽअयामि ते ।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २९ ॥

गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता । गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे (वायो) ! ज्ञानवन् ! बलवन् ! सेनापते ! तू ( नियुत्वान् ) सेनाओं का नियन्ता होकर ( आ गहि ) आ, प्राप्त हो। ( अयं ) यह मैं (शुक्रः) शुद्ध, ज्योतिष्मान्, तेजस्वी होकर (ते) तेरे पास (अयामि) प्राप्त होता हूं। तू भी ( सुन्वतः ) अभिषवन या अभिषेक करनेहारे के ( गृहम् ) गृह अर्थात् ग्रहण करनेहारे सामर्थ्य या अधीनता को (गन्तासि) प्राप्त हो।

वायो शुक्रो ऽअयामि ते मध्वो ऽअग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ३० ॥

पुरुमीढाजमीढौ ऋषी ॥ वायुर्देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे ( वायो ) वायु के समान बलवन्, सर्व प्राणाधार ! मैं ( शुक्रः ) शुद्ध तेजस्वी होकर ( दिविष्टिषु ) ज्ञान प्राप्त करानेवाली विद्वत्सभाओं में ( ते ) तेरे ( मध्वः अग्रं ) मधु, मधुर ज्ञान के ( अग्रम् ) उत्तम सार भाग को (अयामि) प्राप्त होऊँ। हे ( देव ) राजन् ! तू ( सोमपीतये ) सोम अर्थात् राष्ट्र के ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ( स्पार्हः ) अति स्पृहा, इच्छा या प्रेमवाला होकर ( नियुत्वता ) नियुक्त, शत्रु उच्छेदन में समर्थ सेनावाले सेनापति के सहित ( आ याहि ) आ।

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् ।
शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥ ३१ ॥

भा०—तू ( अग्रेगाः ) सबके आगे चलनेहारा, अग्रणी और ( शिवः ) कल्याणकारी होकर ( यज्ञप्रीः ) राष्ट्र को प्रसन्न अनुरञ्जित करके स्वयं ( वायुः ) वायु के समान बलवान् होकर ( मनसा ) अपने चित्त से ( शिवाभिः नियुद्भिः साकम् ) कल्याणकारिणी, नियुक्त सेनाओं या शक्तियों और नियुक्त पुरुषों सहित ( यज्ञम् आ गहि ) तू यज्ञ अर्थात् व्यवस्थित राष्ट्र या राष्ट्रपति के माननीय पद को प्राप्त हो ।

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ ३२ ॥

गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे ( वायो ) वायु के समान बलवान् सेनापते ! ( ये ) जो ( ते ) तेरे ( सहस्रिणः ) सहस्रों पुरुषों से अधिष्ठित ( रथासः ) रथ, या रमणकारी साधन हैं ( तेभिः ) उनसे ( नियुत्वान् ) तू विशेष शक्ति-शाली और सेना-सम्पन्न होकर ( सोमपीतये , सोम अर्थात् राष्ट्रैश्वर्य के पालन और भोग के लिये ( आ, गहि ) आ, प्राप्त हो ।

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विंशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च नियुद्भिर्वायविह ता विमुञ्च ॥३३॥

त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—हे ( वायो ) वायो ! ऐश्वर्यवन् ! हे ( स्वभूते ) स्वयं ऐश्वर्यवन् ! तू ( एकया दशभिः च ) दस दस की एक ( द्वाभ्याम् विंशती= विंशत्या च ) या बीस २ की दो और ( तिसृभिः त्रिंशता च ) तीस २ की तीन, ( नियुद्भिः ) सभाओं और सेनाओं से ( इष्टये ) इष्ट लाभ के लिये

( ता ) उन नाना अधिकारियों या अंगों को ( वहसे ) धारण करता है तू ( विमुञ्च ) उनको विविध कार्यों में नियुक्त कर ।

परमेश्वर के पक्ष में—हे ( स्वभूते ) जगत् रूप अपनी ही विभूति से युक्त अथवा हे राजन् ! तू ११ से, २२ से और ३३ से राष्ट्र एवं जगत् के नाना कार्यों को धारण करता है । उनको विविध कार्यों में लगा ।

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवांᳬस्या वृणीमहे ॥३४॥

भा०—हे ( ऋतस्पते ) सत्यपालक ! जगत्पालक ! ज्ञानपालक ! सत्य राष्ट्रपालक ! ( वायो ) बलवन् ! हे ( त्वष्टुः ) तेजस्वी राजा के ( जामातः ) जमाई के समान उसको स्वयं उत्पादित सेना के पते ! हे ( अद्भुत ) आश्चर्य कर्मकारक ! अभूतपूर्व बलशालिन् ! हम तेरे ( अवांसि ) रक्षा-साधनों को ( आवृणीमहे ) सब प्रकार से वरण करते हैं, चाहते हैं ।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाऽइव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ ३५ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती ।

भा०—हे शूरवीर पुरुष ! हे परमेश्वर ! हे स्वामिन् ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तुझे हम साक्षात् स्तुति करते हैं और तेरे लिये हम (अदुग्धाः धेनवः इव) बिना दुही गायें जैसे अपने बछड़ों को दूध पिलाने के लिये सदा नमती हैं उसी प्रकार हम तेरे आगे ( नोनुमः ) नमते हैं । तू हमारा सारभूत ऐश्वर्य प्राप्त कर । और ( अस्य जगतः ) इस चराचर जगत् के ( ईशानम् ) ईश्वर, स्वामी और इस ( तस्थुषः ईशानम् ) स्थावर संसार के स्वामी ( स्वर्दृशम् ) आदित्य के समान दर्शनीय, तेजस्वी एवं सुखस्वरूप ( त्वाम् नोनुमः ) तेरी हम स्तुति करते हैं ।

न त्वावाँ२ऽ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ३६ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । सतो बृहती । मध्यमः ।

भा०—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर ! ( त्वावान् ) तेरे जैसा ( अन्यः ) और कोई ( दिव्यः न ) द्यौलोक में सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ नहीं है। और ( न पार्थिवः त्वावान् अन्यः ) पृथिवी के पदार्थों में भी तेरे जैसा कोई और नहीं है। ( न जातः ) न अभी तक पैदा हुआ है और ( न जनिष्यते ) न पैदा होगा। हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ( इन्द्र ) साक्षात् दर्शनीय ! परमेश्वर ! हम ( वाजिनः ) ज्ञानवान्, अन्नवान् और ऐश्वर्यवान् होकर ( अश्वायन्तः ) अश्व और ( गव्यन्तः ) गौओं के समान कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों की विशेष कामना करते हुए या उन पर वश करते हुए ( त्वा हवामहे ) तेरी स्तुति करते हैं।

राजा के पक्ष में—( न त्वावान् अन्यः दिव्यः ) तेरे जैसा उत्तम गुणवान्, तेजस्वी कोई न राजसभा में, ( न पार्थिवः ) न पृथिवी में कोई ( न जातो न जनिष्यते ) न पैदा हुआ है, न आगे पैदा होगा। हम (वाजिनः) ऐश्वर्यवान् होकर भी ( गव्यन्तः अश्वायन्तः त्वा हवामहे ) गौओं और घोड़ों की इच्छा करते हुए तेरी शरण आते, तुझे राजा स्वीकार करते हैं।

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ३७ ॥

ऋ० ६ । ४६ । १ ॥

शंयुर्ऋषिः । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान तेजस्विन्, राजन् ! ( कारवः ) उत्तम कर्मों और शिल्पों को करनेवाले विद्वान् पुरुष ( वाजस्य सातौ ) ऐश्वर्य और अन्न की प्राप्ति के लिये ( वृत्रेषु ) विघ्नकारियों के उपस्थित हो

जाने पर मेघों में सूर्य के समान ( सत्पतिम् ) सज्जनों के प्रतिपालक ( त्वाम् इत् हि ) तुझको ही हम उसी प्रकार ( हवामहे ) स्मरण करते हैं, बुलाते हैं जिस प्रकार (नरः) लोग (काष्ठासु) दूर की सीमाओं और दिशाओं को पार करने के लिये ( अर्वतः ) अश्व को याद करते हैं।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो ऽअद्रिवः।
गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र संकिर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ ३८ ॥
ऋ० ६ । ४६ । २ ॥

स्वराड् बृहतीः । निषादः ॥

भा०—हे ( वज्रहस्त ) खड्गहस्त ! शत्रुवारक शस्त्रास्त्र युक्त सेनाओं के वशकारिन् ! ( अद्रिवः ) प्रस्तर सेवने शस्त्रों वाले, अथवा अभेद्य शिला के समान दुर्गवाले ! हे ( चित्र ) आश्चर्य कर्म करनेहारे ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! ( सः त्वं ) वह तू ( धृष्णुया ) शत्रुओं को धर्षण करने वाले सामर्थ्य और ( महः ) महान् बलवान् ( स्तवानः ) स्तुति किया जाकर ( गाम् ) गौ और ( रथ्यम्, अश्वम् ) रथ में लगने योग्य अश्व और ( जिग्युषे ) विजयशील पुरुष ( सत्रा ) रक्षाकारी ( वाजम् ) विज्ञान और ऐश्वर्य ( न ) भी ( संकिर ) प्रदान कर।

कया नश्चित्र ऽआ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ३९ ॥ ऋ० ४ । ३१ । १ ॥

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( चित्र ) अद्भुत कर्म करनेहारे वीर पुरुष ! तू ( सदावृधः सखा ) सदा बढ़ाने हारे पुरुष का मित्र है। तू ( कया ऊती ) किस रक्षण सामर्थ्य से और ( कया ) किस ( वृता ) सदा विद्यमान् ( शचिष्ठया ) अतिशक्ति शाली रक्षा से ( नः ) हमारा (सदावृधः) सदा वृद्धिशील (सखा) मित्र ( आभुवत् ) बना रह सकता है। अथवा—( कया ) सुख देनेहारी,

अतिशक्ति मती ( वृता ) व्यवहार शैली और ( ऊती ) रक्षा द्वारा तू हमारा सदा वृद्धिशील मित्र बना रहता है।

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑नां॒ मꣳहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः ।
दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑ ॥ ४० ॥ ऋ० ४ । ३१ । २ ॥

निचृद् गायत्री । षड्जः । इन्द्रो देवता । वामदेव ऋषिः ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! ( मदानां ) हर्षजनक पदार्थों में से ( मंहिष्ठः ) सब से उत्तम ( अन्धसः ) भोग योग्य राष्ट्र का ( कः ) कौन-सा विशेष अंश या स्वरूप ( त्वा मत्सत् ) तुझे सब से अधिक सुखी और हर्षयुक्त करता है। जिससे ( दृढा चित् ) दृढ़ ( वसु ) वास योग्य पुरों को भी ( आरुजे ) तोड़ने को समर्थ करता है, वही अंश तुझे प्राप्त हो।

अ॒भी षु णः॒ सखी॑नामवि॒ता ज॑रितॄ॒णाम् ।
श॒तं भ॑वास्यू॒तये॑ ॥ ४१ ॥ ऋ० ४ । ३१ । ३ ॥

भा०—हे इन्द्र राजन् ! तू ( अभि ) साक्षात् ( नः ) हम ( सखीनाम् ) मित्रों और ( जरितॄणाम् ) स्तुति और उपदेश करनेहारे विद्वान् पुरुषों का ( सु-अविता ) उत्तम रक्षक है। और ( ऊतये ) रक्षा करने के लिये भी तू ( शतं ) सैकड़ों प्रकार से समर्थ ( भवासि ) हो जाता है।

य॒ज्ञाय॑ज्ञा वो॒ऽअ॒ग्नये॑ गि॒रागि॑रा च॒ दक्ष॑से ।
प्रप्र॑ व॒यम॒मृतं॑ जा॒तवे॑दसं प्रि॒यं मि॒त्रं न शं॑सिषम् ॥ ४२ ॥
ऋ० ६ । ४८ । १ ॥

बृहती । मध्यमः । शंयुर्ऋषिः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! ( यज्ञे यज्ञे ) प्रत्येक यज्ञ, संग्राम और सभा में और ( गिरा गिरा च ) प्रत्येक वाणी से ( दक्षसे ) बलवान्, बुद्धिमान्, ( अग्नये ) ज्ञानी, परमेश्वर और विद्वान् अग्रणी नायक राजा को (वयम्) हम लोग ( अमृतम् ) अविनाशी, नित्य ( जातवेदसम् ) ज्ञानवान्,

ऐश्वर्यवान्, ( प्रियम् मित्रं न ) प्रिय मित्र के समान ( प्र प्र शंसिषम् ) प्रशंसा करें ।

पाहि नो॑ अग्न॒ एक॑या पा॒ह्यु॒त द्वि॒तीय॑या ।
पाहि गी॒र्भिस्ति॒सृभि॑रूर्जां पते पा॒हि च॑त॒सृभि॑र्वसो ॥ ४३ ॥

ऋ० ८ । ४६ । ६ ॥

गर्ग ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक, ज्ञानी विद्वन् ! ( नः ) हमें ( एकया ) एक शिक्षा से ( पाहि ) पालन कर । ( उत ) और ( द्वितीयया ) दूसरी अध्यापन क्रिया से भी ( पाहि ) पालन कर ( तिसृभिः गीर्भिः ) तीन वाणियों से भी ( पाहि ) पालन कर । ( ऊर्जां पते ) सब अन्नों, बलों और पराक्रमों के पालक ! ( वसो ) सबको बसानेहारे ! तू ( चतसृभिः ) हमें चारों वाणियों से ( पाहि ) रक्षा कर । ( एकया ) ऋग्वेदरूप प्रथम वाणी (द्वितीयया) दो ऋक् और यजुर्वेद स्वरूप, (तिसृभिः) तीन ऋग्, यजुः, साम और ( चतसृभिः ) चारों ऋग्, यजुः, साम और अथर्व से हमारी रक्षा कर ।

अथवा—साम 'दान' भेद और दण्ड इन चारों उपायों से, चारों प्रकार की आज्ञाओं से हमारा पालन कर । मित्रों में साम, लोभियों में दान, शत्रुओं में भेद और दुष्टों पर दण्ड वाणी का प्रयोग कर के राष्ट्र की रक्षा कर ।

ऊ॒र्जो नपा॑त॒ꣳ स हि॒ नायम॑स्म॒युर्दाशे॑म ह॒व्यदा॑तये ।
भु॒वद्वाजे॑ष्ववि॒ता भु॒वद्वृ॒ध उ॒त त्रा॒ता त॒नूना॑म् ॥ ४४ ॥

ऋ० ६ । ४८ । २ ॥

अग्निर्देवता । स्वराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! ( सः ) वह तू ( ऊर्जः नपातम् ) बल पराक्रम को कभी नष्ट न होने देनेवाले, सदा बलवान् सुसज्ज पुरुष को सदा (हिन) बढ़ा, उन्नत पद पर स्थापित कर। ( अयम् ) वह ( अस्मयुः ) हमारी ही उन्नति चाहने वाला हो। और उसके ( हव्यदातये ) ग्राह्य पदार्थों के देनेवाले, या स्तुति योग्य दानशील या उपदेश करने वाले अन्नादि दान के योग्य पदार्थ को ( दाशेम ) अन्नादि पदार्थ प्रदान करें। वह ( वाजेषु ) संग्रामों में ( अविता ) रक्षक हो और वही ( वृधे ) वृद्धि के लिये हमारे ( तनूनाम् ) शरीरों का ( त्राता ) रक्षक ( भुवत् ) हो।

संवत्सरो॑ऽसि परिवत्सरो॑ऽसीदावत्सरो॑ऽसीद्वत्सरो॑ऽसि वत्सरो॑ऽसि। उषस॑स्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते॑ कल्पन्तामर्द्धमासास्ते॑ कल्पन्तां मासा॑स्ते कल्पन्तामृतव॑स्ते कल्पन्ताᳬसंवत्सरस्ते॑ कल्पताम्। प्रेत्या ऽएत्यै सं चाञ्च प्र च॑ सारय। सुपर्णचिद॑सि तया॑ देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥ ४५ ॥

अग्निर्देवता। निचृदतिकृतिः। ऋषभः॥

भा०—हे ( अग्ने ) सूर्य के समान तेजस्विन् ! सूर्य जिस प्रकार पांच वर्ष वाले युग में संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर और वत्सर इन पंचरूपों में परिवर्तित होता है इसी प्रकार तू भी ( संवत्सरः असि ) तेरे संग समस्त प्राणी आकर बसते हैं, तुझे प्रेम से सब अभिवादन करते और स्तुति करते हैं इसलिये तू 'संवत्सर' है। ( परिवत्सरः असि ) चारों ओर घेर कर तेरे इर्दगिर्द तेरी शरण में लोग आवसते हैं, चारों ओर तू स्तुति और अभिवादन किया जाता है, इसलिये तू 'परिवत्सर' है। ( इदावत्सरः असि ) अन्न के द्वारा तू सबको बसाता है, इससे तू 'इदावत्सर' है। (इद्वत्सरः असि) तू इस लोक को बसाता है इससे, अथवा जल आदि से तू लोकों का पालन करता है इससे तू 'इद्वत्सर' है। ( वत्सरः असि ) तू

पुत्रों के समान सब को आनन्द प्रसन्न रखता है, उनको ऐश्वर्य प्रदान करता है इससे तू 'वत्सर' है। इस प्रकार राजा को संवत्सर प्रजापति के समान तुलना करके अब उसके अंगों की तुलना भी करते हैं। (ते उषसः कल्पन्ताम्) वर्ष की जिस प्रकार ३६५ उषाएं होती हैं इसी प्रकार तेरी उषाएं, अर्थात् दुष्टों के दमन और राष्ट्र के व्यवहार प्रकाशक कार्य को समृद्ध करनेवाली शक्तियां नित्य बढ़ें। (अहोरात्राः ते कल्पन्ताम्) वर्ष के दिनों और रातों के समान तेरे राज्य में स्त्री पुरुषों की वृद्धि हो। (अर्ध मासाः ते कल्पन्ताम्) अर्ध मासों के समान तेरे राज्य में अह्लादकारी, समृद्ध विद्वानों की वृद्धि हो। (मासाः ते कल्पताम्) वर्ष के मासों के समान तेरे राज्य में आदित्य के समान तेजस्वी विद्वान् बढ़ें। (ऋतवः ते कल्पन्ताम्) ऋतुओं के समान तेरे राष्ट्र में राजसभा के सदस्यों की वृद्धि हो। (संवत्सरः ते कल्पताम् ; तेरा पूर्ण संवत्सर स्वरूप प्रजापति पद उन्नति को प्राप्त हो। (प्र इत्य) आगे बढ़कर और (आ इत्य च) पुनः लौट २ कर तू (सम् अञ्च) अपनी शक्तियों को अच्छी प्रकार प्राप्त कर और (प्रसारय च) आगे भी बढ़ा। तू (सुपर्णचित् असि) आदित्य के समान उत्तम पालन करनेवाले साधनों से युक्त, एवं उत्तम पुष्टिकारी पदार्थों का संग्रह करने वाला है। अथवा—सुपर्ण, उत्तम बलवान् पक्षी जिस प्रकार आकाशमार्ग को भली प्रकार तय करने के लिये अपने पंखों को संकोच करता और फैलाता है और सुन्दर, सुखदायी किरणों वाला सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों को नित्य नियम से फैलाता और संकुचित करता है उसी प्रकार हे अग्ने! राजन्! सेनापते! तू भी अपनी सेनाओं को (सम् अञ्च) संयुक्त कर, संकुचित कर और फिर (प्रसा रयच) फैला। इस प्रकार तू (सुपर्णचित्) गरुड़ पक्षी और सूर्य के समान है। अथवा प्राण जिस प्रकार (प्र इत्य आ इत्य च) एकबार बाहर जाता फिर लौटकर आता है (सम् अञ्च,

प्र सारय च ) इसी प्रकार तू भी अपने राष्ट्र से एकबार विदेश में प्रयाण कर एकवार पुनः अपने देश में आकर ( समूअञ्च ) धन को संग्रह कर और उसको राष्ट्र में विस्तारित कर । इस प्रकार शरीर में प्राण के समान राष्ट्र के बीच में तू राष्ट्र का प्राण, जीवन होकर उसको चैतन्य किये रह । ( तया देवतया ) उस चित्स्वरूप शरीरधारिणी देवता, आत्मा के समान रूप से तू ( अंगिरस्वत् ) अंग २ में रस रूप होकर राष्ट्र के प्रत्येक भाग में बलरूप होकर ( ध्रुवः ) निश्चित, स्थिर होकर ( सीद ) विराज, सिंहासन पर बैठ ।

॥ इति सप्तविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते

यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तविंशोऽध्यायः ।



# ॥ अथाष्टाविंशोऽध्यायः ॥

प्रजापत्यश्विसरस्वत्य ऋषयः ।

॥ ओ३म् ॥ होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि । दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ऽओजिष्ठश्चर्षणीसहा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १ ॥ ऋग्वेद परिशिष्टे ॥

बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( होता ) आहुति प्रदान करने वाला पुरुष 'होता' जिस प्रकार ( समिधा ) समित् अर्थात् काष्ठ से यज्ञ करता है उसी प्रकार ( इडस्पदे ) पृथिवी के सर्वोच्च मान, आदर प्रतिष्ठा के पद अर्थात् केन्द्र स्थान पर ( समिधा ) अच्छी प्रकार चमकने वाले तेज से ( इन्द्रम् ) शत्रुओं के नाशक और ऐश्वर्य के वर्धक वीर पुरुष को ( यक्षत् ) अधिकार प्रदान करे । (पृथिव्याः नाभौ) पृथिवी की नाभि अर्थात् राष्ट्र में (अधि) अधिष्ठाता होकर ( दिवःवर्ष्मन् ) आकाश से सुखों की वर्षा करने वाले मेघ के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले पद पर ( चर्षणीसहाम् ) समस्त मनुष्यों को अपने पराक्रम से वश करने वालों में ( ओजिष्ठः ) सब से अधिक पराक्रमी, तेजस्वी पुरुष ही ( समिध्यते ) सब से अधिक प्रकाशित होता है । वही ( आज्यस्य ) विजयलक्ष्मी, ऐश्वर्य का ( वेतु ) भोग करे । हे ( होतः ) अधिकार प्रदान करने में समर्थ विद्वन्! तू (यज) ऐसे पुरुष को ही अधिकार प्रदान कर । देखो अ० २१ । २९ ॥

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम् । इन्द्रं देवꣳस्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २ ॥

तनूनपादिन्द्रो देवता । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—( होता ) अधिकारों को प्रदान करने हारा विद्वान् 'होता' ( तनूनपातम् ) समस्त राष्ट्रवासियों के शरीरों की रक्षा करने हारे, उनको क्षति न पहुंचाने वाले ( अपराजितं ) कभी भी न हारे हुए, ( जेतारम् ) विजेता, ( स्वर्विदम् ) सुख समृद्धि का लाभ करने और कराने वाले, ( देवम् ) विद्वान्, दानशील, राष्ट्र के द्रष्टा पुरुष को ( इन्द्रम् ) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् पद पर ( यक्षत् ) संगत करे, स्थापित करे, उसको यह पद प्रदान करे। वह ( मधुमत्तमैः ) अत्यन्त मधु, ज्ञान और मनोहर चित्ताकर्षक, मधुर ( पथिभिः ) उपायों, मार्गों और व्यवस्था-मर्यादाओं से ( नाराशंसेन तेजसा ) समस्त नेता पुरुषों को आदेश करने में समर्थ, एवं सब द्वारा स्तुति योग्य तेज से, पराक्रम से ( आज्यस्य ) राष्ट्र के ऐश्वर्य को ( वेतु ) प्राप्त करे। हे ( होतः ) विद्वन्! ऐसे पुरुष को (यज) तू अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१ । ३० । ३१ ॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम्।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३॥

स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—( होता ) सर्वाधिकारप्रद विद्वान् ( इडाभिः ) उत्तम प्राणियों से ( ईडितम् ) स्तुत, प्रशंसा प्राप्त, ( आजुह्वानम् ) शत्रुओं को मैदान में ललकारने वाले, प्रतिस्पर्द्धी, ( अमर्त्यम् ) साधारण मनुष्यों से विशेष बलशाली, ( इन्द्रम् ) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष को ( यक्षत् ) अधिकार प्रदान करे। वह ( देवः ) विद्वान्, कान्ति और तेज वाला, सबको रुचिकर, ( देवः ) विजिगीषा या विजय की इच्छा करने वाले वीर सैनिकों से ( सवीर्यः ) वीर्यवान् होकर (वज्रहस्तः) शस्त्रास्त्रों को अपने हाथ में अर्थात् वश में लेकर ( पुरन्दरः ) शत्रुओं के गढ़ तोड़ने में समर्थ होकर ( आज्यस्य वेतु ) राज्य को प्राप्त करे। हे ( होतः यज ) विद्वन्! तू अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१ । ३२ ॥

होता॑ यक्षद्ब॒र्हिषीन्द्रं॑ निषद्व॒रं वृ॑ष॒भं नर्या॑पसम् ।
वसु॑भी रु॒द्रैरा॑दि॒त्यैः स॒युग्भि॑र्ब॒र्हिरास॑दद्वे॒त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥४॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( होता ) सबको अधिकार प्रदान करने वाला विद्वान्, ( निषद्वरम् ) राज-सभा में विराजने वालों में से सब से श्रेष्ठ, ( वृषभम् ) अति-बलवान् ( नर्यापसम् ) सब मनुष्य-हितकारी कार्यों के करने वाले ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्य और उत्तम गुणों वाले पुरुष को ( वर्हिषि ) महान्, वृद्धि युक्त, प्रजाओं के राष्ट्र के न्यायासन पर ( यक्षत् ) संगत करे । वह ( वसुभिः ) प्रजा को सुख से बसाने वाले, ( रुद्रैः ) दुष्टों को दण्डों द्वारा रुलाने वाले ( आदित्यैः ) आदित्य के समान तेजस्वी, उत्तम सद्गुण प्रदान करने हारे और परस्पर आदान प्रतिदान करने वाले ( सयुग्भिः ) साथ योग देने वाले विद्वान् पुरुषों के साथ मिलकर अथवा वसु, रुद्र, आदित्य, क्रमसे एक, दो, तीनों वेदों के अभ्यासी और योगी पुरुषों सहित ( वर्हिः ) न्यायासन या राज-सभा के ऊपर ( आसदत् ) विराजे और ( आज्यस्य ) राष्ट्र के ऐश्वर्य, उत्तम न्याय, शासन को प्राप्त करे । हे ( होतर्यज ) विद्वन् योग्य पुरुष को अधिकार प्रदान कर । देखो अ० २१ । ३३ ॥

होता॑ यक्ष॒दोजो॒ न वी॒र्य॑ᳪ सहो॒ द्वार॒ इन्द्र॑मवर्द्धयन् । सुप्राय॒णाऽ अ॒स्मिन्य॒ज्ञे वि श्र॑यन्तामृता॒वृधो॒ द्वार॒ऽइन्द्रा॑य मी॒ढुषे॒ व्यन्त्वाज्य॑-स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ५ ॥

भा०—( होता ) योग्य पुरुषों को योग्याधिकार देनेवाला विद्वान् ( यक्षत् ) योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान करे । ( ओजः ) जल प्रवाह के समान वेगवान् ( वीर्यम् ) वीर्य और ( सहः ) शत्रु को नाश करनेवाला बल और ( द्वारः ) शत्रुओं को वारण करनेवाली वीर सेनाएं ये सभी ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् राजा को ( अवर्धयन् ) बढ़ाते हैं । ( द्वारः ) द्वार जिस

प्रकार ( यज्ञे ) यज्ञ गृह में ( सुप्रायणाः ) सुख से निर्गम और प्रवेश कराने हारे बनाये जाते हैं उसी प्रकार ( ऋतावृधः ) सत्य व्यवहारों को बढ़ाने वाले या ऋत अर्थात् राष्ट्र के बल और ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले ( द्वारः ) शत्रुओं के दारक वीर पुरुष ( सुप्रायणाः ) शुभ, उच्च पदाधिकार स्थानों पर विराजमान होकर ( अस्मिन् ) इस ( यज्ञे ) परस्पर सुव्यवस्थित राष्ट्र में ( वि श्रयन्ताम् ) विविध रूपों में स्थापित किये जायं। वे (मीढुषे) नाना सुखों और ऐश्वर्यों से प्रजाओं का सेचन करनेवाले, वीर्यवान् ( इन्द्राय ) इन्द्र, राजा और राज्य के ( आज्यस्य ) ऐश्वर्य को ( व्यन्तु ) प्राप्त हों। उसका भोग करें। हे ( होतः ) विद्वन् ! तू ( यज ) योग्य पुरुषों को 'द्वार' अर्थात् शत्रुनिवारक पदों पर ( यज ) अधिकार प्रदान कर।

'द्वारः'—द्रवतेर्वा, जवतेर्वा, वारयतेर्वा। नि०।

**होता॑ यक्षत्सु॒दुघे॒ इन्द्र॑स्य धे॒नू सु॒दुघे॑ मा॒तरा॑ म॒ही। स॒वा॒तरौ॒ न तेज॑सा व॒त्सम् इन्द्र॑मवर्द्धतां वी॒तामाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ६ ॥**

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

**भा०**—( होता यक्षत् ) पदाधिकारों का दाता विद्वान् योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान करे। (सुदुघे धेनू वत्सं न) उत्तम दूध देते ही दो गौएं या माता पिता दोनों मानो जैसे एक बच्चे को दूध पिलाकर पालते हों उसी प्रकार प्रतापयुक्त, तेजस्विनी, उषाओं की तरह समस्त व्यवहारों को प्रकाशित करने वाली ( मही ) बड़ी ( मातरौ ) माता पिता के समान पूज्य एवं राष्ट्र को बनाने वाली और राजा को उत्पन्न करने वाली, ( सवातरौ ) वेगवान् वायु के समान बलवान् पुरुषों से युक्त होकर ( तेजसा ) तेज से, ( वत्सम् इन्द्रम् ) स्तुति योग्य इन्द्र को ( अवर्धताम् ) बढ़ावें और वे दोनों ( आज्यस्य ) राष्ट्र के ऐश्वर्य को ( वीताम् ) प्राप्त करें। हे ( होतः ) होतः विद्वन् ! ( यज ) तू अधिकार प्रदान कर।

ये दोनों उषाएं, उषासानक्ता, उषा और रात्रि हैं। दोनों समान हैं जो राज्य की दो शक्तियों की प्रतिनिधि हैं। एक विजयशालिनी और दूसरी राष्ट्र को शान्तिपूर्वक व्यवस्थित करनेवाली। अथवा एक ज्ञान विज्ञान की प्रवर्त्तक दूसरी संस्थापक।

**होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः।**
**कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त ऽइन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज॥७॥**

जगती। निषादः॥

भा०—( होता यक्षत् ) अधिकारदाता विद्वान् योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान करे। ( दैव्या ) विद्वान् और विजिगीषु पुरुषों में श्रेष्ठ ( होतारा ) उत्तम सुख के देनेवाले, (भिषजा) उत्तम रोग चिकित्सकों के समान (सखायौ) मित्र होकर (हविषा) उत्तम अन्नादि उपायों से इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा को (भिषज्यतः) शारीरिक और मानसिक तथा राष्ट्र संबंधी रोगों और कष्टों से निवृत्त रखते हैं। वे ( कवी ) उत्तम दूरदर्शी ( देवौ ) स्वयं ज्ञान के प्रदाता, ( प्रचेतसौ ) उत्तम ज्ञानवान्, उत्तम चित्तोंवाले होकर ( इन्द्राय ) इन्द्र, राष्ट्रपति के इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य युक्त पद को ( धत्तः ) रक्षा और पालन करते हैं वे भी ( आज्यस्य ) राष्ट्र के ऐश्वर्य को ( वीताम् ) प्राप्त करें। हे ( होतः यज ) विद्वन्! तू उनको अधिकार प्रदान कर।

**होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती**
**भारती महीः। इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥८॥**

निचृज्जगती। निषादः॥

भा०—( होता यक्षत् ) होता, सर्वाधिकारप्रद विद्वान् अधिकार प्रदान करे। शरीर में ( त्रिधातवः ) तीन धातुओं वाले ( त्रयः ) तीन ( अपसः ) सब कर्म करनेवाले पदार्थ शरीर के लिये ( भेषजम् ) उत्तम

रोग विनाशक होते हैं उसी प्रकार ( तिस्रः देवीः ) तीन विद्वानों की परिषदें राष्ट्र के लिये ( भेषजम् ) उसके दोषों को दूर करने वाली औषध के समान हैं। वे ( इडा, सरस्वती, भारती ) इडा, सरस्वती भारती, इन तीन नामोंवाली ( महीः ) बड़े आदर योग्य हैं। वे तीनों ( हविष्मतीः ) विविध विज्ञानों से युक्त होकर, ( इन्द्रपत्नीः ) शरीर में तीन धातुएं जैसे जीव का पालन करती हैं उसी प्रकार ये भी राष्ट्र में 'इन्द्र' के पद की पालन करनेहारी, राजा के अधिकार की रक्षा करनेहारी होती हैं। वे तीनों भी ( आज्यस्य व्यन्तु ) समस्त राष्ट्र के ऐश्वर्य को अपने अधीन करें। हे ( होतः यज ) विद्वन् ! तू अधिकार प्रदान कर।

**होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजंꣳ सुयजं घृतश्रियम्। पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ६ ॥**

निचृद्-अतिजगती। निषादः ॥

भा०—(त्वष्टारं) शरीर में कान्ति के उत्पन्न करने वाले, (भिषजं) रोग के निवारक, ( सुयजं ) उत्तम पुष्टि बलदायक, ( घृतश्रियम् ) शोभा को धारण करनेवाले, ( पुरुरूपं ) नाना रूपों में प्रकट, ( सुरेतसम् ) उत्तम वीर्य को जिस प्रकार मनुष्य सदा धारण करे उसी प्रकार ( होता ) सबको अधिकार पद प्रदान करनेहारा होता नामक विद्वान् पुरुष ( त्वष्टारम् ) तेजस्वी, ( इन्द्रं ) शत्रुनिवारक, ( देवम् ) दानशील राष्ट्र निरीक्षक, देख भाल करने में चतुर, ( भिषजं ) उसकी त्रुटियों को दूर करनेवाले, ( सुयजम् ) उत्तम संगति, व्यवस्था करने में कुशल, ( घृतश्रियम् ) समस्त राज्य-लक्ष्मी को धारण करने में समर्थ, ( पुरुरूपम् ) नाना प्रकार के पशु, मनुष्य, मृगादि के स्वामी, ( सुरेतसम् ) उत्तम वीर्यवान्, ( मघोनम् ) ऐश्वर्यवान् पुरुष के ( इन्द्राय ) 'इन्द्र' पद के लिये ( यक्षत् ) अधिकार प्रदान करे। ( त्वष्टा ) वह तेजस्वी पुरुष ( इन्द्रियाणि ) इन्द्रोचित समस्त

अधिकारों को और बलों, सामर्थ्यों को ( वेतु ) प्राप्त करे, उनका उपभोग करे और (आज्यस्य) राष्ट्र के प्राप्त समृद्धि को वह भी भोगे। (होतर्यज) हे विद्वन्! तू उनको अधिकार प्रदान कर।

**होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम्। मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १० ॥**

स्वराड् जगती। निषादः ॥

भा०—( होता ) योग्य अधिकार प्रदान करने वाला विद्वान् पुरुष 'होता' ( वनस्पतिम् ) किरणों के पालक सूर्य के समान तेजस्वी वनों के समान या वने बसे प्रजागणों के स्वामी, सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों के स्वामी, महावृक्ष के समान सबको अपने आश्रय में लाकर सुख देनेवाले, ( शमितारम् ) सबको शान्ति के दाता, ( शतक्रतुम् ) सैकड़ों विद्वानों से युक्त ( धियः ) प्रज्ञा और कर्म के ( जोष्टारम् ) सेवन करने वाले ( इन्द्रियम् ) इन्द्र के पद के योग्य, पुरुष को भी ( यक्षत् ) पदाधिकार प्रदान करे। वह ( मध्वा ) मधुर ज्ञान से और ( सुगेभिः ) सुख से गमन करने योग्य, ( पथिभिः ) पालन करने योग्य मार्गों और मर्यादाओं से ( यज्ञम् ) प्रजा के पालन करने वाले प्रजापति के राज्य को ( सम् अंजन् ) अच्छी प्रकार सुशोभित करता हुआ उसको ( स्वदाति ) सुख से भोगे। वह ( मधुना ) ज्ञानपूर्वक ( घृतेन ) तेजसे ( आज्यस्य ) राज्यैश्वर्य को ( वेतु ) प्राप्त करे। हे ( होतः ) होतः! ( यज ) तू उसको अधिकार प्रदान कर।

**होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम्। स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥ ११ ॥**

निचृतशक्वरी। धैवतः ॥

भा०—( होता ) योग्याधिकार प्रदाता पुरुष ( इन्द्रं यक्षत् ) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक वीर पुरुष को योग्य पद प्रदान करे। ( आज्यस्य स्वाहा ) 'आज्य', राज्य, अथवा संग्रामोपयोगी अधिकार उत्तम रीति से प्रदान करे। ( मेदसः स्वाहा ) स्नेहयुक्त अथवा हिंसा, करने और राष्ट्र की वृद्धि करनेवालों को उत्तम रीति से अधिकार दे। ( स्तोकानां स्वाहा ) छोटे २ पदाधिकारियों पर उसका उत्तम अधिकार हो। ( स्वाहाकृतीनां स्वाहा ) उत्तम वचन बोलनेवाले विद्वानों पर उसको अधिकार प्रदान करे। ( हव्यसूक्तीनाम् स्वाहा ) आदान योग्य, उत्तम स्तुति वचनों को स्वीकार करने का उत्तम रीति से अधिकार दे। ( स्वाहा ) उत्तम रीति से ( आज्यपाः ) पूर्वोक्त राज्यैश्वर्य का पालन और वृत्ति से भोग करनेवाले सभी ( देवाः ) विद्वान् पुरुष और ( इन्द्रः ) राज ( आज्यस्य व्यन्तु ) राष्ट्र को प्राप्त करें। हे ( होतः यज ) विद्वन्! तू अधिकार प्रदान कर।

दे॒वं ब॒र्हिरिन्द्र॑ᳪ᳭ सु॒दे॒वं दे॒वैर्वी॒रव॑त् स्ती॒र्णं वेद्या॑मवर्द्धयत्। वस्तो॑र्वृ॒तं प्राक्तोर्भृ॒तᳪ᳭ रा॒या। ब॒र्हिष्म॑तो॒ऽत्य॑गा॒द्वसु॑वने वसु॒धेय॑स्य वे॒तु॒ यज॑ ॥ १२ ॥

अश्विनावृषी। निचृदति जगती। निषादः ॥

भा०—(बर्हिः) इस लोकवासिनी प्रजाएं और वैश्यगण स्वयं (वीरवत्) वीर पुरुषों से युक्त और (वेद्याम्) प्राप्त पृथिवी पर फैल कर (देवं) दिव्य गुण वाले उत्तम दानशील, विजयी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, इन्द्र पद पर विराजमान, ( सुदेवम् ) उत्तम विद्वान्, दाता पुरुष को ( देवैः ) अन्य विद्वानों और विजयी पुरुषों द्वारा ( अवर्धयत् ) बढ़ावें। जिस प्रकार जंगल के कुशादि तृण दिन के समय ऊपर से काटलेने पर रात्रि के शीतल समय में बढ़ जाते हैं उसी प्रकार ( वस्तोः ) दिन के प्रखर ताप के समान राजा के

शत्रुओं के प्रति प्रचण्डता के युद्धादि के अवसरों पर ( वृतम् ) काट लिया जाकर भी ( अक्तोः ) रात्रि के समान शान्तिदायक राज्यव्यवस्था में ( राया ) धनैश्वर्य से ( प्रभृतम् ) खूब अच्छी प्रकार हृष्ट पुष्ट होकर ( बर्हिष्मतः ) प्रजा के पालक अधिकारी राजाओं, भूपतियों से भी ( अति अगात् ) अधिक समृद्धिशाली होजाता है। अर्थात् ऐश्वर्य विभूति से उनको भी लांघ जाता है। तब ( वसुवने ) वह ऐश्वर्य वसु अर्थात् राष्ट्र के भोक्ता राजा के ( वसुधेयाय ) ऐश्वर्य के रखने के स्थान कोष के लिये ( वेतु ) प्राप्त हो। प्रजा की समृद्धि के अवसर से प्राप्त ऐश्वर्य राष्ट्रवासी जनों के हित के लिये राष्ट्र कोष में जमा हो। हे ( यज ) होतः ! तू ऐसी आज्ञा प्रदान कर।

देवीर्द्वार॒ इन्द्रꣳ॑ सङ्घा॒ते वी॒ड्वीर्याम॑न्नवर्द्धयन्। आ व॒त्सेन॒ तरु॑णेन कुमा॒रेण॑ च मीव॒ता पार्वा॑णꣳ रे॒णुक॑काटं नुदन्तां वसुव॒ने वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ १३ ॥

भुरिक् शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—( देवीः ) जिस प्रकार कान्तिमती और पति की कामना करने वाली स्त्रियां ( यामन् ) उपयम अर्थात् विवाह के अवसर पर (इन्द्रं) अपने इच्छानुकूल पति की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार विजय की कामना या इच्छा करनेवाली विजिगीषा से युक्त, ( द्वारः ) शत्रुओं का वारण करने वाली सेनाएं (संघाते वीड्वीः) संघात अर्थात् परस्पर एकत्र होकर व्यवस्था द्वारा अति बलशालिनी होकर ( यामन् ) राज्य के नियम व्यवस्था के कार्य में ( इन्द्रम् ) राजा या सेनापति को गृह द्वारों के समान बढ़ाते हैं। वे सेनाएं ( वत्सेन ) स्तुति योग्य, ( तरुणेन ) हृष्ट पुष्ट, जवान, ( कुमारेण ) बुरी तरह शत्रुओं को मारनेवाले या ब्रह्मचारी ( मीवता ) हिंसक, घातप्रतिघात में कुशल पुरुषों द्वारा शत्रुओं का ( अर्वाणं )

तीव्र वेगवान् अश्व, और घुड़सवार सैन्य की ( रेणुककाटम् ) ऐसे वेग से कि उनकी उड़ी धूल से कूप आदि भी भर जायं ( अप नुदन्ताम् ) परे भेजें। इस प्रकार विजय से प्राप्त ( वसुवते ) ऐश्वर्य के प्राप्त करने वाले राजा के ( वसुधेयस्य ) ऐश्वर्य कोष को वे भी और शत्रुवारक सेनाएं भी ( व्यन्तु ) भोग करें। ( यज ) हे होतः ! ऐसी आज्ञा प्रदान कर।

देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम्। देवीर्विशः प्रायासिष्टाᳪ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १४ ॥

भा०—(देवी) दिव्य गुणों वाली, व्यवहार और आनन्द विनोद करनेवाली ( उषासानक्ता ) दिन और रात्रि के समान प्रजाओं को उद्योग और विश्राम देनेवाली, ( इन्द्रम् ) इन्द्र, राजा को भी ( प्रयति यज्ञे ) उत्तम रीति से सञ्चालित राज्य-कार्य में ( अह्वेताम् ) बुलावें। उसमें उसको सदा सचेत रखें। वे ( देवीः ) राजा को ( विशः ) प्रजाओं को ( प्र अयासिष्टाम् ) उत्तम रीति से प्राप्त कर हैं, उनको उद्योगों में लगाती रहें, वे दोनों ( सुप्रीते ) उत्तम रीति से प्रसन्न होकर ( सुधिते ) सुखपूर्वक हित करनेवाली होकर ( वसुवते ) धन के विभाग कार्य में ( वसुधेयस्य ) राज्यकोष को ( वीताम् ) उपभोग करें। ( यज ) हे होतः ! उनको यह आज्ञा प्रदान कर।

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्द्धताम्। अयाव्यन्याघा द्वेषाᳪस्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १५ ॥

भुरिगतिजगती। निषादः ॥

भा०—(देवी) दिन और रात्रि दोनों जिस प्रकार सूर्य से प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार राजा के प्रभाव से उत्तम गुणों को धारण करने वाले स्त्री पुरुष या दो संस्थाएं ( जोष्ट्री ) राष्ट्र की यथायोग्य सेवा करने वाली, ( वसुधिती )

बसने योग्य राष्ट्र और ऐश्वर्य को धारण करनेवाली दोनों ( इन्द्रम् ) राजा के ( अवर्धताम् ) शक्ति और ऐश्वर्य को बढ़ावें। ( अन्या ) दोनों में से एक ( अघा ) पापी ( द्वेषांसि ) प्रजा को दुःख देनेवाले, द्वेषसे, वर्त्ताव न करने वाले शत्रुओं को ( अयावि ) दूर हटावे। और ( अन्या ) दूसरी ( वार्याणि ) वरण करने योग्य ( वसू ) ऐश्वर्यों को ( वक्षत् ) धारण करे। और वे दोनों ( शिक्षिते ) सुशिक्षित ( यजमानाय ) दानशील राज्य को दृढ़ करने वाले ( वसुवने ) ऐश्वर्य के भोक्ता राजा के ( वसुधेयस्य ) धन को ( वीताम् ) प्राप्त करें।

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्द्धताम्। इषमूर्जमन्यावक्षत्सग्धिꣳ सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १९ ॥

भुरिगाकृतिः। निषादः ॥

भा०—( सुदुघे पयसा ) उत्तम रीति से दूध देनेवाली दो गौवें जिस प्रकार अपने स्वामी या बछड़ों को पुष्ट करती हैं, उसी प्रकार दो संस्थाएँ ( देवी ) उत्तम अन्न आदि देने में समर्थ, ( दुघे ) समस्त राष्ट्र को पूर्ण करनेवाली, ( ऊर्जाहुती ) अन्न देनेवाली, ( पयसा ) पुष्टिकारक अन्न से ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति और राष्ट्र की ( अवर्धताम् ) वृद्धि करें। उन दोनों में से भी ( अन्या ) एक संस्था ( ऊर्जम् ) राष्ट्र के अन्न को धारण करे। और ( अन्या ) दूसरी ( सग्धिम् सपीतिम् ) सब के एक समान जल आदि पान के योग्य पदार्थों को ( आवक्षत् ) प्राप्त करावे। वे दोनों ( नवेन ) नये अन्न से ( पूर्वम् ) पूर्व विद्यमान अन्न को और ( पुराणेन ) पुराने गत वर्ष के अन्न से ( नवम् ) नये ( ऊर्जम् ) अन्न को ( अधाताम् ) सुरक्षित रक्खें। अर्थात् नया अन्न प्राप्त करके पुराने

की रक्षा करें और पुराने अन्न को प्रयोग में लाकर उसको बीज रूप में क्षेत्रों में डलवा कर नये अन्न को प्राप्त करें। इस प्रकार वे ( ऊर्जम् ) राष्ट्र को अन्न का ( दुयमाने ) प्रदान करती हुई, और रक्षा करती हुई ही ( ऊर्जाहुती ) राष्ट्र को अन्न सम्पत् देनेवाली होने के कारण 'ऊर्जाहुती' कहाती हैं। वे दोनों ( ऊर्जयमाने ) अन्न द्वारा बल की वृद्धि करती हुई ( शिक्षिते ) नाना विद्याओं में शिक्षा प्राप्त करके ( वार्याणि वसु ) प्राप्त करने योग्य नाना उत्तम ऐश्वर्यों को ( वसुवने ) ऐश्वर्य के भोक्ता ( यजमानाय ) राजा के ( वसुधेयस्य ) लाभार्थ धनैश्वर्य को ( वीताम् ) प्राप्त करें और उसकी रक्षा करें। हे ( होतः यज ) होतः ! विद्वन् ! तू उन दोनों संस्थाओं को उत्तम अधिकार प्रदान कर।

**दे॒वा दैव्या॒ होता॑रा दे॒वमिन्द्रं॑मवर्द्धताम्। ह॒ताघ॑शꣳसावा॒भार्ष्टां॒ वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒तौ व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ १७ ॥**

भुरिग् जगती। निषादः॥

भा०—( देवौ ) दो विद्वान् ( दैव्या ) विद्वानों और राजा के हितकारी, ( होतारा ) उत्तम सुखों और ऐश्वर्यों के देनेवाले, ( देवम् ) विजिगीषु ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक राजा को ( अवर्धताम् ) पुष्ट करें। वे दोनों ही ( हताघशंसौ ) पाप की शिक्षा देनेवाले दुष्ट पुरुषों को नाश करके (वार्याणि) उत्तम वरण योग्य, श्रेष्ठ ( वसु ) ऐश्वर्यों को ( अभार्ष्टाम् ) प्राप्त करावें। वे दोनों ( शिक्षितौ ) उत्तम विद्याओं में शिक्षा प्राप्त करके, ( यजमानाय वसुवने ) दानशील राष्ट्र के भोक्ता राजा के ( वसुधेयस्य ) कोश योग्य ऐश्वर्य को ( वीताम् ) रक्षा करें। ( यज ) हे होतः! इन दोनों को भी अधिकार प्रदान कर।

**दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीः पति॒मिन्द्र॑मवर्द्धयन्। अस्पृ॑क्ष॒द्भार॑ती**

दिवंॐ रुद्रैर्यज्ञॐसरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १८ ॥

अतिजगती । निषादः ॥

भा०—( देवी ) देवियां जिस प्रकार अपने ( पतिम् ) पालक पति के वंश की वृद्धि करती हैं, उसी प्रकार ( तिस्रः देवीः ) दिव्य गुण वाली तीन संस्थाएँ भी ( पतिम् इन्द्रम् ) अपने पति इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा की ( अवर्धयन् ) वृद्धि करें। उनमें से एक ( भारती ) 'भारती' नामक 'संस्था' है। ( दिवम् ) द्यौलोक को जिस प्रकार सूर्य रूप समस्त नक्षत्र ही नक्षत्र जगमगा देते हैं उसी प्रकार 'भारती' नामक परिषत् ( दिवम् अस्पृक्षत् ) परम विद्वान् पुरुषों की बनी 'दिव' नाम सर्वोच्च राजसभा को संयोजित करती है। और ( सरस्वती ) सरस्वती नामक विद्वत्सभा ( रुद्रैः ) दुष्टों के रुलाने वाले तीव्र बलवान् ज्ञानोपदेश करना भी पुरुषों से ( यज्ञम् अस्पृक्षत् ) सुव्यवस्थित राष्ट्र का प्रबन्ध करती है और तीसरी ( इडा ) इडा ( वसुमती ) वसु अर्थात् राष्ट्र के वासियों को अपने में धारण करने वाली जनपद सभा या प्रजासभा, ( गृहान् ) गृहों का प्रबन्ध करती है। (वसुवने) राजा के (वसुधेयस्य व्यन्तु) राष्ट्र धन की ये तीनों संस्थाएं वृद्धि या रक्षा करें। हे होतः! ( यज ) तीनों सभाओं की तू योजना कर। भारती, 'विद्वत् सभा' ज्ञान की वृद्धि करती है, 'सरस्वती' वह राजसभा है जो शासक पुरुषों के निमित्त उपद्रवकारी, दुष्टों के दमन के उपायों का विचार करती है। तीसरी 'इडा' है जो गृहों की या जनपद वासियों की व्यवस्था करती है।

देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिवन्धुरो देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणेदस्य

होत्रमर्हतो बृहस्पतिस्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १९ ॥

कृतिः । निषादः ॥

भा०—( देवः ) विजीगीषु, तेजस्वी ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( नराशंसः ) समस्त नेता पुरुषों द्वारा प्रशंसा योग्य होकर ( त्रिवरूथः ) तीनों सभारूप गृहों का स्वामी, ( त्रिवन्धुरः ) तीनों के नियमों को बांधने वाला होकर (देवः) उत्तम गुणवान्, उदार दानशील, तेजस्वी, कान्तिमान् ( इन्द्रं ) इन्द्र पद को ( अवर्धयत् ) वृद्धि करता है । वह स्वयं ( शितपृष्ठानाम् ) तीक्ष्ण स्वभाव वाले, तीव्र बुद्धिवाले या श्यामवर्ण की पीठवाले, पीठ भाग पर श्याम रंग के काले गौन पहने ( शतेन ) सौ राजपुत्रों और ( सहस्रेण ) हज़ार अर्थात् अनेक सरदारों से ( आहितः ) चारों ओर से घिरा ( प्रवर्त्तते ) रहता है । ( मित्रावरुणा ) मित्र और वरुण सर्वस्नेही न्यायाधीश और 'वरुण' दुष्टों का वारक पुलिस विभाग का अध्यक्ष दोनों शरीर में प्राण अपान के समान इसके ( होत्रम् अर्हतः ) अधिकार को प्राप्त करके कार्य सम्पादन करते हैं । ( बृहस्पतिः ) बृहती वेद वाणी का पालक विद्वान् पुरुष ( स्तोत्रम् ) ज्ञानोपदेश का कार्य करता है । और ( आध्वर्यवम् ) हिंसा रहित मित्र पद या राज्य शासक के कार्य के ( अश्विनौ ) अश्विगण, ( अर्हतः ) योग्य सम्पादन करते हैं । वह इन्द्र ( वसुवने ) राष्ट्र कार्य के प्राप्त करने हारे इन्द्र पद के ( वसुधेयस्य ) धन को ( वेतु ) भोग करे, रक्षा करे । ( यज ) हे होतः ! तू उसको अधिकार प्रदान कर ।

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्द्धयत् । दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २० ॥

निचृदतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—( देवः ) ज्ञानद्रष्टा, विजयशील, सुखप्रद, शरणप्रद, विद्वान् ( वनस्पतिः ) सर्व सेवन योग्य पदाधिकारों का पति, स्वामी, सर्वश्रेष्ठ, ऐश्वर्यों का स्वामी, ( हिरण्यपर्णः ) सुवर्ण के समान तेजो युक्त पत्रों वाले महावृक्ष के समान ( हिरण्यपर्णाः ) तेज और यश, पराक्रम युक्त पालन सामर्थ्यों और ज्ञानों से युक्त, ( मधुशाखः ) मधुर, मनोहर शाखाओं के समान ब्रह्म ज्ञानमय वेद शाखाओं से युक्त, ( सुपिप्पलः ) उत्तम ज्ञानमय फलों से भरा हुआ, विद्वान् पुरुष ( देवम् इन्द्रम् ) सर्वोत्तम ऐश्वर्यवान् राजा के पद की ( अवर्धयत् ) वृद्धि करता है। महावृक्ष जिस प्रकार ( अग्रेण ) चोटी से आकाश को छूता है उसी प्रकार अपने ( अग्रेण ) मुख्य पद से, ( दिवम् ) प्रकाशमय सूर्य को, ज्ञान को ( अस्पृक्षत् ) धारण करता है और मध्य और चरणभाग से ( अन्तरिक्षम् पृथिवीम् ) अन्तरिक्ष और पृथिवी अर्थात् रक्षक शासकों और प्रजाजनों को भी मध्यमवृत्ति और चरण, अर्थात् विनयवृत्ति से ( अदृंहीत् ) बढ़ाता है। वह ( वसुवने ) ऐश्वर्य के स्वामी राजा के ( वसुधेयस्य ) राष्ट्रैश्वर्य की ( वेतु ) रक्षा करे। ( यज ) होतः तू ऐसे विद्वान् पुरुष को अधिकार प्रदान कर।

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्द्धयत् । स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीᳬष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २१ ॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( बर्हिः ) अन्तरिक्ष अर्थात् वायु जिस प्रकार ( वारितीनाम् ) जलों के स्थान मेघों के बीच में ( इन्द्रम् देवम् अवर्धयत् ) प्रकाशमय विद्युत् को बढ़ाता है उसी प्रकार ( देवं बर्हिः ) दानशील प्रजागण, राष्ट्र, ( वारितीनाम् ) शत्रुओं को वारण करने वाली सेनाओं के बीच स्थित ( इन्द्रम् देवम् ) शत्रुनाशक राजा की वृद्धि करते हैं। वह अन्तरिक्ष के समान अधिक शक्ति सम्पन्न मुख्य प्रजागण या प्रजा के दानशील पुरुष (स्वा-

सस्थम् ) उत्तम रीति से राष्ट्र में जमकर ( इन्द्रेण ) ऐश्वर्यवान् राज के ( आसन्नम् ) अति समीप, होकर उस द्वारा ( अन्या वह्मेषि ) अन्य प्रजाओं को भी ( अभि अभूत् ) अपने अधीन कर लेते हैं। वह मुख्य प्रजाजन भी ( वसुवने ) ऐश्वर्य के स्वामी राजा के ( वसुधेयस्य ) कोष योग्य धन की रक्षा करे। हे होतः! तू उनको भी ( यज ) अधिकार प्रदान कर।

**देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २२ ॥**

त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—( अग्निः देवः ) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी विद्वान् पुरुष ( स्विष्टकृत् ) उत्तम यज्ञों या परिमित कार्यों का कर्त्ता भी ( देवम् इन्द्रम् अवर्धयत् ) देव, इन्द्र' अर्थात् राजा की वृद्धि करता है। वह (स्विष्टम्) शुभ इष्ट, इच्छानुकूल समस्त कार्यों का सम्पादन ( कुर्वन् ) करता हुआ ही ( स्विष्टकृत् ) 'स्विष्टकृत्' कहाता है। वह ( नः ) हम प्रजाजनों का भी ( अद्य ) आज ( सु-इष्टं करोतु ) उत्तम हमारे इच्छित कार्यों को करे।

**अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम्। सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन। अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन त्वामद्य ऋषे ॥ २३ ॥**

कृतिः निषादः ॥

भा०—( यजमानः ) यजमान जिस प्रकार विद्वान् पुरुष को अपना होता वरण करता है उसी प्रकार ( अयं यजमानः ) दानशील राष्ट्रवासी जन भी ( अग्निम् ) ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष को( होतारम् ) पूर्वोक्त 'होता', सर्वाधिकारों के दाता और स्वीकर्त्ता पद पर ( अद्य ) आज ( अवृणीत )

वरण करता है। और वह ( पक्तीः ) पाक करने योग्य क्रियाओं को ( पचन् ) परिपक्व करता हुआ अर्थात् जिन कार्यों के एवज में बाद में परिश्रमिक प्राप्त हो उन क्रियाओं का ( पचन् ) फलरूप से परिश्रमिक निर्धारित करता हुआ, अथवा ( पक्तीः ) परिपक्व ज्ञान वाली संस्थाओं को ( पचन् ) परिपक्व, दृढ़ करता हुआ और ( पुरोडाशं पचन् ) इसी प्रकार कार्य कर्त्ताओं के कार्यारम्भ में ही ( पुरोडाशं ) पूर्व ही देने योग्य धनको भी ( पचन् ) परिपक्व अर्थात् निश्चित करता हुआ, और ( इन्द्राय ) इन्द्र नाम पद या ऐश्वर्यमय राष्ट्र की रक्षा के लिये शत्रुओं को काट गिराने वाले प्रधान पुरुष या सैन्यबल और सेनापति को ( बध्नन् ) वेतन पर बांध कर, उसको भी स्थिर करता हुआ ( अग्निम् होतारम् अवृणीत ) विद्वान् 'होता' नामक पुरुष को वरण करे।

( इन्द्राय छागेन ) ऐश्वर्यमय राष्ट्र की रक्षा के लिये, शत्रु के काट गिरा देने वाले सैन्यबल के द्वारा ( वनस्पतिः देवः ) वनस्पतियों में श्रेष्ठ महावृक्ष के समान सर्वाश्रय राजा, ( अद्य ) आज ( सु उपस्थाः ) प्रजा द्वारा उपासना करने योग्य, आश्रय प्राप्त करने योग्य है।

हे ( ऋषे ) मन्त्रदृष्ट ! विद्वन् ! होतः ! ( मेदस्तः ) स्नेह से या सार पदार्थ को स्वीकार करके अथवा हिंसनीय शत्रु से रक्षा करके ( तम् ) उस राष्ट्र का वह पूर्वोक्त राजा ( अघत् ) भोजन के समान उपभोग करे। उसको अपना जीवनाधार समझे। हे ( ऋषे ) विद्वन् ! सर्वद्रष्टः ! (पचता) परिपाक योग्य, तेरे श्रम के एवज में प्रदान करने योग्य फलस्वरूप पदार्थों को भी वह ( प्रति अग्रभीत् ) तुझे प्रदान करे। और ( पुरोडाशेन ) पुरोडाश अर्थात् प्रारम्भ में श्रद्धा और प्रेम से भी देने योग्य पदार्थों द्वारा ( त्वाम् अवीवृधत् ) तेरी वृद्धि करे। इसी के समान देखिये अ० २१। मन्त्र ५९–६१ ॥

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम् । गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २४ ॥

स्वराड् जगती । निषादः ॥

भा०—( होता ) अधिकार देनेवाला विद्वान् पुरुष ( सम् इधानम् ) स्वयं अच्छी प्रकार प्रकाशमान, ( महत् यशः ) बड़े यश से ( सुसमिद्धं ) उत्तम गुणों से विख्यात, ( वरेण्यम् ) वरण करने योग्य, ( अग्निम् ) ज्ञानवान् ( वयोधसम् ) दीर्घ जीवन, बल, ब्रह्मचर्य को धारण करने और कराने वाले ( इन्द्रम् ) दुष्ट वासनाओं को दूर करने वाले आचार्य पुरुष को ( यक्षत् ) उच्च अधिकार प्रदान करे और वह ( गायत्रीं छन्दः ) गायत्री छन्द, ( इन्द्रियं ) इन्द्रोचित ऐश्वर्य अथवा उत्तम इन्द्रियों में बल, और ( त्र्यविम् ) मन, वाणी और देह तीनों की रक्षा करने वाले को ( गाम् ) वाणी को और ( वयः ) वीर्य और दीर्घजीवन को राष्ट्र में ( दधत् ) धारण करावे । और ( आज्यस्य वेतु, ) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा करें । हे ( होतः यज ) होतः ! विद्वन् ! तू योग्य पुरुषों को यह अधिकार प्रदान कर ।

राज्य में विद्वान् आचार्यों की स्थापना की जाय । वे गुरुमन्त्र का उपदेश करें । २४ वर्ष का ब्रह्मचर्य का पालन करावें, लोगों में दीर्घजीवन का साधन करें ।

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् । उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २५ ॥

अति जगती । निषादः ॥

भा०—( होता ) अधिकार दाता विद्वान् ( तनूनपातम् ) शरीरों के न गिरने देनेवाले, शरीरों के रक्षक ( उद्भिदं ) ज्ञान के तत्वों को

खोल २ कर बतलाने वाले, अथवा ( यं ) जिस बीज को ( अदितिः ) पृथिवी ( गर्भम् दधे ) गर्भ में धारण करती है और वह ऊपर की तह को तोड़ कर उत्पन्न होता है उसी प्रकार ( अदितिः ) माता के समान अखण्ड राजशक्ति ( यं ) जिसको अपने ( गर्भम् ) गर्भ में ( दधे ) धारण करती है ऐसे ( उद्भिदम् ) वृक्ष की तरह से उसके बीच में बढ़े हुए, स्थिर, आश्रय वृक्ष के समान, ( शुचिम् ) अति शुद्ध चरित्रवान्, ( वयोधसम् ) बल, आयु के धारक और वर्धक ( इन्द्रम् ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को ( यक्षत् ) आदरपूर्वक उत्तम पद से युक्त करे। इस प्रकार वह ( उष्णिहं छन्दः ) राष्ट्र में उष्णिक् छन्द के समान २२ वर्ष के गुरु के अधीन ब्रह्मचर्य, ( इन्द्रियं ) शारीरिक बल, ( दित्यवाहं गाम् ) दित्यवाड् बैल के समान ( वयः ) बल वीर्य को राज्य में ( दधत् ) धारण करावे। उक्त विद्वान् ( आज्यस्य वेतु ) राष्ट्र ऐश्वर्य की वृद्धि करे। हे ( होतः यज ) विद्वन् ! तू उसको योग्य पद प्रदान कर।

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यꣳ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम्। अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २८ ॥

निचृत् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—( होता ) योग्याधिकारका दाता विद्वान् ( ईडेन्यम् ) स्तुति करने योग्य, ( वृत्रहन्तमम् ) मेघ या अन्धकार को छिन्नभिन्न करने वाले सूर्य के समान अज्ञान और बाधक कारणों को दूर करने वालों में सब से श्रेष्ठ, ( इडाभिः ईड्यम् ) उत्तम वाणियों से प्रशंसा के योग्य ( सहः ) बल के कारण ( सोमम् ) सोम अर्थात्—चन्द्र के समान आह्लादक, या वायु के समान बलवान्, ( इन्द्रम् ) विद्वान् ( वयोधसम् ) दीर्घायु पुरुष को ( यक्षत् ) स्थापित करे। ( आनुष्टुभं छन्दः ) अनुष्टुप् छन्द के समान, ३२ वर्ष के ब्रह्मचर्य पूर्वक

(इन्द्रियम्) शरीर के भीतर (इन्द्रिय) वीर्य और ( पञ्चाविं गां ) ढाई वर्ष के बैल के समान ( वयः ) बलको ( दधत् ) राष्ट्र में धारण करावे। वह उक्त विद्वान् भी (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि करे। हे ( होतः यज ) विद्वन् ! तू उसे योग्य पद प्रदान कर।

होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम्। बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २७ ॥

स्वराडति जगती। निषादः ॥

भा०—( होता ) अधिकार देनेवाला विद्वान् ( सुबर्हिषम् ) उत्तम प्रजा से युक्त, ( पूषण्वन्तम् ) अच्छे पोषक अन्न और भूमि से युक्त, ( अमर्त्यम् ) अन्य मनुष्यों से कहीं अधिक, ( बर्हिषि ) आसन पर ( सीदन्तम् ) बैठे हुए के समान ( बर्हिषि सीदन्तम् ) महान् राष्ट्र पर शासक रूप से विराजमान, ( प्रिये ) प्रिय ( अमृते ) अन्न और वीर्य और जल के आश्रय पर ( वयोधसम् ) बल और दीर्घ आयु को धारण करने वाले ( इन्द्रम् ) विद्वान् पुरुष को ( यक्षत् ) उत्तम पद पर स्थापित करे। ( बृहती छन्दः इन्द्रियं ) बृहती छन्द के समान ३६ वर्ष का इन्द्रिय दमन या ब्रह्मचर्य पालन और ( त्रिवत्सं गां वयः ) तीन वर्ष के बैल के समान बल ( दधत् ) धारण करावे। वह ( आज्यस्य वेतु ) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा करे। और हे ( होतः यज ) विद्वन् ! तू उस योग्य पुरुष को पद प्रदान कर।

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम्। पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २८ ॥

स्वराट् शक्करी। धैवतः ॥

भा०—( होता ) पदाधिकार प्रदाता विद्वान् ( व्यचस्वतीः ) विशेष रूप से और विविध प्रकारों से गमन करने और फैलने वाली, (सुप्र-अयनाः) उत्तम और अच्छे पदों और अधिकारों पर स्थित, ( ऋतावृधः ) बल, राष्ट्र, और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली ( देवीः ) विजयशील, रक्षाकारिणी, ( हिरण्ययाः ) लोह के आयुधों से तेजोयुक्त ( द्वारः ) युद्ध में वेग से धावन करने प्रबल वेग से आक्रमण करने और शत्रुका वारण करने वाली, सेनाओं को राष्ट्र रूप विशाल भवन में ( व्यचस्वतीः ) विविध मार्गों से लोगों के प्रवेश निर्गम के अवकाश वाली ( सुप्रायणाः ) सुख से गुजरने योग्य, ( ऋतावृधाः ) ऐश्वर्यवर्धक, ( हिरण्ययीः ) सुवर्ण, लोहादि से भूषित, महाद्वारों के समान ( यक्षत् ) राष्ट्र में सुसंगत करे और ( वयोधसम् ) बलधारी ( ब्रह्माणम् ) महान् राष्ट्र के पोषक ( इन्द्रम् ) सेनापति को ( यक्षत् ) नियुक्त करे। ( इह ) इस निमित्त ( पंक्ति छन्दः इन्द्रियम् ) पंक्ति छन्द के समान ४० अक्षरों के समान ४० वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचर्य को और ( तुर्यवाहं गां वयः ) ४ वर्ष के वृषभ के समान बल को भी ( दधत् ) धारण करावे। वे वीर सेना और शक्तिशाली सेनापति सब ( आज्यस्य व्यन्तु ) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा और भोग करें। ( होतः यज ) हे विद्वन् ! तू उनका योग्य पद प्रदान कर।

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम्। त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ २६ ॥

निचृदतिशक्वरी। पञ्चमः ॥

भा०—( होता ) अधिकार प्रदान करने वाला पुरुष ( सुपेशसा ) शुभ, उत्तम स्वरूप वाली, ( सुशिल्पे ) उत्तम शिल्प, वाली, ( उभे ) दोनों ( नक्तोषासा न ) दिन और रात्रि के समान ( दर्शते ) दर्शनीय,

पूर्वोक्त दोनों संस्थाओं को और ( विश्वम् ) उनमें प्रविष्ट ( वयोधसम् ) बल के धारण करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को ( यक्षत् ) अधिकार प्रदान करे। ( इह ) इस कार्य में ( त्रिष्टुप् छन्दः इन्द्रियम् ) त्रिष्टुप् छन्द के ४४ अक्षरों के समान ४४ वर्षों के अक्षत वीर्य पालन या ब्रह्मचर्य और ( पष्ठवाहं गाम् वयः ) पीठ से बोझा उठाने में समर्थ और बैल के समान बल, उमर को ( दधत् ) धारण करावें। वे दोनों संस्थाएँ और उनका पालक इन्द्र ( आज्यस्य वीताम् ) राष्ट्र के ऐश्वर्य का पालन, वृद्धि और उपभोग करें। हे ( होतः यज ) हे होतः! विद्वन्! तू अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम्। जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

निचृद् अतिशक्वरी। पञ्चमः ॥

भा०—( होता ) योग्य अधिकार के देनेवाला विद्वान् ( प्रचेतसा ) उत्कृष्ट कोटि के ज्ञानवाले, ( देवानाम् ) विद्वान् पुरुषों में ( उत्तमं ) सब से ऊँचे ( यशः ) यश, वीर्य, परम ज्ञान ( होतारा ) प्राप्त करनेवाले, ( दैव्या ) सर्व विद्वानों में श्रेष्ठ, ( कवी ) दूर तक देखने वाले, दीर्घदर्शी ( सयुजा ) मिल कर परस्पर सहयोग से विचार करनेहार दो विद्वान् और ( वयोधसम् इन्द्रम् ) राष्ट्र के बल को धारण करने वाले तेजस्वी पुरुष को ( यक्षत् ) योग्य पद पर संगत करें। ( जगती छन्दः इन्द्रियम् ) जगती छन्द के ४८ अक्षरों के समान अक्षय इन्द्रिय के बल वीर्य, ब्रह्मचर्य और ( अनड्वाहं गां वयः ) शकट का बोझा उठा कर चलने में समर्थ बलवान् बलीवर्द के समान बल को ( दधत् ) धारण करावे। वे दोनों ( आज्यस्य वीताम् ) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि,

पालन और भोग करें। हे (होतः) विद्वन्! तू उनको उचित अधिकार (यज) प्रदान कर।

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पति-मिन्द्रं वयोधसम्। विराजं छन्द इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दध-द्वयन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

सरस्वती ऋषिः। तिस्रो देव्य इन्द्रश्च देवताः। भुरिक् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकार प्रदाता विद्वान् होता (पेशस्वतीः देवीः) रूपवती स्त्रियों को जिस प्रकार (वयोधसम् पतिम्) पूर्ण अवस्था को धारण करनेवाले पति को (यक्षत्) प्राप्त कराता है उसी प्रकार (हिरण्ययीः) हित और रमणीय गुणों को धारण करनेवाली (तिस्रः) तीन (बृहतीः) बड़ी २ (महीः) अति आदर योग्य (भारतीः) ज्ञान, दीप्ति और क्रियाओं में कुशल (देवीः) विद्वानों की संस्थाओं को (वयोधसम्) बल और ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य के स्वयं धारण करने और राष्ट्र में धारण कराने में समर्थ (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक पुरुष को (पतिम्) उनका पालक, पति, प्रधान पद के भोक्ता रूप से (यक्षत्) सुसंगत करे, नियत करे। वह पालक राजा (इह) इस राष्ट्र में (विराजं छन्दः) विराट् छन्द के ३३ अक्षरों के समान ३३ वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत पालन (गां) पृथिवी को (इन्द्रियं) राष्ट्र के बलवीर्य स्वरूप और (धेनुं गां न वयः) दुधार गाय के समान जान कर उस अन्न, बल को (दधत्) धारण करें। वे सब (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा और वृद्धि प्राप्ति करें। हे (होतः) विद्वन्! (यज) इनको उचित अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्द्धनं रूपाणि बिभ्रतं पृथक्

पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्। द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

भुरिक् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—योग्याधिकार देनेवाला विद्वान् 'होता' (सुरेतसम्) उत्तम वीर्यवान्, उत्पादक बल से सम्पन्न (त्वष्टारं) कान्तिमान् तेजस्वी, (पुष्टि वर्धनम्) पुष्टिकारक अन्नादि सम्पत्ति के वर्धक, (रूपाणि बिभ्रतम्) नाना प्रकार पशुओं को पालन पोषण करनेवाले, (वयोधसम्) पूर्ण दीर्घायु को धारण करनेवाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (पृथक्) पृथक् २, अलग २ नाना प्रकार के (पुष्टिम्) पुष्टियुक्त समृद्धि को (यक्षत) धारण करावे। वह राष्ट्र में (द्विपदं छन्दः) द्विपदा गायत्री के २० अक्षरों के समान २० वर्षों तक (इन्द्रियं) इन्द्रिय-संयम का पालन करावे और (उक्षाणं गां न वयः) वीर्य सेचन में समर्थ बैल के समान बल वीर्य को (दधत्) धारण करे। और (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य या वीर्य की रक्षा करे। हे (होतः यज) विद्वन्! ऐसे उत्तम पुरुष को योग्य अधिकार प्रदान कर।

अर्थात् धन, धान्य, सम्पत्ति, भूमि आदि का पृथक् अधिकार बालिग होने पर दिया जाय और वह अधिकार पुरुष को (द्विपदं छन्दः) द्विपद् छन्द अर्थात् १२ + ८=२० वर्ष के बाद प्राप्त हो। ऐसी उमर में वह ब्रह्मचारी हो, सदाचारी, कमाऊ हो, नपुंसक, निर्बल और अल्पायु न हो।

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम्। ककुभं छन्द ऽइहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

निचृद् अत्यष्टिः। गान्धारः ॥

भा०—( होता ) योग्याधिकार प्रदाता विद्वान् पुरुष ( वनस्पतिम् ) महा वट के समान सबको आश्रय देने में समर्थ, वन-पालक के समान नाना भोग्य पदार्थों या जनों के पालक, ( शमितारं ) शान्तिदायक, ( शतक्रतुम् ) सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्म सामर्थ्यों से युक्त, ( हिरण्यपर्णम् ) सुवर्ण आदि ऐश्वर्य से सबके पालन करने वाले, अथवा अति सुन्दर ज्ञान से युक्त, ( उक्थिनम् ) वेदोक्त गुरु-उपदेश को धारण करने वाले ( रशनां ) राष्ट्र के या समाज के और अपने शरीर की इन्द्रियों पर दमन को ( बिभ्रतम् ) धारण करने वाले, लंगोटबन्द मेखलाधारी, जितेन्द्रिय, (वशिम्) पूर्णवशी, ( भगम् ) ऐश्वर्यवान्, ( वयोधसम् ) बल, वीर्य और दीर्घायु के धारण करने वाले ( इन्द्रम् ) श्रेष्ठ पुरुष को ( यक्षत् ) योग्य 'वनस्पति' नामक अधिकार पद प्रदान करे। ( इह ) इस कार्य में वह (ककुभं छन्दः) ककुप् छन्द के ( ८+१२+८ ) २८ अक्षरों के समान २८ वर्ष का ( इन्द्रियम् ) इन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचर्य और ( वेहतं गाम् इव ) गर्भघातिनी गौ या ( वशां ) वेशा, बांझ गौ के समान ( वयः ) बल ( दधत् ) धारण करे। अर्थात् जिस प्रकार 'वशा' अर्थात् वंध्या गाय नाना नरों का भोग करके भी विक्षत नहीं होती और गर्भ धारण नहीं करती, इसी प्रकार वह 'वनस्पति' नामक पदाधिकारी भी नाना भोक्ताओं के आजाने पर भी सबको वश करने में समर्थ शक्तिमान् बना रहे। और जिस प्रकार गर्भघातिनी गौ नाना सांडों से भोग करके भी गर्भ में आये बीज का नाश कर डालती है उसी प्रकार इस पृथ्वी पर नाना भोक्ता राजाओं के आजाने पर भी और उन द्वारा राष्ट्र का क्रम से या एक ही काल में यथेच्छ भोग कर लेने पर भी उनके भोग के प्रभाव को न रहने दें प्रत्युत उनके भुक्त राष्ट्र को भी भरा पूरा ही बनाये रक्खे। ऐसे पुरुष को 'वनस्पति' पद पर नियुक्त करे। इसी प्रकार सेना रूप जन वनों के पालक सेनापति को भी ऐसा बनावे जो वशा के समान अन्यों के भोग के प्रभाव को जमने न दे

और शत्रु-राजाओं के किये सत चित्त को स्थिर न रहने दे। प्रत्युत गर्भ-घातिनी गौ के समान उनको गर्भ में ही नाश करदे। वह ( आज्यस्य वेतु ) राष्ट्र के युद्धोपयोगी बल, वीर्य, ऐश्वर्य की रक्षा वृद्धि करे। हे ( होतः यज ) विद्वन् होतः ! ऐसे पुरुष को तू उक्त अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्। अतिच्छन्दसं छन्द ऽइन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्वयन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

अतिशक्वरीः। पञ्चमः ॥

भा०—( होता ) योग्याधिकार दाता विद्वान् पुरुष ( स्वाहा-कृतीः ) उत्तम ज्ञान, वाणियों के उपदेश करने वाली संस्थाओं को ( यक्षत् ) योग्य अधिकार प्रदान करे। और ( अग्निम् ) ज्ञानवान्, तेजस्वी ( गृह-पतिम् ) गृह के पालक ( वरुणम् ) सर्व दोषों के वारण करने में समर्थ श्रेष्ठ पुरुष को ( कविम् ) क्रान्तदर्शी, विद्वान् ( भेषजम् ) रोगचिकित्सा में कुशल वैद्य और ( क्षत्रम् ) बल, वीर्य से सम्पन्न राज्यकर्त्ता क्षत्रिय ( वयोधसम् ) दीर्घायु, बल वीर्य, अन्न के धारक ( इन्द्रं ) राजा को (पृथक्) पृथक् २ नाना पदों पर ( यक्षत् ) नियुक्त करे। इन पदों पर नियुक्त पुरुषों में ( अतिछन्दसं छन्दः इन्द्रियम् ) क्रम से 'अति' शब्द से युक्त अति-धृति, अत्यष्टि, अतिशक्वरी और अति जगती इन चार छन्दों के क्रम से ७६, ६८, ६० और ४८ अक्षरों के समान इतने २ वर्षों का ( बृहत् इन्द्रियं ) विशाल ब्रह्मचर्य पालन और ( ऋषभं गाम् ) ऋषभ बैल के समान ( ऋषभं ) सर्वश्रेष्ठ पद को ( दधत् ) धारण करे। वे ही लोग ( आज्यस्य व्यन्तु ) राष्ट्र के ज्ञान ऐश्वर्य की वृद्धि और पालन करें। हे ( होतः यज ) विद्वन् ! उन योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान कर।

देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षु-

रिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ३५ ॥

इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( देवं ) दिव्य गुणवाला ( बर्हिः ) आकाश जिस प्रकार ( इन्द्रम् देवम् ) प्रकाशमान सूर्य को ( अवर्धयत् ) बढ़ाता है, उसके सामर्थ्य की वृद्धि करता है, उसके तेज को फैलने देता है और वहीं प्रकाश, ( इन्द्रे ) जीव में ( चक्षुः इन्द्रियं वयः दधत् ) चक्षु नामक तेजोमय इन्द्रिय को धारण कराता है उसी प्रकार ( देवम् बर्हिः ) दानशील, करप्रद प्रजा ( वयोधसम् ) बल और ऐश्वर्य के धारण करने वाले ( देवं ) तेजस्वी ( इन्द्रम् ) राजा की ( अवर्धयत् ) वृद्धि करती है । वह प्रजागण, ( गायत्र्या छन्दसा ) गायत्री छन्द अर्थात् ब्राह्मण-रूप बल से ( इन्द्रे ) ऐश्वर्यवान् राजा में ( चक्षुः इन्द्रियम् ) आँख के समान देखने वाली शक्ति को और ( वयः ) बल को ( दधत् ) धारण करावे । वह प्रजारूप गायत्री ( वसुवने ) ऐश्वर्यवान् राजा के ( वसुधेयस्य ) ऐश्वर्य का ( वसु ) पालन और भोग करे । हे होतः ! ( यज ) तू उसको यह अधिकार प्रदान कर ।

देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्द्धयन् । उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ३६ ॥

भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( देवीः द्वारः ) उत्तम प्रकाश से युक्त बड़े २ द्वार जिस प्रकार ( वयोधसम् ) दीर्घ जीवन प्रदान करनेवाली ( शुचिम् ) शुद्ध ( इन्द्रम् ) वायु को ( अवर्धयन् ) गृह में बढ़ा देते हैं । और वह वायु ( उष्णिहा छन्दसा) अंग प्रत्यंग में व्यापक स्निग्ध पदार्थ के बल से युक्त होकर (इन्द्रियम्) जीव के हितकारी ( प्राणम् ) प्राण वायु को ( इन्द्रे ) जीव में ( वयः दधत् ) दीर्घ जीवन और बलरूप से धारण कराता है उसी प्रकार (देवीः)

विजयशील ( द्वारः ) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ सेनाएं ( वयोधसम् ) शक्तिशाली ( शुचिम् ) निष्कपट ( इन्द्रम् ) सेनापति और राजा को ( अवर्धयन् ) बढ़ाती हैं, उसके बलको बढ़ाती हैं। और वह ( उष्णिहा ) अति अधिक स्नेह से युक्त ( छन्दसा ) छन्द अर्थात् रक्षा सामर्थ्य से ( प्राणम् इन्द्रियम् ) दृढ़ प्राण के समान विशेष इन्द्र पद के उचित ऐश्वर्य और बल को ( इन्द्रे दधत् ) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में धारण कराता है। अतः हे होतः विद्वन्! ( वसुवने ) ऐश्वर्य के भोक्ता राजा के ( वसुधेयस्य ) राज्य-कोष को ये विजयशील सेनाएं भी ( व्यन्तु ) पालन, वृद्धि और उपभोग करें। ( यज ) उनको तू यह अधिकार प्रदान कर।

**दे॒वी ऽउ॒षासा॒नक्ता॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्द्धताम्। अ॒नु॒ष्टुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं बल॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ ३७ ॥**

भुरिगतिजगती । निषादः ॥

**भा०**—( देवी ) जिस प्रकार पतिव्रता पति-प्रिया स्त्री ( देवम् ) अपने कामना योग्य प्रिय पति को बढ़ाती है और जिस प्रकार ( देवी ) प्रकाशयुक्त ( उषासानक्ता ) दिन और रात्रि दोनों ( इन्द्रम् ) सूर्य के ही महिमा और बल की ( अवर्धताम् ) वृद्धि करते हैं। उसी प्रकार ( देवी उषासानक्ता ) विजय कामना से युक्त, उत्तम व्यवहार में कुशल, तेज से शत्रुओं को दाह या संताप देनेवाली 'उषा' नामक संस्था और अव्यक्त रूप से व्यवस्था करने वाली 'नक्त' नामक राजसंस्था दोनों ( वयोधसम् ) बलधारी ( इन्द्रम् ) इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा और राष्ट्र के ( अवर्धताम् ) बल की वृद्धि करती हैं। वह राजा ( इन्द्रे ) समृद्ध राज्य में ( अनुष्टुभा ) प्रजा के अनुकूल राजा और राजा के अनुकूल प्रजा के परस्पर प्रशंसा और गुण स्तुतियुक्त ( छन्दसा ) परस्पर रक्षा व्यापार से ( इन्द्रियं बलं दधत् )

राजोचित उत्तम बलको धारण कराता है। हे होतः विद्वन् ! ( वसुवने वसुधेयस्य वीताम् ) उक्त दोनों संस्थाएं भी ऐश्वर्य भोक्ता राजा के कोश की वृद्धि, पालन और उपभोग करें। (यज) तू उनको अधिकार प्रदान कर।

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्। बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३८ ॥

भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—( देवी देवम् ) प्रियतमा स्त्री जिस प्रकार अपनी कामना के अनुकूल प्रिय पुरुष को सन्तानादि से बढ़ाती है और ( देवी जोष्ट्री ) जिस प्रकार उत्तम व्यवहार वाले, एक दूसरे को प्रेम करने वाले ( वसुधिती ) ऐश्वर्य को धारण करने वाले नरनारी ( देवं ) कामना योग्य ( वयोधसम् ) दीर्घजीवन और बलप्रद ( इन्द्रम् ) शुभ सन्तान को बढ़ाते हैं उसी प्रकार ( देवी ) उत्तम तेजोयुक्त, ( जोष्ट्री ) परस्पर प्रेमयुक्त, विद्या संस्थाएं ( वसुधिती ) राष्ट्र में बसने वाले लोकों को धारण करने में समर्थ होकर ( वयोधसम् ) दीर्घजीवी ( देवम् इन्द्रम् ) विद्वान् राजा को ( अवर्धताम् ) बढ़ावें। और वह (बृहत्या छन्दसा) बृहती छन्द अर्थात् बड़ी भारी वेदवाणी के बल से ( श्रोत्रम् इन्द्रियम् ) शरीर में श्रवण इन्द्रिय के समान ( श्रोत्रम् वयः दधत् ) श्रवण योग्य ज्ञानरूप बलको धारण कराता है। ( वसुवने वसुधेस्य वीताम् ) राजा के राज्यकोष की वे दोनों संस्थाएं भी वृद्धि, पालन और उपभोग करें। हे विद्वन् ! (यज) तू उनको वह अधिकार प्रदान कर।

देवी ऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्। पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३९ ॥

निचृत् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—( देवी देवम् ) पति की कामना के अनुकूल रहनेवाली उत्तम स्त्री जिस प्रकार अपनी अभिलाषा के योग्य उत्तम पुरुष को प्रेम और सन्मान से बढ़ाती है और ( सुदुघे ) उत्तम दूध देनेवाली दो गौएं जिस प्रकार ( पयसा ) अपने दूध से ( वयोधसम ) अन्न देनेवाले स्वामी को बढ़ाती हैं और जिस प्रकार ( ऊर्जाहुती पयसा ) अन्न और जल को प्रदान करनेवाली द्यौ और पृथिवी दोनों ( पयसा ) अन्न और जल द्वारा ( दुघे ) समस्त मनोरथों की पूरक होकर ( इन्द्रम् ) जीव प्राण को ( अवर्धताम् ) बढ़ाती हैं उसी प्रकार ( ऊर्जाहुती ) उत्तम जल और अन्न को प्रदान करने वाली ( देवी ) विद्वानों की दो संस्थाएं ( दुघे ) सब कार्यों को पूर्ण करने वाली ( सुदुघे ) उत्तम पदार्थों को देने वाली होकर ( पयसा ) अन्न और जल से ( वयोधसं देवम् इन्द्रम् ) दीर्घजीवन-धारी उत्तम व्यवहार युक्त राष्ट्र की ( अवर्धताम् ) वृद्धि करें। ( पङ्क्त्या छन्दसा शुक्रम् इन्द्रियम् ) जिस प्रकार अन्न की परिपाक क्रिया से 'शुक्र' वीर्य को बल रूप से और ( वयः ) दीर्घ जीवन को ( दधत् ) धारण करता है उसी प्रकार ( पङ्क्त्या छन्दसा ) पंक्ति छन्द या अन्न के परिपक्व होने की क्रिया से ( शुक्रम् ) शुद्ध, वीर्य के जनक ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य बलकारी ( वयः ) अन्न को ( इन्द्रे ) राष्ट्र में ( दधत् ) धारण करावे। ( वसुवने वसुधेयस्य वीताम् ) धन भोक्ता राजा के ऐश्वर्य की वे दोनों संस्थाएं भी पालन और उपभोग करें। हे होतः! (यज) उनको यह अधिकार प्रदान कर।

दे॒वा दैव्या॒ होता॑रा दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वौ दे॒वम॑वर्द्धताम्। त्रि॒ष्टुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं त्विषि॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वी॒तां यज॑ ॥ ४० ॥

अति जगती। निषादः॥

भा०—( देवौ देवम् ) विद्वान्, माता पिता जिस प्रकार उत्तम गुण-

वान् पुत्र को बढ़ाते हैं उसी प्रकार ( दैव्या होतारा ) विद्वानों में उत्तम विद्वान् ( देवौ ) कार्य-व्यवहार में कुशल ( होतारौ ) योग्य पदाधिकारों या ज्ञानों के देने हारे पुरुष ( देवम् इन्द्रं वयोधसं ) ऐश्वर्य के दाता बलशाली राजा की भी वृद्धि करते हैं। ( त्रिष्टुभा छन्दसा ) त्रिष्टुप् छन्द अर्थात् क्षात्र बल से वे ( इन्द्रे ) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में ( त्विषिम् इन्द्रियं ) शरीर में प्राणापान जिस प्रकार कान्ति को धारण कराते हैं उसी प्रकार वे राष्ट्र में तेज को और ( वयः ) बल, दीर्घ जीवन को धारण कराते हैं। ( वसुवने वसुधेयस्य वीताम् ) वे भी राष्ट्र पालक राजा के धन कोश की वृद्धि, पालन और उपभोग करें। ( यज ) हे विद्वन् ! उनको पदाधिकार प्रदान कर।

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन्। जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥

भुरिगतिजगती। निषादः॥

भा०—( तिस्रः देवीः ) तीनों श्रेणियों की उत्तम स्त्रियां जिस प्रकार अपने ( पतिम् ) पति की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार ( तिस्रः देवीः ) तीनों पूर्वोक्त विद्वत्संस्थाएँ ( वयोधसम् ) राष्ट्र के बल को धारण करनेवाले ( पतिम् इन्द्रम् ) पालक राजा को बढ़ाती हैं। वे ( जगत्या छन्दसा ) जगती छन्द से अर्थात् वैश्य बल से ( इन्द्रे ) राष्ट्र में ( शूषम् ) पर राष्ट्रशोषक ( इन्द्रियम् ) बल और ( वयः ) जीवन को ( दधत् ) धारण कराते हैं। ( वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु ) वे भी राष्ट्रभोगी राजा के कोष की वृद्धि, पालन और उपभोग करें। ( यज ) हे होतः ! उनको तू अधिकार प्रदान कर।

देवो नराशꣳसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत्। विराजा

छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ रू॒पमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥४२॥

निचृदतिजगती । निषादः ॥

भा०—( नराशंसः ) सब मनुष्यों से प्रशंसित अथवा जनों का उप-देष्टा ( देवः ) उत्तम पदार्थों और ज्ञानों का देने हारा है। ( देवः ) उत्तम विद्वान् जिस प्रकार ( देवम् ) विद्या के अभिलाषी पुरुष की ज्ञान से वृद्धि करता है उसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष भी ( वयोधसम् देवम् इन्द्रम् अवर्धयत् ) दीर्घजीवी, बलको धारण करने वाले या अन्नदाता राजा इन्द्र की वृद्धि करता है। ( विराजा छन्दसा ) विराट् छन्द, अर्थात् विशेष कान्तिजनक ज्ञान से ( इन्द्रे ) राजा और राष्ट्र में ( इन्द्रियं रूपम् वयः दधत् ) इन्द्र पद के योग्य रूप और बलको धारण कराता है। वह भी ( वसुधेयस्य वेतु ) लोक के भोक्ता राजा के राज्य-कोष का उपभोग करे। यज ) हे होतः! विद्वन् उसको अधिकार दे।

दे॒वो वन॒स्पति॑र्दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वोदे॒वम॑वर्द्धयत्। द्वि॒पदा॒ छन्द॑-सेन्द्रि॒यं भग॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ४३ ॥

पूर्ववत् ॥

भा०—( देवः देवम् ) दानशील पुरुष जिस प्रकार धनके अभिलाषी पुरुष को धन देकर बढ़ाता है इसी प्रकार ( वनस्पतिः देवः ) वनों के पालक, वट आदि के समान आश्रितजनों को शरण देनेवाला, विद्वान् दाता पुरुष भी ( वयोधसं ) अन्न के दाता ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् राजा की ( अवर्धयत् ) वृद्धि करता है। वह ( द्विपदा छन्दसा ) दो चरणवाले भृत्य मनुष्यों के बल से ( इन्द्रे ) राष्ट्र और राजा में ( इन्द्रियम् ) इन्द्र पद के योग्य ( भगम् ) ऐश्वर्य और ( वयः ) बल को ( दधत् ) धारण कराता है। ( वसुधेयस्य इत्यादि ) पूर्ववत् ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्द्धयत् । ककुभा च्छन्दसेन्द्रियं यशऽइन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४४॥

पूर्ववत् ॥

भा०—( वारितीनाम् ) जलों द्वारा अति अधिक उन्नत नदियों का ( देवं बर्हिः ) उत्तम जल जिस प्रकार ( देवम् ) दिव्य समुद्र को बढ़ाता है उसी प्रकार (वारितीनाम्) वारण करने में समर्थ गतियों वाली सेनाओं का ( बर्हिः ) अति विस्तृत ( देवम् ) विजयशील सेना बल, (वयोधसम्) अन्नदाता, ( इन्द्रं देवं ) ऐश्वर्यवान् राजा के बल को ( अवर्धयत् ) वृद्धि करता है । ( ककुभा छन्दसा ) ककुप् अर्थात् दिशाओं में व्यापक या सर्वश्रेष्ठ, सर्वाच्छादक बल से ( इन्द्रे ) राष्ट्र और राजा में ( इन्द्रियं ) इन्द्र पद के योग्य ( वयः ) बल और यशः ) यश, कीर्त्ति ( दधत् ) धारण कराता है । ( वसुवने० ) इत्यादि पूर्ववत् ।

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् । अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४५ ॥

स्वराट् अति जगती । निषादः ॥

भा०—(देवः देवम्) परमेश्वर जिस प्रकार जीव को बढ़ाता है, विद्वान् जिस प्रकार ज्ञान के इच्छुक शिष्य को बढ़ाता है उसी प्रकार ( स्विष्टकृत्) समस्त राष्ट्र के सुख इष्ट धन जन को उत्पन्न करनेवाला ( अग्निः ) अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष ( देवः ) सर्व विद्याप्रकाशक होकर ( वयोधसम् ) सब के अन्नदाता ( इन्द्रम् देवम् अवर्धयत् ) राजा और राज्य की वृद्धि करता है । और ( अतिछन्दसा छन्दसा ) अति बलशाली रक्षा साधन से ( इन्द्रे ) राज्य में ( इन्द्रियं ) इन्द्र पद के योग्य ( क्षत्रम् ) क्षात्र-बल और ऐश्वर्य और ( वयः ) अन्न और बल ( दधत् ) धारण कराता है । ( वसुवने० ) इत्यादि पूर्ववत् ।

अग्निमुद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशम्बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम् । सूपस्था ऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन । अघत्तं मेदस्तः प्रतिपचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन । त्वामद्य ऽऋषे ॥ ४६ ॥

भा०—व्याख्या देखो इसी अध्याय का मन्त्र २३ ।

॥ इत्यष्टाविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते

यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तविंशोऽध्यायः ।



# ॥ अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

[ अ० २९ ] प्रजापतिर्ऋषिः ॥

॥ ओ३म् ॥ समिद्धोऽ अञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः । वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ १ ॥

[१–११] अश्वः सामुद्रिः, बृहदुक्थो वामदेव्यो वा ऋषिः । आप्रियः । अग्निर्जातवेदा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने ! अग्रणी विद्वान् पुरुष ! हे ( जातवेदः ) विद्याओं में निष्णात, ज्ञानप्रद बुद्धिमन् ! जिस प्रकार ( समिद्धः ) खूब प्रदीप्त हुआ अग्नि ( मधुमत् ) मधुर अन्न से युक्त ( घृतम् ) घी को ( पिन्वमानः ) सेवन करके अर्थात् चरु और स्निग्ध पदार्थ पाकर ( कृदरं अञ्जन् ) सकल पदार्थों के छिन्न-भिन्न करनेवाले गुण को प्रकट करता है इसी प्रकार तू भी ( मधुमत् घृतम् पिन्वमानः ) मधुर अन्न से युक्त घृत आदि स्निग्ध, पुष्टिकारक पदार्थों का सेवन करता हुआ ( मतीनाम् ) मनन योग्य बुद्धियों के ( कृदरम् ) समस्त पदार्थों के विवेक करनेवाले गुण को ( अञ्जन् ) प्रकट करता हुआ ( देवानां प्रियम् ) विद्वानों के प्रिय ( सधस्थम् ) एक साथ स्थिर होने योग्य, सर्वमान्य सिद्धान्त तक ( वाजिनं ) वीर्यवान् पुरुष को ( वहन् ) उठा कर जिस प्रकार ( वाजी ) घोड़ा स्थानान्तर को ले जाता है उसी प्रकार ( आ वक्षि ) पहुँचा ।

जाठराग्नि के दृष्टान्त से जैसे—( मधुमत् घृतं पिन्वमानः ) अन्न युक्त घृत को सेवन करके जिस प्रकार जाठराग्नि ( मतीनां कृदरं ) मनुष्यों के उदर की शक्ति को ( अञ्जन् ) प्रकट करता है उसी प्रकार हे पुरुष !

मधुर घृत का सेवन करके ( मतीनाम् ) बुद्धियों के ( कृदरम् ) विवेक-जनक रहस्य को प्रकट कर। और हे (जातवेदः) बुद्धिमान् पुरुष! (वाजिनं वहन् वाजी) बलवान् पुरुष को जिस प्रकार वेगवान् अश्व उठा कर लेजाता है उसी प्रकार तू स्वयं ( वाजी ) संग्राम सम्पन्न, युद्धविजयी होकर ( वाजिनम् ) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को ( वहन् ) धारण करता हुआ ( देवानां प्रियम् सधस्थम् ) देवों के प्रिय, एकत्र होने के स्थान सभा-भवन को ( आ वक्षि ) धारण कर, उसका सभापति बनकर उसको चला।

अर्थात्—जैसे जठराग्नि अन्नादि खाकर मनुष्यों के उदर शक्ति को प्रकट करता है और ( देवानां ) देव, इन्द्रियों के ( सधस्थं आवक्षि ) एकत्र रहने के स्थान शरीर को धारण करता है उसी प्रकार राजा या सभापति ( मधुमत् ) अन्न युक्त या मधुर फलों से युक्त ( घृतम् ) तेजस्वी सूर्य के पद को सेवन करता हुआ बुद्धियों के या मनुष्यों के बीच राजधानी या केन्द्र स्थान को प्रकट करता हुआ स्वयं ( समिद्धः ) अति तृप्त होकर ( सधस्थम् ) एकत्र रहने के स्थान सभास्थल या राष्ट्र को धारण करे।

**घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान्। अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳬ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि॥ २॥**

भा०—हे ( सप्ते ) राष्ट्र में व्यापक! हे युद्ध में सर्पणशील! हे समवाय या परस्पर संघ बनानेहारे! ( घृतेन अञ्जन् ) जिस प्रकार आग घी से और विद्युत् जल से प्रकट होता है उसी प्रकार तू स्वयं ( घृतेन ) तेज से (अञ्जन्) प्रकट होता हुआ ( देवयानान् ) विद्वानों के चलने योग्य संग्राम-विजयी पुरुषों के वर्त्तने योग्य, राजनीति, उत्तम ( पथः ) मार्गों मर्यादाओं या चालों को ( प्रजानन् ) भली प्रकार जानता हुआ ( वाजी ) संग्रामों में कुशल, ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् और अश्व के समान वेगवान् होकर

( देवान् ) विद्वानों और विजयशील राजाओं को ( अपि एतु ) प्राप्त हो। हे ( सप्ते ) संघ बना लेने में कुशल ! समवायकारिन् ! ( त्वा अनु ) तेरे अनुकूल ही ( प्रदिशः ) उत्तम विद्वान् पुरुष अथवा ( प्रदिशः ) दिशा प्रदिशाओं के वासीजन, ( सचन्ताम् ) संघ बनाकर, सुव्यवस्थित होकर रहें। और तू (अस्मै यजमानाय) इस दानशील, करप्रद माण्डलिक पुरुष को (स्वधाम् धेहि) अपने राष्ट्र धारण करने के बल, अधिकार आदि प्रदान कर। अथवा हे राष्ट्र! तू ( अस्मै यजमानाय ) इस दानशील या संगतिकारक सुव्यवस्थापक राजा को ( स्वधाम् देहि ) अपने शरीर, बल, राष्ट्र के धन आदि के धारण करने के बल आदि प्रदान कर।

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

भा०—हे ( वाजिन् ) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! संग्रामजयशील ! तू ( ईड्यः च असि ) स्तुति के योग्य है। और तू ( वन्द्यः च असि ) अभिवादन करने योग्य है। ( आशुः च असि ) अति शीघ्र कार्यकारी, वेगवान् भी है। और ( मेध्यः च ) सत्संग करने योग्य है। ( अग्निः ) अग्रणी, ज्ञानवान् ( जातवेदाः ) विद्वान् प्रज्ञावान् पुरुष, ( वसुभिः देवैः ) प्रजाओं को बसाने वाले विद्वानों या स्वयं राष्ट्र में बसने वाले व्यवहारकुशल प्रजाजनों के साथ ( सजोषाः ) समान भाव से प्रेमयुक्त होकर ( प्रीतं त्वा ) अति प्रसन्न तुझ ( वह्निं ) राष्ट्र के वहन करने में समर्थ पुरुष को ( वहतु ) प्राप्त हो, तेरे दिये पदों को धारण करे।

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम्।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ ४ ॥

भा०—राष्ट्रपक्ष में-हम लोग ( स्तीर्णम् ) आच्छादित, सुरक्षित, ( बर्हिः ) प्रजा लोक को ( सु स्तरीम ) उत्तम रीति से विस्तृत करें।

और ( पृथिव्यास् ) पृथिवी पर ( उरु ) बहुत बड़े रूप में ( पृथु ) और विस्तृत रूप में ( प्रथमानम् ) स्वयं फैलनेवाले ( देवेभिः युक्तम् ) वीर विजयी, विद्वान्, व्यवहारकुशल, तेजस्वी, रक्षाशील पुरुषों से युक्त प्रजाजन को, ( सजोषाः ) अति प्रेम युक्त होकर ( अदितिः ) अखण्ड शासन व्यवस्था, ( स्योनं कृण्वाना ) सुखदायी करती हुई ( सु-इते ) उत्तम रीति से संचालित मार्ग में ( दधातु ) रक्खे, उसका पालन करे।

विद्युत्पक्ष में—( स्तीर्णम् ) आच्छादित, साङ्गोपाङ्ग यानादि यन्त्रों को और ( पृथु प्रथमानम् ) विस्तृत, विख्यात एवं फैले हुए ( बर्हिः ) आकाश या जल में भी व्यापक (देवेभिः युक्तम्) दिव्य पदार्थ जलादि से युक्त सबको ( जुषाणा ) प्राप्त और सबको ( स्योनं कृण्वाना ) सुखकारी करती हुई ( अदितिः ) अखण्ड शक्ति विद्युत् आदि ( सुविते ) उत्तम गतिशील यन्त्रादि में बल ( दधातु ) धारण करावे।

**एताऽ उ वः सुभगा विश्वरूपा विपक्षोभिः श्रयमाणाऽ उदातैः। ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥**

भा०—( एताः ) ये नाना उत्तम (द्वारः) गृह के द्वार और (देवीः) देवियां दोनों समान रूप से आगे लिखे प्रकार की हों। द्वारों के पक्ष में—( एताः द्वारः ) ये द्वार ( देवीः ) प्रकाशयुक्त, ( सुभगाः ) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, उत्तम रीति से सेवन योग्य, सुखकारी, सुकर, ( विश्वरूपाः ) नाना रूपों के ( आतः ) बराबर चलने वाले, आने जानेवाले ( विपक्षोभिः ) विविध प्रकार के पक्षों से (उत् श्रयमाणा) खूब ऊंचे तक विस्तृत ( ऋष्वाः ) बड़ी ( सतीः ) होकर भी ( कवषः ) उत्तम शब्द करनेहारी, ( शुम्भमानाः ) सुशोभित ( सुप्रायणाः ) सुख से आने जाने योग्य ( भवन्तु ) हों।

स्त्रियों के पक्ष में—( एताः ) वे ( देवीः ) स्त्रियां ( सुभगाः ) उत्तम ऐश्वर्य और अंग सौन्दर्य से युक्त, उत्तम भगवती हों, दुर्भगा न हों, वे

( विश्वरूपाः ) नाना रूपों और नाना रुचिकर गुणोंवाली, ( विपक्षोभिः ) नाना ग्राह्य पदार्थों से और ( विश्रयमाणाः ) विविध प्रकार से सेवन करने वाली और ( आतैः ) नाना प्रकार के आचार व्यवहारों से (उत्-श्रयमाणाः) उत्तम पदको प्राप्त होती हुई (ऋष्वा) बड़ी (सतीः) सदाचारिणी (कवषः) उत्तम मधुर शब्द बोलनेहारी, ( शुम्भमानाः ) सुशोभित, आभूषित, ( सुप्रायणाः ) उत्तम चाल चलनेवाली, सुख से गमन करने योग्य अथवा उत्तम गृह स्थान आदि से सम्पन्न होकर ( भवन्तु ) रहें।

शत्रुवारक सेनाओं के पक्ष में—( द्वारः देवीः ) विजयशील, शत्रुओं के वारण करने में समर्थ सेनाएं ( सुभगाः ) उत्तम ऐश्वर्यवाली, ( पक्षोभिः ) पक्षों-बाजुओं से ( आतैः ) नाना चालों से ( विश्रयमाणाः ) विविध रूप धारण करने वाली ( उत्-श्रयमाणाः ) उत्तम रूप को धारण करने वाली ( ऋष्वाः ) शत्रुनाशक ( सतीः ) होकर, ( कवषः ) नाना शब्द करती हुई, ( शुम्भमानाः ) चमचमाती हुई, ( सुप्रायणाः भवन्तु ) उत्तम २ अयन, पदों और स्थानों से युक्त हों।

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने।
उषासा वाᳬ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऽऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६॥

भा०—( अन्तरा ) शरीर के भीतर जिस प्रकार ( मित्रावरुणा ) मित्र और वरुण, प्राण और उदान, विचरते हैं और जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में सूर्य और वायु विचरते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के बीच में ( मित्रावरुणौ ) 'मित्र' अर्थात् प्रजा के प्रति स्नेहवान् और उनको मृत्यु से बचाने वाला और 'वरुण' दुष्टों का वारक अर्थात्, न्यायाधीश और दुष्टों का दमनकारी दो विभाग ( उषासा ) दिन और रात्रि के समान न्याय-प्रकाशक और प्रजा-पालक, ( यज्ञानां ) समस्त श्रेष्ठ व्यवहारों, परस्पर की सुसंगत व्यवस्थाओं, या प्रजा के पालनरूप यज्ञ के (मुखम्) मुख्य पुरुष, राजा के साथ ( अभि

भा०—( त्वष्टा ) कान्तिमान्, वीर्यवान् पुरुष ( देवकामम् ) विद्वानों के प्रिय ( वीरं ) वीर पुत्र को ( जजान ) उत्पन्न करता है। ( त्वष्टा ) त्वष्टा के शिल्पों से ही ( अर्वा ) गतिशील यन्त्र भी ( आशुः ) वेगवान् ( अश्वः ) अश्व के समान मार्ग तय करने वाला ( जायते ) उत्पन्न होता है। ( त्वष्टा ) समस्त विश्व का रचयिता विश्वकर्मा परमेश्वर ( विश्वं भुवनम् ) समस्त भुवन, जगत् को पैदा करता है। इस कारण हे (होतः) होतः! विद्वन्! ( बहोः कर्त्तारम् ) बहुत से वीर कार्यों और वीर पुरुष उत्पन्न करनेवाले बहुत से पदार्थों के रचनेवाले और बहुत बड़े विश्व के रचने वाले, उत्तम गृहस्थ और राजा, उत्तम शिल्पी और महान् परमेश्वर को ( इह ) इस महान् यज्ञ, अश्वमेध या राष्ट्रकार्य में और उपासना में (यक्षि) क्रम से अधिकार प्रदान करता, नियुक्त करता एवं उपासना करता है। अर्थात् वीर्यवान् गृहस्थ को गृहस्थ यज्ञ अर्थात् पुत्रप्रजनन कार्य में नियुक्त कर, शिल्पवान् पुरुष को राष्ट्र में नियुक्त कर के देवोपासना में परमेश्वर उपासक नियुक्त कर ।

अश्वो॑ घृ॒तेन॒ त्मन्या॒ सम॑क्त॒ उप॑ दे॒वाँ२॥ ऋ॑तु॒शः पाथ॑ एतु । वन॒स्पति॑र्देवलो॒कं प्र॑जा॒नन्न॒ग्निना॑ ह॒व्या स्व॑दि॒तानि॑ वक्षत् ॥ १० ॥

भा०—( अश्वः ) सूर्य जिस प्रकार ( घृतेन त्मन्या ) अपने तेज से ( समक्तः ) युक्त होकर ( ऋतुशः ) प्रत्येक ऋतु में ( देवान् ) किरणों के द्वारा ( पाथः एतु ) जल को ग्रहण करता है उसी प्रकार ( अश्वः ) राष्ट्र का भोक्ता राजा ( त्मन्या ) स्वयं ( घृतेन सम् अक्तः ) तेज से सम्पन्न होकर ( ऋतुशः ) प्रति ऋतु, ( पाथः ) अपने पालन कार्य के निमित्त ( देवान् उप एतु ) देवों, विद्वानों को प्राप्त हो। ( वनस्पतिः ) मनुष्यों या सेवनीय पदार्थों का पालक ( देवलोकं प्रजानन् ) विद्वान् जनों को जानता हुआ, ( अग्निना स्वदितानि हव्यानि ) अग्निद्वारा स्वदित,

स्वीकृत, सुपक्क अन्नों को (वक्षत्) प्राप्त करे। अर्थात् अन्नों को प्रथम यज्ञाग्नि में देकर उसके बाद स्वयं अन्नों को ग्रहण करे। अथवा (अग्निः) अग्रणी पुरुष द्वारा प्रथम उपयुक्त शेष अन्नों को धारण करे।

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः॥११॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! अग्रणी पुरुष! राजन्! विद्वन्! तू (प्रजापतेः) प्रजा के पालक राजा पद के (तपसा) तप से, प्रभाव से (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (सद्यः जातः) शीघ्र ही राजा बनकर (यज्ञम्) राष्ट्र रूप सुव्यवस्थित कार्य को (दधिषे) धारण कर। तू (स्वाहाकृतेन) स्वाहा द्वारा अग्निमें आहुति किये हुए (हविषा) अन्न से अथवा (सु-आह-कृतेन) उत्तम कीर्ति को जनक, उत्तम रीति से सम्पादित (हविषा) उपाय से (पुरोगाः) सबको अग्रगामी होकर (याहि) प्रयाण कर। और (साध्याः) उत्तम रीति से साधन सम्पन्न (देवाः) देव, विद्वान्गण और विजयी वीर जन (हविः अदन्तु) अन्न और उपादेय राष्ट्र का उपभोग करें।

जिस प्रकार अग्नि में आहुति किया चरु भस्म होकर अन्य दिव्य पदार्थों में लीन हो जाता है इसी प्रकार राजा द्वारा प्राप्त किया, कर रूप में अन्नादि पदार्थ विद्वानों और वीर, विजेता सेना पुरुषों को प्राप्त होता है।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥१२॥

ऋ० १।१६३।१॥

[१२–२४] जमदग्निर्दीर्घतमाश्च ऋषी। अश्वस्तुतिः। त्रिष्टुभः। धैवतः॥

भा०—हे (अर्वन्) वेग से प्रयाण करनेहारे राजन्! (यत्) जब तू (समुद्रात् उद्यन्) समुद्र से ऊपर उठते हुए सूर्य या मेघ के समान

उदय को प्राप्त होकर ( प्रथमं जायमानः ) पहले २ उत्पन्न होकर, राजा बनाया जाकर समस्त जन-सागर में ( वा ) और ( पुरीषात् ) ऐश्वर्यमय पदार्थों के बीच में से ऊपर उठता हुआ, उन्नत राजपद पर विराजता हुआ ( अक्रन्दः ) शब्द करता है, आज्ञा प्रदान करता है या गर्जना या अपनी राजा होने की घोषणा करता है उस समय तेरी ( पक्षा ) दोनों बाजू ( श्येनस्य ) बाज पक्षी के समान अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ दायें बायें दो सेनाओं के दस्ते ( Wings ) और ( हरिणस्य ) हरिण की ( बाहू ) अगली टांगों के समान अति शीघ्रगामी दो सेनादल ( बाहू ) बाहुओं के समान शत्रु पीड़न में समर्थ आगे को होते हैं और उस समय ( ते ) तेरा स्वरूप ( महि ) बहुत अधिक ( उपस्तुत्यं जातम् ) वर्णन करने योग्य हो जाता है ।

यमेन॑ दत्तं त्रित ऽएनमायुनगिन्द्र॑ ऽएणं प्रथमो ऽअध्य॑तिष्ठत् ।
गन्धर्वो ऽअस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ १३ ॥

ऋ० १ । १६३ । २ ॥

भा०—(त्रितः) तीनों वेदों का विद्वान् त्रिविध शक्तियों से सम्पन्न पुरुष, (यमेन) नियम करने वाले पद द्वारा (दत्तम्) प्रदत्त, स्वीकृत ( एनम् ) इस राष्ट्र को (आयुनग्) नियुक्त करता है। (इन्द्रः) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् पुरुष ( एनम् ) इस राष्ट्र को ( प्रथमः ) सबसे प्रथम ( अधि अतिष्ठत् ) अधिष्ठाता रूप से विराजता है । ( गन्धर्वः ) गौ, पृथिवी या आज्ञारूप वाणी के धारण करने में समर्थ पुरुष ( अस्य ) इस राष्ट्र रूप अश्व की ( रशनाम् ) रस्सी, राज्यशासन की बागडोर को ( अगृभ्णात् ) धारण करता है । ( वसवः ) हे वसुगणो ! प्रजाजनो ! विद्वानो ! ( सूरात् ) सबके प्रेरक सूर्य के तेज से ( अश्वम् ) इस व्यापक राज्य को ( निर् अतष्ट ) निर्माण करो। बनाओ, सुव्यवस्थित करो ।

अध्यात्म में—( यमेनदत्तं ) प्राण वायु से धारण किये हुए इस शरीर को ( त्रितः ) तीन धातुओं से युक्त अन्न या आत्मा ( आयुनक् ) युक्त करता है। ( इन्द्रः ) जीव इसका अधिष्ठाता है। गन्धर्व मन इसको 'रशना' बागडोर को सम्भालता है। ( वसवः ) बसनेवाले चक्षु आदि इन्द्रिय ( सूरात् ) प्रेरक प्राण से ही इसको निर्माण करते हैं।

**असि यमो ऽअस्यादित्यो ऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन। असि सोमेन समया विपृक्त ऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ १४ ॥**

ऋ० १। १६३। ३॥

भा०—हे राजन्! तू ( यमः असि ) स्वयं प्राण वायु के समान राष्ट्र का नियामक है। (आदित्यः असि) तू सूर्य के समान सब कार्यों का प्रकाशक, सूर्य के समान प्रजा से कर लेनेहारा है। तू ही ( अर्वन् असि ) शीघ्र गतिवाला होकर ( गुह्येन व्रतेन ) रक्षा करने योग्य हम से ( त्रितः ) तीनों लोकों में व्यापक वायु के समान उत्तम मध्यम और अधम, व राजा, शासक और प्रजा तीनों में व्यापक है और ( सोमेन ) ऐश्वर्य मय राष्ट्र स ( समया विपृक्तः ) सदा संयुक्त रहता है। ( ते ) तेरे ( दिवि ) राजसभा में ( त्रीणि बन्धनानि ) तीनों प्रकार के बंधन के ( आहुः ) बतलाते हैं। सूर्य लोक को बांधने वाले तीन बंधन, आकर्षण प्रकाश और प्राण है। परस्पर समाज के तीन बंधन शरीररक्षा, वाणी की प्रतिज्ञा और मानस प्रेम। राजा इन तीनों से बंधा रहे। वह आचार में पवित्र रहे, वाणी में सच्चा रहे और मन में प्रजा के प्रति प्रेमी रहे। सूर्य के द्यौ लोक में तीन बांधने के साधन हैं आकर्षण, तेज और गति या चेतन सामर्थ्य। इसी प्रकार उत्पन्न जीव के भी ज्ञानमय जीवन में तीन बंधन हैं देव ऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण जिनके प्रतिनिधि यज्ञोपवीत के तीन सूत्र हैं।

त्रीणि त ऽ आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त ऽआहुः पर॒मं ज॒नित्र॑म् ॥ १५ ॥

ऋ० १ । १६३ । ४ ॥

भा०—हे राजन्! हे विद्वन्! हे आत्मन्! ( दिवि ) द्यौ लोक में जिस प्रकार सूर्य के ( त्रीणि बन्धनानि ) तीन बांधनेवाले बल हैं और ( त्रीणि अप्सु ) तीन ही बंधन जलों में हैं, अन्न, स्थान और बीज। और इसी प्रकार ( त्रीणि अन्तः समुद्रे ) तीन ही बंधन अन्तरिक्ष में वृष्टि के उत्पादक हैं मेघ, विद्युत् और गर्जन। उसी प्रकार हे राजन्! ( दिवि ) ज्ञान प्रकाश करनेवाली राजसभा में ( ते त्रीणि बंधनानि ) तेरे तीन प्रकार के बंधन या मर्यादाएँ हैं। ( त्रीणि अप्सु ) तीन बंधन आप्तजनों या प्रजाओं के बीच में है और ( त्रीणि अन्तः समुद्रे ) समुद्र के समान अपार अनंत सुखजनक पदार्थों के उत्पादक, राष्ट्र या सेना समुदाय में भी तीन प्रकार के बंधन कहे जाते हैं। हे ( अर्वन् ) अर्वन्! राजन्! विद्वन्! ( उतेव ) और ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ होकर तू ( मे ) मुझ राष्ट्र जन को ( छन्त्सि ) सन्मार्ग का उपदेश कर ( यत्र ) जहां जिस कार्य में ( ते ) तेरा ( परमं ) परम, सब से उत्कृष्ट ( जनित्रं ) जन्म या विकास हुआ ( आहुः ) बतलाते हैं।

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानाᳬं सनितुर्निधाना । अत्रा
ते भद्रा रशना ऽअपश्यमृतस्य या ऽअभिरक्षन्ति गोपाः ॥ १६ ॥

भा०—हे ( वाजिन् ) संग्रामशील, ऐश्वर्यवान्! राजन्! ( ते ) तेरे ( इमा ) ये ( अवमार्जनानि ) राष्ट्र के कण्टक शोधन करने के उपाय हैं। और ( सनितुः ) राष्ट्र के विभाग करनेहारे तेरे ( शफानां ) चरणों या पदों के ये ( निधाना ) रखने के स्थान या ( शफानां निधाना ) खुरों के समान आश्रयभूत राज्याङ्गों या अधिकार पदों के लिये खजाने हैं।

और ( अत्र ) यहां ( ते ) तेरे निमित्त ( भद्राः ) कल्याण करनेवाली ( गोपाः ) रक्षण करनेवाली ( रशनाः ) रस्सियों के समान बांधनेवाली मर्यादाएँ हैं ( याः ) जो ( ऋतस्य ) सत्य व्यवहार, यज्ञ, राष्ट्र की ( अभि-रक्षन्ति ) रक्षा करती हैं।

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो ऽअपश्यम्पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ १७ ॥

भा०—मैं ( दिवा ) दिन के समय आकाश मार्ग से ( पतयन्तं ) जाते हुए ( पतङ्गम् ) सूर्य के समान ( ते आत्मानम् ) हे राष्ट्रपते ! तेरे आत्मा, स्वरूप को ( मनसा ) मन से, ज्ञानपूर्वक ( आराद् ) सदा निकट में ही ( अजानाम्) जानता हूं, समीप ही विचारता हूं। और ( अरेणुभिः) धूलि आदि से रहित ( सुगेभिः ) सुगम, सरल ( पथिभिः ) मार्गों से ( जेहमानं ) जाते हुए ( पतत्रि ) नित्य गमन करते हुए ( शिरः ) तेरे शिर अर्थात् मुख्य भाग को, मुख्य पदपर स्थित व्यक्ति को ( अपश्यम् ) देखूं। अर्थात् राजा स्वयं साक्षात् आकाश में सूर्य के समान तेजस्वी होकर रक्षा कार्य में रहे। उसका शिर, मुख्य भाग उत्तम विशुद्ध मार्गों से गमन करे। वह सात्विक सन्मार्ग पर चले।

आत्मा के पक्ष में—हे जीव ! तेरे आत्मा को मैं आकाश में जाते सूर्य के समान जानूं। (सुगेभिः) सुखदायी ( अरेणुभिः ) राजस् तामस विकारों से रहित ( पथिभिः ) मार्गों से जाते हुए ( शिरः ) मुख्य, मनको जाता हुआ देखूं। अर्थात् आत्मा को सूर्य के समान तेजस्वी जानूं और मस्तक को सद्विचारों से युक्त स्वच्छ मार्ग में जाता पाऊं।

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः।
यदा ते मर्त्तो ऽअनु भोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥१८॥

भा०—हे राजन् ! ( अत्र ) इस ( गोः पदे ) पृथ्वी के शासनाधिकार पद पर विराजमान ( इषः ) अन्नादि पदार्थों या सेनाओं को ( जिगीषमा-

णम् ) विजय करने की इच्छा वाले ( ते ) तेरे ( उत्तमम् ) उत्तम ( रूपम् ) रूप को ( अपश्यम् ) देखता हूं। और ( यदा ) जब ( ते ) तेरे अधीन रहने वाला ( मर्त्तः ) मनुष्यजन, ( भोगम् अनु आनड् ) भोग-योग्य सम्पत्ति प्राप्त करता है ( आत् इत् ) तभी तू ( ग्रसिष्ठः ) बहुत खाने वाला जीव जिस प्रकार ( ओषधीः ) अन्नादि पदार्थ खाता है उसी प्रकार तू भी ( ग्रसिष्ठः ) शत्रुओं के राज्यों और धनों को सब से अधिक ग्रसन में समर्थ होकर ( ओषधीः ) संताप देने वाले शत्रुओं को, ( अजीगः ) ग्रस लेता है।

आत्मा के पक्ष में—हे आत्मन्! ( गोः पदे ) वाणी के या गमन योग्य, प्राप्तव्य अपने ( पदे ) ज्ञानमय स्वरूप पर विजय चाहने वाले तेरे ( रूपम् ) सुन्दर रूप को मैं देखूं। ( ते मर्त्तः ) तेरा मरणधर्मा शरीर जब ( भोगम् अनु आनड् ) भोग को चाहता है तभी ( ग्रसिष्ठः ) बहुत खाने वाला भोक्ता होकर ( ओषधीः अजीगः ) जीवनाग्नि देनेवाले अन्नादि ओषधियों और उनके समान तापदायी भोगों को ग्रसता है।

अनु॑ त्वा॒ रथो॒ऽ अनु॒ मर्यो॑ ऽअर्व॒न्ननु॒ गावोऽनु॒ भगः॑ क॒नीना॑म्।
अनु॒ व्राता॑स॒स्तव॑ स॒ख्यमी॑यु॒रनु॑ दे॒वा म॑मिरे वी॒र्य॑न्ते ॥ १९ ॥

भा०—हे ( अर्वन् ) ज्ञानवन्, व्यापक! राष्ट्र! हे राष्ट्रपते! जिस प्रकार अश्व के पीछे ( रथः, मर्य, गावः ) रथ, मनुष्य और अन्य पशु आदि रहते हैं उसी प्रकार ( त्वा अनु ) तेरे पीछे २ ( रथः ) रथ आदि यान, एवं रमण योग्य पदार्थ, ( अनु मर्यः ) तेरे पीछे समस्त मनुष्य, ( अनु गावः ) तेरे पीछे, समस्त गौ आदि दुधार पशुगण, ( अनु कनीनां भगः ) तेरे पीछे २ तेरे अधीन कन्याओं का सौभाग्य, ( अनु व्रातासः ) तेरे अधीन समस्त मनुष्य गण ( सख्यम् ईयुः ) तेरे अधीन होकर ही मित्रता को प्राप्त होते हैं ( देवाः ) देवगण, ( ते वीर्यम् ) तेरे ही बल का ( अनु ममिरे ) तेरे अनुकूल

निर्माण करते हैं। राजा के सुव्यवस्था कारी रहने पर रथ, जन, पशु, स्त्रियों की रक्षा, मनुष्य संघ, उनके परस्पर मैत्री भाव आदि स्थिर हैं।

हिर॑ण्यशृ॒ङ्गोऽयो॑ ऽअस्य॒ पादा॒ मनो॑जवा॒ अव॑र॒ऽ इन्द्र॑ऽ आसीत्।
दे॒वाऽ इद॑स्य हवि॒रद्य॑मायन्यो॒ऽ अर्व॑न्तं प्रथ॒मो ऽअ॒ध्यति॑ष्ठत् ॥२०॥

भा०—( यः ) जो ( प्रथमः ) सब से प्रथम, सर्वश्रेष्ठ, सब से मुख्य होकर ( अर्वन्तम् ) व्यापक शक्ति वाले, अतिवेगवान् इस राष्ट्र पर ( अधि अतिष्ठत् ) अधिष्ठाता होकर विराजता है ( देवाः ) देव, विद्वान् एवं विजयशील शूरवीर पुरुष भी ( अस्य ) इसके ( हविरन्नम् ) अन्न के समान भोग्य वस्तु ( आयन् ) बन जाते हैं। ( हिरण्यशृङ्गः ) लोह के बने हिंसा साधनों, हथियारों से युक्त ( इन्द्रः ) इन्द्र, शत्रुनाशक सेनापति भी ( अस्य अवरः ) इसके अधीन नीचे पद पर ( आसीत् ) होता है। और ( अस्य ) इसके ( मनोजवाः पादाः ) मनके समान अति वेग वाले पैरों के समान इसके शेष अङ्ग अर्थात् नीचे के पदाधिकारी भी ( मनोजवाः ) इसके मन को अनुकूल वेग से कार्य करने वाले और ( अयः ) सुवर्णादि वेतन से बद्ध हैं।

ई॒र्मान्ता॑सः॒ सिलि॑कमध्यमासः॒ सꣳ शूर॑णासो दि॒व्यासो॒ ऽअत्याः॑।
ह॒ꣳसा ऽइ॑व श्रेणि॒शो य॑तन्ते॒ यदाक्षि॑षुर्दि॒व्यमज्म॒मश्वाः॑ ॥ २१ ॥

भा०—( ईर्मान्तासः ) ईर्म अर्थात् बाहुरूप से पृथ्वी के परले अन्त को विजय करनेवाले, ( सिलिकमध्यमासः ) कृश पेट वाले, अथवा अपने बीच मुखिया को रखनेवाले ऐसे ( शूरणासः ) शीघ्र युद्धविजयी, ( दिव्यासः ) तेजस्वी ( अत्याः ) नित्य गतिशील, वेगवान्, ( अश्वाः ) अश्वारोहीगण ( यद् ) जब ( दिव्यम् ) विजय करने योग्य ( अज्मम् ) संग्राम ( सम् आक्षिषुः ) प्राप्त करते हैं तब ( हंसा इव ) पंक्तिबद्ध सारस पक्षियों के समान ( श्रेणिशः ) श्रेणि, दल या दस्ता बना २ कर ( यतन्ते ) युद्ध करते हैं।

अध्यात्म योगियों के पक्षमें—( ईर्मान्तासः ) प्रेरित प्राप्त अन्न वाले, सिद्धान्त के विज्ञ, या उद्देश्य तक पहुँचे हुए ( सिलिकमध्यमासः ) मध्यम भाग जिनके क्षीण, कृश हो गये हैं ऐसे ( शूरणासः ) अति वीर, (अत्याः) नित्य गतिशील आत्मा, (अश्वाः) ज्ञानी होकर यदा (दिव्यम्) दिव्य ( अज्मम् ) 'अजनि' अर्थात् मोक्ष को ( समाक्षिषुः ) प्राप्त होते हैं तब ( हंसा इव ) हंसों के समान ( श्रेणिशः ) श्रेणि बना २ कर एक दूसरे के पीछे सन्मार्ग पर चलने का अभ्यास करते हैं ।

'ईर्मान्तासः'—ईर्मौ इति बाहू । समीरितान्तः पृथ्व्यन्ताः वा (निरु०) । 'सिलिकमध्यमासः'—संसृत मध्यमाः, शीर्षमध्यमाः ( निरु० ) संलग्न मध्यमाः इति दया० । मध्ये निविडा इति सायणः । संश्लिष्टोदरा, निरुदरा इति उवटः । कृष्णोदराः इति महीधरः ।

'हंसाः'—'घ्नन्त्यध्वानं' इति ( निरु० ) ।

'अज्मम्'—अजनिम्, आजिम् (निरु०) । अजन्ति गच्छन्ति यम् मार्गम् इति दया० । अज्मम् संग्रामम् इति मही० ।

'श्रेणिशः'—बद्धपंक्तयः इति दया० । शीघ्रधावनाय श्रेणिशः पंक्ती भूय । इति सा० ।

तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॑र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वात॑ऽ इव॒ ध्रजी॑मान् ।
तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रार॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥ २२ ॥

भा०—हे ( अर्वन् ) वीर पुरुष ! ( तव शरीरम् ) तेरा शरीर ( पतयिष्णु ) वेग से जाने में समर्थ हो । ( तव चित्तं ) तेरा चित्त ( वातः इव ) वायु के समान ( ध्रजीमान् ) बहुत अधिक बल से युक्त हो । तेरे (शृङ्गाणि) सींगों के समान हिंसा करने वाले सेना दल ( अरण्येषु ) जंगलों में (पुरुत्रा) नाना स्थानों पर ( विष्ठिता ) विविधरूपों में स्थित होकर ( जर्भुराणाः ) खूब परिपुष्ट होते हुए, अथवा राष्ट्र का निरन्तर धारण पालन करते हुए ( चरन्ति ) विचरें ।

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ २३ ॥

भा०—( वाजी अर्वा ) वेगवान् अश्व के समान तीव्र गति होकर बलवान् पुरुष (देवद्रीचा) देव अर्थात् विजयशील पुरुषों और विद्वानों से प्राप्त होनेवाले ( मनसा ) ज्ञान से ( दीध्यानः ) स्वयं प्रकाशित, तेजस्वी होता हुआ ( शसनम् ) शासन-कार्य पर ( उप प्र अगात् ) नियुक्त होता है । (अजः) शत्रुओं को दूर हटाने वाला और उन पर शर वर्षा करने वाला वीर पुरुष ( नाभिः ) सब को बांधने या व्यवस्थित करने में समर्थ होकर ( अस्य ) इस राष्ट्र के ( पुरः ) आगे, मुख्य पद पर ( नीयते ) लाकर बैठाया जाता है । ( पश्चात् ) पीछे उसके पोषक रूप से ( रेभाः ) विद्याओं के उपदेश करने में कुशल ( कवयः ) मेधावी, विद्वान् पुरुष ( अनु यन्ति ) अनुगमन करते हैं, उसका साथ देते हैं ।

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२॥ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥२४॥

भा०—( अर्वान् ) ज्ञानी, बलवान् पुरुष, ( यत् ) जब ( परमम् ) सब से उत्तम ( सधस्थम् ) एकत्र रहने के स्थान, सभा भवन, देश या स्थान को ( उप अगात् ) प्राप्त होता है और जब ( पितरं मातरं च ) पालक पिता और मानयोग्य माता को भी साक्षात् करता है । ( अद्य ) तब वह ( जुष्टतमः ) अति प्रेमयुक्त होकर ( देवान् ) देव, विद्वान् पुरुषों को ( गम्याः ) प्राप्त होता है । ( अथ ) और ( दाशुषे ) दानशील पुरुष के लिये ( वार्याणि ) उत्तम २ पदार्थों को ( आशास्ते ) प्रदान करता है ।

अध्यात्म में—जीव ज्ञानी होकर ( परमं सधस्थं ) परम एकत्र होने के स्थान, मोक्ष को प्राप्त होता है, वहां वह पिता परमेश्वर और माता

प्रकृति का साक्षात् ज्ञान करता है। देव, दिव्य पदार्थों और भोगों को भी पाता है। दानशील परमेश्वर से नानावरण योग्य पदार्थ प्राप्त करता है।

**समिद्धो ऽअद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः।**
**आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः॥ २५॥**

ऋ० १०। ११०। १॥

[ २५—३६ ] जमदग्नी रामो वा जामदग्न्य ऋषिः। आप्रियः समित्तनूनपादादयो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ( जातवेदः ) अग्ने ! ज्ञानवन् ! जातप्रज्ञ ! विद्वन् ! ( अद्य ) आज तू ( समिद्धः ) अच्छी प्रकार ज्ञान से अग्नि के समान प्रकाशित एवं प्रज्वलित, तेजस्वी, स्वयं ( देवः ) दानशील राजा के समान, सर्वद्रष्टा होकर ( मनुषः दुरोणे ) मनुष्यों के दुःख से रक्षण करने योग्य गृह के समान इस राष्ट्र में (देवान् यजसि) विद्वान् एवं विजयशील शूरवीर पुरुषों को (यजसि) आदरपूर्वक सुसंगत कर। और ( मित्रम् ) मित्र राजा को भी (आ वह च ) प्राप्त कर। ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् होकर ( त्वं ) तू ( दूतः ) शत्रु को उपताप देने में समर्थ, ( कविः ) क्रान्तदर्शी और ( प्रचेताः ) उत्कृष्ट ज्ञानवान् ( असि ) होकर रह।

सामान्य विद्वान् के पक्ष में—वह ज्ञानवान् होकर मनुष्य के गृह में अग्नि के समान ( देवान् ) विद्वानों और प्रेमी पुरुषों का सत्कार करे, मित्र को प्राप्त करे। मेधावी, ज्ञानी बने।

दूत के पक्ष में—स्वयं तेजस्वी होकर राजाओं को ( यजसि ) संगत करे, मित्र राजा को प्राप्त करे।

**तनूनपात्पथ ऽऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।**
**मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः॥ २६॥**

ऋ० १०। ११०। २॥

भा०—हे ( तनूनपात् ) विस्तृत राष्ट्र को पतन न होने देने वाले, उसके रक्षक ! हे ( सुजिह्व ) उत्तम वाणी वाले ! तू ( ऋतस्य ) सत्य के ( यानान् पथः ) आचरण करने योग्य, चलने योग्य मार्गों को ( मध्वा ) मधुर उपदेश रस से ( सम् अञ्जन् ) अच्छी प्रकार प्रकाशित करता हुआ ( स्वदय ) सबके लिये रुचिकर बना । अर्थात् धर्म के कार्यों को उत्तम आकर्षक भाषा में लोगों के सामने रखकर उन पर उनको चलने की प्रेरणा कर । और ( धीभिः ) अपनी बुद्धियों से ( मन्मानि ) मनन करने योग्य ज्ञातव्य विषयों को ( उत ) और ( यज्ञम् ) परस्पर संगत राष्ट्र को, समाज को, अथवा उपास्य देव को ( ऋन्धन् ) अति समृद्ध, सुशोभित, करता हुआ, ( नः ) हमारे ( अध्वरम् ) हिंसा से रहित या अविनाशी यज्ञ, राष्ट्रपालन के कार्य को ( देवत्रा च ) देवों, विद्वानों, कार्यकुशल, व्यवहार श्रेष्ठ पुरुषों के आधार पर ( कृणुहि ) सम्पादन कर ।

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा ऽउभयानि हव्या ॥२७॥

भा०—( यज्ञैः ) सत्संग आदि उत्तम, आदर सत्कार के कार्यों से ( यजतस्य ) सत्कार करने योग्य, ( नराशंसस्य ) समस्त पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय, प्रजापालक या विद्वान् उत्तम पुरुष के ( महिमानम् ) महिमा, महान् सामर्थ्य की हम ( एषाम् ) इन प्रजाजनों के बीच ( उपस्तोषाम ) वर्णन करें । ( ये ) जो ( सुक्रतवः ) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले ( शुचयः ) शुद्ध, निष्कपट, ( धियन्धाः ) बुद्धिमान्, उत्तम कर्मशील, ( देवाः ) विद्वान् अभिलाषुक होकर ( उभयानि ) शरीर और आत्मा के सुखकारी अथवा राजा और प्रजा दोनों के हितकारी ( हव्या ) प्राप्त करने योग्य पदार्थों या पदाधिकारों का ( स्वदन्ति ) भोग करते हैं ।

आजुह्वान ऽईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स ऽएनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ २८ ॥
ऋ० १० । ११० । ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू ( आजुह्वानः ) सब अपने समान बल वालों से स्पर्द्धा किया जाता है या दुःखितों से पुकारा जाता है अथवा सबको स्वयं अपने राष्ट्र में या स्पर्द्धा में बुलाने हारा, ( ईड्यः ) सबके आदर योग्य, ( वन्द्यः ) सबके अभिवादन करने योग्य, ( वसुभिः सजोषाः ) राष्ट्रवासी प्रजाजनों का समान रूप से प्रेम पात्र, ( देवानां ) विद्वानों, राजाओं में से ( यह्वः ) महान् (होता) सबको योग्य अधिकार, मान, पद और धन का दाता, ( यजीयान् ) सबको उत्तम सुसंगत करने वाला, होकर ( एनान् ) इन सब पुरुषों को ( इषितः ) प्रेरित या स्वयं अभिलाषा युक्त होकर ( यक्षि ) सुसंगत कर।

**प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते ऽअग्रे ऽअह्नाम्। व्युं प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो ऽअदितये स्योनम् ॥ २९ ॥**

ऋ० १० । ११० । ४ ॥

भा०—जिस प्रकार ( अह्नाम् अग्रे ) दिनों के पूर्व भाग में वेदि पर बिछाने के लिये पूर्वाभिमुख आसनार्थ कुशा बिछाई जाती है उसी प्रकार ( अस्याः पृथिव्याः ) इस पृथिवी की ( प्रदिशा ) समस्त उत्तम दिशाओं में या उत्तम शासन से ( प्राचीनं ) उत्कृष्ट दिशा में जाने वाला उन्नतिशील उत्तम ज्ञानवान् प्रजाजन ( वस्तोः ) बसने के लिये ( अह्नाम् अग्रे ) दिनों के पूर्व भाग में ( वस्तोः ) सूर्य के आच्छादक, विस्तृत प्रकाश के समान ( वृज्यते ) लाया जाता है। वह ( देवेभ्यः ) विजयी, वीर पुरुषों विद्वानों और ( अदितये ) आदित्य के समान तेजस्वी राजा के लिये भी ( वितरं ) विस्तृत ( स्योनम् ) सुखकारी ( वरीयः ) धन ऐश्वर्य को ( वि प्रथते उ ) विविध प्रकार से फैलाता है।

**व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।**

देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ३० ॥

ऋ० १० । ११० । ५ ॥

देवीर्द्वारो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( न ) जिस प्रकार ( पतिभ्यः ) अपने पतियों के लिये ( जनयः ) स्त्रियें, ( देवीः ) गृहदेवियें ( व्यचस्वतीः ) विविध प्रकार से गमन करने वाली ( उर्विया ) सब प्रकार से आश्रय लेती हैं और उसके प्रति अपने को समर्पण कर देती हैं, उसके प्रति अपने अङ्गों को प्रकट करती हैं, उसी प्रकार ( द्वारः ) गृह के द्वार भी ( व्यचस्वतीः ) विविध प्रकार के आवागमन करने वाले, ( उर्विया ) अपने दो बड़े बड़े कपाटों को खोलें । हे ( देवीः ) पतियों की कामना करने वाली गृह देवियो ! आप ( बृहतीः ) विशाल हृदयवाली, ( विश्वमिन्वाः ) समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली हो । अतः ( देवेभ्यः ) तुमारी अभिलाषा करने वाले पुरुषों के लिये ही तुम ( सुप्रायणाः ) सुख पूर्वक प्राप्त होने वाली होकर सुखप्रद उत्तम अयन अर्थात् गृह बनाकर ( भवत ) रहो । इसी प्रकार हे (द्वारः देवीः) प्रकाश वाले द्वारो ! तुम (बृहतीः) बड़े २ और (विश्वमिन्वाः) सबको अपने भीतर गुजारनेहारे हो । तुम ( देवेभ्यः ) उत्तम विद्वान् पुरुषों के लिये ( सु-प्र-अयनाः भवत ) सुख से आने-जाने के साधन होवो ।

सेनाओं के पक्ष में—जैसे स्त्रियें अपने पतियों के प्रति अपने को खोलती हैं उसी प्रकार ( व्यचस्वतीः ) विविध देशों में जानेवाली, अथवा विविध प्रकार की चालों और व्यूहों में जानेवाली, आप सेनाएँ (पतिभ्यः) अपने सेनापतियों के प्रति ( उरु विश्रयन्ताम् ) अपने विशाल स्वरूप को प्रकट करें । हे ( देवीः ) विजयेच्छु, ( द्वारः ) शत्रुओं को वारण करने वाली सेनाओ ! ( बृहतीः ) बड़ी भारी ( विश्वमिन्वाः ) पूर्ण राष्ट्र या शत्रु-देश में और युद्धभूमि में व्यापने वाली होकर भी ( देवेभ्यः ) विजिगीषु

पुरुषों के लिये ( सुप्रायणाः भवत ) सुख से अपने २ उत्तम अयन अर्थात् नियत स्थान में स्थित रहो।

'सुप्रायणाः'—'अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः' । गीता ।

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियंꣳ शुक्रपिशं दधाने ॥३१॥

उपासानक्ते देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( उषासानक्ता ) दिन और रात्रि के समान स्त्री और पुरुष ( उपाके ) परस्पर एक दूसरे के पास आकर ( यजते ) सुसंगत होकर ( सुष्वयन्ती ) लेटते हुए, ( दिव्ये ) परस्पर की कामना करके ( योषणे ) परस्पर संगत होनेवाले दोनों ( बृहती ) प्रजा को वृद्धि करने वाले, ( सुरुक्मे ) सुख पूर्वक एक दूसरे को चाहने वाले, कान्तिमान्, होकर ( श्रियम् ) लक्ष्मी को और ( शुक्रपिशं ) वीर्यांशों को ( दधाने ) स्थापन और धारण करते हुए ( योनौ ) एक ही गृह में (आ निसदताम्) विराजें (२) उसी प्रकार राष्ट्र में दिन रात्रि के समान उषाः और नक्त नाम की दो संस्थाएं ( यजते उपाके ) परस्पर मिल कर रहने के स्थान में समीप २ आकर ( सुरुक्मे ) अति रोचन स्वरूप धारण करती हैं और ( शुक्रपिशं दधाने ) राष्ट्र के शुद्ध स्वरूप को धारण करती हैं। इसी प्रकार राजा प्रजा परस्पर एक ही राष्ट्र में लक्ष्मी, धारण करके रहें।

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥३२॥

भा०—( दैव्या ) विद्वानों में कुशल, ( होतारा ) उत्तम शिक्षा के देनेवाले, ( सुवाचा ) शुभ वाणियों के बोलने वाले, ( मनुषः यजध्यै ) मनुष्यों को परस्पर सुसंगत रखने के लिये ( यज्ञं मिमाना ) यज्ञ, सुव्य-

वस्थित राष्ट्र का निर्माण करते हुए ( विदथेषु ) उत्तम विज्ञानों और लाभ के कार्यों में ( प्र चोदयन्ता ) भली प्रकार प्रेरणा करते हुए ( कारू ) क्रिया कुशल होकर ( प्राचीनं ज्योतिः ) प्राचीन, पुरातन, सनातन से प्राप्त वेदमय, ज्ञानमय ज्योति को ( प्रदिशा ) अपने उपदेश से ( दिशन्ता ) उपदेश करते हुए दो विद्वान् रहें।

**आ नो॑ य॒ज्ञं भार॑ती॒ तूय॑मे॒त्विडा॒ म॑नु॒ष्वदि॒ह चे॒तय॑न्ती ।**
**ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरे॒दꣳ स्यो॒नꣳ सर॑स्वती॒ स्वप॑सः सदन्तु ॥ ३३ ॥**

भा०—( भारती ) भारती, ( इडा ) इडा, और ( सरस्वती ) सरस्वती (तिस्रः देवीः) ये तीनों दिव्यगुण वाली, ज्ञान प्रकाश से युक्त संस्थाएं ( मनुष्वत् ) मननशील पुरुष के समान ( चेतयन्ती ) ज्ञान का प्रकाश करनेवाली और ( स्वपसः ) उत्तम ज्ञानो और कर्मों को सम्पन्न करने वाली होकर (इह) यहां ( नः यज्ञम् ) हमारे यज्ञ और राष्ट्र को ( तूयम् ) शीघ्र ( एतु ) प्राप्त हों। ( इदं बर्हिः ) इस लोक को ( स्योने ) सुखपूर्वक ( आ सदन्तु ) आसन के समान सुशोभित करें।

**य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी जनि॑त्री रू॒पैरपि॑ꣳश॒द्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।**
**तम॒द्य हो॑तरिषि॒तो यजी॑यान्दे॒वं त्वष्टा॑रमि॒ह य॑क्षि वि॒द्वान् ॥ ३४ ॥**

भा०—( यः ) जो परमेश्वर ( जनित्री ) संसार को उत्पन्न करने वाले ( द्यावापृथिवी ) आकाश और पृथिवी या सूर्य और पृथिवी ( इमे ) इन दोनों को और ( विश्वा भुवना ) समस्त लोकों, और प्राणियों को ( रूपैः ) नाना रूपों और रुचिकर पदार्थों से ( अपिंशत् ) प्रत्येक अवयव अवयव में बनाता है। हे ( होतः ) ज्ञानप्रद ! तू ( इषितः ) प्रेरित होकर ( यजीयान् ) नाना पदार्थों को सुसंगत करने में कुशल होकर ( तम् त्वष्टारम् ) उस निर्माणकर्त्ता, विधाता (देवं) देव, परमेश्वर की (अद्य) आज, सदा, (इह) इस राष्ट्र, या संसार में ( विद्वान् ) सबको भली प्रकार जान

कर ( यक्षि ) उपासना कर, उसके बनाये पदार्थों की रचना के अनुसार इस राष्ट्र में भी नाना कौशल के पदार्थों को सुसंगत कर और बना।

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथऽ ऋतुथा हवीꣳषि।
वनस्पतिः शमिता देवोऽ अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन॥ ३५॥

भा०—हे विद्वन्! ( देवानां ) विद्वानों के ( पाथः ) पान, भोजन करने योग्य जल, दुग्ध और ( हवींषि ) अन्नों को ( ऋतुथा ) ऋतुओं के अनुसार ( त्मन्या ) स्वयं अपनी बुद्धि से ( सम् अञ्जन् ) प्रकट करता हुआ ( उप अवसृज ) प्रदान कर। इसी प्रकार ( हव्यं ) हवन करने योग्य चरु को ( मधुना ) मधुर गुण युक्त ( घृतेन ) घृत से ( सम् अञ्जन् ) मिला कर ( उप अवसृज ) आहुति प्रदान कर जिससे (वनस्पतिः) किरणों का पालक सूर्य, और ( शमिता देवः ) शान्तिदायक मेघ और ( देवः अग्निः ) तेजस्वी, आग, तीनों ( स्वदन्तु ) ग्रहण करें।

राष्ट्र और गृहपक्ष में—विद्वान् पुरुष मधुर घृत आदि से अन्नों को मिला-कर ऋतु २ के अनुसार अन्नों का प्रदान करे। (वनस्पतिः) वनस्पति के समान सर्वाश्रय राजा, या गृहपति (शमिता) शान्तिप्रद ब्राह्मण विद्वान् और (अग्निः देवः ) अग्रणी सेनापति आदि प्रमुख पुरुष उन सब पदार्थों को यथावत् उपभोग करें। उन मुख्य पुरुषों का भोजन विद्वान् वैद्य के निरीक्षण में हो, वह ऋतु अनुसार पुष्टिकारी पदार्थों के साथ मिलाकर उनको भोजन दे।

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः। अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्यं वाचि स्वाहा कृतꣳ हविरदन्तु देवाः॥ ३६॥

भा०—( अग्निः ) अग्नि जिस प्रकार ( यज्ञं वि अमिमीत ) यज्ञ को विविध रूपों में प्रकट करता है। और वह अग्नि ही ( देवानां पुरोगाः अभवत् ) समस्त वायु आदि दिव्य पदार्थों का अग्रगामी है। और ( अस्य-

वाचि स्वाहा कृते हविः देवाः अदन्ति ) इस अग्नि के ज्वाला में स्वाहा किये हुए हविष् को अन्य वायु, जल आदि भी प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ( अग्निः ) अग्रणी ज्ञानवान् पुरुष जो ( देवानाम् ) विद्वानों और विजय की कामना करने वाले और व्यवहार कुशल पुरुषों का ( पुरोगाः ) अग्रगामी, नेता ( अभवत् ) हो जाता है। वह ( सद्यः जातः ) शीघ्र ही सामर्थ्यवान् होकर ( यज्ञम् ) परस्पर सुसंगत, सुव्यवस्थित, प्रजापालन करने वाले राष्ट्र का ( वि अमिमीत ) विशेष २ रूप से और विविध प्रकारों में निर्माण कर लेता है। ( अस्य होतुः ) सबको यथा योग्य पदाधिकार प्रदान करनेवाले इस विद्वान् के ( प्रदिशि ) उत्कृष्ट शासन में और (ऋतस्य वाचि) सत्य व्यवहार, या ज्ञान, शासन विधान की वाणी, या आज्ञा के अधीन रहकर ( देवाः ) समस्त सुख चाहने वाले विद्वान् शासक सैनिक और प्रजागण, ( स्वाहाकृतं ) उत्तम रीति से न्यायानुकूल या आदर से प्रदान किये ( हविः ) अन्न और भोग्य पदार्थ को ( अदन्तु ) भोग करें।

के॒तुं कृ॒ण्वन्न॑के॒तवे॒ पेशो॑ मर्या॒ऽ अ॒पे॒शसे॑। समु॒षद्भि॑रजायथाः ॥३७॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य ( उषद्भिः ) दाहकारी किरणों के सहित उदित होता है उसी प्रकार जो ( मर्याः ) मनुष्य ( अकेतवे ) अज्ञानी पुरुष को ( केतुम् ) ज्ञान प्रदान करते हैं और जो ( अपेशसे ) धन हीन पुरुष को ( पेशः ) धन प्रदान करते हैं उन ( उषद्भिः ) अज्ञान और दारिद्र्य का नाश करने वाले तेजस्वी पुरुषों के साथ २ तू भी हे राजन्! ( अकेतुम् ) प्रज्ञाहीन पुरुष के ( केतुं कृण्वन् ) प्रज्ञा प्रदान करता हुआ और (अपेशसे) सुवर्णादि से रहित पुरुष को (पेशः कृण्वन्) सुवर्ण प्रदान करता हुआ तू ( अजायथाः ) प्रसिद्ध हो।

जी॒मूत॑स्येव भवति॒ प्रती॑कं॒ यद्व॒र्मी याति॑ स॒मदा॑मु॒पस्थे॑।

**अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥३८॥**

ऋ० ६ । ७५ । १ ॥

पायुर्भारद्वाज ऋषिः । सन्नाहादीनि संग्रामाङ्गानि देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( यत् ) जब ( वर्मी ) कवच पहने हुए योद्धाजन ( समदाम् ) संग्रामों के ( उपस्थे ) समीप ( याति ) जाता है तब ( प्रतीकम् ) सेना का मुख ( जीमूतस्य ) मेघ के ( इव ) समान होता है। अर्थात् जिस प्रकार मेघ निरन्तर बिजुलियों, गर्जनाओं और बराबर पड़नेवाली बौछारों से भयंकर होता है उसी प्रकार आग्नेयास्त्रों की लपट, शस्त्रों की चमक, उनके गर्जन और शस्त्रों की वर्षा से सेना का मुख भी बड़ा विकट भयंकर होता है। अथवा (प्रतीकं) उस कवचधारी वीर का ही स्वरूप मेघ के समान होता है। शरीर पर मेघ के समान श्याम कवच और हाथ में बिजुली के समान तीव्र तलवार और वर्षण करने को शस्त्रास्त्र होते हैं। हे वीर पुरुष ! ( त्वं ) तू ऐसे रण संकट में भी ( अनाविद्धया ) बिना चोट खाये, सुरक्षित ( तन्वा ) शरीर से, या अनष्ट विस्तृत सेना से ( जय ) विजय कर। ( वर्मणः ) कवच का (सः महिमा) वह महान् सामर्थ्य ही ( त्वा पिपर्तु ) तेरी रक्षा करे।

**धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।**
**धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ ३९ ॥**

ऋ० ६ । ७५ । २ ॥

भा०—( धन्वना ) धनुष से हम ( गाः जयेम ) गौओं और भूमियों को विजय करें। ( धन्वना आजिम् ) धनुष के बल से हम संग्राम का ( जयेम ) विजय करें। ( धन्वना ) धनुष के बल से ( तीव्राः ) अति तीव्र आनेवाली ( समदाः ) मद और हर्ष से भरी शत्रु सेनाओं का ( जयेम ) विजय करें। ( धनुः ) धनुष ( शत्रोः ) शत्रु के ( अपकामम् )

मन चाहे फल का नाश ( कृणोति ) कर देता है। और ( धन्वना ) धनुष से हम ( सर्वाः प्रदिशः ) समस्त दिशाओं का ( जयेम ) विजय करें।

वृक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन् ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥४०॥

ऋ० ६ । ७५ । ३ ॥

भा०—( योषा इव ) स्त्री जिस प्रकार ( वक्ष्यन्ती इव इत् ) मानों कुछ कहती हुई सी ( कर्णम् आगनीगन्ति ) कान के समीप आती और ( प्रियं सखायम् ) अपने प्यारे सखा, पति को ( परि–सस्वजाना ) आलिंगन करती हुई ( समने पारयन्ती ) एक चित्त हो करने योग्य गृहस्थोचित कृत्य पुत्रोत्पत्ति आदि कार्यों के पार लगा देती है उसी प्रकार ( इयम् ज्या ) यह धनुष की डोरी, ( अधिधन्वन् ) धनुष पर ( वितता ) कसी हुई ( वक्ष्यन्ती इव इत् ) मानो कुछ कहती हुई सी ( कर्णम् आगनीनन्ति ) कान के पास तक आती है। और अपने ( सखायं प्रियं परि सस्वजाना ) मित्र के समान प्रिय धनुर्दण्ड को आलिंगन करती हुई, ( शिङ्क्ते ) ध्वनि करती है वही ( समने ) संग्राम में ( पारयन्ती ) पार पहुंचा देती है या पालन करनेवाला या पूर्ण सामर्थ्यवान् करती है।

तेऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे। अप शत्रून्विध्य ताꣳ संविदानेऽआर्त्नीऽइमे विष्फुरन्तीऽअमित्रान् ॥४१॥

ऋ० ६ । ७५ । ४ ॥

भा०—( समना योषा इव ) एक चित्त होकर रहने वाली प्रियतमा स्त्री अपने पति की और ( माता इव ) माता दोनों ( सं विदाते ) परस्पर मिलकर अपने उस ही प्रेमपात्र ( पुत्रं ) पुत्र को ( उपस्थे ) अपनी गोद या क्रोड़ में आलिंगन कर ( बिभृताम् ) धारण करती हैं। उसी प्रकार ( इमे आर्त्नी ) ये दोनों धनुष की डोरियां भी धनुर्दण्ड को अथवा

( पुत्रं ) पुरुषों की रक्षा करने वाले वीर सेनापति को ( विभृताम् ) पोषण करती हैं । और ( ते ) वे दोनों ( आचरन्ती ) उसके दोनों तरफ पत्नी और माता के समान रक्षक और सेवक रूप से आचरण करनेवाली होकर ( तान् शत्रून् अपविध्य ) उन शत्रुओं को दूर से ही ताड़न करके और ( अमित्रान् ) शत्रुओं को ( विस्फुरन्ती ) विविध प्रकारों से विनष्ट करती हुई राजा की ( बिभृताम् ) रक्षा करें । इसी से धनुर्व्यूह की दोनों सेनाओं का भी वर्णन कर दिया है ।

ब॒ह्वी॒नां पि॒ता ब॒हुर॑स्य पु॒त्रश्चि॒श्चाकृ॑णोति॒ सम॑नाव॒गत्य॑ ।
इ॒षु॒धिः सङ्काः॒ पृत॑नाश्च॒ सर्वाः॑ पृ॒ष्ठे निन॑द्धो जयति॒ प्रसू॑तः ॥४२॥

भा०—( बह्वीनां पिता ) बहुतसी कन्याओं का पिता और जिसके ( बहुः पुत्रः ) बहुत से पुत्र भी हों वे सब बच्चे मिल कर जिस प्रकार ( समना अवगत्य ) एकत्र होकर मिलने के स्थान में आकर ( चिश्चा कृणोति ) चीं चां करते हैं उसी प्रकार ( इषुधिः ) बाणों को धारण करने वाला तूणीर या तरकस ( बह्वीनां पिता ) बहुत से तीरों का 'पिता' पालक है । ( अस्य पुत्रः बहुः ) इसके गर्भ से निकलने वाले पुत्र भी बाणरूप ( बहुः ) संख्या में बहुत से हैं । वे सब ( समना अवगत्य ) युद्ध स्थान में आकर ( चिश्चा कृणोति ) च, चा, इत्यादि ध्वनि करता है । वह ( इषुधिः ) तरकस ( सर्वाः ) समस्त ( सङ्काः ) संघ बना कर खड़ी हुई ( पृतनाः ) समस्त शत्रु सेनाओं को ( पृष्ठे निनद्धः ) पीठ पीछे बंधा रह कर भी ( प्रसूतः सन् ) जब अपने गर्भ से बाणों को पैदा करता है तब शत्रु का ( जयति ) विजय कर लेता है ।

रथे॒ तिष्ठ॑न्नयति वा॒जिनः॑ पु॒रो यत्र॑ यत्र का॒मय॑ते सुषार॒थिः ।
अ॒भीशू॑नां महि॒मानं॑ पनायत॒ मनः॑ प॒श्चादनु॑ यच्छन्ति र॒श्मयः॑ ॥४३॥

भा०—(सु-सारथिः) उत्तम सारथि, कोचवान् , रथका चलाने वाला,

( रथे तिष्ठन् ) रथ पर वैठा हुआ भी ( यत्र यत्र कामयते ) जहां जहां भी चाहता है वहां २ ( वाजिनः ) वेगवान् अश्वों को ( पुरः नयति ) अपने आगे २ लेजाता है। ( मनः ) मन जिस प्रकार इन्द्रियों को अपने वश रखता है उसी प्रकार ( रश्मयः ) रासें ( पश्चात् ) घोड़ों को पीछे से ( अनु यच्छन्ति ) नियम में वांधे रहती हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! ( अभीशूनां ) इन मन की प्रवृत्तियों के समान वेग से सब तरफ लेजाने वाली रासों के ही ( महिमानम् ) महान् सामर्थ्य की ( पनायत ) स्तुति करो उनको ही बड़े महत्व का जानो। उनही के वश करने के कार्य को बड़ा आवश्यक जानो।

अध्यात्म में—मन रासें रूप है। उसकी ही सब महिमा है कि वह इन्द्रियों को वश करता है। इन्द्रियों को वश करने के लिये भी मनको वश करना बड़ा आवश्यक कार्य है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
बुद्धीन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्विचक्षणाः॥
काठकोपनिषत् वल्ली ३। ३,४॥

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँ१॥ रनपव्ययन्तः॥४४॥
ऋ० ६। ७५। ७॥

भा०—( वृषपाणयः ) शस्त्रों के वर्षण करने वाले, धनुषों को हाथ में लिये वीर पुरुष ( तीव्रान् घोषान् कृण्वते ) तीव्र, कर्णकटु शब्दों को करते हैं। इसी प्रकार ( रथेभिः सह ) रथों के साथ २ ( वाजयन्तः ) वेग से जाने हारे ( अश्वाः ) घोड़े भी ( अवक्रामन्तः ) भागते २ भी

( प्रपदैः ) अगले पाश्वों से ( अनपव्ययन्तः ) स्वामी का अपव्यय न करते हुए, अथवा–स्वयं दूर न भागते हुए, खड़े रहकर भी, या स्वयं नष्ट न होते हुए भी ( अमित्रान् शत्रून् ) मित्रों से भिन्न, द्वेषी शत्रुओं को (क्षिणन्ति) विनाश करते हैं।

रथवाहनंᳪ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुपशग्मᳪ सदेम विश्वाहा वयᳪ सुमनस्यमानाः॥४५॥

ऋ० ६। ७५। ७॥

भा०—( यत्र ) जिस रथ पर ( रथवाहनं ) रथ को चलाने योग्य उपकरण ( हविः ) खाने पीने, पहनने की अन्नादि सामग्री, ( नाम ) शत्रुओं का नमाने वाले ( आयुधं ) शस्त्र अस्त्र, और (अस्य) इस वीर सेनापति, रथी का ( वर्म ) कवच भी ( निहितम् ) रखा जाता है ( तत्र ) उस ( शग्मं ) सुखकारी ( रथम् ) रथ को ( वयम् ) हम सब ( सुमनस्यमानाः ) उत्तम मन वाले, शुभ चित्त होकर ( विश्वाहा ) सब दिनों ( उप सदेम ) प्राप्त हों।

अध्यात्म में—( रथम् ) रस स्वरूप उस आत्मा को हम प्राप्त हों वही ( रथवाहनं ) रस को प्राप्त कराने हारा है। जिसमें ( आयुधम् ) सब प्रकार के आनन्द ( वर्म ) परम रक्षा स्थान और ( हविः ) परम उपादेय ज्ञान भरा है।

स्वादुषᳪसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेना ऽइषुबला ऽअमृध्राः सतोवीरा ऽउरवो व्रातसाहाः॥४६॥

ऋ० ६। ७५। ९॥

भा०—( स्वादु-संसदः ) स्वादु, रसवान्, उत्तम पदार्थों को सब मिलकर आनन्द लाभ करने हारे, अथवा–स्वादु अर्थात् सुख से एक स्थान पर खड़े हुए, ( पितरः ) राष्ट्र पालन करने में समर्थ, (वयोधाः) बल वीर्य के धारण करने वाले, ( कृच्छ्रेश्रितः ) संकट समय में विपत्तियों में रहकर

भी ( शक्तिवन्तः ) शक्तिमान्, सदा बलवान्, या शक्ति नाम अष्टचक्रा तोपों को धारण करने वाले ( गभीराः ) गम्भीर स्वभाव वाले ( चित्र सेनाः ) नाना प्रकार की सेनाओं के स्वामी ( इषुबलाः ) अस्त्रों द्वारा फेंकेजाने वाले बाण आदि के बल से युद्ध करने में कुशल, ( अमृध्राः ) अहिंसनीय, दृढ़ शरीर, ( सतोवीराः ) विद्यमान सेनाके बीच में विद्यमान, अथवा अति विस्तृत, बलवान्, वीर पुरुषों से युक्त, ( व्रातसाहाः ) वीर समूहों भी पराजय करने में समर्थ ( उरवः ) विशाल बाहुओं और शरीर वाले हों।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी ऽअनेहसा। पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो ऽअघशंꣳस ऽईशत ॥ ४७ ॥  ऋ० ६ । ७५ । १० ॥

भा०—( ब्राह्मणासः ) ब्रह्म के जाननेहारे वेदज्ञ विद्वान् और (पितरः) पालकजनः क्षत्रिय लोग (सोम्यासः) सोम अर्थात् राष्ट्र के हितकारी और सौम्य स्वभाव के हों। वे दोनों ( द्यावापृथिवी ) आकाश और भूमि या सूर्य और पृथिवी के समान प्रकाशक और सब के आश्रय ( शिवे ) कल्याणकारी, ( अनेहसा ) निष्पाप, बुरे कर्मों से रहित हों। ( पूषा ) सर्व पोषक राजा और ( ऋतावृधः ) सत्य व्यवहार और यथार्थ, ज्ञान 'ऋत' सत्य ज्ञान के प्रतिपादक, या वेद के धर्म के बढ़ानेहारे जन ( नः ) हमें ( दुरिताद् ) दुष्ट आचरणों से ( पातु ) बचावें और ( रक्ष ) पालन करें। ( अघशंसः ) पाप की शिक्षा देनेवाला जन ( नः माकिः ईशत ) हम पर कभी स्वामी न हो, वह कभी अधिकार प्राप्त न करे।

सुपर्णं वस्ते मृगो ऽअस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता। यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यꣳसन् ॥ ४८ ॥
ऋ० ६ । ७५ । ११ ॥

भा०—( मृगः ) तीव्र मृग के समान गति शील बाण ( सुपर्णं )

शोभन पत्तों को (वस्ते) धारण करता है। और (अस्याः दन्तः) इस बाण का मुख या फला केवल दन्त के समान ही काटने वाला होता है। अथवा— वाण ( सुपर्णं वस्ते ) पत्ती के पंखों को धारण करता और ( अस्य दन्तः मृगः) इसका काटने का साधन मृग अर्थात् व्याघ्र के दांत के समान तीक्ष्ण होता है। वह स्वयं ( गोभिः ) गो चर्म की बनी तांतों से ( संनद्धा ) खूब बंधी जकड़ा हुआ और ( प्रसूता ) धनुष द्वारा प्रेरित होकर ( पतति ) बड़ी दूर जा पड़ता है ( यत्र ) जहां ( नरः ) मनुष्य ( संद्रवन्ति ) परस्पर एक दूसरे के साथ वेग से भागते हैं और ( विद्रवन्ति च ) एक दूसरे के विपरीत होकर दौड़ते हैं। (तत्र) उस युद्ध काल में भी ( इषवः ) वाण ( अस्मभ्यम् ) हमें ( शर्म ) सुखप्रद आश्रय ( यंसन् ) प्रदान करते हैं।

'सुपर्ण', 'मृग', 'गो', इत्यादिशब्दाः कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति इति यास्कवचनात् तद्विकारवाचका भवन्ति।

ऋजी॑ते॒ परि॑ वृङ्ग्धि॒ नोऽश्मा॑ भवतु न॒स्त॒नूः।
सोमो॒ ऽअधि॑ ब्रवीतु॒ नोऽदि॑ति॒ः शर्म॑ यच्छतु ॥ ४६ ॥

ऋ० ६ । ७५ । १२ ॥

विराट् अनुष्टुप् गांधारः ॥

भा०—हे ( ऋजीते ) सरल, सीधे मार्ग से जाने वाले वाण! ( नः परिवृङ्ग्धि ) तू हमें आघात करने से छोड़ दे, या हमें बढ़ा। अथवा—हे राजन्! ( ऋजीते ) सरल व्यवहार में हमें ( परि वृङ्ग्धि ) चला। ( नः तनूः ) हमारा ( तनूः ) शरीर ( अश्मा भवतु ) पत्थर के समान कठोर हो। (सोमः) सबका प्रेरक विद्वान् राजा हमें (अधि ब्रवीतु) उत्तम मार्ग का उपदेश करे। और ( अदितिः ) अखण्ड राजनीति या पृथिवी ( नः ) हमें ( शर्म ) शरण, सुख ( यच्छतु ) प्रदान करे।

आ ज॑ङ्घन्ति॒ सान्वे॑षां ज॒घना॒ँ२ ऽउप॑ जिघ्नते।

अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ ५० ॥

ऋ० ६ । ७५ । १३ ॥

अश्वाजनिर्देवता । जनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( प्रचेतसः ) उत्कृष्ट ज्ञान वाले विद्वान् पुरुष ( एषां ) इन अश्वों के ( सानु ) टांगों पर और ( जघनान् ) जांघों के भागों पर ( आजंघन्ति ) थोड़ा २ मारते हैं और ( उप जिघ्नते ) हलका २ ताड़ते हैं, तव हे ( अश्वाजनि ) अश्वों के प्रेरणा देनेवाली कशे ! या उसको धारण करने वाले सारथे ! तू ( अश्वान् ) अश्वों को ( समत्सु ) संग्रामों में ( चोदय ) प्रेरित कर ।

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांᳬसं परिपातु विश्वतः ॥ ५१ ॥ ऋ० ६ । ७५ । १४ ॥

भा०—( हस्तघ्नः ) हाथ में बंधी डोरी के आघातों से वार २ ताड़ित होनेवाला हाथबन्द नामक कवच जिस प्रकार ( बाहुं ) बाहु को ( अहिः इव भोगैः ) सांप के समान अपने अंगों से ( बाहुं परि एति ) बाहु पर चारों ओर से लिपट जाता है और (ज्यायाः) डोरी के ( हेतिम् ) आघात को ( परिबाधमानः ) दूर से ही बचाता हुआ मनुष्य की रक्षा करता है उसी प्रकार ( हस्तघ्नः ) अपने हाथों से ही शस्त्रास्त्र चलाने में कुशल वीर पुरुष ( भोगैः ) अपने पालन करनेवाले साधनों से ( अहिः इव ) मेघ के समान ( परि एति ) नगर को चारों ओर से घेर लेता है ( बाहुं ) बाधा, पीड़ा देनेवाले शत्रु को और ( ज्याया हेतिम् ) डोरियों से फेंके गये बाणों को ( परि बाधमानः ) दूर से ही नष्ट करता हुआ ( विश्वा वयुनानि ) सब प्रकार के ज्ञानों और युद्ध कौशलों को जानने हारा ( विद्वान् पुमान् ) ज्ञानी पुरुष (पुमांसं) नगरवासी जन को (विश्वतः) सब प्रकारों से ( परि पातु ) रक्षा करे ।

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया ऽअस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो ऽअसि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥५२॥

ऋ० ६ । ४७ । २६ ॥

गर्गो भारद्वाज ऋषिः । वनस्पतिर्देवता । भुरिक्पंक्तिः । पञ्चमः ॥

**भा०**—हे ( वनस्पते ) किरणों के पालक सूर्य, जलों के पालक मेघ के समान मुख्य सेना पुरुषों के पालक सेनापते ! तू ( अस्मत्सखा ) हमारा मित्र, ( प्रतरणः ) युद्ध आदि सकटों के अवसरों से रथ के समान नदी पर नाव के समान पार कराने वाला, ( सुवीरः ) उत्तम वीर योद्धाओं से युक्त, एवं स्वयं भी वीर होकर ( वीड्वङ्गः ) दृढ़ अंगों वाला ( भूयाः ) होकर रह । तू ( गोभिः ) रथ जिस प्रकार गोचर्म से ढका एवं रासों से बंधा हुआ होता है उसी प्रकार तू भी (गोभिः) दूध के बने नाना पदार्थों से या अपने मुख्यनायक की आज्ञाओं से ( संनद्धः असि ) अच्छी प्रकार बद्ध है । तू ( वीडयस्व ) खूब वीरकर्म कर । ( ते अस्थाता) तेरे आश्रय पर रहने वाला तेरा अधिष्ठाता भी रथी के समान ( जेत्वानि ) विजय करने योग्य सभी पदार्थों को ( जयतु ) जीते ।

दिवः पृथिव्याः पर्योज ऽउद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतꣳ सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज॥५३॥

ऋ० ६ । ४७ । २७ ॥

विराड् जगती । निषादः ॥

**भा०**—( दिवः ) सूर्य या द्यौलोक, आकाश से और ( पृथिव्याः ) पृथिवी से सब प्रकार का ( ओजः ) बल और पराक्रम ( परिभृतं उद्भृतं च ) प्राप्त किया जाता और उत्पन्न किया जाता है । और (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वृक्षों से भी ( सहः ) शत्रुओं के विजय करने में समर्थ बल को ( परि आभृतम् ) संग्रह किया जाता है । इसी प्रकार ( अपाम् ) जलों

के ( ओज्मानं ) बल को ( परि ) सब तरफ से एकत्र करके प्राप्त कर। ( इन्द्रस्य ) सूर्य के ( गोभिः ) किरणों से ( आवृतम् ) घिरे हुए ( वज्रं ) प्रकाशमय तीक्ष्ण ताप रूप वज्र को भी ( हविषा ) उसके ग्रहण करने वाले उपाय द्वारा ( रथम् ) रथ या रस, या सार रूप से ( यज ) प्राप्त कर।

राष्ट्र पक्ष में—( दिवः ) आकाश से जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश रूप ओज प्राप्त होता है उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुषों से विज्ञान को प्राप्त करो। पृथिवी से जिस प्रकार अन्न उत्पन्न किया जाता है उसी प्रकार पृथिवी निवासी प्रजा से अन्न संग्रह करो। वनस्पतियों से जिस प्रकार औषध संग्रह किया जाता है उसी प्रकार प्रजाओं के पालक माण्डलिक राजाओं से शत्रुओं के पराजयकारी सेनाबल का संग्रह करो। जलों से जिस प्रकार नहर आदि एवं यन्त्रों के चलाने का बल प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार आप्त प्रजाओं का संगृहीत पुरुषबल प्राप्त किया जाय। सूर्य की किरणों से जिस प्रकार आतसी शीशे द्वारा तेज प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार ( इन्द्रस्य ) सेनापति के ( गोभिः ) आज्ञाओं द्वारा ( आवृतम् ) उनके भीतर छिपे ( वज्रं ) बल वीर्य को ( रथं ) रथ, साररूप रस के समान या शिल्पी जिस प्रकार रथ के नाना अंगों को जोड़ कर रथ बनाता है उसी प्रकार ( यज ) संगत कर, उन सब बलों को प्राप्त करके ( हविषा ) उपाय से, ज्ञान से संयोजित कर।

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑।
सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॒ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥ ५४ ॥

ऋ० ६। ४७। २८ ॥

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—( इन्द्रस्य वज्रः ) सेनापति या राजा का जल वर्षक मेघ के

विद्युत् के समान प्रखर (वज्रः) शत्रु निवारक बल वीर्य, और (मरुताम्) प्रचण्ड वायुओं के समान तीव्र वेगवान् एवं शत्रुमारक सेनापतियों का (अनीकम्) सैन्य है और (मित्रस्य गर्भः) सूर्य के समान तेजस्वी, स्नेही मित्र का ग्रहण सामर्थ्य और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष, दुष्ट निवारक बलवान् स्वयं वृत राजा का (नाभिः) प्रबन्ध बल या संघ बल है (सः) वह सब हे (देव) राजन् तू ही है। हे (रथ) रथ के समान वेग से जाने वाले अंग प्रत्यंग में दृढ़ एवं रमणीय गुणों से युक्त! वह तू (नः) हमारे (हव्यदातिं) अन्नादि के दान को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ (हव्या) समस्त ग्राह्य पदार्थों को (प्रति) गृभाय) ग्रहण कर।

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनुतां॒ विष्ठि॑तं॒ जग॑त् ।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद्दवी॑यो॒ऽअप॑ सेध॒ शत्रू॑न् ॥ ५५ ॥

ऋ० ६ । ४७ । २७ ॥

दुन्दुभिर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (दुन्दुभे) नगारे के समान गम्भीर गर्जन करनेहारे एवं शत्रुगणों को निरन्तर मारनेहारे अथवा शत्रु बल को वृक्ष के समान चीर देनेहारे परशु के समान तीक्ष्ण! तू (पृथिवीम्) पृथिवी निवासिनी प्रजा को (द्याम्) आकाश के समान उन्नत पुरुषों या राज सभा को भी (उप श्वासय) आश्वासन दे, उनको प्राणयुक्त कर। (जगत्) समस्त जगत् (विष्ठितम्) विविध प्रकारों से स्थित सुरक्षित होकर (ते) तुम्हें (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (मनुताम्) जाने। (सः) वह तू (इन्द्रेण) राजा और सेनापति के साथ (देवैः) और देवों विद्वान् पुरुषों के साथ (सजूः) मिलकर (दूरात् दवीयः) दूर से भी दूर के (शत्रून) शत्रुओं को (अप-सेध) पराजित कर। जिस प्रकार दुन्दुभिः अपने भयंकर शब्द से दूर से ही शत्रुओं को दहलाकर नाश करता है उसी प्रकार राजा भी

अपनी भेद नीति, गर्जना और मन्त्र वल से अपने राष्ट्र की रक्षा करे और पर वल का नाश करे।

'दुन्दुभिः—' दुन्दुभिरिति शब्दानुकरणं। द्रुमो भिन्नमिति वा दुंदुभ्यतेर्वा स्याद् वधकर्मणः॥ निरु०।

आ क्रन्दय वलमोजो न आ धा निष्टनिहि दुरिता वाधमानः।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥५६॥

ऋ० ६। ४७। ३०॥

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (दुन्दुभे) दुन्दुभे! भेरी के समान भैरव गर्जन करने हारे, शत्रुओं को पशु के समान काट डालने और भेदने हारे नीतिमान्! तू (वलम् आक्रन्दय) अपने सैन्य-वल को सब तरफ़ से बुलाकर तैयार रख। (नः) हम प्रजाओं में भी (ओजः) पराक्रम को (आ धाः) सब प्रकार से धारण करा (निः स्तनिहि) खूब गर्जना कर या सेना वल की वृद्धि कर। और (दुरिता) दुष्ट व्यसनों को (वाधमानः) दूर करता हुआ (दुच्छुनाः) पागल कुत्तों के समान दुःखदायी पुरुषों को (इतः) हमारे राष्ट्र से (अप प्रोथ) दूर भगा। तू (इन्द्रस्य मुष्टिः असि) इन्द्र अर्थात् राजा के प्रहार करने वाले मुक्के के समान प्रवल प्रहार करने वाला (असि) है। तू (वीडयस्व) सदा अपने को दृढ़ वनाये रख।

दुन्दुभि के पक्ष में—दुन्दुभि वल को एकत्र करे। सेना वल में वल फूंक दे, बुरे भावों को वाधकर वीर भाव संञ्चारित करे। सेनापति के मुक्के के समान दुःखदायी शत्रुओं के दिलों को धुन डाले।

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥

ऋ० ६॥ ७७। ३१॥

भुरिक् पंक्तिः। पञ्चमः।

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन्! सेनापते! ( अमूः ) इन परायी शत्रु सेनाओं को ( आभज ) सम्मुख से परे फेंक दे। ( इमाः प्रति आवर्त्तय ) इनको लौटा डाल। ( केतुमत् दुन्दुभिः ) ध्वजा वाला नगारा जिस प्रकार बड़े जोर से शब्द करता है, उसी प्रकार यह ( केतुमत् ) प्रज्ञावान्, शत्रु-हिंसक, सेनापति ( वावदीति ) बराबर आज्ञाएं देता चला जाय। और ( नः ) हमारे ( अश्वपर्णाः ) अश्वों से दौड़ने वाले, घुड़ सवार ( नरः ) वीर सैनिक पुरुष ( चरन्ति ) गति करें, वेग से चलें, और ( अस्माकम् ) हमारे (रथिनः) रथारोही वीर गण (जयन्तु) शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें।

**आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऽऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऽऐन्द्राग्नः संहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्पेत्वः ॥ ५८ ॥**

भा०—राष्ट्र के भिन्न २ अधिकारियों के अधीन नियुक्त पुरुषों के भिन्न लक्षण दर्शाते हैं। ( कृष्णग्रीवः आग्नेयः ) अग्नि नामक प्रधान अग्रणी पुरुष गर्दन में कृष्ण वर्ण का चिन्ह रखें। (सारस्वती मेषी) सरस्वती नामक सभा के विद्वान् पुरुष मेषी अर्थात् भेड़ी के समान श्वेत वस्त्र वाले अथवा ऊन का वस्त्र धारण करें। ( सौम्यः बभ्रुः ) 'सोम' नाम पदाधिकारी पुरुष 'बभ्रु' अर्थात् भूरे रंग की पोशाक पहने। ( पौष्णः श्यामः ) पूषा अधिकारी के पुरुष श्याम रंग के पोशाक पहनें। ( बार्हस्पत्यः शितिपृष्ठः ) बृहस्पति के अधीन पुरुष पीठ पर काले रंग के पोशाक वाला हो। (वैश्वदेवः शिल्पः) विश्वेदेव अर्थात् सामान्य प्रजा के सेवक जन नाना वर्णों के पोशाक वाले हों। (ऐन्द्रः अरुणः) 'इन्द्र' सेनापति के लाल केसरिया। ( मारुतः कल्माषः ) मरुत्, तीव्र वेगवान् सेना के सैनिक जन कल्माष,

---

५८, ५९, ६०—इमानि ब्राह्मणवाक्यानि द्रव्यदेवताप्रतिपादकानि ननु मन्त्राः इति महीधरो याज्ञिकोऽनन्तदेवश्च ॥

चितकबरे या खाखी रंग की पोशाक पहने। (ऐन्द्राग्नः संहितः) इन्द्र और अग्नि दोनों के समान रूप से कर्त्ता जन, मिले हुए पोशाक पहनें। (सावित्रः अधोरामः) 'सविता' के नीचे से श्वेत हों, (वारुणः कृष्णः) वरुण के भृत्य काले पोशाक के हों, परन्तु (पेत्वः) अति वेग से जाने वाले का या पूरे सवारी में (एकशितिपात्) एक पैर काले रंग का हो।

ये चिह्न भिन्न २ विभागों के कार्यकर्त्ताओं के नियत किये जायं अथवा उन २ विभाग के चिह्नों पर इस २ प्रकार के पशु का चित्र हो।

**अ॒ग्नयेऽनी॑कवते॒ रोहि॑ताञ्जिरन॒ड्वान॒धोरा॑मौ सावि॒त्रौ पौ॒ष्णौ र॑ज॒तना॑भी वैश्वदे॒वौ पि॒शङ्गौ॑ तूप॒रौ मा॑रु॒तः कल्मा॒षऽआ॑ग्ने॒यः कृ॒ष्णोऽजः सा॑रस्व॒ती मे॒षी वा॑रु॒णः पेत्वः॑ ॥ ५६ ॥**

भा०—( अनीकवते अग्नये रोहिताञ्जिः अनड्वान् ) अनीकवान्, सेना-मुख के स्वामी, अग्रणी पुरुष का लक्षण लाल वर्ण का वृषभ हो। अर्थात् जिस प्रकार लाल लंगोटी का बैल शकट को ढोता है उसी प्रकार वह अग्रणी पुरुष सेना व्यूह के अग्र में रह कर सेना व्यूह को मार्ग पर लेजाता है। इसी से उस अग्रणी नेता का व्यंग्य लक्षण लाल चिन्ह का शकटवाही बैल है। (अधोरामौ सावित्रौ) सविता अर्थात् पुत्र प्रजनन करने में समर्थ स्त्री पुरुष अपने अधो भाग, इन्द्रियों से रमण करते हैं इससे उनके प्रतिनिधि चिह्न 'अधोराम'—नीचे को शुक्र वाले या अधो भाग में शुक्र = श्वेत भाग वाले बकरे नियत जानो। ( पौष्णौ ) प्रजाओं के पालन पोषण करने वाले धनाढ्य स्त्री पुरुष दोनों ( रजतनाभी ) मानो सबको सुवर्ण, चान्दी, धन से अपने साथ बांध लेने में समर्थ होते हैं। इसलिये उनके लक्षण नाभि में स्थित श्वेत वर्ण वाले दो पशु कल्पित हैं। ( वैश्वदेवौ पिशङ्गौ ) विश्वदेव, सामान्य प्रजा के स्त्री पुरुष निःशस्त्र होने से ( तूपरौ ) विना सींग के पशु ही उनके चिह्न हैं। (मारुतः कल्मापः) वायु जिस प्रकार वेग से आकाश को धूलिधूसरित या नाना मेघावृत कर देता,

है उसी प्रकार मरुत् के समान तीव्र वेगवान् सेना के जन युद्धस्थल को नाना वर्णों से रंग देते हैं इसलिये उनका निदर्शक चिह्न चितकबरा या खाखी पशु है। (आग्नेयः कृष्णः अजः) अग्नि अस्त्र आदि के विभाग का चिह्न श्याम अज है, क्योंकि उनके अग्नि-अस्त्र में श्याम अर्थात् काला बारूद, मसाला और अज अर्थात् गोले आदि के दूर फेंकने के लिये बल प्रयुक्त होता है इस श्लेष से उनका निदर्शक 'कृष्ण अज' है। ( सारस्वती मेषी ) भेड़ जिस प्रकार शिर झुका कर चलती है और मेष जिस प्रकार माथे से प्रहार करता है उसी प्रकार सरस्वती के उपासक विद्वान् विनय से रहते हैं और मस्तक से विज्ञान द्वारा स्पर्द्धा करते हैं, इसलिये उनकी सभा सरस्वती का लक्षण मेषी है। (वारुणः पेत्वः) जल जिस प्रकार अति शीघ्रगामी है और जिस प्रकार दुष्टों का वारक दमनकारी सिपाही भी अति शीघ्रकारी है उसका का चिह्न भी ( पेत्वः ) शीघ्रगन्ता अश्व है।

**अ॒ग्नये॑ गाय॒त्राय॑ त्रि॒वृते॒ राथ॑न्तराया॒ष्टाक॑पाल॒ऽइन्द्रा॑य॒ त्रैष्टु॑भाय पञ्चद॒शाय॒ बार्ह॑ताय॒ैका॑दशकपालो॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यो॒ जाग॑तेभ्यः सप्तद॒शेभ्यो॑ वैरू॒पेभ्यो॒ द्वाद॑शकपालो मि॒त्राव॑रुणाभ्या॒मानु॑ष्टुभाभ्या-मेक॑वि॒ꣳशाभ्यां॑ वैरा॒जाभ्यां॒ पय॒स्या बृ॒ह॒स्पत॑ये॒ पाङ्क्ता॑य त्रिण॒-वाय॑ शाक्व॒राय॑ च॒रुः सा॑वि॒त्रऽऔ॒ष्णि॑हाय त्रयस्त्रि॒ꣳशाय॑ रैव॒-ता॒य॒ द्वाद॑शकपालः प्राजाप॒त्यश्च॒रुरदि॑त्यै॒ विष्णु॑पत्न्यै च॒रुर॒ग्नये॑ वैश्वान॒राय॒ द्वाद॑शकपा॒लोऽनु॑मत्या अ॒ष्टाक॑पालः ॥ ६० ॥**

भा०—( गायत्राय ) गायत्री छन्द से जाने गये ब्राह्म बल से युक्त और ( राथन्तराय ) रथ, बल या आत्मज्ञान से तरण करने वाले ( अग्नये ) अग्नि अर्थात् अग्रणी, प्रधान पुरुष के लिये ( अष्टाकपालः ) आठ कपालों में परिपक्व विचार आवश्यक है। वह अपने अधीन विचारार्थ आठ विचारवान् पुरुषों को नियुक्त करे। ( त्रैष्टुभाय ) क्षात्र बल से युक्त ( पञ्चदशाय ) पन्द्रह अंगों से युक्त ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राजा के लिये ( एकादश

कपालः ) ११ कपालों अर्थात् विद्वान् पुरुषों से परिपक्व विचार आवश्यक है। ( जागतेभ्यः ) जागत अर्थात् वैश्यों से समृद्ध ( वैरूपेभ्यः ) नाना प्रकार की रुचि वाले ( विश्वेभ्यः देवेभ्यः ) समस्त दानशील पुरुषों के लिये ( द्वादशकपालः ) १२ कपालों अर्थात् १२ विद्वानों द्वारा सुविचारित परिपक्व विचार आवश्यक है। ( मैत्रावरुणाभ्यांआनुष्टुभाभ्यां एकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या ) प्राण और अपान के समान मित्र और वरुण, दोनों आनुष्टुभ अर्थात् इस सामान्य जनों के हितकारी २१ अधिकारियों से युक्त विशेष कान्ति दोनों को 'पयस्या' चरु हो अर्थात् दूध जिस प्रकार शुद्ध सात्विक एवं पुष्टिप्रद है उसी प्रकार शुद्ध सात्विक और पुष्टिप्रद पुरुष ही प्रजा के न्याय निर्णय और दुष्ट दमन के कार्यों का विधान करें। ( पांक्ताय त्रिनवाय, शाक्कराय बृहस्पतये चरुः ) पाचों जनों के हितकारी २७ विभागों से युक्त शक्तिशाली बृहस्पति के लिये ( चरुः ) अन्नमात्र भोग्य पदार्थों की व्यवस्था होनी चाहिये। ( सवित्रे ) प्रजोत्पत्ति करने वाले ( औष्णिहाय ) अति अधिक स्नेहवान् ( त्रयः त्रिंशाय ) तेतीस विभागों से युक्त, ( रैवताय ) धनधान्यवान् के लिये ( द्वादशकपालः ) १२ कपालों में संस्कृत अर्थात् १२ विद्वानों द्वारा सुविचारित ( प्राजापत्यः ) प्रजा पालक पिता माता के निमित्त ( चरुः ) विधान होना चाहिये। ( अदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुः ) राजा की अखण्ड पालक शक्ति के लिये भी परिपक्व विचार होना आवश्यक है। ( वैश्वानराय अग्नये द्वादशकपालः ) समस्त नरनारी के हितकारी नेता के लिये द्वादश कपाल अर्थात् उसके अधीन १२ विद्वान् विचारक हों। ( अनुमत्या अष्टाकपालः ) अनुमति नाम सभा के लिये आठ कपाल अर्थात् आठ विद्वान् आवश्यक हैं।

कपाल शब्द केवल विभागप्रदर्शक है।

इत्येकोनत्रिंशोध्यायः ।

# अथ त्रिंशोऽध्यायः

[ अ० ३०, ३१ ] नारायण ऋषिः । *

॥ ओ३म् ॥ देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥१॥

सविता देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( सवितः ) सब जगत् के उत्पादक ! हे ( देव ) सब के द्रष्टा और प्रकाशक परमेश्वर ! एवं विद्वन् ! (यज्ञं) परस्पर संगति से होने वाले कार्य का ( प्रसुव ) भली प्रकार संचालन कर । और ( भगाय ) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये ( यज्ञपतिम् ) यज्ञ, प्रजापालक, राष्ट्र के पालक राजा का ( प्रसुव ) उत्तम रीति से अभिषेक कर । ( दिव्यः ) ज्ञान और प्रकाशक गुणों से युक्त होकर ( गन्धर्वः ) गौ, वाणी और पृथ्वी का धारण करने वाला परमेश्वर, विद्वान् और राजा ( केतपूः ) अपने ज्ञान से सब को पवित्र करने हारा होकर ( नः केतं ) हमारे ज्ञान और चित्त को ( पुनातु ) पवित्र करे । और वह (वाचस्पतिः) समस्त वाणियों का पालक प्रभु, विद्वान्, समस्त आज्ञाओं और वाणियों का स्वामी ( नः ) हमारी ( वाचं ) वाणी को ( स्वदतु ) स्वादयुक्त, मधुर करे, अथवा स्वयं स्वीकार करे । शत० १३।६।२।९ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ २ ॥

गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक और सब के प्रकाशक

---

* अथ पुरुषमेधः । शत० १३।६।२।१—२० ॥

प्रभु, परमेश्वर के ( वरेण्यम् ) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करने वाले, एवं सबों से वरण करने योग्य, सर्वोत्तम ( भर्गः ) पापों के भून डालने वाले तेज का ( धीमहि ) हम ध्यान करते हैं। ( यः ) जो ( नः ) हमारे ( धियः ) बुद्धियों, कर्मों और स्तुति-वाणियों को ( प्रचोदयात् ) उत्तम मार्ग में प्रेरित करे। शत० १३।६।२।९ ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ ३ ॥

श्यावाश्व ऋषिः। सविता देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे ( देव सवितः ) सर्व प्रकाशक! सर्वोत्पादक परमेश्वर! ( विश्वानि ) सब प्रकार के ( दुरितानि ) दुष्ट आचरणों और दुःखदायी, बुरे व्यसनों को ( परासुव ) दूर करो। ( यत् भद्रम् ) जो सुखदायक, कल्याणकारी है ( तत् ) उसे ( नः ) हमें ( आसुव ) प्राप्त कराइये॥ शत० १३।६।२।९॥

वि॒भ॒क्तार॑ᳪं हवामहे॒ वसो॑श्चि॒त्रस्य॒ राध॑सः।
स॒वि॒तारं॑ नृ॒चक्ष॑सम् ॥ ४ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः। सविता। देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—( चित्रस्य ) विचित्र, ( वसोः ) इस पृथ्वी पर बसने वाले चराचर जीवसंसार रूप संसार के बसाने वाले प्रभु के ( राधसः ) धन के ( विभक्तारम् ) विभाग करने वाले, उनको नाना वर्गों, श्रेणियों और कर्मों में विभक्त करने वाले, ( नृचक्षसम् ) सब मनुष्यों के द्रष्टा, सर्व साक्षी, ( सवितारम्) सर्वोत्पादक, परमेश्वर और सर्वप्रेरक 'सविता' नाम विद्वान् और परमेश्वर की ( हवामहे ) हम स्तुति करते हैं।

ब्रह्म॑णे ब्राह्म॒णं क्ष॒त्राय॑ राज॒न्यं᳖ म॒रुद्भ्यो॒ वैश्यं॒ तप॑से शू॒द्रं तम॑से॒ तस्क॑रं नार॒काय॑ वीर॒हणं॑ पा॒प्मने॑ क्ली॒बमा॑क्र॒याया॑ऽअ॒यो॒गूं

कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ५ ॥

भा०—( १ ) ( ब्रह्मणे ब्राह्मणम् ) ब्रह्म, परमेश्वर की उपासना, ब्रह्म ज्ञान, वेदाध्ययन, अध्यापन इन कार्यों के लिये 'ब्राह्मण' ब्रह्मवेत्ता, वेदज्ञ विद्वान् को नियुक्त करो।

( २ ) ( क्षत्राय राजन्यम् ) प्रजा को विनष्ट होने से बचाने, राज्य पालन और वीर्य पराक्रम के कार्य करने के लिये 'राजन्य' अर्थात् श्रेष्ठ राजा को नियुक्त कर।

( ३ ) ( मरुद्भ्यः वैश्यम् ) मनुष्यों के हित के लिये, उनके अन्न आदि उत्पन्न करने, गो पालन और प्रदान और अन्य नाना व्यवसाय बढ़ाने के लिये ( वैश्यं ) वैश्य को नियुक्त करो।

( ४ ) ( तपसे ) श्रम के कार्य के लिये ( शूद्रम् ) शीघ्रता से द्रुत गति से जाने वाले, श्रमशील पुरुष को नियुक्त करो।

( ५ ) ( तमसे ) अन्धकार के भीतर कार्य करने के लिये (तस्करम्) उसमें जो पुरुष कार्य करने में समर्थ है उसको ही नियुक्त करो।

( ६ ) ( नारकाय वीरहणम् ) नीचे की योनि के कष्ट भोगने के लिये (वीरहणम्) पुत्रों और अपने ही वीर्यवान् पुरुषों के नाश करने वाले को पकड़ो।

( ७ ) ( पाप्मने क्लीवम् ) पाप को नष्ट करने के लिये कार्य में 'क्लीव' अर्थात् ऐसे शक्तिहीन पुरुष को नियुक्त करो कि वह पाप कर ही न सके। अथवा, उसका अनुकरण करो, पाप के प्रति स्वतः नपुंसक के समान उदासीन होकर रहो।

( ८ ) ( आक्रयाय अयोगूम् ) सब प्रकार के पदार्थों के क्रय विक्रय करने के लिये 'अयोगू' अर्थात् चांदी साने आदि के परिमाण सिक्कों की गणना और व्यवहार विज्ञ पुरुष को नियुक्त करो।

---

[ ५-२० ] ब्रह्मणे ब्राह्मणमिति द्वे काण्डिके, 'तपसे'० नुवाकश्च ( इत्यध्यायपरिसमाप्तिपर्यन्तो नुवाकश्च ) ब्राह्मणम् इति सर्वानुक्रमणिका।

(९) (कामाय पुंश्चलूम्) काम के उपभोग में गिरने के निमित्त पुरुषों में अति चंचल स्वभाव की पुरुष या स्त्री को दोष युक्त फंसा जानो।

(१०) (अतिक्रुष्टाय मागधम्) अति राग से आलाप करने के लिये 'मागध' को उपयुक्त जानो। शत० १३।६।२।१०॥

**नृत्ताय॑ सूतं गीताय॑ शैलूषं धर्मा॑य सभाच॒रं न॒रिष्ठा॑यै भीम॒लं न॒र्मा॑य रे॒भꣳ हसा॑य॒ कारि॑मान॒न्दाय॑ स्त्रीष॒खं प्र॒मदे॑ कुमारीपु॒त्रं मे॒धायै॑ रथका॒रं धैर्या॑य॒ तक्षा॑णम् ॥ ६ ॥**

निचृदष्टिः। मध्यमः॥

भा०—(११) (नृत्ताय) नाट्य के लिये (सूतम्) दूसरे से प्रेरित होने वाले अथवा नाट्य के पात्रों के प्रेरक पुरुष को नियुक्त करो।

सूतम् क्षत्रियाद् ब्राह्मण्यां जातम् इति दयानन्दस्तच्चिन्त्यम्।

(१२) (गीताय शैलूषम्) गीत कर्म के लिये 'शैलूष' अर्थात् ऐसे नट को उपयुक्त जानो जो नाना भाव विकारों को दर्शाते हुए गा सके।

(१३) (धर्माय सभाचरम्) धर्म, अर्थात् स्मृति शास्त्र राज-नियम या विधान के निर्णय के लिये 'सभाचर' अर्थात् धर्मसभा में कुशल पुरुष को उपयुक्त जानो।

(१४) (नरिष्ठायै) नेता के पद पर स्थिति प्राप्त करने के लिये (भीमलम्) भयङ्कर, भीतिप्रद पुरुष को नियुक्त करो जिसके भय से प्रजाजन उस पद का मान करें।

(१५) (नर्माय) कोमल वचनों के प्रयोग करने के कार्य में (रेभम्) सुन्दर वचनों को प्रयोग करने वाले स्तुति करने में चतुर पुरुष को प्राप्त करो।

(१६) (हसाय) आनन्द विनोद और उपहास के काम में (कारिम्) नकल उतारने वाले को चतुर जानो।

( १७ ) ( आनन्दाय ) आनन्द, गृहसुख प्राप्त करने में ( स्त्रीसखम् ) अपनी स्त्री के साथ मित्र रूप से रहने वाले पति को योग्य जानो।

( १८ ) ( प्रमदे ) अति अधिक हर्ष, काम वेग के उत्पन्न करने के कार्य में ( कुमारीपुत्रम् ) कुमारी दशा में व्यभिचार से उत्पन्न कानीन बच्चे को जानो। अर्थात् कुमारी दशा में विना विवाह के जो नाजायज़ पुत्र पैदा होते हैं वे अयुक्त काम व्यसनों में फंसकर प्रायः दुराचारी होते हैं इसलिये उनको दूर करने का यत्न करो।

( १९ ) ( मेधाय ) बुद्धि के कार्य में ( रथकारम् ) रथकार को दृष्टान्त के रूप से जानो। रथकार जिस प्रकार नाना कौशल से रथ के नाना प्रकार के अवयवों को जिस बुद्धिमत्ता से लगाता है उसी प्रकार बुद्धिपूर्वक कार्ययोजना के लिये रथकार शिल्पी का अनुकरण करना चाहिये।

( २० ) ( धैर्याय ) धैर्य की शिक्षा के लिये ( तक्षणम् ) तरखान को दृष्टान्त रूप से जानो। जिस प्रकार श्रम से तरखान अपने छोटे से औज़ार से बड़ी धीरता से अपने हाथ पांवों को बचाते हुए लकड़ी को गढ़ कर उत्तम कपाट, मेज, कुर्सी आदि बना देता है उसी प्रकार हम धैर्य से अपने साधनों का प्रयोग करके श्रम से पदार्थों को तैयार करें। अधीर होकर जल्दबाज़ी से कार्य बिगड़ जाते हैं अपने ही औज़ार अपना नाश करते हैं।

तप॑से कौला॒लं मा॒यायै॑ क॒र्मार॑ꣳ रू॒पाय॑ मणिका॒रꣳ शु॒भे व॒पꣳ श॑र॒व्या॒या इषुका॒रꣳ हे॒त्यै ध॑नुष्का॒रं कर्म॑णे ज्याका॒रं दि॒ष्टाय॑ रज्जुस॒र्जं मृ॒त्यवे॑ मृगयु॒मन्त॑काय श्व॒निन॑म् ॥ ७ ॥

भा०—( २१ ) ( तपसे कौलालम् ) अग्नि से तपाने के कार्य में (कौलालम्) कुलाल अर्थात् घड़े के बनाने वाले कुम्हार का अनुकरण करो। वह जिस प्रकार कच्चे भाण्डों को बड़ी विधि से रख कर अग्नि से उनको

तपाता है इसी प्रकार हम भी मां बाप आचार्य अपने शिष्यों और राजा अपने प्रजा और राष्ट्र के कार्यों की रक्षा करते हुए उनको परिपक्व करे।

( २२ ) ( मायायै कार्मारम् ) बुद्धि और आश्चर्य के कार्य करने के लिये लोहकार का अनुकरण करो। जैसे वह बुद्धिमत्ता से लोहे आदि पदार्थों के नाना द्रव्य बनाता है वैसे ही बुद्धिपूर्वक नाना पदार्थों को उत्पन्न करने का कौशल उससे सीखना चाहिये।

( २३ ) ( रूपाय मणिकारम् ) रुचिकर, सुन्दर जड़ाऊ पदार्थ को बनाने के लिये 'मणिकार' का अनुकरण करो। मणिकार, मणियों के आभूषण बनाने वाले जिस प्रकार सूक्ष्मता से मणियों को धैर्य से जड़ता है वह सुन्दर आभूषण बन जाता है उसी प्रकार धैर्य से पदार्थों को सुन्दर बनाने का यत्न करो।

( २४ ) ( शुभे ) मुख की शोभा के लिये ( वपम् ) केश डाढ़ी के काटने वाले नाई को लो। इसी प्रकार राष्ट्र की समृद्धि के लिये (वपम्) बीज वपन करने वाले किसान को लो। सुन्दरता को पैदा करने के लिये जिस प्रकार नाई अपने औज़ारों से मुख पर की शोभा के विघातक बालों को छांट कर सुन्दर बना देता है उसी प्रकार राजा भी राष्ट्र के उत्तम पदार्थों की शोभा के नाशक कारणों को दूर करे। महामारी दुर्भिक्षादि को दूर करने के लिये कृषकों को भी नियुक्त करे। या कृषक के समान ही मनुष्य अपनी शोभा, शुभ सन्तान के लिये धैर्य से स्त्री रूप भूमि में बीज वपन करे और उसके समान ही सन्तानों की रेख देख करे।

( २५ ) ( शरव्यायै ) बाणों को प्राप्त करने के लिये ( इषुकारम् ) बाण बनाने वाले को प्राप्त करो, उसे राष्ट्र में बसाओ।

( २६ ) ( हेत्यै धनुष्कारम् ) दूर फेंकने वाले अस्त्रों के लिये धनुष आदि बनाने वाले शिल्पि को प्राप्त करो।

( २७ ) ( कर्मणे ) अधिक देर तक युद्ध कार्य करने के लिये (ज्याका-

रम् ) डोरी के बनाने वाले को प्राप्त करो। अधिक कार्य से डोरी वार २ टूटना सम्भव है, इसलिये उसके वनाने वाले से बराबर डोरियां प्राप्त हो सकेंगी।

( २८ ) ( दिष्टाय ) बहुत लम्बी रचना करने के लिये ( रज्जुसर्जम् ) लम्बी रस्सी बनाने वाले का अनुकरण करो। वह जिस प्रकार छोटे २ तृणों से भी लम्बा रस्सा बना लेता है उसी प्रकार राजा अल्प शक्ति वाले मनुष्यों की भी लम्बी और दृढ़ सेना बनावे। और उनको उसके समान पुनः आवर्त्तन या अभ्यास द्वारा परिपक्व करे।

( २९ ) ( मृत्यवे मृगयुम् ) मृत्यु अर्थात् दुष्ट प्राणियों के वध के लिये ( मृगयुम् ) व्याध को उपयुक्त जानो। दुष्ट पुरुषों के विनाश के लिये राजा व्याध का अनुकरण करे। उसी के समान खोज २ कर दुष्ट पुरुषों को नाना उपाय से प्रलोभन आदि के जाल में फांस कर पकड़े और उनको निर्दय होकर मृत्युदण्ड दे।

( ३० ) ( अन्तकाय श्वनिनम् ) दुष्ट प्राणियों का अन्त करने के लिये 'श्वनी' अर्थात् कुत्ते पालने वाले शिकारी को नियुक्त करो। अथवा—जिस प्रकार कुत्तों को साथ लेकर शिकारी अपने शिकार को चारों ओर से घेर कर व्याघ्र आदि को भी मार डालता है उसी प्रकार राजा भी शत्रु और दुष्ट पुरुषों को घेर २ कर नष्ट करे।

'दिष्टाय रज्जुसर्पम्' और 'अन्तकाय स्वनिनम्' ऐसा पाठ मान लेना श्री पं० श्री पाद दामोदर भट्टजी का असंगत है। वह उन्हीं के प्रकाशित शुद्ध यजुर्वेद के पाठ से विपरीत भी है।

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य ऽउन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया ऽअकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

( ३१ ) ( नदीभ्यः ) नदीयों के पार करने के लिये ( पौञ्जिष्ठम् ) काष्ठखण्डों के पुञ्जों पर बैठ कर नदी पार करने वाले या बड़े पशुओं की खालों की मशक बना कर उस पर तैरने वाले पुरुषों को नियुक्त करे ।

( ३२ ) ( ऋक्षीकाभ्यः नैषादम् ) ऋच्छ छाति के वनचारी जन्तुओं के लिये नैषाद, अर्थात् निषाद या जंगली जाति के पुरुषों को नियुक्त करो । वे ऋक्ष आदि को सुगमता से वध कर देते हैं । अथवा—(ऋक्षीकाभ्यः) कुटिल चालों को चलने वाली स्त्रियों को वश करने के लिये ( नैषादम् ) नीच धर्म से रहने वाले पुरुषों को ही नियुक्त करे ।

( ३३ ) ( पुरुषव्याघ्राय ) पुरुषों में व्याघ्र के समान शूरवीर पुरुषों के पद के लिये ( दुर्मदम् ) दुर्दान्त, अदम्य पुरुष को नियुक्त करे ।

( ३४ ) (गन्धर्वाप्सरोभ्यः) युवा पुरुष और युवति स्त्रियों की रक्षा के लिये (व्रात्यम्) व्रात अर्थात् मनुष्यों के हितकारी विद्वान् को नियुक्त करो ।

( ३५ ) ( प्रयुग्भ्यः ) उत्कृष्ट योगाभ्यासों के लिये प्रवृत्त, (उन्मत्तम्) उत्तम कोटि के हर्ष से युक्त योगी को जानो ।

( ३६ ) ( सर्वदेवजनेभ्यः अप्रतिपदम् ) सर्व, राष्ट्र भर में गुप्तचर के काम करने के लिये और 'देवजन' अर्थात् युद्ध के विजय करने निमित्त सैनिक के कार्य करने के लिये ( अप्रतिपदम् ) अर्थात् अज्ञात पुरुष को प्राप्त करे अर्थात् जिसको कोई जान न सके ऐसे को चर बनावे और जो किसी को कुछ नहीं समझे ऐसे को सिपाही बनावे ।

( ३७ ) ( अयेभ्यः ) पासों के खेलने के लिये ( कितवम् ) ज्वारी पुरुष को दोषी जाने ।

( ३८ ) ( ईर्यतायै अकितवम् ) दूसरों को सन्मार्ग पर ले चलने के लिये छल कपट से रहित सज्जन पुरुष को नियुक्त करे ।

( ३९ ) ( पिशाचेभ्यः ) कच्चे मांस पर गीध की तरह रूप भोग पर पड़ने वाले पुरुषों को वश करने के लिये ( विदलकारीम् ) विरुद्ध

दल खड़ा करा देने वाली मांसपिण्ड पर गीधों के समान आपस में फोड़ डाल देने वाली नीति का प्रयोग करे।

( ४० ) ( यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ) कुटिल मार्गों से धन प्राप्त करने वाले और प्रजाओं को पीड़ा देने वाले, ठगों, चोर लुटेरों के वश करने के लिये कण्टकी अर्थात् हिंसा करने वाली नीति को अपने व्यवहार में लाने वाली सेना को अथवा उन पर आंख रखने की नीति का प्रयोग करे।

कण्टकः कन्तपो वा कृन्ततेर्वा कण्टतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। निरु० ॥ कण्टति पश्यति परान् इति स्कन्दस्वामी।

**सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराद्ध्या एदिधिषुःपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीꣳ संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥ ६ ॥**

भा०—( ४१ ) ( संधये ) परस्त्रीगमन के लिये जाने वाले ( जारम् ) जार, व्यभिचारी पुरुष को राष्ट्र से दूर करे। अथवा—(संधये) परराष्ट्र से संधि करने के लिये ( जारम् ) उत्तम रीति से बात कहने वाले, वाक्य-कुशल विद्वान् को या वृद्ध पुरुष को नियुक्त करे।

( ४२ ) ( गेहाय ) घर में विद्यमान स्त्री के प्रति दुर्बुद्धि से ( उपपतिम् ) पति के समान भोग करने में प्रवृत्त उपपति पुरुष को राष्ट्र से दूर करे।

( ४३ ) ( आर्त्यै ) आर्त्ति अर्थात् क्षुधा आदि पीड़ा को दूर करने के लिये ( परिवित्तम् ) पर्याप्त धनवान् पुरुष को प्राप्त करो।

( ४४ ) ( निर्ऋत्यै ) निर्ऋति अर्थात् भूख, महामारी आदि कष्टों को दूर करने के लिये ( परि-विविदानम् ) सब तरफ़ से साधनों को प्राप्त करने वाले को नियुक्त करो।

( ४५ ) ( अराद्ध्या ) कार्य में सिद्धि न होती हो तो उसको या दरि-

द्रता को दूर करने के लिये ( एदिधिषुः पतिम् ) पूर्व ही धारण करने योग्य सम्पत्ति के पालक स्वामी को प्राप्त करो ।

परिवित्त, परिविविदान और एदिधिषुः पति इन शब्दों का लौकिक संस्कृत में अर्थ इस प्रकार है । छोटे भाई के विवाहित होजाने पर जो बड़ा अविवाहित है वह 'परिवित्त' कहाता है । और वह छोटा भाई 'परिविविदान' कहाता है । इसी प्रकार बड़ी बहिन के विवाह के पूर्व ही छोटी बहिन विवाह करे तो वह 'एदिधिषु' या 'अग्रे दिधिषु' है उसका पति 'एदिधिषूपति' कहाता है । महर्षि के मत में—( आर्त्यै ) काम पीड़ा में प्रवृत्त हुए ( परिवित्तम् ) विवाहित छोटे भाई के अविवाहित बड़े भाई को दूर करो । अर्थात् उसका भी विवाह करो । या राजा ऐसा नियम बनावे कि बड़े भाई के पहले छोटे भाई का विवाह न हो । इससे स्त्री की अभिलाषा के कारण गृह कलह न होंगे । ( निर्ऋत्यै परिविविदानम् ) निर्ऋति अर्थात् पृथिवी के लेने के लिये प्रवृत्त परिविविदान बड़े भाई की उपेक्षा करके दाय भाग लेने वाले छोटे भाई को दूर करो । अर्थात् राजा नियम बना दे कि बड़े भाई की उपेक्षा करके छोटे भाई को जायदाद न मिले ।

इसी प्रकार ( अराद्ध्यै एदिधीषुः पतिम् ) बड़ी कन्या के अविवाहित रहते हुए भी छोटी कन्या को विवाह करने वाले पुरुष को 'अराधि' अर्थात् अविद्यमान सिद्धि में प्रवृत्त जान कर उसे दूर करो । इसका तात्पर्य यह है कि बड़ी कन्या के विवाह योग्य होजाने पर यदि कोई पुरुष अप्राप्तकाला छोटी कन्या से ही विवाह करने में प्रवृत्त हो तो राजा उसको दूर करे । अर्थात् राजा ऐसा नियम बना दे कि प्राप्तकाला बड़ी कन्या के होते हुए अप्राप्तकाला छोटी कन्या को कोई विवाह न करे ।

( ४६ ) ( निष्कृत्यै ) निष्कृति अर्थात् प्रायश्चित्त, संताप आदि द्वारा मलशोधन करना 'निष्कृति' है उसके लिये ( पेशस्कारीम् ) सुवर्ण को तपा २ कर शुद्ध करने की शैली का प्रयोग करो । महर्षि के मत से—प्राय-

श्चित्त के लिये ( प्रवृत्त ) 'पेशस्कारी' अर्थात् रूप बनाकर बैठने वाली व्यभिचारिणी स्त्री को दूर करो। अभिप्राय स्पष्ट नहीं है। अथवा—(निष्कृत्यै) प्रायश्चित्तों द्वारा मानसिक मलों को दूर करने के लिये ( पेशस्कारीम् ) रूप बना कर लुभा लेने वाली व्यभिचारिणी स्त्रियों को दूर करे अर्थात् उनके प्रलोभनों से बचे।

( ४७ ) ( संज्ञानाय स्मरकारीम् ) ज्ञान को भली प्रकार प्राप्त करने के लिये ( स्मरकारीम् ) स्मरण, अनुचिन्तन, पुनः २ ध्यान, मनन कराने वाली क्रिया का अभ्यास करो। कठिन बातों का बार २ अभ्यास और मनन करने से उत्तम ज्ञान हो जाता है।

महर्षि के मत में—( संज्ञानाय प्रवृत्ताम् स्मरकारीं परासुव ) भली प्रकार काम चेष्टा को जगाने में लगी स्मरकारी अर्थात् काम जगाने वाली दूती को दूर करो। इससे काम-प्रबोध न होगा।

( ४८ ) ( प्रकामोद्याय ) उत्तम कामनाओं से कार्य करने में उद्यत पुरुष के लिये ( उपसदम् ) जो उसके निकट तम व्यक्ति हो उसको ही लगाओ।

अथवा—(प्रकामोद्याय = प्रकाम-उद्याय) उत्तम इच्छाओं के कथन या यथेष्ट विषयों पर विवाद या कथनोपकथन द्वारा निर्णय करने के लिये ( उपसदम् ) समीप २ स्थित होकर विचार करने वाली उपसमिति को प्रयुक्त करो। अथवा—यथेष्ट बात चीत करने के लिये निकटतम मित्र को प्राप्त करो।

( ४९ ) ( वर्णाय ) किसी बात को स्वीकार करा देने के लिये (अनुरुधं ) अनुरोध करने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

( ५० ) ( बलाय उपदाम् ) बल अर्थात् सैन्य बल की वृद्धि के लिये उनमें अधिक उत्साह बढ़ाने के लिये ( उपदाम् ) भेट पुरस्कार देने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षायां अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥

( ५१ ) ( उत्सादेभ्यः ) विनाशकारी कार्यों के लिये ( कुब्जम् ) कुत्सित मार्ग से चलने वाले पुरुष को दण्डित कर।

( ५२ ) ( प्रमुदे ) विनोदकारी कार्यों के लिये ( वामनम् ) बौने पुरुष को नियुक्त करो।

( ५३ ) ( द्वार्भ्यः ) द्वारों की रक्षा के लिये ( स्रामं ) जिसकी आँखों से सदा जल बहता हो ऐसे चक्षु दोष के रोगी पुरुष को मत रक्खो। द्वारों की रक्षा के लिये तीव्र दृष्टि और प्रभावजनक चक्षु-वाला चाहिये।

( ५४ ) ( स्वप्नाय ) सुखपूर्वक शयन करने के लिये ( अन्धम् ) अन्धे, नेत्रहीन पुरुष को मत नियुक्त करो। प्रत्युत अच्छे देखने वाले को पहरेदार बनाओ। अथवा जिस प्रकार अंधे को रूप का ज्ञान न होने से उसको रूप के स्वप्न नहीं आते इसी प्रकार स्वप्नदोष से बचने के लिये ( अन्धम् ) अन्धे, लोचनहीन पुरुष का अनुकरण करो। बुरे पदार्थों और व्यसनों के लिये अन्धे के समान बने रहो, उनकी तरफ़ दृष्टि न करो।

( ५५ ) ( अधर्माय बधिरम् ) अधर्म के कार्यों के लिये बधिर, बहरे कान से न सुनने वाले का अनुकरण करो। अर्थात् अधर्म की बात पर कान मत दो। अथवा अधर्माचरण के लिये बहरा कर दो।

( ५६ ) ( पवित्राय भिषजम् ) शरीर और राष्ट्र को पवित्र करने रोग- और मलों से रहित करने के लिये 'भिषग्' अर्थात् रोग निवारक, और रोग कारी मैले पदार्थों को दूर करने वाले पुरुष को नियुक्त कर।

अथवा—पदार्थों को स्वच्छ पवित्र रखने के लिये वैद्य या भिषग् को स्वास्थ्य विभाग का अध्यक्ष नियत करो।

( ५७ ) ( प्रज्ञानाय ) दूर के पदार्थों का ज्ञान करने के लिये ( नक्ष-

त्रदर्शम् ) नक्षत्रों को देखने वाले या नक्षत्रों को दिखा देने वाले दूरवीक्षण यन्त्र के समान दूरदर्शी विद्वान को नियुक्त करो।

( ५८ ) (आशिक्षायै) सब प्रकार की विस्तृत शिक्षा के लिये (प्रश्निनम् ) प्रश्न करने वाले अध्यापक को नियुक्त करो। जितने ही प्रश्न प्रतिप्रश्न उठाए जायंगे उतना ही विस्तृत ज्ञान प्राप्त होगा।

( ५९ ) ( उपशिक्षायै अभि प्रश्निनम् ) समीप स्थित विद्यार्थियों की शिक्षा या अति सूक्ष्म विषयों की शिक्षा के लिये उनके सन्मुख नाना प्रश्न करने वाले विद्वान् को नियुक्त करो।

( ६० ) ( मर्यादायै ) मर्यादा, न्याय अन्याय की व्यवस्था के निर्णय के लिये ( प्रश्नविवाकम्) प्रश्नों को विविध प्रकार से कहने वाले विवेचक पुरुष को नियुक्त करो।

अर्मेभ्यो हस्तिपं ज॒वाया॑श्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्या॒याविपालं तेज॑सेऽजपालमिरा॑यै कीनाशं॑ कीलाला॑य सुराकारं भद्राय गृहप॑श्रेय॑से-वित्तधमाध्य॑दयायानुक्षत्तार॑म् ॥ ११ ॥

भा०—( ६१ ) ( अर्मेभ्यः ) बड़ी सवारियों के लिये ( हस्तिपम् ) हाथीवान् को नियुक्त कर।

( ६२ ) ( जवाय अश्वपम् ) वेग से देशान्तर पहुंचने के लिये अश्वों के पालक पुरुष को नियुक्त करो।

( ६३ ) ( पुष्ट्यै ) अन्न, गोदुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थों के प्राप्त करने के लिये ( गोपालम् ) गौओं के पालक पुरुष को रक्खो।

( ६४ ) ( वीर्याय अविपालम् ) वीर्य की वृद्धि के लिये भेड़ों के पालने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

( ६५ ) ( तेजसे अजपालम् ) तेज, स्फूर्ति की वृद्धि के लिये बकरियों के पालक पुरुष को नियुक्त करो।

यहां अश्व-पालन के अनुभवी पुरुषों की यह अनुभवसिद्ध बात है कि

भैंस का दूध सुस्ती बढ़ाता है, गौ का दूध पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक है और बकरी का दूध कान्ति और स्फूर्ति पैदा करता है।

धन्वन्तरि के मत से गोदुग्ध—

पथ्यं रसायनं बल्यं हृद्यं मेध्यं गवां पयः ॥

अजादुग्ध—छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहितरं लघु ।

अविदुग्ध—आविकं तु पयः स्निग्धं कफपित्तहरं परम् ।

स्थौल्यमेहहरं पथ्यं लोमशं गुरुवृद्धिदम् ॥

( ६६ ) ( इरायै ) अन्न की वृद्धि के लिये ( कीनाशम् ) किसान को नियुक्त कर ।

( ६७ ) ( कीलालाय ) अन्न ओषधि के सार-भाग को प्राप्त करने के लिये ( सुराकारम् ) सुरा विधि से भपके द्वारा चुवाने वाले पुरुष को नियत कर ।

( ६८ ) ( भद्राय गृहपम् ) सुख और कल्याण की वृद्धि के लिये गृह के पालक पुरुषों को नियुक्त करे ।

( ६९ ) ( श्रेयसे वित्तधम् ) सबके कल्याण के लिये धर्म कार्य करने के निमित्त वित्तधारण करने वाले धनाढ्य पुरुषों को प्रेरित कर ।

( ७० ) ( आध्यक्ष्याय ) अध्यक्ष के कार्य के लिये ( अनुक्षत्तारम् ) क्षत्ता अर्थात् अश्वों को चलाने वाले सारथि या कोचवान के समान अपने अधीन पुरुषों को सन्मार्ग पर चलाने वाले पुरुष को नियुक्त करो ।

भायै दार्वाहारं प्रभाया॑ऽअग्न्येधं ब्रध्नस्य॑ विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितार॑ꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य॑ऽउपसेक्तारमव॑ऽऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय॑ रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

भा०—( ७१ ) ( भायै ) अग्नि के लिये ( दार्वाहारम् ) लकड़हारे

को नियुक्त करो। पञ्जाब के पश्चिम प्रान्त मुलतान आदि स्थानों में अभी-तक 'भा' अग्नि का वाचक है।

( ७२ ) ( प्रभाये अग्न्येधम् ) और अधिक तीव्र अग्नि के लिये अग्नि को और अधिक प्रदीप्त करने वाले पुरुष को नियुक्त कर।

( ७३ ) ( ब्रध्नस्य विष्टपाय अभिषेक्तारम् ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के विशेष तापकारी बल या तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये 'अभि-षेक्ता' अर्थात् राज्य-अभिषेक करने वाले विद्वान् को प्राप्त कर। अथवा सूर्य के विशेष ताप को दूर करने के लिये जल से स्नान कराने वाले को नियुक्त कर। अथवा, अश्व के मार्ग पर जल सेचने वाले को नियुक्त कर ( दया० )

( ७४ ) ( वर्षिष्ठाय ) अति अधिक सर्वश्रेष्ठ ( नाकाय ) दुःख रहित परमसुख प्राप्त करने के लिये ( परिवेष्टारम् ) सर्वत्र व्यापक या सब सुखों के दाता परमेश्वर की उपासना कर।

( ७५ ) ( देवलोकाय ) विद्वान् जनों के कार्य के लिये (पेशितारं) प्रत्येक अवयव २ के ज्ञान करने वाले को प्राप्त करो। अथवा-(देवलोकाय) विजयेच्छु पुरुषों या विद्वानों के लिये ( पेशितारम् ) शत्रुओं को पीस डालने वाले नेता को नियुक्त कर। पिश नाशने। चुरादिः।

( ७६ ) ( मनुष्य लोकाय ) मनुष्यों को अपने वश करने के लिये ( प्रकरितारम् ) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले को अथवा (मनुष्यलोकाय) मनुष्यों के हित के लिये उत्तम ज्ञान आदि पदार्थों के प्रदान करने वाले को नियुक्त कर।

( ७७ ) ( सर्वेभ्यः लोकेभ्यः उपसेक्तारम् ) समस्त प्राणियों के हित के लिये मेघ के समान या माली के समान जल और सुखों का सेचन करने वाले उदार पुरुष को नियुक्त करो, अथवा समस्त लोकों और प्राणियों की सन्तति-वृद्धि के लिये वीर्य सेचन में समर्थ, नर-जीवों को प्राप्त करो।

( ७८ ) ( अव ऋत्यै ) नीचे की ओर, दुष्टाचरणों की तरफ जाने और ( वधाय ) प्राणि-वध को रोकने के लिये ( उपमन्थितारम् ) दुष्टाचरण करने वालों और वधकारी पुरुषों को दण्ड देने वाले प्रबल पुरुष को नियुक्त कर। स्पष्टता के लिये देखो 'भक्ति' अधिकारी का वर्णन। अ० ७।१७॥

( ७९ ) ( मेधाय ) ताड़ना करने या दण्ड देने के लिये ( वासः पल्पूलीम् ) वस्त्र को धोने वाली धोबिन का अनुकरण करो। अर्थात् जिस प्रकार वस्त्र को धोने वाला तभी तक वस्त्र को छांटता, कूटता है जब तक उसमें मल रहता है इसी प्रकार अपराधियों को राजा उतनी ही ताड़ना करे जिससे उनके मलिन आचार नष्ट हो जायं। इसी बात का अध्यापक और माता पिता भी अपने शिष्य और पुत्रों की ताड़ना के समय ध्यान रक्खें।

अथवा—( मेधाय ) बुद्धि की वृद्धि या सत्संग लाभ के लिये ( वासः पल्पूलीं ) वस्त्रों को शुद्ध करने वाली धोबिन उसकी क्रिया का अनुकरण करे। जिस प्रकार खार लगाने से वस्त्र शुद्ध हो जाता है इसी प्रकार सत्संग लाभ करके मनुष्य सदाचारी होजाय।

अथवा—संग के वस्त्र के समान स्वच्छ अपने उपसेवनीय अंगों और पदार्थों को भी स्वच्छ रखने वाली स्त्री को प्राप्त करो।

वास उपसेवायाम्। चुरादिः। पल्पूल प्रक्षालनच्छेदनयोः। पल्पूल लवनपवनयोः। चुरादिः॥

( ८० ) ( प्रकामाय ) उत्तम कामना, काम्य गृहस्थ सुख को प्राप्त करने के लिये ( रजयित्रीम् ) हृदय को रंगने वाली अर्थात् अनुराग, प्रेम करने वाली, शुभ स्त्री को प्राप्त करो।

अथवा—उत्तम अभिलाषा के लिये ( रजयित्रीम् ) रंगने वाली स्त्री का अनुकरण करो। जिस प्रकार रंगने वाली वस्त्र को स्वच्छ कर के रंग में रंग देती है इसी प्रकार हृदय को स्वच्छ करके मनुष्य कामना करे तो उसकी अवश्य सिद्धि होती है।

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्या-
यानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनम-
रिष्ट्या अश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय
परिवेष्टारम् ॥ १३ ॥

( ८१ ) ( ऋतये ) अर्थात् 'ऋति' हत्या आदि के कार्य्य के लिये ( स्तेनहृदयम् ) स्तेन और-चौर के समान भीरु हृदय को पकड़ लेना चाहिये। हत्यारे आदि दण्ड से भागते हैं। उसको दिल से परख कर पकड़ना चाहिये।

अथवा—(ऋतये) शत्रु नाश करने के लिये ( स्तेन-हृदयम् ) चोर के हृदय के समान अप्रकट, छुपे आकार विचार के पुरुष को नियुक्त करे।

( ८२ ) ( वैरहत्याय ) वैर से हत्या के कर्म को रोकने के लिये (पिशुनम्) उन अपराधों को तुरन्त सूचित करने वाले पुरुषों और साधनों को नियुक्त करे।

( ८३ ) (विविक्त्यै) विवेक के लिये ( क्षत्तारम् ) सारथि के समान इन्द्रियों को सन्मार्ग में चलाने वाले मन एवं मनुष्यों को सन्मार्ग में चलाने वाले पुरुष को नियुक्त करे।

( ८४ ) ( औपद्रष्ट्र्याय अनुक्षत्तारम् ) सूक्ष्मता सब पदार्थों को दिखाने वाले के कार्य के लिये मार्गदर्शक एवं अश्वों के समान उच्छृंखल वृत्तियों को नियम में रखने वाले, तपस्वी पुरुष को नियुक्त करे। महाभारत काल में धृतराष्ट्र का सञ्जय और दुर्योधन का विदुर 'क्षत्ता' पद पर नियुक्त थे। दशरथ का 'क्षत्ता' सुमन्त्र था। यह भी एक आवश्यक पद था जो राजा को संदिग्ध कार्यों में सलाह देने और सूक्ष्म बातों का विवेचन करने और मोहादि के समय में ज्ञानप्रदर्शन करने का काम करता था। यह कार्य संजय,

विदुर और सुमन्त्र ने अच्छी प्रकार किया था। जाति जन्मादि का इसमें कोई विचार नहीं है।

( ८५ ) ( बलाय अनुचरम् ) अपने बल बढ़ाने के लिये अपने आज्ञा में चलने वाले पुरुषों को स्वीकार कर।

( ८६ ) ( भूम्ने परिष्कन्दम् ) बहुत से प्रजा को उत्पन्न करने के लिये सर्वत्र वीर्य सेचन में समर्थ पुरुषों को आज्ञा करे। अर्थात् यह राज-नियम हो कि नपुंसक, निर्वीर्य पुरुष गृहस्थ में प्रवेश न करें उनको विवाह करने का हक न हो। अथवा—( भूम्ने ) बहुतसे सेनाबल के लिये ( परिस्कन्दम् ) विशेष छावनी, स्कन्धावार को नियुक्त करे।

( ८७ ) ( प्रियाय प्रियवादिनम् ) अपने प्रिय कार्य के लिये मधुर-भाषी पुरुष को नियुक्त करे।

( ८८ ) (अरिष्टयै अश्वसादम्) राष्ट्र को नाश न होने देने और उसमें शान्ति स्थापन और कुशल क्षेम करने और विघ्न नाश करने के लिये अश्वारोही सैन्य को नियुक्त करे।

( ८९ ) ( स्वर्गाय लोकाय भागदुघम् ) विशेष सुख प्राप्त करने और लोक के हित के लिये कररूप से राजा के भाग को एकत्र करने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

( ९० ) ( वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्) सबसे उत्तम सुख, आनन्द को प्राप्त करने के लिये विज्ञान को सर्वत्र प्रदान करने वाले विद्वान् और ऐश्वर्य देने वाले धनाढ्य को नियुक्त करो।

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥ १४ ॥

भा०—( ९१ ) (मन्यवे) मन्यु अर्थात् राष्ट्र के भीतरी क्रोध को शान्त करने के लिये ( अयःस्तापम् ) लोहे को तपाने वाले लोहार को दृष्टान्त

के रूप में लो। वह जिस प्रकार तपे लोहे को एक दम शीतल जल में डालता है या वह उसको संडासी से पकड़ कर उस पर चोटें मार कर यथेष्ट वस्तु बना देता है उसी प्रकार राजा क्रोधान्ध पुरुषों को भी उपाय से वश करे और शान्ति के उपचार करे।

( ९२ ) ( क्रोधाय निसरम् ) राष्ट्र के बाह्य क्रोध को शान्त करने के लिये ( निसरम् ) नियमपूर्वक शत्रु के प्रति अभिसरण या चढ़ाई करने वाले को नियुक्त करे।

( ९३ ) ( योगाय योक्तारम् ) योग अर्थात् चित्त वृत्ति के निरोध के अभ्यास के लिये ( योक्तारम् ) योग करने वाले पुरुष की आराधना करे।

( ९४ ) ( शोकाय ) 'शोक' अर्थात् तेजस्वी होने के के लि ( अभिसर्त्तारम् ) शत्रुओं के प्रति मुकाबले पर अभिसरण या प्रयाण करने हारे पुरुष को नियुक्त करो।

( ९५ ) ( क्षेमाय विमोक्तारम् ) रक्षण आदि कुशल प्राप्ति के लिये दुःखों और संकटों से मुक्त करने वाले को नियुक्त करो।

( ९६ ) ( उत्कूलनिकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम् ) ऊंचे नीचे स्थानों और अवसरों के लिये तीनों प्रकार के ऊंचे, नीचे और सम एवं तीनों प्रकार के कालों में स्थिति करने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो।

( ९७ ) ( वपुषे मानस्कृतम् ) शरीर के हित के लिये विचारपूर्वक कर्म करने वाले को नियुक्त करो।

( ९८ ) ( शीलाय आञ्जनीकारीम् ) शील स्वभाव की रक्षा के लिये आञ्जनी—अञ्जन लगाने वाली सुशील, सुरूप स्त्री का अनुकरण करो।

( ९९ ) ( निर्ऋत्यै कोशकारीम् ) विपत्ति आदि दूर करने के लिये ( कोशकारीम् ) कोश सञ्चय करने वाली स्त्री या नीति का अनुकरण करो।

अथवा ( निर्ऋत्यै ) भूमि के प्राप्त करने के लिये ( कोशकारीम् ) कोश-धनैश्वर्य की वृद्धि करने वाली भूमि को प्राप्त करो।

(१००) ( यमाय असूम् ) यम अर्थात् ब्रह्मचारी पुरुष के लिये ( असूम् ) जिसने अभीतक पुत्र न जना हो ऐसी ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री को प्राप्त कराओ। अथवा—( यमाय ) नियन्ता राजा के लिये या नियन्त्रण के लिये ( असूम् ) शत्रुओं पर शस्त्रादि फेंकने वाली सेना को प्राप्त कर।

यमार्य यमसूमर्थर्वभ्योऽवतोकाᳬ संवत्सरार्य पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविंजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराᳬ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धᳬ साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥ १५ ॥

(१०१) ( यमाय ) नियन्ता पुरुष के लिये ( यमसूम् ) यम, नियन्त्रण करने वाले नियमों को बनाने वाली या, नियामक पुरुषों को आज्ञा चलाने वाली राजसभा प्राप्त हो।

(१०२) ( अथर्वभ्यः ) प्रजापालक विद्वान् पुरुषों के लिये ( अवतोकां ) शत्रुओं को अपने नीचे दवा कर दुःख देने वाली सेना प्राप्त हो।

(१०३) ( संवत्सराय पर्यायिणीम् ) संवत्सर ज्ञान के लिये 'पर्याय' अर्थात् क्रम से कालों का ज्ञान कराने वाली यन्त्रकला या गणितविद्या को प्राप्त करो।

(१०४) अथवा जो स्त्री 'अवतोका' है अर्थात् जिसका वालक गर्भ में नष्ट हो जाते हैं उस स्त्री को 'अथर्वा' नामक उन विद्वानों के पास चिकित्सार्थ लेजाय जो वालक के प्राणों को नष्ट न होने दें। अथवा 'अवतोका' वह स्त्री है जिसका वालक प्रसवकाल में नीचे की ओर बाहर को आने को हो ऐसे प्राप्तप्रसवा स्त्री को वालरक्षा के विज्ञ विद्वानों के सुपुर्द करे। ( यमाय मयसूम् ) जो स्त्री जोड़ा जनती है उसको 'यम' अर्थात् संयमी पुरुष के व्रत पालन के लिये अधीन रक्खो।

(१०५) ( संवत्सराय पर्यायिणीम् ) एक वार नर और एक वार

मादा सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री को ( संवत्सराय ) एक वर्ष के लिये संयम से रक्खे। उसका यह दोष नष्ट हो जायेगा।

( १०६ ) ( अविजाताम् परिवत्सराय ) विशेष कारण से सन्तान जो न उत्पन्न करती हो तो उसको 'परिवत्सर' अर्थात् द्वितीय वर्ष में वैद्य की चिकित्सा करानी उचित है।

( १०७ ) ( अतिष्कद्वरीं इदावत्सराय ) अति अधिक पतिसंग करने वाली—अति कामिनी स्त्री को पुत्र लाभ के निमित्त तीसरे वर्ष तक प्रतीक्षा करे।

( १०८ ) ( अतिष्कद्वरीं इद्वत्सराय ) अति अधिक रजःस्राव करने हारी स्त्री की सन्तान के निमित्त पांचवें वर्ष तक प्रतीक्षा करे।

( १०९ ) ( वत्सराय विजर्जराम् ) विशेष रोगादि कारण से कृश या जर्जर शरीर की स्त्री को ( वत्सराय ) एक वर्ष के लिये संयम से रहने दे।

( ११० ) ( संवत्सराय पलिक्नीम् ) जिस स्त्री के उमर से पहले ही पलित आजाय ऐसी स्त्री को सन्तान के निमित्त ४ वर्ष तक प्रतीक्षा करे।

( १११ ) ( अजिनसंधं ऋभुभ्यः ) शिल्पी लोगों के कार्य के लिये 'अजिन संध' अर्थात् चर्म के पदार्थों को सीने जोड़ने वाले कारीगर को नियुक्त करो। अथवा विद्वान् पुरुषों या 'ऋत' अर्थात् राष्ट्र से चमकने वाले राजाओं के कार्य के लिये ऐसे पुरुष को नियुक्त करो जो ( अजिनसंधं ) अजेय राष्ट्रों को भी चर्मों के समान परस्पर संधि या मेल कराने में समर्थ है। इससे राजाओं और विद्वान् विज्ञानी पुरुषों की हत्या न होकर परस्पर सहयोग से विज्ञान कला कौशल और व्यापार, राज्य, ऐश्वर्य की उन्नति होती है।

( ११२ ) ( साध्येभ्यः चर्मम्नम् ) साध्य अर्थात् बनाने योग्य चर्मों को जिस प्रकार चमड़े घोटने वाला रगड़ २ कर मुलायम कर लेता है इसी प्रकार ( साध्येभ्यः ) वश करने योग्य उद्दण्ड पुरुषों के वश करने के लिये उनपर बराबर दण्ड का प्रयोग करने वाले पुरुष को नियुक्त करे।

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो वैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय केवर्तं तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥ १६ ॥

भा०—( ११३ ) ( सरोभ्यः ) सरोवरों के स्वच्छ रखने के लिये ( धैवरम् ) धीवर को नियुक्त करो। अथवा ( सरोभ्यः ) उत्तम ज्ञानों के प्राप्त और शिक्षण के लिये (धीवरम्) बुद्धि में श्रेष्ठ पुरुष को नियुक्त करो।

( ११४ ) ( उपस्थावराभ्यः दाशं ) उपवन में लगे छोटे २ स्थावर वृक्षों की वाटिकाओं के कार्य के लिये या उपस्थित तुच्छ कार्यों के लिये ( दाशं ) वेतन बद्ध भृत्य को नियुक्त कर लो।

( ११५ ) ( वैशन्ताभ्यः ) छोटे २ ताल तलैयों के प्रबन्ध और रक्षा के लिये ( वैन्दम् ) वैन्द अर्थात् उससे लाभ लेने वाले पुरुष को नियुक्त करे। उन ताल तलैयों को वे ही अच्छा रखें जो उससे कुछ फ़ायदा उठाते हैं।

( ११६ ) ( नड्वलाभ्यः शौष्कलम् ) जिन भूमियों में नड़, सरकण्डे आदि उत्पन्न हों उन दलदल वाली भूमियों को बसाने के लिये ( शौष्कलम् ) शोषण करने या उनके सुखा डालने वाले उपायों से विज्ञ पुरुष को नियुक्त करे।

( ११७ ) ( पाराय मार्गारम् ) परले पार या दूर के देशों को जाने के लिये जल जन्तुओं के शत्रु, उनके नाशक पुरुष को नियुक्त कर। और—

( ११८ ) ( अवाराय केवर्तम् ) उरले पार आने के लिये जल के भीतर रहने वाले, उसी में आजीविका करने वाले को नियुक्त करो।

( ११९ ) ( तीर्थेभ्यः आन्दम् ) तीर्थ, जलों के भीतर उतरने की सीढ़ियों के या घाटों के बनाने के लिये बांध लगाने में चतुर, जो किनारा दृढ़ता से बांध दे ऐसे पुरुष को नियुक्त करो।

( १२० ) ( विषमेभ्यः मैनालम् ) ऊंचे नीचे विषम संकटमय स्थानों के लिये भी हिंसक जन्तुओं के नाश करने वाले पुरुष को नियुक्त करो ।

( १२१ ) ( स्वनेभ्यः ) नाना प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करने के लिये ( पर्णकम् ) जो पुरुष रक्षा और युद्धादि कार्य में कुशल हो ऐसे को नियुक्त कर ।

( १२२ ) ( गुहाभ्यः किरातम् ) पर्वतों की गुहाओं की रक्षा और प्रबन्ध के लिये, तुच्छ कर देने वाले पुरुषों को लगावें । वे उन स्थानों में रहें ।

( १२३ ) ( सानुभ्यः जम्भकम् ) पर्वत शिखरों के प्रबन्ध के लिये हिंसक जन्तुओं के नाशक पुरुष को नियुक्त करे ।

( १२४ ) ( पर्वतेभ्यः ) पर्वतों में बसने के लिये ( किम्पूरुषम् ) अल्प शक्ति और व्यवसाय वाले अथवा पुरुष प्रमाण से भी छोटे कद वाले पुरुषों को बसावे ।

**बी॒भ॒त्सायै॑ पौल्क॒सं व॒र्णाय॑ हिरण्यका॒रं तु॒लायै॑ वाणि॒जं प॑श्चादो॒षाय॑ ग्ला॒विनं॒ विश्वे॑भ्यो भू॒तेभ्य॑ सिध्म॒लं भूत्यै॑ जागर॒णमभू॑त्यै स्वप॒नमार्त्यै॑ जनवा॒दिनं॒ व्यृद्ध्या॑ अपग॒ल्भꣳसꣳश॒राय॑ प्रच्छि॒दम् ॥ १७ ॥**

भा०—( १२५ ) ( बीभत्सायै ) बीभत्स क्रियाओं के लिये (पौल्कसम् ) पुक्कस नाम घृणित पदार्थ के व्यवहारी पुरुष को लगावे ।

( १२६ ) ( वर्णाय हिरण्यकारं ) उत्तम वर्ण या सुन्दर वरण करने योग्य पदार्थ के लिये ( हिरण्यकारम् ) सुवर्णकार को नियुक्त करो ।

( १२७ ) ( तुलायै वणिजम् ) तुला, तराजू के व्यवहार के लिये वणिग् व्यवसाय में कुशल पुरुष को लगावे ।

( १२८ ) ( पश्चादोषाय ग्लाविनम्) पीछेसे दोष देने के लिये अप्रसन्न पुरुष, जिसको ग्लानि होजाय वही पीछे से दोष दिया करता है ।

( १२९ ) ( विश्वेभ्यः भूतेभ्यः ) समस्त प्राणियों के सुख के लिये ( सिध्मलम् ) त्वचा रोग के रोगी पुरुष को सदा दूर रक्खे। अथवा समस्त प्राणियों के सुख के लिये सुधसाधक पदार्थों से युक्त पुरुष को नियुक्त करो।

( १३० ) ( जागरणंभूत्यै ) जागना, सावधान रहना भूति, ऐश्वर्य वृद्धि के लिये आवश्यक है।

( १३१ ) ( स्वपनम् ) सोना, आलस्य करना ( अभूत्यै ) ऐश्वर्य के नाश के लिये है।

( १३२ ) ( आर्त्यै जनवादिनम् ) पीड़ा को दूर करने और उससे खबरदार करने के लिये सर्वसाधारण जनों के प्रति स्पष्ट रूप से बतला देने और उनको सूचित कर देने वाले पुरुष को नियुक्त कर।

( १३३ ) ( व्यृद्ध्यै अपगल्भम् ) ऋद्धि सम्पत्ति के नाश करने के लिये प्रवृत्त हुए ( अपगल्भम् ) बुरे प्रकार के ढीठ पुरुष को दमन करे। अथवा ( व्यृद्ध्यै ) सम्पत्ति समृद्धि के नाश या विपरीत गुण वाली समृद्धि से बचने के लिये ( अपगल्भम् ) दुरभिमानी को दमन कर। और विनीत पुरुष को नियुक्त कर।

( १३४ ) ( संशराय ) अच्छी प्रकार शरों या बाणों का प्रयोग करने के लिये ( प्रच्छिदम् ) दूर तक छेदन भेदन में कुशल पुरुष को नियुक्त कर।

**अ॒क्ष॒रा॒जाय॑ कित॒वं कृ॒तायादि॑नवद॒र्शं त्रेता॑यै क॒ल्पिनं॑ द्वाप॒राया॑धिक॒ल्पिन॑मास्क॒न्दाय॑ सभास्था॒णुं मृ॒त्यवे॑ गोव्य॒च्छम॑न्त॒काय॑ गोघा॒तं क्षु॒धे यो गां वि॒कृन्त॑न्तं॒ भिक्ष॑माण उप॒तिष्ठ॑ति दुष्कृ॒ताय॒ चर॑काचार्यं॑ पा॒प्मने॑ सैल॒गम् ॥ १८ ॥**

भा०—( १३५ ) ( अक्षराजाय ) पासों से खेलने वाले पुरुषों के बीच राजा, सबका मुख्य होने के लिये ( कितवं ) कितव, बड़े भारी जूआ

खोर धूर्त्त को, या चतुर पुरुष को जानो। अथवा अक्षों अर्थात् इन्द्रियों के बीच में उनका स्वामी होने के लिये (कितवः) अति चतुर, चेतना युक्त मन या आत्मा जिस प्रकार है उसी प्रकार 'अक्ष' अर्थात् अध्यक्ष पुरुषों के बीच में राजा पद के लिये भी 'कितव' अर्थात् विशेष ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष, अथवा सबका स्वामी होने से प्रत्येक को यह कहने वाला कि 'किं तव' तेरा क्या कार्य है ? इस प्रकार प्रत्येक के कार्य का निरीक्षण करने वाला सूक्ष्म विवेचक पुरुष को सबका निरीक्षक रखना चाहिये।

( १३६ ) ( कृताय ) किये कर्म के निरीक्षण के लिये या उसकी और अधिक उन्नति के लिये ( आदिनवदर्शम् ) किये कर्म में विद्यमान दोष या त्रुटियों को देख लेने में चतुर पुरुष को नियुक्त करे।

( १३७ ) ( त्रेतायै कल्पिनम् ) भूत, भविष्यद् और वर्त्तमान तीनों कालों में होने वाले कार्यों को देखने के लिये सामर्थ्यवान् या कल्पनाशील, दूरदर्शी, विज्ञ पुरुष को नियुक्त करो।

( १३८ ) ( द्वापरायै अधिकल्पिनम् ) करने वाले और देखने वाले दोनों के करने और निरीक्षण से परे के और भी उत्तम कार्य को करा लेने के लिये और भी अधिक कल्पनाशील चतुर मस्तिष्क को नियुक्त करो।

( १३९ ) ( आस्कन्दाय ) सब तरफ़ से राष्ट्र के रसों को सूर्य के समान शोषण या चूस लेने के कार्य व्यवस्था के लिये ( सभास्थाणुम् ) सभी के बीच में स्थित मुख्य पदाधिकारी को नियुक्त करना चाहिये।

( १४० ) ( मृत्यवे गोव्यच्छम् ) गौ आदि पशुओं पर विविध कष्टदायी विकार या चेष्टा करने वाले को मृत्युदण्ड के लिये दे दो।

( १४१ ) ( अन्तकाय गोघातम् ) गौ को मारने वाले पुरुष को अन्त कर देने वाले जल्लाद के हाथ सौंप दो।

( १४२ ) ( यः ) जो ( भिक्षमाणः ) अन्न की भीख मांगता हुआ प्रजाजन ( उपतिष्ठति ) उपस्थित हो तो उसकी ( क्षुधे ) भूख की निवृत्ति

के लिये ( गां विकृन्तन्तं ) भूमि को खोदने, हल चलाने वाले कृषक को नियुक्त करो।

( १४३ ) ( दुष्कृताय चरकाचार्यं ) दुष्कर्म के दूर करने के लिये ( चरकाचार्यम् ) भोज्य पदार्थों के ऊपर आचार्य को नियुक्त कर जो सबको उत्तम पुष्टिकारक भोजन करने का उपदेश करे। और बुरे २ भोजनों के दुर्व्यवहार और हानियों को बतलाता रहे। इससे लोग बुरे आचार व्यवहारों को छोड़ कर उत्तम आहार विहार करना सीखेंगे।

( १४४ ) ( पाप्मने ) पाप कार्य को रोकने के लिये ( सैलगम् ) दुष्टों के वश करने वाले को नियुक्त कर। अथवा ( पाप्मने ) पापाचरण के लिये दुष्ट पुरुषों के सन्तानों और शिष्यों, साथियों को भी दण्डित कर। उनको पकड़।

प्रतिश्रुत्कायाऽअर्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकथं शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्म-मवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोऽरण्याय दावपम् ॥१९॥

भा०—( १४५ ) ( प्रतिश्रुत्काय ) प्रतिज्ञा पूर्त्ति के लिये ( अर्त्तनम् ) ऐसे व्यक्ति को नियत कर जो लोकों से प्रतिज्ञा निभवा सके। उसके लिये वह उनको दबा भी सके।

( १४६ ) ( घोषाय भषम् ) घोषणा करने के लिये बड़ी आवाज़ से बोलने वाले को नियुक्त कर।

( १४७ ) ( अन्ताय बहुवादिनम् ) सिद्धान्त प्रतिपादन, या मर्यादा निर्णय करने के लिये बहुत अधिक कहने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो।

( १४८ ) ( अनन्ताय मूकम् ) अनन्त अर्थात् जिस वाद विवाद की मर्यादा न हो उसको दूर करने के लिये 'मूक' गूंगे का अनुसरण करे। मौन रहे।

( १४९ ) ( शब्दाय आडम्बराघातम् ) शब्द करने के लिये आड-म्बर पूर्वक बाजों को बजाने वाले को नियुक्त करो। अथवा भयंकर शब्द के लिये कोलाहल करने वाले को दण्डित करो।

( १५० ) ( महसे वीणावादम् ) महत्व पूर्ण कार्य के लिये वीणा बजाने वाले को नियुक्त करो।

( १५१ ) ( क्रोशाय तूणवध्मम् ) सैन्य बल और जन समूह को निमन्त्रण देकर बुलाने के लिये ( तूणवध्मम् ) तूणव नामक ढोल या ढक्का बजाने वाले को नियुक्त करो।

( १५२ ) ( अवरस्पराय शङ्खध्मम् ) आस पास और दूर के लोगों को बुलाने के लिये शंख बजाने वाले को नियुक्त करो।

( १५१ ) ( वनाय वनपम् ) बन की रक्षा के लिये वनपाल को नियुक्त करो।

( १५४ ) ( अन्यत अरण्याय ) जिस देश में एक तरफ वन हों ऐसे देश की रक्षा के लिये ( दावपम् ) जंगल में लगने वाली आग से देश की रक्षा के रक्षा करने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो।

नर्माय पुँश्चलूꣳ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकम-भिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायान-न्दाय तलवम् ॥ २० ॥

भा०—( १५५ ) ( नर्माय ) कोमल, मन लुभाने वाले वचनों को बोलने में लगी ( पुंश्चलूम् ) व्यभिचारिणी स्त्री को दूर करो।

( १५६ ) ( हसाय ) उपहास के लिये ( कारिम् ) नकल उतारने वाले को दण्डित कर। अथा शोभाजनक पदार्थों को बनाने के लिये कारी-गर शिल्पी को नियुक्त कर।

( १५७ ) ( यादसे शबल्याम् ) जल जन्तुओं की रक्षा के लिये

'शबल' वर्ण अर्थात् मलिन कार्य करने वाली जाति को दूर करो। वे उनका विनाश न करें।

( १५८–१५९ ) ( महसे ) बड़े कारवार, या राज्य प्रबन्ध के लिये ( ग्रामण्यम् ) ग्रामनायक, ( गणकम् ) गणक, हिसाब में चतुर और ( अभिक्रोपकम् ) सबको बुलाने वाले ( तान् ) इन तीन को नियुक्त करे।

( १६०–१६१ ) (नृत्ताय) नृत्य के लिये ( वीणावादं ) वीणा बजाने वाले, ( पाणिघ्नम् ) हाथ से तबले आदि बजाने वाले और ( तूणव-ध्मम् ) तुरही बजानेवाले को नियुक्त करो।

( १६२ ) ( आनन्दाय तलवम् ) आनन्द, प्रसन्नता के लिये करताल-बजाने वाले को नियुक्त करो।

**अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वꣳशनर्तिनं दिवे खलतिꣳ सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षꣳ रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥२१॥**

भा०—( १६३ ) ( अग्नये पीवानम् ) अग्रणी पद के लिये, प्रबल हृष्ट पुष्ट पुरुष को नियुक्त करो।

( १६४ ) ( पृथिव्यै ) पृथिवी के शासन के लिये ( पीठसर्पिणम् ) सिंह-आसन या मुख्य आसन पर विराजनेहारे तेजस्वी पुरुष को नियुक्त कर।

( १६५ ) ( वायवे चाण्डालम् ) वायु के समान तीव्र बल से शत्रु के अंग भंग करने के लिये चण्डता से युद्ध करने वाले, प्रचण्डपुरुष को नियुक्त कर।

( १६६ ) ( अन्तरिक्षाय वंशनर्त्तिनम् ) अन्तरिक्ष में रहने के लिये वंश या बांस पर नाचने वाले का अनुकरण करो। वह व्यायाम से बहुत चुस्त शरीर होकर कूदने फांदने में समर्थ होता है, वह निरवलम्ब स्थान में भी भयभीत नहीं होता।

( १६७ ) ( दिवे ) द्यौलोक के ज्ञान के लिये ( खलतिम् ) नक्षत्रों और ग्रहों के सञ्चालन के जानने वाले को नियुक्त करो।

सञ्चलनार्थस्य स्खलतेः खलतिरिति औणादिको निपातः॥ स्खलति सञ्चलति इति खलतिः। उपचारात् स्खलनविज्ञः॥ स्खलनं ग्रहगतिर्भ्रंशो वा।

( १६८ ) ( सूर्याय हर्यक्षम् ) सूर्य के समान तेजस्वी पद के लिये हरि अर्थात् सिंह के समान या सूर्य के समान तेजस्वी चक्षु वाले प्रभावशाली पुरुष को नियुक्त करो। अथवा—( सूर्याय ) सूर्य के दुष्प्रभाव को रोकने के लिये या उससे बचने के लिये ( हर्यक्षम् ) हरे रंग के काच के बने देखने के यन्त्र का प्रयोग करो।

( १६९ ) ( नक्षत्रेभ्यः किर्मिरम् ) नक्षत्रों के ज्ञान के लिये 'किर्मिर' अर्थात् चित्र विचित्र, काले पर श्वेत चित्र का प्रयोग करो।

( १७० ) ( चन्द्रमसे किलासम् ) चन्द्रमा के प्रकाश का आनन्द लेने के लिये 'किलास' अर्थात् श्वेत वर्ण के पदार्थों पर दृष्टि करो।

( १७१ ) ( अन्हे शुक्ल-पिंगाक्षम् ) दिन का स्वरूप श्वेत, पीले सूर्य रूप चक्षु को धारण करने वाला जानो।

( १७२ ) (रात्र्यै कृष्ण-पिंगाक्षम्) रात्रि का स्वरूप श्याम और पीली आंख वाला जानो, अर्थात् रात में काला अन्धकार में पीत वर्ण का अग्नि प्रकाश ही चक्षु है।

**अथैतानष्टौ विरूपाना लभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च। अशूद्रा ऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मागधः पुंश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा ऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः॥ २२॥**

भा०—( अथ ) और ( एतान् ) इन ( अष्टौ ) आठ ( विरूपान् ) विकृत रूप वाले पुरुषों को ( आलभते ) राजा अपने अधीन रक्खे। (अतिदीर्घं ) बहुत अधिक लम्बा, ( अतिह्रस्वं च ) बहुत छोटा, बौना, ( अति-

कृशं च) बहुत दुबला, पतला, ( अतिशुक्लं च ) बहुत श्वेत, अति गौर, (अतिकृष्णं च) बहुत ही काला (अति लोमशं च) बहुत अधिक लोम वाला। ये आठ विचित्र होने से संग्रह करने योग्य हैं। यदि ये ( अशूद्राः ) शूद्र कर्म करने वाले न हों और ( अब्राह्मणाः ) ब्राह्मण के काम करने वाले विद्वान् भी न हों तो (ते) वे (प्राजापत्याः) प्रजापालक राजा के ही अधीन उसकी सम्पत्ति एवं भरण पोषण योग्य जीव समझे जायं। इसी प्रकार ( अशूद्राः अब्राह्मणाः ) शूद्र और ब्राह्मण के काम के अयोग्य (मागधः) स्तुति पाठक, या नृशंस घोर लोभी ( पुंश्चली ) पुरुषों के भीतर व्यभिचार का जीवन बिताने वाली, चञ्चल नारी, ( कितवः ) जूआखोर और ( क्लीवः ) नपुंसक ( ते ) ये चारों भी ( प्राजापत्याः ) प्रजापालक राजा के ही अधीन रहें।

अर्थात् यदि ये ब्राह्मण का ज्ञान, सदाचार का जीवन और शूद्र आदि की पराधीनता का जीवन बिता सकें तो राजा इनको अपने अधीन न ले ये क्षत्रियों में रह नहीं सकते क्योंकि वहां वीर चाहियें। स्तुति पाठक, खुशामदी जुआचोर, व्यभिचारी पुरुषों से क्षात्र कर्म नहीं हो सकता। किसी व्यापार में ये लग नहीं सकते। व्यभिचारी जूआखोरी से असत्य व्यवहार और दुराचार बढ़ता है इसलिये ऐसों को राजा अपने नियन्त्रण में रक्खे। मागध को वन्दी बनाकर स्तुति पाठ के लिये रक्खे। 'कितव' को क्रीड़ा के लिये, पुंश्चली को सेवा के लिये, क्लीब को अन्तःपुर की भृत्यता के लिये रक्खे। अथवा ऐसे व्यक्तियों को सबसे अलग कैदखाने में रक्खे जिससे ये दुराचारादि न फैला सकें।

इति त्रिंशोऽध्यायः ।

# अथैकत्रिंशोऽध्यायः

[ १–१६ ] नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । पुरुष सूक्तम् । १—१५ अनुष्टुप्
गान्धारः ।

॥ ओ३म् ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिᳬं सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

भा०—( सहस्रशीर्षाः ) हज़ारो शिरों वाला, ( सहस्राक्षः ) हज़ारों, अनन्त आंखों वाला, ( सहस्रपात् ) हज़ारों, अनन्त पैरों वाला ( पुरुषः ) 'पुरुष' सर्वत्र पूर्ण जगदीश्वर है । वह ( भूमिम् ) सबको उत्पन्न करने वाली भूमि के समान सर्वाश्रय प्रकृति को भी ( सर्वतः ) सब प्रकार ( ऋत्वा ) व्यापकर ( दशाङ्गुलम् ) और भी दश अंगुल अर्थात् दश अंग-विकार महत् आदि या पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म भूतों का ( अतिष्ठत् ) अति क्रमण करके, उनमें भी व्याप्त होकर उनसे भी अधिक शक्तिमान् होकर विराजता है ।

( १ ) 'सहस्रशीर्षाः सहस्राक्षः सहस्रपात्'—सहस्रशब्दस्य उपलक्षणत्वाद् अनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः । यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तःपातित्वात्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम् । एवं सहस्राक्षत्वं सहस्रपादत्वं चेति सायणो ऋग् भाष्ये ।

अर्थ—'सहस्र' शब्द केवल उपलक्षण है । वह अनन्त शिरों से युक्त है, यह अभिप्राय है । सब प्राणियों के शिर उसी महान् पुरुष के देह के भीतर समा जाने से वे सब उसी के हैं । इससे उसके हज़ारों सिर हैं । इसी प्रकार उसकी हज़ारों आंखें और हज़ारों पैर भी हैं । सायण ऋ० भाष्य ।

---

[ १—१६ ]—शत० १३ । ६ । २ । १२ ॥ ऋग्वेद १० । ९० ॥ अथर्ववेद १९ । ६ ॥

जैसे गीता में भी—'अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं'। अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुम्'। 'रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं। इत्यादि। गी० ११॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
ऋ० १०। ८१। ३॥

इस मन्त्र के अनुसार अनन्त पदार्थों का द्रष्टा होने से वह सहस्राक्ष आदि है।

(२) 'भूमिम्' भूगोलम् इति दयानन्दः। ब्रह्माण्डगोलकरूपान् इति सायणः। भुवनकोशस्य भूमिरिति उवटः।

(३) 'दशाङ्गुलम् अति अतिष्ठत्।'—'दशाङ्गुलम्' इत्युपलक्षणम्। ब्रह्माण्डाद् बहिरपि सर्वतो व्याप्यस्थित इत्यर्थः। इति सायणः॥ 'दशांगुल' यह उपलक्षण भर है। अर्थात् ब्रह्माण्ड को व्याप कर और दश अंगुल बाहर तक भी वह व्याप्त है, अभिप्राय यह है कि ब्रह्माण्ड से बाहर भी सर्वत्र व्याप कर विराजता है।

दश च तानि अंगुलानि दशाङ्गुलानीन्द्रियाणि। केचिदन्यथा रोचयन्ति दशाङ्गुलप्रमाणं हृदयस्थानम्। अपरे तु नासिकाग्रं दशांगुलम्। इत्युवटः॥

दश अंगुल दश इन्द्रिय हैं। आत्मा उनसे परे, उनको विषय गोचर नहीं है। कइयों के मत में हृदय दश अंगुल प्रमाण है वह उसमें विराजता है। कोई नासिका-अग्र के आगे दश अंगुल मापते हैं। यह उवट का मत है।

पञ्चस्थूलसूक्ष्मभूतानि दशाङ्गुलान्यंगानि यस्य तत् जगत्। इति दया०। पांच स्थूलभूत और पांच सूक्ष्मभूत, इन दस अंगों वाला जगत् 'दशाङ्गुल' कहाता है वह परमेश्वर इस समस्त जगत् को व्याप कर विराजता है। जैसा लिखा है—

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्। उप०। यह महर्षि दयानन्द का मत है।

पुरुषः—सर्वप्राणि समष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः इति सायणः। नारायणाख्य इत्युवटः। सर्वत्र पूर्णो जगदीश्वरः इति दयानन्दः।

सायण के मत से—सब प्राणियों का समष्टि रूप, ब्रह्माण्ड देह के समान धारण करने वाला विराट् नामक पुरुष है। उव्वट के मत से नारायण नामक पुरुष है। म० दयानन्द के मत से—सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर पुरुष है। पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः।पूरयतेर्वा पूरयति अन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य। यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्। यस्मान्नाणीयो नज्यायोऽस्ति किञ्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णपुरुषेण सर्वम्॥ निरु० प० अ०२। ख०३॥

नाना इमे वै लोकाः पूः। अयमेव पुरुषो योयं पवते। सोऽस्यां पुरि शेते। तस्मात् पुरुषः। इति शत०॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ २॥

भा०—( पुरुषः एव ) वह जगत् में पूर्ण व्यापक परमेश्वर ही ( यत् भूतम् ) जो जगत् उत्पन्न है (यत् च) और जो (भाव्यम्) भविष्य में उत्पन्न होगा और ( यत् ) जो ( अन्नेन ) भोग्य अन्न के समान भोग्य कर्म फल से स्वयं ( अति रोहति ) शरीर, स्थावर जंगम रूप पृथिव्यादि पर उत्पन्न होता ( इदं सर्वम् ) इस सबका ( उत ) और ( अमृतत्वस्य ) अमृतत्व, मोक्ष या सत्, अविनाशी स्वरूप का ( ईशानः ) स्वामी, परमेश्वर है। वही सब कुछ रचता है।

सायण के मत में—भूत और भव्य सब वही पुरुष है। वही अमृतत्व का स्वामी भी है। वही भोग्य अन्न के निमित्त से जगत् रूप में प्रकट होता है।

'अन्नेनातिरोहति'—भोग्येन अन्नेन निमित्तभूतेन स्वकीयकारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति। तस्मात्प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारन्नेदं तस्य वस्तुतत्वम्। इति सायणः॥ भोग्य अन्न के कारण अपनी कारण-दशा से पार होकर पुरुष दृश्य-जगत्

का रूप प्राप्त करता है। फल भोग के लिये वह जगत् की दशा में आता है। वह वैसा है नहीं।

सायण के मत में ब्रह्म परिणामी हो जाता है। जीवों के कर्म फल भोग के लिये जीव शरीर धारण करे, सो युक्तियुक्त है ईश्वर ही स्वयं ब्रह्माण्ड शरीर में बंधे यह अनुचित है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

भा०—( अस्य ) इस जगदीश्वर का ( एतावान् ) इतना ये सब दृश्य, ब्रह्माण्डमय जगत् ( महिमा ) महान् सामर्थ्य का स्वरूप है। ( पूरुषः ) इस जगत् में परिपूर्ण परमेश्वर ( अतः ) इससे (ज्यायान् च) कहीं बड़ा है। ( विश्वा भूतानि ) समस्त उत्पन्न होने वाले पृथिवी आदि लोक ( अस्य पादः ) इसका एक पाद, एक अंश अथवा उसका ही ज्ञान कराने वाले कार्यरूप ज्ञापक हैं। और (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (अस्य) इस परमेश्वर का स्वरूप ( दिवि ) तेजोमय अपने स्वरूप ( अमृतम् ) अमृत, नित्य, अविनाशी रूप से विद्यमान है।

यद्यपि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यास्मात्तस्य परब्रह्मण इयत्ताया अभावात् पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यं। तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षया अत्यल्पम् इति विवक्षितत्वात्पादत्वोपन्यासः। इति सायणः ॥

इदं सर्वं सूर्यचन्द्रादिलोकलोकान्तरं चराचरं जगत्...परमेश्वरस्य चतुर्थांशे तिष्ठति नैवास्य तुरीयांशस्याप्य वधिं प्राप्नोति।...नानेन कथनेन तस्यानन्तत्वं हन्यते। किन्तु जगदपेक्षया तस्य महत्वं जगतो न्यूनत्वं च ज्ञाप्यते। इति दया० 'सत्य ज्ञानमनतं ब्रह्म' ज्ञानस्वरूप और अनन्त है ऐसा कहा है। इसका परिमाण नहीं है। इसलिये उसके चार पाद नहीं कहे जा सकते। तो भी जगत् ब्रह्म के स्वरूप की अपेक्षया बहुत छोटा है इस अभिप्राय से 'पाद' रूप से कहा है। ( सायण )

सूर्य चन्द्रादि लोक लोकान्तर वाला चर अचर समस्त जगत् परमेश्वर के एक चौथाई अंश में स्थित है। अर्थात् उसके चौथाई अंश के भी बराबर नहीं है। ऐसा कहने से परमेश्वर की अनन्तता नहीं खण्डित होती। परन्तु जगत् की अपेक्षा उसका बड़प्पन और जगत् की अपेक्षा न्यूनता ही कही गई है। ( म० दया० )

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने ऽअभि ॥ ४ ॥

भा०—( त्रिपात् पुरुषः ) तीन अंशों वाला पुरुष ( ऊर्ध्वं उत् ऐत् ) सबसे ऊंचा, संसार से पृथक् शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रूप होकर रहता है। और ( अस्य पादः ) उसका एक अंश ( पुनः ) वार वार ( इह अभवत् ) इस संसार में व्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। ( ततः ) उस एक अंश से ही वह परमेश्वर ( साशनानशने अभि ) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़, दोनों प्रकार के चराचर लोकों को ( विश्वङ् ) सब प्रकार से व्याप्त होकर ( वि-अक्रामत् ) विविध प्रकारों से उनको उत्पन्न करता है।

'उदैत्'—'देदीप्यमानस्तिष्ठति' इति उवटः। सूर्य के समान स्वयं उज्वल होकर सबको प्रकाशित करता हुआ विराजता है।

'साशनानशने'—साशनमशनादिव्यवहारोपेतम्। प्राणिजातम्। अनशनं तद्रहितम् चेतनं गिरिनद्यादिकम्। इति सायणमहीधरदयानन्दाः। साशनं स्वर्गः अनशनं मोक्ष इति उवटः॥

ततो विराडजायत विराजो ऽअधि पूरुषः।
स जातो ऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥

भा०—( ततः ) उस पूर्ण पुरुष परमेश्वर से ( विराट् अजायत ) 'विराट्' अर्थात् विविध पदार्थों, नाना सूर्यादि लोकों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। ( विराजः अधि ) उस विराट् के भी ऊपर अधिष्ठाता रूप से

५—'विराळजायत' इति काण्व०।

( पूरुषः ) पुरमें बसने वाले स्वामी के समान उस ब्रह्माण्ड को पूर्ण करने हारा व्यापक परमेश्वर ही था। ( सः ) वह ( पुरः ) सबसे पूर्व विद्यमान रह कर ( जातः ) कार्य-जगत् में शक्ति रूप से प्रकट होकर भी ( अति अरिच्यत ) उससे भी कहीं अधिक बड़ा है। ( पश्चात् ) पीछे से वह ( भूमिम् ) प्राणियों और वृक्षादि को उत्पन्न करने वाली भूमि को उत्पन्न करता है। अथवा—( स जातः अतिअरिच्यत ) वह प्रादुर्भूत होकर भी उस जगत् से पृथक् रहा। और ( सः पश्चाद् ) वह पीछे ( भूमिम् अथो पुरः ) भूमि और जीवों के शरीरों को उत्पन्न करता है। विशेष विवरण देखो अथर्ववेदालोकभाष्य, कां० १८। ६। ९॥

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ः सम्भृ॑तं पृषदा॒ज्यम्।
प॒शूँस्ताँश्च॑क्रे वाय॒व्या॑नार॒ण्या ग्रा॒म्याश्च॒ ये ॥ ६ ॥
ऋ० १०। ९०। ८॥

भा०—( तस्मात् ) उस ( सर्वहुतः ) सर्वपूज्य, सर्वसम्मत (यज्ञात्) सर्वोपास्य, सबको प्राण आदि सब कुछ देने हारे परमेश्वर प्रजापति से ( पृषद्-आज्यम् ) दधि, घृत आदि भोग्य पदार्थ ( सम्भृतम् ) उत्पन्न हुआ। और वह ही ( तान् ) उन (वायव्यान्) वायु के समान गुण वाले, तीव्र वेगवान् अथवा (वायव्यान्) वायु से जीने हारे (पशून्) पशुओं के (ये) जो ( आरण्याः ) जंगल के सिंह, शूकर आदि और (ग्राम्याः च) ग्राम के गौ, अश्व आदि सबको ( चक्रे ) उत्पन्न करता है।

अथवा—( पृषदाज्यं सम्भृतम् ) ( पृषत्-आज्यम् ) शरीर में पालक और पूरक रूप से विद्यमान वीर्य या शुक्र को व्यक्त रूप में प्रकट करने वाला अथवा जिस वीर्य से प्राणियों के नाना देह यथाक्रम सन्तान रूप में बराबर उत्पन्न होते हैं वह वीर्य भी उसी परमेश्वर की शक्ति से उत्पन्न होता है।

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ऽऋच॒ः सामा॑नि जज्ञिरे।
छन्दा॑ᳪंसि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत ॥ ७ ॥

भा०—( तस्मात् ) उस ( यज्ञात् ) पूजनीय, सर्वोपास्य एवं सब के दाता, ( सर्वहुतः ) सर्वसम्मत, सब कुछ के त्यागने के पात्र अथवा समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर लेने हारे उस परमात्मा से ही ( ऋचः ) ऋग्वेद, ऋचाएं, मन्त्र, ( सामानि ) सामवेद, साम के समस्त गायनों के ज्ञान ( जज्ञिरे ) उत्पन्न होते हैं। ( तस्मात् ) उससे ही ( छन्दः ह ) 'छन्द' अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्र ( जज्ञिरे ) उत्पन्न होते हैं। ( तस्मात् ) उससे ही ( यजुः अजायत ) यजुर्वेद उत्पन्न होता है।

तस्मादश्वा ऽअजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ऽअजावयः ॥ ८ ॥

भा०—( अश्वाः ) घोड़े (ये च के च) और जो भी कोई गधे आदि ( उभयादतः ) दोनों जवाड़ों में दांत वाले जीव हैं और ( गावः ) गौएं भी ( तस्मात् ह ) उससे ही ( जज्ञिरे ) उत्पन्न होते हैं। ( तस्मात् ) ( अजावयः ) बकरी, भेड़ें भी ( जाताः ) पैदा हुई हैं।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा ऽअयजन्त साध्या ऽऋषयश्च ये ॥ ९ ॥

भा०—( तं ) उस ( यज्ञं ) पूजनीय, ( अग्रतः जातम् ) सबसे आगे, प्रादुर्भूत जगत् के कर्त्ता, ( पुरुषम् ) पूर्ण परमेश्वर को ( अग्रतः ) सृष्टि के पूर्व (बर्हिषि) विद्यमान महान् ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ में (प्र औक्षन्) खूब अभिषिक्त करते हैं। ( तेन ) उसी ज्ञानमय परम पुरुष से ( साध्याः ) योगाभ्यास आदि के साधना वाले ज्ञानी और (ऋषयः च) ऋषिगण (ये च) और जो भी हैं वे ( अयजन्त ) परमेश्वर की उपासना करते हैं।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा ऽउच्येते ॥१०॥

भा०—( यत् ) जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष ( पुरुषम् ) उस महान् पूर्ण पुरुष का ( वि अदधुः ) विविध प्रकारों से विधान करते हैं, वर्णन

करते हैं, उसके महान् सामर्थ्य का प्रतिपादन करते हैं, वे उसको ( कतिधा ) कितने प्रकार से ( वि अकल्पयन् ) विभक्त करते या कल्पना करते हैं। (अस्य मुखम् किम्) इसका मुख भाग क्या है ? ( बाहू किम् ) बाहुएं क्या हैं (ऊरू किम् ) जांघे क्या पदार्थ हैं ? ( पादौ उच्यते ) दोनों पैर क्या कहे जाते हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬं शूद्रो ऽअजायत ॥११॥

भा०—( अस्य ) इस परमेश्वर की बनाई सृष्टि में ( ब्राह्मणः मुखम् आसीत् ) ब्राह्मण, वेद और वेदज्ञ और ईश्वरोपासक जन मुख रूप हैं। ( बाहू राजन्यः कृतः ) राजन्य, क्षत्रिय लोग शरीर में विद्यमान बाहु के समान बनाये हैं। ( यत् वैश्यः )जो वैश्य हैं ( तत् ) वह ( अस्य ऊरू ) उसके जंघा हैं। और ( पद्भ्यां ) पैरों से ( शूद्रः अजायत ) शूद्र को प्रकट किया जाता है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो ऽअजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

भा०—प्रजापति के ब्रह्माण्डमय विराट् शरीर का वर्णन करते हैं। ( चन्द्रमाः ) चन्द्र ( मनसः ) मन रूप से ( जातः ) कल्पना किया गया है। अर्थात् चन्द्र मानो प्रजापति का मन है। जैसे शरीर में मन वैसे विराट् शरीर में चन्द्र। ( सूर्यः चक्षोः अजायत) चक्षु से सूर्य को प्रकट किया जाता है। मानो उसकी आंख सूर्य है। (श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च) श्रोत्र से वायु और प्राण प्रकट किये जाते हैं। मानो श्रोत्र वायु और प्राण हैं। ( मुखाद् ) मुख से (अग्निः अजायत) अग्नि को प्रकट किया जाता है, मानो अग्नि मुख है।

नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षᳬं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ ऽअकल्पयन् ॥१३॥

भा०—( नाभ्याः अन्तरिक्षम् आसीत् ) नाभि-भाग से अन्तरिक्ष

भाग कल्पित है। ( द्यौः ) आकाश ( शीर्ष्णः सम् अवर्त्तत ) शिर भाग से कल्पित हुआ। ( पद्भ्याम् भूमिः ) पैरों से भूमि और ( दिशः श्रोत्रात् ) श्रोत्र से दिशाएं तथा ( लोकान् ) लोंको को ( अकल्पयन् ) कल्पित किया गया है। उस विराट् के अन्तरिक्ष नाभि है, सिर द्यौ है, भूमि पैर हैं, कान दिशाएं तथा लोक हैं।

यत्पुरुषेण हुविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः शरद्धविः ॥१४॥

भा०—( यत् ) जब ( हविषा ) स्वीकार करने योग्य, साक्षात् करने योग्य, परम वेद्य, ( पुरुषेण ) पूर्ण परमेश्वर से ( देवाः ) विद्वान गण ( यज्ञम् ) उपासनामय ज्ञानयज्ञ का ( अतन्वत ) सम्पादन करते हैं तब ( अस्य ) इस यज्ञ का ( वसन्तः ) वर्ष के प्रारम्भ काल, वसन्त ऋतु के समान सौम्य भाग दिन वा पूर्वाह्न भाग ( आज्यम् ) अग्नि को घृत के समान आत्मा के बल वीर्य की प्राप्ति करता है। ( ग्रीष्मः इध्मः ) वर्ष में ग्रीष्म ऋतु के समान दिन का मध्यान्ह भाग, अग्नि को इंधन के समान आत्मा की ज्ञानाग्नि को अधिक प्रखर कर देता है। ( शरत् हविः ) वर्ष के शरत् भाग के समान शीतल, शान्तिदायक रात्रि काल आत्मा के समस्त प्राणों को पुनः आत्मा में आहुति देने वाला होने के कारण यज्ञ में हवि के समान वह भी 'हवि' है।

इसी प्रकार प्रारम्भ में बाल्यकाल वसन्त, यौवन, ग्रीष्म और वृद्धता शरत् है। उवटाचार्य के मत में—वसन्त सत्व। ग्रीष्म रजस और शरत् तमो गुण है।

सुप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त सुमिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना ऽअबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

भा०—( देवाः ) विद्वान्गण ( यद् ) जिस ( यज्ञं ) यज्ञ को ( तन्वानाः ) करते हुए ( पुरुषं ) पूर्ण पुरुष को ( पशुम् ) सर्वद्रष्टा रूप

से ( अबध्नन् ) ध्यान सूत्र से बांधते हैं ( अस्य ) उसके ( सप्त ) सात (परिधयः) परिधि अर्थात् धारण सामर्थ्य हैं। और (त्रिःसप्त) २१ (समिधः) उसके प्रकाशक सामर्थ्य ( कृताः ) विधान किये गये हैं।

'सप्त परिधयः—सात परिधियें, सात छन्द। अध्यात्म में—जीवन यज्ञ को कहते हैं। ( पशुम् ) जिस द्रष्टा पुरुष आत्मा को ( देवाः ) दिव्य शक्तियें, चक्षु आदि इन्द्रियें बांध रही हैं उसके सात परिधियें सात शीर्षण्य प्राण और २१ समिधें, प्राकृतिक २१ विकार अहंकार आदि हैं। अथवा—सात समिधें, शरीर की सात धातुएं। 'त्रिः सप्त समिधः'–प्रकृति, महत्, अहंकार, ५ तन्मात्राएं, ५ स्थूलभूत, ५ इन्द्रिय और तीन गुण। अथवा ५ तन्मात्रा, ५ भूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय और मन (अन्तःकरण चतुष्टय)। संवत्सर यज्ञ में १२ मास, ५ ऋतु, ३ लोक, १ आदित्य॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ १६॥

भा०—( यज्ञेन ) पूर्वोक्त मानस यज्ञ से ( देवाः ) विद्वान् जन ( यज्ञम् ) उस प्रजापति पुरुष को ( अयजन्त ) उपासना करते हैं। ( तानि धर्माणि ) वे सब धारक सामर्थ्य ( प्रथमानि आसन् ) प्रथम ही विद्यमान रहे। ( ते ह ) वे ( महिमानः ) महान् सामर्थ्य वाले, ईश्वरोपासक जन, ( नाकम् ) उस सुखमय परमेश्वर को ही ( सचन्त ) प्राप्त होते हैं, उसी में विराजते हैं, (यत्र) जिसमें ( पूर्वे ) पूर्व के (साध्याः) साधनाशील, ( देवाः ) विद्वान् ब्रह्मात्म-ज्ञान के साक्षात् द्रष्टा लोग ( सन्ति ) नित्य विराजते हैं।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥ १७॥

भा०—( अद्भ्यः ) जलों से और ( पृथिव्यै ) पृथिवी, (विश्वकर्मणः) समस्त संसार के कर्त्ता परमेश्वर के ( रसात् ) प्रेरक बल से ( अग्रे )

सब से प्रथम जो ब्रह्माण्ड ( सम् अवर्त्तत ) उत्पन्न हुआ। ( त्वष्टा ) वह विधाता ही ( तस्य ) उसके ( रूपम् ) रूप को ( विदधत् ) स्वयं विविध रूपों से धारण करता हुआ ( एति ) प्राप्त होता है। ( मर्त्यस्य ) मरण धर्मा पुरुष के ( तत् ) उस ( आजानं ) समस्त जनों के करने योग्य कर्म और ( देवत्वम् ) दर्शन करने योग्य ज्ञान को ( अग्रे ) सबसे पूर्व (एति) स्वयं धारण करता और प्राप्त कराता है।

सोऽकामत। बहुः स्यां प्रजायेयेति। सतपोऽतप्यत। सतपस्तप्त्वा। इदं सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तैत्ति० उप०।

अथवा—जल और पृथिवी से विश्वकर्मा जगत्-स्रष्टा ने उसको बनाया। स्वयं बनाने वाला 'त्वष्टा' तदनुरूप हो गया। यही उस ( मर्त्यस्य ) मरण-धर्मा विनाशी पदार्थ का भी ( अग्रे ) पहले से ही ( आजानम् देवत्वम् ) जन्म से ही देव अर्थात् स्वतः देव रूप है। वह स्वतः ईश्वर की शक्ति की दिव्य शक्ति का मूर्त्तिमान् अंश है।

'देवत्वम्, आजानम्'—मर्त्ये देवत्वं प्रभुत्वं, आजानम् आप्तम् इत्यर्थः ( उवटः )। पुरुषस्य विराडाख्यस्य सम्बन्धि, तत् विश्वं प्रसिद्धं देवमनुष्यादिरूपं सर्वं जगत् अग्रे सृष्ट्यादौ आजानं सर्वतःउत्पन्नम्। इति सायणः॥ देवत्वं विद्वत्वम्। आजानं समन्तात् जनानां मनुष्याणामिदं कर्तव्यं कर्म इति दयानन्दः। आजानदेवत्वं, मुख्यं देवत्वम्। द्विविधा देवाः। कर्मदेवा आजान देवाश्च। उत्कृष्टेन कर्मणा देवत्वं प्राप्ताः कर्मदेवाः। सृष्ट्यादावुत्पन्ना आजानदेवाः। ते कर्मदेवेभ्यः श्रेष्ठाः। ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दः। तै०। उप०। इति श्रुतेः सूर्यादय आजानदेवाः॥ इति महीधरः।

**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।**
**तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ १८॥**

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—( अहम् ) मैं ( एतम् ) उस ( महान्तम् ) बड़े भारी (पुरुषं) ब्रह्माण्ड भर में व्यापक पूर्ण परमेश्वर को ( आदित्यवर्णम् ) सूर्य के समान तेजस्वी और ( तमसः ) अन्धकार के ( परस्तात् ) दूर विद्यमान ( वेद ) जानता और साक्षात् करता हूं । ( तम् ) उसको ही ( विदित्वा ) जानकर ( मृत्युम् अति एति ) मृत्यु को पार कर जाता है । ( अन्यः ) दूसरा ( पन्थाः ) मार्ग ( अयनाय ) कोई अभीष्ट मोक्ष स्थान को प्राप्त करने के लिये ( न विद्यते ) नहीं है ।

प्रजापतिश्चरति गर्भे ऽअन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥

भा०—( प्रजापतिः ) वह समस्त प्रजा का पालक ( गर्भे अन्तः ) गर्भ, गर्भस्थ जीवात्मा में भी अथवा—हिरण्यगर्भ के भीतर, व्यापक होकर (चरति) विचरता है, विद्यमान है । वह ( अजायमानः ) स्वयं कभी उत्पन्न न होता हुआ भी ( बहुधा ) बहुत प्रकारों से ( विजायते ) विविध रूपों से प्रकट होता है । ( तस्य ) उसके ( योनिम् ) परम कारणस्वरूप को ( धीराः ) धीर, ध्याननिष्ठ योगिजन ही ( परिपश्यन्ति ) भली प्रकार देखते, साक्षात् करते हैं । ( तस्मिन ह ) उस सबके मूलकारण परमेश्वर में ही ( विश्वा भुवनानि ) समस्त भुवन, नाना ब्रह्माण्ड एवं सूर्यादि लोक ( तस्थुः ) स्थित हैं । वे सब उसी के आश्रय पर ठहरे हैं ।

यो देवेभ्य ऽआतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥

अनुष्टुप् । गांधारः ।

भा०—( यः ) जो ( देवेभ्यः ) दिव्य गुण वाले पृथिवी, अग्नि, जल, तेज आदि के उत्पन्न करने के लिये स्वयं ( आतपति ) सब प्रकार तप करता है । और ( यः ) जो ( देवानां ) पृथिव्यादि लोकों, पञ्चभूतों में से भी ( पुरः हितः ) सब से पूर्व उनके बीच में उनको मूल कारणों को

धारण करने वाला होकर विद्यमान रहा। और ( यः ) जो ( देवेभ्यः ) तेजोमय सूर्यादि पदार्थों से भी ( पूर्वः ) प्रथम ( जातः ) हिरण्यगर्भ रूप से प्रकट होता है। उस ( ब्राह्मये ) ब्रह्म अथवा वेद द्वारा प्रतिपादित, ( रुचाय ) स्वयं प्रकाशमान् परमेश्वर को ( नमः ) नमस्कार है। सूर्य के पक्ष में—( यः ) जो सूर्य पृथिव्यादि लोकों के लिये तपता है, जो सब के बीच ( पुरोहितः ) पुरोहित, उनके प्रवर्त्तक के समान प्रकाशक है, जो उनसे पहले उत्पन्न हुआ उस ब्रह्म, परमेश्वर के सन्मान प्रकाशमान् सूर्य से ( नमः ) अन्नादि उत्पन्न होता है।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा ऽअग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा ऽअसन्वशे ॥ २१ ॥

भा०—( देवाः ) विद्वान गण, ( ब्राह्मं ) पर ब्रह्म सम्बन्धी, ( रुचं ) तेज, या ज्ञान को अथवा ( रुचं ब्राह्मं ) तेजस्वी ब्रह्म के विद्वान, को ( जनयन्तः ) उत्पन्न करते हुए, विद्योपदेशादि के द्वारा, प्रकट करते हुए ( अग्रे ) सबसे प्रथम ( तत् ) उस परमेश्वर का ही ( अब्रुवन् ) उपदेश करते हैं। ( एवं ) इस प्रकार से ब्रह्मचर्य, तपस्या द्वारा ( यः ) जो ब्रह्मनिष्ठ, वेदवेत्ता, विद्वान् ( विद्यात् ) उस परमेश्वर के विज्ञान को प्राप्त करता है ( तस्य ) उसके ( वशे ) अधीन समस्त ( देवाः ) देव, विद्वान् गण, एवं उत्तम व्यवहार और दिव्य आत्मिक और भौतिक शक्तियां ( असन् ) रहती हैं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म ऽइषाण सर्वलोकं म ऽइषाण ॥२२॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे परमेश्वर ( श्रीः च ) सबको आश्रय देने वाली और (लक्ष्मीः च ) सबके बीच में तुझको व्यापक और शक्तिमान् दिखाने वाली, दोनों

२२—'पत्न्या अहो ०ठे' इति काण्व०।

शक्तियां ( ते ) तेरी ( पत्न्यौ ) समस्त संसार को पालन करने हारी होने से तेरी दो स्त्रियों के समान हैं। ( अहोरात्रे पार्श्वे ) दिन और रात्रि ये दो जिस प्रकार सूर्य से उत्पन्न किये जाते हैं, जब वह प्रत्यक्ष होता है तब दिन और जब वह नहीं प्रत्यक्ष हो तब रात्रि होती है इसी प्रकार हे परमेश्वर! दिन रात के समान तुम्हारे दो पार्श्व या पासे हैं। जब तुम साक्षात् होते हो तब हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाने से दिन के समान हो जाता है। तामस आवरण से जबतुम प्रत्यक्ष नहीं होते तब रात्रि के समान अन्धकार हो जाता है। जिस प्रकार ( नक्षत्राणि रूपम् ) समस्त नक्षत्र सूर्य के ही रूप हैं, वे सब सूर्य हैं, उसी प्रकार नक्षत्रों के समान सब तेजोमय पदार्थ परमेश्वर के ही अंश हैं।

यद् यद् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छत्व मम तेजोंशसम्भवम्। गीता॥

अतः वे सब ( रूपम् ) उसी के रूप अर्थात् कान्ति हैं।

तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति। कठो प०॥

( अश्विनौ व्यात्तम् ) आकाश और पृथिवी, वे दोनों मानो खुले मुख के समान हैं। अथवा (अश्विनौ) प्राण और अपान, दो जबाड़ों के या खुले मुख के समान हैं। तू ही ( इष्णन् ) समस्त जगत् को प्रेरणा कर रहा है। तू सबको ( इषाण ) प्रेरित कर। ( अमुम् ) उस परम प्राप्तव्य मोक्ष पद को ( मे इषाण ) मुझे प्राप्त करा। और ( मे ) मुझे ( सर्वलोकं इषाण ) समस्त लोक, समस्त प्रकार के दर्शन, ज्ञान और समस्त लोकों का भोग्य सुख ( इषाण ) प्रदान कर।

इस प्रकार ब्रह्मपरक पुरुष सूक्त का विवरण किया गया है। महर्षि दयानन्द इसके उपसंहार में लिखते हैं—अत्रेश्वरसृष्टिराजगुणवर्णना-देतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्ति इति वेद्यम्। अर्थात् इस अध्याय में ईश्वर की सृष्टि, राजगुणों का भी वर्णन किया है। इसी से

इस अध्याय की पूर्व अध्याय से संगति है । फलतः इस अध्याय की योजना राजा के पक्ष में नीचे लिखे प्रकार से जाननी चाहिये—

( १ ) ( सहस्र० ) वह राजा रूप पुरुष हज़ारों शिरों वाला, हज़ारों आंखों वाला, हज़ारों पैरों वाला है । वह समस्त भूमि को अधीन करके दश अंगुल ऊंचा होकर विराजे, अर्थात् सहस्रों मस्तिष्क उसके अधीन राजसभा के सभासद् रूप उसी के शिर हैं । वे उसी की आंखे हैं एवं नाना चर उसकी सहस्रों आंखें हैं और सहस्रों भृत्य, सैनिकादि उसके सहस्रों पद हैं । वह अपनी राज-सत्ता से भूमि को व्याप कर अपने राज्य के दशों अंगों पर दश दिशाओं पर अधिष्ठाता रूप से विराजे ।

( २ ) जो भूत और भव्य अर्थात् सब राष्ट्र का उत्पन्न और भावी सम्पत्ति है वह सब राजा की ही है । ( अमृतत्व ) जीवन-प्रद पदार्थ जल और अन्न का भी वही स्वामी है । जो पदार्थ भी अन्न के रूप में उगता है उसका भी वही स्वामी है ।

( ३ ) यह उसका बड़ा सामर्थ्य है । वह उससे भी अधिक शक्तिशाली होकर रहे । समस्त राष्ट्र के प्राणी उसका एक भाग हों और ( दिवि ) राजसभा आदि दिव्य, तेजः सामर्थ्य में उसके तीन भाग सुरक्षित रहें ।

( ४ ) वह उन तीन गुणा अधिक सामर्थ्य को स्वयं धारण करके ही सब से ऊंचा रहे । एक अंश से राष्ट्र में रहे । चर अचर, स्थावर जंगम सबकी विशिष्ट व्यवस्था करे ।

( ५ ) वह स्वयं विराट् सभा को बनावे, उसपर स्वयं अधिष्ठाता होकर रहे । वह सब से अधिक सामर्थ्यवान् हो । वह भूमियों और पुर गढ़ और दुर्ग आदि भी बनावे ।

( ६ ) वह सब से पूज्य होकर समस्त ( पृषदाज्यम् ) पालक, सेना-

बल को भी धारण करे। अन्नादि भी संग्रह करे। ग्राम और जंगल की पशु सम्पत् को भी बढ़ावे।

(७) वह ऋक्, साम, अथर्व और यजुः सब वेदों का ज्ञान करे, और उनकी रक्षा करे। उनके अध्ययनाध्यापन के द्वारा उनको प्रचारित और प्रकाशित करे।

(८) अश्व, गौ, भेड़, बकरी सबकी वृद्धि करे।

(९) पुरुषोत्तम को विद्वान् लोग (बर्हिषि) महान् राष्ट्र प्रजाजन पर (प्रौक्षन्) अभिषिक्त करें। उसके बल पर साधनसम्पन्न, बलवान् और ऋषि ज्ञानी पुरुष सब (अयजन्त) संगत होकर, परस्पर मिल कर कार्य करें।

(१०) यह जो महान् राष्ट्ररूप पुरुष हैं इसको कितने विभागों में विद्वान् कल्पना करते हैं? उसका मुख, बाहु, जांघ और पैर क्या हैं?

(११) उस महान् राष्ट्रमय पुरुष के एवं पुरुष रूप राजा के भी, ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय लड़ने वाले बाहू, व्यापारी वैश्य जंघाएं और शूद्र, सेवक जन चरण हैं।

(१२) उसका मन चन्द्र के समान आह्लादक हो। आंख सूर्य के समान तेजस्वी हो। कान वायु के समान व्यापक और मुख अग्नि के समान तेजस्वी हो।

(१३) अन्तरिक्ष के समान उसका नाभि अर्थात् केन्द्रस्थ राजधानी सर्वाश्रय हो, आकाश के समान शिर तेजस्वी नाना नक्षत्रों के समान विद्वानों से मण्डित राजसभा हो। पैर भूमि के समान स्थिर, प्रतिष्ठित हों। लोक सब श्रोत्र के समान एक दूसरे के दुख श्रवण करने हारे हों।

(१४) यह पुरुष ही राज्याधिकार के लिये स्वीकार करने योग्य 'हवि' है। उससे राष्ट्रयज्ञ विस्तृत करते हैं। उसका राज्य, बल, ऐश्वर्य वसन्त के समान शोभाजनक और प्रजाओं का बसाने वाला हो। इध्म अर्थात्

तेज ग्रीष्म के समान प्रखर असह्य हो। ग्रहण करने वाला सेना बल 'शरत्' अर्थात् शीत काल के समान भयजनक, शत्रुनाशक और कंपाने वाला हो।

( १५ ) उसके ७ परिधि, सप्ताङ्ग राज्य हों, २१ 'समिध्' २१ महामात्य हों। देव, विद्वान् गण राष्ट्रयज्ञ को विस्तृत करते हुए पशु अर्थात् सर्व साक्षी, द्रष्टा, पुरुष को राज्य कार्य में बद्ध या दृढ़ता से स्थापन करें।

( १६ ) उस सर्व पूज्य राजा से प्रजापालक राष्ट्र यज्ञ का सम्पादन करते हैं। वे नाना राष्ट्र धारक प्रथम नियत, स्थिर हों। वे महान् सामर्थ्यवान् शासक जन उस सुखमय राष्ट्र पर ( सचन्त ) समवाय बनाकर रहें। उसी में साधनों से सम्पन्न विद्वान् और विजयी लोग रहें।

( १७ ) राजा जल, पृथिवी और विश्वकर्मा, शिल्पी विद्वानों के बल से नाना प्रकार के साधनों से सम्पन्न हो। शिल्पी जन या त्वष्टा प्रजापति राज्य का दर्शनीय स्वरूप बनाता है। इसी से उस भृत्य मनुष्य को भी 'देवत्व' प्राप्त होता है। वह राजा देव कहाता है।

( १८ ) मैं उसी तेजस्वी, शोक, अज्ञान से परे निर्दोष, निष्पक्षपात सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्राप्त करूं। उसको बिना पाये प्रजा को दूसरा शरण नहीं।

( १९ ) प्रजापालक राजा सब राज्य-कार्यों के भीतर व्यापक रहें वही स्वयं उपस्थित होकर नाना प्रकार के राज्य कार्यों को प्रकट करता है। वीर पुरुष उसके राजपद को साक्षात् करते हैं। उसमें समस्त राष्ट्र-विभाग और जन आश्रित रहते हैं।

( २० ) वह विजयी, शासकों के लिये उग्र होकर सूर्य के समान तपता है। वह विद्वानों के समक्ष गुरु के समान व्यवस्थापक है। वह उन द्वारा ही राजा बनाया जाता है। वह ब्रह्म, वेद और ब्राह्म-बल से उत्पन्न होकर तेजस्वी है। उसको ( नमः ) सब आदर करें।

( २१ ) ब्राह्म अर्थात् ब्राह्मणों से उत्पन्न इस (रुचं) तेजस्वी राजन्य को

उत्पन्न करते हुए विद्वान् लोग प्रथम ही उसको उपदेश करें। जो ब्रह्मज्ञ पुरुष इस प्रकार के पद का लाभ करता है सब उसके अधीन रहें।

( २२ ) सबको आश्रय देने वाली श्री, राष्ट्र-सम्पत्, शोभा और लक्ष्मी उसको राजा रूप से दिखावे, ऐसी राज्यलक्ष्मी वैभव ये दोनों उसकी पत्नी के समान हैं। सूर्य के जिस प्रकार दिन रात दो स्वरूप हैं इसी प्रकार राजा के दो स्वरूप दिन और रात्रि हैं, सर्व प्रकाशक दिन, और सर्व प्राणियों को सुख से रमाने वाली राज्यव्यवस्था रात्रि हैं। ( नक्षत्राणि ) युद्ध में न भागने वाले वीर और क्षत्र से भिन्न दूसरे प्रजागण ये सब राज्य के रूप हैं। अश्विनी नामक दो मुख्य पदाधिकारी राजा के मुख हैं। वह सबको प्रेरणा करता हुआ सबका सञ्चालन करे। दूर के भोग्य पदार्थों को भी राष्ट्र में प्राप्त करावे। समस्त प्रकार के लोकों को वह प्राप्त करे, उनका संचालन करे। और सबका अधिपति होकर रहे।

इत्येकत्रिंशोऽध्यायः।

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकत्रिंशोऽध्यायः॥

# अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

[ ३२—३३ । ५४ ] स्वयंभु ब्रह्म ऋषिः । आत्मा देवता ।

॥ ओ३म् ॥ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ १ ॥

१, २ अनुष्टुप् गान्धारः ॥

भा०—( तत् ) वह, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सनातन सच्चिदानन्द नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, न्यायकारी दयालु, जगत्-स्रष्टा, जगत्-हर्त्ता, जगत्-नियन्ता परमेश्वर ही ( अग्निः ) स्वयंप्रकाश, सर्वत्र, सर्वप्रकाशक, सबके आगे विद्यमान होने से 'अग्नि' है । ( तद् आदित्यः ) वह ही परमेश्वर, समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर लय कर लेने वाला होने और सूर्य के समान तेजस्वी होने से 'आदित्य' है । (तद् वायुः) वह ही अनन्त बलवान्, सर्वप्राण, सर्वकर्त्ता एवं व्यापक होने से 'वायु' है । ( तत् उ चन्द्रमाः ) वह ही आह्लादजनक, आनन्दमय होने से 'चन्द्रमा' है । ( तद् एव शुक्रम् ) वह ही शुद्धस्वरूप और जगत् के सब कार्यों को अति शीघ्रता से, विना विलम्ब के यथाविधि करते और सबका प्रकाशक एवं स्वयं देदीप्यमान होने से 'शुक्र' है । ( तत् ब्रह्म ) वह ही सबसे महान्, सबसे बड़ा, सबका बढ़ाने वाला होने से ब्रह्म है । ( ताः आपः ) वही सब में व्यापक होने से 'आपः' है । ( सः प्रजापतिः ) वही समस्त प्रजाओं का पालक होने से प्रजापति है ।

राजा के पक्ष में—अग्नि के समान शत्रुतापक और अग्रणी, सूर्य के समान तेजस्वी, वायु के समान बलवान्, प्रजा का प्राण, चन्द्र के समान

---

१—अथातः सर्वमेधः आ प्रवायुमच्छे [ ३३ । ५४ ] तिमन्त्रात् । इयमेव 'तदेवोपनिषत्' ।

बलधारक, अन्न के समान सबको पोषक, जलों के समान प्राणप्रद, प्रजा पालक होने से वह राजा ही आदित्य, वायु चन्द्र, शुक्र ब्रह्म, आपः, प्रजापति आदि नामों से कहा जाता है। अन्यत्र भी—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥ २॥

भा०—( विद्युतः ) विद्युत् से जिस प्रकार ( निमेषाः ) निमेष उत्पन्न होते हैं, अर्थात् मेघस्थ विद्युत् जिस प्रकार सहस्रों वार चमकती और सहस्रों वार फिर छिप २ जाती है, वे सब विलास उसी से उत्पन्न होते हैं और जिस प्रकार ( विद्युतः ) विशेष तेजस्वी सूर्य से ( निमेषाः ) दिन और रात्रि उत्पन्न होते हैं, अथवा जिस प्रकार सूर्य के ( निमेषाः ) नियम से बराबर 'मेष' आदि राशि प्रवेश या मेष, वृष आदि राशि के संक्रमण से मास और वर्ष उत्पन्न होते हैं अथवा निमेष त्रुटि, काष्ठा, विपल, पल, घड़ी, होरा, याम, दिन, पक्ष, मास, वर्ष आदि सभी उत्पन्न होते हैं, अथवा—( विद्युतः ) विशेष तेजस्वी सूर्य से ( निमेषाः ) निरन्तर वर्षणशील मेघ उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार ( विद्युतः पुरुषात् ) विशेष द्युति से प्रकाशमान् एवं समस्त जगत् के प्रकाशक उस पूर्ण पुरुष परमेश्वर से (सर्वे निमेषाः) समस्त निमेष, अध्यात्म में आत्मा के द्वारा नेत्रादि इन्द्रियों के निमीलन, उन्मीलन, सूर्य से, कला, काष्ठा आदि काल के अवयव और जगत् के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, तथा निरन्तर होने वाला उत्पाद और विनाश सब ( अधिजज्ञिरे ) उत्पन्न होते हैं। कोई भी ( एनम् ) उसको ( न तिर्यञ्चं ) न तिरछे, ( न ऊर्ध्वम् ) न ऊपर से और ( न मध्ये ) न बीच में से ( परिजग्रभत् ) ग्रहण करता है, अर्थात् उसको किसी विशेष अंग से भी पकड़ा नहीं जा सकता, उसका पूर्ण ज्ञान नहीं किया जा सकता।

स एष नेति नेत्यात्मा अगृह्यो नहि गृह्यते । बृहदारण्यकोप० ॥

राजा के पक्ष में—विशेष तेजस्वी पुरुष से राष्ट्र के समस्त निमेष, छोटे बड़े कार्य उत्पन्न होते हैं। उसको कोई ऊपर से, बीच में से, या तिरछे भी नहीं पकड़ सकता। कोई उसको वश नहीं कर सकता।

**न तस्यं प्रतिमा ऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः । हिरण्यगर्भ ऽइत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जात ऽइत्येषः ॥ ३ ॥**

निचृत् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—( यस्य ) जिसका ( महत् ) बड़ा भारी ( नाम ) नाम, स्वरूप और जगत् को वश करने का सामर्थ्य है और जिस का ( महद् यशः ) बड़ा भारी यश है। अथवा—जिसका ( नाम ) प्रसिद्ध ( महत् यशः ) बड़ा यश है ( तस्य ) उसकी ( प्रतिमा न अस्ति ) कोई मापक साधन, परिमाण, प्रतिकृति नहीं है। ( हिरण्यगर्भः इति ) 'हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे०' यह अनुवाक ( अ० २५। १०–१३ ) (यस्मान्न जातः इति एषा) 'यस्मान्न जातः० [ अ० ८ । ३६ ] इत्यादि ऋचा और ( मा मा हिंसदित्येषा) 'मा मा हिंसीत्०' इत्यादि अनुवाक में (१२ । १०२) (यस्य-महत् यशः ) जिसका बड़ा यशोगान है।

अथवा—(एषः हिरण्यगर्भः इति) वह परमेश्वर ही अपने भीतर सूर्यादि लोकों को धारण करने हारा होने से 'हिरण्यगर्भ' इस प्रकार कहाता है। ( मा मा हिंसीत् इति एषा ) मुझे मत मार इस प्रकार की प्रार्थना उसी से की जाती है। ( यस्मात् न जातः ) जिससे बढ़ कर कोई नहीं पैदा हुआ ऐसा जो प्रसिद्ध है।

राजा के पक्ष में—जिसका मननकारी बल और यश बड़ा हो उसका ( प्रतिमा ) मुकाबले का कोई नहीं। उसका 'हिण्यगर्भः' इत्यादि सूक्तों से भी वर्णन किया जाता है।

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स ऽउ गर्भे ऽअन्तः ।
स ऽएव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥४॥

४-७ त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—( एषः देवः ) निश्चय से यह ही सब पदार्थों का द्रष्टा और प्रकाशक ( सर्वाः प्रदिशः ) समस्त दिशाओं को ( अनु ) व्यापे हुए है । ( ह ) वही निश्चय से ( पूर्वः ) सबसे पूर्व ( जातः ) प्रथम प्रकट होता है । ( सः उ ) और वह ही ( अन्तः गर्भे ) भीतर गर्भ में आत्मा और हिरण्यगर्भ में परमात्मा विद्यमान रहता है । ( सः एव ) वह ( जातः ) समस्त लोकों में शक्ति रूप से प्रकट होता है । ( सः ) वह ही ( जनिष्यमाणः ) भविष्य में भी प्रकट होगा । हे ( जनाः ) पुरुषो ! वह (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ में व्यापक होकर ( सर्वतः मुखः ) सब ओर उसके मुख आदि अवयवों के समान सब प्रकार के करने की शक्ति वाला है ।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्यतिष्ठति । गीता । १३ । १३ ॥

यस्माज्जातं न पुरा किञ्चनैव य ऽआबभूव भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सᳬंरराणस्त्रीणि ज्योतींᳬषि सचते स षोडशी ॥५॥

भा०—( यस्मात् पुरा ) जिससे पहले ( किञ्चन ) कुछ भी ( न जातम् ) नहीं उत्पन्न हुआ । और ( यः ) जो ( विश्वा भुवनानि ) समस्त लोकों, भुवनों को ( आबभूव ) व्याप्त होरहा है । वह ( प्रजापतिः ) प्रजा पालक परमेश्वर राजा और पिता के समान ( प्रजया ) अपनी समस्त उत्पन्न प्रजा सृष्टि के साथ ( संरराणः ) उसमें ही रमण करता हुआ ( त्रीणि ज्योतींषि ) तीन ज्योति अग्नि, विद्युत्, सूर्य या सत्, चित्, आनन्द इनको ( सचते ) प्राप्त है, इनमें व्यापक है, इन तीन रूपों से स्मरण किया जाता है । और ( सः ) वह ही ( षोडशी ) १६ कलावान् चन्द्र के समान, आह्लादक १६ कला अर्थात् शक्तियों से सम्पन्न है । प्राण,

श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोक ये १६ अंश या कलाएं समष्टि रूप से परमात्मा में और व्यष्टि रूप से जीवात्मा में भी विद्यमान होने से वह शोडषी है। इसी प्रकार १६ राज्याङ्गों से युक्त राजा भी शोडषी है। वह भी प्रजा से ही रमण करता है। उसी में आनन्द प्रसन्न रहता है। 'प्रजापतिः स्वां दुहितरं चकमे' इत्यादि अर्थवाद भी इसी बात को दर्शाते हैं।

अध्यात्म में तीन तेज, आत्मा, इन्द्रिय और मन समाज में ब्राह्म-बल, क्षात्र-बल और अर्थबल यही परमेश्वर के। 'त्रिपाद्' या 'त्रीणि पदानि हैं'।

**येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।**
**यो ऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥**

ऋ० १० । १२१ । ५ ॥

भा०—( येन ) जिस परमेश्वर ने ( द्यौः ) आकाश को ( उग्रा ) उग्र, विशेष बलशालिनी और वृष्टिदायिनी बना कर उसको धारण किया और ( येन ) जिसने (दृढा च पृथिवी) पृथिवी को दृढ बना कर उसको भी धारण किया। ( येन ) जिसने ( स्वः स्वभितम् ) स्वः अर्थात् समस्त सुख या समस्त तेजोमय आदित्य को भी धारण किया है। ( येन नाकः ) जिसने समस्त आनन्दमय, सर्व दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है। ( यः ) जो ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष में विद्यमान ( रजसः ) समस्त लोकों को और ( विमानः ) विशेष रूप से बनाने और जानने हारा है ( कस्मै ) उस प्रजापति स्वरूप, आनन्दमय, परमेश्वर की (हविषा) भक्ति से (विधेम) स्तुति अर्चना करें।

**यं क्रन्दसी ऽअवसा तस्तभाने ऽअभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।**
**यत्राधि सूर ऽउदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥**
**आपो ह यद् बृहतीर्यश्चिदापः ॥ ७ ॥**

भा०—( यम् ) जिसको आश्रय लेकर ( क्रन्दसी ) नाना गुणों से

युक्त आकाश और पृथिवी ( अवसा ) व्यापक सामर्थ्य और रक्षा सामर्थ्य से अथवा—( यं अवसा ) जिसको बल, सामर्थ्य से ( तस्तभाने ) समस्त जगत् को थाम रही हैं और स्वयं थमी खड़ी हैं। और ( मनसा ) मन से या जिसके ज्ञानबल या स्तम्भन सामर्थ्य से वे दोनों ( रेजमाने ) कांपती हुई या चलती हुई ( अभि ऐक्षेताम् ) दोनों एक दूसरे के सन्मुख देख रही हैं अथवा दिखाई दे रही हैं। ( यत्र अधि ) जिसके बलपर ( सूरः ) सूर्य ( उदितः ) उदय को प्राप्त होकर ( विभाति ) प्रकाश करता है ( कस्मै ) उस सुखस्वरूप जगत् के कर्त्ता ( देवाय ) सब के प्रकाशक, परम देव की हम (हविषा) भक्ति से ( विधेम ) उपासना करें।

( आपो हयद् बृहतीः० इत्यादि ) और ( यश्चिदापः० इत्यादि ) दोनों ऋचाएं भी उसी परमेश्वर का वर्णन करती हैं।

'आपोह यद् बृहती' यह ऋचा देखो ( २७।२५ ) 'यश्चिदापः०' यह ऋचा देखो २७।२६ ॥

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳ स ऽओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥८॥

[ ८–१२ ] त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—( वेनः ) विद्वान् मेधावी, ज्ञानवान् पुरुष ( तत् ) उस परम ब्रह्म को ( गुहा निहितम् ) गुहा अर्थात् बुद्धि में स्थित, अथवा गूढ़ कारण रूप में विद्यमान (सत्) सत् रूप से (पश्यत्) देखता है, साक्षात् करता है। ( यत्र ) जिसमें ( विश्वम् ) समस्त विश्व, ( एकनीडम् ) एक ही स्थान में धरे के समान, एक आश्रय पर स्थित ( भवति ) होता है। ( तस्मिन् ) उसमें ( इदं ) यह दृश्य जगत् ( सम् एति च ) समा जाता, प्रलयकाल में लीन हो जाता है और पुनः सृष्टि के अवसर में (वि एति च ) विविध रूप में प्रकट हो जाता है। ( सः ) वह परमेश्वर ( प्रजासु विभूः )

८—०'कनीळम्' इति काण्व०।

उत्पन्न होने वाली समस्त सृष्टियों और प्राणियों में (ओतः प्रोतः च) ओत और प्रोत है। उरोया पिरोया हुआ है।

**प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत्॥ ९॥**

अथर्व० २। १। २॥

भा०—(गन्धर्वः) गौ अर्थात् वेदवाणी को धारण करने वाला, वेदज्ञ (विद्वान्) विद्वान्, आत्मज्ञान का साक्षात् लाभ करनेहारा पुरुष (तद्) उस (अमृतम्) अमृत स्वरूप (गुहा) बुद्धि में, गुहास्थान में (विभृतं) विशेष रूप से विद्यमान (धाम) सब को धारण करने वाले, परम तेजोमय, सर्वाश्रय, परमेश्वर के स्वरूप का (प्रवोचेत् नु) हमें प्रवचन करे, उसका उपदेश करे। (अस्य) उस परमेश्वर के (त्रीणि पदानि) तीन पद, जानने योग्य तीन स्वरूप (गुहा निहितानि) बुद्धि में स्थित हैं। (यः) जो (तानि) उनको (वेद) साक्षात् कर लेता है (सः) वह (पितुः पिता) हमारे पिता से भी बढ़कर (पिता) पालक (असत्) होने योग्य है।

'त्रीणि पदानि'—त्रिपादस्यामृतं दिवि। त्रीणि पदा विचक्रमे। त्रिपानस्यः। त्रिपस्त्यं। ऋ० ८।३९।८॥ त्र्यनीकः। ऋ० ३।५६।३॥ त्रि ऊधन्। त्रिप्रतिष्ठितः। अ० १०।२।३२। त्रिसधस्थः। ऋ० ५।४।८॥ त्रिदिवः त्रिनाक, त्र्यरुण, त्रिधातु, त्रिवृत इत्यादि नाना त्रिक लेने योग्य हैं।

**स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा ऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ १०॥**

अथर्व० २। १। ३॥

भा०—(सः) वह (नः) हमारा (बन्धुः) बन्धु, भाई के समान सहायक एवं सबको हृदयों में बांधने वाला है। (जनिता) वह उत्पन्न करने वाला पिता है। (सः विधाता) वह विविध उपायों से धारण

पोषण करने हारा है। वह ( विश्वा ) समस्त ( धामा ) धारण सामर्थ्यों, स्थानों और ( भुवनानि ) लोकों को भी ( वेद ) जानता है। ( यत्र ) जिस परमेश्वर में ( देवाः ) विद्वान्गण, एवं सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ ( अमृतम् ) अमृत, मोक्ष-सुख और कभी नाश न होने वाले सत् तत्व को ( आनशानाः ) प्राप्त करते हुए उस ( तृतीये ) परम, सबसे परे विद्यमान, जीव और प्रकृति से भी विलक्षण ( धामन् ) परम तेज में ( अधि-ऐरयन्त ) स्वच्छन्दतया विचरते हैं।

'तृतीये धामनि'—तृतीय रजस्, तृतीय नाक, तृतीय पृष्ठ, तृतीय लोक ये सब रचना एकार्थक हैं। 'तृतीयं' तीर्णतमम् इति निरु०। सर्वोच्च लोक।

**परी॑त्य भू॒तानि॑ प॒रीत्य॑ लो॒कान् प॒रीत्य॒ सर्वाः॑ प्र॒दिशो॒ दिश॑श्च।**
**उ॒प॒स्थाय॑ प्रथम॒जामृ॒तस्या॒त्मना॒त्मान॑म॒भि सं वि॑वेश॥ ११॥**

भा०—( भूतानि परीत्य ) पांचों भूतों को व्याप्त होकर, ( लोकान् परीत्य ) समस्त लोकों को व्याप्त होकर, ( सर्वाः प्रदिशः दिशः च ) सब दिशाओं और उपदिशाओं को व्याप्त होकर, ( ऋतस्य ) अभिव्यक्त हुए इस संसार के भी ( प्रथमजाम् ) प्रथम विद्यमान प्रकृति को ( उपस्थाय ) प्राप्त होकर, उसके साथ ( आत्मना ) अपने स्वरूप से ( आत्मानम् ) आत्मा अर्थात् अपने को स्त्री के साथ पुरुष के समान ( अभि संविवेश ) सब प्रकार से संयुक्त करता है। अध्यात्म में—आत्मवित् ज्ञानी भूतों को, लोकों को और दिशा उपदिशाओं को जान कर ( ऋतस्य प्रथमजाम् उपस्थाय ) सत्य परमात्मा को प्रथम उत्पन्न वाणी का सेवन, ज्ञान करके वह ( आत्मना ) परमात्मा के साथ ( आत्मानम् अभि संविवेश ) अपने को उसके साथ जोड़ देता है।

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत। गी० १४।३॥

परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी स॒द्य ऽइ॒त्वा परि॑ लो॒कान् परि॒ दिशः॒ परि॒ स्वः॑।
ऋ॒तस्य॒ तन्तुं॒ वित॑तं वि॒चृत्य॒ तद॑पश्य॒त्तद॑भव॒त्तदा॑सीत् ॥ १२ ॥

भा०—( द्यावापृथिवी ) द्यौ, आकाश, पृथिवी (परि त्वा) सब प्रकार से व्याप कर ( लोकान् परि इत्वा ) समस्त लोकों को व्याप कर ( दिशः परि ) समस्त दिशा और ( स्वः परि ) परम मोक्षमय सुख को व्याप कर ( ऋतस्य ) महान् संसार की ( विततं ) व्यापक ( तन्तुं ) परम आश्रय, मूलकारण प्रकृति तत्व को ( विचृत्य ) विशेष रूप से बांध कर ( तत् ) इसको ( अपश्यत् ) देखा। और ( तत् अभवत् ) प्रधान तत्व के साथ संयुक्त हुआ और (तत् आसीत्) इस ब्रह्माण्ड अर्थात् जगत् रूप में उत्पन्न हुआ।

अथवा अध्यात्म में—ज्ञानयोगी ( द्यावापृथिवी सद्यः परि इत्वा ) द्यौ और पृथिवी दोनों को शीघ्र जान कर ( लोकान् दिशः ) समस्त लोकों को और दिशाओं को ( परि ) जान कर, ( स्वः ) उस सुखमय मोक्ष को प्राप्त करके ( ऋतस्य ) सत्यमय परमेश्वर के यज्ञमय प्रजापति के (विततं) विस्तृत ( तन्तुम् ) जन्म मरण के सूत्र को ( विचृत्य ) काट कर, मुक्त होकर ( तत् अपश्यत् ) उस आत्मस्वरूप को साक्षात् करता है ( तत् अभवत् ) वही 'तत्' अर्थात् तन्मय हो जाता है ( तत् आसीत् ) वैसा ही, या उसमें ही रहता है।

सद॑स॒स्पति॒मद्भु॑तं प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्य॑म्।
स॒निं मे॒धाम॑यासिष॒ꣳ स्वाहा॑ ॥ १३ ॥

ऋ० १। १८। ६॥

भा०—( सदसः ) सबके विराजने योग्य, सभा मण्डप के समान इस सर्वाश्रय ब्रह्माण्ड के ( पतिम् ) पालक, ( अद्भुतम् ) सर्वाश्चर्यकारी, ( इन्द्रस्य ) जीव के ( काम्यम् ) कामनायोग्य, ( प्रियम् ) अति प्रिय (सनिम्) भजन करने योग्य, परम सेव्य, (मेधाम्) अति पवित्र, मुक्त आत्मा

को अपने में धारण करने वाले परमेश्वर को ( स्वाहा ) उत्तम स्तुति से ही मैं ( अयासिषम् ) प्राप्त होऊं ।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ १४ ॥

भा०—( याम् ) जिस ( मेधाम् ) आत्मज्ञान को धारण करने वाली परम बुद्धि को (देवगणाः) देव, विद्वान् गण ( पितरः ) पालक जन पूर्व के विद्वान् (च ) भी (उपासते) उपासना करते हैं ( तया मेधया ) उस परम प्रज्ञा से हे ( अग्ने ) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! या गुरो ! ( माम् ) मुझको भी ( स्वाहा ) उत्तम उपदेश वाणी और योगाभ्यास द्वारा ( मेधाविनं कुरु ) मेधवान् प्रज्ञावान् कर ।

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥१५॥

भा०—(वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सब दुःखों का वारण करने वाला परमेश्वर (मे मेधाम् ददातु) मुझे मेधा, प्रज्ञा का प्रदान कर । (अग्निः) ज्ञानस्वरूप ( प्रजापतिः ) प्रजा का स्वामी, आचार्य और परमेश्वर ( मेधाम् ) मेधा प्रदान करे । ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और ( वायुः च ) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक परमेश्वर (मे मेधाम् ददातु) मुझे मेधा बुद्धि प्रदान करे । (धाता) सबका पोषक परमेश्वर ( स्वाहा ) उत्तम उपदेश वाणी द्वारा (मे मेधां ददातु ) मुझे मेधा बुद्धि प्रदान करे ।

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ १६ ॥

भा०—(ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्रह्म, ब्राह्मण विद्वान् जन और क्षत्रिय लोग ( उभे ) दोनों ( मे ) मेरे ( श्रियम् ) लक्ष्मी का ( अश्नुताम् ) उपभोग करें । ( देवाः ) देव, विद्वान् गण या ईश्वरप्रदत्त दिव्य गुण ( मयि )

मुझमें ( उत्तमां श्रियम् ) उत्तम श्री, लक्ष्मी को ( दधातु ) धारण करावें ( तस्यै ते स्वाहा ) उस तुझ लक्ष्मी से मैं उत्तम यश को प्राप्त करूं।

१२ मन्त्र में आये 'सदसस्पति' शब्द का अर्थ 'महर्षि दयानन्द ने सभा या ज्ञानस्य न्यायस्य दण्डस्य वा पतिम् पालकम् ऐसा किया। इस लिङ्ग में यह समस्त अध्याय दण्डपति शासक, सभापति राजा के पक्ष में भी लगाता है जिसको संक्षेप से दर्शाते हैं—

१—राजा शत्रुतापक होने से अग्नि क्रूर लेने से आदित्य, बलवान् उग्र होने से 'वायु' आह्लादक होने से 'चन्द्र' वीर्यवान् होने से 'शुक्र' आप्त पुरुषों का आश्रय होने से 'आपः' और प्रजा पालक होने से प्रजापति है।

२—उस तेजस्वी राजा से ही राष्ट्र के सब ( निमेषाः ) छोटे बड़े कार्य व्यवहार उत्पन्न होते हैं। उस राजा को कोई शत्रु भी न ऊपर से, न पीछे से, न बीच से आक्रमण करे।

३—उसके बराबरी का कोई नहीं। उसका महान् नाम और यश हो।

४—वह सबसे मुख्य हो, वह सब प्रदेशों का शासक हो। वह प्रसिद्ध हो, राष्ट्र का प्रत्येक पदार्थ और जन का स्वामी हो। वह सबसे मुख्य अधिकारी होकर रहे।

५—जिससे बढ़ कर सब पर कोई शासक नहीं वह प्रजापालक राजा प्रजा से ही सुखी होता हुआ तीनों प्रकार के ज्योति, बलों, अधिकारों को प्राप्त करे और १६ हों अमात्यों या राज्याङ्गों से युक्त हो। शरीर बल, ज्ञान-बल और अर्थबल तीन ज्योति हैं। अथवा, अपने देह, सभा और राष्ट्र का बल।

६—वह आकाश, पृथिवी, सुख प्रद ऐश्वर्य और सर्व सुख कर राष्ट्र का वश कर्त्ता हो अन्तरिक्ष को पद पर रह कर समस्त ( रजसः ) लोकों को वश करे।

७—राजा और प्रजावर्ग उसके रक्षण-बल से सुव्यवस्थित होकर चित्त से उसका भय मानें। वह सूर्य के समान उदय को प्राप्त हो।

८—विद्वान् जन उस राजा को राष्ट्र के मध्य भाग में स्थित देखता है, समस्त राष्ट्र उस पर एकाश्रय होकर रहता है। वह उसी के आश्रय पर बढ़ता घटता है। वह विशेष सामर्थ्यवान् होकर प्रजाओं में करने योग्य व्यवस्थाओं से ओत प्रोत हो जाता है।

९—विद्वान् ज्ञानी पुरुष तेज के धारण करने वाले उस अमर, अखण्ड शासन का उपदेश करे। जिसमें तीन पद उसी में विराजमान हैं। जो उस राज्य-तत्व को जानता है वह पालकों से बढ़ कर पालक है।

१०—वह समस्त प्राणियों, लोकों, देशों और दिशाओं को प्राप्त करके 'प्रथमजा' अर्थात् भूमि को प्राप्त कर स्वयं अपने बल से उसमें जमकर बैठता है।

११—वह राजा प्रजावर्ग और समस्त लोकों और (स्वः) राज-सभा को प्राप्त कर, वश कर (ऋतस्य) राष्ट्र की सत्य व्यवस्था, क़ानून सूत्र को बांध कर राष्ट्र पर आंख रखता है और तन्मय हो जाता है और राष्ट्रस्वरूप होकर रहता है।

१२—मैं प्रजाजन 'सदसस्पति' अर्थात् राष्ट्रपति, सभापति, दण्डपति, अद्भुत, (इन्द्रस्य काम्यम्) ऐश्वर्यमय राष्ट्र के कामना योग्य, जिसको सब कोई चाहे, ऐसे आश्चर्यजनक वीर, प्रिय राजा को प्राप्त करूं और (सनिम्) सेवनीय, सुखप्रद और (मेधाम्) मुझ राष्ट्र प्रजा के धारक पोषक या शत्रुनाशक शक्ति को प्राप्त करूं।

१३—जिस (मेधाम्) संगतिकारक शक्ति को या शत्रुनाशक शक्ति को देव, विजेता राजा लोग और राष्ट्र के पालक लोग उपासना करते, उसका आश्रय लेते हैं, हे अग्रणी नेतः! तू उससे मुझे युक्त कर।

१४—शत्रुओं का वारक, अग्रणी, प्रजापालक, शत्रुनाशक पृथ्वी-पति, वायु के समान उग्र, बली पुरुष मुझे वह 'मेधा' शक्ति प्रदान करे ।

१६—मेरी राष्ट्र सम्पत्ति का ब्राह्मण, क्षत्रिय, विद्यावान् और बलवान् पुरुष भोग करें । विजेता लोग और विद्वान् लोग मुझ में श्री, सम्पत्ति को धारण करें, ( तस्यै ते स्वाहा ) उसका वे उत्तम पात्र में प्रदान करें ।

इति द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥



# अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

१—१७ अग्निर्देवता ।

॥ओ३म्॥अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥१॥
ऋ० १० । ४६ । ७ ॥

वत्सप्री ऋषिः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अस्य) इस राजा के राज्य और परमेश्वर की सृष्टि में (अग्नयः) अग्रणी, नेता पुरुष और अग्नि, विद्युत् आदि अति तीव्र ताप के पदार्थ (पावकाः) दूसरों को पवित्र करने वाले (दमाम्) गृहों की (अरित्राः) शत्रुओं और रोगादि से रक्षा करने वाले और (अर्चद्-धूमासः) उज्वल, दीप्ति-युक्त धूम वाले अग्नि के समान तेजस्वी, बलशाली हों। वे (श्वितीचयः) श्वेत पदार्थ चान्दी, रजत, मुक्ता आदि ऐश्वर्यों के, यश के और शुक्ल अर्थात् शुभ चरित्रों के सञ्चय करनेहारे (श्वात्रासः) अति धनवान्, अथवा आलस्यरहित शीघ्रता से कार्य करने वाले (भुरण्यवः) प्रजाओं के धारण पोषण करने वाले, (वनर्षदः) वन में रहने वाले, तपस्वी, सेवनीय, संविभक्त धनों ऐश्वर्यों या गृहों में निवास करनेवाले या रश्मियों में स्थित, सूर्य के समान तेजस्वी या जलों से अभिषिक्त, (वायवः न) वायुओं के समान, बलवान् तीव्र (सोमाः) प्रेरक, जीवनप्रद, राष्ट्र के प्राणस्वरूप, एवं ऐश्वर्यप्रद (अजरासः) जरारहित युवा, बलवान् हों ।

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि ।
यतन्ते वृथगग्नयः ॥ २ ॥ ऋ० ८ । ४३ । ४ ॥

विश्वरूप ऋषिः । गायत्री । षड्जः ॥

---

१-१७ अग्निदेवत्याः पुरोरुचः ॥

भा०—जिस प्रकार ( पृथक् ) नाना प्रकार के ( अग्नयः ) अग्निएं ( हरयः ) पीत वर्ण के अति तेजस्वी ( धूमकेतवः ) धूमरूप ध्वजा से दूरसे ही जानने योग्य, ( वातजूताः ) वायु द्वारा अति प्रदीप्त होकर (द्यवि) प्रकाश के निमित्त ( उप यतन्ते ) जला करते हैं, उसी प्रकार ( अग्नयः ) तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष ( हरयः ) ज्ञान का धारण करने हारे ( धूमकेतवः ) धूम के समान चतुर्दिगन्त में फैलने वाले ज्ञान से युक्त और ( वातजूताः ) वायु के समान सबके प्राणप्रद, परमेश्वर की उपासना से तेजस्वी, अथवा प्राणायाम से बलवान्, अथवा वायु के बल के समान बल से बलवान् होकर ( द्यवि ) प्रकाश और ज्ञान के निमित्त ( उप यतन्ते ) सदा यत्न किया करते हैं ।

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ२ऽ ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ३ ॥ ऋ० ५ । ७५ । ५ ।

गोतम ऋषिः ।

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन्, अग्रणी नेतः ! तू ( नः मित्रावरुणा ) हमारे मित्र, स्नेही पुरुषों और 'वरुण', श्रेष्ठ और दुःखनिवारक पुरुषों का ( यज ) सत्कार कर, आदर कर । तू ( देवान् यज ) विद्वान् पुरुषों का सत्संग कर, उनको दान दे । और ( स्वं ) अपने ( दमम् ) दमन करने हारे राष्ट्र को ( यक्षि ) सुसंगत, सुव्यवस्थित कर ।

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ऽ अश्वाँ२ऽ अग्ने रथीरिव ।
नि होता पूर्व्यः सदः ॥ ४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १३ । ३७ ॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे ऽअन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो ऽअन्यस्याँ ददृशे सुवर्चाः ॥५॥
ऋ० १ । ९५ । १ ॥

भा०—जैसे ( द्वे ) दो ( विरूपे ) भिन्न २ रूप रंग वाली स्त्रियें

( सु-अर्थे ) शुभ प्रयोजन में लगी हुई (चरतः) भिन्न २ प्रकार का आचरण करती हैं और भिन्न २ प्रकार से आहार विहार करती हैं। और (अन्या-अन्या ) वे दोनों पृथक्, २ या एक दूसरे के (वत्सम्) बालक को ( उपधापयेते ) दूध पिलाती हैं। ( अन्यस्यां ) एक में से तो ( हरिः ) श्याम वर्ण का, मनोहर ( स्वधावान् ) उत्तम, शान्ति आदि गुणों वाला पुत्र ( भवति ) हो और ( अन्यस्याम् ) दूसरी में से ( शुक्रः ) शुचिकर, शुद्ध, ( सुवर्चाः ) उत्तम, तेजस्वी पुत्र ( ददृशे ) प्रकट हुआ दिखाई दे इसी प्रकार रात्रि और दिन ( द्वे विरूपे चरतः ) दोनों प्रकाश और अन्धकार के कारण भिन्न २ रूप होकर विचरते हैं। दोनों ( अन्या-अन्या वत्सम् उपधापयेते ) पृथक् २ एक दूसरे के बालक के समान चन्द्र और सूर्य को पोषित करते हैं। अथवा वे दोनों एक दूसरे से मिल कर ( वत्सम् ) बसे हुए संसार को पालते पोसते हैं। एक में ( हरिः ) ताप आदि हरने से हरि, मनोहर, (स्वधावान्) अन्नादि ओषधि के पोषक रसों एवं जल, ओस आदि से युक्त चन्द्र उत्पन्न होता है और ( अन्यस्याम् ) दूसरी, दिन वेला में ( शुक्रः ) कान्तिमान् ( सुवर्चाः ) उत्तम तेजस्वी सूर्य (ददृशे) दिखाई देता है। अथवा—दिन वेला रात्रि से उत्पन्न हुए सूर्य को अधिक तेजस्वी करती है और रात्रि वेला दिन के अन्तिम प्रहर में उत्पन्न अग्नि को अधिक उज्वल कर देती है। जलादि रस के शोषण करने से सूर्य हरि है और कान्तिमान् होने से अग्नि शुक्र है।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ ६ ॥
ऋ० ४। ७। १॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३। १५॥

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ७॥
ऋ० ३। ९। ९॥

स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥ विश्वामित्र ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः ।

भा०—( त्रीणि शता, त्री सहस्राणि, त्रिंशत् च नव च ) तीन सहस्र, तीन सौ, तीस और ९ अर्थात् ३३३९ इतने ( देवाः ) विजयशील सैनिक ( अग्निम् ) अपने अग्रणी सेनापति की ( असपर्यन् ) आज्ञा मानें । वे उसको ( घृतैः ) जलों से ( औक्षन् ) अभिषेक करें । और ( अस्मै ) उसके लिये ( बर्हिः ) बड़ा, वृद्धिसूचक आसन, पद भी ( अस्तृणन् ) प्रदान करें । और ( आत् इत् ) उसके पश्चात् उसको ही ( होतारम् ) सबका होता, दाता, एवं वेतन और अधिकार देने वाला बना कर ( नि-असादयन्त ) मुख्य आसन पर बैठावें ।

**मूर्द्धानं दिवो ऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत ऽआ जातमग्निम् ।**
**कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥८॥**

ऋ० ६ । ७ । १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ७ । २४ ॥

**अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।**
**समिद्धः शुक्र ऽआहुतः ॥ ९ ॥** ऋ० ६ । १६ । ३४ ॥

भारद्वाज ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—जिस प्रकार ( अग्निः ) सूर्य और वायु ( वृत्राणि ) आकाश को घेरने वाले मेघों को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार ( द्रविणस्युः ) यश और धनैश्वर्य का इच्छुक (अग्निः) अग्रणी, दुष्ट संतापक, विद्वान्, नेता और राजा ( विपन्यया ) विविध प्रकार के व्यवहारों से युक्त नीति से स्वयं ( समिद्धः ) अति तेजस्वी ( शुक्रः ) शीघ्रकारी होकर ( आहुतः ) शत्रुओं से ललकारा जाकर, या दुःखी प्रजाओं से कष्ट निवारणार्थ पुकारा जाकर ( वृत्राणि ) प्रजा के नगरों के घेरने वाले शत्रुओं को और सदाचार नाश करने वाले पापाचारों को ( जंघनत् ) नाश करे ।

अथवा—यश का अभिलाषी नेता राजा ( विपन्यया समिद्धः ) प्रजाओं

की विविध प्रकार की स्तुतियों प्रार्थना से प्रेरित, उत्तेजित होकर ( शुक्रः ) तेजस्वी ( आहुतः ) सर्व स्वीकृत होकर ( वृत्राणि ) कदाचारियों और राज्य के विघ्नों को नाश करे ।

विश्वे॑भिः सो॒म्यं मध्व॑ग्न॒ऽइन्द्रे॑ण वा॒युना॑ ।
पिबा॑ मि॒त्रस्य॒ धाम॑भिः ॥ १० ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) सूर्य के समान तेजस्विन् ! तू ( वायुना ) वायु के समान अपने आक्रमण के प्रबल वेग से शत्रुओं को हिला देने वाले ( इन्द्रेण ) शत्रुघातक सेनापति और ( विश्वेभिः ) समस्त विजयशील वीर नेता पुरुषों के साथ मिल कर ( मित्रस्य धामभिः ) मित्र, स्नेही राजा के पदाधिकारियों सहित ( सोम्यं ) राष्ट्र के ऐश्वर्य रूप (मधु) मधुर, भोग्य ऐश्वर्य को ( पिब ) स्वीकार कर । अग्नि या सूर्य का ताप जिस प्रकार रसधारक वायु के साथ अपने किरणों से जल को पान कर लेता है उस प्रकार राजा अपने मित्रों सहित सेनापति के बल से राष्ट्र का भोग्य अन्न आदि ऐश्वर्य प्राप्त करे ।

आ यदि॒षे नृ॒पतिं॒ तेज॒ऽआन॒ट् शुचि॒ रेतो॒ निषि॑क्तं॒ द्यौर॒भीके॑ ।
अ॒ग्निः शर्ध॑मनव॒द्यं युवा॑नꣳ स्वा॒ध्यं॑ जनयत्सू॒दय॑च्च ॥ ११ ॥

ऋ० १ । ७१ । ८ ॥

पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार ( नृपतिम् ) नर रूप नायक पति अर्थात् पुरुष को ( इषे ) कामनापूर्त्ति वा निषेक करने के निमित्त ( तेजः ) तेज, वीर्य ( आनट् ) प्राप्त होता है तभी वह (शुचि) शुद्ध, दीप्तियुक्त ( रेतः ) पुत्रादि का उत्पादक वीर्य (द्यौः अभीके) कामना युक्त स्त्री में ( निषिक्तम् ) निषिक्त हो तो ( अग्निः ) वह तेजस्वी पुरुष ( शर्धम् ) बलवान्, ( अनवद्यम् ) निर्दोष, अनिन्द्य, सुन्दर (स्वाध्यं) उत्तम विचारानुसार ( युवानं )

जवान, दीर्घायु हृष्ट पुष्ट सन्तान को ( जनयत् ) उत्पन्न करता है। और (सूदयत् च) इसी के निमित्त वीर्य निषेक करता है उसी प्रकार (यत्) जब ( इषे ) वर्षा के निमित्त या अन्नादि के उत्पन्न होने के लिये राजा के समान नेतृ शक्तियों के पालक या सब मनुष्यों के पालक राजा का (तेजः) तेज ( आ आनट् ) सर्वत्र व्याप्त होता है तब और ( द्यौः अभीके ) आकाश में सर्वत्र ( शुचि रेतः निषिक्तम् ) शुद्ध जल गुप्तरूप से गर्भित हो जाता है। तब भी ( अग्निः ) वह सूर्य ( शर्धम् ) बलकारी ( अनवद्यम् ) निर्दोष ( युवानम् ) यौवन या बल के वर्धक परस्पर मिश्रित, ( स्वाध्यं ) सुख से स्मरण या धारण करने योग्य, उत्तम पोषक जल को ( जनयत् ) उत्पन्न करता है और ( सूदयत् च ) भूमि पर वर्षाता है।

इसी प्रकार राजा के पक्ष में—(यत्) जब (इषे) अन्नादि के वितरण के लिये (नृपतिं तेजः आनट्) नरों के नायक वीरों के पालक राजा का तेज फैलता है तब वह ( द्यौरभीके ) ज्ञान प्रकाश से युक्त राजसभा में अपने ( शुचि रेतः ) विशुद्ध सामर्थ्य को प्रदान करता है। और तब ( अग्निः ) अग्रणी नेता ( अनवद्यम् ) दोष रहित, स्तुतियोग्य, ( युवानं ) राष्ट्र के यौवन को बनाने वाले (स्वाध्यं) उत्तम ध्यान या धारण करने योग्य (शर्धम्) बलकारी सामर्थ्य को ( जनयत् ) उत्पन्न करता है और ( सूदयत् च ) उसको पुनः प्रजा पर ही वर्षा कर देता है।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ रघु० ।

**अग्ने शर्द्धं महते सौभगाय तवं द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।**
**सं जास्पत्यꣳ सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महांꣳसि॥१२॥**

ऋ० ५। ६८। ३॥

विश्ववारा ऋषिका। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक! विद्वन्! राजन्! तू ( महते )

बड़े भारी ( सौभगाय ) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त करने के लिये ( शर्द्ध ) बल प्रकट कर, उद्योग कर। ( तव ) तेरे ( द्युम्नानि ) धन और ऐश्वर्य ( उत्तमानि ) उत्तम, उच्च कोटि के (सन्तु) हों, तेरे पास उत्तम २ धन प्राप्त हों। तू ( जास्पत्यम् ) पति पत्नी के सम्बन्ध को ( सुयमम् ) उत्तम नियमों से सुबद्ध, खूब दृढ़ (आ कृणुष्व) बना। (शत्रूयताम्) शत्रुता का व्यवहार चाहने वाले पुरुषों के ( महांसि ) तेजों और बड़े २ ऐश्वर्यों पर तू (अभि तिष्ठ ) आक्रमण कर, उनको विजय कर।

त्वाँ᳖ हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महिं नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥१३॥

ऋ० ६।४।७॥

भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! आचार्य! हम लोग ( मन्द्रतमम् ) अति अधिक गम्भीर, सबको प्रसन्न करने हारे, स्वयं सुप्रसन्न, सबसे आदरणीय, एवं अति कोमल हृदय वाले दयालु ( त्वां हि ) तुझको ही ( अर्कशोकैः ) सूर्य के समान तेजों से युक्त पुरुषों सहित ( ववृमहे ) वरण करते हैं। तू ( नः ) हमारे ( महि ) बड़े प्रयोजन वाले वचन को ( श्रोषि ) श्रवण कर। ( नृतमाः ) श्रेष्ठ मनुष्य ( शवसा ) बल, ज्ञान के कारण ( इन्द्रं न ) सूर्य के समान तेजस्वी, ( वायुं न ) और वायु के समान व्यापक, बलशाली एवं प्राणों के पालक ( देवता ) देव स्वरूप, दाता और द्रष्टा, ज्ञानप्रकाशक जान कर ( राधसा ) धन और ऐश्वर्य से ( त्वां ) तुझको ( पृणन्ति ) पालते एवं पूर्ण करते हैं।

'अर्कशोकैः'—मन्त्रैः दीप्तैः यथोक्तस्थानकर्मानुप्रदानवद्भिः। देवताद्यात्मवित्तसन्तानगर्भगुरुशुश्रूषाधिगताविप्लवितब्रह्मचर्यैः। इति उवटः॥

त्वे ऽअग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥ १४ ॥

ऋ० ७ । १६ । ७ ॥

वासिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे ( स्वाहुत ) अग्नि के समान उत्तम २ पदार्थों और ज्ञानों को प्राप्त करने हारे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! ( ये ) जो ( सूरयः ) सूर्य के समान तेजस्वी, विद्वान् (यन्तारः) स्वयं जितेन्द्रिय, अथवा (जनानां यन्तारः) मनुष्यों को नियम में रखने वाले ( मघवानः ) धन ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर भी ( गोनां उर्वान् ) गौ आदि पशुओं के नाश करने वालों को ( दयन्त ) नाश करते एवं दण्ड देते हैं वे ( त्वे ) तेरे ( प्रियासः ) प्रिय (सन्तु) हों।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः । आ सीदन्तु
बर्हिषि मित्रो ऽअर्य्यमा प्रातर्य्यावाणो ऽअध्वरम् ॥१५॥

ऋ० १ । ४४ । ३ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे ( श्रुत्कर्ण ) अभ्यर्थना करने वाले के वचनों को श्रवण करनेवाले, अथवा (श्रुत्कर्ण) गुरुओं द्वारा बहुश्रुत कर्णों वाले ! अथवा बहुत विद्वानों को अपने अधीन रखने हारे ! (अग्ने) अग्रणी, विद्वन् ! राजन् ! तू (सयावभिः) सदा साथ जाने वाले, सहयोगी (वह्निभिः) राज-कार्यों को भली प्रकार निर्वाहने वाले ( देवैः ) विद्वानों के साथ मिल कर ( श्रुधि ) प्रजा के व्यवहारों को सुना कर । और ( बर्हिषि ) इस आसन पर, अथवा इस महान्, राष्ट्र व राजसभा में ( मित्रः ) सबको स्नेह से देखने हारा ( अर्यमा) स्वामी के समान मान करने योग्य होकर तू और (प्रातर्यावणः) प्रातःकाल ही राज-कार्यों पर जाने वाले अधिकारी जन ( अध्वरम् ) अहिंसनीय, अनाश्य, उल्लंघन न करने योग्य राज्यकार्य में ( आसीदन्तु ) आ २ कर बैठें ।

**विश्वे॑षा॒मदि॑ति॒र्य॒ज्ञिया॑नां॒ विश्वे॑षा॒मति॑थि॒र्मानु॑षाणाम् ।**
**अ॒ग्निर्दे॒वाना॒मव॑ऽआवृणा॒नः सु॑मृडी॒को भ॑वतु जा॒तवे॑दाः ॥१६॥**

ऋ० ३ । १ । २० ॥

गोतम ऋषिः । अग्निर्जातवेदा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—( विश्वेषाम् ) समस्त ( यज्ञियानाम् ) पूजनीय, राष्ट्रपालन रूप यज्ञ के सम्पादक पुरुषों में ( अदितिः ) अखण्ड ज्ञान और आज्ञा वाला ( विश्वेषाम् ) और समस्त ( मानुषाणाम् ) मनुष्यों में से (अतिथिः) सबसे अधिक पूज्य, सर्वोपरि स्थित और ( देवानाम् ) विद्वान्, विद्या और धन के दानशील एवं विजयेच्छु पुरुषों में से (जातवेदाः) ज्ञानवान् (अग्निः) अग्रणी, तेजस्वी विद्वान् राजा ( अवः ) रक्षण कार्य और अन्न आदि को ( आवृणानः ) प्रदान करता हुआ ( सुमृडीकः भवतु ) उत्तम सुख देने वाला हो ।

**म॒हो ऽअ॒ग्नेः स॑मिधा॒नस्य॒ शर्म॒ण्यना॑गा मि॒त्रे वरु॑णे स्व॒स्तये॑ ।**
**श्रेष्ठे॑ स्याम सवि॒तुः सवी॑मनि॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ ऽअ॒द्या वृ॑णीमहे ॥१७॥**

ऋ० १० । ३६ । १२ ॥

लुशो धानाक ऋषिः । त्रिष्टुप् । धैवतः । अग्निर्देवता ।

भा०—हम लोग ( समिधानस्य ) अति तेजस्वी, ( अग्नेः ) संतापकारी, दुष्ट-संहारक, अग्रणी, नायक राजा के (महः) बड़े भारी ( शर्मणि ) शरण में रह कर (मित्रे) स्नेहवान् मित्र और (वरुणे) श्रेष्ठ पुरुष के आश्रय पर, उनके प्रति (स्वस्तये) कल्याण के लिये (अनागाः) अपराध रहित होकर ( स्याम ) रहें । और (सवितुः) सबके प्रेरक परमेश्वर और राजा के (श्रेष्ठे) परम कल्याणमय, सर्वोत्तम ( सवीमनि ) शासन या आज्ञा में ( स्याम ) रहें । और ( देवानाम् ) विद्वान्, ज्ञानप्रद और विजयेच्छु पुरुषों के ( तम् ) उस ( अवः ) रक्षण और ज्ञान को ( अद्य ) आज, एवं सदा ( वृणीमहे ) प्राप्त करें ।

आपश्चित्पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त ऽइन्द्र । याहि वायुर्न नियुतो नो ऽअच्छा त्वꣳ हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ १८ ॥

ऋ० ७ । २३ । ४ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( आपः न ) जल जिस प्रकार ( ऋतम् ) जीवन की (पिप्युः) वृद्धि करते हैं उसी प्रकार ( आपः ) आप्त जन ( ऋतं ) सत्य ज्ञान की ( पिप्युः ) वृद्धि करें । और हे ( इन्द्र ) परमेश्वर ! हे विद्वन् ! (गावः न) वेदवाणियां जिस प्रकार ( ऋतं नक्षन् ) यज्ञ, पूजनीय ब्रह्म और सत्य तत्व को व्यापती हैं उसी प्रकार ( ते जरितारः ) तेरे स्तुति करने हारे एवं तेरे अधीन यथार्थ तत्व का उपदेश करने वाले गुरुजन ( ऋतं ) सत्य ज्ञान को ( नक्षन् ) प्राप्त करें, उसी में रमें। हे विद्वन् ! राजन् ! ( वायुः न ) वायु जिस प्रकार ( नियुतः ) अपने तीव्रता आदि विशेष गुणों को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार तू वायु के समान प्रचण्ड बलशाली होकर ( नियुतः ) निरन्तर युद्ध करने हारी सेनाओं को अथवा निरन्तर संयोग विभाग करने वाली शक्तियों को ( याहि ) प्राप्त कर । और ( त्वं हि ) तू ही ( धीभिः ) अपने कर्म और विज्ञानों द्वारा ( वाजान् ) नाना ऐश्वर्यों और अन्नों को ( नः ) हमें ( अच्छ ) भली प्रकार ( विदयसे ) विविध प्रकार से प्रदान और ग्रहण करता है ।

गाव ऽउपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १९ ॥ ऋ० ८ । ६१ । १२ ॥

भा०—( गावः ) सूर्य की किरण जिस प्रकार ( यज्ञस्य ) इस महान् ब्रह्माण्डमय यज्ञ की रक्षा करती हैं उसी प्रकार हे ( गावः ) गौओ ! तुम ( यज्ञस्य ) राष्ट्र के सुसंगत यज्ञ की ( उप अवत ) अच्छी प्रकार रक्षा करो । हे ( मही ) बड़ी सूर्य और पृथिवी (रप्सुदा) रूप शोभा प्रदान करने वाली तुम दोनों जिस प्रकार प्रजापालन रूप व्यवहार की (अवतम्)

रक्षा करते हो उसी प्रकार हे ( मही ) बड़ी शक्ति वाली ( रप्सुदा ) रूप शोभा को देने वाली राजा प्रजाओ ! तुम दोनों (यज्ञस्य अवतम्) परस्पर के सुसंगत व्यवहार की, गृहस्थ धर्म की स्त्री पुरुषों के समान ( अवतम् ) रक्षा और पालन करो। और जिस प्रकार ( उभा ) दोनों स्त्री पुरुष ( हिरण्यया ) सुवर्ण के आभूषण और हित और प्रिय वचनों से युक्त कानों वाले होकर (यज्ञस्य अवतम्) मैत्री उत्पन्न करने वाले प्रेम वचन को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों (हिरण्यया) हित और रमणीय आचरणशील ( कर्णा ) करने वाले होकर ( यज्ञस्य ) परस्पर के मित्रता के प्रेम व्यवहार की ( अवतम् ) रक्षा करो। उसी प्रकार राजा प्रजा ये दोनों भी ( हिरण्यया ) धनैश्वर्य से सम्पन्न होकर ( कर्णा ) एक दूसरे के कार्य करने वाले, उपकारक बन कर ( यज्ञस्य ) राष्ट्र रूप सुसंगत व्यवहार की ( अवतम् ) रक्षा करें।

'उभा कर्णा हिरण्यया' अर्थात् 'दोनों कान सोने वाले' इस शब्द से कानों में स्वर्ण के आभूषण पहनना एवं उनका यज्ञ का रक्षण अर्थात् शरीर की रक्षा करने का तत्व भी स्फुट होता है।

अथवा—( यथा मही रप्सुदा यज्ञस्य अवतम् तथा उभा हिरण्यया कर्णा यज्ञस्य अवतम्। यथा च गावः मही अवन्ति तथा गावः उभा कर्णा अवत। ) जैसे नाना रूप वाली बड़ी द्यौ और पृथिवी यज्ञ प्रजापति विराट् पुरुष को प्राप्त हैं, उनमें दोनों सूर्य, चन्द्र दो कुण्डल के समान हैं। उसी प्रकार दोनों सुवर्ण से भूषित कान यज्ञ आत्मा या पुरुष पुरु को प्राप्त हों। और जिस प्रकार किरणें आकाश पृथिवी को व्यापती हैं उसी प्रकार वाणियें दोनों कानों को व्यापें।

अथवा—(गावः उपावत) जब किरणें व्यापती हैं, तब ( मही यज्ञस्य रप्सुदा अवतम् ) ब्रह्माण्ड को रूप देने वाली बड़ी आकाश और पृथिवी प्राप्त होती हैं। उसी प्रकार ( गावः उपावत ) हे वेदवाणियो ! तुम प्राप्त

हो अतः ( उभौ कर्णौ ) हमारे दोनों कान ( हिरण्यया ) सुवर्ण से मण्डित होकर जैसे शरीर की रक्षा करते हैं उसी प्रकार ज्ञान श्रवण से सुशोभित होकर ( यज्ञस्य अवतम् ) वे दोनों कान गुरूपदेश श्रवण से मण्डित होकर यज्ञ, अर्थात् आत्मा की रक्षा करें ।

यद॒द्य सूर॒ उदि॑ते॒ऽनागा मि॒त्रो ऽअ॑र्य॒मा ।
सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑ ॥ २० ॥ ऋ० ७ । ६६ । ४ ॥

वासिष्ठ ऋषिः । सविता देवता । गायत्री । षड्जः ।

भा०—( यत् ) जब ( मित्रः ) सबका स्नेही, मित्र के समान ( अर्यमा ) स्वामी रूप से अभिमत न्यायकारी, ( सविता ) सबका प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्वी, (भगः) सर्वैश्वर्यवान् (सुवाति) राज्य करता है तब ( सूरे उदिते इव) सूर्य उग आने पर जैसे कोई पुरुष अपराध, चोरी आदि नहीं करता, कहीं अन्धकार नहीं रहता, समस्त प्रजागण उसी प्रकार (अद्य) आज ( सूरे अदिते ) तेजस्वी सूर्य समान राजा के उदय होने पर प्रजाजन ( अनागाः ) पाप से दूर रहें ।

आ सु॒ते सि॑ञ्चत॒ श्रिय॑ꣳ रोद॑स्योरभि॒श्रिय॑म् ।
र॒सा द॑धीत वृष॒भम् ॥ ऋ० ८ । ६१ । १३ ॥

सुनीतिर्ऋषिः । रसा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! तुम ( रसा ) सारवान् , बलवान् एवं तीव्र वेग से जाने वाले जलप्रवाहों के समान बलवान् होकर ( रोदस्योः अभिश्रियम् ) आकाश और पृथिवी के बीच सर्वत्र शोभाजनक ( वृषभम् ) वर्षणशील सूर्य या मेघ के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग या दो बड़े राज्यों के बीच ( अभिश्रियम् ) अति अधिक शोभा पाने वाले आश्रय करने योग्य, एवं ( वृषभम् ) अति बलवान् पुरुष को ( सुते ) राष्ट्र के बीच में ( श्रियम् ) राज्यलक्ष्मी (आसिञ्चत) प्रदान करके अभिषेक करें । और वह राज्य को ( दधीत ) धारण करे ।

तं प्रत्नथा० । अयं वेनः० ॥ २१ ॥

भा०—'तं प्रत्नथा०' और 'अयं वेनः०' ये दोनों (अ० ७।१२) और (२६) मन्त्रों की प्रतीक मात्र हैं । उनकी व्याख्या वहीं देखो ।

आ तिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥२२॥
ऋ० ३ । ३८ । ४ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( तिष्ठन्तं ) एकत्र स्थिर हुए राजा को ( विश्वे ) सब लोग ( परि ) चारों ओर से ( अभूषन् ) घेर कर खड़े होते हैं । और वह ( स्वरोचिः ) स्वयंप्रकाश, सूर्य के समान तेजस्वी ( श्रियः ) शोभाजनक ऐश्वर्यों को ( वसानः ) धारण करता हुआ ( चरति ) विचरता है । ( वृष्णः असुरस्य ) वर्षा करने वाले मेघ के समान ( असुरस्य ) समस्त प्राणियों को प्राण दान करनेवाले उसका ( महत् नाम ) नमाने का बड़ा भारी सामर्थ्य है कि वह ( विश्वरूपः ) विश्वरूप होकर अर्थात् समस्त पदाधिकारियों का स्वरूप धर कर ( अमृतानि ) अविनश्वर ऐश्वर्यों पर ( तस्थौ ) शासक होकर विराजता है ।

विद्युत् पक्ष में—वर्षाशील मेघ में वह बड़ा भारी बल है जो नाना रूप होकर जलों में व्याप्त है ।

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखꣳ सहो महि श्रवो नृम्णञ्च रोदसी सपर्य्यतः ॥२३॥
ऋ० १० । ५० । १ ॥

सुचीक ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! ( यस्य ) जिस ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान्

२१—'तं प्रत्नथायं वेनश्चोदयत्' इति काण्व० ।

परमेश्वर और राजा का ( सुमख ) उत्तम यज्ञ, ( सहः ) शत्रु के पराजय-कारी बल, ( महि श्रवः ) बड़ा भारी यश और ( नृम्णं च) धन इन पदार्थों को ( रोदसी ) द्यौ और पृथिवी ज्ञानी अज्ञानी और राजवर्ग प्रजावर्ग दोनों ( सपर्यतः ) उपहार में प्रदान करते हैं। उस ( विश्वानराय ) समस्त नरों और राजा की नेताओं के उत्पादक ( विश्वाभुवे ) समस्त विश्व के उत्पादक, सर्व विश्वव्यापक ( अन्धसः ) अन्न के दान करने वाले ( महे ) महान् ( मन्दमानाय ) सबको आनन्द देने वाले, स्वयं आनन्दस्वरूप उस परमेश्वर की ( वः ) तुम लोग ( अर्च ) अर्चना और स्तुति आदर करो।

बृहन्निदिध्म ऽएषां भूरिं शस्तं पृथुः स्वरुः।
येषामिन्द्रो युवा सखा॥ २४ ॥ ऋ० ८ । ४५ । २ ॥

त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( येषाम् ) जिनका ( सखा ) मित्र ( बृहन् ) महान् (इध्म) तेजस्वी, ( पृथुः ) विस्तीर्ण राज्य वाला ( स्वरुः ) शत्रुओं का तापक, सूर्य के समान तेजस्वी ( युवा ) युवा पुरुष के समान सदा बलवान् उत्साही हो, ( एषां ) उन प्रजाओं का ( भूरि ) बहुत ( शस्तम् ) उत्तम, प्रशंसा योग्य फल होता है।

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
महाँ२ऽ अभिष्टिरोजसा॥ २५ ॥ ऋ० १ । ९ । १ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! तू ( विश्वेभिः ) समस्त ( सोमपर्वभिः ) सोम, राजपद या राज्य के पालन करने वाले पुरुषों सहित (अन्धसः) अन्न या राज्यैश्वर्य से (मत्सि) तृप्त हो और ( ओजसा ) बल पराक्रम से तू स्वयं ( महान् ) बड़ा ( अभिष्टिः ) आदर सत्कार करने योग्य है।

इन्द्रो॑ वृ॒त्रम॑वृणो॒च्छर्द्ध॑नीतिः॒ प्र मा॒यिना॑ममिना॒द्वर्प॑णीतिः ।
अह॒न् व्यं॑समु॒शध॒ग्वने॑ष्वा॒विर्धेना॑ ऽअकृणोद्रा॒म्याणा॑म् ॥२६॥
ऋ० ३ । ३४ । ३ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( शर्धनीतिः ) बल अर्थात् सेनाबल को अग्रणी होकर ले चलने वाला (इन्द्रः) शत्रुसंहारक सेनापति (वृत्रम् अवृणोत्) नगर-रोधी शत्रु को रोक ले और ( वर्पणीतिः ) नाना रूपों के व्यूहों के करने और चलाने में चतुर सेनापति ( मायिनाम् ) मायावी पुरुषों को भी ( अमिनात् ) विनाश करे । (वनेषु) वनों में लगा (उशधग्) अग्नि जिस प्रकार सबको भस्म कर देता है । उसी प्रकार ( उशधग् ) पराये धन के लोभी चोर डाकू आदि को संतप्त या पीड़ित करने में कुशल राजा ( वनेषु ) वनों में स्थित ( व्यंसम् ) अपने पराये धनों के हरने वाले चोर को उसके बाहुएं या कन्धे काट करके ( अहन् ) मारे । और ( राम्याणाम् ) प्रसन्न करने वाले स्तुति पाठकों की ( धेना ) वाणियों को ( आविः अकृणोत् ) प्रकट करे ।

कु॒तस्त्वमि॑न्द्र॒ माहि॑नः॒ सन्नेको॑ यासि सत्पते॒ किन्त॑ऽइ॒त्था ।
सं॒पृ॒च्छसे समरा॒णः शु॑भा॒नैर्वो॒चेस्तन्नो॑ हरिवो॒ यत्ते॑ ऽअ॒स्मे ॥
ऋ० १ । १६५ । ३ ॥

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! हे ( सत्पते ) सज्जनों के पालक ! (त्वम्) तू ( माहिनः ) अति पूज्य और महान् सामर्थ्यवान् होकर ( एकः ) अकेला ( यासि ) प्रयाण करता है, सो ( कुतः ) क्यों किस प्रयोजन से ? ( ते ) तेरा ( इत्था ) इस प्रकार के कार्य करने में ( किम् ) क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार ( समराणः ) ठीक रास्ते पर जाता हुआ तू (शुभानैः) शुभ, मङ्गल-कामना करने वाले हितैषी पुरुषों से (सम्पृच्छसे ) पूछा जावे ।

( नः ) हमें ( तत् ) उस सब कारणों को ( वोचः ) बतला, हे (हरिवः) अश्वों के स्वामिन् ! यत् क्योंकि ( अस्मे ) हम ( ते ) तेरे ही हितैषी हैं।

महाँ२ऽ इन्द्रो य ओजसा० । कुदा चन स्तरीरसि० ॥
कदा चन प्रयुच्छसि ॥ २७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् इन्द्र । ( ओजसा महान् ) तू बल पराक्रम से महान् है । यह मन्त्र प्रतीक देखो ७ । ४० ॥ ( कदाचन स्तरीः असि ) तू कभी प्रजा का नाश नहीं करता । यह मन्त्र प्रतीक देखो ८ । २ (कदा च न प्रयुच्छसि) तू कभी प्रमाद नहीं करता । यह मन्त्र प्रतीक देखो अ० ८ । ३ ॥

आ तत्तऽइन्द्रायवः पनन्ताभि य ऽऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां मुहीꣳ सुहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥ २८ ॥
ऋ० १० । ७४ । ४ ॥

गौरिवीति ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन् ! ( ये ) जो लोग ( ऊर्व ) हिंसक, दुष्ट, ( गोमन्तम् ) भूमि के मालिक को ( तितृत्सान् ) मरना चाहते हैं और जो ( पुरुपुत्राम् ) बहुत से पुत्रों वाली, ( सकृत्स्वम् ) एक ही बार बहुत अन्नादि उत्पन्न करने में समर्थ, ( महीम् ) भूमि को और (सहस्रधाराम् ) सहस्रों को धारण पोषण करने वाली भूमि या सहस्रों धाराओं से वर्षण करने वाली, ( बृहतीम् ) विशाल द्यौ को ( दुदुक्षन् ) गौ के समान दोह लेना चाहते हैं अर्थात् जो उसके ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेने के इच्छुक हैं वे (आयवः) मनुष्य ( ते ) तेरे ( तत् ) उस विजय और प्रजापालन के कार्य की ( पनन्त ) निरन्तर स्तुति करते हैं ।

( ये ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ) जो आंगिरस लोग प्राप्त हुए गौ संघ को मारना चाहते हैं, यह सायणकृत अर्थ असंगत है ।

( ये गोमन्तं उदकवन्तं ऊर्वं अन्नं तितृत्सान् हिंसितुमिच्छन्ति ) जो

पानी वाले अन्न अर्थात् सोम को मारना चाहते हैं। यह अर्थ उव्वट और महीधर का है।

अचार्य पक्ष में—हे इन्द्र ! आचार्य ! ( ये ) जो ( गोमन्तम् ऊर्वम् ) वाणी के स्वामी अर्थात् विद्वान् होकर भी हिंसक या दुष्ट पुरुष हैं उसको जो नाश करना चाहते हैं और बहुत से शिष्य रूप पुत्रों वाली सहस्रों ज्ञानों का धारण और प्रदान करने वाली, बड़ी ( सकृत्स्वं ) एक ही बार समस्त ज्ञान प्रकट करने वाली, ( बृहतीं ) वेद वाणी को दोहना चाहते हैं वे ( ते आपनन्त ) तेरी शरण आते हैं।

इमान्ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त ऽआनजे।
उत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥२९॥

ऋ० १। १०२। १॥

कुत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजन् ! मैं ( महतः ) महान् सामर्थ्य वाले (ते) तेरे लिये ( इमां ) इस ( धियम् ) धारण योग्य कर्म और ज्ञान को ( प्र भरे ) धारण करता हूं। ( अस्य ) इस तेरे सेवक की ( स्तोत्रे ) स्तुति करने में ( यत् धिषणा ) जो बुद्धि या वाणी है वह ( ते आनजे ) तेरे ही महान् सामर्थ्य को प्रकट करती है। ( तम् ) उस ( सासहिम् ) सत्रुओं को पराजय करने में समर्थ ( इन्द्रम् ) राजा या सेनापति को ( देवासः ) वीर विजिगीषु लोग शवसा बल के कारण ( उत्सवे ) उत्सव और ( प्रसवे ) ऐश्वर्य प्राप्ति और उत्तम शासन के कार्य में प्राप्त करके उसके (अनु अमदन्) आनन्द के साथ २ स्वयं भी आनन्दित, हर्षित होते हैं।

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम्।
वातजूतो यो ऽअभि रक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति॥३०॥

ऋ० १०। १७०। १॥

विभ्राड् ऋषिः। सूर्यो देवता।

भा०—( विभ्राट् ) विविध दिशाओं में विशेष रूप से प्रदीप्त, तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार (बृहत्) बड़ा है। वह (सोम्यं मधु) सोम अर्थात् जीवन के हितकारी, मधु अर्थात् जल को किरणों से पान कर लेता है। ( वातजूतः ) वायु से किरणों द्वारा युक्त होकर वह स्वयं समस्त प्रजाओं को पालता और पोषता है और बहुत सी प्रजाओं और लोकों को धारण करता हुआ विविध रूप से प्रकाशित होता है उसी प्रकार ( विराट् ) विशेष तेज से देदीप्यमान तेजस्वी राजा ( बृहत् ) बड़े भारी ( सोम्यम् ) ऐश्वर्य-जनक सोम अर्थात् राजपद के योग्य (मधु) अन्न, ज्ञान और शत्रुनाशक राष्ट्र-स्तम्भक बल और मान को ( पिबतु ) भोग करे और वह ( यज्ञपतौ ) यज्ञ अर्थात् परस्पर सुसंगत व्यवस्था और पूज्य पदों के पालन करने वाले पुरुष में ( अविह्रुतम् ) अखण्डित, सम्पूर्ण ( आयुः दधत् ) दीर्घ जीवन धारण करता हुआ, अथवा ( यज्ञपतिं) राष्ट्रपति के पद पर (अविह्रुतम् आयुः दधत् ) अपने सम्पूर्ण अखण्डित, जीवन को धारण करता हुआ या प्रदान करता हुआ ( यः ) जो ( वातजूतः ) वायु के समान प्रचण्ड वेग वाले बलवान् सेनापति के बल से स्वयं वेगवान्, बलवान् होकर ( त्मना ) अपने सामर्थ्य से ( पुरुधा ) बहुत प्रकारों से ( प्रजाः अभि रक्षति ) प्रजाओं की रक्षा करता है और ( पुपोष ) उनको पुष्ट और समृद्ध करता है वह ( वि राजति ) इस प्रकार स्वयं विशेष रूप से प्रकाशित होता है।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ३१ ॥ ऋ० १ । ५० । १ ॥

भा०—व्याख्या देखो ( ७ । ४१ )

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२॥ अनु।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ३२ ॥ ऋ० १ । ५० । ६ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । गायत्री षड्जः ॥

---

३१—'यज्ञपता अवि०' इति काण्व० ।

भा०—हे ( वरुण ) सब पापों के निवारक! सर्वश्रेष्ठ वरुण! परमेश्वर! राजन्! हे ( पावक ) सूर्य और अग्नि के समान पवित्रकारक, जनों के तीक्ष्ण दण्ड आदि से निष्पापकारक! ( येन ) जिस ( चक्षसा ) दर्शन या प्रकाश से मार्गदर्शक, प्रकाशक ज्ञान ( भुरण्यन्तम् ) सबके पालक पुरुष को ( पश्यसि ) देखता है उसी से ( त्वं ) तू अन्य मनुष्यों को भी ( अनु पश्यसि ) देख, उनको ज्ञान प्रदान कर और मार्ग दिखा। राजा छोटे बड़े सबको एक समान दृष्टि से देखे और एक समान दृष्टि से उन पर शासन करे।

दैव्यावध्वर्यू ऽआ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा ।
मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे ॥

भा०—हे ( दैव्यौ अध्वर्यू ) देवों, विद्वानों और दिव्य गुणों के निमित्त कुशल अध्वर अर्थात् यज्ञ, अहिंसा युक्त राज्यपालन में कुशल दो पदाधिकारी पुरुषो! आप दोनों ( सूर्यत्वचा ) सूर्य के समान चमकने वाले बाह्य आवरण से मढ़े (रथेन) रथ से या तेजस्वी, रक्षा के साधन शस्त्रास्त्र बल और रथारोही सैन्य सहित ( आ गतम् ) आओ। और ( यज्ञम् ) राष्ट्रयज्ञ को ( मध्वा ) अन्न, यश और मधुर भोग्य पदार्थों से (सम् अञ्जाथे) युक्त करो।

तं प्रत्नथा० । अयं वेनः० । चित्रं देवानाम्० ॥ ३३ ॥

भा०—तं प्रत्नथा० यह प्रतीक है। व्याख्या देखो अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेनः०' यह मन्त्र प्रतीक देखो ७।१६ ॥ 'चित्रं देवानाम्०' यह प्रतीक देखो ७ । ४२ ॥

आ न ऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव ऽएतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥३४॥
— ऋ० १ । १८६ । १ ॥

३३—'दैव्या अध्व०' इति काण्व० । 'वेनश्चोदयत्' इति काण्व० ।
३४—इळा० इति काण्व० ।

अगस्त्य ऋषिः । त्रिष्टुप् । सविता देवता । धैवतः ॥

भा०—( विश्वानरः ) सबका नेता, नायक, अग्रणी, सबका स्वामी, ( सविता ) सबका प्रेरक, उत्पादक एवं सूर्य के समान ( देवः ) उत्तम ज्ञान प्रकाशों का दिखलाने हारा, उत्तम पदार्थों का दाता, विद्वान् ( नः ) हमारे ( विदथे ) संग्राम कार्य, एवं ज्ञानमय संगम स्थान में ( सुशस्ति ) उत्तम उपदेश करने वाली ( इडाभिः ) वाणियों सहित ( नः ) हमें (आ एतु) प्राप्त हो। हे ( युवानः) युवा, तरुण, बलवान् पुरुषो ! तुम लोग (अभिपित्वे) अपने आगे आने वाले ( नः ) हमारे ( विश्वं जगत् ) समस्त पुत्र पशु आदि संसार को ( यथा ) जिस प्रकार से (अपि मत्सथाः) आनन्द प्रसन्न एवं भोजन वस्त्रादि से तृप्त करते रहो ऐसी ( मनीषा ) उत्तम बुद्धि से काम करो ।

यद॒द्य कच्च॑ वृत्रहन्नु॒दगा॑ ऽअ॒भि सू॑र्य ।
सर्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ वशे॑ ॥ ३५ ॥ ऋ० ८ । ८३ । ४ ॥

श्रुतकक्षः सुकक्षश्च ऋषि । सूर्यो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( सूर्य ) समस्त ऐश्वर्य के उत्पादक ! हे ( वृत्रहन् ) मेघ के नाशक, सूर्य के समान विघ्नकारी शत्रुओं के नाशक ! तू ( अभि उद् अगाः ) सब प्रकार से, सबके समक्ष उदय को प्राप्त हो, उन्नत पद पा। ( अद्य ) आज दिन ( यत् यत् ) जो कुछ भी है ( तत् सर्वम् ) वह सब हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( ते वशे ) तेरे ही वश में है ।

त॒रणि॑र्वि॒श्वद॑र्शतो ज्योति॒ष्कृद॑सि सूर्य ।
विश्व॒मा भा॑सि रोच॒नम् ॥ ३६ ॥ ऋ० १ । ५० । ४ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—तू ( तरणिः ) सब कष्टों से पार तराने वाला ( विश्वदर्शतः ) सबसे दर्शन करने योग्य है । ( ज्योतिःकृत् ) तू समस्त सूर्यादि तेजस्वी लोकों को बनाने वाला है । हे ( सूर्य ) समस्त जगत् के प्रेरक और सञ्चालक !

तू ( रोचनम् ) तेजस्वी, दीप्तिमान् ( विश्वम् ) समस्त संसार को ( आ-भासि ) प्रकाशित करता है।

इसी प्रकार हे सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ! तू प्रजाजनों को पार लगाने वाला होने से 'तरणि' है, तू सबमें दर्शनीय है, तू ज्योति अर्थात् ज्ञान प्रकाश का करने वाला है, समस्त रुचिकर पदार्थों का प्रकट करने वाला है।

तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्वितत्ꣳ सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ३७ ॥

ऋ० १। ११५। ४॥

[ ३७, ३८ ] कुत्स ऋषिः। सूर्यो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—( सूर्यस्य ) सूर्य सब के प्रेरक सञ्चालक और उत्पादक परमेश्वर का ( तत् देवत्वम् ) यही अवर्णनीय 'देवत्व' अर्थात् सर्व शक्तिप्रद स्वरूप है और ( तत् ) वही अलौकिक ( महित्वम् ) महान् सामर्थ्य है कि वह ( विततं ) इस नाना प्रकारों से बने, फैले विस्तृत संसार को (कर्त्तोः) बनाने में समर्थ है और वही ( मध्या ) बीच में व्यापक है और वही ( सं जभार ) इसका संहार करता है। ( यदा इत् ) जब भी वह (सधस्थात्) एकत्र होने के केन्द्र स्थान से (हरितः) अपनी तीव्र गतिदायिनी शक्तियों को और विस्तृत दिशाओं को भी, समस्त किरणों को सूर्य के समान ( अयुक्त ) एकत्र कर लेता है ( आत् ) तभी ( रात्री ) रात्रि के समान ही प्रलयकाल की रात्रि ( सिमस्मै ) इस समस्त ब्रह्माण्ड के ऊपर ( वासः तनुते ) आवरण सा छा देती है।

राजा के पक्ष में—सूर्य के समान तेजस्वी राजा का यही देवत्व और महत्व है कि वह ( मध्या ) समस्त राष्ट्र के बीच में रहकर विस्तृत राष्ट्र को बनाने और बिगाड़ने में समर्थ है। वह जब एक ही मुख्य पद से समस्त (हरितः) दिशाओं अर्थात् देशों को या समस्त विद्वानों और वीर पुरुषों को (अयुक्त) रथ में अश्वों के समान, राष्ट्र के कार्य में नियुक्त करता है तभी ( रात्री )

सबको आनन्द सुख देने वाली राज्य-व्यवस्था सबके लिये वस्त्र के समान गर्मी, सर्दी, दुःख, पीड़ा विपत् से बचाने वाली होकर रक्षा प्रदान करती है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ ३८ ॥

ऋ० १ । ११५ । ५ ॥

भा०—( सूर्यः ) सूर्य जिस प्रकार ( द्योः उपस्थे ) आकाश के बीच में रहकर ( मित्रस्य ) वायु और ( वरुणस्य ) जल के ( तत् रूपं कृणुते ) उस रूप प्रकट करता है जिसे ( अभिचक्षे ) समस्त जगत् का प्राणी देखता है। इसी प्रकार ( सूर्यः ) सबका प्रेरक, उत्पादक परमेश्वर भी ( द्योः ) प्रकाशमय, ज्ञानमय स्वरूप में ( उपस्थे ) विद्यमान रह कर ( मित्रस्य वरुणस्य ) मित्र और वरुण, सब में विद्यमान प्राण और उदान इन दोनों का ऐसा ( रूपं कृणुते ) रुचिकर स्वरूप उत्पन्न करता है ( अभिचक्षे ) जिसे यह मनुष्य भी देखता है। अथवा—[ मित्रम् अहः वरुणो रात्रिः ] मित्र अर्थात् दिन और वरुण अर्थात् रात्रि इन दोनों का ऐसा रूप उत्पन्न करता है जिन से यह जन या वह स्वयं सबको देखता है। (अस्य) इसका भी (रुशत्) तेजो युक्त सूर्य के समान ( अनन्तम् ) अनन्त (पाजः) बल, सामर्थ्य (अन्यत्) एक प्रकार का है। और (अन्यत् कृष्णम्) दूसरा, एक और सामर्थ्य 'कृष्ण' अर्थात् काला है। अर्थात् सूर्य के जिस प्रकार दो सामर्थ्य है एक चमकने वाला, दिन करने वाला दूसरा कृष्ण, काला, रात्रि करने वाला, उसी प्रकार परमेश्वर के दो सामर्थ्य हैं एक ( रुशत् पाजः ) तेजो युक्त अर्थात् सबको प्रकाशमय, चेतनामय करने वाला उत्पादक सामर्थ्य और दूसरा 'कृष्ण' सब संसार को 'कर्षण' करने वाला या कृन्तन, विनाश करने वाला, प्रलयकारी बल है जिस प्रकार सूर्य के दोनों प्रकार के सामर्थ्यों को ( हरितः ) दिशाएं धारण करती हैं उसी प्रकार इस परमेश्वर के भी दोनों सामर्थ्यों को ( हरितः ) अतिवेग वाली

शक्तियां (संभरन्ति) भरण पोषण करती हैं और वे ही (संभरन्ति) संहार करती हैं।

अध्यात्म में—सूर्य सब का प्रेरक आत्मा (द्योः उपस्थे) सर्व प्रकाशमय चेतनामय मस्तक के बीच रहकर मित्र-प्राण और वरुण-अपान दोनों का ऐसा रूप करता है कि यह देह देखता है। इसका अनन्त सामर्थ्य एक (रुशत्) रोचक है जो इस को सात्विक कर्म कराता है, चेतन रखता है। दूसरा 'कृष्ण' तामस बल है जो समस्त प्राणों को कर्षण करता है जिसको (हरितः) इन्द्रियें धारण करती हैं। [२] इसी प्रकार राष्ट्र में सूर्य के समान तेजस्वी राजा मित्र और वरुण के रूप धारण करता है, अर्थात् वह सज्जनों पर अनुग्रह और दुष्टों पर निग्रह करने वाले दो विभाग करता है। एक उसका तेजस्वी रूप है, दूसरा 'कृष्ण' अर्थात्, भयानक, शत्रु नाशकारी बल है। जिसे संहारकारी वीर सेनाएं और प्रजाएं धारण करती हैं।

**बण्महाँ२॥ असि सूर्य्य बडादित्य महाँ२॥ असि।**
**महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२ऽ असि॥ ३६॥**

ऋ० ८। ६०। ११॥

[ ३९, ४० ] जमदग्निः ऋषिः। सूर्यो देवता। सतो बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे (सूर्य) सबके प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्विन्! तू (बट्) सच मुच (महान् असि) महान् है। हे (आदित्य) सबको अपने में ग्रहण करने हारे तू (बट्) सचमुच (महान् असि) महान् है। (सतः) सत्, नित्य, सबके कारण रूप में विद्यमान तेरा (महः महिमा) महान् सामर्थ्य (पनस्यते) कहा जाता है (अद्धा) सचमुच हे (देव) देव! तू सचमुच (महान् असि) महान् है। सब पक्षों में समान है।

**बट् सूर्य्य श्रवसा महाँ२ऽ असि सत्रा देव महाँ२ऽ असि।**
**मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥ ४०॥**

ऋ० ८। ६०। १२॥

भा०—हे ( सूर्य ) सूर्य के समान तेजस्विन्! सर्व प्रेरक प्रभो! राजन्! ( श्रवसा ) श्रवण करने योग्य, ऐश्वर्य, ज्ञान और यश से तू ( बट् ) सचमुच ( महान् असि ) महान् है। हे ( देव ) सबके प्रकाशक हे सर्वत्र दानशील कान्तिमय! तू ( सत्रा ) सत्य ही अथवा सत्य के द्वारा ( महान् असि ) महान् है। ( मह्ना ) अपने महान् सामर्थ्य से ( देवानाम् ) समस्त दानशील पुरुषों या पृथिव्यादि लोकों के बीच, सूर्य के समान ( असुर्यः ) प्राणियों का हितकारी है। तू ( पुरोहितः ) दीपक के समान विवेक से मार्ग चलने के लिये ( पुरः हितः ) आगे के मुख्य अग्रणी पद पर स्थापित किया जाता है। तू ( विभु ) विविध सामर्थ्यों से युक्त ( अदाभ्यम् ) अविनाशी ( ज्योतिः ) ज्योति, आनन्दमय, तेज स्वरूप है।

**श्रायन्त ऽइव सूर्य्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।**
**वसूनि जाते जनमान ऽओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ४१ ॥**

ऋ० ८। ८८। ३॥

नृमेध ऋषिः। सूर्यो देवता। बृहती छन्दः। मध्यमः॥

भा०—हे मनुष्यो! तुम लोग ( सूर्यम् ) सबके प्रेरक सर्वोत्पादक परमेश्वर का ( श्रायन्तः इव ) आश्रय लेते हुए ही ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् आत्मा के ( विश्वा वसूनि ) समस्त देह में बसने से प्राप्त करने योग्य आनन्दों का ( भक्षत ) भोग करो। हम लोग ( जाते ) उत्पन्न हुए और ( जनमाने ) आगे उत्पन्न होने वाले संसार में जिस प्रकार ( भागं न ) अपने कमाये धन को प्रदान करते हैं उसी प्रकार ( ओजसा ) बल पराक्रम से कमाए हुए ( भागं ) सेवन करने योग्य कर्म-फल को ( जाते जनमाने ) अबतक उत्पन्न और आगे उत्पन्न होने जाले जन्म या देह में ( दीधिम ) धारण करते हैं, प्राप्त करते हैं।

राजा के पक्ष में—सूर्य के समान तेजस्वी राजा का आश्रय लेकर ही

हम ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के धनों का भोग करें और उत्पन्न और आगे होने वाले प्रजा आदिक में अपने पराक्रम से कमाये सेवनीय पदार्थ को प्रदान करे।

**अद्या देवा उदिता सूर्य्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।**
**तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥४२॥**

कुत्स ऋषिः। सूर्यो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (देवाः) सब अर्थों के प्रकाश करने वाले, प्रिय, विद्वान् पुरुषो! आप (सूर्यस्य) सूर्य के उदय हो जाने पर जिस प्रकार किरणें अन्धकार को दूर कर देती हैं उसी प्रकार आप लोग (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्म ज्ञान के हृदय में उदित हो जाने पर और राष्ट्र में तेजस्वी राजा के उदय हो जाने पर आप लोग हमें (अंहसः) पाप से और (अवद्यात्) कहे जाने के अयोग्य, निन्दनीय कर्म से भी (पिपृत) बचावें। पापों से पृथक् करें। और (मित्रः) सबका स्नेही न्यायाधीश, (वरुणः) दुष्टों का वारक, सर्वश्रेष्ठ, (अदितिः) अखण्ड शासनाज्ञा वाला, (सिन्धुः) नदी के समान वेगवान्, बलवान् अथवा, राष्ट्र को बांधने वाला, प्रबन्धक (पृथिवि) पृथिवी के समान सर्वाश्रय, उत (द्यौः) आकाश के समान विशाल पुरुष (नः) हमारे (तत्) उस संकल्प को (मामहन्ताम्) सत्कार करे।

भौतिक पक्ष में—सूर्य के उदय होने पर (देवाः) सूर्य की किरणें हमें बुरे कर्म (अंहसः) पाप और रोग से दूर करें। हम स्वच्छ नीरोग, शुभ संकल्पवान् हों (मित्रः) सूर्य, (वरुणः) जल, (अदितिः) आकाश, (सिन्धुः) सागर या विशाल जल प्रवाह, (पृथिवी) पृथिवी और (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (नः तत् मामहन्ताम्) हमारे इस शरीर को उत्तम बनावे।

**आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।**
**हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥४३॥**

ऋ० १। ३५। २॥

हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य ( कृष्णेन रजसा ) परस्पर आकर्षण करने वाले लोक समूह के साथ सर्वत्र भ्रमण करता हुआ मर्त्य, नाशवान् प्राणियों और अनाशवान् भौतिक तत्वों को अपने २ स्थान पर स्थिर करता है और ( हिरण्ययेन रथेन ) तेजस्वी स्वरूप से सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ जाता है उसी प्रकार ( कृष्णेन ) शत्रुओं को काट गिरा देने वाले ( रजसा ) सैन्य-बल से ( आवर्त्तमानः ) सर्वत्र विद्यमान रहता हुआ ( सविता ) सबका शासक राजा ( अमृतम् ) अमृत, अखण्ड, अविनाश्य स्थिर पदार्थों को और ( मर्त्यं च ) मरने वाले सामान्य जनों को ( निवेशयन् ) यथा स्थान स्थापित करता हुआ ( देवः ) विजिगीषु राजा ( हिरण्ययेन ) स्वर्ण या लोह के बने ( रथेन ) रथ से अथवा धनैश्वर्यादि रमणसाधन रथ आदि से ( भुवनानि ) समस्त प्राणियों को ( पश्यन् ) देखता, उनका निरीक्षण करता हुआ ( याति ) प्रयाण करे ।

**प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट ऽइयाते ।**
**विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ ४४ ॥**

ऋ० ७ । ३९ २ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । वायुः पूषा च देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( सुप्रयाः वायुः ) जिस प्रकार उत्तम वेग से चलने वाला वायु ( एषाम् ) इन लोकों में से ( बर्हिः ) जल को ( प्र वावृजे ) उत्तम रीति से ले लेता है और जैसे ( पूषा ) सबका पोषक सूर्य ( एषाम् ) इन लोकों में से ( बर्हिः प्र वावृजे ) किरणों द्वारा जल के अंश को पृथक् कर लेता है। अथवा ( सुप्रयाः वायुः यथा बर्हिः प्र वावृजे ) उत्तम वेग से चलने वाला वायु जिस प्रकार अन्न को भली प्रकार तुषों से पृथक् कर देता है उसी प्रकार यह राजा ( वायुः ) वायु के समान प्रचण्ड वेग से जाने वाला, एवं प्रजा का प्राणस्वरूप, ( सुप्रयाः ) उत्तम अन्न

आदि सामग्री से सम्पन्न अथवा ( सुप्रयाः ) उत्तम रीति से प्रयाण करने वाला बलवान् होकर ( एषाम् ) इन मनुष्यों में से ( बर्हिः ) प्रबल जन संघ को ( प्र वावृंजे ) पृथक् कर लेता है। इसी प्रकार ( पूषा ) सर्व पोषक पूषा, भागदुघ् नामक अधिकारी भी ( एषाम् ) इन प्रजा जनों के ( बर्हिः ) वृद्धिकर अन्न का उत्तम रीति से संग्रह करता है। और जिस प्रकार ( वायुः पूषा ) वायु और सूर्य दोनों ( विरिटे इयाते ) अन्तरिक्ष मार्ग से जाते हैं उसी प्रकार ये दोनों भी ( विश्पती इव ) प्रजा जनों के पालक राजा और पोषक होकर ( विरिटे ) भयभीत शत्रु पर और अधीन प्रजा के बीच ( नियुत्वान् ) अश्वारोहिगण से युक्त होकर ( इयाते ) गमन करते हैं। और ( अक्तोः ) रात्रि के और ( उषसः ) दिन के ( पूर्वहूतौ ) पूर्व ही बुलाये वायु और सूर्य के समान वे दोनों ( विशां स्वस्तये ) प्रजाओं के कल्याण के लिये होते हैं।

इन्द्र॒वा॒यू बृह॒स्पतिं॑ मि॒त्राग्निं पू॒षणं॒ भग॑म्।
आ॒दि॒त्यान्मारु॑तं ग॒णम् ॥ ४५ ॥ ऋ० १ । १४ । ३ ॥

[ ४५, ४६ ] मेधातिथि ऋंषिः । विश्वेदेवाः देवताः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( इन्द्र वायू ) विद्युत्, वायु, ( बृहस्पतिम् ) बड़े लोकों के पालक सूर्य, ( मित्राग्निम् ) मित्र, प्राण और अग्नि, ( पूषणम् भगम् ) पुष्टिकारक, अन्न और सेवन योग्य ऐश्वर्य ( आदित्यान् ) सूर्य की किरणों या १२ मासों और ( मरुतां गणम् ) वायुओं के समूह का ज्ञान करके उत्तम उपयोग करो।

राष्ट्र-पक्ष में—( वायू ) इन्द्र राजा, वायु के समान प्रचण्ड सेनापति, (बृहस्पतिं) विद्वान् पुरुष ( मित्राग्निम् ) सर्वस्नेही न्यायकारी, अग्नि, अग्रणी नेता, (पूषणं) पोषक, पृथ्वी या भागदुघ्, (भगं) ऐश्वर्यवान् (आदित्यान्) आदान प्रतिदान करने वाले वैश्यगण, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष,

( मारुतं गणम् ) मनुष्यों के गण इन सबको अपने २ पद पर नियुक्त करो। जैसे अगले मन्त्र में स्पष्ट किया है।

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥ ४६ ॥ ऋ० १ । २३ । ६ ॥

भा०—( वरुणः ) सब दुष्ट पुरुषों का निवारण करने हारा, एवं प्रजा द्वारा वरण करने योग्य मुख्य पदाधिकारी और ( मित्रः ) प्रजा को मरने से बचाने हारा, सबका स्नेही पदाधिकारी पुरुष ये दोनों शरीर में उदान और प्राण के समान ( विश्वाभिः ऊतिभिः ) अपने समस्त रक्षा के कार्यों से ( प्र-अविता ) उत्तम रक्षक ( भुवत् ) हों और ( नः ) हमें ( सुराधसः ) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त ( करताम् ) करें।

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् ।
इता मरुतो अश्विना । ऋ० ८ । ७२ । ७ ॥

कुसीदिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे ( विष्णो ) व्यापक शक्ति वाले ! हे ( मरुतः ) शत्रु के मारने हारे वीर भटो ! हे ( अश्विना ) विद्याओं में पारंगत राष्ट्र में व्यापक अधिकार के स्वामियो ! आप सब यथाधिकार (नः) हमारे और ( एषां ) इन ( सजात्यानाम् ) हमारे ही समान धन, मान और कुल में प्रसिद्ध पुरुषों के बीच में ( अधि ) अधिकारी रूप से ( इत ) मान प्रतिष्ठा को प्राप्त करो।

तम्प्रत्नथा० । अयं वेनः० । ये देवासः० । आ न इडाभिः० । विश्वेभिः सोम्यं मधु० । ओमासश्चर्षणीधृतः० ॥ ४७ ॥

भा०—ये सब प्रतीक मात्र हैं। 'तम् प्रत्नथा' अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेनः' ० ७ । १६ ॥ 'ये देवासः' ० ७ । १९ ॥ 'आ न इडाभिः' ०

---

४७—अयं वेनश्चोदयत्पृश्नि० । आन इळाभि० इति काण्व० ।

३२ । ३४ ॥ 'विश्वेभिः सोम्यं मधु'० ३३ । १० ॥ 'ओमासश्चर्षणीधृतः'० ७ । ३३ ॥ इनकी व्याख्या वहीं देखो ।

**अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्द्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो ऽअध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥४८॥**

ऋ० ५ । ४६ । २ ॥

प्रतिक्षत्र ऋषिः । इन्द्रादयो विश्वेदेवाः देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी ज्ञानवन्! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! हे ( वरुण ) सर्वश्रेष्ठ! हे ( मित्र ) सर्वस्नेहिन्! हे ( मारुत ) मनुष्यों शत्रुहन्ता लोगों के समूह! हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले! ( देवाः ) आप सब देव, विद्वान्गण बल और ज्ञान देने हारे आप ( शर्द्धः ) शरीर और आत्मा के बल का ( प्रयन्त ) प्रदान करो। ( उभा नासत्या ) कभी असत्य का व्यवहार न करने वाले दोनों ( रुद्रः ) दुष्टों को रुलाने वाला या ज्ञानों का उपदेष्टा, और ( ग्नाः ) गमन योग्य स्त्रियें और ज्ञान करने योग्य वाणियें, ( भगः ) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष, ( सरस्वती ) उत्तम ज्ञान वाली स्त्री या राजसभा, ये सब ( जुषन्त ) प्रेम से राष्ट्र का सेवन करें। प्रेम से वर्त्ताव करें।

**इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिꣳ स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ२ऽ अपः। हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शꣳसꣳ सवितारमूतये ॥ ४९ ॥** ऋ० ५ । ४६ । ३ ॥

वत्सार ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः । जगती । मध्यमः ॥

भा०—मैं ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि, (मित्रा वरुणा ) मित्र और वरुण, ( अदितिम् ) अदिति, अखण्ड शासन करनेवाली राजसभा या अन्तरिक्ष, ( स्वः ) शत्रुओं का तापकारी, ज्ञानोपदेष्टा और सुखकारी, आकाश, ( पृथिवीम् ) पृथिवी, भूमि ( द्याम् ) सूर्य, ( मरुतः ) वायुएं और मरुद्गण, ( पर्वतान् ) पर्वतों, मेघों और पालनसामर्थ्य से युक्त

स्थिर राज्य कर्त्ताजन, ( अपः ) जलों, और आप्त पुरुषगण, ( विष्णुं ) व्यापक सामर्थ्यवान्, ( पूषणम् ) पुष्टिकारक अन्न, पशु आदि या भागदुध्, ( ब्रह्मणस्पतिम् ) ब्रह्माण्ड और वेद के पालक परमेश्वर और आचार्य ( भगम् ) ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवान् धनकुबेर, ( शंसम् ) स्तुति योग्य या विद्योपदेशक, ( सवितारम् ) उत्पादक, पिता या आचार्य को मैं ( ऊतये ) रक्षा, ज्ञान, प्रियाचरण, आदि विविध प्रयोजनों को पूर्ण करने के लिये ( हुवे ) स्तुति करूं, उनको प्राप्त करूं, उनका अन्यों को उपदेश करूं।

**अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः। यः शंसते स्तुवते धायि पज्र ऽइन्द्रज्येष्ठा ऽअस्माँ२ऽअवन्तु देवाः ॥५०॥**

ऋ० ८। ५२। १२॥

प्रगाथ ऋषिः। रुद्रो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( अस्मे ) हममें से ( यः ) जो ( शंसते ) उत्तम २ उपदेश करता, ( स्तुवते ) और परमेश्वर की स्तुति करता है एवं ज्ञान से सत्य गुणों का वर्णन करता है। और ( यः पज्रः ) जो धनादि ऐश्वर्यों को कमाने हारा, ऐश्वर्यवान् पुरुष (धायि) नाना प्रजाओं को धारण पोषण करता है। उसको अथवा वह ( रुद्राः ) उपदेश करने वाले विद्वान् और शत्रुओं को रुलाने वाले वीर गण, ( मेहनाः ) प्रजाओं पर मेघों के समान सुख समृद्धियों के वर्षण करने वाले ( पर्वतासः ) पोरू २ अर्थात् नाना टुकड़ियों से बने सेनादल, अथवा पर्वतों के समान अभेद्य और अलंघनीय गंभीर, अथवा मेघों के समान शत्रुओं पर बाण वर्षण करने वाले, अथवा पर्वतों पर यज्ञ, उत्सवों वाले ( सजोषाः ) परस्पर समान प्रीति से युक्त, ( इन्द्र, ज्येष्ठाः ) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् पुरुष को अपना सर्वोपरि श्रेष्ठ स्वामी स्वीकार करने वाले अपने नायक के अधीन रहकर ( देवाः ) विजय के इच्छु सैनिक गण और विद्वान् पुरुष ( भरहूतौ ) संग्राम के लिये आह्वान या ललकार आ जाने पर ( अस्मान् ) हम प्रजाजनों की (अवन्तु) रक्षा करें।

अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा ऽआ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः ॥५१॥

ऋ० २।२९।६॥

कूर्मो गार्त्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( यजत्राः ) अभय दान करने और राष्ट्रों को सुसंगत करने वाले वीर, युद्ध-यज्ञ के सम्पादक एवं पूज्य, सत्संग योग्य पुरुषो ! ( अद्य ) आज आप लोग ( अर्वाञ्चः ) हमारे सन्मुख, हमें प्राप्त ( भवत ) होवो । ( वः ) आप लोगों के ( हार्दि ) हृदय में स्थित भीतरी भाव को ( आ विअयेयम् ) भली प्रकार जानूं । मैं प्रजाजन ( भयमानः ) शत्रुगण से भय करता हुआ आपकी शरण हूं । हे ( देवाः ) विजयशील विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( नः ) हमें ( निजुरः ) सब प्रकार सर्वथा विनाश करने वाले, ( वृकस्य ) हमारा सर्वस्व अपहरण करने वाले चोर, डाकू तथा भेड़िये के समान क्रूर पुरुषों और जीवों से भी ( त्राध्वम् ) हमारी रक्षा करो । और हे ( यजत्राः ) सुसंगत, संघ बना कर रहने वाले सेनाजनो! आप लोग ( अवपदः ) गढ़े के समान गिरने के स्थान, संकट और विपत्ति रूप गहरे ( कर्त्तात् ) गड़े से, अथवा ( अवपदः कर्त्तात् ) विपत्ति के जनक पुरुष से अथवा राष्ट्र को नीचे गिरा देने वाले हिंसा कार्य, शस्त्रादि वध से ( त्राध्वम् ) रक्षा करो ।

वृकः—वृक आदाने । भ्वादिः । श्वापि वृक उच्यते विकर्त्तनात् । निरु० ५।४।२॥ 'अवपदः कर्त्तात् ।'—यत्र अवपद्यन्ते पतन्ति ततः कर्त्तात् कूपात् इति उवटमहीधरदयानन्दाः । विपदः कर्त्तुरिति सायणः । हिंसार्थस्य वा करोतेः कर्तस्तस्मात् । अथवा गर्त्तो वा कर्त्तः । कत्वं छान्दसम् ।

विश्वे ऽअद्य मरुतो विश्व ऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा ऽअवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥५२॥

लुशोधानाक ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—व्याख्या देखो । अ० १८ । ३१ ॥

विश्वे॑ दे॒वाः शृ॒णु॒तेम॑ꣳ हवं॑ मे॒ ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ य ऽउप॒ द्यवि॒ ष्ठ । ये अ॑ग्निजि॒ह्वा ऽउ॒त वा॒ यज॑त्रा ऽआ॒सद्या॒स्मिन् ब॒र्हिषि॑ मादयध्वम् ।५३।

ऋ० ६ । ५२ । १३ ॥

सुहोत्र ऋषिः। विश्वेदेवाः देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ( विश्वेदेवाः ) समस्त विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( मे ) मेरे ( इमं ) इस ( हवम् ) स्तुति, आह्वान या विद्योपदेश का ( शृणुत ) श्रवण करो। ( ये ) जो आप लोग ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष के समान सबके पालक और ( द्यवि ) सूर्य के समान सर्वप्रकाशक पद पर ( उपस्थ ) सदा हमारे समीप विद्यमान रहते हो ( उतवा ) और जो ( अग्निजिह्वा ) जिह्वा के समान अग्नि अर्थात् ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को मुख्य पद या उपदेशक और ज्ञानप्रद गुरु पद पर स्थापन करने वाले ( यजत्राः ) परस्पर सत्संग करने एवं पूजा करने योग्य हैं वे आप लोग भी ( अस्मिन् बर्हिषि ) इस महान् आसन के समान उत्तम राष्ट्र, प्रजा या पदासनों पर ( आसद्य ) विराज कर ( मादयध्वम् ) समस्त प्रजाओं को आनन्द और हर्षयुक्त करो।

दे॒वेभ्यो॒ हि प्र॑थ॒मं य॒ज्ञिये॑भ्योऽमृत॒त्वꣳ सु॒वसि॑ भा॒गमु॑त्त॒मम् । आदिद्दा॒मान॑ꣳ सवित॒र्व्यूर्णु॑षेऽनूची॒ना जी॑वि॒ता मानु॑षेभ्यः ॥५४॥

ऋ० ४ । ५४ । २ ॥

वामदेव ऋषिः। सविता देवता। जगती। मध्यमः॥

भा०—हे ( सवितः ) सूर्य के समान समस्त पदार्थों के प्रकाशक और उत्पादक परमेश्वर ! तू ( हि ) जिस कारण ( यज्ञियेभ्यः ) आत्मा और परमात्मा के उपासक एवं ज्ञान यज्ञ के करने वाले ( देवेभ्यः ) ज्ञान के द्रष्टा पुरुषों को ( प्रथमम् ) सबसे प्रथम, सर्वश्रेष्ठ और ( उत्तमम् )

---

५४—इति समाप्तं सार्वमेधिकम्। इत वैश्वदेवस्तुत चतुर्थमहः ।

उत्तम ( भागम् ) सेवन करने योग्य ( अमृतत्वम् ) अमृतस्वरूप मोक्ष का ( सुवसि ) प्रदान करता है ( आत् ) और ( दामानम् इत् ) सब सुखों और ज्ञानों के देने वाले अपने प्रकाशस्वरूप को भी ( व्यूर्णुपे ) विविध प्रकार से फैलाता है। इसीसे ( मानुपेभ्यः ) मनुष्यों को हितार्थ (अनूचीना) उनके अनुकूल सुख प्राप्त कराने वाले ( जीवितानि ) जीवनों और जीवनों के उत्पादक कर्मों को भी (वि ऊर्णुपे ) विविध प्रकार से प्रकट करता है, उपदेश करता है।

राजा के पक्ष में—हे तेजस्विन् ! राजन् ! तू ( यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः ) प्रजा के सुव्यवस्थित राष्ट्र के सञ्चालक एवं विजयी स्त्री पुरुषों को प्रथम ( अमृतत्वम् ) जीवनोपयोगी अन्न जल और उत्तम सेवन योग्य पदार्थ प्रदान करता है और दानशील पुरुष को प्रकट करता है। और मनुष्यों को नाना अनुकूल जीवनोपयोगी साधन भी प्रदान करता है।

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारथं रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥५५॥

ऋ० ६ । ४९ । ४ ॥

[ ५५—अ० ३४ । ५८ ] आदित्यो याज्ञवल्क्यश्चऋषी । अनारभ्याधीतमन्त्रा ॥ महायज्ञार्हाः । तत्र 'प्रवायुम्' इति ऋजिष्वा ऋषिः । वायु देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( प्रयज्यो ) उत्तम रीति से यज्ञ करने हारे, उत्तम उपापक एवं उत्तम संगति, परस्पर संगठन करने में कुशल विद्वन् ! तू (नियुतः) निश्चित, नियुक्त पुरुषों अथवा निश्चित पदार्थों को प्राप्त होकर ( बृहती ) बड़ी भारी ( मनीषा ) प्रज्ञा, बुद्धिबल या मानस प्रेरणा से स्वयं (कविः) क्रान्तदर्शी होकर ( बृहद्रयिम् ) महान् ऐश्वर्यों के स्वामी, ( विश्ववारम् ) सबके वरण करने वाले, सबके रक्षक, ( रथप्राम् ) रथों से रणाङ्गण को भर देने वाले, ( द्युतद्यामा ) तेजस्वी अग्नि को प्राप्त कर उसको और भी

५५—इत आरभ्य ६९ अदब्धेभिरित्यन्तं पुरोरुचः ॥

अधिक तेजस्वी बनाने वाले, (वायुम्) वायु के समान तीव्र, वेगवान्, बल-शाली (कविम्) क्रान्तदर्शी, मेधावी, विद्वान् (वायुम्) प्राणवायु के समान सबके जीवनाधार पुरुष का (इयक्षसि) आदर कर और उससे संगति लाभ कर।

अथवा (द्युतद्-यामा कविम् कवि-इयक्षसि) समस्त याम अर्थात् आठों पहरों को प्रकाशित करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का तू विद्वान् पुरुष ही आदर कर। अथवा, तू (द्युतद्-यामा) देदीप्यमान तेजस्वी विद्वान् पुरुष को प्राप्त होकर स्वयं (कविः कविम् इयक्षसि) मेधावी होकर विद्वान् पुरुष का आदर करें।

परमेश्वर के पक्ष में—सबका जीवनाधार होने से परमेश्वर 'वायु' है। महान् ऐश्वर्यवान् होने से 'बृहद्रयि' है, सबका रक्षक होने से 'विश्ववार' है। उसकी नियमव्यवस्था सर्वत्र प्रकाशित होने से 'द्युतद्-यामा' है। रमणसाधन, परम आनन्द रस से पूर्ण करने हारा होने से 'रथप्रा' है, क्रान्तदर्शी होने से 'कवि' है। उस परमेश्वर को (नियुतः पत्यमानः) प्राणों द्वारा ऐश्वर्य-वान् होकर तू साधक (इयक्षसि) उसकी उपासना करे।

आचार्यपक्ष में—आचार्य, ज्ञानवान् होने से वायु, बृहती वेद वाणी के ऐश्वर्य से युक्त होने से 'बृहद्रयि' ज्ञानरस से शिष्य को पूर्ण करने वाला होने से 'रथप्रा' है। प्रकाशमान ज्ञान का प्राप्त करने हारा होने से 'द्युतद्-यामा' है उसको विद्वान् पुरुष निश्चितसिद्धान्त तत्वों को प्राप्त होता हुआ अपने विद्वान् गुरु का विद्वान् पुरुष सदा आदर सत्कार करे।

अथवा—(वायुम्) वायु के समान सबके जीवनाधार (बृहद्-रयिम्) बड़े ऐश्वर्यवान्, (विश्ववारम्) सबसे वरण करने योग्य या सब कष्टों के निवारक (रथप्राम्) रथ को धनों, ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारे वीर पुरुष को (बृहती मनीषा) बड़ी मानसिक शक्ति, बुद्धि (अच्छ) प्राप्त हो। और हे (प्रयज्यो) उत्तम पूजनीय पुरुष! वह (द्युतद्यामा) अति

उज्वल मान वाला होकर ( नियुतः पत्यमानः ) समस्त नियुक्त अधीन पुरुषों और अश्वों को वश कर उनका स्वामी एवं ( कविः ) विद्वान् होकर भी ( कविम् ) कान्तदर्शी विद्वान् पुरुष का ( इयक्षसि ) सत्कार करे ।

इन्द्र॑वायू॒ऽइ॒मे सु॒ता ऽउप॒ प्रयो॑भि॒रा ग॑तम् ।
इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि ॥ ५६ ॥

भा०—व्याख्या देखो । अ० ७ । ८ ॥

मि॒त्रꣳ हु॑वे पू॒तद॑क्षं॒ वरु॑णं च रि॒शाद॑सम् ।
धियं॑ घृ॒ताचीꣳ॒ साध॑न्ता ॥ ५७ ॥ ऋ० १ । २ । ७ ॥

भा०—मैं प्रजाजन ( पूतदक्षं ) पवित्र ज्ञान और बल से युक्त ( मित्रम् ) सुहृद्, स्नेही पुरुष को और (रिशादसम्) हिंसा करने वाले शत्रुओं को भी दण्ड देने वाले उनके विनाश, ( वरुणं च ) सर्वश्रेष्ठ धार्मिक राजा को ( हुवे ) स्वीकार करूं । और वे दोनों ( घृताचीम् ) घृत को ग्रहण करने वाली अतितीक्ष्ण अग्निज्वाला के समान पाप दहन करने वाली उग्र शक्ति तथा शीतल जल को धारण करने वाली रात्रि के समान सबको सुख देने वाली शान्तिकारिणी शक्ति को ( साधन्ता ) साधन करने वाले हों । जिस प्रकार प्राण, उदान शुद्ध प्रज्ञा को उत्पन्न करते हैं और जिस प्रकार सूर्य चन्द्र सुखद रात्रि को साधते हैं उसी प्रकार मित्र और वरुण, सुहृद् वर्ग वयस्य और शक्तिशाली पुरुष स्नेह और तीक्ष्णता मधुर और तेजस्विनी वृत्ति वाली राजशक्ति की वृद्धि करें ।

दस्रा॑ यु॒वाक॑वः सु॒ता नास॑त्या वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
आया॑तꣳ रुद्रवर्त्तनी ॥ ५८ ॥ ऋ० १ । ३ । ३ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । अश्विनौ देवते । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (दस्रौ) वैद्य जिस प्रकार रोगों का नाश करते हैं उसी प्रकार

५६—क्वचित् पुस्तकेषु "उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि वा॒यव॑ इन्द्रवा॒युभ्यां॑ त्वा । ए॒ष ते॒ योनि॑ः स॒जोषो॑भ्यां त्वा ।" इत्यधिकं पठ्यते ॥

राज्य की प्रजाओं के दुःखों के विनाश करने वाले (नासत्यौ) कभी असत्य भाषण और असत्य आचरण न करने वाले पूर्वोक्त दोनों विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों ( रुद्रवर्त्तनी ) शत्रुओं के रुलाने वाले या न्यायाधीश के वीर सैनिकों के मार्गों से चलने में समर्थ होकर ( आयातम् ) आओ। ये ( सुताः ) उत्पन्न हुए पदार्थ एवं नाना पदों पर अभिषिक्त उत्तम जन भी ( युवाकवः ) तुम दोनों को चाहने वाले और ( वृक्तबर्हिषः ) यज्ञ या बर्हि अर्थात् प्रजा को बढ़ाने वाले हैं। पदार्थों के पक्ष में—(वृक्तबर्हिषः) यज्ञादि से पृथक् भोजनार्थ प्राप्त पदार्थ तुम्हारे लिये हैं उनको ग्रहण करो।

तं प्रत्नथा० । अयं वेनः० ॥ ५८ ॥

भा०—'तं प्रत्नथा०' देखो अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेनः०' देखो ७ । १६ ॥ 'रुद्रवर्त्तनी'—

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ५९ ॥

ऋ० ३ । ३१ । ६ ॥

कुशिक ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—सेना पक्ष में—( यदि ) यदि ( सरमा ) वीर विजयी लोगों को एकत्र रमाने अर्थात् युद्ध क्रीड़ा कराने वाली सेना (अद्रेः) मेघ के समान प्रजा पर सुखों के और शत्रुओं पर बाणों के वर्षण करने वाले एवं शत्रुओं द्वारा न दीर्ण होने वाले वज्र, अर्थात् शस्त्रबल को ( रुग्णम् ) टूटा हुआ ( विदत् ) जाने तो वह ( महि ) बड़े भारी ( पूर्वम् ) पूर्व सञ्चित ( पाथः ) अपने पालनकारी सामर्थ्य को ( सध्र्यक् ) एक ही स्थान पर एकत्र ( कः ) करे। वह ( सुपदी ) उत्तम रीति से पग चलाने वाली ( अक्षराणाम् ) कभी नाश न होने वाले पुरुषों के ( अग्रम् ) अग्र, अर्थात् मुख्य भाग को ( नयत् ) आगे लेजावे और वह ( प्रथमा ) स्वयं सबसे प्रथम होकर ( रवं ) उत्तम आदेश को ( जानती ) भली प्रकार

५८—'अयं वेनश्चोदयत्' इति काण्व० ।

जानती हुई ( अच्छा गात् ) भली प्रकार आगे बढ़े । उत्तम सेना जब अपने बल को मग्न हुआ जाने तो वह अपने उत्तम पालक बल को एकत्र करले और उत्तम दृढ़ पुरुषों को आगे बढ़ावे और स्वयं सेनापति के आदेशों को भली प्रकार जानती हुई आगे बढ़े ।

अथवा, ( यदि ) जब ( सरमा ) साथ रमण करने वाली स्त्री (रुग्णम् विदत् ) दुःखों के भंग करने वाले पति को प्राप्त करे तब ( सध्र्यक् ) साथ रहने वाला, सहचारी पति ( पूर्व्यम् ) पूर्व से ही प्राप्त ( अद्रेः ) मेघ से उत्पन्न होने वाले (महि पाथः कः) बहुत अन्न, धन अथवा मेघ के समान ज्ञानप्रद आचार्य के श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करे । वह स्त्री जो (सुपदी) उत्तम चरण वाली, (प्रथम) प्रथम (अक्षरणां रवं जानती) अक्षर अर्थात् अविनाशी वेदवचनों के उपदेश को ( जानती ) जानती हुई ( अग्रं ) आगे २ स्वयं होकर अपने पीछे पति को लेती हुई ( अन्वगात् ) पति को प्राप्त हो । अर्थात् स्त्री प्राप्त करने के पूर्व पुरुष धन संग्रह करे अथवा ब्रह्मचर्य पालन करे, वह स्त्री भी ज्ञान प्राप्त करे । स्वयं ज्ञानवती होकर आगे स्वयं प्रदक्षिणा कर पति को प्राप्त करे ।

वाणी के पक्ष में—( यदि ) यदि ( सरमा ) जब समान रूप से विद्वानों को आनन्दित करने वाली, स्त्री के समान सुखदायिनी वेदमयी वाणी, ( अद्रेः ) न विदीर्ण होने वाले अज्ञान के ( रुग्णम् ) विनाशक उपाय को ( विदत् ) ज्ञान करती है । तब ( सध्र्यक् ) उसके सहयोग से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष ( पूर्व्यम् ) पूर्व से चले आये ( महि-पाथः ) बड़े भारी ज्ञान को ( कः ) प्राप्त करता है । और ( सुपदी ) उत्तम ज्ञान कराने वाली ( प्रथमा ) सबसे प्रथम विद्यमान वेद वाणी ( अक्षराणां ) अक्षर, अविनाशी सत्य सिद्धान्त तत्वों के ( रवं जानती ) उपदेश को जनाती हुई ( गात् ) प्रतीत होती है ( अग्रं नयत् ) हमें आगे, सर्वश्रेष्ठ, सबसे पूर्व विद्यमान परमेश्वर तक पहुंचाती है ।

स्त्री के पक्ष में—( यदि ) जब ( सरमा ) पति के साथ रमण करने हारी प्रियतमा स्त्री ( प्रथमा सुपदी ) सर्व प्रथम, सुविख्यात उत्तम ज्ञान और आचरण वाली और (अक्षराणां रवं जानती ) अक्षरों के यथार्थ उच्चारण, ध्वनि आदि को जानने हारी होकर ( रुग्णं ) दुखी, पीड़ित जन को ( विदत् ) जाने, तब ( सध्र्यक् ) वह सदा साथ रह कर ( पूर्व्यम् ) पूर्ण प्राप्त किये हुए ( अद्रेः महि पाथः ) मेघ से प्राप्त महान् प्रभूत अन्न को उत्पन्न करे। वह स्त्री ( पतिम् अच्छ गात् ) उत्तम पति को प्राप्त हो। भाव स्पष्ट नहीं है।

**नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुर ऽएतारमग्नेः ।**
**एमेनमवृधन्नमृता ऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥ ६० ॥**

विश्वामित्र ऋषिः । वैश्वानरो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः ॥

भा०—( अस्मात् ) इस ( वैश्वानरात् ) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नेः) अग्नि, सूर्य या दीपक के समान प्रकाशस्वरूप तेजस्वी राजा, विद्वान् के ( अन्यम् ) अतिरिक्त दूसरे किसी को ( देवाः ) विद्वान् और विजयी पुरुष भी ( पुरः एतारम् ) अपने आगे २ चलने वाले नायक रूप ( स्पशं न अविदन ) दूत या द्रष्टा को नहीं जानते। वे ( अमृताः ) स्वयं दीर्घ, शतायु जीवन वाले होकर इस ( अमर्त्य ) अन्य मनुष्यों से अधिक उच्च कोटि के ( वैश्वानरम् ) सर्वजन-हितकारी पुरुष को ही (क्षैत्रजित्याय) क्षेत्र, भूमि विजय करने के लिये ( ईम् एनम् ) इसको ( अवीवृधन् ) बढ़ाते हैं।

अध्यात्म में—समस्त देहों में विद्यमान समस्त प्राणों के पुरोगामी इस आत्मा के सिवाय ( नहि स्पशम् अविदन् ) किसी दूसरे को नहीं पाते। ये ( अमृताः ) अमर ( देवाः ) विद्वान् पुरुष भी ( क्षैत्रजित्याय ) क्षेत्र, देह या बन्धन को विजय करने के लिये ( अमर्त्यं वैश्वानरम् वृधन् ) मरण रहित वैश्वानर, सर्वात्मा की शक्ति को बढ़ाते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—सर्वव्यापक परमेश्वर के सिवाय विद्वान् जन

किसी दूसरे को ( स्पशम् नहि अविदन् ) सर्वद्रष्टा नहीं जानते। अपने फल भोगों की प्राप्ति के लिये कर्म रूप बीजों के वपन के लिये एकमात्र क्षेत्र रूप इस देह के बन्धन को विजय करने के लिये ही ( अमृतासः देवाः ) अमृत, ज्ञानी, एवं अमर परमात्मा में लीन, अविनाशी विद्वान्, मुमुक्षु जन इसी अभय परमेश्वर की महिमा को स्तुतियों से बढ़ाया करते हैं।

उग्रा विघनिना मृधऽइन्द्राग्नी हवामहे।
ता नो मृडात ऽईदृशे ॥ ६१ ॥ ऋ० । १० । ६० । ५ ॥

भरद्वाज ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—( उग्रौ ) उग्र, तेजस्वी, ( मृधः ) संग्राम करने हारे शत्रुओं को ( विघनिना ) विविध प्रकारों से शत्रुओं को मारने और दण्ड देनेवाले ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र, सेनापति और अग्नि, अग्रणी नायक, सभाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष हों। ( ता ) वे दोनों ( नः ) हमें ( ईदृशे ) इस प्रकार के संग्राम आदि के अवसर में ( मृडात ) सुखी करें, हम पर सदा दया करें।

मृडतिरुपदयाकर्मा इति सायणः ॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
अभि देवाँ२ऽ इयक्षते ॥ ६२ ॥ ऋ० ९। ११। १ ॥

भा०—हे ( नरः ) नायक नेता विद्वान् पुरुषो! आप लोग (पवमानाय) सदाचार एवं व्रताचरण द्वारा अपने को पवित्र करने वाले (इन्दवे) परम ऐश्वर्यवान्, सोम्य स्वभाव के एवं ( देवान् अभि इयक्षते ) विद्वानों का आदर सत्कार करने वाले गुरुजनों के प्रति विद्यार्थी के समान विनीत पुरुष को ( उप गायत ) उपदेश करो।

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ। ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः ॥ ६३ ॥
ऋ० ३। ४७। ४ ॥

६१—०मृडात० इति काण्व०। ६३—'ये ग इष्टौ' इति काण्व० ॥

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! ( अहिहत्ये ) मेघों के आघात करने और उनको छिन्न भिन्न करने के कार्य में वायु और सूर्य के समान तेजस्वी प्रचण्ड और ( शाम्बरे ) मेघ के साथ संग्राम करने के कार्य में तीव्र ताप वाले सूर्य के समान अति प्रखर और ( गविष्टौ ) किरणों के एकत्र रखने के कार्य में उनके स्वामी रूप सूर्य के समान इन्द्रियों के वश करने, भूमियों को अपने अधीन रखने और गौ आदि पशु सम्पत्ति को प्राप्त करने के कार्य में ( ये ) जो विद्वान् और बलवान् प्रजास्थ पुरुष ( त्वा ) तुझको ( अवर्धन् ) बढ़ाते हैं, तेरी शक्ति की वृद्धि करते हैं और ( ये विप्राः ) जो विद्वान् मेधावी पुरुष ( नूनम् ) निश्चय से ( त्वां अनुमदन्ति ) तेरे ही हर्ष के साथ स्वयं हर्षित होते हैं, हे ( हरिवः ) किरणों के स्वामी सूर्य के समान, तीव्र अश्वों और अश्वारोहियों और प्रजाओं के दुःखों, अज्ञान अन्धकारों के हरण करने वाले आप्त पुरुषों के स्वामिन् ! हे ( इन्द्र ) सेनापते ! राजन् ! तू ( मरुद्भिः ) वायु के समान तीव्र सैनिक और शत्रुओं को मारने वाले एवं प्रजा के प्राणों के समान प्रिय अधिकारी पुरुषों के साथ ( सगणः ) गण, अर्थात् दलसहित ( सोमम् ) ओषधि रस के समान अति बलकारी राष्ट्र के ऐश्वर्य का (पिब) पान कर, उपभोग कर, उसको प्राप्त कर ।

जनिष्ठा ऽउग्रः सहसे तुराय मन्द्र ऽओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रम्मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरन्दधनद्धनिष्ठा ॥ ६४ ॥

ऋ० १० । ७३ । १ ॥

गौरिवीतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! तू ( मन्द्रः ) समस्त प्रजा को हर्षित करने हारा, ( ओजिष्ठः ) सब से अधिक पराक्रमी, ( बहुलाभिमानी ) बहुत अधिक आत्माभिमान से युक्त, मनस्वी पुरुष ही ( तुराय ) अपने शीघ्र करनेवाले

गुण, चुस्ती, आलस्य रहितता, कार्यदक्षता अथवा शत्रुओं के नाशकारी ( सहसे ) और शत्रुओं के पराजय करने वाले बल के कारण ही ( उग्रः ) उग्र, प्रचण्ड, शत्रुओं के लिये भयंकर, ( जनिष्ठाः ) होवे। ( मरुतः ) वायुओं के समान प्रचण्ड बलवान्, शत्रुरूप वृक्षों को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने वाले शूरवीर उस ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक पुरुष को सूर्य को वायुओं के समान ( अवर्धन् ) बढ़ावे, प्रखर और प्रचण्ड करें। और ( अत्र ) ऐसे वीरता और राज्यपालन के कार्य के लिये ही ( यत् ) जब ( वीरम् ) वीर पुत्र को (दधत्) धारण करती है, तभी वह (धनिष्ठा) धन्य उत्तम गर्भ धारण करने वाली, ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती कहाती है। अथवा, ( माता ) पृथिवी, जब ऐसे वीर को धारण करती है तभी वह ( धनिष्ठा ) ऐश्वर्यवती, धन्य, वसुंधरा या धरा कहाती है।

आ तू न॑ऽइन्द्र वृत्रहन्नस्माक॑म॒र्धमा ग॑हि।
म॒हान्म॒हीभि॑रू॒तिभिः॑ ॥ ६५ ॥ ऋ० ४। ३२। १॥

वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे ( वृत्रहन् ) शत्रुओं के नाश करने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू ( अस्माकम् ) हमारे ( अर्द्धम् ) समृद्ध राष्ट्र-भाग को (आगहि) प्राप्त कर। हे राजन्! तू ( महीभिः ) बड़े भारी ( ऊतिभिः ) रक्षा साधनों से ( महान् ) बड़ा बलशाली होकर ( नः ) हमें भी पुष्ट कर।

'अर्धम्'—अर्धो हरतेर्वा विपरीतात्। धारयतेर्वास्यादुद्धृतं भवति, ऋध्नोतेर्वा स्यादृद्धतमो विभागः। समीपे इति सा०। निवासदेशमिति ( म० ) पक्षवित्ति ( उ० ) वर्धनमिति ( द० )

त्वामि॑न्द्र प्र॒तूर्त्ति॑ष्व॒भि विश्वा॑ऽअसि॒ स्पृधः॑।
अ॒श॒स्ति॒हा ज॑नि॒ता वि॑श्व॒तूर॑सि॒ त्वं तू॑र्य्य तरुष्य॒तः ॥ ६६ ॥
ऋ० ८। ८८। ५॥

नृमेध ऋषि। इन्द्रो देवता। पथ्या बृहती।

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन् ! ( प्रतूर्त्तिषु ) खूब अधिक हिंसा योग्य, या खूब अधिक हनन करने के स्थानों, संग्रामों में तू ( विश्वाः स्पृधः ) अपने समस्त स्पर्धा करने वाली, ईर्षालु शत्रु सेनाओं को ( अभि असि ) पराजित करता है । तू ( जनिता ) सब सुखों का उत्पादक और ( अशस्तिहा ) सब दुष्ट पुरुषों और अप कीर्त्तियों का विनाशक होकर (विश्वतूः) समस्त शत्रुओं का ही नाश करने हारा ( असि ) हो । हे राजन् ! सेनापते ! ( त्वं ) तू ( तरुष्यतः ) हमें मारना चाहने वाले एवं मारने का उद्योग करने वाले शत्रुओं को ( तूर्य ) विनाश कर ।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६७ ॥
ऋ० ८ । ८८ । ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! ( मातरा शिशुं न ) माता और पिता जिस प्रकार शिशु, बालक के (अनु ईयतुः) पीछे २ प्रेम से चलते हैं उसी प्रकार ( क्षोणी ) अपने और शत्रु के राष्ट्र दोनों ( ते ) तेरे ( तुरयन्तम् ) शत्रु के विनाशकारी ( शुष्मम् ) बल, पराक्रम के ( अनु ईयतुः ) अनुकूल होकर चलते हैं । और ( यत् ) जब तू ( वृत्रं ) अपने राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को ( तूर्वसि ) मार गिराता है तब ( विश्वाः स्पृधः ) समस्त शत्रुसेनाएं भी ( ते मन्यवे ) तेरे क्रोध के आगे ( श्नथन्त ) शिथिल, हतवीर्य, निर्बल हो जावें ।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ ६८ ॥

भा०—व्याख्या देखो । अ० ८ । ४ ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वंशिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ ६९ ॥
ऋ० ६ । ७१ । ३ ॥

६८—'०मूळयन्तः' इति काण्व० ।

भरद्वाज ऋषिः । सविता देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार ( अदब्धेभिः ) नष्ट न होने वाली सुखकारी ( वायुभिः ) पवित्रकारी, पालन में समर्थ किरणों से हम ( गयम् ) गृह, प्राण और देह की रक्षा करता है और जिस प्रकार अग्नि ( हिरण्यजिह्वः नव्यसे ) सुवर्ण के समान दीप्ति वाली जिह्वा, अर्थात् ज्वाला से सदा नये २ सुख प्रदान करता है । हे ( सवितः ) सबके प्रेरक, उत्तम कर्मों और राज्य प्रबन्धों के उत्पादक, सूर्य के समान तेजस्विन् विद्वन् ! राजन् ! तू ( अदब्धेभिः ) अखण्डित, स्थिर, जिनको कोई भंग न कर सके ऐसे ( शिवेभिः ) कल्याणकारी ( पायुभिः ) रक्षण, पालन करने से उपायों से ( अद्य ) आज और अब के समान सदा, ( नः गयम् ) हमारे गृह, पुत्र, कलत्रादि की भी ( परिपाहि ) सब प्रकार से रक्षा कर । तू ( हिरण्यजिह्वः ) हित और हृदय को उत्तम लगने वाली वाणी से युक्त अथवा हिरण्य के समान सदा उज्वल, खरी, सत्य वाणी बोलने हारा होकर (नव्यसे) सदा नये से नये मनोहर ( सुविताय ) उत्तम ऐश्वर्य और ज्ञान के प्राप्त करने के लिये ( रक्ष ) हमारी रक्षा कर, हमें पालन कर । ( नः ) हम पर ( अघशंसः ) पापकर्म का उपदेश करने वाला ( माकिः ईशत ) कोई शासन या स्वामित्व न करे ।

'हिरण्यजिह्वः'—हिरण्यं, हितरमणं भवतीति वा, हृदयरमणं भवतीति वा निरु० २ । १० ॥ जिह्वेति वाङ्नाम । निघ० १ । ११ ॥ हिरण्यवदविचला जिह्वा यस्य । सत्यवाक् । यद्वा हिरण्या हिता रमणीया जिह्वा ज्वाला यस्येति । म० द० । सत्यवाक् । उ० ।

**प्र वी॒र॒या शुच॑यो दद्रिरे वामध्व॒र्युभि॒र्मधु॑मन्तः सु॒तासः॑ ।**
**वह॑ वायो नि॒यु॒तो॑ या॒ह्यच्छा॒ पिबा॑ सु॒तस्यान्ध॑सो मदा॑य ॥७०॥**

ऋ० ७ । ९० । १ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजा और प्रजाजनो! ( वाम् ) तुम दोनों के परस्पर सहयोग से बनी ( वीरया ) वीर, बलवती सेना के बल से ही (शुचयः) शुद्ध पवित्र आचारवान्, निष्कपट पुरुष, ( मधुमन्तः ) ज्ञान और बलों से युक्त ( सुतासः ) माता पिता दोनों में से वीर माता से उत्पन्न, मधुर सौम्य गुणों वाले पुत्रों के समान ( सुतासः ) उत्तम विद्या और आचार-शिक्षा से सम्पन्न, एवं उत्तम पदों पर अभिषिक्त राजपुरुष ( अध्वर्युभिः ) परस्पर हिंसा, घात प्रतिघात से रहित, राष्ट्र यज्ञ के सञ्चालक विद्वान् पुरुषों से मिलकर ( प्र दद्रिरे ) शत्रुओं की सेनाओं और उनके दल बल का विदारण करें अथवा उनको भयभीत करें। हे ( वायो ) वायु के समान शत्रुओं को उखाड़ने हारे बलवन्! सेनापते! तू ( नियुतः ) नियुक्त अपने अधीन समस्त सेनाओं को, या अश्वों को, वायु के तीव्रता आदि गुणों को (वह) स्वयं धारण कर, उनको अपने वश कर, ( अच्छ याहि ) शत्रुओं पर भली प्रकार चढ़ाई कर। और ( मदाय ) हर्ष और प्रजा के सुख, तृप्ति के लिये ( अन्धसः ) अन्न के और ( सुतस्य ) नाना प्रकार के भोग्य पदार्थ, ऐश्वर्य और अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य को ओषधि रस के समान अपने शरीर, मन आदि की शक्ति वृद्धि करने और आत्मसुख और राष्ट्र के हर्ष के लिये ( पिब ) पान कर, उपभोग कर।

गाव॒ ऽउपा॑वतावृ॒तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑।
उ॒भा कर्णा॑ हिर॒ण्यया॑ ॥ ७१ ॥

भा०—इस ऋचा की व्याख्या देखो अ० ३३। १९॥ तथापि, हे ( गावः ) सूर्य की रश्मियों के समान प्रकाशवान् तेजस्वी ज्ञानी पुरुषो! आप लोग ( उप अवत ) आओ, हमारी रक्षा करो। और ( यज्ञस्य ) यज्ञ अर्थात् सबको एकत्र मिलाये रखने वाले, राष्ट्र यज्ञ के (रप्सुदा) उत्तम रूप प्रदान करने वाले सूर्य पृथिवी के समान राजा और प्रजाजन (मही) दोनों पूज्य हैं। और ( उभा ) दोनों ही ( हिरण्यया ) एक दूसरे के प्रति

हितकर और रमणीय ज्ञानवान् और सम्पन्न कार्य करने में पतिपत्नी के समान, ( कर्णा ) एक ही राष्ट्र के कार्य करने हारे होकर ( अवतम् ) एक दूसरे की रक्षा करो। अथवा—हे (गावः) ज्ञानवान् प्रजास्थ पुरुषो ! जिस प्रकार गौवें अपने ( अवतम् ) रक्षक गोपति के पास आती हैं उसी प्रकार तुम भी अपने ( अवतम् उप अवत ) रक्षक को प्राप्त कर उसकी रक्षा करो।

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे।
रिशादसा सधस्थ आ ॥ ७२ ॥

दक्ष ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः ॥

भा०—हे ( रिशादसौ ) प्रजाओं के नाश करने वाले, शत्रुओं का भी नाश करनेवाले मित्र और वरुण, न्यायाधीश और सेनापते ! तुम दोनों ( सधस्थे ) एकत्र मिल कर बैठने के स्थान, एवं ( दक्षस्य ) समस्त कार्यों के सञ्चालन में उत्साहवान् राजा के ( दुरोणे ) गृह, सभाभवन में ( काव्ययोः ) क्रान्तदर्शी पुरुषों के बनाये व्यवहार और परमार्थ के प्रतिपादक दोनों प्रकार के ग्रन्थों में प्रतिपादित (आजानेषु) चतुर विद्वान् कार्य कुशल बना देने वाले, ज्ञान कराने वाले व्यवहारों के निर्णयों के लिये ( क्रत्वा ) अपने ज्ञानबल से ( आ ) कार्य सम्पादन करो। अथवा (काव्ययोः आ-जानेषु) विद्वानों के बनाये या साक्षात् किये हुए प्रजा के हितार्थ मार्ग दर्शाने वाले 'आज्ञापन' या राजनियमों के आधार पर (क्रत्वा) अपने कर्म और प्रज्ञाबल से (आ) न्याय और दण्ड का विधान करो। 'आजानम्' आज्ञापनम्, इति दया० ऋ० भू० ( १२८ )

दैव्यावध्वर्यू आ गतꣳरथेन सूर्यत्वचा।
मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे ॥ ७३ ॥

७३—दैव्या अध्व० इति काण्व०।

भा०—व्याख्या देखो० अ० ३३ । ३२ ॥

तम्प्रत्नथा० । अयं वेनः० ॥

भा०—'तं प्रत्नथा'० ( अ० ७।१२ ) की प्रतीक है और 'अयं वेनः'० यह मन्त्र ( अ० ७ । १६ ) की प्रतीक है ।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत् ।
रेतोधा आसन्महिमान ऽआसन्त्स्वधा ऽअवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥७४॥

ऋ० १० । १२९ । ५ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । भाववृत्तो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राष्ट्रपक्ष में—( एषाम् ) इन अपने स्थानों पर आदरपूर्वक अभिषेक को प्राप्त हुए विद्वान् अधिकारी पुरुषों का शासनाधिकार या तेज ( रश्मिः ) तेजस्वी सूर्य आदि पदार्थों के किरणों के समान ( तिरश्चीनः ) बहुत दूर तक जानेवाला, प्रकाश की किरण के समान तिरछा, अपनी सीध में जाने वाला और ( विततः ) विविध प्रकारों से फैलता है । ( अधः स्वित् आसीत् ) वह नीचे भी रहता है और ( उपरिस्वित् ) और ऊपर भी रहता है । वे सभी राष्ट्र के भीतर ( रेतो धाः आसन् ) शरीर में वीर्य को धारण करने वाले अंगों के, समान स्वयं वीर्यवान् बलवान् एवं ब्रह्मचारी हों । और वे ( महिमानः ) महान् सामर्थ्य वाले, आदर सत्कार योग्य भी हों । उनकी ( स्वधा ) अपने शरीर के धारण निमित्त प्राप्त होने वाला अन्न, वेतन आदि पदार्थ ( अवस्तात् ) नीचे अर्थात् तुच्छ है परन्तु उनका ( प्रयतिः ) राष्ट्र की व्यवस्था का उत्तम यत्न और नियम का कार्य ( परस्तात् ) परम उच्च, उत्कृष्ट हो ।

अधिदैवत पक्ष में—( एषाम् रश्मिः ) इन सूर्यादि लोकों का प्रकाशक ( तिरश्चीनः विततः ) तिरछा, सर्वत्र दूर २ तक फैला है । ( अधः-

७४—अयंवेनश्चोदयत् । इति काण्व० ।

स्विद् आसीत् ) क्या नीचे और क्या ऊपर क्या पास और क्या दूर ? सभी स्थान पर है। ये सभी ज्योतिर्मय सूर्य आदि पदार्थ, (रेतोधाः आसन्) जीव सृष्टि के उत्पन्न करने वाले वीजों को धारण करते हैं। और ( महिमानः आसन् ) बड़े भारी, सामर्थ्य वाले हैं। ( स्वधा ) स्वयं संसार को धारण करने वाली प्रकृति, शरीर को धारण करने वाले जीव और भोग्य पदार्थ अन्न आदि के समान ( अवस्तात् ) पर-भोग्य और अधीन रहने से नीची श्रेणी के हैं और (प्रयतिः) उनको प्रेरणा देने वाला, चलाने वाला परम प्रयत्नस्वरूप परमेश्वर ( परस्तात् ) बहुत ऊंचा, उनसे कहीं महान् है।

अध्यात्म में—( एषाम् रश्मिः ) प्रकृति, प्रजापति के सृष्टि उत्पादक संकल्प और सृष्टि के प्रेरक बल इन तीनों का ( रश्मिः ) सृष्टि नियामक वल ( तिरश्चीनः ) मध्य में, (अधस्तात् उपरिस्वित् ) क्या ऊपर और क्या नीचे सर्वत्र ही ( विततः आसीत् ) व्यापक है। सृष्टि-रचना के अवसर में ( रेतोधाः आसन् ) बीजरूप से कर्मों को संस्कार में धारण करने वाले कर्त्ता और भोक्ता जीव भी विद्यमान थे और ( महिमानः आसन् ) पृथिवी आदि पांच महाभूत भोग्य रूप भी थे, परन्तु उनमें भी(स्वधा अवस्तात्) अन्न के समान भोग्य पदार्थ निकृष्ट था और ( प्रयतिः परस्तात् ) प्रयत्नशील आत्मा उत्कृष्ट था ( सायण, मही० )।

अथवा—यहां परमेश्वर के उत्पादक और नियामक बलका वर्णन है— (एषां लोकानां मध्ये रश्मिः) इन समस्त लोकों के बीच में सबका प्रकाशक रश्मि और सर्व का नियन्ता ( तिरश्चीनः ) सब दूर २, ( अधः स्विद् उपरिस्वित् ) क्या ऊपर और क्या नीचे, सर्वत्र ( विततः आसीत् ) फैला हुआ, सर्वत्र व्याप्त है। ये समस्त सूर्यादि लोक और महत् आदि प्रकृति विकार गण (रेतोधाः) सृष्टि के उत्पादक ब्रह्म बीज को धारण करने वाले और उसी के ( महिमानः ) समान सामर्थ्य को धारण करने हारे हैं। परमात्मा ( स्वधा ) स्व-रूप को धारण करने वाली परम शक्ति ही ( अव-

स्तात् ) उरे, यहां, छोटे से छोटे पदार्थ में है। और उसका लोक-सञ्चालक ( प्रयतिः ) महान् प्रयत्न ( परस्तात् ) दूर से दूर लोक में भी विद्यमान है।

**आ रोदसी ऽअपृणादा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो ऽअधारयन्।**
**सो ऽअध्वराय परिणीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः॥७५॥**

ऋ० ३। २। ७॥

विश्वामित्र ऋषिः। वैश्वानरो देवता। जगती। निषादः॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश से आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है उसी प्रकार तेजस्वी विद्वान्, पुरुष ( रोदसी ) शास्य और शासक दोनों वर्गों को ( आ अपृणत् ) सब प्रकार से व्यापता और उनको भरण पालन और पूर्ण भी करता है और वह, ( स्वः ) अन्तरिक्ष को वायु के समान, ( महत् जातम् ) बड़े भारी, उत्पन्न हुए सुखमय राष्ट्र को भी अपने वश करता है। ( यत् ) जिससे ( एनम् ) उसको ( अपसः ) समस्त कर्म, समस्त बड़े कार्य अथवा कार्य करने वाले प्रजाजन ( अधारयन् ) धारण करते हैं। अर्थात् वह सब कर्मों का आश्रय, मुख्य केन्द्र हो जाता है। ( सः ) उस को ( कविः ) क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी पुरुष ( अध्वराय ) न नष्ट होने वाले, एवं हिंसारहित, पालन करने के उत्तम कर्म के लिये ( वाजसातये अत्यः न ) संग्राम, ऐश्वर्य और वेगयुक्त कार्य करने के लिये जिस प्रकार अश्व को काम में लाया जाता है उसी प्रकार ( परिणीयते ) कार्यों में नियुक्त किया जाता है, वरण किया जाता है। वह ( चनोहितः ) अन्न आदि ऐश्वर्य को स्वयं धारण करने वाला होता है।

(२) अग्नि के पक्ष में—सूर्य रूप से और व्यापक रूप से भी द्यौ और पृथिवी को व्यापता, पोषता है। समस्त कर्मों को धारण करता है। वही हिंसा रहित शिल्पों के लिये प्राप्त किया जाता है। अश्व के समान यन्त्रों में भी वेग प्राप्त करने के लिये लगाया जाता है। (३) परमेश्वर भी सर्वत्र व्यापक,

सबका पोषक है। समस्त कर्म उसके आश्रय हैं, वह क्रान्तदर्शी महान् यज्ञ के लिये पुनः २ उपासना किया जाता, एवं समस्त ऐश्वर्यों का पोषण करता है।

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा।
आङ्गूषैराविवासतः ॥ ७६ ॥ ऋ० ७। ९४। ११ ॥

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—( या ) जो दो ( वृत्रहन्तमा ) घेर लेने वाले शत्रुओं के नाश करने वालों में सबसे श्रेष्ठ, ( मन्दाना ) सबको आनन्दित करने वाले, हैं वे इन्द्र आचार्य और अग्नि, ज्ञानवान्, अथवा सेनापति और सभाध्यक्ष ( उक्थेभिः ) उत्तम वचनोपदेशों से, ( गिरा ) उत्तम वाणी से और ( आंगूषैः ) घोषणाओं द्वारा ( आ आविवासः ) लोकसेवा करते हैं, यथार्थ ज्ञान प्रकाश करते हैं।

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।
सुमृडीका भवन्तु नः ॥ ७७ ॥ ऋ० ६। ५२। ९ ॥

सुहोत्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—( ये नः सूनवः ) जो हमारे पुत्र लोग हैं वे ( अमृतस्य ) अमर, अविनाशी परमेश्वर की दी ( गिरः ) वेद-वाणियों का ( शृण्वन्तु ) श्रवण करें और ( नः ) हमारे लिये ( सुमृडीकाः ) उत्तम सुखकारी ( भवन्तु ) हों। अथवा ( ये ) जो ( अमृतस्य ) अमर प्रजापति परमेश्वर के ( सूनवः ) पुत्र के तुल्य उसके उपासक हैं वे (नः गिरः शृण्वन्तु) हमारी वाणियों का श्रवण करें। अथवा हमें वेद-वाणियों का श्रवण करावें। और हमें सुखकारी हों।

ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्म ऽइयर्ति प्रभृतो मे ऽअद्रिः।
आ शासते प्रतिहर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो ऽअच्छ ॥ ७८ ॥

ऋ० १। १६५। ४ ॥

---

७७—'सुमृळीका०' इति काण्व०।

अगस्त्य इन्द्रो वा ऋषी । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

**भा०**—( सुतासः ) विद्या और शिक्षा से अभिषिक्त हुए पुत्र या शिष्य के समान विनीत होकर ( मतयः ) मननशील पुरुष ( मे ) मुझ विद्वान् आचार्य से ( ब्रह्माणि ) वेदमन्त्रों के ज्ञानों की ( आ शासते ) अभिलाषा करते हैं । और वे ( इमा उक्था ) इन वेदवचनों, या सूक्तों को ही ( प्रति हर्यन्ति ) चाहते हैं । ( मे ) मेरे द्वारा ( प्रभृतः ) उत्तम रीति से परिपुष्ट या प्रदत्त ( शुष्मः ) बलकारी ( अद्रिः ) अज्ञान अन्धकार करने हारा ज्ञानवज्र अथवा ज्ञानवर्षण करने वाला, मेघ के समान गुरु ही उनको ( शम् ) सुख ( इयर्त्ति ) प्रदान करता है । ( हरी ) ज्ञान को धारण करने वाले और अज्ञान हरने वाले अध्यापक और शिष्य, दोनों ( नः ) आप हमें ( ता ) वे नाना प्रकार के वेद ज्ञानों को (वहतः) प्राप्त करावें ।

राजा के पक्ष में—( मतयः ) प्रजा को स्तम्भन करने वाले बलवान् पुरुष ( मे ब्रह्माणि आशासते ) मेरे से धन की अभिलाषा करते हैं । और ( सुतासः ) पुत्र के समान प्रिय प्रजाजन ( इमा उ वचा प्रति हर्यन्ति ) इन उत्तम राजाज्ञा और न्यायवचनों को चाहते हैं । और ( मे अद्रिः प्रभृतः शम् इयर्त्ति ) मेरा यह तीक्ष्ण वज्र प्रजा को सुख शान्ति प्रदान करता है । ( हरी ) राष्ट्र के शकट को उठा लेने वाले अश्वों के समान अमात्य और राजा या सभापति और सेनापति प्रजाओं के दुःखहारी होकर ( नः ता अच्छ वहतः ) हम प्रजा को वे सब पदार्थ प्राप्त करावें । राजा धनेच्छुओं के लिये धनप्रद और ज्ञानेच्छुओं या साम वचनों के इच्छुकों के लिये ज्ञानप्रद पुरुषों को नियुक्त करे । शान्ति स्थापन के लिये वज्र या दण्ड को उपयोग में लावे । साम, दान और दण्ड तीनों का विधान है ।

**अनु॑त्तमा ते मघवन्नकि॒र्नु न त्वावाँ॑२ऽ अस्ति दे॒वता॒ विदा॑नः ।**
**न जाय॑मानो॒ नश॑ते॒ न जा॒तो यानि॑ करि॒ष्या कृ॑णु॒हि प्र॑वृद्ध ॥७९॥**

ऋ० १ । १६५ । ९ ॥

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् राजन् ( नकिः ) कोई पदार्थ भी ऐसा नहीं जो ( ते अनुत्तम् ) तेरे द्वारा नहीं चलाया गया। तू ही सबका प्रेरक हैं। और (त्वावान् देवता) तेरे सदृश द्रष्टा और दानशील, (विदानः) ज्ञानवान् और समस्त पदार्थों का प्राप्त करने कराने वाला भी दूसरा ( न अस्ति) नहीं है। हे ( प्रवृद्ध ) महान्, सबसे अधिक शक्तिशालिन्! ( न जायमानः ) न भविष्य में कोई पैदा होने वाला और ( न जातः ) न पैदा हुआ है जो ( यानि करिष्ये ) जिन कामों को तू भावी में करे या ( कृणुहि ) अब करता है उनको भी ( नशते ) प्राप्त कर सके।

परमेश्वर के पक्ष में—(ते) तेरे स्वरूप को ( अनुत्तम् आ ) हम किसी अन्य से प्रेरित नहीं पाते अर्थात् तू अद्वितीय है। ( न त्वावान् विदानः देवता अस्ति ) तेरे जैसा ज्ञानवान् देव भी कोई नहीं है। तू ( जायमानः न, जातः न ) तू कभी न पैदा होता है, न हुआ है। (यानि करिष्या ) जो करेगा और जो ( कृणुहि ) करता है उसको भी ( नकिः नशते ) कोई न जान सकता है, न उसका पार पा सकता है।

**तदिदा॑स॒ भुव॑नेषु॒ ज्येष्ठं॒ यतो॑ ज॒ज्ञऽउ॒ग्रस्त्वे॒षनृ॑म्णः।**
**स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो निरि॑णाति॒ शत्रू॒ननु॒ यं विश्वे॒ मद॒न्त्यूमाः॑ ॥ ८० ॥**

ऋ० १० । १२० । १ ॥

बृहद्दिव ऋषिः। महेन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—( तत् ) वह ( इत् ) ही ( भुवनेषु ) समस्त उत्पन्न लोकों, प्रजाजनों के बीच में ( ज्येष्ठम् आस ) सबसे बड़ा, सबसे अधिक आदर के योग्य है। ( यतः ) जिससे ( त्वेषनृम्णः ) तेज रूप धन से युक्त, अति तेजस्वी, ( उग्रः ) शत्रुओं को भय देने वाला, बलवान् सेनापति या राजा ( जज्ञे ) पैदा होता है। और ( सद्यः ) शीघ्र ही ( जज्ञानः ) उत्पन्न होकर ( शत्रून् ) शत्रुओं को ( निरिणाति ) विनष्ट करता है और ( यम् अनु ) जिसके अनुकूल रह कर ( विश्वे ऊमाः ) समस्त प्रजारक्षक जन और प्राणि वर्ग ( मदन्ति ) अति हर्षित होते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—वह परमेश्वर ही सबसे महान् है जिससे यह दीप्त तेजस्वी सूर्य उत्पन्न होकर अन्धकारों को विनाश करता है और जिसको उगता देख-कर सब प्राणी हर्षित होते हैं अथवा वह परमेश्वर ही महान् है जिसकी उपासना से वीर पुरुष तेजस्वी होता है और शत्रुओं का नाश करता है, जिसके अनुकूल रहकर अन्य प्रजापालक अधिकारी प्रसन्न होते हैं।

**इमाऽउ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम।**
**पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ८१ ॥**

ऋ० ८ । ३ । ३ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे ( पुरुवसो ) बहुत से ऐश्वर्य वाले ! राजन् ! ( इमाः उ गिरः ) ये उत्तम उपदेशप्रद वाणियां ( याः मम ) जो मेरी या मुझ प्रजाजन के हित की हैं वे ( त्वा ) तुझको या तेरे सामर्थ्य को ( वर्धन्तु ) बढ़ावें। और ( पावकवर्णाः ) अग्नि के समान तेजस्वी ( शुचयः ) शुद्ध, आचारवान्, सत्यवादी, निश्छल, ( विपश्चितः ) विद्वान् पुरुष ( स्तोमैः ) स्तुति वचनों से ( अभि अनूषत ) तेरी साक्षात् स्तुति करें। ईश्वरपक्ष में—हे ( पुरुवसो ) सबमें बसने हारे ! मेरी वाणियें तेरी महिमा बढ़ावें। ब्रह्मचारी, तेजस्वी, सदाचारी विद्वान् जन तेरी स्तुति करते हैं।

**यस्यायं विश्व ऽआर्यो दासः शेवधिपा ऽअरिः।**
**तिरश्चिदर्य्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो ऽअज्यते रयिः ॥ ८२ ॥**

ऋ० ८ । ५१ । ९ ॥

भा०—( विश्वः आर्यः ) समस्त आर्य, श्रेष्ठ पुरुष ( यस्य ) जिसका ( दासः ) दास, कर्मकर, भृत्य के समान आज्ञापालक हैं और (शेवधिपाः) अपने खजाने को बचाकर रख लेने वाले, कंजूस पुरुष ही जिसका (अरिः) शत्रु के समान प्रतिद्वन्द्वी है। और ( अर्ये ) वैश्य धनस्वामी ( रुशमे ) हिंसाकारी और ( पवीरवि ) शस्त्रधारी पुरुष के पास भी ( तिरः चित् )

छिपा हुआ समस्त जितना भी धन है ( सः रयिः ) वह समस्त ऐश्वर्य भी हे राजन् ( तुभ्य इत् अज्यते ) तेरे ही लिये खोल कर रख दिया जाता है। अर्थात् सब श्रेष्ठ पुरुष तेरे सेवक हैं, उनका सब धन तेरे ही लिये है, अपना धन बचा कर रखनेवाला तेरा शत्रु है, वैश्यों और शत्रुहिंसक क्षत्रियों के पासका सभी धन राजा के लिये ही है।

**अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र ऽइव पप्रथे।**
**सत्यः सो ऽअस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये॥ ८३॥**

ऋ० ८। ३। ४॥

मेधातिथिर्ऋषिः। आदित्यो देवता। सतो बृहती। मध्यमः॥

भा०—( अयम् ) यह राजसभाध्यक्ष ( सहस्रम् ऋषिभिः ) सहस्रों मन्त्रार्थ वेत्ता विद्वानों के साथ ( सहस्कृतः ) बलवान् होकर (समुद्र इव) समुद्र के समान गम्भीरता आदि गुणों में विख्यात है। ( यज्ञेषु ) सम्मिलित नाना राजकार्यों में और ( विप्रराज्ये ) मेधावी, बुद्धिमान् विद्वानों के राज्य में ( अस्य ) उसकी ( सत्यः महिमा ) सत्य महिमा और ( शवः ) बल का ( गृणे ) वर्णन किया जाता है। अथवा—( अयं ) यह (ऋषिभिः) यथार्थ तर्कशील विद्वानों के द्वारा ( सहस्रं सहस्कृतः ) हजारों प्रकार के ज्ञानों और बलों से युक्त हो जाता है। (अस्य सः महिमा समुद्र इव पप्रथे) इसकी वह महिमा समुद्र के समान बढ़ती है। मैं ( यज्ञेषु विप्रराज्ये शवः गृणे ) प्रजाजन इसके बल की यज्ञों और विद्वानों के राज्य में स्तुति करूं।

'सहस्रम्'—सहस्र कृत्व इत्युवटः। सहस्रैः ऋषिभिरिति सायणः। सहस्रं सख्यं ज्ञानं प्राप्त इति दयानन्दः।

**अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परिपाहि नो गयम्।**
**हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो ऽअघशꣳस ऽईशत ८४**

भा०—व्याख्या देखो ( अ० ३३। ६९ )

**आ नो॑ य॒ज्ञं दि॑वि॒स्पृशं॒ वायो॑ या॒हि सु॒मन्म॑भिः ।**
**अ॒न्तः प॒वित्र॑ उ॒परि॑ श्री॒णा॒नो॒ऽयᳪ शु॒क्रो अ॑यामि ते ॥ ८५ ॥**

ऋ० ८ । ९० । ६ ॥

जमदग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । बृहती । मध्यमः ॥

**भा०**—हे ( वायो ) वायो ! वायु के समान अपने प्रचण्ड वेग से शत्रुरूप वृक्ष को उखाड़ देने में समर्थ ! अथवा, छाज से गिरते अन्न को अपने वेग से पवित्र करने हारे वायु के समान विवेकवान् ! वायो ! तू ( सुमन्मभिः) उत्तम ज्ञानोंसहित (नः) हमारे (दिविस्पृशम्) राजसभा में आश्रित, विद्या के प्रकाश से युक्त (यज्ञम्) राज्य पालन के कार्य या प्रजापति पद को ( आयाहि ) प्राप्त हो । ( पवित्रे अन्तः उपरि ) पावन या शोधन करने वाले छाज पर जिस प्रकार अन्न रहता है उसी प्रकार ( पवित्रे ) शुद्ध सदाचार युक्त एवं प्रजा को पवित्र करने वाले तुझ पर ( अयम् ) यह ( शुक्रः ) शुद्ध किरणों वाले सूर्य के समान विद्वान् वेदज्ञ पुरुष (श्रीणानः) अधिष्ठित हैं । इसी कारण मैं प्रजाजन ( ते अयामि ) तुझ बलवान् राजा के शरण में आता हूं । अर्थात् जिस प्रकार छाज पर से अन्न गिरता है, वायु उस को पवित्र करता, उसके भी ऊपर सूर्य का प्रकाश रहता है उसी प्रकार प्रजा पालन के कार्य में विवेकी सभाध्यक्ष और उसपर भी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष हो । प्रजा उसके अधीन रहे । अथवा—( अन्तः ) प्रजा के भीतर ( पवित्रे उपरि ) इस परम पवित्र पद पर ( श्रीणानः ) आश्रय देनेहारा यह राजा ही ( शुक्रः ) आशु कार्यकारी, चतुर एवं सूर्य के समान तेजस्वी है । हे राजन्! ( ते अयामि ) मैं तेरी शरण आता हूं ।

**इ॒न्द्र॒वा॒यू सु॑स॒न्दृशा॑ सु॒हवे॒ह ह॑वामहे ।**
**यथा॑ नः॒ सर्व॒ इज्जनो॑ऽनमी॒वः स॒ङ्गमे॑ सु॒मना॒ अस॑त् ॥ ८६ ॥**

ऋ० १० । १४१ । ४ ॥

---

८६—इन्द्रवायू बृहस्पतिः सुहवेह हवामहे । यथानः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत् । ऋ० ॥

तापस ऋषिः । इन्द्र वायू देवते । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(सुसंदृशौ) उत्तम रीति देखने वाले, उत्तम रीति एवं समान निष्पक्षपात दृष्टि और सम्यक्, और निष्पाप भाव से देखने वाले (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति दोनों को सूर्य और वायु के समान (इह) इस राज्य में (हवामहे) हम बुलाते या अपना प्रधान स्वीकार करते हैं। (यथा) जिससे (नः) हमारे ( सर्वः इत् जनः ) सभी जन ( संगमे ) परस्पर मिलने के अवसर में (सुमनाः ) उत्तम चित्त वाले ( असत् ) होकर रहें।

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥ ८७ ॥
ऋ० ८ । ९० । १ ॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्य ( मित्रावरुणा ) प्राण और उदान दोनों को ( अभिष्टये ) अपने अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये और (हव्यदातये) प्राप्त करने योग्य परम पद की प्राप्ति के लिये (आचक्रे) वश करता है उनके आगमन का अभ्यास करता है (सः मर्त्यः) वह पुरुष ( देवतातये ) अपने इन्द्रियों के विशेष हित के लिये ( ऋधक् ) अति समृद्धिमान् शक्तिशाली होकर भी (इत्था शशमे) सचमुच शान्ति को प्राप्त कर लेता है। (२) उसी प्रकार ( यः ) जो ( नूनं ) निश्चय से (मित्रावरुणा) प्रजा के स्नेही न्यायाधीश और शत्रुओं और दुष्टों के वारक श्रेष्ठ राजा दोनों को ( हव्यदातये ) ग्रहण करने योग्य उत्तम पदार्थों के प्रदान और स्वयं प्राप्त करने के लिये ( आचक्रे ) उचित रूप से आश्रय लेता है ( सः मर्त्यः ) वह मनुष्य (देवतातये ) विद्वान् और विजयी पुरुषों के हित के लिये ( ऋधक् ) समृद्धिमान् होकर भी ( इत्था ) इस प्रकार से ( शशमे ) बहुत अधिक शान्ति प्राप्त करता है, वह मान, मद, गर्व नहीं धारण करता। और स्वतः उपद्रव रहित भी रहता है। उसके यश और समृद्धि में दूसरे उपद्रव नहीं करते।

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम्॥ ८८ ॥
ऋ० ७। ७४। ३॥

वासिष्ठ ऋषिः। अश्विनौ देवते। बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे ( अश्विनौ ) स्त्री पुरुषों के समान एक दूसरे के अधीन रहने वाले राजा प्रजाजनो! अथवा पूर्वोक्त राष्ट्र में व्यापक अधिकार वाले दो अधिकारी राजा और सभापति पुरुषो! आप दोनों ( आयातम् ) आओ। ( उप भूषतम् ) इस स्थान को सुभूषित करो। अथवा दोनों समीप होकर रहो। हे (वृषणा) सुखों के वर्षाने वाले! तुम दोनों ( मध्वः पिबतम् ) अन्न और उसके उत्तम रस का कर के रूप में स्वयं पान करो जिस प्रकार सूर्य और मेघ पृथ्वी से जल ग्रहण करते हैं और फिर उसी पर बरसा देते हैं उसी प्रकार (पयः दुग्धम्) उत्तम पुष्टिकारक दूध और अन्न और जल से राष्ट्र को पूर्ण करो। और (जेन्यावसू) विजयशील धन के स्वामी तुम दोनों ( नः ) हम प्रजाओं को (मा मर्धिष्टम्) कभी विनाश मत करो और ( नः आगतम् ) हमें सदा प्राप्त होवो।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥८९॥
ऋ० १। ४०। ३॥

भा०—( ब्रह्मणः पतिः ) धन, वेद और महान् राष्ट्र का पालक पुरुष ( प्र एतु ) हमें प्राप्त हो। ( सूनृता ) शुभ सत्यमयी वाणी ( देवी ) ज्ञान से पूर्ण विदुषी स्त्री के समान हमें ( प्र एतु ) प्राप्त हो। ( देवाः ) विद्वान् पुरुष और वीर सैनिक गण ( नः ) हमारे (वीरं) शूरवीर (नर्यम्) सब पुरुषों के हितकारी, नरश्रेष्ठ (पंक्तिराधसम्) पंक्ति अर्थात् पांचों जनों को वश करनेहारे, अथवा सेना की पंक्तियों को वश करने में समर्थ अथवा पांचों प्रकार के धनों के स्वामी या पांचों प्रकार के राष्ट्र के वशकारी अरि,

मित्र, अरि-मित्र, मित्र-मित्र और स्वकीय इनमें ( यज्ञम् ) प्रजापति रूप सब के पूज्य और सब के संगतिकारक पुरुष को ( अच्छ नयन्तु ) साक्षात् प्राप्त करावें। ऐसे को राजा बनावें।

चन्द्रमा॑ ऽअप्स्व॒न्तरा सु॑प॒र्णो धा॑वते दि॒वि।
र॒यिं पि॒शङ्गं॑ बहु॒लं पु॑रु॒स्पृह॒ꣳ हरि॑रेति॒ कनि॑क्रदत् ॥ ९० ॥
( प्र० द्वि० ) १ । १०५ । १ ॥

त्रित ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—जैसे ( चन्द्रमाः ) चन्द्रमा ( अप्सु अन्तरा ) जलों या जलमय मेघों या अन्तरिक्ष के बीच में गति करता है और ( सुपर्णः ) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य या उत्तम पक्षों से युक्त विशाल पक्षी ( दिवि धावते ) आकाश में गति करता है और जिस प्रकार ( कनिक्रदत् ) खूब गर्जना करता हुआ ( हरिः ) सिंह, या हिनहिनाता हुआ अश्व गति करता है और तीनों में से प्रत्येक ( पिशङ्गम् ) सुवर्ण के समान उज्ज्वल ( बहुलं ) बहुत अधिक ( पुरुस्पृहम् ) बहुतों का अच्छा लगने हारा मनोहर रूप धारण करता है उसी प्रकार राजा, सभाध्यक्ष ( अप्सु अन्तरा ) आप्त प्रजाजनों के बीच ( चन्द्रमाः ) चन्द्र के समान आह्लादक कान्ति से युक्त होकर और ( दिवि ) ज्ञान प्रकाश में या राजसभा में ( सुपर्णः ) उत्तम पालन और ज्ञानमय साधनों से युक्त होकर सूर्य या महा गरुड़ के समान विजयी होकर ( धावते ) गति करे। और वह ( हरिः ) अश्व के समान या सिंह के समान स्वयं सबको आगे ले जाने में समर्थ, सबके मन को हरनेहारा, सब के दुःखों का नाशक होकर ( कनिक्रदत् ) गर्जन करता हुआ ( पिशङ्गं ) सुवर्ण के समान उज्ज्वल, ( बहुलं ) बहुत अधिक ( पुरुस्पृहम् ) बहुतों से वाञ्छित ( एवं ) सबकी इच्छानुकूल ( रयिम् ) ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

दे॒वन्दे॑वं॒ वोऽव॑से दे॒वन्दे॑वम॒भिष्ट॑ये।
दे॒वन्दे॑वꣳ हुवेम॒ वाज॑सातये गृ॒णन्तो॑ दे॒व्या धि॒या ॥ ९१ ॥
ऋ० ८ । २७ । १३ ॥

मनुर्ऋषिः । विश्वदेवा देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—( देव्या धिया ) उत्तम भावों से उज्वल, प्रकाशमान विद्वान्, ईश्वर और वीर राजा के योग्य ( धिया ) स्तुति से और ( गृणन्तः ) स्तुति या आदर वचन का प्रयोग करते हुए हम लोग ( अवसे ) रक्षण, ज्ञान और आजीवन सुख के प्राप्त करने के लिये हम ( देवं देवम् ) प्रत्येक विद्वान् को बुलायें । और ( अभीष्टये ) अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये हम ( देवं देवम् ) प्रत्येक व्यवहारकुशल पुरुष को ( हुवेम ) आदर-पूर्वक बुलावें । और ( वाजसातये ) संग्राम विजय के लिये और अन्नादि ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये ( देवं देवम् ) प्रत्येक विजयेच्छु वीर पुरुष को हम अपनावें ।

**दि॒वि पृ॒ष्टो अ॑रोचता॒ग्निर्वै॑श्वान॒रो बृ॒हन् ।**
**क्ष्मया॑ वृधा॒न ऽओज॑सा॒ चनो॑हितो॒ ज्योति॑षा बाधते॒ तमः॑ ॥६२॥**

मेध ऋषिः । वैश्वानरो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—( वैश्वानरः ) समस्त लोकों का हितकारी, ( अग्निः ) प्रकाश स्वरूप सूर्य जिस प्रकार ( बृहन् ) महान् होकर ( दिवि ) प्रकाश में, तेज में ( पृष्टः ) पूर्ण रूप से स्थित होकर ( क्ष्मया ) पृथिवी के साथ अपने ( ओजसा ) तेजो बल से ( वृधानः ) समस्त ओषधियों को बढ़ाता हुआ ( चनोहितः ) अन्न के लिये अति हितकारी होता है और (ज्योतिषा) प्रकाश से ( तमः बाधते ) अन्धकार को दूर करता है। उसी प्रकार ( अग्निः ) सबका अग्रणी नायक एवं विद्वान् ( वैश्वानरः ) समस्त मनुष्यों का हितकारी, ( बृहन् ) स्वयं महान् होकर ( दिवि ) ज्ञान विज्ञान से युक्त राज-सभा के बीच ( पृष्टः ) तेज से और ज्ञान से सिक्त होकर, अथवा अभिषेक द्वारा अभिषिक्त होकर ( क्ष्मया ) अपने बड़े सामर्थ्य से पृथिवी रूप राष्ट्र से और (ओजसा) तेज, पराक्रम से ( वृधानः ) स्वयं वृद्धि करता हुआ, ( चनोहितः ) अपने सामर्थ्य से अन्न आदि ऐश्वर्यों को धारण करने

वाला होकर (ज्योतिषा) अपनी ज्ञान ज्योति, तेज से (तमः) समस्त प्रजा के दुःखकारी कारण, शोक, दुःख रूप अन्धकार को (बाधते) नष्ट करता है।

इन्द्रा॑ग्नी अ॒पादि॒यम्पूर्वाग॑ात्प॒द्वती॑भ्यः ।
हि॒त्वी शिरो॑ जि॒ह्वया॒ वाव॑द॒च्चर॑त्त्रि॒ꣳशत्प॒दा न्य॑क्रमीत् ॥६३॥
ऋ० ६ । ५९ । ६ ॥

सुहोत्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । प्रवल्हिका । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! ( इयम् ) यह ( अपात् ) पाद रहित होकर ( पद्वतीभ्यः ) पाद वालियों से ( पूर्वा ) पूर्व भी विद्यमान (आ अगात्) आती है। (शिरः हित्वा) शिर त्याग कर ( जिह्वया वावदत् ) जीभ से बोलती है। ( चरत् ) चलती है, और ( त्रिंशत् पदा ) तीस पग ( नि अक्रमीत् ) चलती है। यह प्रहेलिका का शब्दार्थ है। इसकी योजना उषा और वाणी दोनों पक्षों में होती है।

उषापक्ष में—हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि, सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान गुरु और शिष्य, राजा और प्रजाजनो ! ( इयम् ) यह उषा ( अपात् ) विना पगों वाली होने से 'अपात्' है। अथवा सूर्य के अभाव में प्रथम प्रकट होने से निराधारसी दीखती है इसलिये अपात् है वह ( पद्वतीभ्यः ) पैरों वाली प्रजाओं से भी ( पूर्वा ) पूर्व अर्थात् सोती हुई प्रजाओं से पूर्व उदय होकर ( आ अगात् ) आती है, प्रकट होती है। वह ( शिरः हित्वा ) शिर को छोड़ कर अर्थात् विना शिर रूप सूर्य के उदय होने के पूर्व ही ( जिह्वया ) वाणी से या पक्षियों आदि की जिह्वा द्वारा ( वावदत् ) बोलती, शब्द करती और ( चरत् ) कालक्रम से विचरती है और ( त्रिंशत् पदा ) तीस मुहूर्त रूप पदों को ( नि अक्रमीत् ) चलती है ( दया०, सायण )।

वाणी के पक्ष में—हे इन्द्र ! और हे अग्ने ! हे प्राण और हे पुरुष ! ( इयं अपाद् ) यह वाणी पाद रहित गद्य वाणी ( पद्वतीभ्यः पूर्वा आ अ-

गात्) पदों वाली, पद्यमयी वाणी से भी पूर्व आती है, वह मनुष्य के मन में अन्धकार में उषा के समान, ज्ञान रूप से प्रकट होती है (शिरः हित्वी) शिर अर्थात् प्रथम पद या मुख्य, आख्यात पद को छोड़ कर (जिह्वया वावदत्) वाणी द्वारा बोली जाती है। ( चरत् ) और इस प्रकार प्रकट होती हुई ( त्रिंशत् पदा ) तीस पद अर्थात् तीस अंगुल ( नि अक्रमीत ) गति गरती है अर्थात् मूल आधार से लेकर मुख तक ३० अंगुल गति करती है। (महीधर).

अथवा—उषापक्ष में—यह पादहित होकर पाद वाली, सोती प्रजाओं से पूर्व ही आजाती है। और ( शिरः हित्वी ) प्राणियों के शिर को प्रेरित करती हुई प्राणियों के जिह्वा द्वारा शब्द करती हुई ( चरत् ) उच्चारण करती है। और ३० मुहूर्त्त को पार करती है ( सायण )

वाणीपक्ष में अर्थान्तर—( इन्द्राग्नी ) हे इन्द्र, जीव और अग्ने जाठर अग्ने ! यह तुम्हारी अद्भुत क्रिया है कि वाणी ( इयं ) यह ( पद्वतीभ्यः पूर्वा ) सुबन्त, तिङन्त पदों से युक्त प्रकट वाणी से पूर्व ( अपात् ) पाद रहित, अव्यक्त रूप में ही अन्तःकरण में (आ अगात्) प्रकट होती है। वह प्रथम ( शिरः हित्वी ) शिरो भाग, तालु को प्रेरणा करके ( जिह्वया ) जीभ द्वारा ( वावदत् ) बोली जाती हुई ( चरत् ) प्रकट होती या उच्चारण की जाती है। और पुनः ( त्रिंशत् पदानि ) तीस पदों या स्थानों को ( नि अक्रमीत् ) व्याप लेती है। अर्थात् मूल देश से लेकर जिह्वा तक तीसों अंगुल परिमाण शरीर भाग को व्याप लेती है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्भाष्य में विद्युत् के पक्ष में भी इस मन्त्र की योजना की है। मन्त्र अस्पष्ट है और अधिक विचार की अपेक्षा करता है।

**दे॒वासो॒ हि ष्मा॒ मन॑वे॒ सम॑न्यवो॒ विश्वे॑ सा॒कꣳ सरा॑तयः।**
**ते नो॑ अ॒द्य ते ऽअ॑प॒रन्तु॒चे तु नो॒ भव॑न्तु वरिवो॒विद॑: ॥ १४ ॥**

ऋ० ८ । २७ । १४ ॥

मनुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—( विश्वे ) समस्त ( देवासः ) विद्वान्, विजयी एवं व्यवहारकुशल पुरुष ( मनवे ) मननशील मनुष्य के हित के लिये ( साकम् ) एक साथ ( समन्यवः ) समान ज्ञान और मान और तेज तथा क्रोध या पराक्रम युक्त ( सरातयः ) समान रूप से दानशील, निष्पक्षपात होकर ( हि स्म ) रहा करें। और वे ( अद्य ) आज और ( अपरम् ) आगामी भविष्य में भी ( नः ) हमारे और ( नः तुचे ) हमारे दुःखहारी पुरुषों या सन्तानों के हित के लिये ( वरिवोविदः ) धन ऐश्वर्य के प्राप्त करने और कराने करने वाले ( भवन्तु ) हों।

'तुचे'—'तुग्' इति अपत्यनाम, तोजयति हिनस्ति हि पितुर्दुःखमिति तुक् पुत्रः ॥ इति सायणः ॥

अपाधमद्भिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्तऽइन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ ६५ ॥

ऋ० ८। ७६। २ ॥

नृमेध ऋषिः। मरुत्वान् इन्द्रो देवता। बृहती। मध्यमः ॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति ( अशस्तिहा ) शासन व्यवस्था से रहित, उच्छृङ्खल पुरुषों का नाशक उनको दण्ड देने में समर्थ होकर ( अभिशस्तीः ) सब ओर से आने वाली हिंसाकारिणी सेनाओं और अपवादों को (अप-अधमत्) दूर भगा दे और इस प्रकार वह (इन्द्र) शत्रुहन्ता होकर ( द्युम्नी ) अन्नादि से समृद्ध और ऐश्वर्यवान् ( अभवत् ) होता है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे ( बृहद्भानो ) अति अधिक तेज से युक्त अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन्! हे ( मरुद्गण ) वीर सैनिकों के गणाधीश्वर ( देवाः ) विजयशील पुरुष और विद्वान् एवं व्यवहार कुशल वैश्यगण भी ( ते ) तेरे ( सख्याय ) मित्र भाव के लिये ( येमिरे ) यत्न करते हैं, एवं नियम व्यवस्था में रहते हैं।

प्र व॒ ऽइन्द्रा॑य बृह॒ते मरु॑तो॒ ब्रह्मा॑र्चत ।
वृ॒त्रꣳ ह॑नति वृत्र॒हा श॒तक्र॑तु॒र्वज्रे॑ण श॒तप॑र्वणा ॥ ६६ ॥
ऋ० ८ । ७८ । ३ ॥

नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे ( मरुतः ) वायु के समान तीव्र वेग से शत्रुओं पर आक्रमण करने और उनको मारने वाले वीर प्रजास्थ पुरुषो और आप लोग (वः) अपने में से ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् ( बृहते ) बड़े पुरुष के लिये ( ब्रह्म अर्चत ) धन और अन्न या आदर सत्कार प्रदान करो । (शतक्रतुः) सैकड़ों प्रज्ञा और कर्म सामर्थ्यों से युक्त ( वृत्रहा ) विघ्नकारी, नगर घेरने वाले शत्रु को मेघ को सूर्य के समान छिन्न भिन्न करने में समर्थ वीर पुरुष ही (शतपर्वणा) सैकड़ों के पालन करने वाले एवं सैकड़ों अवयवों, पोरुओं एवं शस्त्रास्त्रों, या सेना के दलों से युक्त(वज्रेण) वीर्यवान् सैन्यबल, और शस्त्रास्त्र समूह से ( वृत्रं हनति ) शत्रु को नाश करे ।

अ॒स्येदिन्द्रो॑ वावृधे॒ वृष्ण्य॒ꣳ शवो॒ मदे॑ सु॒तस्य॒ विष्ण॑वि ।
अ॒द्या तम॑स्य महि॒मान॑मा॒यवोऽनु॑ ष्टुवन्ति पू॒र्वथा॑ ॥ ६७ ॥
ऋ० ८ । ३ । ८ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । महेन्द्रो देवता । सतो बृहती । मध्यमः ॥

भा०—जिस प्रकार ( विष्णवि ) व्यापक पृथ्वी पर ( सुतस्य मदे ) प्राप्त हुए जल से पूर्ण हो जाने पर ( इन्द्रः ) सूर्य ( अस्य ) इस मेघ के ( शवः ) विद्युत् बल और ( वृष्ण्यं ) वर्षण सामर्थ्य को ( वावृधे ) बढ़ाता है । उसी प्रकार ( सुतस्य ) अभिषेक द्वारा स्थापित ( विष्णवि ) व्यापक राष्ट्र में ( मदे ) हर्ष, सुख और समृद्धि से तृप्त, भरे पूरे रहने पर ( इत् ) ही ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा भी ( शवः ) अपना बल और ( वृष्ण्यं ) प्रजा पर सुख सेचन या वर्ष, के सामर्थ्य को और सेना बल को उसी प्रकार बढ़ावे ।

इमा उ त्वा०। यस्यायम्०। अयꣳ सहस्रम्०। ऊर्ध्व ऊ षु णः०।

भा०—'इमा उ त्वा०', 'यस्यायम्०', 'अयं सहस्रम्०' ये तीनों प्रतीकें अ० ३३।८१–८३ तक के तीनों मन्त्रों की हैं। 'ऊर्ध्व ऊ षु णः'० यह प्रतीक अ० ११।४२ मन्त्र की है।

॥ इति त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥



# अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

[अ० ३४] आदित्ययाज्ञवल्क्यावृषी ॥

॥ओ३म्॥ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१॥

[१–६] शिवसंकल्प आदित्ययाज्ञवल्क्यौ वा ऋषी। मनो देवता। त्रिष्टुप्।
धैवतः ॥ शिवसंकल्पसूक्तम्। शिवसंकल्पोपनिषत्।

भा०—(यत्) जो (मनः) मन, संकल्प विकल्प करने वाला भीतरी अन्तःकरण (जाग्रतः) जागते हुए पुरुष का (दूरम् उद् आ एति) दूर २ के पदार्थों तक संकल्प द्वारा ही सर्वत्र जाया करता है। और (सुप्तस्य) वह ही सोते हुए पुरुष का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) उसके भीतर आ जाता है। (तत्) वह (उ) निश्चय से (ज्योतिषां) ज्योति-वाले, प्रकाश करने वाले ग्रह नक्षत्रादि के बीच सूर्य के समान, नाना विषयों को प्रकाशित करने वाले इन्द्रिय गण के बीच में (दूरंगमम्) दूर तक पहुंचने वाला (ज्योतिः) प्रकाशक साधन है। वह ही (देवम्) देव अर्थात् विषयों में रमण करने वाले आत्मा का (एकम्) एकमात्र भीतरी साधन है। (तत्) वह मेरा (मनः) मन, अर्थात् ज्ञान का साधन, इन्द्रिय सदा (शिवसंकल्पम्) शुभ, कल्याणमय संकल्प करने वाला (अस्तु) हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥

भा०—(येन) जिस मन से (अपसः) कर्म करने हारे, कर्मण्य पुरुष और (मनीषिणः) मनस्वी, दृढ़ निश्चयी, ज्ञानवान् पुरुष और (धीराः) ध्याननिष्ठ योगी जन, (विदथेषु) यज्ञों, ज्ञानयुक्त व्यवहारों,

सभास्थानों और युद्धादि के अवसरों में और ( यज्ञे ) यज्ञ या परम उपासनीय पूज्य परमेश्वर के निमित्त ( कर्माणि ) नाना उत्तम कर्मों का ( कुर्वन्ति ) आचरण करते हैं और ( यत् ) जो (प्रजानाम् अन्तः) समस्त प्रजाओं के भीतर ( अपूर्वम् ) अपूर्व, अद्भुत, सबसे उत्तम भीतरी इन्द्रिय ( यक्षम् ) सब अन्य इन्द्रियों को सुसंगति, सुव्यवस्था करने वाला है ( तत् ) वह (मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु) मेरा मन शुभ संकल्प वाला, धार्मिक, कल्याण ज्ञान वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु।
यस्मान्न ऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३॥

भा०—( यत् ) जो मन ( प्रज्ञानम् ) सबसे उत्तम ज्ञान का साधन है जो ( चेतः ) यथार्थ ज्ञान कराने वाला और स्मरण करने का भी साधन है। और जो ( धृतिः च ) भीतर धारण अर्थात् चिरकाल तक स्मरण रखने का भी साधन है। और ( यत् ) जो ( प्रजासु ) प्रजाओं, प्राणियों के भीतर ( अमृतम् ) कभी नष्ट न होने वाला ( अन्तरम् ) भीतर ही विद्यमान, ( ज्योतिः ) सब पदार्थों का प्रकाशक गृह में दीपक के समान शरीर को 'चेतन' रखने वाला साधन भी है। ( यस्मात् ऋते ) जिसके विना ( किञ्चन कर्म ) कुछ भी कर्म ( न क्रियते ) नहीं किया जाता ( तत् मे मनः ) वह मेरा मन ( शिवसंकल्पम् ) शिव, शान्त, शुभ परमेश्वर के संकल्प या इच्छा वाला और उत्तम विचारवान् ( अस्तु ) हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥

भा०—(येन) जिस मन के द्वारा ( इदम् ) यह ( भूतम् ) अतीत, भूतकाल के, ( भुवनम् ) वर्त्तमान काल के और ( भविष्यत् ) भविष्यत् काल के ( सर्वम् ) समस्त पदार्थ ( अमृतेन ) अमृत, नित्य आत्मा के साथ मिलकर ( परिगृहीतम् ) ग्रहण किये जाते हैं, जाने जाते हैं और

जैसे ब्रह्मा द्वारा, या यजुर्वेद द्वारा (सप्तहोता ) सात होता, आदि ऋत्विजों से होने वाला यज्ञ किया जाता है उसी प्रकार ( येन ) जिस अन्तःकरण द्वारा सात शिर में स्थित विषयों के ग्रहण करने वाले चक्षु आदि इन्द्रियों से युक्त अथवा सात शरीर को धारण और जीवन देने वाले सात धातुओं से युक्त ( यज्ञः ) आत्मा या देहरूप यज्ञ ( तायते ) सम्पादन किया जाता है ( तत् ) वह ( मे मनः ) मेरा मन ( शिवसंकल्पम् ) शुभ संकल्प वाला और मोक्षपथगामी ( अस्तु ) हो ।

**यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।**
**यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥**

भा०—( रथनाभौ अराः इव ) रथ के चक्र की नाभि में जिस प्रकार अरे लगे होते हैं उसी प्रकार ( यस्मिन् ) जिस मनमें ( ऋचः ) ऋग्वेद के मन्त्र, (साम) सामवेद और (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र गण ( प्रतिष्ठिताः ) स्थित हैं अर्थात् वेद आदि नाना विज्ञान पढ़ लेने पर स्मृति रूप से जिसमें सब स्थित रहते हैं । और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्रजाओं, प्राणियों के ( सर्वम् चित्तम् ) समस्त चित्त, समस्त पदार्थों का ज्ञान भी (ओतम्) सूत्र में मणियों के समान और पट में सूत्रों के समान ओत-प्रोत अर्थात् पिरोये जाते हैं ( तत् ) वह मेरा ( मनः ) मननशील अन्तःकरण और उससे युक्त आत्मा भी ( शिवसंकल्पम् अस्तु ) शुभ वेद तथा परमेश्वर आदि के ज्ञान, पठन, मनन आदि उत्तम विचार परम्परा से युक्त हो ।

**सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव ।**
**हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥**

भा०—( सुषारथिः = सु-सारथिः ) उत्तम सारथि, कोचवान् (अभीशुभिः ) वागों से ( वाजिनः ) वेगवान् ( अश्वान् इव ) अश्वों को जिस प्रकार ( नेनीयते ) नाना मार्गों पर ले जाता है उसी प्रकार ( यत् ) जो मन, ( अभीशुभिः ) सर्वत्र अपनी शीघ्र गतियों और शीघ्र क्रिया करने

वाली प्रेरक वृत्तियों से ( वाजिनः ) ज्ञान और बल से युक्त ( मनुष्यान् ) मननशील प्राणियों को भी ( नेनीयते ) अपने वश करके ले जाता है और ( यत् ) जो ( हृत्-प्रतिष्ठम् ) हृदय स्थान में स्थित और ( अजिरम् ) जरा आदि दशाओं से रहित, सदा बलवान् अथवा ( अजिरम् ) विषयों के प्रति इन्द्रियों को लेजाने में और स्वयं संकल्प द्वारा जाने में समर्थ है और जो ( जविष्ठम् ) सबसे अधिक वेगवान् है ( तत् मे मनः ) वह मेरा मननशील चित्त सदा (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ संकल्पवाला हो ।

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ ७ ॥

ऋ० १ । १८७ । १ ॥

अगस्त्य ऋषिः । पितुर्देवता । उष्णिक् । ऋषभः ॥ अन्नस्तुतिः ॥

भा०—मैं उस ( महः ) महान् ( धर्माणम् ) शरीरों और राष्ट्रों के धारण करने वाले ( तविषीम् ) बलवान् ( पितुम् ) सबके पालक, अन्न के समान सबके जीवनों के आधार आत्मा और राजा के ( स्तोषम् ) गुणों का वर्णन करता हूं । ( यस्य ओजसा ) अन्न के बल पर जिस प्रकार पुरुष ( वृत्रं विपर्वम् वि अर्दयत् ) विघ्नकारी कालरूप मृत्यु को भी खण्ड २ कर नाना प्रकार से पीड़ित करता है अर्थात् काल पर वश पा लेता है उसी प्रकार ( यस्य ओजसा ) जिसके पराक्रम से ( त्रितः ) तीनों कालों में व्याप्त एवं उत्तम, मध्यम, अधम तीनों में प्रतिष्ठित, अथवा शत्रु, मित्र और उदासीन तीनों पर विजयशील होकर अथवा विस्तृत राष्ट्र बल वाला होकर ( वृत्रं ) राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को, जल सहित मेघ को सूर्य के समान ( विपर्वम् ) उसके पर्व २, ग्रन्थि २, खण्ड २ काट कर ( वि अर्दयत् ) विविध उपायों से पीड़ित या दण्डित करता है ।

त्रितः—त्रिस्थान इति म० । त्रिषु कालेषु इति द० । विस्तीर्णतम इति सा० ।

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शञ्च नस्कृधि ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण ऽआयूंषि तारिषः ॥ ८ ॥

अथर्व० ७ । २० । २ ॥

[ ८०९ ] ब्रह्मा ऋषिः । अनुमतिर्देवता । अनुष्टुप् गान्धारः ॥

भा०—हे ( अनुमते ) अनुकूल मति से युक्त, सब कार्यों की अनुमति, अर्थात् स्वीकृति देने वाले सभापते ! अथवा राजसभे ! तू ( नः ) हमें ( अनु मन्यासै ) अनुमति, स्वीकृति दिया कर । तू ( शं च कृधि ) सुख कल्याणकारी कार्यों को ही किया कर । ( क्रत्वे ) उत्तम मति, या बुद्धि और ( दक्षाय ) बल, चतुरता सम्पादन करने के लिये ही ( नः हिनु ) हमें आगे बढ़ा, प्रेरित कर । ( नः ) हमारे ( आयूंषि ) जीवनों को ( प्र तारिषः ) खूब बढ़ा ।

अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञन्देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ॥ ९ ॥

अथर्वा ऋषिः । अनुमति देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( अद्य ) आज ( अनुमतिः ) स्वीकृति देने वाला सभापति, ( नः ) हमारे ( यज्ञम् ) परस्पर सुसंगत राज्य कार्य को ( देवेषु ) विद्वान् पुरुषों में ( अनुमन्यताम् ) स्वीकार करे अर्थात् राष्ट्र कार्य को विद्वानों के आधार पर चलावे और ( हव्यवाहनः ) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाला ( अग्निः ) अग्रणी नायक, एवं तेजस्वी राजा और सभापति दोनों ( दाशुषे ) दानशील, करप्रदा प्रजा के लिये ( मयः भवतम् ) सुखकारी हों ।

---

८—'त्वं मंससे' इति अथर्व० । (तृ० च०) 'जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः' इति अथर्व० ।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १० ॥

ऋ० २। ३२। ६॥ अथर्व० ७। ४६। १॥

गृत्समद ऋषिः। सिनीवाली देवता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे (सिनीवालि) समस्त प्रजाओं को अपने पालन और रक्षण, भरण और पोषण के सामर्थ्य से बांधने वाली, प्रतिपत् चन्द्रकला और अमावास्या के समान नव राजचन्द्र से विराजने वाली राजसभे। हे (पृथुष्टुके) बड़े भारी संघशक्ति से युक्त तू (या) जो (देवानां) देवों, विद्वानों, एवं विजयेच्छु और व्यवहार कुशल, ज्ञानद्रष्टा, तत्वदर्शी पुरुषों को (स्वसा) उत्तम रीति से अपने भीतर बैठाने वाली, विद्वान् सभासदों से बनी (असि) है। तू (आहुतम्) प्रदान किये या समस्त राष्ट्र से ग्रहण किये गये (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य कर और सञ्चित बल को (जुपस्व) स्वीकार कर। और हे (देवि) दिव्य गुणों से युक्त राजसभे! तू (नः प्रजां दिदिड्ढि) हमारी प्रजा को उत्तम मार्ग दर्शा। उत्तम सुख प्रदान कर।

स्त्री के पक्ष में—हे (सिनीवालि) हृदय में प्रेम से बंधने वाली और गृह का पालन करनेवाली! अथवा, प्रेम बन्धन में स्वयं बँधने और भरण पोषण करने योग्य! हे (पृथुष्टुके) विशालबन्धन! विशाल कामना युक्त, विशाल केशपाश से युक्त! बड़ी स्तुति योग्य, यशस्विनि! हे (देवि) कामना युक्त प्रियतमे! (या) जो तू (देवानाम्) विद्वानों या कामना करने वाले अभिलाषी वरों के बीच में (स्वसा) सुभूषित, सुन्दर रूपवती होकर (असि) विराजती है तू मेरे (आहुतम्) दिये हुए (हव्यम्) स्वीकार करने योग्य अन्न वस्त्रालंकारादि पदार्थ को (जुपस्व) प्रेम से स्वीकार कर। और (नः) हमें (प्रजां) उत्तम सन्तान (दिदिड्ढि) प्रदान कर। उत्पन्न कर और उसको उत्तम शिक्षा दे।

'सिनीवाली'—दृष्टचन्द्राऽमावास्या सिनीवालीति सायणः। सिन-

मिति अन्ननामसु व्याख्यातम् । वालं पर्व इति देवराजः ।। सिनी प्रेमवद्धा चासौ बलकारिणी चेति दया० । सिनमन्नं भवति । सिनाति भूतानि । वालं पर्व । पर्व वृणोतेः । तस्मिन्नवतीति वा । वालिनीवा, वालेनैवास्या-मणुत्वत्वाच्चन्द्रमाः सेवितव्यो भवति इति वा । निरु० ११ । ३ । १० ॥

'स्वसा'—सुअसा भवति । स्वेपु सीदति वा । निरु० ११ । ३ । ११ ॥

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्त्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥ ११ ॥

गृत्समद ऋषिः । सरस्वती देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(सस्रोतसः) समान रूप से स्रोत अर्थात् प्रवाह वाली नदियें जिस प्रकार अधिक जलवाली, बड़ी नदी में मिलकर उसी में लीन हो जाती हैं उसी प्रकार ( पञ्च ) पांचों ( नद्यः ) समृद्ध प्रजाएं (सरस्वतीम्) प्रशस्त वेद ज्ञानवाली विद्वत्सभा या विद्वान् को ( सस्रोतसः ) समान ज्ञानप्रवाह वाली होकर (अपियन्ति) आ मिलती हैं और उसी में लीन हो जाती हैं । वह ( सरस्वती ) सरस्वती उत्तम वेद ज्ञान को धारण करने वाली विद्वत्सभा और विद्वान् जन ( पञ्चधा ) पांचों प्रकार के जनों को धारण करने वाला होकर ( देशे ) देश, राष्ट्र में ( सरित् ) नदी के समान सबके जीवनाधार ज्ञान रूप जल को फैलाने वाला और नदी के समान ज्ञान के अक्षय प्रवाह और निष्पक्षपात रूप से सबके मलों का शोधक ( अभवत् ) हो जाता है ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद पांचों समृद्ध प्रजाएं विद्वानों के वेदमय ज्ञान-वाणी में मिलकर और उसको प्रमुख बनाकर एकाकार ज्ञानवती हो जाती हैं । वह वेदमयी वाणी पांचों को पालती पोषती है । वह नदी के समान सब के लिये समान रूप से उपयोगी, सुखजनक और पाप मलादि धोने वाली हो।

वाणी के पक्ष में—( पञ्चनद्यः ) नदियों के समान प्रवाहरूप से इन्द्रिय नालिकाओं से बहने वाली पांच प्रकार की वृत्तियां ( सस्रोतसः )

राजन्! ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् होकर ( अव भर ) अपने अधीन प्रजा का भरण पोषण कर। इससे ( प्रवीता ) अच्छी प्रकार कामना युक्त स्त्री के समान प्रेम से बंधकर प्रजा भी ( सद्यः ) शीघ्र ही ( वृषणं ) सब सुखों के वर्षक, वीर्यवान् राजा को ( जजान ) उत्पन्न करती है। वह ( अरुषस्तूपः ) हिंसा रहित ज्वालामय अग्नि के समान तेजस्वी हो जाता है। ( अस्य ) उसका ( पाजः ) पालन सामर्थ्य ( रुशत् ) शत्रुओं का नाशक होता है। और वह (इडायाः पुत्रः) पृथ्वी का पुत्र, पृथ्वीनिवासी पुरुषों को दुःखों से त्राण करने में समर्थ होकर ( वयुने ) उत्तम ज्ञान, कर्त्तव्य कर्म में भी ( अजनिष्ट ) सामर्थ्यवान् हो जाता है।

स्त्री पुरुष पक्ष में—(अरुषस्तूपः) अपने तेज या वीर्य से स्त्री को कष्टदायी न होकर पति ( अस्य रुशत् पाजः ) अपने तेजोमय वीर्य को (चिकित्वान् उत्तानायाम् अव भर ) रोग रहित, गृहस्थ होकर उत्तान सोई पत्नी में धारण करावे। वह ( प्रवीता सद्यः वृषणं जजान ) प्रेम से बद्ध होकर शीघ्र ही अग्नि को अरणि के समान वीर्यवान् पुत्र को उत्पन्न करे। अथवा वह कामना युक्त होकर ( वृषणं ) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष को ( जजान ) उससे संग लाभ करके पुत्र रूप से उत्पन्न करे। ( इडायाः ) उत्तम स्त्री, या बीजारोपण की भूमि के ( वयुने पुत्रः अजनिष्ट ) उचित गर्भाशय में वह तेजो रूप वीर्य ही पुत्र रूप से उत्पन्न होता है।

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या ऽअधि।
जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥ १५ ॥

ऋ० ३। २९। ४॥

देवश्रवादेववातौ भारतावृषी। अग्निर्देवता। विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे ( जातवेदः ) ऐश्वर्यवन्! हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन्, अग्रणी सेनानायक, ( त्वा ) तुझको ( वयम् ) हम ( पृथिव्याः

१५—इळा पा०, ० वोळ्हवे इति काण्व०।

नाभा अधि ) पृथिवी के केन्द्र में और ( इडायाः पदे अधि ) स्तुति योग्य प्रजा के प्रतिष्ठित पद पर अथवा वाणी या आज्ञा प्रदान करने के आज्ञापक पद पर ( हव्याय ) स्तुति योग्य राजपद के ( वोढवे ) धारण करने के लिये ( निधीमहि ) स्थापित करते हैं।

आचार्य पक्ष में हे विद्वन्! तुझको हम पृथिवी के बीच, उत्तम वाणी के प्रतिष्ठित आचार्य पद पर, प्रदान करने योग्य ज्ञान के प्रदान करने के लिये स्थापित करें।

**प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे ऽअङ्गिरस्वत्।**
**सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय॥ १६॥**

ऋ० १। ६२। १॥

[ १६-१७ ] नोधा ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हम लोग ( शवसानाय ) बल के समान दुष्टों का नाश करने वाले अथवा दुष्टों के नाश के लिये बल वृद्धि चाहने वाले ( गिर्वणसे ) समस्त स्तुतियों के पात्र ( अंगिरस्वत् ) वायु, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, बलवान् ( सुवृक्तिभिः ) उत्तम शत्रुओं का वर्जन करनेवाली शक्तियों से ( स्तुवते ) स्तुतियोग्य ( ऋग्मियाग ) विद्वान्, ( विश्रुताय ) विविध शौर्य आदि गुणों द्वारा प्रख्यात, ( नरे ) नायक के ( शूषम् ) बल और ( आङ्गूषम् ) घोषणा करने का अधिकार या यशोवृद्धि को ( प्रमन्महे ) अच्छी प्रकार चाहें और ( सुवृक्तिभिः ) उत्तम रीति से हृदय को खींचने वाली और पापनाशक ज्ञान वाणियों से ( स्तुवते ) शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रवचन करनेवाले ( ऋग्मियाय ) स्तुतियोग्य एवं वेदमन्त्रों के ज्ञाता ( विश्रुताय ) विविध विद्याओं में प्रसिद्ध विद्वान् के ( अर्कम् ) स्तुति योग्य ज्ञान का ( अर्चाम ) आदर करें, उसे प्राप्त करें।

परमेश्वर के पक्ष में—विज्ञान के प्राप्त करने के लिये सर्व स्तुति योग्य

एक समान मनरूप स्रोत से ही वहती हैं। वे पांचों ( सरस्वतीम् अपि-यन्ति ) उत्तम ज्ञानमयी वाणी के रूप में लीन हो जाती हैं। अर्थात् पांचों ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है। ( सा उ ) वह वाणी भी ( देशे ) स्व-स्थान मुख में, ( सरित् ) निरन्तर वहनेवाली नदी के समान ही धारा प्रवाहरूप से निकलती ( अभवत् ) है।

दृषद्वती, शतद्रू, चन्द्रभागा, विपाशा, इरावती ये पांच नदियों का सरस्वती में मिलने परक अर्थ उवट ने किया है। पांच नदियें सरस्वती में मिल जाती हैं वह सरस्वती ही पञ्च प्रकार की या पांचगुनी होकर देश में नदी हो जाती है। 'दृषद्वती' आदि नामों का यहां उल्लेख न होने से ऐसा अर्थ करना असंगत है।

त्वम॑ग्ने प्रथमो ऽअङ्गि॑रा ऽऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑। तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॑सोऽजायन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥१२॥

ऋ० १ । ३१ । १ ॥

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी, अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू ( अङ्गिराः ) शरीर में रस के समान, अथवा अग्नि के समान तेजस्वी ( ऋषिः ) मन्त्रार्थद्रष्टा, ( देवानाम् ) विद्वानों और तेजस्वी पुरुषों के बीच में ( देवः ) सबसे अधिक विद्वान्, तेजस्वी, विजयी और ( प्रथमः ) सबसे प्रथम, मुख्य, सबका ( शिवः सखा ) कल्याणकारी मित्र ( अभवः ) हो। ( तव ) तेरे ( व्रते ) बनाये नियम व्यवस्था में रह कर ( कवयः ) विद्वान्, क्रान्तदर्शी पुरुष ( विद्मनापसः ) समस्त कर्त्तव्य कर्मों को जानने वाले हों और ( मरुतः ) शत्रुओं को मारने वाले वीर पुरुष ( भ्राजद्-ऋष्टयः ) प्रखर, तेजस्वी, चमचमाते हुए शस्त्रों वाले ( अजायन्त ) हों।

परमेश्वर के पक्ष में—हे अग्ने ! परमेश्वर ! तू ही सबसे प्रथम ज्ञानवान्

सबका द्रष्टा, सब देवों का देव, सबका कल्याणकारी, सबका मित्र है ! तेरे व्रत में दीक्षित होकर विद्वान् पुरुष ( विभ्रनापसः ) सब सत्कर्मों के ज्ञाता और सब ज्ञानों के द्रष्टा हो जाते हैं।

त्वन्नो॑ऽअग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॒श्च वन्द्य ।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेषꣳ॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥१३॥
ऋ० १ । ३१ । १२ ॥

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! राजन् ! ( तव व्रते ) तेरे नियम व्रत में रहने वाले ( नः ) हमें ( त्वम् ) तू हे ( देव ) दानशील, सर्वद्रष्टः ! हे विजिगीषो ! ( तव पायुभिः ) अपने पालनकारी सामर्थ्यों से ( नः मघोनः ) हमारे धन सम्पन्न पुरुषों और ( तन्वः च ) हमारे शरीरों को भी ( रक्ष ) पालन कर । हे ( वन्द्य ) वन्दनीय ! हे स्तुति करने योग्य ! तू हमारे ( तोकस्य ) पुत्र का और ( तनये ) पुत्र के पुत्र, पौत्रादि सन्तति और ( गवाम् ) गौ आदि पशुओं का भी ( अनिमेषम् ) निरन्तर ( रक्षमाणः ) रखवाला ( असि ) हो ।

परमेश्वर पक्ष में—हे अग्ने ! परमेश्वर ! तू अपने रक्षा सामर्थ्यों से ऐश्वर्यवानों की और हमारे शरीरों की रक्षा कर । हे स्तुति योग्य ! तू हमारे पुत्र, पौत्र और गौओं की निरन्तर रक्षा कर । हम तेरे बनाये नियमों में रहें ।

उ॒त्ता॒नाया॒मव॑ भरा चिकि॒त्वान्त्स॒द्यः प्रवी॑ता॒ वृष॑णं जजान ।
अ॒रु॒षस्तू॑पो॒ रुश॑दस्य॒ पाज॒ऽइडा॑यास्पु॒त्रो व॒युने॑ऽजनिष्ट ॥ १४ ॥
ऋ० ३ । २९ । ३ ॥

देवश्रवोदेववातौ भारतावृषी । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( उत्-तानायाम् ) उत्तम रूप से विस्तृत पृथिवी में तू हे

१०—'इळायास्पु०' इति काण्व० ।

प्राण के समान सर्व जीवनाधार, ज्ञानी, स्तुति योग्य, प्रसिद्ध परमेश्वर के बलकारी वेदमय आघोष रूप मन्त्रों या स्तुति योग्य स्वरूप की स्तुति करें और विचार और चिन्तन करें।

**प्र वो म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्य॑ꣳ शवसा॒नाय॒ साम॑ । येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञा ऽअर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन् ॥ १७ ॥**

ऋ० १ । ६२ । २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आप लोग ( शवसानाय ) बल वृद्धि के इच्छुक ( महे ) महान् राजा के लिये ( आङ्गूष्यम् ) घोषणा करने योग्य, कीर्त्तिजनक, ( महि नमः ) बड़ा भारी आदर सत्कार एवं शत्रु नमाने में समर्थ बल और अन्नादि ऐश्वर्य और ऐसे ( साम ) साम, स्तुति वचन, ( प्र भरध्वम् ) अच्छी प्रकार प्रदान करो, ( येन ) जिससे ( नः ) हमारे ( पूर्वे पितरः ) श्रेष्ठ पालक जन ( पदज्ञाः ) पद अर्थात् ज्ञान योग्य तत्वों के जाननेवाले ( अंगिरसः ) ज्ञानी और तेजस्वी पुरुष ( अर्चन्तः ) योग्य रूप से वर्त्तते हुए ( गाः ) नाना भूमियों, ज्ञान-वाणियों, और गौ आदि समृद्धियों को ( अविन्दन् ) प्राप्त करते हैं।

परमेश्वर और आचार्य के पक्ष में—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के लिये ( आङ्गूष्यं साम महि नमः प्र भरध्वम् ) आंगूष्य साम अर्थात् स्तुति योग्य सामगान और बड़ा भारी विनय प्रकट करो। ( येन ) जिसके बल से ( नः पूर्वे पितरः ) हमारे पूर्व के पालक गुरुजन और (अंगिरसः) ज्ञानवान् पुरुष ( पदज्ञाः ) आत्मस्वरूप को जानने हारे होकर ( अर्चन्तः ) स्तुति करते हुए ( गाः ) वेदवाणियों को ज्ञानरश्मियों के समान स्वयं प्राप्त करते और औरों को प्रदान करते हैं।

**इ॒च्छन्ति॑ त्वा सो॒म्यासः॒ सखा॑यः सु॒न्वन्ति॒ सोमं॒ दध॑ति॒ प्रयां॑ꣳसि । तिति॑क्षन्ते ऽअ॒भिश॑स्तिं॒ जना॑ना॒मिन्द्र॒ त्वदा कश्च॒न हि प्र॑के॒तः ॥ १८ ॥**

ऋ० ३ । ३० । १ ॥

देवश्रवोदेववातौ ऋषी । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे इन्द्र ! राजन् ! आचार्य ! ( त्वा ) तुझको ( सोम्यासः ) राष्ट्र-ऐश्वर्य प्राप्त करनेहारे उसके योग्य ( सखायः ) मित्रगण ( त्वा ) तुझे (इच्छन्ति) चाहते हैं । (सोमं सुन्वन्ति) सोम, ऐश्वर्य को उत्पन्न करते हैं । अथवा ऐश्वर्यवान् सबके आज्ञापक तेरा ( सुन्वन्ति ) अभिषेक करते हैं । और ( प्रयांसि दधति ) मनोहर अन्नादि उत्तम पदार्थों को धारण करते और प्रदान करते हैं । और ( अभिशस्ति ) शत्रुओं के द्वारा किये जानेवाले घोर शस्त्राघातों और निन्दाप्रवादों को भी ( तितिक्षन्ते ) सहते हैं । हे ( इन्द्र ) राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! ( जनानाम् ) प्रजाजनों के बीच में (प्रकेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान्, सबसे अधिक बुद्धिमान् और कीर्त्तिमान् ( त्वत् ) तुझ से ( कः चन ) दूसरा कौन है ? कोई भी नहीं ।

परमेश्वर के पक्ष में—सोम रस के इच्छुक यज्ञकर्त्ता और ब्रह्मानन्द रस के इच्छुक जन तुझे चाहते हैं। सोम अर्थात् परमेश्वर की स्तुति करते हैं उत्तम ज्ञानों का मनन करते हैं । निन्दा वचनों को सहते हैं और तितिक्षा का अभ्यास करते हैं । हे परमेश्वर ! तुझ से बड़ा ज्ञानी दूसरा कौन है?

न ते॑ दू॒रे प॑र॒मा चि॒द्रजा॑स्या तु प्र या॑हि हरिवो॒ हरि॑भ्याम् ।
स्थि॒राय॒ वृष्णे॒ सव॑ना कृ॒तेमा यु॒क्ता ग्रावा॑णः समिधा॒ने ऽअ॒ग्नौ ॥१६॥

ऋ० ३ । ३० । २ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—हे ( हरिवः ) अश्वों के स्वामिन् ! ( परमा चित् रजांसि) दूर से दूर के लोक, प्रजाजनों के निवासस्थान और शत्रुओं के देश भी ( ते ) तेरे लिये (दूरे न) दूर नहीं है । तू (हरिभ्याम्) अश्वों से ही(आ प्र याहि) सब देशों में प्रयाण कर, आया जाया कर । ( स्थिराय ) स्थिर ( वृष्णे ) सुखों के वर्धक एवं बलवान् तेरे लिये ही ( इमा ) ये सब ( सवना ) ऐश्वर्य उत्पादक कार्य ( कृता ) किये जाते हैं । और ( समिधाने अग्नौ )

अति प्रदीप्त अग्नि में जिस प्रकार ( सवाना कृता ) यज्ञ कर्म करने पर ( ग्रावाणः ) मेघ उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार ( समधाने अग्नौ ) तुझ नायक, अग्रणी पुरुष के प्रचण्ड और अग्नि के समान युद्ध में प्रज्वलित हो जाने पर (ग्रावाणः) ज्ञानों का उपदेश करने वाले विद्वान् एवं पाषाणों के समान दुष्टों के दलन करने वाले शस्त्रधर बलवान् पुरुष भी ( युक्ताः ) योग्य स्थानों पर नियुक्त होते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—हे ईश्वर ! दूर से दूर के स्थान भी तेरे लिये दूर नहीं। तू अपने धारण और आकर्षण सामर्थ्य से सब में व्याप्त है। तेरे ही किये हुए ये सब कार्य हैं। हृदय में तेरे प्रदीप्त हो जाने पर ही ये सब ( ग्रावाणः ) समस्त स्तुतिकर्त्ता विद्वान् भी योग द्वारा तेरा साक्षात् करते हैं, वे समाहित होते हैं।

**अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिꣳ स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम्।**
**भरेषुजाꣳ सुक्षितिꣳ सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥२०॥**

ऋ० १।९१।२१॥

२०—२३ गोतम ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ( सोम ) राजन् ! सेनापते ! (युत्सु) युद्धों में ( अषाढम् ) शत्रुओं से जिसको पराजित न होने वाले और ( पृतनासु ) सेनाओं में ( पप्रिम् ) पूर्ण बलवान् एवं सबके रक्षा करने वाले, ( स्वर्षाम् ) सबको सुख और ऐश्वर्य के देने और बांटने वाले ( अप्साम् ) मेघ जिस प्रकार जल सबको प्रदान करता है उसी प्रकार सबको प्राण अन्न देने वाले, अथवा ( अ-प्साम् ) प्रजाओं के धन को स्वयं न खा जाने वाले, ( वृजनस्य ) शत्रुओं के वारण करने वाले सैन्य बल के ( गोपाम् ) रक्षक, ( भरेषुजां ) संग्रामों और यज्ञों एवं प्रजा के भरण पोषण के कार्यों में प्रसिद्ध एवं विजयी ( सुक्षितिम् ) उत्तम निवासस्थान से युक्त, उत्तम

२०—अषाळ्हं० इति काण्व०।

भूमि के स्वामी, दृढ़ दुर्गवान्, ( सुश्रवसम् ) उत्तम यश ऐश्वर्य और अन्नादि से समृद्ध ( जयन्तम् ) विजय करने हारे ( त्वाम् अनु ) तेरे ही हर्ष के साथ हम प्रजाजन भी ( मदेम ) प्रसन्न एवं तृप्त, सुखी होकर रहें।

सोमो॑ धे॒नुꣳ सोमो॒ अर्व॑न्तमा॒शुꣳ सोमो॑ वी॒रं क॑र्म॒ण्यं᳖ ददाति।
सा॒द॒न्यं᳖ विद॒थ्य᳖ꣳ स॒भेयं॑ पितृ॒श्रव॑णं॒ यो ददा॑शदस्मै ॥ २१ ॥

भा०—(सोमः) सबका प्रेरक, अभिषिक्त हुआ राजा (धेनुं ददाति) दुधार गौओं को देता है। (सोमः) वह अभिषेक योग्य आज्ञापक राजा ही (आशुम् अर्वन्तम् ददाति) वेगवान् अश्वसैन्य और कर्म कुशल वीर पुरुष प्रदान करता है। (यः) जो प्रजाजन अपने आपको और अपने राज्य को ( अस्मै ) इस राजा के अधीन ( ददाशत् ) दे देता है उस प्रजा को वह (सादन्यम्) उत्तम गृहों और राजसभाओं उत्तम पदों पर विराजने योग्य, (विदथ्यम्) ज्ञान सत्संग, यज्ञ आदि के योग्य ज्ञानवान् ( सभेयम् ) सभा में कुशल, ( पितृश्रवणम् ) पिता, पालक गुरु जनों के उपदेश और आज्ञाओं के श्रवण करने वाले अथवा पिताओं के यश कीर्ति फैलाने वाले पुरुषों को भी ( ददाति ) प्रदान करता है।

त्वमि॒मा ऽओष॑धीः सोम॒ विश्वा॒स्त्वम॒पो ऽअ॑जनय॒स्त्वं गाः।
त्वमा त॑तन्थो॒र्व᳕न्तरि॑क्षं॒ त्वं ज्योति॑षा॒ वि तमो॑ ववर्थ ॥ २२ ॥

भा०—हे ( सोम ) अभिषिक्त राजन्! ऐश्वर्यवन्! (इमा ओषधीः) मेघ जिस प्रकार जल वर्षा कर इन नाना ओषधियों को पैदा करता है उसी प्रकार ( त्वम् ) तू ऐश्वर्य प्रदान करके ( इमाः ) इन नाना ( ओषधीः ) शत्रु संतापक बल और तेज को धारण करने वाली वीर सेनाओं और वीर पुरुषों को ( अजनयः ) उत्पन्न करता प्रकट करता है। ( त्वम् ) तू मेघ जिस प्रकार जलों की वर्षा करता है उसी प्रकार ( अपः अजनयः ) जलों के समान शान्तिदायक आप्त पुरुषों, उत्तम बुद्धियों और कर्म व्यवस्था को ( अजनयः ) प्रकट करता है। ( त्वं गाः ) तूही गौ

आदि पशुओं और राजाज्ञा रूप वाणियों को प्रकट करता है। ( त्वम् ) तू ( अन्तरिक्षम् ) वायु के समान विशाल अन्तरिक्ष और सबको आवरण और रक्षा करने वाले रक्षक, शासक विभाग को ( आततन्थ ) विस्तृत कर । और ( त्वं ) तू ही ( ज्योतिषा ) सूर्य के समान प्रकाश से ( तमः ) अन्धकार के समान प्रजा के कष्टदायी और शोक के हेतु दुःखों को ( ववर्थ ) निवारण कर ।

अथवा—वह राजा ही सोम आदि ओषधियों को, वही जलों की लहरों को, गौ आदि पशुओं को उत्तम बनावे। वही विशाल आकाश को वश कर ज्ञानज्योति से अविद्या, अन्यायादि को दूर करे।

परमात्मा के पक्ष में—वह समस्त अन्न आदि ओषधि, जल, पशु प्रदान करता, आकाश को बनाता और सूर्य से अन्धकार और ज्ञान से मोह को दूर करता है।

**देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳ सहसावन्नभि युध्य ।**
**मा त्वा तनदीशिषे वीर्य्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥२३॥**

ऋ० १ । ९१ । २३ ॥

भा०—हे (सहसावन्) बलपूर्वक शत्रु को पराजय करके विजय लाभ करने हारे! हे ( देव ) राजन्! प्रजाओं के सुखदाता एवं शत्रु पर विजय करने के इच्छुक! तू ( देवेन मनसा ) विजय की कामना वाले मन से ( नः ) हमारे ( रायः भागम् ) ऐश्वर्य को ले लेने वाले शत्रु को ( अभि-युद्धय ) युद्ध में परास्त कर। तू ( उभयेभ्यः ) शत्रु और मित्र दोनों पक्षों के लोगों के ( वीर्यस्य ) बलों पर ( ईशिषे ) अपना स्वामित्व करने में समर्थ है। शत्रु ( त्वा मा तनत् ) तुझे न व्याप ले, तुझे न दबाले! तू ( गविष्टौ ) बाणों के निरन्तर प्रहारों के स्थान संग्राम में ( प्र चिकित्स )

२३—गा इष्टौ इति काण्व० ।

शत्रुओं को रोगों के समान दूर करने का यत्न कर, अथवा (प्र चिकित्स) युद्ध से प्राप्त क्षत आदि की उत्तम चिकित्सा का प्रबन्ध कर।

अथवा—( रायः भागं नः अभियुद्धय ) ऐश्वर्य का भाग हमें प्राप्त करा। ( गविष्टौ उभयेभ्यः प्र चिकित्स ) स्वर्ग, सुख के निमित्त, हमारे ऐहिक पारमार्थिक सुखों के बीच में आये विघ्न निवारण कर। (मही०, दया०, उवट )

**अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्। हिरण्याक्षः सविता देव ऽआगाद्धद्रत्ना दाशुषे वार्य्याणि ॥२४॥**

ऋ० १। ३५। ८॥

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः। सविता देवता। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः

भा०—राजा के पक्ष में—(सविता ) सबका प्रेरक, सञ्चालक, ऐश्वर्य का उत्पादक सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी, ( देवः ) विजिगीषु राजा ( हिरण्याक्षः ) प्रजा के प्रति हित और रमणीय चक्षु वाला, सौम्य दृष्टि होकर ( दाशुषे ) भेंट और कर प्रदान करने वाले प्रजाजन को (वार्याणि) वरण करने योग्य, उत्तम २ ( रत्नानि ) रत्न रमणयोग्य पदार्थों को ( दधत् ) स्वयं धारण करता और प्रदान करता हुआ ( आगात् ) आवे, प्राप्त हो। और सूर्य जिस प्रकार ( अष्टौ ककुभः ) ४ दिशा, ४ उपदिशा मिलाकर आठों दिशाओं को, ( पृथिव्याः योजना ) पृथिवी पर के समस्त प्राणियों और (त्री धन्व) तीनों लोकों और (सप्त सिन्धून्) प्रवाहित होने वाले स्थूल सूक्ष्म जलों को भी ( वि अख्यत् ) विशेष रूप से प्रकाशित करता है, उसी प्रकार राजा भी ( अष्टौ ककुभः ) आठों दिशाओं, ( पृथिव्याः योजना ) पृथिवी के साथ योग रखने वाले या कोश, योजनादि भागों या पृथ्वी से युक्त प्राणियों, या ( त्री धन्व ) तीनों अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश और गतिशील नद नालों, या सातों समुद्रों को ( वि अख्यत् ) विशेष रूप से देखे। सब पर अपनी चक्षु रक्खे।

महर्षिदयानन्दः—ऋग्वेदे—'पृथिव्यामध्ये स्थितानामेकोनपञ्चाशद् क्रोशपर्यन्तेऽन्तरिक्षे स्थूलसूक्ष्मलघुगुरुत्वरूपेण स्थितानामपां सप्तसिंध्विति संज्ञा'। यजुर्वेदभाष्ये—'पृथिवीमारभ्य द्वादशक्रोशपर्यन्तं गुरुत्वलघुत्वभूतानां सप्तविधानामपामवयवाः' इत्यादि उभयविधलेखनं सुविचार्यम् ॥

**हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी ऽअन्तरीयते। अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥२५॥**

हिरण्यस्तूप ऋषिः। निचृज्जगती। सविता देवता। निषादः ॥

भा०—जिस प्रकार ( सविता ) रसों और प्रकाशमय किरणों का उत्पादक सूर्य ( हिरण्य पाणिः ) सुवर्ण के समान तीक्ष्ण किरणों को जलादि ग्रहण करने वाले हाथों के समान धारण करता हुआ ( विचर्षणिः ) समस्त विश्व को अपने प्रकाश से दिखलाता और तीव्र ताप से पदार्थों को फाड़ता और विश्लेषण करता है। और वह सूर्य जिस प्रकार ( उभे द्यावापृथिवी अन्तः ) आकाश और पृथिवी दोनों के बीच में स्थित होकर गति करता है और जिस प्रकार सूर्य ( अमीवां ) रोगकारी पीड़ाओं को और रात्रि के अन्धकार को भी ( अप बाधते ) दूर करता और नष्ट करता है। और जब वह ( सूर्यम् ) सूर्य अपने ही स्वरूप को ( वेति ) प्रकट करता है तब भी ( कृष्णेन ) अन्धकार के नष्ट करनेवाले ( रजसा ) तेज से ( द्याम् ) आकाश को ( अभि ऋणाति ) सब प्रकार से व्याप लेता है उसी प्रकार यह ( सविता ) राष्ट्र के सब ऐश्वर्यों का उत्पादक, सबका प्रेरक राजा ( हिरण्यपाणिः ) सबके हितकारी और रमण योग्य व्यवहारों वाला, एवं सुवर्ण आदि रत्नों को दूसरों के देने के लिये अपने हाथ में, या वश में करके ( विचर्षणिः ) समस्त मनुष्यों में विशेष पुरुष होकर एवं विविध प्रकार से सबका द्रष्टा होकर ( उभे द्यावापृथिवी अन्तः ) दोनों राजवर्ग और प्रजावर्ग या शत्रु और मित्र दोनों राष्ट्रों के बीच में ( ईयते ) आ खड़ा होता है। दोनों के बीच मध्यस्थ रूप से सर्वमान्य जाना जाता है

तब ही वह ( अमीवाम् ) रोग पीड़ा के समान दुःखदायी शत्रु सेना को भी ( अप बाधते ) दूर करता है। और ( सूर्यम् वेति ) सूर्य पद को प्राप्त करता है। और (कृष्णेन रजसा) शत्रु बल को कर्षण अर्थात् क्षीण कर देने वाले तेज से ( द्याम् ) देदीप्यमान राजसभा या उच्च पद को ( ऋणोति ) प्राप्त करता है।

अथवा—जब ( सूर्यम् = सूर्यः ) सूर्य ही ( वेति ) अस्त हो जाता है तब ( द्याम् कृष्णः न रजसा कृणोति ) आकाश को काले अन्धकार से ढक देता है। (दया० यजुर्भाष्ये) अथवा—जब वह सूर्य ( सूर्यम् ) रश्मि समूह को ( वेति ) प्रकट करता है तब ( कृष्णेन रजसा ) आकृष्ट लोकों द्वारा अपना प्रकाश प्राप्त करवाता है। (दया० ऋग्भाष्ये)

हिर॑ण्यहस्तो॒ऽअसु॑रः सुनी॒थः सु॑मृडी॒कः स्ववाँ॑ यात्व॒र्वाङ्।
अ॒प॒सेध॑न्र॒क्षसो॑ यातु॒धाना॒नस्था॑द्दे॒वः प्र॑तिदो॒षं गृ॑णा॒नः ॥ २६ ॥

ऋ० १।३५।१०॥

भा०—(हिरण्यहस्तः) सब प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त और सब दिशाओं में अपने किरणरूप हस्तों वाला ( असुरः ) सबको प्राणदाता, बलवान् ( सुनीथः ) सुखपूर्वक सबको प्राप्त, ( सुमृडीकः ) उत्तम सुखप्रद, ( स्ववान् ) अपने उत्तम गुणों से युक्त ( अर्वाङ् याति ) अपने समस्त गुणों को प्रकट करता हुआ सूर्य या वायु जिस प्रकार प्राप्त होता है उसी प्रकार यह राजा और सभापति ( हिरण्यहस्तः ) प्रजा के हित और रमण करने योग्य सुखकारी पदार्थों को और सुवर्ण आदि बहुमूल्य धनैश्वर्यों को अपने हाथ में, अपने अधीन रखने हारा, तेजस्वी ( असुरः ) समस्त प्रजाओं को प्राण देने वाला, उन पर अनुग्रह करने और उनको वृत्ति देने वाला, ( सुनीथः ) उत्तम मार्ग में प्रजा को चलाने हारा, या उत्तम स्तुतियुक्त, ( सुमृडीकः ) सुखकारी, दयालु, ( स्ववान् ) धनाढ्य,

२६—सुम्राळीक इति काण्व०।

एवं अपने आत्मबल से युक्त होकर ( अर्वाङ् यातु ) अपने शत्रु के अभिमुख और प्रजा के प्रति भी मान करे। और वह ( यातुधानानाम् ) प्रजाओं को पीड़ा देने वाले, एवं दण्डित करने योग्य ( रक्षसः ) दुष्ट, चोर, डाकू आदि प्रजापीड़क लोगों को ( अप सेधन् ) दूर करता हुआ और ( प्रतिदोषम् ) प्रजा के प्रत्येक दोष के सुधार के लिये उनको ( गृणानः ) उत्तम मार्गोपदेश करता हुआ ( देवः ) दानशील, विद्वान्, सर्वद्रष्टा राजा ( अस्थात् ) सिंहासन पर स्थिति प्राप्त करे। अथवा ( प्रतिदोषं गृणानः ) प्रति रात्रि काल में या प्रतिदिन लोगों को सावधान करता हुआ विराजे।

'रक्षसः'—रक्षो रक्षयितव्यमस्मात्। इति निरु० । ४ । १८ ॥

'प्रतिदोषम्'—प्रतिजनं यो दोषः तम्। श्रुतिस्मृति विहितधर्मपराङ्मुखानां यावन्तो दोषास्तावतो गृणानः इति महीधरः।

**ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता ऽअन्तरिक्षे।**
**तेभिर्नो ऽअद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो ऽअधि च ब्रूहि देव ॥२७॥**

ऋ० १ । ३५ । ११ ॥

भा०—हे ( सवितः ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ! राजन् ! ( ते ) तेरे बनाये ( ये ) जो ( पूर्व्यासः ) पूर्व के विद्वानों, आप्त जनों से बनाये एवं चले गये और पालन किये गये ( सुकृताः ) उत्तम रीति से रचे हुए धर्म कृत्य, ( अन्तरिक्षे ) और आकाश में विद्यमान ( अरेणवः ) धूलि रहित स्थानों के समान ( अरेणवः ) विद्वानों के हृदय में निर्मल मार्ग, सदाचार के मर्यादा रूप मार्ग या व्रताचरण हैं ( तेभिः ) उन ( सुगेभिः ) सुख से चलने योग्य ( पथिभिः ) मार्गों से ( नः ) हमें ( अद्य ) आज और सदा ही ( रक्ष ) पालन कर। हे ( देव ) दानशील, विद्वन् ! तेजस्विन् राजन् ! ( नः ) हमें तू ( अधि ब्रूहि च ) सन्मार्गों का उपदेश भी कर।

**उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्।**
**अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ २८ ॥** ऋ० १ । ४६ । १५ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचद्गायत्री । षड्जः ॥

**भा०**—( उभा ) दोनों ( अश्विना ) विद्या और अधिकारों में व्याप्त अध्यापक, सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष दोनों मुख्य अधिकारी ( पिबतम् ) उत्तम राष्ट्रैश्वर्य का उत्तम रस के समान पान, पालन या स्वीकार करें। और ( उभा ) दोनों ( नः ) हमें ( शर्म ) सुख, शरण ( अविद्रियाभिः ) अखण्डित, कभी नष्ट न होने वाले, दृढ, अथवा त्रुटि रहित, छलछिद्र रहित एवं अनिन्दित, उत्तम ( ऊतिभिः ) रक्षा साधनों से ( शर्म ) सुख एवं शरण, उत्तम गृह आदि साधन ( यच्छतम् ) प्रदान करें।

'अविद्रियाभिः'—'दृ विदारणे' इत्यस्मादौणादिकः इयक् इति महो० । घञर्थैकस्ततोघस्तद्धित इति दया० । द्रा कुत्सायां गतौ इत्यस्मादौणादिकः किः । अविद्रिर्निन्दा, तद्विरोधिनीं स्तुतिं यान्तीति अविद्रियाः, ताभिरिति सायणः ।

**अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।**
**अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २६ ॥**

ऋ० १ । ११२ । २४ ॥

कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

**भा०**—हे ( अश्विनौ ) दिन और रात्रि, सूर्य और चन्द्र दोनों के समान तेज, प्रभाव तथा सर्व जनों को आल्हाद करने वाले सेनाध्यक्ष और सभाध्यक्ष दोनों पदाधिकारी गणो ! आप दोनों ( अस्मे वाचम् ) हमारी वाणी को ( अप्नस्वतीम् ) उत्तम कर्म युक्त (कृतम्) करो । और हे (दस्रा) शत्रुओं और प्रजा के पीडाकारी दुःखों और दुष्ट पुरुषों के नाश करने वालो ! हे ( वृषणा ) माता पिता के समान प्रजा पर सुखों के वर्षण करने वालो ! तुम दोनों ( अप्नस्वतीम् मनीषाम् कृतम् ) शुभ कर्म से युक्त मन की इच्छा या बुद्धि को उत्पन्न करो, मैं प्रजाजन ( वाम् ) तुम दोनों को ( अद्यूत्ये ) द्यूत आदि छल युक्त कार्यों या शर्तों रहित,

निकार्य, कार्य में अथवा ( अद्यूत्ये ) प्रकाश रहित, अन्धकार के समय अज्ञात स्थानों में और (अवसे) प्रजा के रक्षण कार्य करने के लिये ( वां ) आप दोनों को ( निह्वये ) निरन्तर बुलाता हूं। आप दोनों (वाजसातौ) संग्राम में या ऐश्वर्य प्राप्ति के कार्य में ( नः ) हमारे ( वृधे ) बढ़ाने के लिये ( भवतम् ) समर्थ होवो।

'अद्यूत्ये'—द्यूतादागतं, द्यूते भवं वा द्यूत्यम्, न द्यूत्यमद्यूत्यं तस्मिन्।

द्युभि॑र॒क्तुभिः॒ परि॑ पातम॒स्मानरि॑ष्टेभिरश्विना॒ सौभ॑गेभिः।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥३०॥

ऋ० १। ११२। २५॥

कुत्स ऋषिः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—( अश्विना ) व्यापक अधिकार और सामर्थ्य वाले सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष, सूर्य चन्द्र के समान तुम दोनों ( द्युभिः अक्तुभिः ) दिनों और रात्रियों में आप दोनों ( अरिष्टेभिः ) अविनष्ट, एवं मंगलकारक सुख-प्रद हितकारी ( सौभगेभिः ) सौभाग्यों, धन सम्पदाओं से (अस्मान् परि-पातम् ) हम प्रजाजनों की रक्षा करो। ( तत् ) तब ( मित्रः वरुणः ) मित्र, स्नेही और वरुण, दुष्टवारक, सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश और दण्डाध्यक्ष दोनों ( नः ) उस पालन के कार्य को ( मामहन्ताम् ) और अधिक उत्तम एवं कीर्त्ति और आदर योग्य बनावें। ( अदितिः ) अखण्ड राज्य शासन करने वाली राजसभा और ( सिन्धुः ) सब राज्यप्रबन्ध द्वारा समस्त देशों और प्रजाओं को परस्पर बांधने वाला, समुद्र के समान गम्भीर राजा ( पृथिवी उत द्यौः ) पृथिवी के समान विस्तृत और सूर्य के समान तेजस्वी होकर दोनों ( मामहन्ताम् ) राजा के रक्षण कार्य को उन्नत करें।

आ कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ वर्त्त॑मानो निवे॒शय॑न्न॒मृतं॒ मर्त्यं॑ञ्च।
हि॒र॒ण्यये॑न सवि॒ता रथे॒ना दे॒वो या॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न्॥ ३१॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३३। ४३॥

आ रात्रि पार्थिव॒ꣳ रजः॑ पितुरप्रायि॒ धाम॑भिः।
दि॒वः सदा॑ꣳसि बृह॒ती वि ति॑ष्ठस॒ ऽआ त्वे॒षं व॑र्त्तते॒ तमः॑ ॥ ३२॥
अथर्व० १६ । ४७ । १ ॥

काशिपा नाम भरद्वाजकन्या ऋषिका । रात्रिर्देवता । पथ्या वृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे ( रात्रि ) रात्रि के समान समस्त प्रजाओं को रमण कराने, सबको सुख देने वाली ! सबको दान एवं वेतनादि देने वाली राजशक्ते ! ( पार्थिवं ) पृथिवी का ( रजः ) समस्त लोक ( पितुः ) पालन करने वाले वायु और सूर्य के समान तेजस्वी बलवान् पुरुष के ( धामभिः ) धारण सामर्थ्यों और तेजों, पराक्रमों से ( अप्रायि ) पूर्ण रहे और तू ( बृहती ) बड़ी भारी शक्ति वाली होकर ( दिवः सदांसि ) उषःकाल जिस प्रकार आकाश में फैलती है उसी प्रकार राजसभा के ( सदांसि ) नाना अधिकार पदों पर ( वितिष्ठसे ) विशेष रूप से स्थित रह । और ( तमः ) अन्धकार जिस प्रकार सर्वत्र फैल कर आंखों को निर्बल कर देता है और ( त्वेषं ) प्रकाश जिस प्रकार सर्वत्र फैल कर प्राणियों को सामर्थ्यवान् करता है उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तेरा ( त्वेषं तमः ) अति तेजस्वी रूप मित्रगण को अधिक सामर्थ्यवान् कर देने वाला और शत्रुओं को निर्बल एवं दिवान्ध करनेवाला बल ( आवर्त्तते ) सर्वत्र फैले है । यहां राज्य प्रबन्ध करने वाली शक्ति 'रात्रि' शब्द से कही गई है । विशेष विवरण अथर्ववेद के रात्रि सूक्त के व्याख्यान में देखो ।

उष॒स्तच्चि॒त्रमा भ॑रा॒स्मभ्यं॑ वाजिनीवति ।
येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं च॒ धाम॑हे ॥ ३३ ॥ ऋ० १।९२।१३॥

गोतम ऋषिः । उषो देवता । पराष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे ( वाजिनीवति ) वाजिनी अर्थात् अश्व रथ आदि सेना से युक्त ( उषः ) शत्रुओं को दाह करने वाली, उनका नाश करने वाली, दण्डशक्ते ! तू ( अस्मभ्यम् ) हमारे हित के लिये ( तत् ) उस नाना

प्रकार के ( चित्रम् ) अद्भुत २ धन को ( आ भर ) प्राप्त करा ( येन ) जिससे हम लोग ( तोकं च ) सब दुःखों के नाशक पुत्रों और ( तनयं च ) अगली सन्तति के विस्तार करने वाले पौत्र आदि को भी ( धामहे ) धारण, पालन पोषण करें।

स्त्री के पक्ष में—हे ( वाजिनीवति उषः ) बल, वीर्य, ज्ञान, बल और अन्नादि से समृद्ध उषा के समान शोभा से युक्त तू संग्रह करने योग्य उस धन को प्राप्त कर जिससे पुत्र पौत्रों का धारण पोषण करें।

**प्रातरग्निं प्रातरिन्द्र॑ᳬ हवामहे प्रातर्मित्रावरु॑णा प्रातरश्विना॑।**
**प्रातर्भगं॑ पूषणं॒ ब्रह्म॑णस्पतिं॑ प्रातः सोम॑मुत रुद्रᳬ हुवेम ॥ ३४ ॥**

ऋ० ७। ४१। १॥

वसिष्ठ ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। जगती। निषादः॥

भा०—(प्रातः) जब पांच घड़ी रात्रि रहे तब प्रभात वेला में, प्रातः काल, हम लोग ( अग्निं हवामहे ) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर का स्मरण करें और ज्ञानवान् आचार्य को नमस्कार करें। ( प्रातः इन्द्रम् ) प्रातःकाल में हम उस समस्त ऐश्वर्यों के दाता परमेश्वर का स्मरण करें और परम ऐश्वर्य को प्राप्त करें। अथवा आत्मा और ज्ञान के द्रष्टा आचार्य की उपासना करें। ( प्रातः मित्रावरुणा हवामहे ) प्रातःकाल के समय ही हम लोग मित्र अर्थात् प्राण के समान सबके स्नेहकारी, जीवनप्रद, प्रिय और वरुण अर्थात् अपान के समान सर्व मलनाशक और शक्तिमान् परमेश्वर की उपासना करें। इसी प्रकार प्रातः काल हम लोग प्राण और अपान की साधना प्राणायाम द्वारा करें। प्रातः काल हम लोग मित्र, स्नेही और श्रेष्ठ पुरुष को नमस्कार आदि सत्कार करें। ( प्रातः अश्विना ) माता पिता को प्रातः नमस्कार करें। सूर्य द्यौ और पृथिवी और दिन और रात्रि के उत्पादक परमेश्वर की भी प्रातः उपासना करें। ( भगम् ) सबके सेवन करने योग्य, ( पूषणं ) सबके पोषक, ( ब्रह्मणस्पतिम् ) वेद और ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर और ब्रह्म

अन्न बल, यश और ज्ञान के पालक विद्वान् तेजस्वी पुरुष की ( प्रातः ) प्रातःकाल, दिन के पूर्व भाग में, सब कार्यों से प्रथम, ( सोमम् ) सबके अन्तर्यामी प्रेरक, ( उत ) और ( रुद्रम् ) पापियों के रुलाने हारे, एवं सर्वरोगनाशक, सर्वज्ञानोपदेशक परमेश्वर की हम प्रातःकाल उपासना करें और इसी प्रकार विद्वान्, रोगहारी वैद्य और ज्ञानी विद्वानों का संगभी प्रातःकाल सर्व कार्यों के प्रथम करें ।

प्रातःकाल ही (सोम) सोम आदि ओषधियों का सेवन और ( रुद्र ) जीव आत्मा का चिन्तन भी प्रातःकाल ही किया करें । महर्षि दयानन्द ।

प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥३५॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष में—( यः ) जो परमेश्वर ( अदितेः ) अखण्ड शक्ति और अखण्ड ब्रह्माण्ड का ( विधर्त्ता ) विविध उपायों से और विविध लोकों को धारण करने हारा है उस ( जितम् ) सबके विजेता और सबसे उत्कृष्ट ( भगम् ) सबके भजन करने योग्य और ऐश्वर्यशील, ( उग्रम् ) दुष्टों के प्रति सदा दण्ड देने वाले, उग्र, अति भयंकर परमेश्वर को ( वयम् ) हम ( प्रातः ) प्रातःकाल ही ( हुवेम ) स्मरण करें । ( यं ) जिस ( भगं ) उस भजन योग्य परमेश्वर को (आध्रः) अधीर एवं अतृप्त, भोगेच्छु या दरिद्र पुरुष ( चित् ) भी ( तुरः चित् ) अति शीघ्रकारी या शत्रुओं का नाशक बलवान् पुरुष और ( राजा चित् ) ऐश्वर्यों और उत्तम गुणों से प्रकाशमान् राजा भी ( मन्यमानः ) आदर सत्कार एवं प्रेम से मनन करता हुआ ( भक्षि ) मुझे ऐश्वर्य का प्रदान कर ( इति ) इसी प्रकार ( आह ) प्रार्थना किया करता है ।

राजा के पक्ष में—हम उस ऐश्वर्यवान् राजा को सबसे प्रथम प्रातः बुलावें (यः अदितेः विधर्त्ता) जो पृथ्वी का विविध उपायों से धारण पोषण करता है और उसको तृप्त करता है । ( यं मन्यमानः ) जिसका आदर

करता हुआ (आध्रः) दरिद्र भी और ( तुरः चित्, राजाचित् ) शत्रु हिंसक बलवान् पुरुष और राजा भी ( इति आह ) ऐसा ही कहता है कि तू ( भगं भक्षि ) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य का विभाग कर दे, धन सम्पदाओं को बांट।

'आध्रः'—दरिद्रः इति सायणः। अपुत्रस्य पुत्रः [ अथवा, अतृप्तस्य पुत्रः इति वा स्यात् न्यायादि में तृप्ति न करने वाले का पुत्र ] ? इति दया० ध्रै तृप्तौ। न तृप्यति स अध्रः। दीर्घश्छान्दसः। यद्वा आ समन्तात् ध्रः। अध्र एव वा आध्रः। स्वार्थे तद्धितः। इति महीधरः।

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः।
भग॒ प्र नो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्त॑: स्याम॥ ३६॥

भा०—हे ( भग ) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर! राजन्! हे ( प्रणेतः ) उत्कृष्ट मार्ग में लेजाने वाले! उत्तम न्याय के करने हारे! हे ( सत्य-राधः ) सज्जनों के योग्य धनैश्वर्यों के स्वामिन्! सत्य के पालक, सत्यधन! तू ( नः ) हमें ( ददत् ) नाना ऐश्वर्यों को प्रदान करता हुआ ( धियम् उत् अव ) हमारे कर्म और बुद्धि को उन्नत कर। अथवा ( नः धियं ददत् उत् अव ) हमें सद्बुद्धि और सत्कर्म की शिक्षा प्रदान करता हुआ उन्नत कर, हमारी रक्षा कर। हे ( भग ) ऐश्वर्यवन्! ( नः ) हमें ( गोभिः ) वेदवाणियों, गौवों और ( अश्वैः ) विद्वानों और वेगवान् अश्वों से ( प्र जनय ) उन्नत कर। हे ( भग ) ऐश्वर्यवन्! हम ( नृभिः ) उत्तम कुलनायक और नेता पुरुषों से ( नृवन्तः ) उत्तम नेता वाले एवं पुत्र, भृत्य और सहायकों से युक्त ( प्र स्याम ) भली प्रकार हों।

उ॒तेदानीं॒ भग॑वन्तः स्याम॒ोत प्रपि॒त्व उ॒त मध्ये॒ ऽअह्ना॑म्।
उ॒तोदि॑ता मघवन्त्सूर्य्य॑स्य व॒यं दे॒वानां॑ सुम॒तौ स्या॑म॥ ३७॥

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन्! ( उत ) और हम भी ( इदानीम् ) अब ( भगवन्तः स्याम ) ऐश्वर्यवान् एवं तुझ से स्वामी वाले हों।

(उत) और ( अह्नाम् ) दिनों के ( प्रपित्वे ) प्रारम्भ और (मध्ये) बीच में भी और ( सूर्यस्य उदिता ) सबके प्रेरक सूर्य के उदय काल में और सबके प्रेरक सूर्य के समान तेजस्वी राजा के अभ्युदय के समय में ( वयम् ) हम सब ( देवानां ) विद्वान् पुरुषों की ( सुमतौ ) शुभ, सुन्दर, सुखजनक सम्मति में ( स्याम ) रहा करें।

अभ्युदय काल में ईर्षावश हम लोग दुर्बुद्धि से नष्ट न हो जांय।

भग॑ एव भग॑वाँ२ऽ अस्तु देवास्तेन॑ वयं भग॑वन्तः स्याम।
तं त्वा॑ भग सर्व॒ऽइज्जो॑हवीति स नो॑ भग पुर॒ऽएता भ॑वेह ॥३८॥

भा०—हे ( देवाः ) देवगण, विजयशील एवं विद्वान् पुरुषो! ( भगः ) सबके सेवा भजन करने योग्य परमेश्वर और ऐश्वर्यवान् पुरुष ही ( भगवान् अस्तु ) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी हो। ( तेन ) उसके द्वारा ( वयं ) हम भी ( भगवन्तः स्याम ) ऐश्वर्यवान्, स्वामी हों। हे ( भग ) ऐश्वर्यवन् ( सर्व इत ) समस्त जन भी ( तं त्वा ) उस तुझे ही ( जोहवीति ) वार २ याद करता है, तेरा ही स्मरण करता है। तुझे ही सब अवसरों पर पुकारता है। हे ( भग ) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर! राजन्! ( इह ) इस लोक में ( सः ) वह तू ( नः ) हमारे (पुरःएता) सबसे आगे चलने हारा नायक ( भव ) हो।

सम॑ध्वरायो॒षसो॑ नमन्त दधिक्रावे॑व शुच॑ये प॒दाय॑।
अ॒र्वा॒ची॒नं व॑सु॒विदं॒ भगं॑ नो॒ रथ॑मि॒वाश्वा॑ वा॒जिन॒ऽआ व॑हन्तु ॥३९॥

भा०—( उषसः ) उषाएं, प्रभात वेलाएं जिस प्रकार ( अध्वराय ) हिंसारहित, परम पवित्र यज्ञ के लिये ( सं नमन्त ) अच्छी प्रकार आती हैं, प्रकट होती हैं। उसी प्रकार ( अध्वरस्य ) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य प्रजापालन रूप राज्य कार्य के लिये ( उषसः ) शत्रुदाहक तेजस्वी पुरुष भी ( सं नमन्त ) अच्छी प्रकार एकत्र होते हैं और ( दधिक्रावा ) अपनी पीठ पर पुरुष को धारण करके चलने में समर्थ अश्व जिस प्रकार (पदाय)

प्राप्त कराने योग्य दूर देश को प्राप्त होता है उसी प्रकार ( दधिक्रावा ) राष्ट्र कार्य को अपने ऊपर धारण करके उसके चलाने और पराक्रम करने में समर्थ राजा ( शुचये ) अत्यन्त शुद्ध, तेजस्वी, ईर्षा, द्वेष, लोभ, काम राग आदि से रहित, ईमानदार, धर्मयुक्त ( पदाय ) पद प्राप्त करने के लिये ( सं नमन्तु ) प्राप्त हो। इसी प्रकार ( दधिक्रावा ) ध्यान बल से भ्रमण करने वाला योगी शुचि पद, परम पावन परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये यत्न करता है। और ( वाजिनः अश्वाः ) वेगवान् अश्व ( रथम् इव ) जिस प्रकार रथ को धारण करते हैं उसी प्रकार ( अश्वाः ) विद्या अधिकार में व्यापक सामर्थ्य वाले ( वाजिनः ) अन्न आदि ऐश्वर्य और ज्ञानों वाले विद्वान् पुरुष ( रथम् ) रथ युक्त, एवं रमण करने वाले, ( अर्वाचीनम् ) साक्षात् एवं हमारे अभिमुख ( वसुविदं ) ऐश्वर्य को देने और प्राप्त कराने वाले ( भगं ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का ( आ वहन्तु ) उपदेश करें और ( भगं आवहन्तु ) ऐश्वर्यवान् राजा के राज्य को धारण करें।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः।
घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥४०॥

ऋ० ७। ४१। ७॥

भा०—जिस प्रकार (उषासः) प्रभात वेलाएं ( अश्वावतीः ) वेगवान् वायु और व्यापनशील प्रकाश से युक्त होने से 'अश्वावती' और (गोमतीः) किरणों से युक्त होने से 'गोमती' और ( वीरवतीः ) विविध पदार्थों को कंपाने वाले वायु से या सूर्य रूप पुत्र से युक्त 'वीरवती' और ( भद्राः ) सुखदायी होने से 'भद्रा' हैं, वे ( घृतं दुहानाः ) ओसरूप जल को प्रदान करती हैं उसी प्रकार ( उषासः ) शत्रुओं का दहन या नाश करने में समर्थ सेनाएं ( अश्वावतीः ) अश्वारोहियों से युक्त ( गोमतीः ) बैल आदि नाना पशुओं से युक्त ( वीरवतीः ) वीर पुरुषों वाली ( भद्राः ) उत्तम, सुखकारी होकर ( सदम् ) हमारे गृह और राजसभा या आश्रय-स्थान

राष्ट्र और राष्ट्रपति को ( उच्छन्तु ) प्राप्त हों, उसके यश और प्रताप को विकसित करें। वे (घृतं दुहानाः) तेज को पूर्ण करती हुई (विश्वतःप्रपीताः) सब प्रकार से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष द्वारा हृष्ट पुष्ट, सुरक्षित होकर रहें। हे अग्रणी, वीर पुरुषो ! (यूयं) तुम लोग (नः) हमारा (सदा) सदा काल (स्वस्तिभिः = सु अस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो।

स्त्रियों के पक्ष में—( अश्वावतीः ) विद्या और बल में व्याप्त एवं अश्व के समान हृष्ट पुष्ट, उत्तम पतियों से युक्त, ( गोमतीः ) पूर्ण इन्द्रियों, वेद वाणियों और गवादि पशुओं से समृद्ध, ( वीरवतीः ) पुत्रों से युक्त, ( भद्राः ) सुखदायिनी होकर ( नः सदम् उच्छन्तु ) हमारे गृह की शोभा को बढ़ावें। वे ( घृतं दुहानाः ) गौओं के समान प्रेमरस को भरपूर करती हुई ( विश्वतः प्रपीताः ) सब प्रकार उत्तम हृष्ट पुष्ट, सुरक्षित या बालकों द्वारा स्तन्य पान की जाने वाली हों। हे विद्वान् पुरुषो ! तुम उत्तम श्रेयस्कर साधनों से हमें पालन करो।

पूषन्तव॑ व्र॒ते व॒यं न रि॑ष्येम॒ कदा॑ च॒न।
स्तो॒तार॑स्त ऽइह स्म॑सि ॥ ४१ ॥ ऋ० ६ । ५४ । ९ ॥

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः सुहोत्रो वा ऋषिः । पूषा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ( पूषन् ) सब के पोषक परमेश्वर और राजन् ! हम (तव) तेरे बनाये ( व्रतं ) आचरण करने योग्य कर्म, नियम एवं सदाचार में रह कर ( कदा चन ) कभी भी ( न रिष्येम ) पीड़ित न हों, कष्ट न पावें। और ( स्तोतारः ) तेरे गुण गान करने हारे हम विद्वान् लोग ( ते ) तेरे ही होकर ( इह ) इस जगत् में ( स्मसि ) रहें।

प॒थस्प॑थ॒ः परि॑पतिं वच॒स्या कामे॑न कृ॒तो ऽअ॒भ्या॑नड॒र्कम्।
स नो॑ रासच्छु॒रुध॑श्च॒न्द्राग्रा॒ धियं॑धियꣳ सीषधाति॒ प्र पू॒षा ॥४२॥
ऋ० ६ । ४९ । ८ ॥

ऋजिश्व ऋषिः । पूषा देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जो ( पूपा ) सब प्रजाओं का पोषण पालन करने वाला राजा ( वचस्या ) वेदोक्त वचन और ( कामेन ) शुभ और प्रबल अभिलाषा से (कृतः) निष्पन्न, दृढ़, एवं तैयार होकर ( पथः पथः परिपतिम् ) प्रत्येक धर्म मर्यादा और उत्तम मार्ग के सब प्रकार से पालक, स्वामी ( अर्कम् ) स्तुति करने योग्य तेजस्वी सूर्य के तेजस्वी पद को ( अभि-आनड् ) साक्षात् सबके सन्मुख प्राप्त है (सः) वह (नः) हमें ( चन्द्राग्राः ) सुवर्णादि से सुभूषित अथवा सुवर्णादि से समृद्ध ( शुरुधः ) शोक और पीड़ादि के रोकने वाली सम्पदाएं ( रासत् ) प्रदान करें और वह ही ( धियं धियं ) प्रत्येक काम को ( प्र सीपधाति ) उत्तम रीति से चलावे।

अथवा—मैं ( कामेन कृतः ) प्रबल अभिलाषा और इच्छा से युक्त होकर ( वचस्या ) उत्तम वेदवचनों से ( पथः पथः परिपतिं ) प्रत्येक सन्मार्ग-मर्यादा के पालक उस ( अर्कम् अभ्यानड् ) पूजनीय परमेश्वर को साक्षात् स्तुति कर प्राप्त होऊं। वह ( चन्द्राग्राः ) आह्लाद से भरी हुई (शुरुधः) शोकनाशनी उत्तम वाणियों को (रासत्) हमें प्रदान करें। वह ( पूषा ) सर्व पोषक परमेश्वर और विद्वान् ( धियं धियं प्र सीपधाति ) हमारी प्रत्येक बुद्धि और कर्म को अच्छे मार्ग में चलावे।

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा ऽअदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ ४३ ॥ ऋ० १ । २२ । १८ ॥

( ४३, ४४ ) मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( विष्णुः ) व्यापक ( गोपाः ) गतिमान् लोकों का पालक, अथवा सबका रक्षक, (अदाभ्यः) कभी नष्ट और खण्डित न होने वाला, नित्य परमेश्वर ( त्रीणि पदा ) तीन जानने वा प्राप्त होने योग्य, तीनों लोकों, तीनों वेदों और तीन प्रकार के पदार्थों और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति रूप व्यवहारों को ( विचक्रमे ) विविध प्रकार से बनाता और चलाता है। और ( अतः ) उसीसे ( धर्माणि ) समस्त संसार के धारण करने वाले नियमों को भी ( धारयन् ) स्वयं धारण करता है।

'त्रीणि पदा'—कारण, स्थूल, सूक्ष्म रूपाणि इति दया० यजुर्भाष्ये। भूम्यन्तरिक्षसूर्यरूपेण त्रिविधं जगद् इति तत्रैव भावार्थे स एव। अग्निवाय्वादित्याख्यानि इति उवटमहीधरौ।

उस सबके रक्षक नित्य परमेश्वर ने तीन ज्ञान करने योग्य वेद ऋग्, यजुः, साम, बनाये। उससे ही वह समस्त धर्म मर्यादाओं को धारण करता है। इसी प्रकार राजा भी वेदत्रयी से समस्त मर्यादाओं और धर्मों को धारण करे। अथवा तीनों लोक जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं सर्ग, स्थिति, प्रलय ये तीन पद हैं, उनसे ही समस्त स्थावर जंगम प्राणियों और लोकों को प्रभु धारण करता है।

तद्विप्रा॑सो विप॒न्यवो॑ जागृ॒वाꣳस॒ः समि॑न्धते।
विष्णो॒र्यत्प॑र॒मं प॒दम् ॥ ४४ ॥ ऋ० १। २२। २१ ॥

भा०—( विप्रासः ) विद्वान् मेधावी ( विपन्यवः ) विविध प्रकार से ईश्वर की स्तुति करने हारे विद्वान् पुरुष ( जागृवांसः ) सदा जागृत अप्रमादी रह कर, अथवा प्रातः उठ कर सुचित्त होकर ( विष्णोः ) व्यापक अन्तर्यामी परमेश्वर का ( यत् परमं पदम् ) जो सर्वोत्कृष्ट ज्ञातव्य स्वरूप परम पद मोक्ष है ( यत् ) उसको ही (सम् इन्धते) भली प्रकार प्रकाशित करते, उसी की साधना करते हैं।

राजा के पक्ष में—सावधान विद्वान् पुरुष व्यापक, महान्, शक्तिशाली राजा के ही सर्वोत्कृष्ट पद को प्रकाशित करते हैं उसको नित्य अपने उत्तम विचारों से उत्कृष्ट बनाते हैं।

घृ॒तव॑ती॒ भुव॑नानामभि॒श्रियो॒र्वी पृ॒थ्वी म॑धु॒दुघे॑ सु॒पेश॑सा।
द्यावा॑पृथि॒वी वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा॒ विष्क॑भिते अ॒जरे॒ भूरि॑रेतसा ॥४५॥
ऋ० ६। ७०। १ ॥

भारद्वाज ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। जगती। निषादः ॥

भा०—( द्यावापृथिवी ) सूर्य और पृथ्वी दोनों जिस प्रकार ( घृत-

वती ) जल और प्रकाश से युक्त, ( भुवनानाम् ) उत्पन्न हुए समस्त लोक लोकान्तरों की ( अभिश्रिया ) सब प्रकार से शोभा और आश्रय देने वाले, ( मधुदुघे ) जल एवं मधुर पदार्थों के प्रदान करने वाले, (सुतेजसा ) उत्तम रूप वाले तेज और सुवर्णादि से युक्त, ( अजरे ) कभी जीर्ण या विनष्ट न होने वाले और ( भूरिरेतसा ) बहुत अधिक उत्पादक सामर्थ्य और जल से युक्त होकर भी ( वरुणस्य ) दोनों सूर्य और वायु के (धर्मणा) धारण सामर्थ्य से और इसी प्रकार सर्व श्रेष्ठ परमेश्वर के धारण सामर्थ्य से ( विष्कभिते ) विशेष रूप से थमे खड़े हैं, वे अपनी नियम मर्यादा को नहीं तोड़ते, उसी प्रकार राजवर्ग और प्रजावर्ग भी दोनों (घृतवती) पराक्रम और तेज से युक्त और घृत आदि पुष्टिकारक अन्न से युक्त हों। वे ( भुवनानाम् अभिश्रिया ) समस्त प्राणियों और लोकों के आश्रय देने वाले, समृद्धि से युक्त हों। दोनों ( उर्वी ) विशाल ( पृथ्वी ) विस्तृत सामर्थ्य वाले हों, ( मधुदुघे ) दोनों मधुर और शत्रुपीड़क बल और मधुर अन्न से भरे पूरे, एक दूसरे को पूरने वाले हों। ( सुपेशसा ) उत्तम रूपवान् सुवर्णादि से मण्डित हों। वे दोनों ( वरुणस्य धर्मणा ) स्वयं वरण किये गये श्रेष्ठ राजा के बनाये धर्म, नियम, राज्यव्यवस्था द्वारा ( विष्कभिते ) मर्यादा में स्थित हों, दोनों ( अजरे ) कभी नष्ट न हों। दोनों ( भूरिरेतसा ) बहुत वीर्यवान्, बलवान् हों। इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी स्नेहयुक्त, लक्ष्मीसम्पन्न, मधुर स्वभाव वाले, सुवर्णादि आभूषणों से युक्त, सुरूप, सुन्दर बुढ़ापे से रहित, अति वीर्य बल से युक्त, ब्रह्मचारी होकर (वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते) परस्पर वरण करके स्वयंवर धर्म के द्वारा अथवा सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के बनाये वेद के बतलाये धर्म से नियमित होकर रहें।

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान्।
वसवो रुद्रा ऽआदित्या ऽउपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥ ४६

ऋ० १० । १२८ । ९ ॥

विहव्य ऋषिः । वस्वादयो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( ये ) जो ( नः ) हमारे ( सपत्नाः ) शत्रुगण हैं ( ते ) वे ( अप भवन्तु ) हमसे दूर रहें । ( तान् ) उनका हम लोग ( इन्द्राग्निभ्याम् ) सूर्य से जिस प्रकार मेघ और अन्धकार छिन्न भिन्न होते और अग्नि से जिस प्रकार अन्धकार दूर होता है उसी प्रकार इन्द्र, सेनापति और अग्नि, अग्रणी राजा, या वायु के समान बलवान् और अग्नि के समान तेजस्वी नायक पुरुषों से या विद्युत् और वायु के अस्त्रों से ( अव बाधामहे ) विनष्ट करें । उनको नीचे दबावें । और ( वसवः ) राष्ट्र में बसने वाले जन ( रुद्राः ) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुष और ( आदित्याः ) आदान प्रतिदान करने वाले वैश्य गण ये सब मिल कर ( उपरिस्पृशम् ) सबके ऊपर के पद पर पहुंचे हुए, ( उग्रम् ) अति बलवान् ( मा ) मुझको ( चेत्तारम् ) सबको सत्यासत्य बतलाने और चेताने वाला ( अधिराजम् ) अधिराज, ( अक्रन् ) बनावें ।

अथवा—( वसवः ) पृथिवी आदि आठ वसु, ( रुद्राः ) १० प्राण और एक आत्मा और १२ मास सब मुझे यथार्थ विज्ञ राजा बनावें ।

**आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।**
**प्रायुस्तारिष्टं नीरपांᳬसि मृजतᳬ सेधतं द्वेषो भवतᳬ सचाभुवा ॥४७॥**

ऋ० १ । ३४ । ११ ॥

हिरण्यस्तूप ऋषिः । अश्विनौ देवते । जगती । निषादः ॥

भा०—( नासत्या ) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों सत्याचरण युक्त, ( अश्विना ) विद्या और अधिकार में व्यापक एवं एक दूसरे का उपभोग करने हारे होकर ( त्रिभिः एकादशैः ) तीन ग्यारह अर्थात् तेंतीस ( देवैः ) विद्वान् राजसभासदों या अध्यक्षों द्वारा ( मधुपेयम् ) ज्ञान, मधुर स्वभाव और बलपूर्वक रक्षा करने योग्य राष्ट्र को ( आ यातम् ) प्राप्त हों । वे (आयुः प्र तारिष्टम्) आयु, जीवन की वृद्धि करें । दीर्घ जीवन

भोगें। ( अपांसि ) सब प्रकार के पापों को ( निर् मृक्षतम्) सर्वथा शुद्ध करें। ( द्वेषः निः सेधतम् ) आपस के द्वेष को दूर करें और ( सचाभुवा भवतम् ) सब कार्यों में एक साथ मिल कर पुरुषार्थशील होकर रहें।

इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी पृथिवी आदि पदार्थों सहित मधुर स्नेह से प्राप्त होने योग्य पालने योग्य गृहस्थ के मधुर उपभोग को प्राप्त करें। जीवन की वृद्धि करें, पापों को दूर करें, द्वेष त्याग करें, सदा साथ मिल कर रहें।

**एष वु स्तोमो मरुत ऽइयङ्गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।**
**एषा यासीष्ट तन्वे व्रयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ४८ ॥**

ऋ० १। १६५। १५॥

अगस्त्य ऋषिः। मरुतो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो! एवं प्रजा पुरुषो! (मान्यस्य) मान करने योग्य एवं मनन करने हारे शत्रुओं का स्तम्भन करने वाले और ( मांदार्यस्य ) मुझे यह वीर सेनानायक काटेगा शत्रु गण में इस प्रकार का भय उत्पन्न करने हारे, सबको हर्ष देनेहारे ( कारोः ) क्रिया कुशल सेनापति का ( वः ) तुम्हारे ही हित के लिये ( एषः स्तोमः ) यह शस्त्रास्त्र समूह या नियम या अधिकार या व्यवस्था या सैनिक संघ है। और (इयं गीः) यह उसकी वाणी अर्थात् आज्ञा है। उसको आप लोग (वयाम्) दीर्घ जीवन वाले प्राणियों के ( तन्वे ) शरीरों की रक्षा के लिये (इषा) इच्छापूर्वक ( आ अयासिष्ट ) उसे प्राप्त होवो। हम लोग (इषं) अन्न और ( जीरदानुम् ) दीर्घ जीवन के देने वाले ( वृजनम् ) दुःखों के वारक बल को (विद्याम) प्राप्त करें। अथवा, उसको हम (इषं) सबके प्रेरक (वृजनं) शत्रुओं के वारक ( जीरदानुम् ) सबका जीवनप्रद ( विद्याम ) जानें।

**सहस्तोमाः सहच्छन्दस ऽआवृतः सहप्रमा ऽऋषयः सप्त दैव्याः।**
**पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा ऽअन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥४९॥**

ऋ० १०। १३०। ७॥

प्राजापत्यो यज्ञ ऋषिः । ऋषयो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( रथ्यः ) रथारोही पुरुष ( न ) जिस प्रकार ( रश्मीन् ) घोड़ों की रासों को थामे रहते हैं और वे ( सहस्तोमाः ) अपने दल के सदा साथ रहते हैं, (सहछन्दसः) एक साथ एक चाल से चलते हैं, (सहप्रमाः) वे एक साथ प्रयाण करते हैं और (पूर्वेषाम् पन्थाम् अनुदृश्य रश्मीन् अनु आलेभिरे ) अपने से पहले गये हुए अग्रगामी, योद्धा नेताओं के मार्ग को देखकर घोड़ों की रासों को उसके अनुकूल ही चलाते हैं उसी प्रकार ( धीराः ) ध्यान-योगशील, धीर, बुद्धिमान् पुरुष ( दैव्याः ) विजयशील देव, राजा या परमेश्वर के अनुयायी, भक्त, ( सप्त ) शरीर में सात प्राणों के समान, एवं सदा सर्पण शील, आगे बढ़ने वाले, ( ऋषयः ) तर्कशील, ज्ञानद्रष्टा विद्वान् ऋषिगण भी ( पूर्वेषां पन्थाम् ) अपने पूर्व के विद्वान् पुरुषों के मान को ( अनुदृश्य ) भली प्रकार देख कर ( सहस्तोमाः ) एक साथ वेदस्तुतियों का प्रवचन करने वाले, ( सहछन्दसः ) एक साथ गुरु के अधीन वेदपाठ करने वाले, एक समान गति वाले, ( सहप्रमाः ) एक साथ समान रूप से यथार्थ ज्ञान करने हारे ( दैव्याः ) गुण कर्म में कुशल ( आवृताः ) गुरुकुलों से समावर्त्तन कराकर, स्नातक होकर (रश्मीन् अनु आलेभिरे ) गृहस्थ और राज्य कार्य की महारथियों के समान रासों को ग्रहण करते हैं ।

**आयुष्यं वर्च्चस्यथंः रायस्पोषमौद्भिदम् ।**
**इदथंः हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥ ५० ॥**

दक्ष ऋषिः । हिरण्यं तेजो देवता । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—( इदम् ) यह ( आयुष्यम् ) आयु के बढ़ाने वाला, (वर्चस्यं) तेज ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन का हितकारी, ( रायःपोषम् ) धन समृद्धि को बढ़ाने वाला, ( औद्भिदम् ) दुःखों और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ, ( वर्चस्वत् ) उत्तम तेज और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त,

(हिरण्यम्) सब प्रजा का हित कर और सबको सुख देने वाला, सुवर्ण के समान तेजस्वी शस्त्र बल (माम्) मुझ राष्ट्रपति को (जैत्राय) शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये (आविशतात्) प्राप्त हो।

न तद्रक्षा॑ᳪंसि न पि॑शा॒चास्त॑रन्ति दे॒वाना॒मोज॑: प्रथम॒जᳪं ह्ये॒तत्।
यो बि॒भर्त्ति॑ दाक्षाय॒णᳪं हिर॑ण्य॒ᳪं स दे॒वेषु॑ कृणुते दी॒र्घमायु॑:
स म॑नु॒ष्ये॑षु कृणुते दी॒र्घमायु॑: ॥ ५१ ॥ अथर्व० १ । ३५ । २ ॥

दक्ष ऋषिः । हिरण्यं तेजो देवता । भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(तत्) उस पूर्वोक्त तेज को (न रक्षांसि) न सत्कार्यों में विघ्न करने वाले, एवं दूसरों को पीड़ा देकर अपने को बचाने वाले दुष्ट, स्वार्थी पुरुष और (न पिशाचाः) न प्राणियों के मांस रुधिरादि खाने वाले, क्रूर, अत्याचारी लोग (तरन्ति) लांघते हैं। (हि) क्योंकि (एतत्) वह (प्रथमजम्) सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ सर्वश्रेष्ठ, (देवानाम् ओजः) देव, विद्वान् विजिगीषु पुरुषों का परम बल, पराक्रम एवं वीर्य है। (यः) जो (दाक्षायणः) दक्ष अर्थात् व्यवहारकुशल, एवं बलवान् प्रज्ञावान् पुरुष से संञ्चालन करने योग्य, (हिरण्यं) प्रजाओं के हितकर और सुखकारी बल, (बिभर्त्ति) धारण एवं पालन करता है (सः) वह (देवेषु) देव, विद्वान् विजिगीषु पुरुषों के बीच में (दीर्घम् आयुः कृणुते) दीर्घ जीवन उत्पन्न करता है। और (सः) वह ही (मनुष्येषु दीर्घम् आयुः कृणुते) मनुष्यों के भी जीवन को चिरस्थायी कर देता है। जो राजा अपने सेनाबल को पुष्ट करता है उसके बल का पार दुष्ट, राक्षस और पिशाच भी नहीं पाते। वह अपने वीर पुरुषों और प्रजाजनों के जीवनों की रक्षा करता है।

ब्रह्मचर्यपक्ष में—(देवानां हि एतत् प्रथमजं ओजः) विद्वान् पुरुषों का आयु के प्रथम भाग में उत्पन्न ब्रह्मचर्यरूप वीर्य है जिसको राक्षस और पिशाच नहीं पार कर सकते। दक्ष, अर्थात् बुद्धिमान् पुरुषों से प्राप्त

होने योग्य उसको जो धारण करता है वह विद्वानों और मनुष्यों में अपने जीवन को बहुत दीर्घ बना लेता है ।

**यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यथं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।**
**तन्म ऽआबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ ५२ ॥**

अथर्व० १ । ५५ । १ ॥

दक्षऋषिः । हिरण्यं तेजो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(दाक्षायणाः) दक्ष अर्थात् वीर्यबल और प्रज्ञा के एक मात्र आश्रय, और दक्ष, अर्थात् सेना बल के 'अयन' अर्थात् मुख्य अधिकारों पर स्थित वीर पुरुष (यद्) जिस बल को (सुमनस्यमानाः) परस्पर उत्तम चित्त वाले होकर ( शतानीकाय ) सैकड़ों सैनिकों के स्वामी सेनापति के लिये ( आबध्नन् ) बांधते हैं, उसको नियम व्यवस्था में रखते और अपने अधीन वेतनादि पर नियुक्त करते हैं । ( तत् ) उसी सैन्यबल को मैं ( मे ) अपने राष्ट्र के लिये (शतशारदाय) सौ बरस के दीर्घ जीवन तक के काल के लिये ( आबध्नामि ) बांधता हूं, व्यवस्थित करता हूं और ( यथा ) जिससे मैं ( आयुष्मान् ) दीर्घ आयु से युक्त होकर ( जरदष्टिः ) जरावस्था का भोग करने वाला पूर्णायु ( असम् ) होऊं ।

ब्रह्मचर्य के पक्ष में—बलों और विज्ञानों के निधान विद्वान् पुरुष जिस विज्ञान और व्रत पालन रूप 'हिरण्य' अर्थात् वीर्य को शुभ चित्तवान् आचार्य गण सैकड़ों सेनाबलों से युक्त सेनापति के समान बलवान् एवं सौ वर्षों तक जीवन प्राप्त करने, एवं सैकड़ों विद्याओं को मुख से कहने में समर्थ होने के लिये नियम से पालन करते हैं उसी को मैं भी सौ वर्ष तक पूर्णायु प्राप्त करने के लिये बांधू, नियमपूर्वक पालन करूं ।

**उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज ऽएकपात्पृथिवी समुद्रः । विश्वे देवा ऽऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ता ऽअवन्तु ॥५३॥**

ऋ० ६ । ५० । १४ ॥

भा०—राजापक्ष में—( बुध्न्यः ) अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले ( अहिः ) मेघ के समान सबके ऊपर शासक पद पर रह कर कभी न क्षीण होने वाला, सदा ऐश्वर्यों का वर्धक, ( एकपात् ) एकमात्र मोक्ष-रूप पाद, चरण या स्वरूप से युक्त (अजः) कभी उत्पन्न न होने वाले पर-मेश्वर के समान स्वयं ( एकपात् ) एक अद्वितीय होकर राष्ट्र के पालन करने वाला और (अजः) सब राष्ट्र का मुख्य संचालक, शत्रुओं का स्वयं उच्छेत्ता, ( पृथिवी ) पृथिवी के समान सर्वाश्रय और ( समुद्रः ) समुद्र के समान गम्भीर, अनेक रत्नों का आश्रय, (नः श्रृणोतु) हमारे कष्टों और प्रार्थनाओं को श्रवण करे। ( विश्वे ) समस्त ( ऋतावृधः ) सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले ( हुवानाः ) एक दूसरे से स्पर्धा पूर्वक बढ़ने हारे ( देवाः ) देवगण और ( कविशस्ताः ) विद्वान् दीर्घदर्शी पुरुषों से कहे गये, ( स्तुताः ) स्तुति युक्त एवं उत्तम ( मन्त्राः ) मनन करने योग्य विचार एवं वेदमन्त्र सभी ( नः अवन्तु ) हमारी रक्षा करें।

परमेश्वर—सर्वाश्रय होने से 'बुध्न्य' है। कभी नाश न होने से 'अहि' है। उत्पन्न न होने से 'अज' है। एकमात्र ज्ञानमय मोक्षस्वरूप होने से 'एकपात्' है। सर्वाश्रय और सब जगत् का विस्तार करने वाला होने से 'पृथिवी' है वही समस्त लोकों का उद्भव होने से 'समुद्र' है। वह हमारी प्रार्थना श्रवण करे।

इमा गिर॑ऽआदि॒त्येभ्यो॑ घृ॒तस्नूः॑ स॒नाद्राज॑भ्यो जु॒ह्वा॑ जुहोमि।
शृ॒णोतु॑ मि॒त्रोऽअ॑र्य॒मा भगो॑ नस्तुविजा॒तो वरु॑णो॒ दक्षो॒ऽअंशः॑॥५४॥
ऋ० २। २७। १॥

कूर्मो गार्त्समद ऋषिः। आदित्या राजानो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—मैं विद्वान् पुरुष (राजभ्यः) प्रजाओं से अधिक तेज वाले राजा रूप ( आदित्येभ्यः ) सूर्य के समान तेजस्वी और अदिति अर्थात् पृथिवी के के रक्षण, पालन, विभाजन आदि में कुशल शासक पुरुषों को (इमाः गिरः)

इन वेदवाणियों का ( सनात् ) चिरकाल से, सदा नित्य ही ( जुह्वा ) वाणी द्वारा ( जुहोमि ) उपदेश करूं। और ( मित्रः ) सबका स्नेही, सबको मरण से बचाने वाला, मित्र, ( अर्यमा ) शत्रुओं को नियम में बांधने वाला, न्यायकारी, ( भगः ) ऐश्वर्यवान्, सबके सेवा करने योग्य; ( तुविजातः वरुणः ) बहुतसे प्रजाजनों या सैनिक गणों में यशस्वी और बहुत से सेनादलों से बलवान्, सामर्थ्यवान् वरुण, दुष्टों और पापों के वारण में समर्थ पुरुष ( दक्षः ) दक्ष, चतुर, बुद्धिमान् ( अंशः ) सबके योग्य अंशों का विभाजन करने वाला इस समस्त अधिकारी वर्ग में से प्रत्येक ( श्रृणोतु ) मेरी ज्ञान-वाणियों का श्रवण करे।

अथवा—( राजभ्यः आदित्येभ्यः इमाः सनात् गिरः जुह्वा आजुहोमि ) प्रदीप्त तेजस्वी आचार्यों से मैं इन नित्य वेदवाणियों को अपने ग्रहण साधन, और धारण सामर्थ्य से ग्रहण करूं, पढूं। उनको मित्र आदि जन श्रवण करें।

**स॒प्त ऋष॑यः॒ प्रति॑हिताः॒ शरी॑रे स॒प्त र॑क्षन्ति॒ सद॒मप्र॑मादम्। स॒प्ताप॑ः स्वप॑तो लो॒कमी॑युस्तत्र॑ जागृ॒तो ऽअस्व॑प्नजौ सत्र॒सदौ॑ च दे॒वौ ॥ ५५ ॥**

काण्व ऋषिः। शरीर-सत्रसदो देवताः। भुरिग् जगती। निषादः॥

भा०—जिस प्रकार ( सप्त ) सात ( ऋषयः ) विषयों को दिखाने वाले पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि ( शरीरे ) इस शरीर में ( प्रतिहिताः ) प्रति विषय ज्ञान के लिये स्थापित किये गये हैं और वे ( सप्त ) सातों ( अप्रमादम् ) बिना प्रमाद के इस ( सदम् ) अपने आश्रयस्थान शरीर की ( रक्षन्ति ) रक्षा करते हैं। और जब वे ( सप्त ) सातों (आपः) सूक्ष्म व्यापनशील प्राण ( स्वपतः ) शयन करने वाले पुरुष के ( लोकम् ) द्रष्टा आत्मा को (ईयुः) प्राप्त होते हैं, उसी के भीतर लीन होते हैं उस समय भी ( अस्वप्नजौ ) आत्मा में अप्यय अर्थात् लीन न होने वाले, निद्रा रहित दो

( सत्रसदौ ) सदा साथ रहने वाले ( देवौ ) देव, दिव्य गुणयुक्त प्राण और अपान गति करते हैं। उसी प्रकार ( शरीरे ) इस राष्ट्ररूप शरीर में ( सप्त ऋषयः प्रतिहिताः ) सात द्रष्टा विद्वान् पुरुष प्रत्येक भिन्न २ पदों पर स्थापित किये जांय, वे सातों (अप्रमादम् ) विना प्रमाद के ( सदम् ) सदा सभाभवन की रक्षा करें। (सप्त आपः) वे सातों आप्त पुरुष शयन करते हुए, असावधान दशा में प्रजाजन के रहते हुए भी ( लोकम् ईयुः ) समस्त पदार्थों के दर्शन करने वाले मुख्य पुरुष को प्राप्त रहते हैं और उस समय भी ( सत्रसदौ ) सज्जनों के कारण कार्य में अधिष्ठित कभी भी सोने या प्रमाद न करने वाले ( देवौ ) दो विद्वान् पुरुष नियुक्त हों।

सप्त ऋषयः—त्वक् चक्षुः श्रवण रसन घ्राण मनो बुद्धि लक्षणाः इति महीधरः। षडिन्द्रियाणि मनःसप्तमानि इत्युवटः।

**उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।**
**उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव ऽइन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥ ५६॥**

ऋ० १। १०। १॥

[ ५६—५७ ] काण्वो घौर ऋषिः। [ ५६—५८ ] ब्रह्मणस्पतिर्देवता। बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) महान् ऐश्वर्य और बड़े भारी राष्ट्र के पालक राजन्! एवं विद्वन्! तू (उत्-तिष्ठ) उठ, उदय को प्राप्त हो। (देवयन्तः) तुझे देव अर्थात् उत्तम राजा बनाने की इच्छा करते हुए (त्वा ईमहे ) तुझे प्रार्थना करते हैं। (मरुतः) मनुष्य, प्रजागण ( सुदानवः ) उत्तम दानशील होकर (उप प्र यन्तु) तेरे समीप आवें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सचा) समस्त समवाय या संघशक्ति से ( प्राशूः भव ) खूब उत्तम रीति से शत्रु पर शीघ्र यान करने हारा और राष्ट्र का उत्तम भोक्ता हो।

विद्वान् के पक्ष में—हे ब्रह्मणस्पते! विद्वन्! तू उठ हम देवों-विद्वानों और उत्तम गुणों की कामना करते हुए तेरे पास विद्यार्थी होकर आये हैं।

प्रजाजन दानशील होकर तेरे समीप दान देने के लिये आवे। तू सबके साथ उस दान का उत्तम भोक्ता हो।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो ऽअर्य्यमा देवा ऽओकाᳬसि चक्रिरे॥५७॥

ऋ० १। ४०। ५॥

भा०—राजमन्त्री के पक्ष में—( ब्रह्मणस्पतिः ) वेद विद्या का पालक विद्वान् पुरुष ( नूनं ) निश्चय से ( उक्थ्यम् ) प्रवचन करने योग्य श्रेष्ठ ( मन्त्रं ) मन्त्र, मनन योग्य विचार का ( प्र वदति ) उपदेश करता है। ( यस्मिन् ) जिसमें ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( वरुणः ) दुःखों और पापों का निवारक, शासक ( मित्रः ) सर्वस्नेही सभापति, (अर्यमा) न्यायकारी शासक ये ( देवाः ) सब विद्वान् गण ( ओकांसि ) अपने आश्रयस्थान ( चक्रिरे ) बनाते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—( यस्मिन् इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चक्रिरे ) जिस परमेश्वर में विद्युत्, चन्द्र, प्राण, वायु और अन्य पृथिवी आदि लोक और समस्त विद्वान् अपना आश्रयस्थान किये हुए हैं वह ब्रह्मणस्पति महान् जगत् और वेद का पालक परमेश्वर ही ( उक्थ्यं ) उपदेश करने और श्रवण करने योग्य (मन्त्रं) वेदमन्त्रों का भी (प्रवदति) उपदेश करता है। सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। योग० ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वन्तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥

ऋ० २। २३। १९।

गृत्समद ऋषिः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ( ब्रह्मणस्पते ) महान् राष्ट्र के पालक ! विद्वन् ! आचार्य ! ( यन्ता त्वम् ) सब राष्ट्र को नियम में रखने हारा तू (अस्य सूक्तस्य ) इस उत्तम उपदेश करने योग्य प्रवचन का ( बोधि ) स्वयं ज्ञान कर, औरों

को उपदेश कर। और हमारे ( तनयं च ) पुत्र आदि को ( जिन्व ) विद्या आदि में पुष्ट कर। ( यत् ) जब ( देवाः ) देव, विद्वान् पुरुष (अवन्ति ) रक्षा करते हैं ( तत् ) तब ( विश्वम् ) समस्त कार्य ( भद्रम् ) सबको कल्याणकारी होता है। हम ( सुवीराः ) उत्तम वीर होकर ( विदथे ) संग्राम में और ज्ञानसंघ और यज्ञ में ( बृहत् ) बड़ा यश कहें या बड़े उत्तम २ ज्ञान का उपदेश करें।

परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर ! तू समस्त जगत् का नियन्ता है। तू इस वेदमय सूक्त का ज्ञान कराने वाला है। तू हमारे पुत्रादि का पोषण कर, समस्त कल्याणमय पदार्थ और आचरण को विद्वान् लोग पालन करें। हम यज्ञ में महान् वेद ज्ञान का प्रवचन, उच्चारण करें अथवा यज्ञ में हम ( बृहत् ) उस महान् परमेश्वर की स्तुति करें। स्तुति के मन्त्रों की प्रतीक आगे देते हैं।

य इ॒मा विश्वा॑० । वि॒श्वक॑र्म्मा॑० । यो नः॑ पि॒ता॑० ।
अन्न॑पते॒ऽन्न॑स्य नो देहि॒० ॥ ५८ ॥

भा०—'य इमा विश्वा०' अ० १७।१७॥ 'विश्वकर्मा०' अ० १७।२६॥ 'यो नः पिता०' अ० १७।२७॥ 'अन्नपतेऽन्नस्यनो देहि०' अ० ११।८३॥ इन चारों मन्त्रों की व्याख्या उन २ स्थानों पर देखो।

॥ इति चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

# अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

अ० ३५, आदित्या देवाः वा ऋषयः । पितरो देवताः ॥

॥ओ३म्॥ अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः अस्य लोकः सुतावतः । द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै ॥ १ ॥

पिपीलिकामध्या गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( असुम्नाः ) दूसरों को सुख न देने वाले, दुःखकारी, परपीड़क, ( देवपीयवः ) विद्वानों, उत्तम पुरुषों और उत्तम गुणों के नाश करने वाले ( पणयः ) दूसरों के द्रव्य से व्यवहार करने वाले, धूर्त्त पुरुष ( इतः ) इस राष्ट्र से ( अप यन्तु ) दूर चले जांय । यह ( लोकः ) लोक, समस्त प्रजाजन ( सुतावतः ) अभिषेक को प्राप्त ( अस्य ) इस राजा के अधीन है । वह ही ( यमः ) सब राष्ट्र का नियन्ता होकर ( द्युभिः ) प्रकाश से युक्त, ( अहोभिः अक्तुभिः ) दिन और रातों से ( व्यक्तं ) प्रकाशित ( अवसानम् ) स्थान ( अस्मै ) इस बसने वाले लोक समूह को ( ददातु ) प्रदान करे ।

परमेश्वर के पक्ष में—दुष्ट पुरुष दूर हों । उत्तम कर्म करने वाले का यह लोक है । सर्व नियन्ता परमेश्वर इस जीव को दिन रात सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि से प्रकाशित लोक प्रदान करता है ।

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु ।
तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ॥ २ ॥

सविता देवता । गायत्री । षड्जः ॥

---

१—अथ पितृमेधसम्बन्धिनो मन्त्राः ॥

भा०—राजा के पक्ष में—( सविता ) सबका प्रेरक राजा हे पुरुष ! (ते शरीरेभ्यः) तेरे सम्बन्धि जनों के शरीरों के भरण पोषण के लिये ( पृथिव्याम् ) इस पृथिवी में ( लोकम् ) पर्याप्त उतना स्थान जितने की उत्तम रीति से वह देख भाल कर सके ( इच्छतु ) देवे । ( तस्मै ) इस राजा के लिये ( उस्रियाः ) बैल ( युज्यन्ताम् ) जोड़े जायं ।

परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर जीव के शरीरों के भोग के लिये पृथिवी में स्थान दे । उस जीव के शरीर में, रथ में बैलों के समान ज्ञान ग्राहक प्राण प्रदान करता है । अथवा उसी को देह से देहान्तर में और लोक से लोकान्तर में ले जाने के लिये किरणों को युक्त करता है । किरणों द्वारा जीव लोक-लोकान्तर में गमन करते हैं ।

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्य्यस्य वर्चसा ।
विमुच्यन्तामुस्रियाः ॥ ३ ॥

सविता देवता । उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—कृषिपक्ष में—हल बाह देने पर क्षेत्र को ( वायुः ) वायु ( अग्नेः ) आग की ( भ्राजसा ) ज्वाला से और ( सविता ) सूर्य (सूर्यस्य वर्चसा ) अपने ही प्रकाश से ( पुनातु ) क्षेत्र को पवित्र करे । इस-लिये ( उस्रियाः ) बैल ( विमुच्यन्ताम् ) छोड़ दिये जांय ।

जीवपक्ष में—जब जीव शरीर त्याग कर जाता है तो उसे (वायुः) वायु अर्थात् ज्ञानी पुरुष ( अग्नेः भ्राजसा ) अग्नि या परमेश्वर के दीप्ति से और ( सविता सूर्यस्य वर्चसा ) सर्वोत्पादक सूर्य प्रभु अपने प्रकाश से पवित्र करे । और देहान्तर प्राप्ति के समय वे पूर्वोक्त ( उस्रियाः ) सहयोगी कारण भी ( विमुच्यन्तां ) उससे छूट जांय ।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ४ ॥

ऋ० १० । ९७ । ५ ॥

वायुः सविता च देवते । अनुष्टुप् । गान्धरः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! क्योंकि ( वः ) आप लोगों का ( नि-सदनम् ) नियम में रहना ( अश्वत्थे ) अश्वारूढ सावधान, क्षत्रिय राजा के अधीन है और ( वः वसतिः ) आप लोगों का निवासस्थान भी ( पर्णे ) पालन करने हारा राजा के अधीन ( कृता ) की गई है, अतः (यत् ) जब ( पूरुषम् ) अपने गुरु या अध्यक्ष राजा जो ( सनवथ ) उसका भाग दे चुको तो आप लोग ( गोभाजः ) पृथिवी की उपज और वेद वाणी का सेवन करने वाले । ( इत् ) ही होकर ( किल ) निश्चय से ( असथ ) रहो । व्याख्या देखो अ० ११।७९॥

परमेश्वर के पक्ष में—हे जीवो ! तुम लोगों की स्थिति (अश्वत्थे) कल तक भी स्थिर न रहने वाले, अनित्य और (पर्णे) पत्ते के समान चञ्चल संसार में की है । इसलिये ( यत् ) अब तुम ( पुरुषम् सनवथ ) परमेश्वर को उपासना करो तो ( गोभाजः इतकिल असथ ) वेदवाणी, इन्द्रिय किरण आदि का सेवन करने वाले ज्ञानवान्, भोगवान् होवो ।

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ ऽआ वपतु ।
तस्मै पृथिवि शं भव ॥ ५ ॥

पूर्ववत् ।

भा०—हे जीव ! (सविता) सबका प्रेरक राजा (ते शरीराणि) तेरे शरीरों को, तेरे सम्बन्धि जनों को ( मातुः ) माता के समान पालक पोषक पृथिवी के ( उपस्थे ) ऊपर ( आवपतु ) स्थापित करे । हे ( पृथिवि ) पृथिवि ! ( तस्मै ) उस प्रजाजन को तू ( शं भव ) कल्याणकारिणी हो ।

जीव के प्रजनन पक्ष में—उत्पादक पिता हे जीव तेरे शरीरों को ( मातुः ) जननी के ( उपस्थे ) प्रजननाङ्ग में ( आवपतु ) बीज रूप से वपन करे । हे ( पृथिवि ) पृथिवी के समान आश्रय देने वाली माता उस गर्भगत जीव को ( शं भव ) शान्तिदायिन हो ।

परमेश्वर तुझ जीव के शरीरों को पृथ्वी पर स्थापित करे, पृथ्वी जीव को सुखदायिनी हो ।

प्र॒जाप॑तौ त्वा दे॒वता॑या॒मुपो॑दके लो॒के निद॑धाम्यसौ ।
अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ६ ॥

प्रजापतिर्देवता । उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे ( असौ ) पुरुष, प्रजाजन ! ( त्वा ) तुझको मैं ( प्रजापतौ ) प्रजा के पालक राजा के अधीन ( उप-उदके लोके ) पानी के समीप स्थित प्रदेश में ( निदधामि ) नियत रूप से स्थापित करता हूं । वह प्रजापालक राजा ही ( नः ) हमारे ( अघम् ) पापाचरण, परस्पर घात प्रतिघात आदि को ( नः ) हममें से ( अप शोशुचत् ) मल को अग्नि से जला कर नष्ट कर देने के समान दूर कर दे ।

हे जीव ! जलादि जीवनोपयोगी लोक में मैं तुझे स्थापित करता हूं उस परमेश्वर के अधीन तू रह वही हमारे पापों को दग्ध कर दूर करे ।

पर॑ मृत्यो॒ अनु॒ परे॑हि॒ पन्था॒ यस्ते॒ऽअ॒न्य ऽइत॑रो देव॒याना॑त् ।
चक्षु॑ष्मते शृण्व॒ते ते॑ ब्रवीमि॒ मा नः॑ प्र॒जा रीरिषो॒ मोत वी॒रान् ॥ ७
ऋ० १० । १८ । १ ॥

यमपुत्रः संकसुक ऋषिः । मृत्युर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( मृत्यो ) दुष्टों के मारने वाले राजन् ! ( यः ) जो ( ते ) तेरा ( देवयानात् ) देवों—विद्वानों के गमन करने योग्य मार्ग से ( इतरः ) दूसरा ( अन्यः ) कोई और भिन्न मार्ग है तू उस ( परं पन्थान् अनु ) दूसरे मार्ग को लक्ष्य करके (परा इहि) दूर ही से चला जा । ( चक्षुष्मते ) आंखों वाले, बुद्धिमान् और ( शृण्वते ) कानों वाले, प्रजाहितैषी ( ते ) तुझे ( ब्रवीमि ) उपदेश करता हूं कि तू ( नः ) हमारी ( प्रजां ) प्रजा

६—मासौ ॥ पर० इति काण्व० ।

को ( उत ) और ( वीरान् ) वीर पुरुषों को ( मा रीरिषः ) मत मार, उनका नाश मत कर, नियन्ता राजा शिष्टजनों के सदाचार से अतिरिक्त सदाचार के मार्ग पर दृष्टि रक्खे । वह आंख से प्रजा का व्यवहार देखे, कानों से उभय पक्ष का सुने । अर्थ प्रजा और वीर पुरुषों को न सतावे ।

मृत्यु के पक्ष में—हे मृत्यो ! तू (देवयाना) अर्थात् विद्या के बल पर मोक्ष मार्ग के अतिरिक्त मार्ग से जा अर्थात् ज्ञान मार्गियों के लिये मृत्यु नहीं है जन्म मरण का चक्र पितृयाण वालों को और अविद्यामार्गियों को है । चक्षुष्मान् और कर्णवान् पुरुष तुझे ज्ञान का उपदेश करता है जिससे बाल प्रजा और वीर्यवान् युवा पुत्रों को मृत्यु न सतावे ।

**शं वातः शꣳ हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः ।**
**शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभि शूशुचन् ॥ ८ ॥**

विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ।

भा०—हे पुरुष ! हे जीव ! हे प्रजाजन ! ( वातः ) वायु ( ते शम् ) तुझे सुखकारी और कल्याणकारी हो, (घृणिः ते शम् ) सूर्य भी तुझे सुख कर हो ( इष्टकाः ) ईंटें, ईंटों से बने गृह आदि, तथा यज्ञ कर्म, अथवा तेरे अन्य इष्ट अभिलषित पदार्थ और प्रिय सम्बन्धी जन ( ते शं भवन्तु ) तुझे शान्तिदायक हों । ( पार्थिवासः अग्नयः ) इस पृथिवी पर के प्रसिद्ध अग्नि, विद्युत् आदि अथवा अग्नि के समान तेजस्वी पृथ्वी के राज काज ये सभी ( ते शं भवन्तु ) तुझे शान्ति प्रदान करें, वे ( त्वा ) तुझे ( मा अभि शूशुचन् ) न सतावें, दग्ध न करें । तेरे शोक और खेद का कारण न हों ।

**कल्पन्तान्ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः ।**
**अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तान्ते दिशः सर्वाः ॥ ६ ॥**

विश्वेदेवाः देवताः । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे जीव ! प्रजाजन ! राजन् ! ( दिशः ) दिशाएं दिशाओं के

समस्त प्रजाजन ( ते ) तेरे लिये हितकारी ( कल्पन्ताम् ) हों। ( आपः तुभ्यम् शिवतमाः ) आप्त जन और जल भी तेरे लिये अत्यन्त कल्याणकारी हों। ( सिन्धवः तुभ्यं शिवतमाः भवन्तु ) बहने वाले नद नदियां और राष्ट्र को सूत्र में बांधने वाले बलवान् पुरुष तेरे लिये कल्याणकारी हों। ( अन्तरिक्षं तुभ्यं शिवम् ) अन्तरिक्ष, आकाश तथा अन्तरिक्ष के समान मध्यस्थ जन भी तेरे लिये सुखकर हों। ( सर्वाः दिशः ते कल्पन्ताम् ) समस्त दिशाएं और उपदिशाएं तथा उत्तम उपदेश देने हारे गुरुजन तुझे सुखकर हों।

अश्मन्वती रीयते सꣳ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये ऽअसञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥१०॥
ऋ० १० । ५३ । ८ ॥

भा०—हे ( सखायः ) मित्र जनो! जिस प्रकार ( अश्मन्वती ) पत्थरों से भरी हुई नदी ( रीयते ) जारही हो तो ( सं रभध्वम् ) उसको पार करने के लिये तैयारी करते, ( उत् तिष्ठत ) उठ खड़े होते, और ( प्रतरत ) उसको अच्छी प्रकार पार करते। ( अत्र ) उसमें ही ( ये अशिवाः असन् ) जो असुखकर, दुःखदायी मल हों उनको हम ( [illegible] ) त्याग देते और ( वयम् ) हम ( वाजान् [illegible] ) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को नदी से हैं ( उत् त[illegible] ) उत्तम रीति से प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार ( अ[illegible]न्वती रीयते ) शस्त्रों से युक्त यह सेना चल रही है। ( संरभध्वम् ) शत्रु विजय का उद्योग करो। ( उत् तिष्ठत ) उठो, ( प्र तरत ) आगे बढ़ो। ( अत्र ) इस संग्राम में ये ( अशिवाः असन् ) हमारे अकल्याणकर कष्टदायी शत्रु हैं उनको ( जहीमः ) त्याग दें, नाश करें और ( वयम् ) हम ( वाजान् अभि ) संग्रामों और ऐश्वर्यों को लक्ष्य करके ( उत् तरेम ) उत्तम रीति से, शत्रु से ऊंचे रह कर चलें और ऐश्वर्यों को प्राप्त करें।

अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव ॥ ११ ॥

शुनःशेप ऋषिः। अपामार्गो देवता। विराट् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे ( अपामार्ग ) दुष्टों को दूर करके राष्ट्र के कण्टकों को शोधन करने हारे राष्ट्रपते! ( त्वम् ) तू ( अस्मत् ) हमसे ( अघम् अप सुव ) पाप, परस्पर के घात प्रतिघात को दूर कर। ( किल्विषम् अप सुव ) व्यर्थ, विचारशून्यता से पर-अपकार करने के पाप कृत्य को भी दूर कर। ( कृत्याम् अप सुव ) शत्रु से प्रयुक्त गुप्त हत्या के घातक प्रयोग को दूर कर। ( रपः अप ) बलात्कार से स्त्री आदि पर किये व्यभिचार आदि पापों को भी दूर कर। ( दुःस्वप्न्यम् अप सुव ) दुःख सहित निद्रा होने के कारण को, अथवा दुःखकारी स्वप्न और मृत्यु को भी दूर कर।

अघ, किल्विष, कृत्या, रपः, दुष्वप्न्य आदि यद्यपि सभी सामान्यतः पापवाचक और विशेषतः भिन्न २ प्रकार के अपराधों को दिखाते हैं। कृत्या और अपामार्ग के प्रकरणों के स्पष्टी करण अथर्ववेद भाष्य में विस्तार से किया गया है। 'दुःष्वप्न्य' का प्रकरण भी अथर्ववेद में ही विस्तार से कहा गया है। अपामार्ग ओषधि, स्वप्न दोष आदि रोगों को दूर करती है। उसी [illegible]ना से प्रजा के भीतर से पापों और हत्या आदि दुष्कर्मों को दूर [illegible] भी 'अपामार्ग' कहाता है।

करनेवाला अधिकारी विभा[illegible]

**सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दु[illegible]त्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १२ ॥**

आपो देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६। २२॥ अ० २०। १९॥

( नः ) हमारे लिये ( आपः ओषधयः ) जल और ओषधियें और और आप्त जन ( सुमित्रियाः ) शुभ स्नेह वाले मित्र जनों के समान हिताचरण वाले, सुखकारी और मित्र हों। जो हम से द्वेष करें और हम जिससे द्वेष करें उसके लिये वे दुखदायी हों।

अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयᳬ स्वस्तये ।
स न ऽइन्द्र ऽइव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणो भव ॥ १३ ॥

अनड्वान् देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—( अनड्वाहम् ) शकट को खींचने के लिये जिस प्रकार लोग बड़े बैल को प्राप्त करते हैं और 'अनः' अर्थात् यज्ञ को धारण करने वाले अग्नि को जिस प्रकार याज्ञिक लोग ग्रहण करते हैं उसी प्रकार ( अनड्वाहम् ) गाड़ी के समान राष्ट्र के शकट को उठाने में समर्थ ( सौरभेयम् ) सुरभि अर्थात् समस्त सुखदायी कामधेनु, उत्तम भूमि के परम हितकारी, मातृभूमि के सच्चे पुत्र राजा को हम (स्वस्तये) कल्याण के लिये ( आरभामहे ) प्राप्त करें, स्थापित करें । (सः ) वह ( इन्द्रः इव ) सूर्य और वायु के समान तेजस्वी, बलवान्, ऐश्वर्यवान् सेनापति और राजा होकर अथवा ( देवेभ्यः इन्द्रः इव ) इन्द्रियों के लिये आत्मा के समान (वन्हिः ) समस्त राज्याङ्गों और देवों को वहन करने में समर्थ और उनका नेता होकर (संतरणः भव) सबको भली प्रकार युद्ध आदि के और राज्यकार्यों के पार लगाने वाला नाव के समान आश्रय और कर्णधार के समान नायक हो ।

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । २१ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ १५ ॥

संकसुक ऋषिः । मनुष्या मृत्युर्वा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—( जीवेभ्यः ) जीवों की रक्षा के लिये मैं राजा ( इमं ) इस (परिधिम्) नगर के चारों ओर परकोट के समान रक्षा का साधन (दधामि) स्थापित करता हूं । जिससे ( अपरः ) दूसरा शत्रु पुरुष ( एषाम् ) इन

महे स्वस्तये इति काण्व० ।

मेरे प्रजाजनों के ( एतम् ) इस ( अर्थम् ) धन को ( मा नु गात् ) प्राप्त न करे । वे प्रजाजन ( पुरूचीः ) बहुत से ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले होकर (शतं शरदः जीवन्तु ) सौ २ वर्ष जीवें । ( पर्वतेन ) शत्रु को जिस प्रकार पर्वत आदि अलङ्घ्य पदार्थ से परे रक्खा जाता है उसी प्रकार (मृत्युम्) मृत्यु को और अन्य मरने के कारण रूप शत्रु और हिंसक जीवों को भी ( पर्वतेन ) पालन पोषण सामर्थ्यों से युक्त राजा द्वारा तथा पर्व, अध्यायों और काण्डों से युक्त वेद के ज्ञानकाण्ड द्वारा और पर्व अर्थात् वाण आदि से युक्त सेना द्वारा ( अन्तः दधाताम् ) दूर करें ।

अग्न॒ऽआयू॑ꣳषि पवस॒ऽआ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च नः ।
आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म् ॥ १६ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १९ । ३८ ॥

आयु॑ष्मानग्ने ह॒विषा॑ वृधा॒नो घृ॒तप्र॑तीको घृ॒तयो॑निरेधि ।
घृ॒तं पी॒त्वा मधु॒ चारु॒ गव्यं॑ पि॒तेव॑ पु॒त्रम॒भि र॑क्षतादि॒मान्त्स्वाहा॑ ॥ १७ ॥

वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने ! ज्ञानवन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू ( हविषा ) अन्न के समान ग्रहण योग्य षष्ठांश राज-कर से ( वृधानः ) बढ़ता हुआ ( आयुष्मान् ) दीर्घायु होकर ( घृतप्रतीकः ) तेज को सब के प्रति दर्शाने हारा अथवा जल के समान शान्तस्वभाव का विश्वास दिलाने वाला, अथवा तेजस्वी मुख वाला होकर और (घृतयोनिः) मेघस्थ जल में रहने वाले विद्युत् या समुद्र वासी और अग्नि या घृत से तीव्र अग्नि के समान तेज, पराक्रम को अपना आश्रय बना कर ( एधि ) राष्ट्र में रह । तू ( गव्यं चारु मधु घृतं पीत्वा ) गौ के उत्तम मधुर घृत को पान करके जिस प्रकार अग्नि तेज को धारण करता है उसी प्रकार (गव्यं) गौ अर्थात् पृथिवी के हितकारी, (चारु) उत्तम, एक देश से देशान्तरों में जाने वाले, ( मधु ) मधुर एवं शत्रुओं के पीड़ा देने वाले, बलस्वरूप

( घृतं ) तेजस्वी सैन्यबल रूप तेज को धारण करके, ( पिता पुत्रम् इव ) पिता जिस प्रकार पुत्रकी रक्षा करता है उसी प्रकार ( इमान् ) इन राष्ट्र के प्रजाजनों की ( स्वाहा ) उत्तम प्रकार से ज्ञान पूर्वक ( अभि रक्षतात् ) सब प्रकार से रक्षा कर ।

परीमे गामनेषत पर्य्यग्निमहृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क ऽइमाँ२॥ ऽआ दधर्षति ॥ १८ ॥

ऋ० १० । १५५ । ५ ॥

भारद्वाजः शिरिम्बिठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—( इमे ) ये राजा के जन और प्रजावर्ग भी ( गाम् ) पृथ्वी को और वाणी को ( परि अनेषत ) प्राप्त करते हैं अथवा ( गाम् ) शकट के वहन करने वाले बैल के समान कार्य-भार को उठाने में समर्थ पुरुष पुंगव को ( परि अनेषत ) सब प्रकार से नेता रूप से स्वीकार करें । और ( अग्निम् ) अग्नि के समान तेजस्वी और अग्रणी नायक को ही ( परि अहृषत ) सर्वत्र ले जावें, अपने ऊपर धारण करते रहें । और ( देवेषु ) विद्वान् ब्राह्मणों के अधीन रह कर ( श्रवः अक्रत ) वेदोपदेश का श्रवण करें । तब ( इमान् ) इन विद्वान्, शिष्ट पुरुषों को ( कः ) कौन ( आदधर्षति ) पराजित कर सकता है ।

इसी प्रकार सब लोग ब्रह्मचर्य से गौ अर्थात् वेद-वाणी का अभ्यास करें फिर अग्नि-आधान पूर्वक गृहस्थ करें, फिर श्रवण योग्य ब्रह्म विद्या का विद्वानों से श्रवण करें । फिर मृत्यु भी उनको नहीं पछाड़ सकता ।

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ १६ ॥

अथर्व० १२ । २ ॥

दमन ऋषिः । क्रव्यादग्निर्जातवेदाश्च देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मैं ( क्रव्यादम् ) कच्चा मांस खाने वाले, ( अग्निम् ) आग

के समान संतापकारी दुष्ट जन को ( दूरं प्र हिणोमि ) दूर भगाऊं। (प्रवाहः) पापों के फैलाने वाला या धारनेवाला पुरुष (यमराज्यं) नियन्ता राजा के राज्य को ( गच्छतु ) प्राप्त हो। अर्थात् वह राजा के दमनकारी बल के अधीन रहे। और ( इतरः ) दूसरा पुण्यकर्मा ( जातवेदाः ) जो अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् वेदज्ञ पुरुष है ( अयम् ) यह ( इहैव ) यहां, इस राष्ट्र में ही ( प्रजानन् ) उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त होकर ( हव्यं ) ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थ और अधिकार को भी ( वहतु ) प्राप्त करे।

**वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके। मेदसः कुल्याऽउप तान्त्स्रवन्तु सत्याऽएषामाशिषः सं नमन्ताᳬस्वाहा॥२०**

जातवेदा देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ( जातवेदः ) ऐश्वर्यवन् ! हे ज्ञानवान् पुरुष ! तू ( पितृभ्यः ) पालन करने वाले पुरुषों के हित के लिये ( वपां ) बीज वपन करने योग्य भूमि को ( वह ) प्रदान कर, अथवा उनके हित के लिये इस भूमि को तू स्वयं धारण कर। और ( यत्र ) जहां ( पराके ) दूर देश में भी तू ( एना ) इनको ( निहितान् ) नियुक्त हुआ या स्थित हुआ जाने, वहां भी उनकी रक्षा के लिये ( वपां वह ) शत्रुओं को खण्डन करने वाली सेना को पहुंचा। इसी प्रकार ( मेदसः ) जल की ( कुल्याः ) धाराएं, नहरें ( तान् उप स्रवन्तु ) उन तक पहुंचे। ( एषाम् ) उनकी ( आशिषः ) सब कामनाएं (स्वाहा) उत्तम क्रिया द्वारा ( सत्याः ) सत्य एवं सज्जनों के हितकारी होकर ( सं नमन्ताम् ) फलें फूलें, पूरी हों।

**स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम्॥ २१॥** ऋ० १। २२। १५॥

मेधातिथिर्ऋषिः। पृथिवी देवता। गायत्री यजुरन्ता। षड्जः॥

---

२०—शिषः कामाः स्वाहा इति काण्व०।

भा०—हे ( पृथिवि ) पृथिवि ! तू ( नः ) हमारे लिये ( स्योना ) सुखकारिणी, ( अनृक्षरा ) कांटों और बाधक शत्रु और दुष्ट पुरुषों से रहित और ( निवेशनी ) बसने योग्य ( भव ) हो। तू ( सप्रथाः ) सब प्रकार से विस्तृत होकर ( नः ) हमें ( शर्म यच्छ ) शरण और सुख प्रदान कर। ( नः ) हमारे ( अघम् ) पाप को भी ( अप शोशुचत् ) दग्ध करके दूर कर।

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वद्यं जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ २२ ॥

अग्निर्देवता। स्वराड् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे अग्ने ! अग्रणी नायक ! विद्वन् ! ( त्वम् ) तू ( अस्मात् ) इस लोक, प्रजाजन से ही ( अधिजातः असि ) ऊपर उठकर उसपर अध्यक्ष रूप से अधिकारवान् बनाया गया है इसलिये ( अयं ) यह लोक भी ( त्वत् ) तेरे से ही ( पुनः ) पुनः ( जायताम् ) ऐश्वर्यवान् हो। ( असौ ) वह तू ( स्वर्गाय लोकाय ) सुखप्रद जनसमूह के हित के लिये ( सु-आहा ) उत्तम कर्म और सत्य न्याय करे।

॥ इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥



# अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

[ अ० ३६—४० ] दध्यङ् आथर्वण ऋषिः । ( अ० ३६ ) शान्तिकरणः ॥

॥ओ३म्॥ ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥१॥

भा०—( ऋचं वाचं प्रपद्ये ) मैं मननशील अन्तःकरण के तुल्य यजुर्वेद को प्राप्त होऊं । ( साम प्राणं प्रपद्ये ) प्राण अर्थात् योगाभ्यासादि उपासना के निदर्शक सामवेद को प्राण के तुल्य जानूं और प्राप्त करूं । ( चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये ) 'चक्षुः' वेद अर्थात् अथर्ववेद को 'श्रोत्र', कर्ण के समान जान कर उसको धारण करूं। अथवा—वाणी से ऋग्वेद को, यजुर्वेद को मन से, प्राण बल से सामगान के वेद को और चक्षु और श्रोत्र को मैं प्राप्त करूं। ( वाग् ओजः ) वाणी, मानस बल और ( सह ) उनके साथ ( ओजः ) शरीर-बल और ( प्राणापानौ ) प्राण और अपने उच्छ्वास और निःश्वास दोनों भी ( मयि ) मुझ में विद्यमान रहें ।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

बृहस्पतिर्देवता । निचृत्पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—( मे ) मेरे ( चक्षुषः ) आंख, ( हृदयस्य ) हृदय और (मनसः) मन का ( यत् छिद्रम् ) जो छिद्र या त्रुटि हो (वा) और जो इन इन्द्रियों का छिद्र ( अति तृण्णं ) अति अधिक पीड़ित हो ( तत् ) उसको

---

अथातः प्रवर्ग्याग्नि काश्वमेधोपनिषत् ।

१—सहोजो० इति काण्व० ।

( बृहस्पतिः ) महान् राष्ट्र का स्वामी और बड़े जगत् का पालक परमेश्वर और वेदवित् विद्वान् (मे) मेरे उसको ( दधातु ) पुष्ट करे। और ( यः ) जो ( भुवनस्य पतिः ) समस्त भुवनों, प्रदेशों और लोकों का स्वामी, परमेश्वर है वह ( नः शं भवतु ) हमें सुखकारी शान्तिदायक हो।

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥
कया नश्चित्र ऽआ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ ५ ॥
अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम्।
शतम्भवास्यूतिभिः ॥ ६ ॥

भा०—( ३—६ ) इन चारों मन्त्रों की व्याख्या देखो अ० ३।३५, २७, ३९—४१ ॥

कया त्वं न ऽऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य ऽआ भर ॥ ७ ॥ ऋ० ८। ८२। १९ ॥

इन्द्रो देवता। वर्धमाना गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे ( वृषन् ) सुखों और ऐश्वर्यों के वर्षक परमेश्वर एवं राजन्! ( त्वं ) तू ( कया ऊत्या ) किस प्रकार की रक्षाविधि से (अभि प्र मन्दसे ) प्रजाओं को प्रसन्न करता है। और ( स्तोतृभ्यः ) स्तुतिशील विद्वानों के ( कया ) किस पालन क्रिया से ( आ भर ) सब प्रकार से समृद्धि प्राप्त करता है? उससे हमें भी समृद्ध कर।

इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शन्नो ऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

---

५—'दळ्हा० इति काण्व०।

इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ( विश्वस्य राजति ) समस्त संसार के बीच प्रकाशमान है इसी प्रकार राजा समस्त राष्ट्र में (राजति) तेजस्वी होकर विराजे । वह ( नः ) हनारे ( द्विपदे चतुष्पदे शम् अस्तु ) दोपाये मनुष्य, भृत्य आदि और चौपाये पशुओं के लिये भी सुखदायी और कल्याणकारी हो ।

शन्नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शन्नो॑ भवत्वर्य॒मा ।
शन्न॒ ऽइन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒ः शन्नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥ ९ ॥

ऋ० १ । ९० । ९ ॥

भा०—( मित्रः नः शम् ) प्राण के समान सबका स्नेही, ईश्वर और राजा हमें सुखकारी हो । ( वरुणः नः शं ) जल के समान शान्तिप्रद वह हमें सुखकारी हो । ( अर्यमा नः शं भवतु ) न्यायाधीश और न्यायकारी परमेश्वर हमें शान्तिकारक सुखदायी हो । (इन्द्रः) शत्रु का नाशकारी, परमैश्वर्यवान्, ( बृहस्पतिः ) बड़े भारी राष्ट्र का पालक राजा और बृहती वेदवाणी का पालक, आचार्य, परमेश्वर ( नः शं ) हमें सुखदायी हो । (उरुक्रमः) संसार की रचना में बहुत प्रकारों से चेष्टा करने वाला परमेश्वर और महान् विक्रमशील राजा ( विष्णुः ) सेनापति, व्यापक सामर्थ्यवान् व्यापक ईश्वर और राजा ( नः शम् ) हमें सुखदायक हो ।

शन्नो॒ वात॑ः पवता॒ᳪं शन्न॑स्तपतु॒ सूर्य॑ः ।
शन्न॒ः कनि॑क्रदद्दे॒वः प॒र्जन्यो॑ ऽअ॒भि व॑र्षतु ॥ १० ॥

अथर्व० ७ । ६९ । १ ॥

वातादयो देवताः । विराड्नुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—( वातः ) वायु ( नः ) हमें ( शं पवताम् ) सुखकरी होकर बहे । वह व्याधिजनक न हो । ( नः सूर्यः शं तपतु ) हमारे लिये सूर्य शान्तिदायक होकर तपे । रोगों को नष्ट करे । ( कनिक्रदत् ) गर्जता हुआ

( देवः ) जलप्रद ( पर्जन्यः ) उत्तम रस बरसाने वाला मेघ और धर्म मेघमय प्रभु ( नः शम् अभिवर्षतु ) हमें सुख शान्ति वर्षे ।

अहा॑नि॒ शं भ॑वन्तु॒ नः॒ शꣳ रात्रीः॒ प्रति॑ धीयताम्। शन्न॑ इन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भिः॒ शन्न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या। शन्न॑ इन्द्रा॒पू॒षणा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः ॥ ११ ॥

ऋ० ७ । ३५ । १ ॥

लिङ्गोक्ता देवताः । अति शक्करी । पञ्चमः ॥

भा०—( नः ) हमारे लिये ( अहानि शं भवन्तु ) दिन सुखकारी हों । ( रात्रीः ) रातें भी ( नः शं ) हमें शान्तिदायक ( प्रतिधीयताम् ) रहें । ( इन्द्राग्नी ) विद्युत् और अग्नि ( अवोभिः ) अपने नाना रक्षा साधनों से ( नः शम् ) हमें शान्तिदायक हों । ( इन्द्रवरुणा ) इन्द्र और वरुण, सूर्य और मेघ, विद्युत् और जल दोनों भी ( रातहव्या ) प्रजा को अन्न देने वाले होकर ( नः शम् ) हमें शान्तिदायक हों । ( इन्द्र पूषणा ) इन्द्र और पूषा, सूर्य और पृथिवी ( वाजसातौ ) अन्नों और ऐश्वर्यों के प्राप्त कराने के निमित्त संग्राम में ( नः शम् ) हमें शान्तिदायक हों । ( इन्द्रासोमा ) इन्द्र और सोम, सूर्य और ओषधिगण (सुविताय ) उत्तम फल प्रदान करने और उत्तम सन्तान प्रसव करने के लिये ( शंयोः ) रोगों का शमन और भय संकट का निवारण करें ।

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ऽआपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ ।
शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥ १२ ॥

आपो देवताः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! हे राजन् ! (देवीः आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल, विद्वान् आप्त पुरुष, उत्तम कर्म और ज्ञान ( नः अभिष्टये )

११—रात्रिः इति काण्व० ।

हमारे इष्ट कार्यों को सिद्ध करने के लिये ( शं नः ) हमें शान्तिदायक हों। और वे ( पीतये भवन्तु ) पान और पालन करने के लिये भी हों। वे ही ( नः ) हमें ( शंयोः अभिस्रवन्तु ) शान्ति सुख के वर्षण करने और बहाने वाले हों।

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः॥ १३॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३५। २१॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥ १४॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥ १५॥
तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः॥ १६॥

भा०—[ १४-१६ ] तीनों मन्त्रों की व्याख्या [अ० ११। ५०-५२]

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ १७॥

अथर्व० १९। ११४॥

भा०—( द्यौः ) महान् आकाश या सूर्य ( शान्तिः ) शान्ति देने वाला हो। ( अन्तरिक्षं ) अन्तरिक्ष, ( पृथिवी ) पृथिवी, ( आपः ) जल, ( ओषधयः ) ओषधिगण, ( वनस्पतयः ) वट आदि बड़े वृक्ष, ( विश्वे-देवाः ) समस्त विद्वान्गण और तेजोमय पदार्थ और ( ब्रह्म ) चारों वेद और परमेश्वर और अन्न ये सभी ( शान्तिः ) शान्ति के देने वाले होने से शान्तिमय हों। ( सर्वं शान्तिः ) सब पदार्थ शान्तिप्रद हों। ( शान्तिः एव शान्तिः ) शान्ति स्वयं हृदय को शान्ति दे, दुःखों का शमन करे। ( सा ) वह परम ( शान्तिः ) शान्ति ( मा एधि ) मुझे प्राप्त हो।

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥ अथर्व ४ । ११ । १६ ॥

भा०—हे ( दृते ) समस्त दुःखों और अज्ञानों के विदारक ! महावीर राजन् ! परमेश्वर ! ( मा दृंह ) मुझे दृढ़ कर । ( मा ) मुझको ( सर्वाणि भूतानि ) समस्त प्राणी गण ( मित्रस्य चक्षुषा ) मित्र की आंख से ( समीक्षन्ताम् ) देखें और ( अहम् ) मैं भी ( सर्वाणि भूतानि ) सब प्राणियों को ( मित्रस्य चक्षुषा ) मित्र की आंख से ( समीक्षे ) देखूं । हम सब ( मित्रस्य चक्षुषा ) मित्र की आंख से ( समीक्षामहे ) एक दूसरे को भली प्रकार देखा करें ।

दृते दृꣳह मा । ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ।
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥

भा०—हे ( दृते ) अज्ञान और पापनाशक ! राजन् ! परमेश्वर ! ( मा दृंह ) मुझ प्रजाजन और उपासक को दृढ़ कर । मैं ( ते ) तेरे ( संदृशि ) सम्यक् ज्ञानरूप दर्शन और अध्यक्षता में ( जीव्यासम् ) जीवन धारण करूं, दीर्घ जीवन जीऊं । ( ते संदृशि ) तेरे समान निष्पक्ष-पात उत्तम शासन और निरीक्षण में ( ज्योक् जीव्यासम् ) दीर्घ जीवन व्यतीत करूं ।

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे । अन्याँस्ते
अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ २० ॥

भा०—व्याख्या देखो १७ । ११ ॥

नमस्ते ऽअस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २१ ॥

भगवान् ईश्वरो देवता । अनुष्टुप् गांधारः ॥

भा०—( विद्युते ते नमः ) विद्युत् के समान तेजस्वी तुझे नमस्कार है। ( स्तनयित्नवे ते नमः ) मेघ के समान गर्जन करने वाले तुझे नमस्कार है। हे ( भगवन् ) ऐश्वर्यवन् राजन् एवं परमेश्वर ! ( यतः स्वः समीहसे ) क्योंकि तू ही समस्त प्राणियों को सुख देने के लिये समस्त व्यापार कर रहा है अतः ( ते नमः अस्तु ) तुझे सदा नमस्कार हो।

यतो यतः समीहसे ततो नो ऽअभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ २२ ॥

भगवान् देवता। भुरिगुष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे भगवन् ! राजन् ! ईश्वर ! तू ( यतः यतः समीहसे ) जिस २ कारण से, जिस २ स्थान और कर्म से ( सम् ईहसे ) चेष्टा करे। ( ततः नः अभयं कुरु ) वहां २ से तू हमें भय रहित कर। ( नः प्रजाभ्यः शं कुरु ) हमारी प्रजाओं के लिये शान्ति प्रदान कर ( नः पशुभ्यः ) हमारे पशुओं के लिये ( अभयम् कुरु ) अभय प्रदान कर।

सुमित्रिया न ऽआप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६। २२ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ २४ ॥

ऋ० ७। ६६। १६ ॥

सूर्यो देवा। ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—( तत् ) वह ( देवहितम् ) देवों-विद्वानों का हितकारक, विद्वानों द्वारा स्थापित, ( पुरस्तात् ) सर्वत्र समक्ष ( शुक्रम् ) शीघ्र कार्य करने में कुशल, एवं शुद्ध, तेजस्वी, (चक्षुः) आंख के समान सबका निरीक्षक,

सर्वाध्यक्ष होकर ( उत् चरत् ) सब उत्तम पद पर विराजता और कार्य करता है। उसी प्रकार परमेश्वर भी (पुरस्तात्) पूर्व काल से ही शुद्ध सर्वज्ञ देवों विद्वानों का हितकारी ( उत् चरत् ) सब से उच्च रहकर सब को जानता है। इसी प्रकार सर्वद्रष्टा, सबको आंख के समान पदार्थ निदर्शक होकर शुद्ध तेज प्रदान करता है। उसी के प्रताप से हम ( शरदः शतम् ) सौ वरसों तक ( पश्येम ) देखें। ( शरदः शतं जीवेम ) सौ वरसों तक जीवें। ( शरदः शतं शृणुयाम ) सौ वरसों तक श्रवण करें। ( शरदः शतं प्र ब्रवाम ) सौ वरसों तक उत्तम रीति से बोलें। ( शरदः शतम् अदीनाः स्याम ) सौ वरसों तक दीनता रहित होकर रहें। (शरदः शतात् भूयः च ) और सौ वरसों से भी अधिक वर्षों तक हम देखें, जीवें, सुने, बोलें और अदीन होकर रहें।

॥ इति षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥



# अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददे नारिरसि ॥ १ ॥

ऋषिरुक्तः । सविता देवता । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५ । १४ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ २ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५ । १४ ॥

देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ३ ॥

द्यावापृथिव्यौ देवते । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( देवी ) दिव्य गुणों से युक्त ( द्यावापृथिवी ) द्यौ और पृथिवी, सूर्य और भूमि के समान राजा-प्रजावर्गो ! ( वाम् ) तुम दोनों के ( मखस्य ) परस्पर त्रुटि रहित राज्य पालन रूप यज्ञ के ( शिरः ) सिर के समान मुख्य पुरुष को ( पृथिव्याः ) पृथिवीनिवासिनी प्रजा के ( देवयजने ) विद्वानों, राजगण और विजिगीषु पुरुषों के यज्ञस्थान या संगत, एकत्र होने के स्थान में ( राध्यासम् ) उत्तम रीति से बनाऊं । हे वीर पुरुष ( त्वा ) तुझको ( मखाय ) त्रुटि रहित राज्य पालनरूप यज्ञ के लिये नियुक्त करता हूं । तुझे ( मखस्य शीर्ष्णे ) राष्ट्र रूप यज्ञ के शिर या मुख्य पद के लिये नियत करता हूं ।

---

१—अथातो महावीरसम्भरणम् ।

देव्यो वम्रयो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ४ ॥

वम्र्यो देवता । व्यूहेनार्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—( वम्रयः ) उपजाप करने और देश देशान्तर और पृथिवी निवासिनी प्रजा के चरित्रों को राजा तक वमन करने या पहुंचाने हारी उपजापकारिणी संस्थाएं, या धन प्रदान करने वाली प्रजाएं ( देव्यः ) उत्तम गुण वाली, विजयशील हों । वे ही पृथिवी या ( भूतस्य ) समस्त प्राणियों के वसने के पूर्व ( प्रथमजाः ) विद्यमान रहती हैं । वह सबसे श्रेष्ठ हैं । ( पृथिव्याः देवयजने ) पृथिवी पर विद्वान् राजाओं के एकत्र होने के स्थान, सभा भवन के बीच में हे प्रजाजनो ! (वः) तुम्हारे (मखस्य) त्रुटि रहित राज्य कार्य के (शिरः अद्य राध्यासम्) मुख्य पुरुष को आज नियत करता हूं। हे वीर पुरुष ! (मखाय त्वा) तुझ योग्य पुरुष को मैं प्रजापालन रूप यज्ञ एवं पूजनीय मुख्य पद के लिये नियुक्त करता हूं । ( त्वा मखस्य शीर्ष्णे ) तुझे मानयोग्य राज्य के शिरोमणि पद के लिये नियुक्त करता हूं ।

'मखः'—महेः खचेति खः प्रत्ययो हलोपश्च । यद्वा मख गतौ । घः । इति मख इत्येतद् यज्ञनामधेयम् । छिद्रप्रतिषेध सामर्थ्यात् । छिद्रं ख मित्युक्तं तस्यमेति प्रतिषेधः । मा यज्ञं छिद्रं करिष्यतीति । गो० उ० २।५।

स एव मखः स विष्णुः । श० १४ । १ । १ । १३ ॥ एष वै मखो य एष तपति । श० १४ । १ । ३ । ५ ॥ स एव मखः स विष्णुः । तत इन्द्रो मखवान् अभवत् । मखवान् ह वैतं मघवानित्याचक्षते । परोक्षम् । श० १४ । १ । १ । १३ ॥ इन्द्रो वै मघवान् । श० ४ । १ । २ । १५ । पूजनीय पद 'मख' है । या संग्राम या एकत्र होने और प्राप्त होने का स्थान या पद 'मख' है । इससे यज्ञ और संग्राम दोनों मख शब्द वाच्य हैं । मख यज्ञ का नाम है । 'ख' छिद्र कहाता है । छिद्र या त्रुटि का न होना प्रत्युत सम्पूर्ण होना पूर्ण व्यवस्था या यज्ञ 'मख' है । 'मख' विष्णु, व्यापक

शक्तिमान् परमेश्वर और राजा दोनों कहाते हैं। 'मख' यह सूर्य है उसके समान तेजस्वी प्रतापी राजा भी मख है। व्यापक राष्ट्र मख है। उसका पति मखवान् इन्द्र-राजा या सेनापति 'मखवान्' होने से 'मघवान्' कहाता है।

स्त्रियों के पक्ष में—हे (देव्यः वम्र्यः) स्वल्प उदर की देवी, कन्याओ! आप लोग (भूतस्य) उत्पन्न होने वाले गर्भ, सन्तान के भी (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न होती हैं। (वः मखस्य अद्य शिरः राध्यासम्) आप लोगों के भावी गृहस्थ रूप यज्ञ के मुख्य पति को मैं तुम्हारे मन के अनुकूल बनाऊं। हे योग्य पुरुष! सुसंगत, पूज्य पतित्व के लिये गृहस्थ के मुख्य पद के लिये वरता हूं।

इयत्यग्रं आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ५ ॥

वराहविहतं देवता। ब्राह्मी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे पृथिवी! पृथिवी निवासिनी प्रजे! (अग्रे) पहले (इयती) इतनी हो तो कुल (आसीत्) रही। अर्थात् विजयशील, उत्साही राजा के लिये बड़ी भारी पृथ्वी भी थोड़ी है। हे पृथिवि (ते मखस्य) तेरे ऊपर पूज्य (पृथिव्याः देवयजने शिरः राध्यासम्) पृथिवी पर विजिगीषु पुरुषों के एकत्र होने के स्थान संग्रामभूमि और सभाभवन में मुख्य सेनापति को (राध्यासम्) मैं प्राप्त करूं। हे योग्य पुरुष! (मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे) संग्राम, राज्यशासन और उसके शिरोमणि पद के लिये तुझे वरण करता हूं।

'इयति। अग्रे।' इत्यादि पदपाठो महर्षिदयानन्दसम्मतश्चिन्त्यः शतपथादिविरोधात्।

इन्द्रस्यौजः स्थ मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ६ ॥

आदारा देवताः । भुरिगति जगती । निषादः ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! वीर सैनिक पुरुषो ! आप लोग ही ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान्, शत्रु के नाश करने वाले सेनापति के ( ओजः स्थ ) पराक्रम स्वरूप हो । ( वः यज्ञस्य शिरः राध्यासम् ) आप के यज्ञ, राष्ट्र पालन के मुख्य पदाधिकारी को मैं स्थापित करता हूं। इत्यादि० पूर्ववत् । इस प्रकार भिन्न सेनादलों के मुख्य पुरुषों को नियुक्त किया जाय ।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरन्नर्यम्पङ्क्तिराधसन्देवा यज्ञन्नयन्तु नः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥७॥

घर्मो देवता ।

भा०—( ब्रह्मणस्पतिः ) ब्रह्म, महान् ऐश्वर्य, वेदज्ञान का पालक राजा और विद्वान् ( प्र एतु ) उत्तम पद को प्राप्त हो । ( सूनृता देवी ) शुभ, सत्यज्ञान से युक्त विदुषी और विद्वत् सभा भी ( प्र एतु ) उत्तम पद को प्राप्त हो । ( वीरम् ) वीर, शूर, सब दुःखों और शत्रुओं के प्रक्षेपक, नाशक, ( नर्यम् ) सब मनुष्यों के हितकारी , ( पंक्तिराधसम् ) सेना की पंक्तियों को वश में करने में समर्थ वीर पुरुष को ( देवाः ) विजयी, युद्धक्रीड़ाशील सैनिक और उत्तम विद्वान् जन ( नः ) हमारे ( यज्ञम् ) यज्ञ अर्थात् प्रजापति पद को (नयन्तु) प्राप्त करावें । ( मखाय त्वा, मखस्य शीर्ष्णे त्वा ) पूज्य पद और यज्ञ या संग्राम के प्रमुख स्थान के लिये तुझे नियुक्त करते हैं । इत्यादि ।

मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ८ ॥

घर्मो देवता ।

भा०—हे योग्य पुरुष ! तू ( मखस्य ) पूजनीय व्यवस्था, राष्ट्र आदि के कार्य में ( शिरः असि ) शरीर में शिर के समान, ज्ञानवान्, विचारशील और प्रमुख है । इसलिये ( त्वा मखाय मखस्य शीर्ष्णे० ) इत्यादि पूर्ववत् ।

महर्षि ने, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वनस्थ और मुमुक्षु आदि पक्षों में प्रमुख पुरुषों के स्थापन परक अर्थ किये हैं । भावार्थ में अन्य २ स्थानों में भी प्रमुख पुरुषों के स्थापन का निर्देश किया है । यज्ञपक्ष में तीन महावीरों की कल्पना है । सेना, राष्ट्रपालन और गृहस्थ तीनों में समान योजना है ।

**अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ९ ॥**

अति शक्करी । पञ्चमः । घर्मो देवता ।

भा०—जिस प्रकार कच्चे मट्टी के वर्तन को ( अश्वस्य शक्ना ) घोड़े की लीद को जला कर उससे, या कण २ में व्याप जाने वाले अग्नि की ताप शक्ति से संतप्त कर पकाया जाता है उसी प्रकार हे वीर नेता पुरुष ! ( त्वा ) तुझको ( वृष्णः ) बलवान् वीर्यवान्, शत्रुओं को और प्रजाओं को व्यवस्था में बांधने में समर्थ ( अश्वस्य ) आशुगामी, व्यापक सामर्थ्यवान् और बहुत से राष्ट्र के भोगने हारे बड़े पदाधिकारी पुरुष के ( शक्ना ) शक्ति, अधिकार सामर्थ्य से ( पृथिव्याः देवयजने ) पृथिवी के विजयी विद्वान् पुरुषों के एकत्र होने के स्थान, संग्राम, यज्ञ और सभाभवन में ( धूपयामि ) तुझे अधिक बलवान्, सुशोभित और सामर्थ्यवान् करता हूं । 'मखाय त्वा० इत्यादि पूर्ववत् ।' अश्वस्य त्वा० इत्यादि पूर्ववत् ।

ऋजवे॑ त्वा साधवे॑ त्वा सुक्षित्यै॑ त्वा॑। मखाय॑ त्वा मखस्य॑ त्वा शीर्ष्णे॑। मखाय त्वा मखस्य॑ त्वा शीर्ष्णे॑। मखाय॑ त्वा मखस्य॑ त्वा शीर्ष्णे॑ ॥ १० ॥

घर्मो देवता। स्वराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे वीर पुरुष! (त्वा ऋजवे) तुझको आदित्य के समान प्रकाशमान कुटिलता रहित सत्य के दर्शाने वाले न्यायकारी पद या कार्य के लिये नियुक्त करता हूं। (साधवे त्वा) वायु के समान सबके प्राण प्रदान करने वाले, सब को अपने वश करने वाले उत्तम पद के लिये स्थापित करता हूं। और (सुक्षित्यै त्वा) उत्तम पृथिवी के समान सब प्रजाओं को सुख से निवास कराने वाले पद के लिये नियुक्त करता हूं। सुविधानुसार इन तीन पदों पर तीन अथवा एक ही अधिकारी शिरोमणि स्थापित किया जासकता है। वे अधिकार और कर्तव्य भेद से तीन हैं। (मखाय त्वा०) इत्यादि पूर्ववत्।

यमाय॑ त्वा मखाय॑ त्वा सूर्य॑स्य त्वा तप॑से। देवस्त्वा॑ सविता मध्वा॑नक्तु पृथिव्याः सᳬ स्पृश॑स्पाहि। अर्चिर॑सि शोचिर॑सि तपो॑ऽसि ॥ ११ ॥

घर्मः सविता देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे विद्वन्! वीर पुरुष! (यमाय) सूर्य जिस प्रकार ग्रह उपग्रहों और पृथ्वी आदि को अपने नियम में रखता है उसी प्रकार समस्त राष्ट्र को नियम में रखने वाले पद के लिये (त्वा मखाय) पूजनीय उत्तम प्रजापति पद के लिये तुझको (सूर्यस्य तपसे त्वा) सूर्य के समान शत्रुओं को संतापन करने में समर्थ 'तपस्' पद के लिये तुझे नियुक्त करता हूं। (सविता) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (मध्वा)

१०—इति महावीरसंभरणम्।

१०—अतो महावीरप्रोक्षणम्। अभिषेक इति यावत्।

मधुर अन्न आदि ऐश्वर्य और शत्रुपीड़क बल से ( आनक्तु ) युक्त करे । हे विद्वन् ! तू उस वीर पुरुष को ( पृथिव्याः संस्पृशः ) भूमि पर स्पर्श होने से अर्थात् उसे सामान्य जनों में मिल कर अनादृत होने से ( पाहि ) बचा । अथवा हे राजन् ! तू राष्ट्र को पृथिवी पर आक्रमण करने वाले शत्रु से बचा । तू ( अर्चिः असि ) अग्नि की ज्वाला के समान दाहकारी है । ( शोचिः असि ) विद्युत् की दीप्ति के समान संतापकारी है । तू ( तपः असि ) सूर्य के ताप प्रकाश के समान तपस्वी, संतापक और धर्मात्मा है ।

**अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य ऽआयुर्मे दाः । पुत्रवती दक्षिणत ऽइन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः । सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः । आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः। विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्य ऽओजो मे दाः।विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि । मनोरश्वासि ॥ १२ ॥**

पृथिवी देवता । स्वराड् उत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—हे पृथिवी ! [१] ( अनाधृष्टा ) शत्रु से कभी धर्षण नहीं की जाकर तू ( पुरस्तात् ) पूर्व की दिशा से ( अग्नेः ) अग्नि अर्थात् सूर्य के ( आधिपत्ये ) स्वामित्व में रह कर जिस प्रकार (आयुः) जीवनप्रद अन्न का प्रदान करती है उसी प्रकार तू ( अग्नेः आधिपत्ये ) अग्नि के समान तेजस्वी शत्रुसंतापक, प्रतापी, अग्रणी नायक के स्वामित्व में रहकर ( मे ) मुझ प्रजाजन को ( आयुः दाः ) आयु प्रदान कर। ( २ ) हे पृथिवि ! ( पुत्रवती ) पुत्रों से स्त्री जिस प्रकार अपने पति के अधीन रहकर उत्तम प्रजा को प्रदान करती है, इसी प्रकार तू भी ( पुत्रवती ) पुरुषों को दुःखों से बचाने वाले वीर पुरुष से युक्त होकर ( दक्षिणतः ) दक्षिण दिशा से ( इन्द्रस्य आधिपत्ये ) विद्युत् या सूर्य के समान तेजस्वी और शत्रु-नाशक और ऐश्वर्यवान् पुरुष के स्वामित्व में रह कर ( मे ) मुझ राष्ट्र के राज-वर्ग को उत्तम ( प्रजां दाः ) प्रजा, सन्तति को प्रदान कर। ( ३ )

हे पृथिवि ! तू ( सुषदा ) सुख से बैठने और बसने योग्य समतल होकर ( पश्चात् ) पश्चिम से ( देवस्य सवितुः ) प्रकाशमान सूर्य के अधीन रहकर जिस प्रकार चक्षु, उत्तम दर्शनशक्ति प्रदान करती है। समतल भूमि पर सूर्य का प्रकाश विस्तृत पड़ता है दूर तक, स्पष्ट दिखाई देता है। उसी प्रकार, तू ( देवस्य सवितुः ) दानशील, विजिगीषु, सूर्य के समान तेजस्वी, सबके प्रेरक पुरुष के अधीन रहकर (मे) मुझ शासक को (चक्षुः) ज्ञान चक्षु एवं प्रजा पर निरीक्षण करने का बल (दाः) प्रदान कर। (४) ( आश्रुतिः ) सब तरफ़ से उत्तम रीति से श्रवण करने हारी होकर ( उत्तरतः ) उत्तर दिशा से (धातुः) धारण करने वाले, वायु के समान व्यापक, बलशाली पुरुष के ( आधिपत्ये ) स्वामित्व में रहकर ( रायः पुष्टिः ) धन समृद्धि और पशु सम्पत्ति को ( मे दाः ) मुझे प्रदान कर। ( ५ ) ( विधृतिः ) विविध पदार्थों के धारण और विशेष ज्ञान के धारण में समर्थ होकर तू ( बृहस्पतेः ) बृहती, वेदवाणी के पालक विद्वान् पुरुष के ( अधिपत्ये ) स्वामित्व में, उसके अधील रहकर ( मे ) मुझे (ओजः) बल पराक्रम, एवं ब्रह्मचर्य पूर्वक वीर्य ( दाः ) प्रदान कर। ( ६ ) (मा) मुझ को ( विश्वाभ्यः ) समस्त ( नाष्ट्राभ्यः ) नाश करनेवाली दुष्ट स्वभाव की प्रकृतिवाली शत्रु सेनाओं से ( पाहि ) सुरक्षित रख। तू, ( मनोः ) मननशील पुरुष के ( अश्वा ) भोग करने योग्य ( असि ) है।

शरीर के पांच मुख्य भाग हैं नाक मुख, प्रजननाङ्ग, चक्षु, मन और धारणा बुद्धि। इनके पांच कार्य हैं अन्न प्राण और अन्न का ग्रहण, प्रजा प्राप्त करना, देखना, दूर का श्रवण करना, ज्ञान प्राप्त करना। इन सब शक्तियों से युक्त पृथिवी निवासिनी प्रजा क्रम से ( १ ) अन्न और प्राण के बल से वह शत्रु से कभी पराजित नहीं होती। ऐसी प्रजा अपने नायक के अधीन रह कर राजा के राज्य की आयु को बढ़ाती है। ( २ ) खूब प्रजाओं, सन्ततियों से पृथिवी निवासिनी प्रजा पुत्रवती होकर सेनापति को वीर

सैनिक प्रदान करती है। ( ३ ) सुख से जिस में राजा शासन करता है वह प्रजा दूरदर्शिनी है वह कभी अन्धी होकर द्रोह नहीं करती। वह शान्ति से दूर तक देखने और गम्भीर विचारने का अवसर प्रदान करती है। (४) समृद्ध प्रजा राजा की आज्ञा पालन करने वाली 'आश्रुति' है। वह अपने पोपक राजा के अधीन रहे तो और समृद्ध होती है। ( ५ ) राष्ट्रपालक या सेनापालक के अधीन रह कर राष्ट्र विविध प्रजाओं के अपने भीतर धरती है वह 'विधृति' है। उसमें बल पराक्रम की मात्रा बहुत है। वह राजा को सब विपत्तियों से बचावे। वह मननशील राजा के ही भोग्य हो, मूर्ख अत्याचारी राजा उसको भोग न सके।

स्वाहा मुरुद्भिः परि श्रीयस्व।
दिवः सꣳस्पृशस्पाहि मधु मधु मधु ॥ १३ ॥

सुवर्ण विद्वान्, प्राणश्च देवताः। निचृद् गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू ( मरुद्भिः ) प्रजा गणों और हे वीर सेनापते! तू शत्रुओं को मारने वाले वीर सैनिकों से ( परिश्रीयस्व ) सब तरफ से आश्रय बन। वे तेरा आश्रय लें। तू उन द्वारा पृथ्वी का भोग कर। तू इस राष्ट्र को ( दिवः ) सूर्य के समान तेजस्वी राज गण के ( संस्पृशः ) तीक्ष्ण स्पर्श करने वाले कष्टदायी कारण से ( पाहि ) रक्षा कर और ( मधु मधु मधु ) कर्म, उपासना और ज्ञान, इनका सेवन कर और इसी प्रकार शरीर में स्थित प्राण, उदान, व्यान के समान तीनों ब्राह्मबल, क्षात्रबल और धनबल प्राप्त कर।

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम्।
सं देवो देवेन सवित्रा गत सꣳ सूर्य्येण रोचते ॥१४॥

घर्मो देवता। भुरिगनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—सेनापति और राजा के पक्ष में—(देवानां गर्भः) देव, विजयशील वीर सैनिकों और विद्वानों, शासकों को अपने अधीन ग्रहण करने

वाले सूर्य के समान, ( पिता मतीनाम् ) मननशील, मेधावी, पुरुषों का पालक, ( प्रजानाम् पतिः ) प्रजाओं का स्वामी ( देवः ) दानशील, तेजस्वी, विजयी होकर ( सवित्रा ) सब संसार के प्रेरक ( सूर्येण देवेन ) सूर्य देव के समान ( संगत ) पृथ्वी से भली प्रकार युक्त होता है और ( संरोचते ) पृथ्वी पर उसी के समान प्रकाशित होता है।

ईश्वर के पक्ष में—( देवानां गर्भः ) ईश्वर तेजस्वी समस्त सूर्य आदि पदार्थों के भीतर व्यापक, एवं सबको अपने भीतर लेने वाला। सविता सूर्य के समान प्रकाशित है।

**सम॒ग्निर॒ग्निना॑ गत॒ सं दे॒वेन॑ सवि॒त्रा सᳫँ सूर्य्ये॑णारोचिष्ट।**
**स्वाहा॒ सम॒ग्निस्तप॑सा गत॒ सं दै॒व्येन॑ सवि॒त्रा सᳫँ सूर्ये॑णारूरुचत १५**

अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्मी अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—( अग्निः ) वह महान् वीर सेनापति अग्नि के समान तेजस्वी होने और अग्रणी होने से 'अग्नि' है। इसी गुण से वह ( अग्निना संगत ) अग्नि के साथ मेल खाता है, उसकी उससे तुलना की जाती है। वह ( देवेन सवित्रा ) देव, सर्वप्रेरक ( सूर्येण ) सूर्य के साथ ( सम् ) तुलना पाकर ( अरोचिष्ट ) प्रकाशित होता है। वह ( अग्निः ) किसी प्रकार बुझाया न जाकर अग्नि के समान तेजस्वी होकर ( स्वाहा ) उत्तम, सत्य वाणी और सत्य क्रिया से और ( तपसा ) धर्मानुष्ठान और तपस्या से ( संगत ) युक्त होता है। वह भी ( दैव्येन सवित्रा सूर्येण ) देवों, पृथिवी आदि में सर्वोत्तम ऐश्वर्यकारी, सबके प्रेरक सूर्य के साथ तुलना पाकर ( सम् अरूरुचत ) भली प्रकार सदा प्रकाशित होता है।

परमेश्वरपक्ष में—यह अग्नि उसी स्वयंप्रकाश परमेश्वर के द्वारा

---

१४—अथातो 'मा माहिंसीः'। ( २० ) इत्यन्तं महावीरपरिक्रमणम्।

प्रकाशित होता है। और यह अग्नि सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होती है। उस परमेश्वर को सत्य क्रिया, धर्मानुष्ठान से तुम लोग जानो।

**धर्त्ता द्विवो विभाति तपसस्पृथिव्यां धर्त्ता द्देवो देवानाममर्त्य-स्तपोजाः वाचमस्मे नियच्छ देवायुवम् ॥ १६ ॥**

भा०—( दिवः तपसः धर्त्ता ) प्रकाशमान द्यौलोक को और ताप को जिस प्रकार सूर्य धारण करता है उसी प्रकार वह ( दिवः ) राजसभा या तेज को धारण करने हारा, ( पृथिव्यां ) इस पृथिवी पर और (तपसः) तप, धर्माचरण और शत्रुसंतापक बल का ( धर्त्ता ) धारण करने हारा होकर ( देवानां ) समस्त विद्वानों में ( देवः ) सबसे बड़ा तेजस्वी, राजा ( अमर्त्यः ) साधारण मनुष्यों से भिन्न होकर ( तपोजाः ) तपोबल और धर्मानुष्ठान के बल से अधिक शक्ति सामर्थ्यवान् हो। वह ( अस्मे ) हमें ( देवायुवम् ) समस्त विद्वान् पुरुषों को एकत्र संगत करने में कुशल, विजयशील सैनिकों और शासकों को एक ही काल और स्थान में एकत्र कर लेने वाली ( वाचम् ) वाणी को ( नियच्छ ) प्रदान कर।

परमेश्वर के पक्ष में—वह परमेश्वर सूर्य का धारक तेजस्वी, अमरण धर्मा, सब देवों का देव, तप से प्रकट होने वाला है। वह हम में विद्वानों से संगति कराने वाली और पृथिव्यादि लोकों और उत्तम ज्ञानों का लाभ कराने वाली वेद वाणी को प्रदान करे।

**अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पृथिभिश्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान ऽआ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः ॥१७॥**

ऋ० १ । १६४ । ३१ ॥

निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मैं ( गोपाम् ) सबके रक्षक, ( अनिपद्यमानम् ) अचल, स्थिर, विपत्तियों से नष्ट न होने वाले वीर और ( पथिभिः ) नाना मार्गों से ( आ चरन्तम् ) समीप आते और ( परा चरन्तं च ) दूर देशों में जाते

हुए सर्वत्र शासक को ( अपश्यम् ) देखता हूं । यह ( सध्रीचीः ) अपने साथ रहने वाली और ( विषूचीः ) नाना दिशाओं में विस्तृत प्रजाओं पर भी ( वसानः ) शासक रूप से रहता हुआ ( भुवनेषु अन्तः ) समस्त लोकों में ( आ वरीवर्त्ति ) सब प्रकार से सर्वोपरि होकर रहता है ।

सूर्य के पक्ष में—अपने साथ रहने वाली और सर्वत्र फैलने वाली दिशाओं या रश्मियों को धारण करता हुआ वह सब लोकों में व्याप्त होता है ।

परमेश्वरपक्ष में—वह समस्त दिशाओं में व्यापक है । सबका रक्षक है और ज्ञान मार्गों से हमें इस लोक में प्राप्त होने और परलोक में भी प्राप्त होने वालों का ध्रुव रक्षक है ।

विश्वा॑सां भु॒वां प॑ते॒ विश्व॑स्य मनसस्पते॒ विश्व॑स्य वचसस्पते॒ सर्व॑स्य वचसस्पते । देव॒श्रुत्त्वन्दे॑व घर्म दे॒वो दे॒वान् पा॒ह्यत्र॑ प्रावी॒रनु॑ वां दे॒ववी॑तये । मधु॒ माध्वी॑भ्यां॒ मधु॒ माधू॑चीभ्याम् ॥ १८ ॥

ऋ० १ । ११६ । १२ ॥

अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—हे राजन् ! हे ईश्वर ! हे ( विश्वासां ) समस्त (भुवाम् पते) भूमियों के पालक ! स्वामिन् ! ( विश्वस्य मनसः पते ) समस्त प्रजाजन के मनों के स्वामिन् ! समस्त ज्ञानों के पालक ! ( विश्वस्य वचसः पते ) समस्त प्रजा की वाणियों और आज्ञाओं के स्वामिन् ! समस्त वेदवाणियों के स्वामिन् ! ( सर्वस्य वचसः पते ) समस्त लौकिक वचनों के स्वामिन् ! प्रजा की वाणियों के स्वामिन् ! हे ( देवश्रुत् ) देवों—विद्वानों को श्रवण करने हारे एवं शासकों, वीर पुरुषों से आज्ञा रूप से श्रवण करने योग्य ! दोनों में प्रसिद्ध ! हे ( घर्म ) तेजस्विन् ! सबके प्रकाशक श्रवणशील, दयार्द्र ! तू ( देवः ) सूर्य के समान तेजस्वी, दाता, रक्षक होकर ( देवान्

पाहि ) देवों, विद्वानों की रक्षा कर। हे राजप्रजावर्गों ! हे स्त्री पुरुषो ! वह राजा ( वा ) तुम दोनों को ( देववीतये ) दिव्य गुणों और वीर सैनिकों की प्राप्ति के लिये ( प्र अवीः ) उत्तम रीति से तृप्त कर, पालन कर। ( माध्वीभ्याम् ) मधुर गुणों से युक्त विद्या और सुशिक्षा इन दोनों के ( मधु ) सार युक्त ज्ञान को और ( माधूचीभ्याम् ) मधु-नाम ब्रह्म विज्ञान प्राप्त करने वाले शिक्षक और शिष्य गण की प्रजाओं के ( मधु ) मधुर गुण युक्त सत् चरित्र को भी ( प्रः अवीः ) उत्तम रीति से रक्षा कर और उनका बल प्रदान कर।

हृदे त्वा मन॑से त्वा दि॒वे त्वा॒ सूर्य्या॑य त्वा।
ऊ॒र्ध्वो ऽअ॑ध्व॒रं दि॒वि दे॒वेषु॑ धेहि ॥ १९ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! ( त्वा ) तुझको ( हृदे ) हृदय की चेतनता को प्राप्त करने लिये, उसकी स्वस्थता के लिये (मनसे त्वा) विज्ञान युक्त अन्तःकरण के लिये, मन की स्वस्थता के लिये और ( दिवे त्वा ) विद्या प्रकाश के लिये और ( सूर्याय त्वा ) सूर्यादि लोकों के विज्ञान के लिये ध्यान करते हैं। तू सब से ( ऊर्ध्वः ) ऊंचा है। तू ( अध्वरं ) अहिंसामय यज्ञ को ( दिवि ) उत्तम व्यवहार में और ( देवेषु ) विद्वानों में ( धेहि) स्थापन कर। हे राजन् ! अपने हृदय, चित्त और राजसभा में और सूर्य समान तेजस्वी पद के लिये तुझे स्थापित करते हैं। तू सब से ऊंचा होकर ज्ञानपूर्वक, विद्वान् पुरुषों के आश्रय में इस राष्ट्रमय यज्ञ को स्थापित कर।

पि॒ता नो॑ऽसि पि॒ता नो॑ बोधि॒ नम॑स्ते ऽअस्तु॒ मा मा॑ हिꣳसीः।
त्वष्टृ॑मन्तस्त्वा सपेम पु॒त्रान् प॒शून्मयि॑ धेहि प्र॒जाम॒स्मासु॑ धे॒ह्य-रि॑ष्टा॒हꣳ स॒ह पत्या॑ भूयासम् ॥ २० ॥

निचृद् अति जगती। निषादः ॥

२०—पशून्यपि धेह्यरिष्टा० इति काण्व० ।

भा०—(नः पिता असि) हे राजन् ! हे परमेश्वर ! तू हमारे पिता के समान पालक है। ( नः ) हमारे पिता के समान एवं गुरु के समान हो (बोधि) हमें ज्ञानवान् कर, शिक्षित कर। ( ते नमः अस्तु ) तुझे नमस्कार हो। ( मा मा हिंसीः ) मुझ प्रजाजन को मत मार, विनष्ट मत कर। हम समस्त प्रजाजन ( त्वष्टृमन्तः ) त्वष्टा, तेजस्वी, प्रजापति रूप स्वामी वाले होकर ( त्वा सपेम ) तुझे प्राप्त हों। तुझ से मिलें। तू ( पुत्रान् पशून् ) पुत्रों और पशुओं को (मयि धेहि) मुझ में पति के समान ही धारण करा। (अस्मान्) हम में (प्रजाम्) उत्तम सन्तान, प्रजा को धारण करा। मैं प्रजा ( अरिष्टा ) मङ्गलमयी स्त्री के समान शुभ गुणों वाली होकर ( सह पत्या ) पति के समान तुझ प्रजापति के साथ ( भूयासम् ) रहूं।

परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर ! तू हमारा पिता है, गुरु है, हमें ज्ञानवान् बना। हमें विनष्ट न कर। हम उत्तम गुणवान् उत्तम पदार्थों और शिल्पों से युक्त होकर तुझे प्राप्त हों। तू हमें पशु प्रदान कर। प्रजा दे। मैं तेरी प्रजा तुझ स्वामी से युक्त होकर रहूं।

गृहस्थपक्ष में—हे पितः ! हे श्वशुर ! तू हमारा पिता है हमें सचेत कर। हमें कष्ट मत दे। हे पते ! हम स्त्रियां कन्याएं प्रजन सामर्थ्य से युक्त होकर तुझ पति को प्राप्त हों। तू हमें पुत्रादि सन्तान धारण कर। मैं स्त्री सुमङ्गली होकर पति के साथ होकर रहूं।

अहः केतुना जुषताᳬं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषताᳬं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा॥ २१॥

घर्मो देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(सुज्योतिः) उत्तम ज्योति युक्त (अहः) दिन के समान प्रकाश स्वरूप तेजस्वी पुरुष ( ज्योतिषा ) ज्योतिर्मय ( केतुना ) सूर्य के समान तेजस्वी, आज्ञापक कर्म और प्रज्ञावान् पुरुष या उत्तम ज्ञापक चिन्ह और ज्ञान से ( जुषताम् ) युक्त हो। और ( सुज्योतिः ) उत्तम ज्योति या तेज

वाली ( रात्रिः ) सब प्रजाओं को सुख ऐश्वर्य देने वाली राज्यव्यवस्था ( ज्योतिषा केतुना ) दीपक अग्नि वा चन्द्र के समान ज्योतिर्मय, तेजस्वी सबके आज्ञापक, विद्वान् राजा से ( स्वाहा ) सत्य और उत्तम कर्म द्वारा ( जुषताम् ) युक्त हो । ( स्वाहा ) हमारी यह उत्तम इच्छा पूर्ण हो ।

अथवा तेजस्वी राजा से दायीं बायीं आखों के समान दो विद्वान् नियुक्त हों । रात्रि और दिन दोनों तेज हमें प्राप्त हों, हमें सुख प्रदान करें ।

इति सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥



# अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽदित्यै रास्नासि ॥ १ ॥

रज्जुर्देवता ।

भा०—हे पृथिवि ! पृथिवी निवासिनि प्रजे ! हे स्त्रि ! ( देवस्य ) कान्तियुक्त कामनावान् ( सवितुः ) सकल जगत् के उत्पादक ईश्वर के ( प्रसवे ) उत्पन्न हुए इस संसार में ( अश्विनोः ) सूर्य के समान दिन और रात्रि के समान स्त्री और पुरुष धर्मों से युक्त दायें बायें देहों के (बाहुभ्याम् ) बाहु रूप बलवीर्यों से और ( पूष्णः हस्ताभ्याम् ) पूषा, सर्व-पोषक पति या स्वामी ( हस्ताभ्याम् ) हाथों से ( त्वा ) मैं तुझको ( आददे ) ग्रहण करता हूं । राजा या स्वामी होकर पृथ्वी को स्त्री के समान स्वीकार करता हूं । मैं पति तुझ स्त्री को अपने बाहुओं और हाथों से स्वीकार करता हूं । हे राज्यव्यवस्थे ! राजसभे तू ( आदित्यै ) पृथिवी की ( रास्ना असि ) गाय के गले में बंधी रस्सी के समान बांधने वाली, प्रजाओं को सत्य उपदेश करने वाली, सन्मार्ग पर चलाने वाली है ।

'रास्ना—'रासृशब्दे । भ्वादि० । निपतनात्नक् औणादिः । रास्ना ।

इडु एह्यदित् एहि सरस्वत्येहि ।
असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥ २ ॥

नौः सरस्वती देवता । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

भा०—( इडे ) हे स्तुति योग्य ! उत्तम वाणी से युक्त ! तू ( एहि ) आ । हे ( अदिते) अखण्डिते ! पृथिवि ! तू ( एहि ) प्राप्त हो । हे ( सरस्वति ) उत्तम विज्ञानों से युक्त ! उत्तम जलधाराओं, तलावों से युक्त ! पृथिवि ! ( एहि ) प्राप्त हो । इसी प्रकार हे ( असौ ) अमुक २ नाम

और गुणों वाली ! सस्यश्यामले ! शुभ्रज्योत्स्ना फुल्लद्रुमदलशालिनि ! तू ( एहि ) तू ( एहि ) मुझ अपने पालक राजा को प्राप्त हो ।

राजसभा के पक्ष में—हे ( इडे ) वाणि ! स्तुत्ये ! हे ( अदिते ) अखण्ड शासन वाली ! हे ( सरस्वति ) उत्तम ज्ञानवति ! विद्वत्सभे ! ( असौ ) दशावरे, त्र्यवरे इत्यादि ( एहि ) तू प्राप्त हो ।

स्त्रीपक्ष में—हे ( इडे ) स्तुत्ये, वन्द्ये ! हे ( अदिति ) अखण्ड-चरित्रे ! हे ( सरस्वति ) आनन्द प्रदे ! ज्ञानवति ! ( असौ ) हे वरानने ! अखण्डित अनिन्दिताङ्गि ! इत्यादि ( एहि ) तू मुझ पति को प्राप्त हो ।

अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या उष्णीषः ।
पूषासि घर्माय दीष्व ॥ ३ ॥
रास्ना वत्सश्च देवते । भुरिक्साम्नी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राज्यव्यवस्थे एवं राजन् ! जैसे रज्जु गाय को वश करने हारी होती है उसी प्रकार तू ( अदित्यै ) पृथिवी की ( रास्ना ) वागडोर है । तू ही उसको वश करने वाला और सन्मार्ग पर चलाने हारा है । तू ( इन्द्राण्याः ) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की लक्ष्मी का राजसभा की ( उष्णीष ) पगड़ी के समान शिर की शोभा है । बछड़ा जिस प्रकार गौ का प्रेमपात्र उससे उत्पन्न और उसी के दिये दूध से पलता है और वायु जिस प्रकार सबको प्राण द्वारा पुष्ट करता है, उसी प्रकार तू भी ( पूषा ) पृथ्वी को पोषण करने हारा और उसका प्रेमपात्र होकर उसी के दुग्ध से स्वयं पुष्ट होने हारा ( असि ) है । तू ( घर्माय ) अपने तेजस्वी पद एवं प्रजा को नाना सुख प्रदान करने के लिये ( दीष्व ) कृपा कर ।

गृहस्थपक्ष में—( अदित्यै रस्नासि ) हे पुरुष ! अखण्डचरित्र वाली सदाचारिणी स्त्री की वागडोर है । 'इन्द्राणी' अर्थात् पति वाली, सती सौभाग्यवती स्त्री का सिरमौर है । उसका पोषक है । ( घर्माय ) वीर्य सेचन या पुत्रोत्पत्ति के निमित्त स्त्री का पालन कर । स्त्री के पक्ष में—हे स्त्रि ! तू अखण्ड यश, या अखण्ड वीर्यवान् कुमार को सम्बन्ध में बांधने वाली,

गृहनीति की प्रमुख, भूमि के समान पोषक है, तू गृहस्थ यज्ञ के लिये मनोयोग दे, उसमें आत्मसमर्पण कर।

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व।
स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥ ४ ॥

अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। आर्ची पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे पृथिवि! (अश्विभ्याम्) प्रजा के स्त्री और पुरुषों के लिये (पिन्वस्व) प्रचुर धनैश्वर्य प्रदान कर। (सरस्वत्यै पिन्वस्व) उत्तम ज्ञानवान् विद्वत्सभा के लिये भी ऐश्वर्य प्रदान कर। (इन्द्राय पिन्वस्व) ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति और राष्ट्र के लिये ऐश्वर्य प्रदान कर। हे पुरुषो! (इन्द्रवत्) ऐश्वर्य युक्त राज्य को (स्वाहा) उत्तम, सत्य नीति से संचालित करो। (इन्द्रवत् स्वाहा) आत्मा से युक्त शरीर को उत्तम विधि से पालन करो। (इन्द्रवत् स्वाहा) विद्युत आदि से युक्त पदार्थों का उत्तम रीति से ज्ञान करो।

स्त्री के पक्ष में—हे स्त्रि! अपने माता पिता, सरस्वती, आचार्याणी और वेद के विद्वानों और (इन्द्राय) सौभाग्यशाली पति को अन्न द्वारा तृप्त कर, समस्त यज्ञ (इन्द्रवत्) अपने पति के संग कर।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः।
उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ५ ॥ ऋ० १। १६४। ४९॥

दीर्घतमा ऋषिः। वाग् देवता। निचृद् अतिजगती। निषादः॥

भा०—हे (सरस्वति) सरस्वति! उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों एवं ज्ञानों से युक्त राजसभे! (स्तनः) माता का स्तन जिस प्रकार (शशयः) बालक को सुख की नींद सुलाने वाला, (मयोभूः) सुखजनक, (रत्नधा) उत्तम ज्ञान और बल का दाता, एवं रम्य, बालक का पोषक, (वसुवित्) प्राणों को प्राप्त कराने वाला है। और जिससे समस्त (वार्याणि)

वरण करने योग्य गुणों और बलों को माता पुष्ट करती है उसी प्रकार ( ते ) तेरा ( स्तनः ) उत्तम दुग्ध के समान मधुर ज्ञानोपदेश प्रदान करने वाला पुरुष, सभापति ( शशयः ) प्रजा को सुख शान्ति से रखने वाला और स्वयं भी शान्ति से विद्यमान रहता है ( यः ) जो ( मयोभूः ) प्रजा के कल्याण और सुख को उत्पन्न करता है, ( यः रत्नधा ) जो रमण योग्य उत्तम गुणों और ऐश्वर्यों का धारण करता और उत्तम नर-रत्नों का पालन पोषण करता है, ( यः वसुवित् ) जो वसु नामक ब्रह्म-चारियों को आचार्य के समान, विद्वानों को प्राप्त करता या राष्ट्र में वसने वाले उत्तम प्रजाजनों को ऐश्वर्य प्राप्त करने कराने हारा है और जो ( सुदत्रः ) उत्तम दानशील है ( येन ) जिससे तू, राजसभा ( विश्वा ) समस्त ( वार्याणि ) वरण करने योग्य, वाञ्छनीय ऐश्वर्यों, कार्यों और राज्यांगों को ( पुष्पसि ) पुष्ट करती है ( तम् ) उस 'स्तन' अर्थात् ज्ञानो-पदेष्टा, विद्वान् पुरुष को ( इह ) इस राष्ट्र में ( धातवे ) प्रजा को धारण, पालन पोषण करने के लिये ( अकः ) नियुक्त कर ।

( उरु ) मैं विशाल ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष आकाश का ( अनु-एमि ) अनुयायी होऊं, उसका अनुकरण करूं । मैं नियुक्त विद्वान् भी अन्त-रिक्ष या मेघ के समान ज्ञान और ऐश्वर्य की धाराओं से वर्षकर प्रजा को पुष्ट करूं । सरस्वती वेद वाणी का उपदेष्टा आचार्य सरस्वती का उप-देश करने से उसका 'स्तन' है । वह बालक के समान शिष्य को शान्ति-प्रद, सुखजनक, उत्तम ज्ञानपोषक वसु ब्रह्मचर्य द्वारा प्राणों को पुष्ट करता, उत्तम ज्ञान दान करता है, उस से ही सब प्राप्य ज्ञानों और वीर्यों को पुष्ट करता है । आचार्य भी अन्तरिक्षगत मेघ के समान शिष्यों पर ज्ञानवर्षण करे । मेघ के समान आचार्य प्रजापति का वर्णन देखो बृह-दारण्यक उप० ।

गृहस्थ पक्ष में—पुरुष अन्तरिक्ष के समान पुत्रादि पर अनुग्रहकारी, एवं स्त्री का भरण पोषणकारी हो ।

'स्तनः'—ष्टन वन शब्दे । भ्वादिः । स्तन गदी देवशब्दे । चुरादिः स्तनतीति स्तनः आचार्यो विद्वान् आज्ञापकः । स्तनयतीतिस्तन मेघः ।

**गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यान्त्वा परिगृह्णाम्यन्तरिक्षेणोपयच्छामि । इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट् । स्वाहा सूर्य्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥६॥**

परोशासौ, अश्विनौ घर्मश्च देवताः । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) विद्वान् पुरुष ! ( गायत्रं छन्दः असि ) गायत्री छन्द जिस प्रकार २४ अक्षरों से युक्त होता है उसी प्रकार तू २४ वर्ष के अक्षत बल वीर्यों से युक्त हो । ( त्रैष्टुभं छन्दः असि ) त्रिष्टुप् छन्द जिस प्रकार ४४ अक्षरों से युक्त है उसी प्रकार ४४ वर्षों के अक्षय बल वीर्यों से युक्त हो ।

अथवा—हे ( इन्द्र ) राजन् ! उत्तम शासक ! सभापते ! विद्वन् ! प्रजापालक ! तू ( गायत्रं छन्दः ) गायत्री छन्द से प्रकाशित अर्थ या अग्नि के समान उत्तम ज्ञानप्रकाशवान् ( त्रैष्टुभं छन्दः असि ) त्रिष्टुप् छन्द से प्रकाशित अर्थ के समान, छन्द, या ऐश्वर्यवान् के गुणों से युक्त अथवा ब्राह्मबल और क्षात्रबल से युक्त हो । हे (अश्विना) राजा प्रजावर्गो ! ( द्यावापृथिवीभ्यां ) द्यौ, सूर्य और पृथिवी, उन दोनों के समान राजा और प्रजावर्ग दोनों के हित के लिये ( त्वा ) तुझ पुरुष को (परिगृह्णामि) उचित पद के लिये स्वीकार करता हूं । ( अन्तरिक्षेण उपयच्छामि ) सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष से मेघ द्वारा वर्षण और वायु द्वारा सबका प्राण धारण कराता है उसी प्रकार मैं तुझ योग्य विद्वान् पुरुष से प्रजा पर ज्ञानैश्वर्य के वर्षण के निमित्त ( उप यच्छामि ) तुझे स्वीकार करता हूं ।

स्त्रीपक्ष में—हे (अश्विना) स्त्री और पुरुष ! तुम दोनों (गायत्रं छन्दः असि त्रैष्टुभं छन्दः असि ) गायत्री और त्रिष्टुप् छन्दों के समान २४ या ४४ वर्ष के अक्षत बल वीर्यवान् होवो। अथवा अग्नि और सूर्य या मेघ के समान

तेजस्वी, प्रतापी, वीर्यवान् हो। ( द्यावा पृथिवी त्वा अन्तरिक्षेण उपयच्छामि ) सूर्य और पृथिवी के समान एक दूसरे के तेज, वल वीर्य को धारण करने कराने में समर्थ होकर जल के द्वारा स्वीकार करता हूं। अर्थात् जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों के बीच अन्तरिक्ष रहकर एक दूसरे के साथ सम्बन्ध कराता है और अन्तरिक्ष के द्वारा ही सूर्य पृथिवी पर जल वर्षण कराता और अन्न पैदा करता है और इसी प्रकार पृथ्वी अन्तरिक्ष द्वारा सूर्य की रश्मियों का ग्रहण करती है उसी प्रकार ( अन्तरिक्षेण ) अन्तरिक्ष अर्थात् जल के द्वारा ही पुरुष और स्त्री परस्पर विवाहित होते हैं। वही उनमें आदान प्रतिदान का कारक है उस द्वारा (त्वा उपयच्छामि) मैं पुरुष तुझ स्त्री को और मैं स्त्री तुझ पुरुष को पत्नी और पतिरूप से स्वीकार करता और करती हूं।

हे ( वसवः ) पृथिवी आदि प्रजाओं के वसाने वाले पदार्थों के समान यशस्वी एवं वसने वाले प्रजास्थ पुरुषो ! आप लोग ( स्वाहा ) उत्तम दान प्रतिदान और सत्य वाणी द्वारा ( सारघस्य ) मधु मक्खी के वने विशुद्ध ( मधुनः ) मधु के समान मधुर व्यवहार के ( घर्मम् ) तेजो युक्त पराक्रम से सम्पन्न, राज्य रूप परम लाभ का (पात) पालन करो या उत्तम रस, आनन्द का पान करो, उपभोग करो। और ( वाट् ) उत्तम व्यवहार से उत्तम रीति से ही ( यजत ) परस्पर लो, दो, सुसंगति करो। और ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( वृष्टिवनये ) वृष्टि प्रदान करने वाले ( रश्मये ) किरणों को जिस प्रकार पृथिवी, वायु आदि 'वसु' नामक पदार्थ 'मधु' अर्थात् जल और अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा प्रजा के प्रति ऐश्वर्यादि वर्षण करने वाले रश्मि अर्थात् राजप्रबन्ध के कार्य के लिये हे ( वसवः) समस्त प्रजागणो ! ( यजत ) तुम कर प्रदान करो, अथवा परस्पर संगत रहो।

गृहस्थपक्ष में—हे स्त्री पुरुषो ! ( सारघस्य मधुनः घर्मं पात ) मधु

मक्खियों के बनाये मधु के रस, मधुपर्क का पान करो। उसी के समान मधुर परस्पर गृहस्थ धर्म, यज्ञ का पालन एवं रसास्वादन करो। अथवा सहस्रों भ्रमरों द्वारा संगृहीत मधु का जिस प्रकार स्त्री पुरुष उपभोग करते हैं उसी प्रकार गतिशील प्राणों के द्वारा सञ्चित मधुर, सुखप्रद ( घर्म ) सेचन करने योग्य वीर्य का ( पात ) पालन करो। एवं गृहस्थोचित कार्य में उसका उपभोग और उपयोग करो ( वाट् ) यज्ञाहुति के समान ही ( यजत ) उस सार पदार्थ का, श्रेष्ठ फल के लिये प्रदान करो, और परस्पर संगत होवो। सूर्य के समान ( वृष्टिवनये रश्मये ) वृष्टि अर्थात् वीर्य सेचन आदि कार्य तथा उससे उत्पन्न पुत्रादि लाभ के लिये उत्तम रीति से संगत होवो।

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा। सरिराय त्वा वाताय स्वाहा। अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा। अप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा। अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा। अशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥ ७ ॥

वातनामानि देवताः। भुरिगष्टिः। मध्यमः ॥

भा०—( १ ) मैं प्रजावर्ग ( त्वा ) तुझ राजा विद्वान् पुरुष को ( वाताय ) प्राण वायु के समान, ( समुद्राय ) समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले 'समुद्र' वा मेघादि से जल वर्षण करने वाले वायु के पद के लिये ( स्वाहा ) सत्य क्रिया से स्वीकार करता हूं। ( त्वा ) तुझको ( सरिराय वाताय ) समस्त प्राणियों में एक साथ और एक समान चेष्टा उत्पन्न करने वाले वायु के समान सर्वप्रेरक शासक पद के लिये ( त्वा स्वाहा ) तुझको मैं शासक रूप से सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं। ( अनाधृष्याय वाताय त्वा स्वाहा ) प्रबल वात या आन्धी को जिस प्रकार कोई काबू नहीं कर सकता उसी प्रकार शत्रुओं से कभी न दबने वाले, प्रचण्ड पराक्रमी पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं।

(त्वा अप्रतिधृष्ण्याय वाताय स्वाहा) प्रतिस्पर्धी द्वारा दमन न किये जा सकने वालेप्रचण्ड तेजस्वी पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं। (अवस्यवे वाताय त्वा स्वाहा ) रक्षा करने वाले प्राण वायु के समान विद्यमान रक्षक पद के लिये तुझको मैं सत्य क्रिया से स्वीकार करता हूं। ( अशिमिदाय वाताय त्वा स्वाहा ) अखण्ड शक्ति वाले वायु के समान अक्षत वीर्यवान् सामर्थ्यवान् पद के लिये तुझे स्वीकार करता हूं।

स्त्री पुरुष पक्ष में—स्त्री के लिये पुरुष वायु के समान प्राणप्रद, समुद्र के समान अनन्त सुख वर्षक मेघ हो, एक साथ सब अभिलाषाओं का प्रेरक पूरक, दूसरे से धर्षण योग्य न हो, प्रतिस्पर्धा में किसी से न दबे, रक्षण कार्य में कुशल हो। एवं वायु के समान सुखजनक, सुशीतल, अदम्य, उत्साहवान् और प्राणप्रिय हो। इसी निमित्त स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को स्वीकार करे। अक्षत वीर्य, कर्म और सामर्थ्यवान् अथवा क्लेश कर्म के दूर करने या शान्ति प्राप्त कराने वाला, अथवा आकाश में चलने के लिये, वायुशोधन, जल, गृह, वायु शुद्धि, निर्भयता, ओषधिगत वायुविज्ञान, वायु वेगविज्ञान, रस, प्राणशक्ति विज्ञान के लिये स्त्री पुरुष एक दूसरे को वरण करें।

'अशिमिदाय'—क्लेशात्मकं कर्म शिमि तन्न ददाति इत्यशिमिदः तस्मै क्लेशविवर्जकायेति महीधरः। शिमीति कर्म नाम क्लेशात्मकं चैतत् अक्लेशदाय इति उवटः। शिमीति कर्मनाम शमयतेर्वा। इति यास्कः निरु० ५।२।७॥ न शिमिं शान्तिं द्यति खण्डयति इति अशिमिदः। न शिमिं क्लेशयुक्तं कर्म ददाति इति वा। शिमिः शक्तिः न दीयते खण्डयते यस्य सोऽशिमिदः तस्मै। यदश्यते भुज्यते तदन्नं। तन्मेदते यस्मिन् तस्मै रसायेति दया०।

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा। सवित्रे त्व ऽऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥ ८ ॥

इन्द्रो देवता । अष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—( वसुमते ) धन ऐश्वर्य से युक्त वसने वाली प्रजा और वसने वाले उत्तम पुरुषों से युक्त और ( रुद्रवते ) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुषों से युक्त या प्राणों से युक्त ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पद के लिये ( त्वा ) तुझको मैं प्रजावर्ग स्वीकार करता हूं । ( आदित्यवते इन्द्राय स्वाहा) आदित्य अर्थात् १२ हों मासों से युक्त सूर्य के समान आदित्य ब्रह्मचारी, पूर्ण विद्वानों या आदान प्रतिदान करने वाले वैश्यगण से युक्त ऐश्वर्यवान्, राजपद के लिये तुझको मैं स्वीकार करता हूं । ( अभिमातिघ्ने इन्द्राय त्वा ) अभिमानी शत्रुओं के नाशकारी इन्द्र, सेनापति पद के लिये तुझे स्वीकार करता हूं । ( सवित्रे ) सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वप्रेरक, ( ऋभुमते ) ऋत, सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले, विद्वानों से युक्त, ( विभुमते ) व्यापक सामर्थ्यवान्, एवं विशेष बल और ज्ञान के उत्पादक पदार्थों, मन्त्रों और विद्वानों से युक्त, ( वाजवते ) अन्न, ऐश्वर्य और संग्राम बल के स्वामी, पद के लिये ( त्वा ) तुझको ( स्वाहा ) उत्तम रीति से स्वीकार करता हूं ( बृहस्पतये ) महान् राष्ट्र के पालक पद के लिये और ( विश्वदेव्यावते ) समस्त देवों, राजा और विद्वान् शासकों के हितकारी कार्य के पालक पद के लिये ( स्वाहा ) तुझे उत्तम रीति से हम स्वीकार करते हैं । स्त्री पुरुष भी एक दूसरे को, धन, प्राण की रक्षा, ऐश्वर्य वृद्धि, शत्रुनाश, शिल्पियों की रक्षा, अन्न, वेदवाणी, समस्त विद्वानों और हितकारी कार्यों के लिये स्वीनार करें ।

यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते । स्वाहा घर्माय ।
स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ ९ ॥

भुरिग्गायत्री । षड्जः ॥ यमो घर्मश्च देवते ।

भा०—( अंगिरस्वते ) अंगारों के समान चमकने वाले तेजस्वी पुरुषों और प्राण विद्युदादि विद्या के ज्ञाता विद्वानों से संयुक्त और ( पितृ-

मते ) पालक पुरुषों से युक्त ( यमाय ) सर्वनियन्ता राजा के पद के के लिये ( स्वाहा ) उत्तम सत्यवाणी से तुझ को स्वीकार करता हूं। ( घर्माय ) अति तेजस्वी यज्ञ, प्रजापति पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं। ( घर्मः ) तेजस्वी पद ( पित्रे ) पालक पुरुष को ( स्वाहा ) उत्तम रीति से प्रदान किया जाय।

स्त्री पुरुष पक्ष में—हम दोनों ( घर्मः ) स्वयं तेजस्वी या वीर्यवान् होकर उत्तम ज्ञानी, पालक जनों से युक्त सन्तान के लिये यज्ञ के लिये उत्तम सत्य वाणी और क्रिया द्वारा एक दूसरे को स्वीकार करें।

'समुद्राय त्वा वाताय ( मं० ७ ) से लेकर 'यमाय' त्वा० इत्यादि तक १२ नाम वायु के गुण भेद से हैं। यह शतपथकार का मत है। गुण भेद से उपमानोपमेय भाव से इसकी संगति लगानी चाहिये।

विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह।
स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥ १० ॥

भा०—हे ( अश्विना ) राष्ट्र के भोग करने वाले उसके स्वामी राज प्रजावर्ग तुम दोनो ! ( स्वाहाकृतस्य ) एक दूसरे के प्रति सत्य संकल्प और सत्य वाणी द्वारा उत्पन्न किये ( घर्मस्य ) राष्ट्ररूप यज्ञ के अति प्रदीप्त या जल सेचन से प्राप्त ( मधोः ) मधुर अन्न का ( पिबतम् ) उपभोग करो। वह राष्ट्र का नियन्ता विद्वान् राजपुरोहित ( दक्षिणसत् ) दक्षिण दिशा में विराजमान प्रखर, सूर्य के समान तेजस्वी एवं ( दक्षिणसत् ) राजासन के दक्षिण भाग और दायें ओर में विराजमान होकर ( विश्वाः आशाः ) समस्त दिशाओं की प्रजाओं और ( देवान् ) समस्त उत्तम विद्वान्, वीर पुरुषों और राजाओं को ( इह ) इस राष्ट्र में या सभाभवन में ( अयाट् ) संगत करता, आदर करता है।

१०—अयाळिह० इति काण्व०।

यज्ञपक्ष में—वेदी के दक्षिण भाग में अध्वर्यु विराज कर जलादि देवों के विशोधन के लिये अग्नि में आहुति प्रदान करता है। ( अश्विनौ ) दोनों स्त्री पुरुष ( स्वाहा कृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतम् ) आहुति किये यज्ञ के शेष का उपभोग करें।

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः ।
स्वाहाग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥ ११ ॥

घर्मो देवता । विराडुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे विद्वन् ! ( इमम् यज्ञम् ) इस राष्ट्र रूप यज्ञ, प्रजापालक राजा को ( दिवि धाः ) राजसभा के आधार पर धारण कर ( इमं यज्ञं ) इस प्रजापालक सब के संगति कराने में कुशल पुरुष को ( दिवि ) उत्तम ज्ञान में या राजसभा के ऊपर सभापति रूप से स्थापित कर। ( यज्ञियाय ) यज्ञ, राष्ट्रावस्था के हितकर, उसको संभालने में योग्य ( अग्नये ) ज्ञानवान्, अग्रणी, तेजस्वी पुरुष को ( स्वाहा ) उत्तम अधिकार, मान और आदर एवं अन्नादि पदार्थ प्रदान करो। ( यजुर्भ्यः ) अन्य उसके साथ राज्य कार्यों में सहयोग देने वाले शासक जनों को भी ( शम् ) शान्ति सुख प्राप्त हो। अथवा ( यजुर्भ्यः ) यजुर्वेद के मन्त्रों में प्रतिपादित क्षत्रियोचित राज्य-कर्मों से शान्ति स्थापन करो।

गृहस्थपक्ष में—इस यज्ञ को सूर्य के प्रकाश में करो और उत्तम ज्ञान के प्राप्त करने के लिये ( दिवि ) सत्संग रूप यज्ञ करो। विद्वान् और याज्ञिकों को आदर करो और वेदमन्त्रों से सुख शान्ति प्राप्त करो।

अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः ।
तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ १२ ॥

घर्मो देवता । आर्ची पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे ( अश्विनौ ) राज प्रजावर्गो ! हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनो ( अहर्दिवाभिः ) दिन और रात सदा, ( हार्द्वानं ) हृदय को प्रिय लगने

वाले, हृदयग्राही ( घर्मम् ) तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् राष्ट्र को ( ऊतिभिः ) सब प्रकार के रक्षा साधनों से ( पातम् ) पालन करो, एवं उपभोग करो। ( तन्त्रायिणे ) शास्त्रों और कलाकौशल, शिल्पों के जानने वाले और कुटुम्ब और उसके समान समस्त राज्य तन्त्र के धारण करनेहारे गृहपति और राजा को और ( द्यावापृथिवीभ्याम् ) सूर्य और पृथिवी के समान राजा प्रजा वर्गों और स्त्री पुरुषों को ( नमः ) अधिकार, मान और अन्न प्राप्त हों।

अपा॑तामश्विना॑ घ॒र्मम॑नु॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॑मᳪंसाताम्।
इ॒हैव रा॒तयः॑ सन्तु ॥ १३ ॥

अश्विनौ देवते । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे राज प्रजावर्गो ! आप दोनों ( द्यावापृथिवी अनु ) सूर्य और पृथिवी के समान एक दूसरे के अनुकूल परस्पर उपकारक होकर ( घर्मम् ) राष्ट्रपति का पालन और राष्ट्र-ऐश्वर्य को रस के समान (पातम्) पान करो, उसका पालन और स्वीकार करो, उपभोग करो। ( अनु अमंसाताम् ) उसी के समान एक दूसरे का आदर मान करो। ( इह एव ) यहां, उसके निमित्त ही ( रातयः ) विद्यादि सुखों और ऐश्वर्यों के दान भी ( सन्तु ) हों। स्त्री पुरुष भी अपने गृहस्थ रूप यज्ञ की रक्षा करें। इसी में नाना दान भी करें।

इ॒षे पि॑न्वस्वो॒र्जे पि॑न्वस्व॒ ब्रह्म॑णे पिन्वस्व क्ष॒त्राय॑ पिन्वस्व॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॑ पिन्वस्व। धर्मा॑सि सु॒धर्मा॒मेन्य॒स्मे नृ॒म्णानि॑ धारय॒ ब्रह्म॑ धारय क्ष॒त्रं धा॑रय॒ विशं॑ धारय ॥ १४ ॥

धर्मो महावीरश्च देवते । अतिशक्करी । पञ्चमः ॥

भा०—हे तेजस्वी पुरुष ! तू ( इषे ) अन्न की वृद्धि के लिये प्रजा-वर्ग को ( पिन्वस्व ) पुष्ट कर। ( ऊर्जे पिन्वस्व ) बल पराक्रम के लिये पुष्ट कर। ( ब्रह्मणे पिन्वस्व ) ब्रह्म ... वेद ज्ञान और वेदज्ञ

वृद्धि के लिये पुष्ट कर। ( क्षत्राय पिन्वस्व ) क्षात्रबल और क्षत्रियों की वृद्धि के लिये पुष्ट कर। ( द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ) सूर्य, पृथिवी और उनके समान स्त्री और पुरुषों की वृद्धि के लिये भी पुष्ट कर। हे महावीर राजन्! ( धर्मा असि ) समस्त राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होने से 'धर्मा' है। तू ( सुधर्मा असि ) उत्तम रीति से धारण में शक्तिमान् होने से 'सुधर्मा' है। तू ( अमेनि असि ) हिंसारहित हो। ( अस्मे ) हमें ( नृम्णानि ) मनुष्यों के हितकारी ऐश्वर्य ( धारय ) धारण करा। ( ब्रह्म धारय ) वेद और वेदज्ञ ब्राह्मण वर्ग को धारण कर ( क्षत्रं ) वीर्य वीर्यवान् वीर पुरुषों को धारण कर। (विशं धारय) वैश्य प्रजा को धारण कर।

**स्वाहा॑ पू॒ष्णे शर॑से॒ स्वाहा॒ ग्राव॑भ्यः॒ स्वाहा॑ प्रति॒र॒वेभ्यः॑। स्वाहा॑ पि॒तृभ्य॑ ऊ॒र्ध्वब॑र्हिभ्यो घर्म॒पाव॑भ्यः॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳪं स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॑ ॥ १५ ॥**

रथादयो लिङ्गोक्ता देवताः। स्वराड् जगती। निषादः॥

भा०—( पूष्णे ) अन्न और वायु के समान प्रजा के पोषण करने वाले ( शरसे ) और शत्रु को बाण के समान मारने वाले वीर पुरुष को ( स्वाहा ) उत्तम मान, आदर प्राप्त हो। ( ग्रावभ्यः स्वाहा ) मेघों के समान गर्जना करनेवाले वीरों और ज्ञानोपदेष्टा गुरुजनों को उत्तम मान और आदर प्राप्त हो। ( प्रतिरवेभ्यः स्वाहा ) गुरु के कहे वचनों को दोहराने वाले शिष्यों अथवा प्रतिस्पर्द्धियों के प्रति उत्तर देने वाले, राष्ट्र के प्राणों के समान वीर पुरुषों को उत्तम अन्न एवं मान प्राप्त हो। (ऊर्ध्वबर्हिभ्यः) प्राची दिशा की ओर उगे कुशादि काटने वाले, पालक, यज्ञशील सोमयाजी विद्वानों के समान उत्कृष्ट पदों तक वृद्धि प्राप्त करने हारे और (घर्मपावभ्यः) यज्ञ से और अपने प्रखर तेज से सबके हृदयों और देश के शासन को पवित्र करने हारे ( पितृभ्यः ) सबके गुरु जन, माता पिता के समान अथवा ऋतुओं के समान उत्तम विद्वानों को ( स्वाहा ) उत्तम

अन्न, आदर पद प्राप्त हो। (द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा) सूर्य और अन्तरिक्ष या भूमि के समान राजा रानी, राज प्रजावर्ग और उत्तम स्त्री पुरुषों के लिये उत्तम मानसूचक वचन और अधिकार और अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) समस्त विद्वान, दानशील, विजयेच्छु पुरुषों को उत्तम आदर प्राप्त हो।

**स्वाहा॑ रु॒द्राय॑ रु॒द्रहू॑तये॒ स्वाहा॒ सं ज्योति॑षा॒ ज्योति॑ः। अह॑ः के॒तुना॑ जुषता॒ᳪ सु॒ज्योति॒र्ज्योति॑षा॒ स्वाहा॑। रात्रि॑ः के॒तुना॑ जुषता॒ᳪ सु॒ज्योति॒र्ज्योति॑षा॒ स्वाहा॑। मधु॑ हु॒तमिन्द्र॑तमे॒ऽअ॒ग्नाव॒श्याम॑ ते देव घर्म॒ नम॑स्तेऽअस्तु॒ मा मा॑ हिᳪसीः॥ १६॥**

रुद्रादयो देवताः। भुरिगतिधृतिः। षड्जः॥

भा०—(रुद्रहूतये) दुष्टों को रुलाने वाले, वीर पुरुषों को आह्वान करने वाले, उनके आज्ञापक, (रुद्राय) रुद्र रूप सेनापति को (स्वाहा) उत्तम आदर प्राप्त हो। (स्वाहा) सत्य वाणी से (ज्योतिः) ज्योति अर्थात् प्रकाश जिस प्रकार (ज्योतिषा) अपने से अधिक प्रबल प्रकाश से मिल कर एक हो जाता है उसी प्रकार वीर पुरुष वीर सेनापति से मिलकर एक हो जायं। (अहः केतुना) दिन जिस प्रकार उसके ज्ञापक प्रवर्त्तक सूर्य से युक्त होता है उसी प्रकार (सुज्योतिः) उत्तम ज्योति, तेज वाला सेनापति (स्वाहा) उत्तम सत्य वचन द्वारा (ज्योतिषा) तेजस्वी वीर पुरुष से (संजुषताम्) सुसंगत हो, प्रेमयुक्त हो। (केतुना) रात्रि के ज्ञापक चन्द्र से जिस प्रकार (रात्रिः) सब प्राणियों को सुख देने वाली रात्रि युक्त होती है उसी प्रकार (ज्योतिषा) ज्योतिर्मय तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष से (सुज्योतिः) उत्तम ज्योति वाली (रात्रि) सब प्रजा को सुखदायी राज्यव्यवस्था (स्वाहा) उत्तम, सत्य क्रिया द्वारा (जुषताम्) प्रेमपूर्वक संयुक्त रहे। (इन्द्रतमे) अति वीर्यवान् तेजस्वी

१६—०अग्ना अश्याम० इति काण्व०।

(अग्नौ) आग में (हुतम् मधु) आहुति किये हुए मधुर सुगन्ध युक्त अन्नादि पदार्थ को जिस प्रकार हम उपभोग करते हैं उसी प्रकार तुझ (इन्द्रतमे) सबसे अधिक बलवान् और ऐश्वर्यवान् (अग्नौ) शत्रु को आग के समान जला डालने वाले तेजस्वी राजा के अधीन (हुतम्) प्रदान किये (मधु) पृथिवी रूप राष्ट्र का हम (अश्याम) प्रजाजन भोग करें। हे (देव) विजिगीषो! हे (घर्म) तेजस्विन्! सूर्यवत् प्रकाशमान राजन्! (ते नमः अस्तु) तुझे अन्न, आदर और बल वीर्य प्राप्त हो। (मा) मुझ प्रजावर्ग को तू (मा हिंसीः) मत मार, मत पीड़ित कर।

सामन्य जीवों के अक्ष में—(रुद्रहूतये रुद्राय) प्राणों की आहुति से जीने वाले जीव के लिये (ज्योतिषा ज्योतिः सम् जुषताम्) प्रकाश के साथ प्रकाश को संगत करो। (केतुना) बुद्धिपूर्वक (अहः रात्रिः) दिन और रात्रि को भी (ज्योतिषा ज्योतिः) ज्ञान से सद्गुणों को और मनन चिन्तन से धर्मादि तत्वों को संगत कर सेवन करो। अति तीव्र अग्नि में आहुति किये घृतादि मधुर पदार्थों को हम प्राप्त हों। हे परमेश्वर! आपको नमस्कार है। आप हमें पीड़ित न कर पालन करें।

**अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः। उत श्रवसा पृथिवीꣳ सꣳ सीदस्व महाँ२ऽ असि रोचस्व देववीतमः। वि धूममग्ने ऽअरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम्॥ १७॥**

अग्निर्देवता। त्र्यवसाना शक्वरी। पञ्चमः॥

भा०—हे वीर विद्वन्! राजन्! (महिमा) तेरा महान् सामर्थ्य (इमं दिवम्) इस तेजस्वी सूर्य को भी (अभि बभूव) मात करता है। वह (विप्रः) विविध प्रजाओं को पूर्ण करने वाला और (सप्रथाः) सर्वत्र एक साथ फैलने वाला है। (उत) और (श्रवसा) यश और ऐश्वर्य के बल से तू (पृथिवीम्) पृथिवी पर (सं सीदस्व) अच्छी प्रकार विराजमान हो। उस पर राजा अभिषिक्त होकर विराजे। तू (महान् असि)

बड़ा है, बड़े सामर्थ्य वाला है। ( देववीतमः ) दिव्य गुणों से अति अधिक प्रकाशमान् होकर ( रोचस्व ) सबको प्रिय हो। हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन्! हे ( मियेध्य ) शत्रुओं के नाश करने में समर्थ! जिस प्रकार अग्नि अन्धकार के समय अपने तेज से भभकते हुए लाल धूएं को छोड़ता है उसी प्रकार तू भी ( अरुषम् ) रोष रहित, प्रेमयुक्त एवं देदीप्यमान, लाल वर्ण के प्रतापशाली ( दर्शतम् ) दर्शनीय ( धूमम् ) शत्रुओं के कंपाने वाले सेनाबल को ( वि सृज ) विविध दिशाओं में प्रेरित कर, भेज और विजय कर।

'दिवं' अविद्यादिगुणप्रकाशमिति दया० तत् चिन्त्यम् ॥

या ते॑ घर्म दि॒व्या शुग्या गा॑य॒त्र्याᳪं᳖ ह॑वि॒र्धाने॑। सा त॒ आप्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑। या ते॑ घर्मा॒न्तरि॑क्षे॒ शुग्या त्रि॒ष्टुभ्या॒ग्नीध्रे॑। सा त॒ आ प्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑। या ते॑ घर्म पृथि॒व्याᳪं᳖ शुग्या जग॑त्याᳪं᳖ सद॒स्या। सा त॒ आ प्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ ॥ १८ ॥

घर्मो देवता। भुरिगाकृतिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे ( घर्म ) तेजस्विन् राजन्! ( या ) जो ( ते ) तेरी ( दिव्या ) दिव्य पदार्थ सूर्य में रहने वाली दीप्ति के समान, उत्तम गुणों से उत्पन्न ( शुक् ) कान्ति, ( गायत्र्या ) वेदों के गान करने वाले ब्राह्मण विद्वानों के रक्षा करने वाली राज्य नीति में और ( हविर्धाने ) उत्तम संग्रह योग्य कर, अन्नादि पदार्थों के ग्रहण करने में है ( सा ) वह ( ते ) तेरी ( आप्याताम् ) खूब बढ़े, वह ( निः स्त्यायताम् ) खूब प्रबल हो और ( ते ) तेरे ( तस्यै ) उस शक्ति के लिये (स्वाहा) तुझे उत्तम यश प्राप्त हो।

हे ( घर्म ) वायु के समान तेजस्विन् बलवन्! राजन्! (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में वायु के समान या ( शुक् ) जो तेरी प्रचण्डशक्ति (आग्नीध्रे) अग्नियों के समान प्रदीप्त बलवान् तेजस्वी वीर पुरुषों को धारण पोषण

करने के कार्य में और (त्रिष्टुभि) विविध क्षात्रशक्ति में है (ते सा) वह तेरी (अप्यायताम्) खूब बढ़े। (निः स्त्यायताम्) दृढ़ हो। (ते तस्यै स्वाहा) उससे तुझे उत्तम यश प्राप्त हो।

हे (घर्म) अग्नि के समान तेजस्विन्! (जगत्यां) जंगम जीवों से युक्त इस सृष्टि में और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (या) जो (ते) तेरी (सदस्या) राजसभा में प्रकट होने वाली (शुक्) शोभा, कान्ति और शक्ति है (सा ते आप्यायताम्) तेरी वह शक्ति खूब बढ़े। (निः स्त्यायताम्) खूब दृढ़ हो। (ते तस्यै स्वाहा) तेरी उस शक्ति से खूब कीर्त्ति हो।

क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि।
विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुवितायं नव्यसे ॥१९॥

महावीरो घर्मो देवता। निचृदुपरिष्टाद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजन्! तू (परस्पाय) दूसरों को पालन करने के लिये प्रजा को शत्रु से बचाने और उत्तम रीति से पालन करने के लिये हो। अतः तू (क्षत्रस्य) क्षत्रियों के और (ब्रह्मणः) विद्वान् ब्राह्मणों के (तन्वं पाहि) शरीरों की रक्षा कर। अथवा (क्षत्रस्य) राष्ट्र के बल, वीर्य और (ब्रह्मणः) धनैश्वर्य और अन्न की (तन्वम्) विस्तृत सम्पत्ति की रक्षा कर। (विशः धर्मणा) प्रजाओं के कर्त्तव्य नियम और धर्म से (नव्यसे) नये से नये, अति उत्तम (सुविताय) शुभ पदार्थों के प्राप्त करने एवं उत्तम मार्ग चलने और राज्य शासन के कार्य के लिये हम (त्वा अनुक्रामाम) तेरा अनुगमन करें, तेरे पीछे २ चलें, तेरी आज्ञा पालन करें।

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः। अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥२०॥

घर्मो देवता। निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे तेजस्वी पुरुष! राजन्! (चतुस्रक्तिः) तू चारों दिशाओं

में प्रबल हथियारों वाला हो। तू ( ऋतस्य नाभिः ) सत्य, न्यायव्यवस्था, धर्म मर्यादा और क़ानून का नाभि अर्थात् केन्द्र हो। तू (सप्रथाः) विस्तृत शक्तिवाला है। (सः) वह तू (सप्रथाः) अति विस्तृत यश और राष्ट्र वाला होकर ( विश्वायुः ) पूर्ण आयु होकर, जीवन भर ( नः ) हमारी रक्षा कर। और ( सः ) वह तू ( नः ) हमारे कल्याण के लिये ( सर्वायुः सप्रथाः ) पूर्ण जीवन को प्राप्त हो और विस्तृत कीर्त्ति वाला हो। हम लोग ( द्वेषः ) द्वेष करने वाले और ( ह्वाः ) कुटिल चाल वाले और ( अन्यव्रतस्य ) अन्य, भिन्न शत्रु के कर्मों वाले पुरुष को ( अप सश्चिम ) दूर करें। अथवा—( अन्यव्रतस्य ते द्वेषः दूरः च अपसश्चिम ) अन्यों को पालन करने वाले तेरे शत्रुओं और कुटिल पुरुषों को दूर करें।

शत्रुवाच्यन्यशब्दः प्रायो वेदे दृश्यते। यथा 'अन्यांस्तपन्तु हेतयः०' इत्यादि।

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्द्धस्व चा च प्यायस्व।
वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥ २१ ॥
घर्मो देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे ( घर्म ) मेघ के समान प्रजा पर सुख समृद्धि के वर्षक और सूर्य के समान तेजस्विन्! ( ते ) तेरा ( एतत् ) यह इतना बड़ा ( पुरीषम् ) ऐश्वर्य और राज्यपालन करने का सामर्थ्य है। तू ( तेन ) उससे ( वर्धस्व ) बढ़ और ( आप्यायस्व च ) खूब समृद्ध हो और प्रजा को भी पुष्ट कर। ( वयम् च ) हम भी ( वर्धिषीमहि ) बढ़ें और ( आ प्यासिषीमहि ) खूब लक्ष्मी से समृद्ध और तृप्त हों।

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः।
सꣳ सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥ २२ ॥
आदित्यो घर्मो देवता। पराेष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—( वृषा ) शत्रुओं को रोकने में समर्थ, प्रजाओं पर सुखों की

वर्षा करने वाला, मेघ के समान ( अचिक्रदत् ) गर्जन करता है। (हरिः) प्रजाओं के दुःखों को हरनेवाला, एवं सूर्य के समान प्रजा से कर लेने वाला होकर, ( मित्रः न ) सूर्य के समान सबके प्रति समान भाव से स्नेही, न्यायकारी, ( दर्शतः ) सब से दर्शनीय और सबका द्रष्टा है। वह ही ( सूर्येण ) सूर्य के समान तेज से ( सं दिद्युतत् ) अच्छी प्रकार चमके। शौर्य, वीर्य, बल, पराक्रम और उपकार आदि अपने गुणों को प्रकाशित करे। वह ( उदधिः ) सागर के समान गम्भीर हो और ( निधिः ) कोश, खज़ाने के समान सब ऐश्वर्यों का रक्षक हो।

सुमित्रिया न ऽआप ऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । २२ ॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २० । २१ ॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ २५ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २० । २३ ॥

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे ।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६॥

इन्द्रो देवता । स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—( यावती ) जितने बड़े ( द्यावापृथिवी ) आकाश और भूमि या सूर्य और भूमि और उनके समान स्त्री पुरुष, एवं राज प्रजावर्ग हैं और ( यावत् ) जहांतक ( सिन्धवः ) सातों समुद्र ( वि तस्थिरे ) विविध दिशाओं में फैले हैं। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ( ते ) तेरे लिये ( तावन्तम् ) वहां तक का ( ग्रहम् ) शासनाधिकार ( ऊर्जा ) बल,

पराक्रम से ( गृह्णामि ) ग्रहण करूं, स्वीकार करूं और वहांतक ही मैं ( मयि ) अपने में ( अक्षितम् ग्रहम् ) अक्षय, ग्रहण सामर्थ्य को ( गृह्णामि ) धारण करूं ।

अथवा—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राष्ट्र-प्रजागण ! आकाश भूमि के विस्तारक तक और समुद्रों के विस्तार तक के (ग्रहम्) अधिकार को मैं राजा ( मयि ) अपने अधीन ( गृह्णामि ) ग्रहण करता हूं ।

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः ।
घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ।२७

धर्मो देवता । पंक्तिः पञ्चमः ॥

भा०—( मयि ) मुझ प्रजावर्ग में ( त्यत् ) वह अलौकिक, अपूर्व, वाञ्छनीय ( बृहत् ) बड़ा भारी ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य बल प्राप्त हो ( मयि दक्षः ) मुझमें बल प्रज्ञा, बुद्धि और मुझ में विज्ञान प्राप्त हो। इसी प्रकार ( मयि ) मुझ राजा के अधीन ( क्रतुः ) बड़ा भारी ऐश्वर्य युक्त राष्ट्रबल और राज्यकार्य विज्ञान प्राप्त हो। इस प्रकार ( घर्मः ) तेजस्वी राजा ( त्रिशुक् ) अग्नि, विद्युत्, सूर्य तीनों के समान तेजस्वी होकर ( विराजा ज्योतिषा ) विराट् प्रकाश, विविध राजोचित तेज और ( ब्रह्मणा तेजसा ) ब्रह्म, वेदमय तेज या बड़े भारी ऐश्वर्यमय तीक्ष्ण प्रताप के ( सह ) साथ ( विराजति ) विराजे शोभा को प्राप्त हो ।

पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराᳲ समाम् ।
त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः ।
इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमत ऽउपहूत ऽउपहूतस्य भक्षयामि ॥ २८ ॥

धर्मो देवता । स्वराड् धृतिः । पञ्चमः ॥

भा०—( पयसः रेतः आभृतम् ) दूध से जिस प्रकार शरीर में वीर्य अच्छी प्रकार धारण किया जाता है। और जिस प्रकार ( पयसः ) वृष्टि के जल से ( रेतः ) पृथ्वी के ऊपर ओषधि और प्राणियों के उत्पादक बीज ( आभृतम् ) सर्वत्र पुष्ट होता और प्राप्त होता है उसी प्रकार मैं राजा ( पयसः ) राष्ट्र के पोषण करने वाले ऐश्वर्य के बल से (रेतः) उसमें उत्पादक सामर्थ्य अर्थात् प्रजा और ऐश्वर्य के पदार्थों के पैदावार के सामार्थ्य को ( आभृतम् ) प्राप्त कराऊं और पुष्ट कराऊं। और जिस प्रकार गौ को दोहन करके उसके दुग्ध का सभी उपभोग करते हैं और जिस प्रकार वृष्टि जल के द्वारा प्रभूत अन्न को प्रति वर्ष प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ( तस्य ) उस राष्ट्रैश्वर्य के ( दोहम् ) योग्य रीति से प्राप्त किये पूर्ण ऐश्वर्य को हम लोग (उत्तराम् उत्तराम् समाम्) उत्तरोत्तर आने वाले वर्ष में प्राप्त करें और उसका उपभोग करें। हे ( सुषुम्ण ) उत्तम सुखयुक्त प्रजाजन ! ( ते क्रत्वे )तेरे कर्म और ज्ञान की वृद्धि के लिये ( सुषुम्णस्य ) उत्तम सुख से युक्त ( ते ) तेरे ( दक्षस्य ) बल और ( त्विषः ) कान्ति को ( संवृक् ) स्वीकार करने वाला होकर मैं ( अग्निहुतः ) अग्रणी, तेजस्वी नायक द्वारा स्वीकृत होकर ( उपहूतः ) आदरपूर्वक बुलाया जाकर ही मैं ( इन्द्रपीतस्य ) ऐश्वर्यवान् पुरुषों या प्रजाजन से युक्त या पालित और (प्रजापति भक्षितस्य) प्रजा के पालक माता पिताओं द्वारा खाये गये अर्थात् उपयुक्त, ( मधुमतः ) मधुर अन्नादि ऐश्वर्य से सम्पन्न राष्ट्र को मैं सेनापति और राजा ( भक्षयामि ) उपभोग करूं। महावीर का समस्त प्रकरण, ब्रह्मचर्य, परमेश्वरोपासना, योग द्वारा आत्म साधना और सूर्य चन्द्र आदि परक भी लगता है विस्तारमय से नहीं लिखा।

॥ इत्यष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

# अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः । पृथिव्यै स्वाहाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा ॥ १ ॥

भा०—( साधिपतिकेभ्यः ) अधिपति आत्मा या मन के सहित शरीर में विद्यमान प्राणों के समान राष्ट्र में अपने अधिपति, अध्यक्षों के सहित ( प्राणेभ्यः ) उत्तम जीवन वाले, राष्ट्र को चेतन बनाये रखने वाले प्रजाजनों को ( स्वाहा ) उत्तम रीति से अन्न आदि प्राप्त हो । ( पृथिव्यै अन्तरिक्षाय अग्नये वायवे दिवे सूर्याय स्वाहा ) पृथिवी और उस पर रहने वाले प्रजाजन को ( स्वाहा ) उत्तम अन्न प्राप्त हो । 'अन्तरिक्ष' को उत्तम आहुति और राजा प्रजा के बीच के मध्यस्थ कार्यकर्त्ता को आदर और अग्नि, वायु आकाश और सूर्य इनको ( स्वाहा ) उत्तम घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों की आहुति और उत्तम ज्ञानपूर्वक प्रप्ति हो । ( वायवे स्वाहा ) वायु को उत्तम आहुति प्राप्त हो । और वायु के समान सबको जीवन देने वाले एवं उसके समान शत्रु को उखाड़ देने वाले राजा को आदर प्राप्त हो । ( दिवे स्वाहा ) सब तेजस्वी सूर्य, चन्द्रादिक के आश्रय स्थान आकाश के समान सब तेजस्वी पुरुषों के आश्रय राजा को उत्तम अन्न, यश, ऐश्वर्य प्राप्त हो । ( सूर्याय स्वाहा ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का उत्तम अन्न और आदर प्राप्त हो ।

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा । नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥ २ ॥

लिंगोक्ता देवताः ॥

भा०—( दिग्भ्यः स्वाहा ) दिशाओं और उनके वासी प्रजाओं

को उत्तम आदर और अन्न प्राप्त हो। ( चन्द्राय स्वाहा ) चन्द्र के समान आह्लादक राजा को उत्तम ऐश्वर्य और आदर कीर्त्ति प्राप्त हो। ( नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ) नक्षत्रों के समान अपने स्थान से विचलित न होने वाले वीर पुरुषों को यश प्राप्त हो। ( अद्भ्यः स्वाहा ) जलों के समान शीतल स्वभाव, मल, पाप के दूर करने वाले आप्त पुरुषों को उत्तम अन्न दान, यश, उत्तम वचन द्वारा आदर प्राप्त हो। ( वरुणाय स्वाहा ) मेघ और समुद्र के समान सर्वश्रेष्ठ राजा को उत्तम आदर एवं धनादि प्राप्त हो। ( नाभ्यै ) अपने में सबको बांध लेने वाले, नाभि के समान केन्द्रस्थ पुरुष को आदर प्राप्त हो, ( पूताय स्वाहा ) पवित्र करने वाले स्वयं पवित्र पुरुष का आदर हो।

अथवा—( १ ) मन सहित समस्त प्राणों को बलवान् करने के लिये उत्तम साधन करो। पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, आकाश और सूर्य इनको सुखकारी बनाने के लिये उत्तम साधन करो।

( २ ) दिशाएं, चन्द्र, नक्षत्र, जल, समुद्र, नाभि और शरीर की पवित्रता के लिये भी उत्तम साधनों का प्रयोग करो।

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा।
चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा। श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ॥३॥

भा०—( वाचे ) वाणी के सुधार और उसके उत्तम शिक्षा के लिये, (प्राणाय प्राणाय) दायें बायें प्राणों की स्वच्छता और बल के लिये (चक्षुषे चक्षुषे ) दायें बायें आंखों के उत्तम शक्ति के लिये, ( श्रोत्राय श्रोत्राय ) दायें बायें कानों की श्रवण शक्ति के लिये ( सु-आहा ) उत्तम अन्न खाओ, उत्तम रीति से इनका उपयोग लो और उनको सन्मार्ग में चलावो।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय।
पशूनाᳬ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥ ४ ॥

कामादयो देवताः। निचृद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—( मनसः ) मन, मननशील अन्तःकरण की ( कामम् ) इच्छा और ( आकूतिम् ) अभिप्राय जतलाने की शक्ति और ( वाचः ) वाणी के ( सत्य ) यथार्थ, सत्य भाषण को मैं ( अशीय ) प्राप्त करूं, अर्थात् मनसे दृढ़ इच्छा और प्रबल अभिप्राय-ज्ञापन का अभ्यास करूं और वाणी से सत्य बोलूं। ( पशूनां ) पशुओं के ( रूपम् ) नाना प्रकार के ( अन्नस्य ) अन्न के ( रसः ) नाना सार रूप रस और ( यशः श्रीः ) यश और ऐश्वर्य ये सब ( मयि ) मुझ पुरुष में (स्वाहा) उत्तम कर्म और वाणी से ( श्रयताम् ) आवें और स्थिर हों।

प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्वदेवः संथंसन्नो घर्मः प्रवृक्तस्तेज उद्यत आश्विनः पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्य न्दमाने मारुतः क्लथन्। मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाण आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥ ५ ॥

महावीरो देवता । कृतिः । निषादः ॥

भा०—( संभ्रियमाणः ) प्रजाएं जब राजा को नाना ऐश्वर्यों से पुष्ट करती हैं तब वह ( प्रजापतिः ) प्रजा का पालक होने से 'प्रजापति' कहाता है। ( 'सम्भृतः सम्राट् ) वह अच्छी प्रकार परिपुष्ट हो जाता है तब वह प्रजा में उत्तम रीति से सर्वत्र ऐश्वर्य से प्रकाशित होने से 'सम्राट्' कहाता है। ( संसन्नः वैश्वदेवः ) अच्छी प्रकार राजसभा में विराज कर समस्त विद्वानों से आदर पाने के कारण 'वैश्वदेव' कहाता है। ( प्रवृक्तः घर्मः ) ऊंचे आसन को प्राप्त होकर वह तेजस्वी होने से 'घर्म' कहाता है। ( उद्यतः तेजः ) उन्नत पद पर स्थित होकर वह तेजस्वी एवं तीक्ष्ण स्वभाव होने से 'तेज' या सूर्य के समान कहाता है। ( पयसि आश्विनः ) जल द्वारा अभिषेक कर लेने पर स्त्री पुरुष दोनों प्रकार के प्रजाओं अथवा

५—निष्कन्दयाव० इति काण्व० ।

राजवर्ग और प्रजा वर्ग दोनों द्वारा अभिषिक्त होने के कारण वह 'आश्विन' कहाता है। ( विस्यन्दमाने पौष्णः ) विशेष रूप से वेग से गमन करता हुआ हुए वह राजा पृथिवी के हित के लिये प्रवृत्त होने के कारण 'पौष्ण' कहाता है। (क्नथन् मारुतः ) जब वह शत्रुओं का नाश कर रहा होता है तब वह मारने वाले सैनिकों का स्वामी होने से 'मारुत' कहाता है। ( शरसि संताय्यमाने मैत्रः ) शत्रु नाशक सेनाबल के स्थान २ पर विस्तृत कर देने पर, अथवा जलाशय तड़ाग आदि कृषि के साधनों के फैला देने पर वह (मैत्रः) प्रजा के प्रति स्नेहवान् और प्रजा को भरण पोषण से रक्षा करने वाला होने से वह सूर्य के समान तेजस्वी राजा 'मित्र' कहाता है। ( वायव्यः ह्रियमाणः ) वेग से युद्ध क्षेत्र में रथादि साधनों से जाता हुआ वह वायु के समान तीव्र गामी होकर शत्रु की जड़ों को हिला देने वाला वायु के समान होने से 'वायव्य' है। ( हूयमानः आग्नेयः ) वह बराबर शत्रु के ऐश्वर्यों से उनके शरीर से मानो आहुति पाता हुआ, अग्नि के समान प्रचण्ड होने के कारण 'आग्नेय' है। ( हुतः वाक् ) सब प्रजाओं द्वारा अपना राजा स्वीकार कर लिया जाकर, सबको आज्ञा देने वाला होने से 'वाक्' स्वरूप है। वह सबको आज्ञा देता है। इस प्रकार ये १२ स्वरूप राजा के समझने चाहिये।

**सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीयेऽआदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चमऽऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे। मित्रो नवमे वरुणो दशमऽइन्द्रऽएकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥ ६ ॥**

सवित्रादयो देवताः। विराड्धृतिः। धैवतः ॥

भा०—राजा के द्वादश रूपों का वर्णन। ( प्रथमे अहनि ) पहले दिन वह सूर्य के समान सबका प्रेरक, आज्ञापक और ऐश्वर्य का उत्पादक होने से 'सविता' है। ( द्वितीये अग्निः ) दूसरे दिन वह अग्नि के समान मार्ग प्रकाशक अग्रणी होने से 'अग्नि' है। ( तृतीये वायुः )

तीसरे दिन वायु के समान बलवान् हो जाने से वह 'वायु' है। ( चतुर्थ आदित्यः ) चौथे दिन आदित्य के समान जलों के समान करों के ग्रहण करने से 'आदित्य' है। ( चन्द्रमाः पञ्चमः ) पाचवें दिन चन्द्र के समान आह्लादक होने से 'चन्द्रमा' है। ( षष्ठ ऋतुः ) छठे दिन सबको नाना पदार्थों के प्राप्त कराने और सबको नाना प्रकारों से सुखी करने वाला होने से 'ऋतु' है। ( मरुतः सप्तमे ) सातवें दिन सैनिकों के रूप में या प्रजा साधारण के रूप में विद्यमान होने से वह 'मरुत्गण' ही है। ( अष्टमे बृहस्पतिः ) बड़े राष्ट्र का पालक होने से 'बृहस्पति' है। ( मित्रः नवमे ) नवे दिन वह सर्वत्र स्नेहवान् होने से 'मित्र' है। (वरुणः दशमे) दसवें दिन वह सबसे वरण करने योग्य होने से 'वरुग' है। (एकादशे इन्द्रः) ग्यारहवें दिन विद्युत् के समान तेजस्वी होने से 'इन्द्र' है। और ( विश्वे देवाः द्वादशे ) बारहवें दिन समस्त विद्वानों के बीच में निष्पक्षपात होकर रहने से विश्व देवों अर्थात् विद्वानों से सम्मति में भिन्न न होने से 'विश्व देव मय है।

जीवपक्ष में—वह मरणोत्तर प्रतिदिन क्रम से सूर्य, आग, वायु, रश्मि, चन्द्र, ऋतु, वायु, प्राण, उदान और विद्युत् और शेष सब दिव्य पदार्थ इनमें उत्तरोत्तर प्राप्त होने से उस २ रूप का होकर विचरता है और कर्म फलों का भोग करता है।

उ॒ग्रश्च॑ भी॒मश्च॑ ध्वा॒न्तश्च॒ धुनि॑श्च ।
सा॒स॒ह्वाँश्चा॑भियु॒ग्वा च॑ वि॒क्षि॒पः स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

मरुतो देवताः । भुरिग् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—वह राजा ( उग्रः च ) भयंकर और सदा वायु के समान प्रचण्ड वेग से शत्रु पर आक्रमण करने से 'उग्र' है। ( भीमः च ) उनको भयप्रद होने से 'भीम' है। ( ध्वान्तः च ) अन्धकार के समान मूढ़ कर देने वाला होने से 'ध्वान्त' है। ( धुनिः च ) कंपा देने वाला होने से 'धुनि' है। (सासह्वान् च) बराबर पराजित करने में समर्थ होने से 'सास-

ह्वान्' है। (अभियुग्वा) उन पर आक्रमण करने से 'अभियुग्वा' है और उनको तितर बितर कर देने से 'विक्षिप' है। (स्वाहा) वह अपने ही उत्तम कर्मों के कारण उन नामों से मान पाने योग्य है।

जीवपक्ष में—जीव, तीव्र स्वभाव, भयंकर, तामस, कम्पमान, सहनशील, आसक्त विक्षिप्त और [ चकारसे ] शान्त, निर्भय, प्रकाशमान, स्थिर, असहनशील, विक्षिप्त, आदि अपने कर्म फलों से हो जाता है।

**अग्निꣳ हृद॑येना॒शनि॒ꣳ हृदया॒ग्रेण॑ पशु॒पतिं॑ कृत्स्न॒हृद॑येन भ॒वं य॒क्ना। श॒र्वं मत॑स्नाभ्या॒मीशा॑नं म॒न्युना॑ महादे॒वम॒न्तः प॑र्श॒व्येनो॒ग्रं दे॒वं व॑नि॒ष्ठुना॑ वसिष्ठह॒नुः शि॒ङ्गीनि॑ को॒श्याभ्या॑म् ॥ ८ ॥**

**उ॒ग्रं लोहि॑तेन मि॒त्रꣳ सौव्र॑त्येन रु॒द्रं दौर्व्र॑त्ये॒नेन्द्रं॑ प्रक्री॒डेन॑ म॒रुतो॒ बले॑न सा॒ध्यान् प्र॒मुदा॑। भ॒वस्य॒ कण्ठ्य॒ꣳ रु॒द्रस्या॑न्तः पा॒र्श्व्यं॑ महादे॒वस्य॒ यकृ॑च्छ॒र्वस्य॑ वनि॒ष्ठुः प॑शु॒पतेः॑ पुरी॒तत् ॥ ९ ॥**

उग्रादयो देवताः। ( ८ ) भुरिगष्टिः। मध्यमः। ( ९ ) आकृतिः। पञ्चमः॥
प्रजापतिर्ऋषिः॥

भा०—( १ ) राजा के सर्वदेवमय शरीर का वर्णन अलंकार रूप से करते हैं। वह (हृदयेन अग्निम्) हृदय से अग्नि को धारण करता है। (हृदयाग्रेण अशनिम्) हृदय के अगले भाग से वह विद्युत् को धारण करता है। (कृत्स्नं हृदयेन पशुपतिम्) समस्त हृदय के भाग से वह पशुओं के पालक प्राणवायु को धारण करता है। (यक्ना भवम्) यकृत् कलेजे से वह सर्वत्र विद्यमान आकाश को धारण करता है। (मतस्नाभ्यां

८, ९—'तत्राग्निं हृदयेन,' 'उग्रं लोहितेन' इति द्वेकण्डिके ब्राह्मणरूपे देवताऽवयवसम्बन्धविधानादिति महीधरः। देवतावयवविधाना द्वेकण्डिके श्रुतिरिति उव्वटः। प्रकोष्ठेन० इति काण्व०।

शर्वम् ) गुर्दों से वह जल को धारण करता है। ( मन्युना ईशानम् ) मननशील चित्त या मन्यु, क्रोध से सब पर शासन करने वाले ऐश्वर्यवान् विद्युत को धारण करता है। ( अन्तः पर्शव्येन ) भीतर के पंसुलियों से ( महादेवम् ) सबसे बड़े देव, अन्तर्यामी परमेश्वर को धारण करता है। ( वनिष्ठुना ) आंतों से ( उग्रं देवम् ) तीव्र देव, अग्नि को जाठर रूप से धारण करता है। ( वसिष्ठहनुः ) समस्त प्रजा को बसाने हारे लोगों में से सबसे श्रेष्ठ होकर शत्रु को हनन करने वाले साधनों से सम्पन्न होकर (कोश्याभ्याम्) कोश में रखने योग्य शस्त्रों और ऐश्वर्य से (शिङ्गीनि) समस्त प्राप्त करने योग्य कीर्तिजनक गुणों को हृदय कोश में धारण करता है।

इस मन्त्र में 'वसिष्ठहनुः शिङ्गीनी कोश्याभ्याम्' यह अंश संदिग्ध एवं अस्पष्ट है।

भा०—हे राजन् ! तू ( लोहितेन ) तपे लोहे के समान तीक्ष्ण स्वभाव से ( उग्रम् ) अति उग्र, प्रचण्ड पुरुष को वश कर। ( सौव्रत्येन मित्रम् ) उत्तम २ व्रत और सुखकारी नियम कर्मों के पालन से ( मित्रम् ) मित्रों को अपने वश करे। ( दौर्व्रत्येन ) दुष्टों के प्रति दुःखदायी, कष्टप्रद कार्यों से ( रुद्रम् ) प्रजा को कष्टों से रुलाने वाले पुरुष को वश करे। ( प्रक्रीडेन ) उत्तम, मन को बहलाने वाले क्रीड़ा विनोद से ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष को वश करे। ( बलेन ) बल से, सेनाबल के कार्य से ( मरुतः ) मारने हारे सैनिकों को, अथवा बल या सेना द्वारा मनुष्यों को वश करे। ( प्रमुदा ) अति हर्षकारी सुखप्रद उपाय से ( साध्यान् ) वश करने योग्य लोगों को वश करे।

अथवा अध्यात्म में—उग्र आदि नाना प्राणों के नाम भेद हैं। ( कण्ठ्यं ) कण्ठ में विद्यमान उत्तम स्वर गायन आदि ( भवस्य ) सत्तावान् प्रशंसा योग्य सामर्थ्यवान् प्राण का कार्य है। ( रुद्रस्य ) शत्रुओं को रुलाने वाले प्राण का स्थान ( अन्तः पार्श्व्यम् ) पसुलियों के भीतर का स्थान है। ( यकृत् महादेवस्य ) बड़े भारी दीप्ति वाले या

जाठर अग्नि ज्वाला से युक्त पित्त का स्थान (यकृत्) यकृत्, कलेजा है, (शर्वस्य वनिष्ठुः) भुक्त अन्न को सूक्ष्म २ अणु करके सर्वत्र अंगों में पहुंचाने वाले जाठर बल का स्थान (वनिष्ठुः) आंतें हैं। (पशु-पतेः) दर्शनशील इन्द्रियों अथवा कर्मकर भृत्य के समान शरीर के काम करने वाले अंगों के पालक आत्मा का स्थान (पुरीतत्) पुरीतत् नामक हृदय की नाड़ी है।

**लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मा꣡ꣳसेभ्यः स्वाहा मा꣡ꣳसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥ १० ॥**

भा०—(लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा) रोमों को उत्तम अन्न बल प्राप्त हो। वे स्वच्छ रोग रहित रहें। (त्वचे स्वाहा) त्वचा के प्रत्येक भाग को उत्तम रीति से रक्खो। (लोहिताय स्वाहा) रक्त के प्रत्येक भाग को स्वच्छ रक्खो। (मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा) मेद, धातु के प्रत्येक अंश को स्वच्छ और रोग रहित करो। (मांसेभ्यः स्वाहा मांसेभ्यः स्वाहा) देह में मांसों के प्रत्येक अंश को विकाररहित, नीरोग रक्खो। (स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाः) प्रत्येक स्नायु बलवान्, अविकृत रक्खो। (अस्थभ्यः स्वाहा अस्थभ्यः स्वाहा) प्रत्येक हड्डी को बलवान् और दोष रहित रक्खो। (मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा) मज्जा के प्रत्येक भाग को उत्तम, तथा अविकृत, स्वच्छ रक्खो। (रेतसे स्वाहा) वीर्य की वृद्धि के लिये भी उत्तम प्रयत्न करो और (पायवे स्वाहा) गुदा इन्द्रिय के मलशोधक अंग को स्वच्छ रक्खो। शरीर में विद्यमान उक्त धातुओं के समान राष्ट्र

---

१०—मेदसे स्वाहा मेदसे० इति काण्व०।

में भी घटक अवयवों को अच्छी प्रकार यत्नपूर्वक रक्खो उनको उत्तम अन्न आदि प्रदान करो।

**आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा। शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥ ११ ॥**

भा०—( आयासाय स्वाहा ) अंगों के व्यापक श्रम के लिये (स्वाहा) उत्तम अन्न खाओ। ( प्रायासाय स्वाहा ) उत्तम कोटि के परिश्रम के लिये भी उत्तम अन्न खाओ। ( संयासाय ) मिल कर अंगों के एकत्र यत्न करने के लिये, ( वियासाय ) विविध अंगों के श्रम के लिये, ( उद्यासाय ) उठाने के परिश्रम के लिये भी ( स्वाहा ) उत्तम अन्न का ग्रहण करो। ( शुचे स्वाहा ) स्वच्छ रहने और शरीर की कान्ति के लिये उत्तम आहार करो। ( शोचते ) शुद्ध विचार करने वाले आत्मा के लिये ( स्वाहा ) उत्तम भोजन करो। ( शोचमानाय स्वाहा ) उत्तम तेजस्वी विचार प्रकाशित करने के लिये और ( शोकाय ) तेज के प्राप्त करने के लिये उत्तम आहार करो।

इसी प्रकार राष्ट्र में भी आयास, वियास आदि नाना यत्न और बलसाध्य कार्यों के लिये, तेज, बल के बढ़ाने के लिये और तेज बल बढ़ाने वाले विद्वान् जनों के लिये उत्तम २ रीति से यत्न किया जाय।

**तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा। निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥ १२ ॥**

भा०—( तपसे ) धर्माचरण, तप का अनुष्ठान, ( तप्यते ) तपस्या करनेवाले पुरुष, ( तप्यमानाय ) विद्याभ्यासादि करनेवाले ब्रह्मचारी

१२—तपसे स्वाहा तप्यमाना० इति काण्व०।

(तप्ताय) सिद्ध तपस्वी, परिव्राजक आदि और (घर्माय) सूर्य के समान तेजस्वी सब पुरुषों के लिये (स्वाहा) उत्तम रीति से यत्न करो। धर्म कार्यों और धर्म के कार्य करने वालों के लिये उत्तम दान करो। (निष्कृत्यै) पापों के निवारण करने, (प्रायश्चित्यै) बिगड़े कार्यों और पाप आचरणों को सुधारने और (भेषजाय) शारीरिक कष्टों को चिकित्सा द्वारा दूर करने और सुख प्राप्त करने के लिये (स्वाहा) उत्तम रीति से यत्न किया जाय।

**यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा। ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳪ स्वाहा॥ १३॥**

भा०—(यमाय स्वाहा) राष्ट्र का नियन्त्रण करने वाले राज्य-व्यवस्थापक और शरीर के नियामक वायु का उत्तम रीति से आदर और तर्पण करो अन्न और कर आदि प्रदान करके उसको अनुकूल रक्खो। सर्व-नियन्ता परमेश्वर का सदा स्मरण करें। (अन्तकाय स्वाहा) दुष्टों का अन्त करने वाले राजा को आदर और सब शरीरों के अन्त करने वाले मृत्यु का उपाय और परमेश्वर का स्मरण करें। (मृत्यवे स्वाहा) सबको मारने वाले वीर का आदर, मृत्यु का उपाय और सर्वदुष्ट मारक परमेश्वर की उपासना करें, उससे सत्य आत्म ज्ञान प्राप्त करें। (ब्रह्मणे स्वाहा) महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपाय और विशाल राष्ट्र की रक्षा का उपाय करें, परमब्रह्म परमेश्वर की उपासना करें। (ब्रह्महत्यायै स्वाहा) वेद ज्ञान के विनाश के निवारण का उत्तम उपाय करो। अथवा ब्रह्म, अर्थात् महान् ऐश्वर्य के हत्या अर्थात् प्राप्ति का उपाय करो और ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति का सदुपयादि करो। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) राष्ट्र के सभी देव, शासक, विद्वानों का उचित आदर मान, पदाधिकार वेतनादि प्रदान करो। शरीर के सभी प्राणों की साधना करो, जगत् के सभी दिव्य पदार्थों का ज्ञानपूर्वक

सदुपयोग करो । ( द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा ) राष्ट्र में राजा और प्रजा वर्ग, स्त्री और पुरुष दोनों को उत्तम साधन और अन्नादि ऐश्वर्य प्राप्त हों। आकाश और पृथिवी दोनों को उत्तम रीति से ज्ञान करो ।

॥ इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्य एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥



# अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

[ अ० ४४ ] दध्यङ् आथर्वण ऋषिः। आत्मा देवता।
अनुष्टुप्। धैवतः॥

॥ ओ३म् ॥ ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥

भा०—( जगत्याम् ) इस सृष्टि में ( यत् किंच ) जो कुछ भी ( जगत् ) चर, प्राणी, जंगम संसार या गतिशील है ( इदं ) वह (सर्वं) सब ( ईशा ) सर्व शक्तिमान् परमेश्वर से ( वास्यम् ) व्याप्त है। (तेन त्यक्तेन ) उस त्याग किये हुए, या ( तेन ) उस परमेश्वर से ( त्यक्तेन ) दिये हुए पदार्थ से ( भुञ्जीथाः ) भोग अनुभव कर। ( कस्य स्वित् ) किसी के भी ( धनम् ) धन लेने की ( मा गृधः ) चाह मत कर। अथवा ( धनं कस्य स्वित् ? ) धन किसका है ? किसी का भी नहीं। इस लिये ( मा गृधः ) मत लालच कर।

'ईशा'—ईश्वरेण सकलैश्वर्यसम्पन्नेन सर्वशक्तिमता परमात्मना' इति दया०। ईश ऐश्वर्ये। क्विप्। ईष्ट इतीट्। ईशिता परमेश्वरः। सहि-सर्वं जन्तूनामात्मा सन् ईष्टे। इति मही०।

'इदं सर्वं'—प्रकृत्यादिपृथिवीपर्यन्तं। इति दया०। प्रत्यक्षतो दृश्यमानं सर्वं इति मही०।

'जगत्यां'—'गम्यमानायां सृष्टौ' इति दया०। लोकत्रये इति मही०। पृथिव्यामिति उवटः।

---

१—अथातो ज्ञानकाण्डम्।

'तेन त्यक्तेन'—'तेन वर्जितेन तच्चित्तरहितेन' इति दया० । हे सर्वेण त्यक्तेन त्यक्तस्वस्वामिभावसम्बन्धेन इत्युवटः ।

अथवा—( त्यक्तेन तेन भुञ्जीथाः ) अपना स्वामित्व और चित्त त्याग किये, अर्थात् ममता या संग से रहित इस भोग्य पदार्थ से भो अनुभव कर । इति दया० ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः—तेन त्यागेन आत्मानं पालयेथाः इति शंकरः इस त्याग से अपना पालन कर ।

राष्ट्रपक्ष में—इस ( जगत्यां ) पृथ्वी पर जितना ( जगत् ) पदार्थ, पशु पक्षी आदि (इदं सर्वम्) यह सब जड़ पदार्थ हैं सब ( वास्यम् ) शक्तिमान् ऐश्वर्यवान् राजा द्वारा अधिकार करने योग्य हैं । उस छोड़े गये या प्रदान किये का तू प्रजावर्ग भोग कर और आपस में कोई एक दूसरे के धन की चाह मत कर । मत ललचा ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २ ॥

भा०—( इह ) इस संसार में मनुष्य ( कर्माणि ) वेद में बतलाये हुए निष्काम कर्मों को ( कुर्वन् ) करता हुआ ही ( शतं समाः ) सौ वर्षों तक ( जिजीविषेत् ) जीना चाहे । हे मनुष्य ( एवं ) इस प्रकार ( त्वयि ) तुझ ( नरे ) कार्य करने वाले पुरुष में ( कर्म न लिप्यते ) कर्म का लेप नहीं होगा । ( इतः अन्यथा ) इससे दूसरे किसी प्रकार से ( न अस्ति ) कर्म का लेप लगे बिना नहीं रहता ।

'कर्म'-कर्माणि वेदोक्तानि निष्कामकृत्यानि इति दया० । मुक्तिहेतुकानि इति उवटः । कर्म अधर्म्यमवैदिकं मनोऽर्थसम्बन्धिकर्म । दया० ।

राष्ट्र पक्ष में—इस राष्ट्र में कर्म अर्थात् कर्त्तव्य पालन करते हुए सौ बरसों तक लोग जीना चाहें । हे पुरुष ! इस प्रकार तुझ नेता पुरुष में कर्म का

अर्थात् दोष नहीं लगेगा। इससे दूसरा कोई और प्रकार नहीं, राष्ट्र में कोई निकम्मा नहीं रहे। सब अपना २ कर्त्तव्य पालन करें।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥

भा०—( ते ) वे ( लोकाः ) लोक अर्थात् मनुष्य ( असुर्याः ) असुर कहाने योग्य, केवल अपने प्राण को पोषण करने हारे, पापाचारी जो ( अन्धेन ) अन्धकार रूप ( तमसा ) आत्मा को ढक लेने वाले तमोगुण से ( आवृताः ) ढके हैं। ( ये के च ) जो कोई ( जनाः ) लोग भी ( आत्महनः ) अपने आत्मा का घात करते हैं, उसके विरुद्ध आचरण करते हैं ( ते ) वे ( प्रेत्य ) मर कर ( अपि ) जीते हुए भी ( तान् ) उन उक्त प्रकार के लोकों को ही ( गच्छन्ति ) प्राप्त होते हैं।

'लोकाः'—ये लोकन्ते पश्यन्ति ते जनाः। लोक्यन्ते दृश्यन्ते भुज्यन्ते कर्माणि यत्रेति लोका जन्मानि।

राष्ट्रपक्ष में—वे सूर्य रहित स्थान गहरे अन्धकार से ढके हैं जो आत्मा अर्थात् जीवों के देहों का नाश करते हैं। वे उन स्थानों पर जीते भी रक्खे जाते हैं। और मरकरतो परलोक में वे तामस दशाओं का अनुभव करते ही हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

भा०—( अनेजत् ) अपनी अवस्था से कभी च्युत न होने वाला, परिणाम रहित, ( एकम् ) अद्वितीय, ( मनसः जवीयः ) मन से भी अधिक वेगवान् ब्रह्म है। ( पूर्वम् ) सबके पूर्व सबसे आगे, ( अर्षत् ) गति करते हुए ( एनत् ) उसको (देवाः) पृथिवी आदि तत्त्व और चक्षु आदि इन्द्रिय

३—०प्रेत्याभि० इति काण्व०।

गण (न आप्नुवन्) नहीं प्राप्त होते। (तत्) वह परब्रह्म (तिष्ठत्) अपने स्वरूप में स्थित, कूटस्थ स्थिर होकर भी (धावतः) विषयों के प्रति जाते हुए (अन्यान्) अपने से भिन्न अन्य, मन आदि इन्द्रियों को (अति एति) लांघ जाता है उनकी पहुंच से परे रहता है। (तस्मिन्) उस सर्वव्यापक में ही (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में गति करने वाला वायु और उसके समान जीव भी (अपः) कर्म (दधाति) करता है।

आत्मपक्ष में—उस आत्मा के आश्रय पर (मातरिश्वा) प्राण गति करता है।

तदे॑जति॒ तन्नैज॑ति॒ तद्दू॒रे तद्व॑न्ति॒के।
तद॒न्तर॑स्य॒ सर्व॑स्य॒ तदु॒ सर्व॑स्यास्य बाह्य॒तः ॥ ५ ॥

भा०—(तत् एजति) वह क्रिया करता है (तत् न एजति) वह क्रिया नहीं करता। वह स्वयं कूटस्थ, निष्क्रिय होकर समस्त ब्रह्माण्ड को गति दे रहा है। (तत् दूरे) वह अधर्मात्मा, अविद्वान् पुरुषों से दूर है। (तत् उ अन्तिके) वह ही धर्मात्मा और विद्वानों के समीप है। (तत्) वह (अस्य सर्वस्य) इस समस्त जगत् और जीवों के (अन्तः) भीतर, (तत्) वह ही और (अस्य सर्वस्य) इस समस्त जगत् के (बाह्यतः) बाहर भी वर्त्तमान है। वह सर्वव्यापक है।

यस्तु सर्वा॑णि भू॒तान्या॒त्मन्ने॒वानु॒पश्य॑ति।
स॒र्व॒भू॒तेषु॑ चा॒त्मानं॒ ततो॒ न वि चि॑कित्सति ॥ ६ ॥

भा०—(यः तु) जो पुरुष (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों और प्राण रहित पदार्थों को भी (आत्मन् एव) परमात्मा पर ही आश्रित (अनु पश्यति) विद्याभ्यास, धर्माचरण और योगाभ्यास कर साक्षात् कर लेता है। और (सर्वभूतेषु च) समस्त प्रकृति आदि पदार्थों में

६—'विजुगुप्सते' इति काण्व०।

( आत्मानं ) परमेश्वर को व्यापक जानता है। ( ततः ) तब वह ( न विचिकित्सति ) संदेह में नहीं पड़ता।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। तस्मिन् दृष्टे परावरे। गी०

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक ऽएकत्वमनुपश्यतः॥ ७॥

भा०—( यस्मिन् ) जिस ब्रह्मज्ञान की दशा में ( सर्वाणि भूतानि ) समस्त जीव, प्राणी ( आत्मा एव अभूत् ) अपने आत्मा के समान ही हो जाता है, अर्थात् समस्त जीव अपने समान दीखने लगते हैं उस ( एकत्वम् अनु पश्यतः ) एकता या समानता को प्रतिक्षण देखने वाले ( विजानतः ) विशेष आत्मज्ञानी पुरुष को ( तत्र ) उस दशा में फिर ( कः मोहः ) कौनसा मोह और ( कः शोकः ) कौनसा शोक रह सकता है? अर्थात् तब कोई शोक मोह नहीं रह जाता।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ ८॥

भा०—( सः ) वह परमेश्वर ( परि अगात् ) सर्वत्र व्यापक है। वह ( शुक्रम् ) शुद्ध, कान्तिमय, अथवा तीव्र शक्तिमय शीघ्र गति देने वाला, ( अकायम् ) स्थूल सूक्ष्म और कारण नामक तीनों शरीरों से रहित, ( अव्रणम् ) व्रण, घाव आदि से रहित। ( अस्नाविरम् ) स्नायु आदि बन्धनों से रहित, शुद्ध अविद्यादि दोषों रहित, सदा पवित्र, (अपापविद्धम् ) पापों से सदा मुक्त, ( कविः ) क्रान्तदर्शी, मेधावी, (मनीषी) सबके मनों को प्रेरणा करने वाला, ( परिभूः ) सर्वत्र व्यापक, सबका वशयिता, ( स्वयम्भूः ) स्वयं अपनी सत्ता से सदा विद्यमान, माता पिता द्वारा जन्म न लेने हारा है। वह ( याथातथ्यतः ) यथार्थ रूप से, ठीक

ठीक ( शाश्वतीभ्यः ) सनातन से चली आयीं ( समाभ्यः ) प्रजाओं के लिये ( अर्थात् ) समस्त पदार्थों को ( विअदधात् ) रचता है । और उनका ज्ञान प्रदान करता है ।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याᳬरताः ॥ ९ ॥

भा०—( ये ) जो ( असंभूतिम् ) सत्व, रजस्, तमस् तीन गुणों वाली अव्यक्त प्रकृति की ( उपासते ) उपासना करते हैं वे ( अन्धं तमः ) गहरे अन्धकार में ( प्रविशन्ति ) चले जाते हैं । ( ये उ ) और जो ( संभूत्याम् ) महत् आदि विकारमय सृष्टि में ( रताः ) रमण करते हैं, उसी में मग्न हो जाते हैं ( ते ) वे ( ततः ) उससे भी ( भूयः इव ) अधिक गहरे ( तमः ) अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं । अर्थात् केवल प्रकृति के उपासक भी परमानन्द परमेश्वर की आनन्दमय परम ज्योति को प्राप्त नहीं करते । वे जड़ोपासना में मग्न रहते हैं । और जो प्रकृति विकारों की ही उपासना करते हैं वे भी सुख नहीं पाते ।

अथवा—( असम्भूतिम् ) इस देह को छोड़ कर पुनः आत्मा अन्य देह में उत्पन्न नहीं होता, जो इसी प्रकार मानते हैं वे गहरे अज्ञान में रहते हैं और जो ( सम्भूतिम् ) आत्मा ही कर्मानुसार उत्पन्न होता है मरता है और ईश्वर कुछ नहीं है ऐसा मानते हैं वे उससे भी गहरे अन्धकार में पड़ते हैं ।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

भा०—( सम्भवात् ) उत्पन्न होने अर्थात् कार्यजगत् से ( अन्यत् एव ) अन्य ही फल ( आहुः ) कहते हैं । ( असम्भवात् ) नहीं उत्पन्न होने अर्थात् कारणरूप प्रकृति के ज्ञान से ( अन्यत् ) अन्य ही फल ( आहुः ) कहते हैं । ( ये ) जो विद्वान् पुरुष ( नः ) हमें ( तत् ) इस

तत्व का ( विचक्षिरे ) विशेष रूप से बतलाते हैं, उन ( धीराणां ) बुद्धि-मान् पुरुषों से ( इति ) इसी विषय का ( शुश्रुम ) श्रवण करें।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥

भा०—( सभूंतिम् ) जिसमें नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं इस कार्य सृष्टि और ( विनाशं च ) जिसमें विनाश अर्थात् कारण में लीन होते ; ( उभयं ) दोनों को ( यः ) जो ( सह ) एक साथ ( वेद ) जान लेता है। वह ( विनाशेन ) सबके अदृश्य होने के परम कारण को ज्ञान कर ( मृत्युम् ) देह को छोड़ने के धर्म के भय को ( तीर्त्वा ) पार करके, उसको सर्वथा त्याग कर ( सभूत्या ) कारण से कार्यों के उत्पन्न होने के तत्व को जान कर (अमृतम्) उस अमर अविनाशी मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त करता है।

संभूति = सम्भवैकहेतुः परं ब्रह्म। विनाशः विनाशधर्मकं शरीर-मिति उवटः।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय ऽइव ते तमो य ऽउ विद्यायाꣳ रताः ॥ १२ ॥

भा०—( ये ) जो लोग ( अविद्याम् ) अविद्या अर्थात् नित्य, पवित्र और आत्मा से भिन्न पदार्थों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा पासते) करके जानते हैं, उसी मिथ्या ज्ञान में मग्न रहते हैं वे (अन्धं तमः) रेअन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। वे बड़े अज्ञान में रहते हैं। र. ( ये उ ) जो भी ( विद्यायाम् रताः ) विद्या अर्थात् केवल शास्त्रा-ास में ही ( रताः ) लगे रहते हैं वे ( ततः भूयः इव ) उससे भी धिक ( तमः ) अज्ञानान्धकार में कष्ट पाते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्याया ऽअन्यदाहुरविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥

भा०—( विद्यायाः ) विद्या का फल और कार्य ( अन्यत् एव आहुः ) दूसरा ही बतलाते हैं। और ( अविद्यायाः अन्यत् आहुः ) अविद्या का फल और ही बतलाते हैं। ( ये नः तद् विचचक्षिरे ) जो हमें विद्या और अविद्या के स्वरूप का उपदेश करते हैं हम उन ( धीराणाम् ) बुद्धिमान् पुरुषों के मुखों से ( इति शुश्रुम ) इस तत्व का श्रवण किया करें।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ १४ ॥

भा०—( विद्यां च अविद्याम् च ) विद्या और अविद्या ( यः ) जो ( तत् उभयं वेद ) इन दोनों के स्वरूप को जान लेता है वह (अविद्यया) अविद्या से (मृत्यु तीर्त्वा) मृत्युं को पार करके ( विद्यया अमृतम् अश्नुते ) विद्या से मोक्ष को प्राप्त करता है।

अविद्यया—शरीरादि जड़ पदार्थ द्वारा पुरुषार्थ करके। ( दया० )

विद्यया—शुद्ध चित्त से सम्यग् तत्व दर्शन करके। ( दया० )

स्वर्गाद्यर्थानि कर्माणि आत्मज्ञान चेति उवटः। अविद्या अग्निहोत्रादि लक्षणा, इति मही०।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ओ ३ म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳ स्मर ॥ १५ ॥

भा०—(वायुः) वायु, प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, धनंजय आदि (अनिलम्) उक्त प्राणों के मूलकारण, वायु तत्व और ( अमृतम् ) अमृत आत्मा यह एक दूसरे के आश्रित हैं। वायु के आश्रय प्राण, प्राणों के आश्रय आत्मा जीवन धारण करता है। ( अथ ) और पश्चात् ( इदम् ) यह शरीर ( भस्मान्तम् ) राख हो जाने तक ही टिकता

---

१३—०विद्यया ०रविद्यया० इति काण्व०।

१५—ॐक्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर। इति काण्व०।

है। इसलिये हे (क्रतो) कर्म के कर्त्ता जीव! और प्रज्ञावान् पुरुष! अथवा हे संकल्पवान् जीव! तू (ओ३म् स्मर) ओं३कार का स्मरण कर। 'ओ३म्' परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है। और (क्लिबे) अपने भरसक सामर्थ्य और प्रयत्न से साधे हुए लोक की प्राप्ति के लिये (स्मर) अपने अभीष्ट का स्मरण कर। और (कृतं स्मर) अपने किये हुए अच्छे बुरे कर्मों का स्मरण कर।

अग्ने नय॑ सुपथा॑ रा॒ये ऽअ॒स्मान्विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्।
यु॒यो॒ध्य॑स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठां ते॒ नम॑ ऽउक्तिं विधेम ॥ १६ ॥

भा०—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप! करुणामय प्रभो! तू हमें (सुपथा) धर्म के उत्तम मार्ग से (राये) विज्ञान, धन और सुख प्राप्त करने के लिये (सुपथा) सन्मार्ग से (नय) ले चल। (विश्वानि वयुनानि) सब उत्तम ज्ञानों को और मार्गों और लोकों को (विद्वान्) जानता हुआ (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिल व्यवहार को (युयोधि) दूर कर। (ते) तेरे हम (भूयिष्ठां) बहुत २ (नमः उक्तिम्) स्तुति वचन (विधेम) करें।

हि॒र॒ण्मये॑न॒ पात्रे॑ण स॒त्यस्यापि॑हितं॒ मुख॑म्।
यो॒ऽसावा॑दि॒त्ये पुरु॑षः सो॒ऽसाव॒हम्। ओ३म् खं ब्रह्म॑ ॥१७॥

भा०—(हिरण्मयेन) सब के हृदयग्राही, हित और रमणीय ज्योतिर्मय (पात्रेण) पालक द्वारा (सत्यस्य) सत्य आत्मा और परमात्म तत्व का (अपिहितम्) ढका हुआ (मुखम्) मुख खोला जाता है। (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) सूर्य अर्थात् प्राण में (पुरुषः) पुरुष, शक्तिमान् प्रकाश कर्त्ता है (असौ अहम्) वह ही मैं हूं। (ओ३म्) सब संसार

---

१७—०मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।
पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ इति काण्व० ।

का रक्षा करनेहारा वह ( खम् ) आकाश के समान व्यापक, अनन्त और आनन्दमय है। और वही ( ब्रह्म ) गुण, कर्म, स्वभाव में सबसे बड़ा है।

अथवा, ढकने से जैसे वस्तु छिपी रहती है उसी प्रकार ज्योतिर्मय पदार्थों से मुख से परम शक्ति का सत् पदार्थों में विद्यमान सत्यस्वरूप छिपा है, दृष्टान्त के रूप से जो महान् शक्ति सूर्य में विद्यमान है वही मैं हूं।

यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्।
यच्चाग्नौ ......तत्तेजो विद्धि मामकम्॥ गीता॥

ओ३म् खं ब्रह्म

॥ इति चत्वारिंशोऽध्यायः॥

इति यजुर्वेदः समाप्तः॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चत्वारिंशोऽध्यायः॥ इति समाप्तं यजुर्वेदालोकभाष्यम्॥

ऋषिवस्वङ्कचन्द्रा ( १९८७ ) ब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
नवम्यां शशिवारे च यजुः शुक्लं समाप्यत॥

